पिछले चालीस सालों से उर्दू भाषा में लाखों की तादाद में प्रकाशित होकर क़ुरआनी उलूम को बेशुमार अफ़राद तक पहुँचाने वाली बेनज़ीर तफ़सीर

मआ़रिफ़ुल-क़ुरआन

जिल्द (2)

उर्दू तफ़सीर

हज़रत मौलाना मुफ़्ती मुहम्मद शफ़ी देवबन्दी रह.

(मुफ़्ती-ए-आज़म पाकिस्तान व दारुल-उलूम देवबन्द)

हिन्दी अनुवादक

मौलाना मुहम्मद इमरान क़ासमी बिज्ञानवी (एम. ए. अलीग.)

रीडर अ़ल्लामा इक़बाल यूनानी मैडिकल कॉलेज मुज़फ़्फ़र नगर (उ.प्र.)

फ़रीद बुक डिपो (प्रा.) लि.

2158, एम. पी. स्ट्रीट, पटौदी हाऊस, दरिया गंज

नई दिल्ली-110002

****

तफ़सीर मआ़रिफ़ुल-क़ुरआन

हज़रत मौलाना **मुफ़्ती मुहम्मद शफ़ी** साहिब रह.

(मुफ़्ती-ए-आज़म पाकिस्तान)

हिन्दी अनुवाद

मौलाना मुहम्मद इमरान क़ासमी बिज्ञानवी एम. ए. (अ़लीग.)

मौहल्ला महमूद नगर, मुज़फ़्फ़र नगर (उ. प्र.)

फ़ोन न. 0131.2442408, 09456095608

जिल्द (2) सूरः आले इमरान ---- सूरः निसा

प्रकाशन वर्ष जून 2012

प्रकाशक

फ़रीद बुक डिपो (प्रा.) लि.

2158, एम. पी. स्ट्रीट, पटौदी हाऊस, दरिया गंज, नई दिल्ली-110002

بسم الله الرحمن الرحيم

وَاعْتَصِمُوا بِحَبْلِ اللّٰهِ جَمِيعًا وَلَا تَفَرَّقُوا

WA'A TASIMOO BIHAB LILLAHI JAMEE-'AN WA LAA TAFARRAQOO

समर्पित

◎ अल्लाह सुब्हानहू व तआ़ला के कलाम **क़ुरआन मजीद** के प्रथम व्याख्यापक, हादी-ए-आ़लम, आख़िरी पैग़म्बर, तमाम नबियों में अफ़ज़ल **हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम** के नाम, जिनका एक-एक क़ौल व अ़मल कलामे रब्बानी और मन्शा-ए-इलाही की अ़मली तफ़सीर था।

◎ **दारुल-उलूम देवबन्द** के नाम, जो क़ुरआन मजीद और उसकी तफ़सीर (हदीसे पाक) की अ़ज़ीमुश्शान ख़िदमत और दीनी रहनुमाई के सबब पूरी इस्लामी दुनिया में एक मिसाली संस्था है। जिसके इल्मी फ़ैज़ से मुस्तफ़ीद (लाभान्वित) होने के सबब इस नाचीज़ को इल्मी समझ और क़ुरआन मजीद की इस ख़िदमत की तौफ़ीक़ नसीब हुई।

◎ **उन तमाम नेक रूहों और हक़ के तलाश करने वालों** के नाम, जो हर तरह के पक्षपात से दूर रहकर और हर प्रकार की कठिनाईयों का सामना करके अपने असल मालिक व ख़ालिक़ के पैग़ाम को क़ुबूल करने वाले और दूसरों को कामयाबी व निजात के रास्ते पर लाने के लिये प्रयासरत हैं

मुहम्मद इमरान क़ासमी बिज्ञानवी

✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻

दिल की गहराईयों से शुक्रिया

⚙ मोहतरम जनाब अल-हाज मुहम्म नासिर ख़ाँ साहिब (मालिक फ़रीद बुक डिपो नई दिल्ली) का, जिनकी मुहब्बतों, इनायतों, क़द्रदानियों और मुझे अपने इदारे से जोड़े रखने के सबब क़ुरआन मजीद की यह अहम ख़िदमत अन्जाम पा सकी।

⚙ मेरे उन बच्चों का जिन्होंने इस तफ़सीर की तैयारी में मेरा भरपूर साथ दिया, तथा मेरे सहयोगियों, सलाहकारों, शुभ-चिन्तकों और हौसला बढ़ाने वाले हज़रात का, अल्लाह तआला इन सब हज़रात को अपनी तरफ़ से ख़ास जज़ा और बदला इनायत फ़रमाये। आमीन या रब्बल्-आ़लमीन।

मुहम्मद इमरान क़ासमी बिज्ञानवी

❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋❋

प्रकाशक के क़लम से

अल्लाह तआला का लाख-लाख शुक्र व एहसान है कि उसने मुझे और मेरे इदारे (**फ़रीद बुक डिपो नई दिल्ली**) को इस्लामी, दीनी और तारीख़ी किताबों के प्रकाशन के ज़रिये दीनी व दुनियावी उलूम की ख़िदमत की तौफ़ीक़ अ़ता फ़रमाई।

अल्हम्दु लिल्लाह हमारे इदारे से क़ुरआन पाक, हदीस मुबारक और दीनी विषयों पर बेशुमार किताबें शाया हो चुकी हैं। बल्कि अगर यह कहा जाये कि आज़ाद हिन्दुस्तान में हर इल्म व फ़न के अन्दर जिस क़द्र किताबें **फ़रीद बुक डिपो देहली** को प्रकाशित करने का सौभाग्य नसीब हुआ है उतना किसी और इदारे के हिस्से में नहीं आया तो यह बेजा न होगा। कोई इदारा फ़रीद बुक डिपो के मुक़ाबले में पेश नहीं किया जा सकता। यह सब कुछ अल्लाह के फ़ज़्ल व करम और उसकी इनायतों का फल है।

फ़रीद बुक डिपो देहली ने उर्दू, अ़रबी, फ़ारसी, गुजराती, हिन्दी और बंगाली अनेक भाषाओं में किताबें पेश करके एक नया रिकॉर्ड बनाया है। हिन्दी ज़बान में अनेक किताबें इदारे से शाया हो चुकी हैं। हिन्दी भाषा हमारी मुल्की ज़बान है। पढ़ने वालों की माँग और तलब देखते हुए तफ़सीरे क़ुरआन के उस अहम ज़ख़ीरे को हिन्दी ज़बान में लाने का फ़ैसला किया गया जो पिछले कई दशकों से इल्मी जगत में धूम मचाये हुए है। मेरी मुराद **तफ़सीर मआरिफ़ुल-क़ुरआन** से है। इस तफ़सीर के परिचय की आवश्यकता नहीं, दुनिया भर में यह एक मोतबर और विश्वसनीय तफ़सीर मानी जाती है।

मौलाना मुहम्मद इमरान क़ासमी बिज्ञानवी ने फ़रीद बुक डिपो के लिये बहुत सी मुफ़ीद और कारामद किताबों का हिन्दी में तर्जुमा किया है। हज़रत मौलाना मुफ़्ती मुहम्मद तक़ी उस्मानी के **इस्लाही ख़ुतबात** की 15 जिल्दें और **तफ़सीर तौज़ीहुल-क़ुरआन** उन्होंने हिन्दी में मुन्तक़िल की हैं जो इदारे से छपकर मक़बूल हो चुकी हैं। उन्हीं से यह काम करने का आग्रह किया गया जिसे उन्होंने क़ुबूल कर लिया और अब अल्हम्दु लिल्लाह यह शानदार तफ़सीर आपके हाथों में पहुँच रही है। हिन्दी ज़बान में क़ुरआनी ख़िदमत की यह अहम कड़ी आपके सामने है। उम्मीद है कि आपको पसन्द आयेगी और क़ुरआन पाक के पैग़ाम को समझने और उसको आ़म करने में एक अहम रोल अदा करेगी।

मैं अल्लाह करीम की बारगाह में दुआ़ करता हूँ कि वह इस ख़िदमत को क़ुबूल फ़रमाये और हमारे लिये इसे ज़ख़ीरा-ए-आख़िरत और रहमत व बरकत का सबब बनाये आमीन।

ख़ादिम-ए-क़ुरआन
मुहम्मद नासिर ख़ान
मैनेजिंग डायरेक्टर, फ़रीद बुक डिपो, देहली

अनुवादक की ओर से

الحمد لله رب العالمين. والصلوة والسلام علىٰ رسوله الكريم. وعلىٰ آله وصحبه اجمعين.

برحمتك ياارحم الراحمين.

तमाम तारीफ़ों की असल हक़दार अल्लाह तआ़ला की पाक ज़ात है जो तमाम जहानों की पालनहार है। वह बेहद मेहरबान और बहुत ही ज़्यादा रहम करने वाला है। और बेशुमार दुरूद व सलाम हों उस ज़ाते पाक पर जो अल्लाह तआ़ला की तमाम मख़्लूक़ में सब से बेहतर है, यानी हमारे आक़ा व सरदार हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम। और आपकी आल पर और आपके सहाबा किराम पर और आपके तमाम पैरोकारों पर।

अल्लाह करीम का बेहद फ़ज़्ल व करम है कि उसने मुझ नाचीज़ को अपने पाक कलाम की एक और ख़िदमत की तौफ़ीक़ बख़्शी। उसकी ज़ात तमाम ख़ूबियों, कमालात, तारीफ़ों और बन्दगी की हक़दार है।

इससे पहले सन् 2003 ईसवी में नाचीज़ ने **हकीमुल-उम्मत हज़रत मौलाना अशरफ़ अ़ली थानवी रह.** का तर्जुमा हिन्दी भाषा में पेश किया जिसको काफ़ी मक़बूलियत मिली, यह तर्जुमा इस्लामिक बुक सर्विस देहली ने प्रकाशित किया। उसके बाद **तफ़सीर इब्ने कसीर मुकम्मल** हिन्दी भाषा में पेश करने की सआ़दत नसीब हुई, जो रमज़ान (अगस्त 2011) में प्रकाशित होकर मन्ज़रे आ़म पर आ चुकी है। इसके अ़लावा **फ़रीद बुक डिपो** ही से मौजूदा ज़माने के मशहूर आ़लिम **शैख़ुल-इस्लाम हज़रत मौलाना मुफ़्ती मुहम्मद तक़ी उस्मानी** दामत बरकातुहुम की मुख़्तसर तफ़सीर **तौज़ीहुल-क़ुरआन** शाया होकर पाठकों तक पहुँच रही है।

उर्दू भाषा में जो मक़बूलियत क़ुरआनी तफ़सीरों में तफ़सीर मआ़रिफ़ुल-क़ुरआन के हिस्से में आयी शायद ही कोई तफ़सीर उस मक़ाम तक पहुँची हो। यह तफ़सीर हज़ारों की संख्या में हर साल छपती और पढ़ने वालों तक पहुँचती है, और यह सिलसिला तक़रीबन चालीस सालों से चल रहा है मगर आज तक कोई तफ़सीर इतनी मक़बूलियत हासिल नहीं कर सकी।

हिन्द महाद्वीप की जानी-मानी इल्मी शख़्सियत **हज़रत मौलाना मुफ़्ती मुहम्मद शफ़ी** साहिब देवबन्दी (मुफ़्ती-ए-आज़म पाकिस्तान) की यह तफ़सीर क़ुरआनी तफ़सीरों में एक बड़ा क़ीमती सरमाया है। दिल चाहता था कि हिन्दी जानने वाले हज़रात तक भी यह उलूम और क़ुरआनी मतालिब पहुँचें मगर काम इतना बड़ा और अहम था कि शुरू करने की हिम्मत न होती थी।

जो हज़रात इल्मी काम करते हैं उनको मालूम है कि एक ज़बान से दूसरी ज़बान में तर्जुमा करना कितना मुश्किल काम है, और सही बात तो यह है कि इस काम का पूरा हक़ अदा होना बहुत ही मुश्किल है। फिर भी मैंने कोशिश की है कि इबारत का मफ़्हूम व मतलब तर्जुमे में उतर आये। कहीं-कहीं ब्रेकिट बढ़ाकर भी इबारत को आसान बनाने की कोशिश की है। तर्जुमे में जहाँ तक संभव हुआ कोई छेड़छाड़ नहीं की गयी क्योंकि उलेमा-ए-मुहक़्क़िक़ीन ने इस तर्जुमे को इल्हामी तर्जुमा क़रार

दिया है। जहाँ बहुत ही ज़रूरी महसूस हुआ वहाँ आसानी के लिये कोई लफ़्ज़ बदला गया या ब्रैकिट के अन्दर मायनों को लिख दिया गया।

अ़रबी और फ़ारसी के शे'रों का मफ़्हूम अगर मुसन्निफ़ की इबारत में आ गया है और हिन्दी पाठकों के लिये ज़रूरी न समझा तो कुछ अश्आ़र को निकाल दिया गया है, और जहाँ ज़रूरत समझी वहाँ अ़रबी, फ़ारसी शे'रों का तर्जुमा लिख दिया है। ऐसे मौक़ों पर अहक़र ने उस तर्जुमे के अपनी तरफ़ से होने की वज़ाहत कर दी है ताकि अगर तर्जुमा करने में ग़लती हुई हो तो उसकी निस्बत साहिबे तफ़सीर की तरफ़ न हो बल्कि उसे मुझ नाचीज़ की इल्मी कोताही गरदाना जाये।

हल्ले लुग़ात और किराअतों का इख़्तिलाफ़ चूँकि इल्मे तफ़सीर पर निगाह न रखने वाले, क़िराअतों के फ़न से ना-आशना और अ़रबी ग्रामर से नावाक़िफ़ शख़्स एक हिन्दी जानने वाले के लिये कोई फ़ायदे की चीज़ नहीं, बल्कि बहुत सी बार कम-इल्मी के सबब इससे उलझन पैदा हो जाती है लिहाज़ा तफ़सीर के इस हिस्से को हिन्दी अनुवाद में शामिल नहीं किया गया।

हिन्दी जानने वाले हज़रात के लिये यह हिन्दी तफ़सीर एक नायाब तोहफ़ा है। अगर ख़ुद अपने मुताले से वह इसे पूरी तरह न समझ सकें तब भी कम से कम इतना मौक़ा तो है कि किसी आ़लिम से सबक़न् सबक़न् इस तफ़सीर को पढ़कर लाभान्वित हो सकते हैं। जिस तरह उर्दू तफ़सीरें भी सिर्फ़ उर्दू पढ़ लेने से पूरी तरह समझ में नहीं आतीं बल्कि बहुत सी जगह किसी आ़लिम से रुजू करके पेश आने वाली मुश्किल को हल किया जाता है, इसी तरह अगर हिन्दी जानने वाले हज़रात पूरी तरह इस तफ़सीर से फ़ायदा न उठा पायें तो हिम्मत न हारें, हिन्दी की इस तफ़सीर के ज़रिये उन्हें क़ुरआन पाक के तालिब इल्म बनने का मौक़ा तो हाथ आ ही जायेगा। जो बात समझ में न आये वह किसी मोतबर आ़लिम से मालूम कर लें और इस तफ़सीरी तोहफ़े से अपनी इल्मी प्यास बुझायें। अल्लाह का शुक्र भेजिये कि आप तफ़सीर के तालिब इल्म बनने के अहल हो गये वरना उर्दू न जानने की हालत में तो आप इस मौक़े से भी मेहरूम थे।

फ़रीद बुक डिपो से मेरी वाबस्तगी पच्चीस सालों से है। इस दौरान बहुत सी किताबें लिखने, प्रूफ़ रीडिंग करने और हिन्दी में तर्जुमा करने का मुझ नाचीज़ को मौक़ा मिला है। इदारे के संस्थापक **जनाब मुहम्मद फ़रीद ख़ाँ मरहूम** से लेकर मौजूदा मालिक और मैनेजिंग डायरेक्टर **जनाब अल-हाज मुहम्मद नासिर ख़ाँ** तक सब ही की ख़ास इनायतें मुझ नाचीज़ पर रही हैं। मैंने इस इदारे के लिये बहुत सी किताबों का हिन्दी तर्जुमा किया है, हज़रत **मौलाना क़ारी मुहम्मद तैयब** साहिब मोहतमिम दारुल-उलूम देवबन्द की किताबों और मज़ामीन पर किया हुआ मेरा काम सात जिल्दों में इसी इदारे से प्रकाशित हुआ है, इसके अ़लावा **"मालूमात का समन्दर"** और **"तज़किरा अ़ल्लामा मुहम्मद इब्राहीम बलियावी"** वग़ैरह किताबें भी यहीं से शाया हुई हैं। जो किताबें मैंने उर्दू से हिन्दी में इस इदारे के लिये की हैं उनकी तायदाद भी पचास से अधिक है, इसी सिलसिले में एक और कड़ी यह जुड़ने जा रही है।

इस तफ़सीर को उर्दू से मिलती-जुलती हिन्दी भाषा (यानी हिन्दुस्तानी ज़बान) में पेश करने की कोशिश की गयी, हिन्दी के संस्कृत युक्त अलफ़ाज़ से परहेज़ किया गया है। कोशिश यह की है कि मजमूई तौर पर मज़मून का मफ़्हूम व मतलब समझ में आ जाये। फिर भी अगर कोई लफ़्ज़ या

किसी जगह का कोई मज़मून समझ में न आये तो उसको नोट करके किसी आ़लिम से मालूम कर लेना चाहिये।

तफ़सीर की यह दूसरी जिल्द आपके हाथों में है इन्शा-अल्लाह तआ़ला बाक़ी की जिल्दें भी बहुत जल्द आपकी ख़िदमत में पेश की जायेंगी। इस तफ़सीर की तैयारी में कितनी मेहनत से काम लिया गया है इसका कुछ अन्दाज़ा उसी वक़्त हो सकता है जबकि उर्दू तफ़सीर को सामने रखकर मुक़ाबला किया जाये। तब मालूम होगा कि पढ़ने वालों के लिये इसे कितना आसान करने की कोशिश की गयी है। अल्लाह तआ़ला हमारी इस मेहनत को क़ुबूल फ़रमाये और अपने बन्दों को इससे ज़्यादा से ज़्यादा फ़ायदा उठाने की तौफ़ीक़ अ़ता फ़रमाये आमीन।

इस तफ़सीर से फ़ायदा उठाने वालों से आ़जिज़ी और विनम्रता के साथ दरख़्वास्त है कि वे मुझ नाचीज़ के ईमान पर ख़ात्मे और दुनिया व आख़िरत में कामयाबी के लिये दुआ़ फ़रमायें। अल्लाह करीम इस ख़िदमत को मेरे माँ-बाप और उस्ताज़ों के लिये भी मग़फ़िरत का ज़रिया बनाये, आमीन।

आख़िर में बहुत ही आ़जिज़ी के साथ अपनी कम-इल्मी और सलाहियत के अभाव का एतिराफ़ करते हुए यह अ़र्ज़ है कि बेऐब अल्लाह तआ़ला की ज़ात है। कोई भी इनसानी कोशिश ऐसी नहीं जिसके बारे में सौ फ़ीसद यक़ीन के साथ कहा जा सके कि उसके अन्दर कोई ख़ामी और कमी नहीं रह गयी है। मैंने भी यह एक मामूली कोशिश की है, अगर मुझे इसमें कोई कामयाबी मिली है तो यह महज़ अल्लाह तआ़ला का फ़ज़्ल व करम, उसके पाक नबी हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के ज़रिये लाये हुए पैग़ाम (क़ुरआन व हदीस) की रोशनी का फ़ैज़, अपनी मादरे इल्मी दारुल-उलूम देवबन्द की निस्बत और मेरे असातिज़ा हज़रात की मेहनत का फल है, मुझ नाचीज़ का इसमें कोई कमाल नहीं। हाँ इन इल्मी जवाहर-पारों को समेटने, तरतीब देने और पेश करने में जो ग़लती, ख़ामी और कोताही हुई हो वह यक़ीनन मेरी कम-इल्मी और नाक़िस सलाहियत के सबब है। अहले नज़र हज़रात से गुज़ारिश है कि अपनी राय, मश्विरों और नज़र में आने वाली ग़लतियों व कोताहियों से मुत्तला फ़रमायें ताकि आईन्दा किये जाने वाले इल्मी कामों में उनसे लाभ उठाया जा सके। वस्सलाम

तालिबे दुआ़

मुहम्मद इमरान क़ासमी बिज्ञानवी

79, महमूद नगर, गली नम्बर 6, मुज़फ़्फ़र नगर (उ. प्र.) 251001

25 मई 2012

फ़ोन:- 0131-2442408, 09456095608, 09012122788

E-mail: imranqasmialig@yahoo.com

एक अहम बात

क़ुरआन मजीद के मतन को अ़रबी के अ़लावा हिन्दी या किसी दूसरी भाषा के रस्मुलख़त (लिपि) में रुपान्तर करने पर अक्सर उलेमा की राय इसके विरोध में है। कुछ उलेमा का ख़्याल है कि इस तरह करने से क़ुरआन मजीद के हर्फ़ों की अदायगी में तहरीफ़ (कमी-बेशी और रद्दोबदल) हो जाती है और उनको भय (डर) है कि जिस तरह इन्जील और तौरात तहरीफ़ का शिकार हो गईं वैसे ही ख़ुदा न करे इसका भी वही हाल हो। यह तो ख़ैर नामुम्किन है, इसकी हिफ़ाज़त का वायदा अल्लाह तआ़ला ने ख़ुद किया है और करोड़ों हाफ़िज़ों को क़ुरआन मजीद ज़बानी याद है।

इस सिलसिले में नाचीज़ **मुहम्मद इमरान क़ासमी बिज्ञानवी** (इस तफ़सीर का हिन्दी अनुवादक) अ़र्ज़ करता है कि हक़ीक़त यह है कि अ़रबी रस्मुलख़त के अ़लावा दूसरी किसी भी भाषा में क़ुरआन मजीद को क़तई तौर पर सौ फ़ीसद सही नहीं पढ़ा जा सकता। इसलिए कि हर्फ़ों की बनावट के एतिबार से भी किसी दूसरी भाषा में यह गुंजाईश नहीं कि वह अ़रबी ज़बान के तमाम हुरूफ़ का मुतबादिल (विकल्प) पेश कर सके। फिर अगर किसी तरह कोई निशानी मुक़र्रर करके इस कमी को पूरा करने की कोशिश भी की जाए तो **'मख़ारिजे हुरूफ़'** यानी हुरूफ़ के निकालने का जो तरीक़ा, मक़ाम और इल्म है वह उस वैकल्पिक तरीक़े से हासिल नहीं किया जा सकता। जबकि यह सब को मालूम है कि सिर्फ़ अलफ़ाज़ के निकालने में फ़र्क़ होने से अ़रबी ज़बान में मायने बदल जाते हैं। इसलिये अ़रबी मतन की जो हिन्दी दी गयी है उसको सिर्फ़ यह समझें कि वह आपके अन्दर अ़रबी क़ुरआन पढ़ने का शौक़ पैदा करने के लिये है। तिलावत के लिये अ़रबी ही पढ़िये और उसी को सीखिये। वरना हो सकता है कि किसी जगह ग़लत उच्चारण के सबब पढ़ने में सवाब के बजाय अ़ज़ाब के हक़दार न बन जायें।

मैंने अपनी पूरी कोशिश की है कि जितना मुझसे हो सके इस तफ़सीर को आसान बनाऊँ मगर फिर भी बहुत से मक़ामात पर ऐसे इल्मी मज़ामीन आये हैं कि उनको पूरी तरह आसान नहीं किया जा सका, मगर ऐसी जगहें बहुत कम हैं, उनके सबब इस अहम और क़ीमती सरमाये से मुँह नहीं मोड़ा जा सकता। अगर कोई मक़ाम समझ में न आये तो उस पर निशान लगाकर बाद में किसी आ़लिम से मालूम कर लें। तफ़सीर पढ़ने के लिये यक्सूई और इत्मीनान का एक वक़्त मुक़र्रर करना चाहिये, चाहे वह थोड़ा सा ही हो। अगर इस लगन के साथ इसका मुताला जारी रखा जायेगा तो उम्मीद है कि आप इस क़ीमती

ख़ज़ाने से इल्म व मालूमात का एक बड़ा हिस्सा हासिल कर सकेंगे। यह बात एक बार फिर अ़र्ज़ किये देता हूँ कि असल मतन को अ़रबी ही में पढ़िये तभी आप उसका किसी क़द्र हक़ अदा कर सकेंगे। यह ख़ालिके कायनात का कलाम है अगर इसको सीखने में थोड़ा वक़्त और पैसा भी ख़र्च हो जाये तो इस सौदे को सस्ता और लाभदायक समझिये। कल जब आख़िरत का आ़लम सामने होगा और क़ुरआन पाक पढ़ने वालों को इनामात व सम्मान से नवाज़ा जायेगा तो मालूम होगा कि अगर पूरी दुनिया की दौलत और तमाम उम्र ख़र्च करके भी इसको हासिल कर लिया जाता तो भी इसकी क़ीमत अदा न हो पाती।

हमने रुकूअ़, पाव, आधा, तीन पाव और सज्दे के निशानात मुक़र्रर किये हैं इनको ध्यान से देख लीजिये।

रुकूअ़	❁	पाव	❖
आधा	●	तीन पाव	▲
सज्दा	⭘		

मुहम्मद इमरान क़ासमी बिज्ञानवी (मुज़फ़्फ़र नगर उ. प्र.)

OOOOOOOOOOOOOOOOOOOOOOOOOOO

बिस्मिल्लाहिर्रह्मानिर्रहीम

पेश-लफ़्ज़

वालिद माजिद हज़रत मौलाना मुफ़्ती मुहम्मद शफ़ी साहिब मद्द ज़िल्लुहुम की तफ़सीर **'मआरिफ़ुल्-क़ुरआन'** को अल्लाह तआ़ला ने अ़वाम व ख़्वास में असाधारण मक़बूलियत अ़ता फ़रमाई, और जिल्दे अव्वल का पहला संस्करण हाथों हाथ ख़त्म हो गया। दूसरे संस्करण की छपाई के वक़्त हज़रत मुसन्निफ़ मद्द ज़िल्लुहुम ने पहली जिल्द पर मुकम्मल तौर से दोबारा नज़र डाली और उसमें काफ़ी तरमीम व इज़ाफ़ा अ़मल में आया। इसी के साथ हज़रते वाला की इच्छा थी कि दूसरी बार छपने के वक़्त पहली जिल्द के शुरू में क़ुरआनी उलूम और उसूले तफ़सीर से मुताल्लिक़ एक मुख़्तसर मुक़द्दिमा भी तहरीर फ़रमायें, ताकि तफ़सीर के मुताले (अध्ययन) से पहले पढ़ने वाले हज़रात उन ज़रूरी मालूमात से लाभान्वित हो सकें, लेकिन लगातार बीमारी और कमज़ोरी की बिना पर हज़रत के लिये बज़ाते ख़ुद मुक़द्दिमे का लिखना और तैयार करना मुश्किल था, चुनाँचे हज़रते वाला ने यह ज़िम्मेदारी अहक़र के सुपुर्द फ़रमाई।

अहक़र ने हुक्म के पालन में और इस सौभाग्य को प्राप्त करने के लिये यह काम शुरू किया तो यह मुक़द्दिमा बहुत लम्बा हो गया, और क़ुरआनी उलूम के विषय पर ख़ास मुफ़स्सल किताब की सूरत बन गई। इस पूरी किताब को 'मआरिफ़ुल-क़ुरआन' के शुरू में बतौर मुक़द्दिमा शामिल करना मुश्किल था, इसलिये हज़रत वालिद साहिब के इशारे और राय से अहक़र ने इस मुफ़स्सल किताब का ख़ुलासा तैयार किया और सिर्फ़ वे चीज़ें बाक़ी रखीं जिनका मुताला तफ़सीर मआरिफ़ुल-क़ुरआन के मुताला करने वाले के लिये ज़रूरी था, और जो एक आ़म पाठक के लिये दिलचस्पी का सबब हो सकती थी। उस बड़े मज़मून का यह ख़ुलासा 'मआरिफ़ुल-क़ुरआन' पहली जिल्द के इस संस्करण में मुक़द्दिमे के तौर पर शामिल किया जा रहा है, अल्लाह तआ़ला इसे मुसलमानों के लिये नाफ़े और मुफ़ीद (लाभदायक) बनाये और इस नाचीज़ के लिये आख़िरत का ज़ख़ीरा साबित हो।

इन विषयों पर तफ़सीली इल्मी मबाहिस (बहसें) अहक़र की उस विस्तृत और तफ़सीली किताब में मिल सकेंगे जो इन्शा-अल्लाह तआ़ला जल्द ही एक मुस्तक़िल किताब की सूरत में प्रकाशित होगी (अब यह किताब 'उलूमुल-क़ुरआन' के नाम से प्रकाशित हो चुकी है)। लिहाज़ा जो हज़रात तहक़ीक़ और तफ़सील के तालिब हों वे उस किताब की तरफ़ रुजू फ़रमायें। व मा तौफ़ीक़ी इल्ला बिल्लाह, अ़लैहि तवक्कल्तु व इलैहि उनीब।

अहक़र

मुहम्मद तक़ी उस्मानी

दारुल-उलूम कोरंगी, कराची- 14

23 रबीउल-अव्वल 1394 हिजरी

मुख़्तसर विषय-सूची

मआ़रिफ़ुल-क़ुरआन जिल्द नम्बर (2)

उनवान	पेज

उनवान	पेज

उनवान	पेज

उनवान	पेज

✪✪✪✪✪✪✪✪✪✪✪✪✪✪✪✪✪✪✪✪

* सूरः आले इमरान *

यह सूरत मदनी है। इसमें 200 आयतें और 20 रुकूअ़ है।

Derived from the works of Emin Barin [12]
" Lā ilāha illā Allāh "

सूरः आले इमरान

सूरः आले इमरान मदीना में नाज़िल हुई। इसमें 200 आयतें और 20 रुकूअ़ हैं।
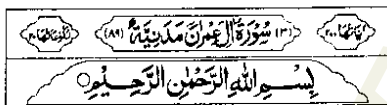
الٓمٓ ۝ اللّٰهُ لَآ اِلٰهَ اِلَّا هُوَ الْحَيُّ الْقَيُّوْمُ ۝ نَزَّلَ عَلَيْكَ الْكِتٰبَ بِالْحَقِّ مُصَدِّقًا لِّمَا بَيْنَ يَدَيْهِ وَاَنْزَلَ التَّوْرٰىةَ وَالْاِنْجِيْلَ ۝ مِنْ قَبْلُ هُدًى لِّلنَّاسِ وَاَنْزَلَ الْفُرْقَانَ ۝ اِنَّ الَّذِيْنَ كَفَرُوْا بِاٰيٰتِ اللّٰهِ لَهُمْ عَذَابٌ شَدِيْدٌ ۗ وَاللّٰهُ عَزِيْزٌ ذُو انْتِقَامٍ ۝ اِنَّ اللّٰهَ لَا يَخْفٰى عَلَيْهِ شَيْءٌ فِي الْاَرْضِ وَلَا فِي السَّمَآءِ ۝ هُوَ الَّذِيْ يُصَوِّرُكُمْ فِي الْاَرْحَامِ كَيْفَ يَشَآءُ ۗ لَآ اِلٰهَ اِلَّا هُوَ الْعَزِيْزُ الْحَكِيْمُ ۝

बिस्मिल्लाहिर्रह्मानिर्रहीम

शुरू अल्लाह के नाम से जो बेहद मेहरबान निहायत रहम वाला है।

अलिफ़्-लाम्-मीम् (1) अल्लाहु ला इला-ह इल्ला हुवल् हय्युल्-क़य्यूम (2) नज़्ज़-ल अलैकल्-किता-ब बिल्-हक़्क़ि मुसद्दिक़ल्लिमा बै-न यदैहि व अन्ज़लत्तौरा-त वल्-इन्जील (3) मिन् क़ब्लु हुदल्-लिन्नासि व अन्ज़लल्-फ़ुर्क़ा-न, इन्नल्लज़ी-न क-फ़रू बिआयातिल्लाहि लहुम् अ़ज़ाबुन् शदीदुन्, वल्लाहु अ़ज़ीज़ुन् ज़ुन्तिक़ाम (4) इन्नल्ला-ह ला यख़्फ़ा अ़लैहि शैउन् फ़िल्अर्ज़ि व ला फ़िस्समा-इ (5) हुवल्लज़ी

अलिफ़्-लाम्-मीम्। (1) अल्लाह, उसके सिवा कोई माबूद नहीं। ज़िन्दा है, सब का थामने वाला। (2) उतारी तुझ पर किताब सच्ची, तस्दीक़ करती है अगली (यानी पहली) किताबों की, और उतारा तौरात और इन्जील को (3) इस किताब से पहले लोगों की हिदायत के लिये और उतारे फ़ैसले। बेशक जो मुन्किर हुए अल्लाह की आयतों से उनके वास्ते सख़्त अ़ज़ाब है। और अल्लाह ज़बरदस्त है, बदला लेने वाला। (4) अल्लाह पर छुपी नहीं कोई चीज़ ज़मीन में और न आसमान में। (5) वही तुम्हारा नक़्शा

युसव्विरुकुम् फ़िल्-अर्हामि कै-फ़ यशा-उ, ला इला-ह इल्ला हुवल्-अज़ीज़ुल्-हकीम (6)	बनाता है माँ के पेट में जिस तरह चाहे, किसी की बन्दगी नहीं उसके सिवा, ज़बरदस्त है हिक्मत वाला। (6)

इन आयतों का पीछे से ताल्लुक़

यह क़ुरआने करीम की तीसरी सूरत (आले इमरान) का पहला रुकूअ़ है। पहली सूरत यानी सूरः फ़ातिहा जो पूरे क़ुरआन का ख़ुलासा (निचोड़) है उसके आख़िर में 'सिराते-मुस्तक़ीम' (सीधे रास्ते) की हिदायत तलब की गयी थी। उसके बाद सूरः ब-क़रह 'अलिफ़्-लाम्-मीम् ज़ालिकल् किताबु' से शुरू करके गोया इस तरफ़ इशारा कर दिया गया कि सूरः फ़ातिहा में जो सीधे रास्ते की दुआ़ की गयी है वह अल्लाह तआ़ला ने क़ुबूल करके यह क़ुरआन भेज दिया जो सिराते-मुस्तक़ीम की हिदायत करता है। फिर सूरः ब-क़रह में शरीअ़त के अक्सर अहकाम का मुख़्तसर और तफ़सीली तौर पर बयान आया, जिसके तहत में जगह-जगह काफ़िरों की मुख़ालफ़त और उनसे मुक़ाबले का भी ज़िक्र आया। आख़िर में उसको 'फ़न्सुरना अ़लल्-क़ौमिल् काफ़िरीन' के दुआ़ वाले जुमले पर ख़त्म किया गया था, जिसका हासिल था काफ़िरों पर ग़लबा पाने की दुआ़। इसकी मुनासबत से सूरः आले इमरान में आ़म तौर पर काफ़िरों के साथ मामलात और हाथ और ज़बान से उनके मुक़ाबले में जिहाद का बयान है, जो गोया 'फ़न्सुरना अ़लल्-क़ौमिल् काफ़िरीन' की वज़ाहत व तफ़सील है।

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

सूरः आले इमरान की शुरू की पाँच आयतों में उस अ़ज़ीम (बड़े और अहम) मक़सद का ज़िक्र है जिसकी वजह से कुफ़्र व इस्लाम और काफ़िर व मोमिन की तक़सीम और आपसी मुक़ाबला शुरू होता है, और वह अल्लाह जल्ल शानुहू की तौहीद (एक मानना) है। उसके मानने वाले मोमिन और न मानने वाले काफ़िर व ग़ैर-मुस्लिम कहलाते हैं। इस रुकूअ़ की पहली आयत में तौहीद की अ़क़्ली दलील बयान हुई है और दूसरी आयत में नक़ली (किताबी और सनद वाली) दलील बयान फ़रमाई गई है, उसके बाद की आयत में काफ़िरों के कुछ शुब्हात (शक और एतिराज़ों) का जवाब है।

पहली आयत में इरशाद है:

الٓمٓ ۝ اللّٰهُ لَآ اِلٰهَ اِلَّا هُوَ ۙ الْحَیُّ الْقَیُّوْمُ ۝

'ला इला-ह इल्ला हुवल्-हय्युल्-क़य्यूमु' इसमें लफ़्ज़ 'अलिफ़्-लाम्-मीम्' तो 'मुतशाबिहाते क़ुरआनिया' में से है, जिसके मायने अल्लाह तआ़ला और उसके रसूल सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के बीच एक भेद है, जिसकी तफ़सील इस रुकूअ़ की आख़िरी आयतों में आ रही है। उसके बादः

اَللّٰهُ لَآ اِلٰهَ اِلَّا هُوَ

'अल्लाहु ला इला-ह इल्ला हु-व' में तौहीद (अल्लाह के एक होने) के मज़मून को एक दावे की सूरत में पेश किया गया है। मायने यह हैं कि अल्लाह तआ़ला ऐसे हैं कि उनके सिवा कोई माबूद बनाने के क़ाबिल नहीं।

इसके बाद लफ़्ज़ः

اَلْحَیُّ الْقَیُّوْمُ

'अल्-हय्युल् क़य्यूमु' से तौहीद की अ़क़्ली दलील बयान की गई। जिसकी तफ़सील यह है कि इबादत नाम है अपने आपको किसी के सामने पूरी तरह बेबस व ज़लील करके पेश करने का, और इसका तक़ाज़ा यह है कि जिसकी इबादत की जाए वह इ़ज़्ज़त व ताक़त के इन्तिहाई मक़ाम (शिखर) का मालिक और हर एतिबार से कामिल हो। और यह ज़ाहिर है कि जो चीज़ ख़ुद अपने वजूद को क़ायम न रख सके, अपने वजूद और उसके बाक़ी रखने में दूसरे की मोहताज हो उसका इ़ज़्ज़त व ताक़त में क्या मक़ाम हो सकता है। इसलिये बिल्कुल स्पष्ट हो गया कि दुनिया में जितनी चीज़ें हैं, न ख़ुद अपने वजूद की मालिक हैं और न ही अपने वजूद को क़ायम रख सकती हैं। चाहे वो पत्थर के बनाये हुए बुत हों या पानी और पेड़ हों या फ़रिश्ते और पैग़म्बर हों, इनमें से कोई भी इबादत के लायक़ नहीं। इबादत के लायक़ वही ज़ात हो सकती है जो हमेशा से ज़िन्दा मौजूद है और हमेशा ज़िन्दा व क़ायम रहेगी, और वह सिर्फ़ अल्लाह जल्ल शानुहू की ज़ात है, उसके सिवा कोई इबादत के लायक़ नहीं।

इसके बाद दूसरी आयत में तौहीद की नक़ली (सनदी व किताबी) दलील बयान फ़रमाई गई। इरशाद हैः

نَزَّلَ عَلَيْكَ الْكِتٰبَ بِالْحَقِّ مُصَدِّقًا لِّمَا بَيْنَ يَدَيْهِ وَاَنْزَلَ التَّوْرٰةَ وَالْاِنْجِيْلَ مِنْ قَبْلُ هُدًى لِّلنَّاسِ وَاَنْزَلَ الْفُرْقَانَ.

जिसका ख़ुलासा यह है कि अल्लाह जल्ल शानुहू की तौहीद का मज़मून जो क़ुरआन ने बयान किया है यह कुछ क़ुरआन की या पैग़म्बरे इस्लाम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की ख़ुसूसियत नहीं, बल्कि इससे पहले भी तौरात व इन्जील वग़ैरह किताबें और अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम अल्लाह तआ़ला ने भेजे हैं उन सब का यही दावा और यही कलिमा था, क़ुरआन मजीद ने आकर उन सब की तस्दीक़ की है, कोई नया दावा पेश नहीं किया, जिसके समझने या मानने में लोगों को कोई उलझन हो।

आख़िरी दो आयतों में तौहीद (अल्लाह के एक माबूद होने) की दलील को हक़ तआ़ला की सिफ़तों इल्म व क़ुदरत के बयान से पूरा किया गया है, कि जो ज़ात हमेशा से हर चीज़ और हर बात का पूरा इल्म रखने वाली है और जिसकी क़ुदरत हर चीज़ पर हावी (छाई हुई) है, वही इसकी हक़दार है कि उसकी इबादत की जाये, अधूरे इल्म और सीमित क़ुदरत वाले को यह मक़ाम हासिल नहीं हो सकता।

ज़िक्र हुई आयतों की मुख़्तसर तफ़सीर यह हैः

अल्लाह तआ़ला ऐसे हैं कि उनके सिवा कोई माबूद बनाने के क़ाबिल नहीं, और वह ज़िन्दा (हमेशा रहने वाले) हैं, सब चीज़ों के संभालने वाले हैं। अल्लाह तआ़ला ने आप (सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम) के पास क़ुरआन भेजा है हक़ के साथ, इस कैफ़ियत से कि वह तस्दीक़ करता है उन (आसमानी) किताबों की जो उससे पहले नाज़िल हो चुकी हैं, और (इसी तरह) भेजा था तौरात और इन्जील को इससे पहले लोगों की हिदायत के वास्ते (और इसी से क़ुरआन का हिदायत होना भी लाज़िम आ गया, क्योंकि हिदायत की पुष्टि करने वाला भी हिदायत है) और अल्लाह तआ़ला ने (नबियों की तस्दीक़ के वास्ते) भेजे मोजिज़े, बेशक जो लोग इनकारी हैं अल्लाह की (उन) आयतों के (जो तौहीद पर दलालत करती हैं) उनके लिए सख़्त सज़ा है, और अल्लाह तआ़ला ग़लबे (और क़ुदरत) वाले हैं (कि बदला ले सकते हैं और) बदला लेने वाले (भी) हैं। बेशक अल्लाह तआ़ला से कोई चीज़ छुपी हुई नहीं है, (न कोई चीज़) ज़मीन में और न (कोई चीज़) आसमान में (पस उनका इल्म भी निहायत कामिल है)। वह ऐसी (पाक) ज़ात है कि तुम्हारी सूरत (व शक्ल) बनाता है रहमों "यानी माँ के पेटों" में, जिस तरह चाहता है। (किसी की कैसी सूरत और किसी की कैसी सूरत। पस उनकी क़ुदरत भी कामिल है, ज़िन्दगी और क़ायम रखना और इल्म और क़ुदरत जो अहम और मुख्य सिफ़ात में से हैं उनमें कामिल तौर पर किसी दूसरे की शिर्कत के बग़ैर मौजूद हैं, जिससे साबित हुआ कि) कोई इबादत के लायक़ नहीं सिवाय उस (पाक ज़ात) के, (और) वह ग़लबे वाले हैं (तौहीद का इनकार करने वाले से बदला ले सकते हैं लेकिन) हिक्मत वाले (भी) हैं (कि मस्लेहत के सबब दुनिया में ढील दे रखी है)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

तौहीद की तरफ़ दावत तमाम अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम का अ़मल रहा है

दूसरी आयत में जो नक़ली (किताबी व सनदी) दलील तौहीद की पेश गई है इसका ख़ुलासा यह है कि जिस बात पर बहुत से इनसान मुत्तफ़िक़ (सहमत) हों ख़ास तौर पर जबकि वे विभिन्न मुल्कों के बाशिन्दे और अलग-अलग ज़मानों में पैदा हुए हों, और बीच में सैंकड़ों हज़ारों साल का फ़ासला हो, और एक की बात दूसरे तक पहुँचने का कोई ज़रिया भी नहीं, इसके बावजूद जो उठता है वही एक बात कहता है जो पहले लोगों ने कही थी और सब के सब एक ही बात और एक ही अ़क़ीदे के पाबन्द होते हैं तो फ़ितरत उसके क़ुबूल करने पर मजबूर होती है। जैसे अल्लाह तआ़ला का वजूद और उसकी तौहीद (एक होने) का मज़मून इनसानों में सब से पहले हज़रत आदम अ़लैहिस्सलाम लेकर आये और उनके बाद उनकी औलाद में तो बराबर इस बात का चलना कुछ बईद नहीं था लेकिन लम्बा ज़माना गुज़र जाने और औलादे आदम के वे तमाम तरीक़े बदल जाने के बाद फिर हज़रत नूह अ़लैहिस्सलाम आते हैं, उस चीज़ की दावत देते हैं जिसकी तरफ़ आदम अ़लैहिस्सलाम ने लोगों को बुलाया था, उनके लम्बा ज़माना गुज़रने

के बाद हज़रत इब्राहीम, हज़रत इस्माईल, हज़रत इस्हाक़ और हज़रत याक़ूब अ़लैहिमुस्सलाम मुल्के इराक़ व शाम में पैदा होते हैं और ठीक वही दावत लेकर उठते हैं। फिर हज़रत मूसा और हज़रत हारून अ़लैहिमस्सलाम और उनके सिलसिले के अम्बिया आते हैं और सब के सब वही एक कलिमा-ए-तौहीद बोलते हैं, और वही दावत देते हैं। उन पर एक लम्बा ज़माना गुज़र जाने के बाद हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम वही दावत लेकर उठते हैं और आख़िर में तमाम नबियों के सरदार सैयदुना मुहम्मद मुस्तफ़ा सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम वही दावत लेकर तशरीफ़ लाते हैं।

अब अगर एक ख़ाली ज़ेहन इनसान जिसको इस्लाम और तौहीद की दावत से कोई बुग़ज़ और बैर न हो, सादगी के साथ ज़रा इस सिलसिले पर नज़र डाले कि आदम अ़लैहिस्सलाम से लेकर ख़ातिमुल-अम्बिया सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के ज़माने तक एक लाख चौबीस हज़ार अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम मुख़्तलिफ़ (विभिन्न) ज़मानों में, मुख़्तलिफ़ भाषाओं में, मुख़्तलिफ़ मुल्कों में पैदा हुए और सब के सब यही कहते और बतलाते चले आये, अक्सर एक को दूसरे के साथ मिलने का भी इत्तिफ़ाक़ नहीं हुआ, किताबें लिखने और पत्राचार का भी दौर न था, कि एक पैग़म्बर को दूसरे पैग़म्बर की किताबें और तहरीरें मिल जाती हों, उनको देखकर वह उस दावत को अपना लेते हों, बल्कि उन्हीं में हर एक दूसरे से बहुत ज़मानों के बाद पैदा होता है, उसको दुनिया के असबाब के तहत पिछले अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम की कोई ख़बर नहीं होती, अलबत्ता वे अल्लाह तआ़ला की तरफ़ से वही पाकर उन सब के हालात व कैफ़ियात से बाख़बर (अवगत) हो जाता है और ख़ुदा तआ़ला ही की तरफ़ से उसको इस दावत के लिये खड़ा किया जाता है।

अब कोई आदमी ज़रा सा इन्साफ़ के साथ ग़ौर करे कि एक लाख चौबीस हज़ार इनसान मुख़्तलिफ़ (विभिन्न और अलग-अलग) ज़मानों और मुख़्तलिफ़ मुल्कों में एक ही बात को बयान करें तो इससे निगाह हटाकर कि बयान करने वाले भरोसेमन्द और मोतबर लोग हैं या नहीं, इतनी बड़ी और विशाल जमाअ़त का एक ही बात पर मुत्तफ़िक़ (सहमत) होना एक इनसान के लिये इस बात की तस्दीक़ (पुष्टि) के वास्ते काफ़ी हो जाता है, और जब अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम की ज़ाती ख़ुसूसियात और उनकी सच्चाई व अ़दल के अत्यन्त बुलन्द मेयार पर नज़र डाली जाये तो एक इनसान यह यक़ीन किये बग़ैर नहीं रह सकता कि उनका कलिमा सही और उनकी दावत हक़ और दुनिया व आख़िरत की कामयाबी है।

शुरू की दो आ़यतों में जो तौहीद का मज़मून इरशाद फ़रमाया गया उसके मुताल्लिक़ हदीस की रिवायतों में है कि कुछ ईसाई लोग नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की ख़िदमत में हाज़िर हुए, उनसे मज़हबी गुफ़्तगू जारी हुई। हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने अल्लाह जल्ल शानुहू की तौहीद के सुबूत में यही दो दलीलें अल्लाह के हुक्म से पेश फ़रमाईं जिनसे ईसाई लाजवाब हुए (यानी उनसे कोई जवाब न बन पड़ा)।

इसके बाद तीसरी और चौथी आयतों में भी इसी तौहीद के मज़मून की तक्मील (पूरा करना) है। तीसरी आयत में अल्लाह तआ़ला के इल्मे मुहीत (यानी ऐसा इल्म जो हर चीज़ को अपने घेरे में लिये हुए है) का बयान है, जिससे किसी जहान का कोई ज़र्रा छुपा हुआ नहीं।

और चौथी आयत में उसकी कामिल क़ुदरत और क़ादिरे मुतलक़ होने का बयान है कि उसने इनसान को माँ के पेट की तीन अंधेरियों में कैसी हिक्मते बालिग़ा के साथ बनाया और उनकी सूरतों और रंगों में वह कारीगरी का प्रदर्शन किया कि अरबों इनसानों में एक की सूरत दूसरे से ऐसी नहीं मिलती कि फ़र्क़ न रहे। इस इल्मे मुहीत और कामिल क़ुदरत का अ़क्ली तक़ाज़ा यह है कि इबादत सिर्फ़ उसी की की जाये, उसके सिवा सब के सब इल्म व क़ुदरत में यह मक़ाम नहीं रखते, इसलिये वे इबादत के लायक़ नहीं।

इस तरह तौहीद के इसबात (साबित करने) के लिये हक़ तआ़ला शानुहू की चार अहम सिफ़तें इन चार आयतों में आ गईं- पहली और दूसरी आयत में हमेशा से और हमेशा तक की ज़िन्दगी की और सब को संभाले रखने की सिफ़त का बयान हुआ, तीसरी से छठी आयत तक इल्मे मुहीत (हर चीज़ के मुकम्मल इल्म) और कामिल क़ुदरत (ताक़त व इख़्तियार) का। इससे साबित हुआ कि जो ज़ात इन चार सिफ़तों की जामे हो (यानी उसके अन्दर ये चार सिफ़तें पाई जायें) वही इबादत के लायक़ है।

هُوَ الَّذِيٓ اَنْزَلَ عَلَيْكَ الْكِتٰبَ مِنْهُ اٰيٰتٌ مُّحْكَمٰتٌ هُنَّ اُمُّ الْكِتٰبِ وَاُخَرُ مُتَشٰبِهٰتٌ ۚ فَاَمَّا الَّذِيْنَ فِيْ قُلُوْبِهِمْ زَيْغٌ فَيَتَّبِعُوْنَ مَا تَشَابَهَ مِنْهُ ابْتِغَآءَ الْفِتْنَةِ وَابْتِغَآءَ تَاْوِيْلِهٖ ۚ وَمَا يَعْلَمُ تَاْوِيْلَهٗٓ اِلَّا اللّٰهُ ۘ وَالرّٰسِخُوْنَ فِي الْعِلْمِ يَقُوْلُوْنَ اٰمَنَّا بِهٖ ۙ كُلٌّ مِّنْ عِنْدِ رَبِّنَا ۚ وَمَا يَذَّكَّرُ اِلَّآ اُولُوا الْاَلْبَابِ ۞

हुवल्लज़ी अन्ज़-ल अ़लैकल्-किता-ब मिन्हु आयातुम् मुह्कमातुन् हुन्-न उम्मुल्-किताबि व उ-ख़रु मु-तशाबिहातुन्, फ़-अम्मल्लज़ी-न फ़ी क़ुलूबिहिम् ज़ैगुन् फ़-यत्तबिअ़ू-न मा तशा-ब-ह मिन्हुब्तिग़ाअल्-फ़ित्नति वब्तिग़ा-अ तअ्वीलिही, व मा यअ्लमु तअ्वी-लहू इल्लल्लाहु। वर्रासिख़ू-न फ़िल्-अ़िल्मि यक़ूलू-न आमन्ना बिही कुल्लुम् मिन् अ़िन्दि	वही है जिसने उतारी तुझ पर किताब, उसमें कुछ आयतें हैं मोहकम (यानी उनके मायने स्पष्ट हैं) वे असल हैं किताब की, और दूसरी हैं मुतशाबा (यानी जिनके मायने मालूम या निर्धारित नहीं) सो जिनके दिलों में कजी (टेढ़ और रोग) है वे पैरवी करते हैं मुतशाबह (आयतों) की, गुमराही फैलाने की ग़र्ज़ से, और मतलब मालूम करने की वजह से, और उनका मतलब कोई नहीं जानता सिवाय अल्लाह के। और मज़बूत इल्म वाले कहते हैं- हम इसपर यक़ीन लाये, सब हमारे रब की तरफ़ से उतरी हैं, और समझाने से वही

रब्बिना व मा यज़्ज़क्करु इल्ला उलुल्-अल्बाब (7)	समझते हैं जिनको अ़क्ल है। (7)

आयतों के मज़मून का पहले मज़मून से संबन्ध

पिछली चार आयतों में अल्लाह तआ़ला की तौहीद (एक और अकेला माबूद होने) को साबित किया गया था, इस आयत में तौहीद के ख़िलाफ़ कुछ शुब्हों का जवाब है। वाकिआ़ इसका यह है कि एक बार नजरान के कुछ ईसाई हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की ख़िदमत में हाज़िर हुए और धार्मिक गुफ़्तगू शुरू की। आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने ईसाईयों के अ़क़ीदा-ए-तस्लीस (ख़ुदाई में तीन हिस्सेदारों) की तरदीद बड़ी तफ़सील से फ़रमाकर अल्लाह तआ़ला की तौहीद को साबित किया। आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने अपने दावे पर अल्लाह तआ़ला की हमेशा की ज़िन्दगी, कामिल क़ुदरत, इल्मे मुहीत और पैदा करने की क़ुदरत वाली सिफ़तों में अल्लाह तआ़ला के यक्ता और मुन्फ़रिद (यानी तन्हा और बेमिस्ल) होने को दलील में पेश किया और ये सब बुनियादी बातें ईसाईयों को माननी पड़ीं। जब तौहीद साबित हो गई तो इसी से **तस्लीस** (तीन ख़ुदाओं) के अ़क़ीदे का ग़लत और बातिल होना भी साबित हो गया। उन लोगों ने क़ुरआन के उन अलफ़ाज़ पर अपने कुछ शुब्हे पेश किये जिनमें हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम का रूहुल्लाह या कलिमतुल्लाह होना बयान किया गया है कि इन अलफ़ाज़ से हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम का ख़ुदाई में शरीक होना साबित होता है।

अल्लाह तआ़ला ने इस आयत में उन शुब्हात को ख़त्म कर दिया कि ये 'कलिमाते मुतशाबिहात' हैं, इनके ज़ाहिरी मायने मुराद नहीं होते बल्कि ये अल्लाह तआ़ला और उसके रसूल के बीच एक राज़ (भेद और गुप्त बातें) हैं, जिनकी हक़ीक़त पर अ़वाम बाख़बर (वाक़िफ़) नहीं हो सकते। अ़वाम के लिये इन अलफ़ाज़ की तहक़ीक़ (खोज-बीन) में पड़ना भी दुरुस्त नहीं, इन पर इसी तरह ईमान लाना ज़रूरी है कि जो कुछ इनसे अल्लाह तआ़ला की मुराद है वह हक़ है, अधिक तफ़तीश और खोद-कुरेद करने की इजाज़त नहीं है।

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

वह (अल्लाह तआ़ला) ऐसा है जिसने नाज़िल किया तुम पर किताब को, जिसमें का एक हिस्सा वे आयतें हैं जो कि मुराद के इश्तिबाह "यानी पोशीदा और अस्पष्ट होने" से महफ़ूज़ हैं (यानी उनका मतलब स्पष्ट और ज़ाहिर है), और यही आयतें असली मदार हैं (इस) किताब (यानी क़ुरआन) का (यानी जिनके मायने ज़ाहिर न हों उनको भी ज़ाहिरी मायने के मुवाफ़िक़ बनाया जाता है)। और दूसरी आयतें ऐसी हैं जो कि मुराद में मुश्तबह हैं (यानी उनका मतलब छुपा हुआ है, चाहे उनके संक्षिप्त होने की वजह से चाहे किसी ज़ाहिरी मुराद वाले स्पष्ट शरई हुक्म के साथ टकराने वाली होने की वजह से)। सो जिन लोगों के दिलों में टेढ़ है वे तो उसके

उसी हिस्से के पीछे हो लेते हैं जो मुराद में मुश्तबह है (दीन में) शोरिश "यानी फ़ितना" ढूँढने की ग़र्ज़ से, और उस (मुश्तबह मायनों वाले हिस्से) का (ग़लत) मतलब ढूँढने की ग़र्ज़ से। (ताकि अपने ग़लत अ़क़ीदे में उससे मतलब हासिल करें) हालाँकि उनका (सही) मतलब सिवाय हक़ तआ़ला के कोई और नहीं जानता। (या अगर वह ख़ुद क़ुरआन या हदीस के ज़रिये से खोलकर या इशारे से बतला दें। जैसे लफ़्ज़ **सलात** की मुराद स्पष्ट तौर पर मालूम हो गई, और **इस्तिवा अ़लल्-अ़र्श** वग़ैरह का मतलब कुछ की राय पर कुल्ली क़ायदों से मालूम हो गया, तो बस इसी क़द्र दूसरों को भी ख़बर हो सकती है, ज़्यादा मालूम नहीं हो सकता। जैसे क़ुरआन के हुरूफ़े मुक़त्तआ़त जैसे **अलिफ़्-लाम्-मीम्** वग़ैरह के मायने किसी को मालूम नहीं हुए, और कुछ की राय पर **इस्तिवा अ़लल्-अ़र्श** (अल्लाह तआ़ला के अ़र्श पर क़ायम होने) के मायने भी मालूम नहीं हुए। और (इसी वास्ते) जो लोग (दीन के) इल्म में पुख़्तगी रखने वाले (और समझदार) हैं वे (ऐसी आयतों के बारे में) यूँ कहते हैं कि हम इस पर (इजमालन् "यानी संक्षिप्त होने और समझ में न आने के बावजूद") यक़ीन रखते हैं, (ये) सब (आयतें ज़ाहिर मायनों वाली भी और छुपे मायनों वाली भी) हमारे परवर्दिगार की तरफ़ से हैं, (पस वास्तव में इनके जो कुछ मायने और मुराद हों वो हक़ हैं)। और नसीहत (की बात को) वही लोग क़ुबूल करते हैं जो कि अ़क़्ल वाले हैं (यानी अक़्ल का तक़ाज़ा भी यही है कि मुफ़ीद और ज़रूरी बात में मशग़ूल हो, नुक़सानदेह और फ़ुज़ूल क़िस्से में न पड़े)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

पहली आयत में अल्लाह तआ़ला ने **मोह्कमात** और **मुतशाबिहात** आयतों का ज़िक्र फ़रमाकर एक आ़म उसूल और ज़ाब्ते की तरफ़ इशारा कर दिया है जिसके समझ लेने के बाद बहुत से शक व शुब्हे और झगड़े ख़त्म हो सकते हैं। जिसकी तफ़सील यह है कि क़ुरआन मजीद में दो क़िस्म की आयतें पाई जाती हैं- एक क़िस्म को **मोह्कमात** कहते हैं और दूसरी को **मुतशाबिहात**।

मोह्कमात उन आयतों को कहते हैं जिनकी मुराद ऐसे शख़्स पर बिल्कुल ज़ाहिर और स्पष्ट हो जो अ़रबी भाषा के क़ायदों और ग्रामरों को अच्छी तरह जानने वाला हो। और जिन आयतों की तफ़सीर और मायने ऐसे शख़्स पर ज़ाहिर न हों उनको **मुतशाबिहात** कहते हैं।

(तफ़सीरे मज़हरी जिल्द 2)

पहली क़िस्म की आयतों को अल्लाह तआ़ला ने **उम्मुल-किताब** कहा, जिसका मतलब यह है कि सारी तालीमात की जड़ और बुनियाद यही आयतें होती हैं जिनके मायने और मतलब इश्तिबाह व इल्तिबास (संदेह व शुब्हे) से पाक होते हैं।

और दूसरी क़िस्म की आयतों में चूँकि कहने वाले की मुराद अस्पष्ट (ग़ैर-वाज़ेह) और **ग़ैर-मुतैयन होती है इसलिये** उन आयतों के बारे में सही तरीक़ा यह है कि उनको पहली क़िस्म की आयतों को सामने रखकर देखना चाहिये, जो मायने उनके ख़िलाफ़ पड़ें उनकी क़तई तौर पर

नफ़ी की जाये और कहने वाले की मुराद वह समझी जाये जो "मोहकम" आयतों के मुख़ालिफ़ न हो, और कोई ऐसे मायने व मतलब बयान करना सही न समझा जायेगा जो माने हुए उसूल और मोहकम आयतों के ख़िलाफ़ हो। जैसे क़ुरआने हकीम ने हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम के बारे में स्पष्ट कर दिया किः

إِنْ هُوَ إِلَّا عَبْدٌ أَنْعَمْنَا عَلَيْهِ. (٤٣:٥٩)

"वह सिर्फ़ एक बन्दे हैं, हमने उन पर अपना इनाम किया है।"

ऐसे ही दूसरी जगह इरशाद हैः

إِنَّ مَثَلَ عِيسَىٰ عِنْدَ اللَّهِ كَمَثَلِ آدَمَ خَلَقَهُ مِنْ تُرَابٍ. (٣:٥٩)

"ईसा की मिसाल अल्लाह के नज़दीक ऐसी है जैसे आदम की।"

इन आयतों और इन्हीं के जैसी दूसरी बहुत सी आयतों से साफ़ मालूम होता है कि हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम अल्लाह तआ़ला के मक़बूल व चुनिन्दा बन्दे और उसकी मख़्लूक़ (पैदा किये हुए) हैं, लिहाज़ा ईसाईयों का उनके बारे में ख़ुदा होने और ख़ुदा का बेटा होने का दावा करना सही नहीं।

अब अगर कोई शख़्स इन सब मोहकम आयतों से आँखें बन्द करके सिर्फ़ कलिमतुल्लाह और "रूहुम् मिन्हु" वग़ैरह मुतशाबेह आयतों को ले दौड़े और इसके वह मायने लेने लगे जो क़ुरआन की ज़ाहिर और स्पष्ट मायनों वाली और निरन्तर बयानात के विपरीत और ख़िलाफ़ हों तो यह उसकी टेढ़ी चाल और हठधर्मी हो जायेगी। क्योंकि मुतशाबेह आयतों की सही मुराद सिर्फ़ अल्लाह ही को मालूम है, वही अपने करम व एहसान से जिसको जिस क़द्र हिस्से पर आगाह करना चाहता है कर देता है, लिहाज़ा ऐसे मुतशाबेह बयान और आयतों से अपनी राय के मुताबिक़ खींच-तानकर कोई मायने निकालना सही नहीं है।

فَأَمَّا الَّذِينَ فِي قُلُوبِهِمْ زَيْغٌ.

"फ़-अम्मल्लज़ी-न फ़ी क़ुलूबिहिम ज़ैग़ुन...." इस आयत से अल्लाह तआ़ला ने बयान फ़रमाया कि जो लोग सलीम और सही फ़ितरत वाले होते हैं वे **मुतशाबिहात** के बारे में ज़्यादा तहक़ीक़ व तफ़्तीश नहीं करते बल्कि इजमाली तैर पर (यानी संक्षिप्त रूप से) ऐसी आयतों पर ईमान ले आते हैं कि यह भी अल्लाह का बर्हक़ कलाम है, अगरचे उसने किसी मस्लेहत की वजह से हमको इनके मायने पर मुत्तला नहीं फ़रमाया। दर हक़ीक़त यही तरीक़ा सलामती और एहतियात का है, इसके विपरीत कुछ ऐसे लोग भी हैं जिनके दिलों में टेढ़ है, वे **मोह्कमात** से आँखें बन्द करके मुतशाबिहात की खोज-कुरेद में लगे रहते हैं, और उनसे अपनी इच्छा के मुताबिक़ मायने निकाल कर लोगों को मुग़ालते (धोखे और भ्रम) में डालने की कोशिश करते हैं, ऐसे लोगों के बारे में क़ुरआन व हदीस में सख़्त धमकी आई है।

हज़रत आ़यशा रज़ियल्लाहु अ़न्हा फ़रमाती हैं कि फ़रमाया रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने कि जब आप ऐसे लोगों को देखें जो मुतशाबिहात की खोज-बीन में लगे हुए हैं तो

आप उनसे दूर भागें, क्योंकि ये वही लोग हैं जिनका ज़िक्र अल्लाह तआ़ला ने (क़ुरआन में) किया है। (बुख़ारी जिल्द 2)

एक दूसरी हदीस में इरशाद फ़रमाया कि मुझे अपनी उम्मत पर तीन बातों का ख़ौफ़ है- अव्वल यह कि माल बहुत मिल जाये जिसकी वजह से आपसी जलन में मुब्तला हो जायें और मार-काट करने लगें। दूसरी यह कि अल्लाह की किताब सामने खुल जाये (यानी तर्जुमे के ज़रिये हर आ़म और जाहिल आदमी भी उसके समझने का दावेदार हो जाये) और उसमें जो बातें समझने की नहीं हैं यानी मुतशाबिहात उनके मायने समझने की कोशिश करने लगें, हालाँकि उनका मतलब अल्लाह ही जानता है। तीसरी यह कि उनका इल्म बढ़ जाये तो उसे ज़ाया (बरबाद) कर दें और इल्म को बढ़ाने की जुस्तजू छोड़ दें। (तफ़सीर इब्ने कसीर, तबरानी के हवाले से)

وَالرّٰسِخُوْنَ فِی الْعِلْمِ یَقُوْلُوْنَ اٰمَنَّا بِهٖ

"वर्रासिख़ू-न फ़िल्-इल्मि यक़ूलू-न आमन्ना बिही" रासिख़ून फ़िल-इल्म (इल्म में मज़बूत) से कौन लोग मुराद हैं? इसमें उलेमा के अक़वाल मुख़्तलिफ़ (अलग-अलग और भिन्न) हैं, राजेह (वरीयता प्राप्त) क़ौल यह है कि उनसे मुराद 'अहले-सुन्नत वल-जमाअ़त' हैं जो क़ुरआन व सुन्नत की उसी ताबीर व तशरीह (मतलब व व्याख्या) को सही समझते हैं जो सहाबा किराम, पहले बुज़ुर्गों और उम्मत के इजमा (किसी बात पर एक राय हो जाने) से मन्क़ूल हो, और क़ुरआनी तालीमात की धुरी व केन्द्र मोह्कमात को मानते हैं और मुतशाबिहात के जो मायने उनके इल्म व समझ से बाहर हैं अपनी नज़र की कोताही और इल्म की कमी का इक़रार करते हुए उनको ख़ुदा के सुपुर्द करते हैं। वे अपने इल्मी कमाल और ईमानी क़ुव्वत पर घमंडी नहीं होते, बल्कि हमेशा हक़ तआ़ला से उस पर जमाव और अतिरिक्त फ़ज़्ल व इनायत के तलबगार रहते हैं। उनकी तबीयतें फ़ितने को पसन्द नहीं करतीं कि मुतशाबिहात ही के पीछे लगी रहें, वह मोह्कमात और मुतशाबिहात सब को हक़ समझते हैं, क्योंकि उन्हें यक़ीन है कि दोनों क़िस्म की आयतें एक ही सरचश्मे (स्रोत) से आती हैं, अलबत्ता एक क़िस्म यानी मोह्कमात के मायने हमारे लिये मालूम करने मुफ़ीद और ज़रूरी थे, तो अल्लाह तआ़ला ने वो पोशीदा नहीं रखे, बल्कि खोल-खोलकर बयान कर दिये। और दूसरी क़िस्म यानी मुतशाबिहात के मायने अल्लाह तआ़ला ने अपनी मस्लेहत से बयान नहीं फ़रमाये, लिहाज़ा उनका मालूम करना भी हमारे लिये ज़रूरी नहीं, ऐसी आयतों पर ईमान इजमाली तौर पर (संक्षिप्त रूप से) ले आना ही काफ़ी है। (तफ़सीरे मज़हरी)

رَبَّنَا لَا تُزِغْ قُلُوْبَنَا بَعْدَ اِذْ هَدَیْتَنَا وَهَبْ لَنَا مِنْ لَّدُنْكَ رَحْمَةً ۚ اِنَّكَ اَنْتَ الْوَهَّابُ ۝ رَبَّنَآ اِنَّكَ جَامِعُ النَّاسِ لِیَوْمٍ لَّا رَیْبَ فِیْهِ ؕ اِنَّ اللّٰهَ لَا یُخْلِفُ الْمِیْعَادَ ۝

रब्बना ला तुज़िग़् क़ुलूबना बअ़्-द इज़् हदैतना व हब् लना मिल्लदुन्-क रह्मतन् इन्न-क अन्तल् वह्हाब (8) रब्बना इन्न-क जामिअ़ुन्नासि लियौमिल्-ला रै-ब फ़ीहि, इन्नल्ला-ह ला युख़्लिफ़ुल् मीआ़द (9) ✿	ऐ रब! न फेर हमारे दिलों को जब तू हमको हिदायत कर चुका, और इनायत कर हमको अपने पास से रहमत, तू ही है सब कुछ देने वाला। (8) ऐ रब हमारे! तू जमा करने वाला है लोगों को एक दिन जिसमें कुछ शुब्हा नहीं, बेशक अल्लाह ख़िलाफ़ नहीं करता अपना वादा। (9) ✿

इन आयतों का पीछे से ताल्लुक़

पिछली आयत में हक़ परस्तों (सही रास्ते वालों) के एक कमाल का ज़िक्र था कि वे बावजूद इल्मी कमाल रखने के उस पर घमंडी नहीं थे, बल्कि अल्लाह तआ़ला से साबित-क़दमी (सही राह पर जमे रहने) की दुआ़ करते थे। अगली आयतों में अल्लाह तआ़ला उनके दूसरे कमाल को बयान फ़रमा रहे हैं।

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

ऐ हमारे परवर्दिगार! हमारे दिलों को टेढ़ा न कीजिये इसके बाद कि आप हमको (हक़ की तरफ़) हिदायत कर चुके हैं। और हमको अपने पास से (ख़ास) रहमत अ़ता फ़रमाईये (वह रहमत यह है कि सही रास्ते पर क़ायम रहें), बेशक आप बड़े अ़ता फ़रमाने वाले हैं। ऐ हमारे परवर्दिगार! (हम यह दुआ़ कजी (टेढ़ी चाल और ग़लत राह) से बचने की और हक़ पर क़ायम रहने की किसी दुनियावी ग़र्ज़ से नहीं माँगते, बल्कि सिर्फ़ आख़िरत की निजात के वास्ते हैं, क्योंकि हमारा अ़क़ीदा है कि) आप बेशक तमाम आदमियों को (मैदाने हश्र में) जमा करने वाले हैं, उस दिन में जिस (के आने) में ज़रा शक नहीं, (यानी क़ियामत के दिन में। और शक न होने की वजह यह है कि उसके आने का अल्लाह तआ़ला ने वायदा फ़रमाया है, और) बेशक अल्लाह तआ़ला वायदे के ख़िलाफ़ नहीं करते (इसलिए क़ियामत का आना लाज़िमी है, और इस वास्ते हमको उसकी फ़िक्र है)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

पहली आयत से मालूम होता है कि हिदायत और गुमराही अल्लाह ही की ओर से है, अल्लाह तआ़ला जिसको हिदायत देना चाहते हैं उसके दिल को नेकी की जानिब माईल कर देते हैं और जिसको गुमराह करना चाहते हैं उसके दिल को सीधे रास्ते से फेर लेते हैं।

चुनाँचे एक हदीस में हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम फ़रमाते हैं कि "कोई दिल ऐसा नहीं है जो अल्लाह तआ़ला की उंगलियों में से दो उंगलियों के बीच न हो, वह जब तक चाहते हैं

उसको हक़ पर क़ायम रखते हैं और जब चाहते हैं उसको हक़ से फेर देते हैं।"

वह क़ादिरे मुत्लक़ है जो चाहता है करता है, इसलिये जिन लोगों को दीन पर क़ायम रहने की फ़िक्र होती है वे हमेशा अपने अल्लाह से सही रास्ते पर जमाव की दुआ माँगते हैं, हुज़ूरे अकरम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम हमेशा इस्तिक़ामत (जमाव) की दुआ माँगा करते थे। चुनाँचे एक हदीस में है:

يَامُقَلِّبَ الْقُلُوْبِ ثَبِّتْ قُلُوْبَنَا عَلٰى دِيْنِكَ.

"यानी ऐ दिलों के फेरने वाले हमारे दिलों को अपने दीन पर क़ायम रख।" (मज़हरी जिल्द 2)

إِنَّ الَّذِيْنَ كَفَرُوْا لَنْ تُغْنِيَ عَنْهُمْ أَمْوَالُهُمْ وَلَآ أَوْلَادُهُمْ مِّنَ اللّٰهِ شَيْئًا، وَأُولٰٓئِكَ هُمْ وَقُوْدُ النَّارِ ۝ كَدَأْبِ اٰلِ فِرْعَوْنَ، وَالَّذِيْنَ مِنْ قَبْلِهِمْ، كَذَّبُوْا بِاٰيٰتِنَا، فَأَخَذَهُمُ اللّٰهُ بِذُنُوْبِهِمْ، وَاللّٰهُ شَدِيْدُ الْعِقَابِ ۝ قُلْ لِّلَّذِيْنَ كَفَرُوْا سَتُغْلَبُوْنَ وَتُحْشَرُوْنَ إِلٰى جَهَنَّمَ، وَبِئْسَ الْمِهَادُ ۝

इन्नल्लज़ी-न क-फ़रू लन् तुग़्नि-य अ़न्हुम् अम्वालुहुम् व ला औलादुहुम् मिनल्लाहि शैअन्, व उलाइ-क हुम् वक़ूदुन्नार (10) क-दअ्बि आलि फ़िर्औ-न वल्लज़ी-न मिन् क़ब्लिहिम्, कज़्ज़बू बिआयातिना फ़-अ-ख़-ज़हु-मुल्लाहु बिज़ुनूबिहिम्, वल्लाहु शदीदुल्-अ़िक़ाब (11) क़ुल्-लिल्लज़ी-न क-फ़रू सतुग़्लबू-न व तुह्शरू-न इला जहन्न-म, व बिअ्सल्-मिहाद (12)	बेशक जो लोग काफ़िर हैं हरगिज़ काम न आयेंगे उनको उनके माल, और न उनकी औलाद अल्लाह के सामने कुछ, और वही हैं ईंधन दोज़ख़ के। (10) जैसे दस्तूर फ़िरऔ़न वालों का और जो उनसे पहले थे, झुठलाया उन्होंने हमारी आयतों को फिर पकड़ा उनको अल्लाह ने उनके गुनाहों पर और अल्लाह का अ़ज़ाब सख़्त है। (11) कह दे काफ़िरों को कि अब तुम मग़लूब होगे और हाँके जाओगे दोज़ख़ की तरफ़, और क्या बुरा ठिकाना है। (12)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

यक़ीनन जो लोग कुफ़्र करते हैं हरगिज़ उनके काम नहीं आ सकते उनके माल (व दौलत) और न उनकी औलाद अल्लाह तआ़ला के मुक़ाबले में ज़र्रा बराबर भी, और ऐसे लोग जहन्नम का ईंधन होंगे। (उन लोगों का मामला ऐसा है) जैसा मामला था फ़िरऔ़न वालों का और उनसे

पहले वाले (काफ़िर) लोगों का। (वह मामला यह था) कि उन्होंने हमारी आयतों को (यानी ख़बरों व अहकाम को) झूठा बतलाया, इस पर अल्लाह ने उनकी पकड़ फ़रमाई उनके गुनाहों के सबब, और अल्लाह तआ़ला (की पकड़ बड़ी सख़्त है, क्योंकि उनकी शान यह है कि वह) सख़्त सज़ा देने वाले हैं। (इसी तरह मामला होगा कि उन्होंने हमारी आयतों को झुठलाया, सो उनको भी ऐसी ही सज़ा होगी और) आप उन कुफ़्र करने वाले लोगों से (यूँ भी) फ़रमा दीजिए कि (तुम यह न समझना कि यह पकड़ सिर्फ़ आख़िरत में होगी, बल्कि यहाँ और वहाँ दोनों जगह होगी। चुनाँचे दुनिया में) जल्द ही तुम (मुसलमानों के हाथ से) मग़लूब किए जाओगे, और (आख़िरत में) जहन्नम की तरफ़ जमा करके ले जाये जाओगे, और वह (जहन्नम) बुरा ठिकाना है।

मआ़रिफ़ व मसाईल

قُلْ لِّلَّذِيْنَ كَفَرُوْا سَتُغْلَبُوْنَ.

'क़ुल् लिल्लज़ी-न क-फ़रू सतुग़्लबू-न' मुम्किन है कोई इस आयत से यह शुब्हा करे कि आयत से मालूम होता है कि काफ़िर लोग मग़लूब (पस्त) होंगे, हालाँकि दुनिया के तमाम काफ़िर मग़लूब नहीं हैं, लेकिन यह शुब्हा इसलिये नहीं हो सकता कि यहाँ काफ़िरों से मुराद दुनिया भर के तमाम कुफ़्फ़ार नहीं हैं, बल्कि उस वक़्त के मुश्रिक और यहूदी लोग मुराद हैं, चुनाँचे मुश्रिकों को क़त्ल व क़ैद करने और यहूदियों को क़त्ल व क़ैद करने के साथ-साथ जिज़्या और देश-निकाले के ज़रिये मग़लूब किया गया था।

قَدْ كَانَ لَكُمْ اٰيَةٌ فِيْ فِئَتَيْنِ الْتَقَتَا ۭ فِئَةٌ تُقَاتِلُ فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ
وَاُخْرٰى كَافِرَةٌ يَّرَوْنَهُمْ مِّثْلَيْهِمْ رَاْيَ الْعَيْنِ ۭ وَاللّٰهُ يُؤَيِّدُ بِنَصْرِهٖ مَنْ يَّشَاۗءُ ۭ اِنَّ فِيْ ذٰلِكَ
لَعِبْرَةً لِّاُولِي الْاَبْصَارِ ۝

क़द् का-न लकुम् आ-यतुन् फ़ी फ़ि-अतैनिल् त-क़ता, फ़ि-अतुन् तुक़ातिलु फ़ी सबीलिल्लाहि व उख़्रा काफ़ि-रतुंय्यरौनहुम् मिस्लैहिम् रअ्यल्-अैनि, वल्लाहु युअय्यिदु बिनस्रिही मंय्यशा-उ, इन्-न फ़ी ज़ालि-क ल-अिब्रतल्-लिउलिल् अब्सार (13)	अभी गुज़र चुका है तुम्हारे सामने एक नमूना दो फ़ौजों में जिनका मुक़ाबला हुआ, एक फ़ौज है जो लड़ती है अल्लाह की राह में और दूसरी फ़ौज काफ़िरों की है देखते हैं ये उनको अपने से दोगुना खुली आँखों से। और अल्लाह ज़ोर (बल) देता है अपनी मदद का जिसको चाहे, इसी में इबरत है देखने वालों को। (13)

आयत के मज़मून का पीछे से जोड़

पिछली आयतों में काफ़िरों के मग़लूब (पस्त और पराजित) होने की ख़बर दी गई थी, अब इस आयत से दलील के तौर पर उसकी एक मिसाल बयान फ़रमाते हैं।

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

बेशक तुम्हारे (दलील हासिल करने के) लिए बड़ा नमूना है दो गिरोहों (के वाक़िए) में जो कि आपस में (बदर की लड़ाई में) एक-दूसरे के आमने-सामने हुए थे। एक गिरोह तो अल्लाह की राह में लड़ता था (यानी मुसलमान) और दूसरा गिरोह काफ़िर लोग थे (और काफ़िर इस क़द्र ज़्यादा थे कि) ये काफ़िर अपने (गिरोह) को देख रहे थे कि उन (मुसलमानों) से कई हिस्से (ज़्यादा) हैं (और देखना भी कुछ वहम व ख़्याल का नहीं बल्कि) खुली आँखों देखना, (जिसके वास्तविक होने में शुब्हा नहीं था, लेकिन काफ़िरों के बावजूद इस क़द्र ज़्यादा संख्या में होने के फिर भी अल्लाह तआ़ला ने मुसलमानों को ग़ालिब किया) और (ग़ालिब और मग़लूब करना तो सिर्फ़ अल्लाह के क़ब्ज़े में है) अल्लाह तआ़ला अपनी इमदाद से जिसको चाहते हैं क़ुव्वत दे देते हैं, (सो) बेशक इस (वाक़िए) में बड़ी इब्रत (और नमूना) है देखने वाले लोगों के लिये।

मआ़रिफ़ व मसाईल

इस आयत में जंगे-बदर की कैफ़ियत को बयान किया गया है, जिसमें काफ़िर तक़रीबन एक हज़ार थे, जिनके पास सात सौ ऊँट और एक सौ घोड़े थे। दूसरी तरफ़ मुसलमान मुजाहिदीन तीन सौ से कुछ ऊपर थे, जिनके पास कुल सत्तर ऊँट, दो घोड़े, छह ज़िरहें (लोहे की जेकिट) और आठ तलवारें थीं, और तमाशा यह था कि हर एक फ़रीक़ को अपने सामने वाला दोगुना नज़र आता था जिसका नतीजा यह था कि काफ़िरों के दिल मुसलमानों की अधिकता का तसव्वुर करके मरऊब हो रहे थे और मुसलमान अपने से दोगुनी संख्या देखकर और ज़्यादा हक़ तआ़ला की तरफ़ मुतवज्जह होते और पूरे भरोसे और जमाव के साथ ख़ुदा के वायदेः

اِنْ يَّكُنْ مِّنْكُمْ مِّائَةٌ صَابِرَةٌ يَّغْلِبُوْا مِائَتَيْنِ. (٨:٦٦)

(अगर तुम में से सौ जमने वाले हों तो वे दो सौ पर ग़ालिब आ जायेंगे) पर भरोसा करके फ़तह व इमदाद की उम्मीद रखते थे, और यह दोनों फ़रीक़ों का दोगुनी तादाद देखना कुछ हालात में था, वरना कुछ हालात वे थे जब हर एक को दूसरे फ़रीक़ की जमाअ़त कम महसूस हुई, जैसा कि सूरः अनफ़ाल में आयेगा।

बहरहाल! एक बहुत थोड़ी सी और सामान व हथियार से ख़ाली जमाअ़त को ऐसी मज़बूत जमाअ़त के मुक़ाबले में उन भविष्यवाणियों के मुवाफ़िक़ जो मक्का में की गई थीं इस तरह कामयाब करना आँखें रखने वालों के लिये बहुत बड़ा सीख देने वाला वाक़िआ़ है।

(फ़वाईद अ़ल्लामा उस्मानी रह.)

زُيِّنَ لِلنَّاسِ حُبُّ الشَّهَوٰتِ مِنَ النِّسَآءِ وَالْبَنِيْنَ وَالْقَنَاطِيْرِ الْمُقَنْطَرَةِ
مِنَ الذَّهَبِ وَالْفِضَّةِ وَالْخَيْلِ الْمُسَوَّمَةِ وَالْاَنْعَامِ وَالْحَرْثِ ۭ ذٰلِكَ مَتَاعُ الْحَيٰوةِ الدُّنْيَا ۚ
وَاللّٰهُ عِنْدَهٗ حُسْنُ الْمَاٰبِ ۝ قُلْ اَؤُنَبِّئُكُمْ بِخَيْرٍ مِّنْ ذٰلِكُمْ ۭ لِلَّذِيْنَ اتَّقَوْا عِنْدَ رَبِّهِمْ
جَنّٰتٌ تَجْرِيْ مِنْ تَحْتِهَا الْاَنْهٰرُ خٰلِدِيْنَ فِيْهَا وَاَزْوَاجٌ مُّطَهَّرَةٌ وَّرِضْوَانٌ مِّنَ اللّٰهِ ۭ وَاللّٰهُ
بَصِيْرٌۢ بِالْعِبَادِ ۝ اَلَّذِيْنَ يَقُوْلُوْنَ رَبَّنَآ اِنَّنَآ اٰمَنَّا فَاغْفِرْ لَنَا ذُنُوْبَنَا وَقِنَا عَذَابَ النَّارِ ۝ اَلصّٰبِرِيْنَ وَ
الصّٰدِقِيْنَ وَالْقٰنِتِيْنَ وَالْمُنْفِقِيْنَ وَالْمُسْتَغْفِرِيْنَ بِالْاَسْحَارِ ۝

ज़ुय्यि-न लिन्नासि हुब्बुश्श-हवाति मिनन्निसा-इ वल्बनी-न वल्क़नातीरिल्-मुक़न्त-रति मिनज़्ज़-हबि वल्-फ़िज़्ज़ति वल्-ख़ैलिल्-मुसव्व-मति वल्-अन्आमि वल्हर्सि, ज़ालि-क मताअुल् हयातिद्दुन्या वल्लाहु अिन्दहू हुस्नुल् मआब (14) क़ुल् अ-उनब्बिउकुम् बिख़ैरिम् मिन् ज़ालिकुम्, लिल्लज़ीनत्तक़ौ अिन्-द रब्बिहिम् जन्नातुन् तज्री मिन् तह्तिहल्-अन्हारु ख़ालिदी-न फ़ीहा व अज़्वाजुम्-मुतह्ह-रतुंव्-व रिज़्वानुम् मिनल्लाहि, वल्लाहु बसीरुम्-बिल्अिबाद (15) अल्लज़ी-न यक़ूलू-न रब्बना इन्नना आमन्ना फ़ग़्फ़िर् लना ज़ुनूबना व क़िना अज़ाबन्नार (16) अस्साबिरी-न वस्सादिक़ी-न वल्क़ानिती-न वल्मुन्फ़िक़ी-न वल्मुस्तग़्फ़िरी-न बिल्-अस्हार (17)

फ़रेफ़्ता किया (लुभाया) है लोगों को मरग़ूब (पसन्द की) चीज़ों की मुहब्बत ने, जैसे औरतें और बेटे और ख़ज़ाने जमा किये हुए सोने और चाँदी के, और घोड़े निशान लगाये हुए और मवेशी और खेती, यह फ़ायदा उठाना है दुनिया की ज़िन्दगी में और अल्लाह ही के पास है अच्छा ठिकाना। (14) कह दे क्या बताऊँ मैं तुमको उससे बेहतर? परहेज़गारों के लिये अपने रब के यहाँ बाग़ हैं, जिनके नीचे नहरें जारी हैं, हमेशा रहेंगे उनमें, और औरतें हैं सुथरी (पाकीज़ा) और रज़ामन्दी अल्लाह की, और अल्लाह की निगाह में हैं बन्दे। (15) वे जो कहते हैं ऐ रब हमारे! हम ईमान लाये हैं सो बख़्श दे हमको गुनाह हमारे और बचा हमको दोज़ख़ के अज़ाब से। (16) और सब्र करने वाले हैं और सच्चे और हुक्म बजा लाने वाले और ख़र्च करने वाले और गुनाह बख़्शवाने वाले पिछली रात में। (17)

इन आयतों के मज़मून का पीछे से ताल्लुक

पहली आयतों में काफ़िरों व मुशरिकों की मुख़ालफ़त और उनके मुक़ाबले में जिहाद का ज़िक्र था, और इन आयतों में इस्लाम व ईमान की मुख़ालफ़त और तमाम बुरे आमाल की असल मंशा को बयान फ़रमाया गया है कि वह दुनिया की मुहब्बत है। कोई माल व रुतबे के लालच में हक़ की मुख़ालफ़त इख़्तियार करता है, कोई नफ़्सानी इच्छाओं की वजह से और कोई अपने बाप-दादा की रस्मों की मुहब्बत के सबब हक़ के मुक़ाबले पर खड़ा हो जाता है, और इन सारी चीज़ों का ख़ुलासा है दुनिया की मुहब्बत। मुख़्तसर तफ़सीर इन आयतों की यह है:

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

भली मालूम होती है (अक्सर) लोगों को मुहब्बत पसन्दीदा चीज़ों की, (जैसे) औरतें हुईं, बेटे हुए, लगे हुए ढेर हुए सोने और चाँदी के, नम्बर (यानी निशान) लगे हुए घोड़े हुए, (या दूसरे) मवेशी हुए और खेती हुई। (लेकिन) ये सब चीज़ें दुनियावी ज़िन्दगानी में इस्तेमाल करने की हैं, और अन्जामकार की ख़ूबी (की चीज़) तो अल्लाह ही के पास है। (जो बाद मौत के काम आयेगी जिसकी तफ़सील अगली आयत में आती है) आप (उन लोगों से यह) फ़रमा दीजिये क्या मैं तुमको ऐसी चीज़ बतला दूँ जो (बहुत ही ज़्यादा) बेहतर हो इन (ज़िक्र हुई) चीज़ों से, (सो सुनो) ऐसे लोगों के लिये जो (अल्लाह तआ़ला से) डरते हैं, उनके (असल) मालिक के पास ऐसे-ऐसे बाग़ हैं (यानी जन्नत) जिनके नीचे नहरें जारी हैं, उन (जन्नतों) में हमेशा-हमेशा को रहेंगे (और उनके लिए) ऐसी बीवियाँ हैं जो (हर तरह) साफ़-सुथरी की हुई हैं, और (उनके लिए) रज़ा और ख़ुशनूदी है अल्लाह तआ़ला की तरफ़ से, और अल्लाह तआ़ला ख़ूब देखते (भालते) हैं बन्दों (के हाल) को। (इसलिये डरने वालों को ये नेमतें देंगे, आगे उन डरने वालों की बाज़ी तफ़सीली सिफ़तें ज़िक्र की जाती हैं) (ये) ऐसे लोग (हैं) जो कहते हैं कि ऐ हमारे परवर्दिगार! हम ईमान ले आए, सो आप हमारे गुनाहों को माफ़ कर दीजिए, और हमको दोज़ख़ के अ़ज़ाब से बचा लीजिए। (और वे लोग) सब्र करने वाले हैं और सच्चे हैं और (अल्लाह के सामने) आ़जिज़ी करने वाले हैं, और (नेक कामों में माल के) ख़र्च करने वाले हैं, और रात के आख़िरी हिस्से में (उठ-उठकर) गुनाहों की माफ़ी चाहने वाले हैं।

मआ़रिफ़ व मसाईल

दुनिया की मुहब्बत फ़ितरी है मगर इसमें हद से बढ़ना घातक है

हदीस में इरशाद है:

حُبُّ الدُّنْيَا رَأْسُ كُلِّ خَطِيْئَةٍ.

"यानी दुनिया की मुहब्बत हर बुराई की जड़ है।" पहली आयत में दुनिया की चन्द अहम

पसन्दीदा चीज़ों का नाम लेकर बतलाया गया है कि लोगों की नज़रों में उनकी मुहब्बत ख़ुशनुमा (अच्छी लगने वाली) बना दी गई है, इसलिये बहुत से लोग इसकी ज़ाहिरी रौनक़ पर रीझकर आख़िरत को भुला बैठते हैं। जिन चीज़ों का नाम इस जगह लिया गया है वे आ़म तौर पर इनसानी दिलचस्पी व मुहब्बत का मर्कज़ हैं जिनमें सबसे पहले औ़रत को और इसके बाद औलाद को बयान किया गया है, क्योंकि दुनिया में इनसान जितनी चीज़ों के हासिल करने की फ़िक्र में लगा रहता है उन सब का असली सबब औ़रत या औलाद की ज़रूरत होती है, उसके बाद सोने चाँदी और मवेशी (जानवरों) और खेती का ज़िक्र है कि यह दूसरे नम्बर में इनसान की रुचि व मुहब्बत का मर्कज़ होते हैं।

आयत का ख़ुलासा व मतलब यह है कि अल्लाह तआ़ला ने इन चीज़ों की मुहब्बत तबई तौर पर इनसान के दिल में डाल दी है जिसमें हज़ारों हिक्मतें हैं, उनमें से एक यह है कि अगर इनसान तबई तौर पर इन चीज़ों की तरफ़ माईल और इनसे मुहब्बत करने वाला न होता तो दुनिया का सारा निज़ाम उलट-पुलट हो जाता। किसी को क्या ग़र्ज़ थी कि खेती करने की मशक़्क़त उठाता या मज़दूरी व कारीगरी की मेहनत बरदाश्त करता, या तिजारत में अपना रुपया और मेहनत ख़र्च करता, दुनिया का आबाद करना और इसको बाक़ी रखना इसमें छुपा था कि लोगों की तबीयतों में इन चीज़ों की मुहब्बत पैदा कर दी जाये, जिससे वे अपने आप इन चीज़ों के मुहैया करने और बाक़ी रखने की फ़िक्र में पड़ जायें, सुबह उठकर मज़दूर इस फ़िक्र में घर से निकलता है कि कुछ पैसे कमाये, मालदार इस फ़िक्र में घर से निकलता है कि पैसे ख़र्च करके कोई मज़दूर लाये जिससे अपना काम निकाले, ताजिर बेहतर से बेहतर सामान मुहैया करके ग्राहक के इन्तिज़ार में बैठता है कि पैसे हासिल करे, ग्राहक सौ कोशिशें करके पैसे लेकर बाज़ार पहुँचता है कि अपनी ज़रूरतों का सामान ख़रीदे। ग़ौर किया जाये तो सब को दुनिया की इन्हीं पसन्दीदा चीज़ों की मुहब्बत ने अपने-अपने घर से निकाला और दुनिया के सामाजिक निज़ाम को निहायत मज़बूत व स्थिर बुनियादों पर क़ायम कर दिया है।

दूसरी हिक्मत यह भी है कि अगर दुनियावी नेमतों से दिलचस्पी व मुहब्बत इनसान के दिल में न हो तो उसको आख़िरत की नेमतों का न ज़ायक़ा मालूम होगा न उनमें दिलचस्पी होगी, तो फिर उसको क्या ज़रूरत है कि वह नेक आमाल की कोशिश करके जन्नत हासिल करे, और बुरे आमाल से परहेज़ करके दोज़ख़ से बचे।

तीसरी हिक्मत और वही इस जगह ज़्यादा क़ाबिले ग़ौर है, यह है कि इन चीज़ों की मुहब्बत तबई तौर पर इनसान के दिल में पैदा करके इनसान का इम्तिहान लिया जाये कि कौन इन चीज़ों की मुहब्बत में मुब्तला होकर आख़िरत को भुला बैठता है, और कौन है जो इन चीज़ों की असल हक़ीक़त और इनके अस्थायी व फ़ानी होने पर मुत्तला होकर इनकी फ़िक्र ज़रूरत के मुताबिक़ करे, और इनको आख़िरत के बनाने के काम में लगाये। क़ुरआने करीम के एक दूसरे मक़ाम में ख़ुद इस सज-धज की यही हिक्मत बतलाई गई है। इरशाद है:

إِنَّا جَعَلْنَا مَا عَلَى الْأَرْضِ زِينَةً لَّهَا لِنَبْلُوَهُمْ أَيُّهُمْ أَحْسَنُ عَمَلًا. (١٨:٧)

"यानी हमने बनाया जो ज़मीन पर हैं ज़मीन की ज़ीनत, ताकि हम लोगों की आज़माईश करें कि उनमें से कौन अच्छा अ़मल करता है।"

इस आयत से मालूम हो गया कि दुनिया की इन पसन्दीदा चीज़ों को इनसान के लिये सजाना और सुसज्जित करना भी अल्लाह तआ़ला का एक फ़ेल है जो बहुत सी हिक्मतों पर आधारित है, और कुछ आयतें जिनमें इस क़िस्म की सजावट को शैतान की तरफ़ मन्सूब किया गया है, जैसेः

زَيَّنَ لَهُمُ الشَّيْطٰنُ أَعْمَالَهُمْ. (٨:٤٨)

इनमें ऐसी चीज़ों को अच्छा करके दिखलाना मुराद है जो शरई और अ़क्ली तौर पर बुरी हैं, या सजाकर पेश करने का वह दर्जा मुराद है जो हद से बढ़ जाने की वजह से बुरा है, वरना जायज़ और मुबाह चीज़ों को सजाना और अच्छा करके दिखलाना मुतलक़ तौर पर बुरा नहीं, बल्कि इसमें बहुत से फ़ायदे भी हैं। इसी लिये कुछ आयतों में इस ज़ीनत देने को स्पष्ट तौर पर हक़ तआ़ला की तरफ़ मन्सूब किया गया है, जैसे अभी बयान किया गया है।

कलाम का ख़ुलासा यह है कि दुनिया की लज़ीज़ और मरग़ूब (मज़ेदार और पसन्दीदा) चीज़ों को हक़ तआ़ला ने अपने फ़ज़्ल व हिक्मत से इनसान के लिये सजाकर उनकी मुहब्बत उसके दिल में डाल दी जिसमें बहुत सी हिक्मतों में से एक यह भी है कि इनसान का इम्तिहान लिया जाये कि इन सरसरी और ज़ाहिरी पसन्दीदा चीज़ों और उनकी चन्द दिन की लज़्ज़त में मुब्तला होने के बाद वह अपने और इन सब चीज़ों के रब और ख़ालिक़ व मालिक को याद रखता है और इन चीज़ों को उसकी पहचान और मुहब्बत का माध्यम बनाता है या इन्हीं की मुहब्बत में उलझकर असली मालिक व ख़ालिक़ को और आख़िरत में उसके सामने पेशी और हिसाब व किताब को भुला बैठता है। पहला आदमी वह है जिसने दुनिया से भी फ़ायदा उठाया और आख़िरत में भी कामयाब रहा, दुनिया की पसन्दीदा चीज़ें उसके लिये रास्ते का पत्थर (यानी रुकावट) बनने के बजाय मील का पत्थर बनकर आख़िरत की कामयाबी का ज़रिया बन गईं, और दूसरा वह शख़्स है जिसके लिये यही चीज़ें आख़िरत की ज़िन्दगी की बरबादी और हमेशा के अ़ज़ाब का सबब बन गईं। और अगर गहरी नज़र से देखा जाये तो ये चीज़ें दुनिया में भी उसके लिये अ़ज़ाब ही बन जाती हैं, क़ुरआने करीम में ऐसे ही लोगों के मुताल्लिक़ इरशाद हैः

فَلَا تُعْجِبْكَ أَمْوَالُهُمْ وَلَآ أَوْلَادُهُمْ إِنَّمَا يُرِيدُ اللّٰهُ لِيُعَذِّبَهُمْ بِهَا فِي الْحَيٰوةِ الدُّنْيَا. (٩:٥٥)

"यानी आप उन काफ़िरों के माल और औलाद से ताज्जुब न करें क्योंकि उन नाफ़रमानों को माल, औलाद देने से कुछ उनका भला नहीं हुआ बल्कि ये माल और औलाद आख़िरत में तो उनके लिये अ़ज़ाब बनेंगे ही दुनिया में भी रात-दिन की फ़िक्रों और मशग़लों (व्यस्तताओं) के सबब अ़ज़ाब ही बन जाते हैं।"

ग़र्ज़ यह कि दुनिया की जिन चीज़ों को हक़ तआ़ला ने इनसान के लिये सजाया और

पसन्दीदा बना दिया है, शरीअ़त के मुताबिक़ एतिदाल के साथ उनकी तलब और ज़रूरत के मुताबिक़ उनको जमा करना दुनिया व आख़िरत की कामयाबी और भलाई है, और नाजायज़ तरीक़ों पर उनका इस्तेमाल या जायज़ तरीक़ों में इतना बढ़ना और मशग़ूल हो जाना जिसके सबब आख़िरत से ग़फ़लत हो जाये, बरबादी का सबब है। मौलाना रूमी रहमतुल्लाह अ़लैहि ने इसकी क्या ही अच्छी मिसाल बयान फ़रमाई है:

आब अन्दर ज़ेरे कश्ती पश्ती अस्त
आब दर कश्ती हलाके कश्ती अस्त

यानी दुनिया का साज़ व सामान पानी की तरह है, और उसमें इनसान का दिल एक कश्ती की तरह है। पानी जब तक कश्ती के नीचे और इर्द-गिर्द रहे तो कश्ती के लिये मुफ़ीद और मददगार है और उसके वजूद के मक़सद को पूरा करने वाला है, और अगर पानी कश्ती के अन्दर दाख़िल हो जाये तो यही कश्ती के डूबने और तबाह होने का सामान हो जाता है। इसी तरह दुनिया के माल व मता (दौलत व सामान) जब तक इनसान के दिल में ग़लबा न पा लें उसके लिये दीन व दुनिया में साथी व मददगार हैं, और जिस वक़्त उसके दिल पर छा जायें तो दिल की तबाही हैं। इसी लिये ज़िक्र हुई आयत में दुनिया की कुछ ख़ास पसन्दीदा चीज़ों का ज़िक्र करने के बाद इरशाद होता है:

ذٰلِكَ مَتَاعُ الْحَيٰوةِ الدُّنْيَا ۚ وَاللّٰهُ عِنْدَهٗ حُسْنُ الْمَاٰبِ○

"यानी ये सब चीज़ें दुनियावी ज़िन्दगी में सिर्फ़ काम चलाने के लिये हैं, दिल लगाने के लिये नहीं, और अल्लाह के पास है अच्छा ठिकाना।"

यानी वह ठिकाना जहाँ हमेशा रहना है और जिसकी नेमतें और लज़्ज़तें न फ़ना होने वाली हैं न कम या कमज़ोर होने वाली।

दूसरी आयत में इसी मज़मून की और अधिक वज़ाहत करने के लिये फ़रमाया:

قُلْ اَؤُنَبِّئُكُمْ بِخَيْرٍ مِّنْ ذٰلِكُمْ ۚ لِلَّذِيْنَ اتَّقَوْا عِنْدَ رَبِّهِمْ جَنّٰتٌ تَجْرِيْ مِنْ تَحْتِهَا الْاَنْهٰرُ خٰلِدِيْنَ فِيْهَا وَاَزْوَاجٌ مُّطَهَّرَةٌ وَّرِضْوَانٌ مِّنَ اللّٰهِ ۗ وَاللّٰهُ بَصِيْرٌ ۢ بِالْعِبَادِ○

इसमें नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को ख़िताब करके इरशाद है कि आप उन लोगों से जो दुनिया की नाक़िस और फ़ानी नेमतों में मस्त हो गये हैं फ़रमा दीजिये कि मैं तुम्हें इनसे बहुत बेहतर नेमतों का पता देता हूँ, जो अल्लाह तआ़ला से डरने वालों और उसके फ़रमाँबरदारों को मिलेंगी। वे नेमतें हरे-भरे बाग़ात हैं जिनके नीचे नहरें बहती होंगी और हर क़िस्म की गन्दगी से पाक व साफ़ बीवियाँ हैं और अल्लाह तआ़ला की रज़ा व ख़ुशनूदी है। पिछली आयत में दुनिया की छह बड़ी नेमतों को शुमार किया गया था कि लोग उनकी मुहब्बत में मस्त हैं। यानी औ़रतें, औलाद, सोने चाँदी के ढेर, उम्दा घोड़े, मवेशी और खेती। इनके मुक़ाबले में आख़िरत की नेमतों में बज़ाहिर तीन चीज़ों का बयान आया- अव्वल जन्नत के हरे-भरे बाग़ात, दूसरे पाक-साफ़ औ़रतें, तीसरे अल्लाह तआ़ला की रज़ा, बाक़ी चीज़ों में से

औलाद का ज़िक्र इसलिये नहीं किया गया कि दुनिया में तो इनसान औलाद की मुहब्बत इसलिये करता है कि औलाद से उसको अपने कामों में मदद मिलती है और उसके बाद उससे उसका नाम ज़िन्दा रहता है, आख़िरत में न उसको किसी मदद की ज़रूरत रहेगी न यह फ़ना होगा कि अपने बाद के लिये किसी वली या वारिस की तलाश हो। इसके अ़लावा दुनिया में जिसकी औलाद है वह सब उसको जन्नत में मिल जायेगी और जिसकी औलाद दुनिया में नहीं है उसको अव्वल तो आख़िरत में औलाद की इच्छा ही नहीं होगी और किसी को इच्छा हो तो अल्लाह तआ़ला उसको वह भी दे देंगे। तिर्मिज़ी शरीफ़ की एक हदीस में है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया- अगर किसी जन्नती को औलाद की इच्छा होगी तो बच्चे का हमल (गर्भ) फिर पैदाईश, फिर उसका बड़ा हो जाना, यह सब थोड़ी देर में हो जायेगा और उसका मक़सद (यानी तमन्ना और इच्छा) पूरा कर दिया जायेगा।

इसी तरह जन्नत में सोने-चाँदी का ज़िक्र इसलिये नहीं किया कि दुनिया में तो सोना-चाँदी इसलिये मतलूब है (चाहिये) कि उसके बदले में दुनिया का सामान ख़रीदा जाता है और हर ज़रूरत की चीज़ इसी के ज़रिये हासिल की जा सकती है, आख़िरत में न किसी ख़रीद व फ़रोख़्त की ज़रूरत रहेगी न किसी चीज़ का मुआ़वज़ा देने की ज़रूरत, बल्कि जिस चीज़ को जन्नती का दिल चाहेगा वह फ़ौरन मुहैया कर दी जायेगी। इसके अ़लावा जन्नत में ख़ुद भी सोने-चाँदी की कमी नहीं, क्योंकि रिवायतों से साबित है कि जन्नत के कुछ महल ऐसे होंगे जिनकी एक ईंट सोने की और दूसरी चाँदी की होगी। बहरहाल आख़िरत के लिहाज़ से वह कोई क़ाबिले ज़िक्र चीज़ नहीं समझी गई।

इसी तरह घोड़े का काम दुनिया में तो यह है कि उन पर सवारी करके सफ़र की दूरी तय की जाये, वहाँ न सफ़र की ज़रूरत न किसी सवारी की, अलबत्ता सही हदीसों से यह साबित है कि जन्नत वालों को जुमा के दिन उम्दा घोड़े सवारी के लिये पेश किये जायेंगे, जिन पर सवार होकर जन्नत वाले अपने यारों-दोस्तों और रिश्तेदारों से मुलाक़ात के लिये जाया करेंगे।

ख़ुलासा यह है कि वहाँ घोड़े कोई ख़ास अहमियत नहीं रखते जिसका ज़िक्र किया जाये, इसी तरह मवेशी जो खेती का काम देते हैं या दूध का, ये सब चीज़ें अल्लाह तआ़ला ने जन्नत में बग़ैर इन मवेशियों के वास्ते के ख़ुद अ़ता फ़रमा दी हैं।

यही हाल खेती का है कि दुनिया में तो खेती की मशक़्क़त विभिन्न जिनसों (अनाजों वग़ैरह) के पैदा करने के लिये उठाई जाती है, जन्नत में ये सारी जिनसें ख़ुद-ब-ख़ुद मुहैया होंगी, वहाँ किसी को खेती की ज़रूरत ही क्या होगी और किसी को ख़्वाह-म-ख़्वाह खेती ही से मुहब्बत हो तो उसके लिये यह भी हो जायेगा जैसा कि तबरानी की हदीस की कुछ रिवायतों में है कि जन्नत वालों में से एक शख़्स खेती की तमन्ना करेगा तो सारा खेती का सामान जमा कर दिया जायेगा, फिर खेती का बोना, लगाना, पकना और काटना ये सब चन्द मिनट में होकर सामने आ जायेगा। इसलिये आख़िरत की नेमतों में सिर्फ़ जन्नत और जन्नत की हूरों का ज़िक्र कर देना काफ़ी समझा गया, क्योंकि जन्नत वालों के लिये क़ुरआने करीम में यह वायदा भी है कि:

وَفِيهَا مَا تَشْتَهِيهِ الْأَنفُسُ. (٤٣:٧١)

यानी उनको हर वह चीज़ मिलेगी जिसकी वे इच्छा करेंगे।

इस जामे ऐलान के बाद किसी ख़ास नेमत के ज़िक्र करने की ज़रूरत नहीं रहती लेकिन उनमें से चन्द मख़्सूस नेमतों का ज़िक्र कर दिया गया जो हर जन्नती को बिना माँगे मिलेंगी, यानी जन्नत के हरे-भरे बाग़ात और हसीन व जमील औरतें, और इन जामे नेमतों के बाद एक सबसे बड़ी नेमत का ज़िक्र किया गया जिसका आ़म तौर पर इनसान को तसव्वुर भी नहीं होता और वह अल्लाह तआ़ला की हमेशा की रज़ा व ख़ुशनूदी है जिसके बाद नाराज़ी का ख़तरा नहीं रहता। चुनाँचे हदीस में है कि जब सब जन्नती जन्नत में पहुँचकर ख़ुश व मुत्मईन हो चुकेंगे और कोई तमन्ना न रहेगी जो पूरी न कर दी गई हो तो उस वक़्त हक़ तआ़ला ख़ुद उन जन्नत वालों को ख़िताब फ़रमायेंगे कि अब तुम राज़ी और मुत्मईन हो? किसी और चीज़ की ज़रूरत तो नहीं? वे अ़र्ज़ करेंगे कि ऐ हमारे परवर्दिगार! आपने इतनी नेमतें अ़ता फ़रमा दी हैं कि इसके बाद और किसी चीज़ की क्या ज़रूरत रह सकती है। हक़ तआ़ला फ़रमायेंगे कि अब मैं तुमको इन सब नेमतों से ऊँची और आला एक और नेमत देता हूँ, वह यह कि तुम सब को मेरी रज़ा और निकटता हमेशा के लिये हासिल है, अब नाराज़ी का कोई ख़तरा नहीं। इसलिये जन्नत की नेमतों के छिन जाने का या कम हो जाने का भी ख़तरा नहीं।

इन्हीं दो आयतों का ख़ुलासा है जो नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमायाः

اَلدُّنْيَا مَلْعُوْنَةٌ وَمَلْعُوْنٌ مَا فِيْهَا إِلَّا مَا ابْتُغِيَ بِهِ وَجْهُ اللّٰهِ وَفِيْ رِوَايَةٍ إِلَّا ذِكْرُ اللّٰهِ وَمَا وَالَاهُ أَوْ عَالِمًا أَوْ مُتَعَلِّمًا.

"दुनिया मलऊन है और जो कुछ इसमें है वह भी मलऊन है सिवाय उन चीज़ों के जिनको अल्लाह तआ़ला की रज़ा हासिल करने का ज़रिया बना लिया जाये। और एक रिवायत में यह है कि सिवाय ज़िक्रुल्लाह के और उस चीज़ के जो अल्लाह तआ़ला को पसन्द हो, और सिवाय आ़लिम और तालिबे इल्म के।"

यह हदीस इब्ने माजा और तबरानी ने हज़रत अबू हुरैरह रज़ियल्लाहु अ़न्हु की रिवायत से नक़ल फ़रमाई है।

شَهِدَ اللّٰهُ اَنَّهٗ لَآ اِلٰهَ اِلَّا هُوَ ۙ وَ الْمَلٰٓئِكَةُ وَاُولُوا الْعِلْمِ قَآئِمًا ۢ بِالْقِسْطِ ۭ لَآ اِلٰهَ اِلَّا هُوَ الْعَزِيْزُ الْحَكِيْمُ ۝ اِنَّ الدِّيْنَ عِنْدَ اللّٰهِ الْاِسْلَامُ ۣ وَمَا اخْتَلَفَ الَّذِيْنَ اُوْتُوا الْكِتٰبَ اِلَّا مِنْۢ بَعْدِ مَا جَآءَهُمُ الْعِلْمُ بَغْيًا ۢ بَيْنَهُمْ ۭ وَمَنْ يَّكْفُرْ بِاٰيٰتِ اللّٰهِ فَاِنَّ اللّٰهَ سَرِيْعُ الْحِسَابِ ۝

शहिदल्लाहु अन्नहू ला इला-ह इल्ला हु-व वल्मलाइ-कतु व उलुल्-अ़िल्मि	अल्लाह ने गवाही दी कि किसी की बन्दगी नहीं उसके सिवा और फ़रिश्तों ने

क़ा-इमम् बिल्किस्ति, ला इला-ह इल्ला हुवल्-अज़ीज़ुल् हकीम (18) ● इन्नद्दी-न अिन्दल्लाहिल् इस्लामु, व मख़्त-लफ़ल्लज़ी-न ऊतुल्-किता-ब इल्ला मिम्-बअ्दि मा जा-अहुमुल् अिल्मु बग़्यम् बैनहुम, व मंय्यक्फ़ुर् बिआयातिल्लाहि फ़-इन्नल्ला-ह सरीअुल् हिसाब (19)	और इल्म वालों ने भी, वही हाकिम इन्साफ़ का है, किसी की बन्दगी नहीं सिवाय उसके, ज़बरदस्त है हिक्मत वाला। (18) ● बेशक दीन जो है अल्लाह के यहाँ सो यही मुसलमानी हुक्मबरदारी (इस्लाम पर चलना), और मुख़ालिफ़ नहीं हुए किताब वाले मगर जब उनको मालूम हो चुका आपस की ज़िद और हसद (जलन) से, और जो कोई इनकार करे अल्लाह के हुक्मों का तो अल्लाह जल्दी हिसाब लेने वाला है। (19)

इन आयतों का पीछे से ताल्लुक़

पहली आयतों में तौहीद का बयान हुआ है, मज़कूरा आयतों में से पहली आयत में भी अल्लाह की तौहीद का मज़मून एक ख़ास अन्दाज़ से बयान फ़रमाया गया है कि उस पर तीन शहादतों (गवाहियों) का ज़िक्र है- एक ख़ुद अल्लाह जल्ल शानुहू की गवाही, दूसरे उसके फ़रिश्तों की, तीसरे इल्म वालों की। अल्लाह जल्ल शानुहू की गवाही तो बतौर मजाज़ (काल्पित) है, मुराद यह है कि अल्लाह जल्ल शानुहू की ज़ात व सिफ़ात और उसकी तमाम निशानियाँ और कारीगरी अल्लाह तआ़ला की तौहीद की खुली निशानियाँ हैं:

हर गयाहे कि अज़ ज़मीं रूयद वह्दहू ला शरी-क लहू गोयद

हर उगने वाली चीज़ (यहाँ तक कि मामूली घास भी) जब ज़मीन से उगती है तो यही कहती है कि वह अकेला है, उसका कोई शरीक नहीं। मुहम्मद इमरान क़ासमी बिज्ञानवी

इसके अ़लावा उसकी तरफ़ से भेजे हुए रसूल और किताबें भी उसकी तौहीद पर गवाह और सुबूत हैं, और ये सब चीज़ें हक़ तआ़ला की तरफ़ से हैं, तो गोया ख़ुद उसकी गवाही इस बात पर है कि उसके सिवा कोई इबादत के लायक़ नहीं।

दूसरी शहादत (गवाही) फ़रिश्तों की ज़िक्र की गई है, जो अल्लाह तआ़ला के मुक़र्रब (ख़ास, क़रीबी) और उसके तकवीनी उमूर के कारिन्दे हैं, वे सब कुछ जानकर और देखकर शहादत (गवाही) देते हैं कि इबादत के लायक़ अल्लाह तआ़ला शानुहू के सिवा कोई नहीं।

तीसरी शहादत (गवाही) इल्म वालों की है कि इल्म वालों से मुराद अम्बिया अलैहिमुस्सलाम और आ़म उलेमा-ए-इस्लाम हैं। इसीलिये इमाम ग़ज़ाली और इमाम इब्ने कसीर रहमतुल्लाहि अ़लैहिमा ने फ़रमाया कि इसमें उलेमा की बड़ी फ़ज़ीलत है कि अल्लाह तआ़ला ने उनकी शहादत (गवाही) को अपनी और अपने फ़रिश्तों की शहादत के साथ ज़िक्र फ़रमाया, और यह भी हो सकता है कि इल्म वालों से मुतलक़ वे लोग मुराद हों जो इल्मी उसूल पर सही नज़र करके या

कायनाते आलम में ग़ौर व फ़िक्र करके हक़ तआ़ला की वह्दानियत (एक माबूद होने) का इल्म हासिल कर सकें, अगरचे वे ज़ाब्ते के आ़लिम न हों। और दूसरी आयत में अल्लाह के नज़दीक सिर्फ़ दीने इस्लाम का मक़बूल होना, इसके सिवा किसी दीन व मज़हब का मक़बूल न होना बयान करके तौहीद के मज़मून को पूरा फ़रमाया, और इससे इख़्तिलाफ़ करने वालों की तबाह हाली बयान फ़रमाई। मुख़्तसर तफ़सीर इन दोनों आयतों की यह है:

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

गवाही दी है अल्लाह तआ़ला ने (आसमानी किताबों में) इस (मज़मून) की कि सिवाय उस (पाक) ज़ात के कोई माबूद होने के लायक़ नहीं, और फ़रिश्तों ने भी (अपने ज़िक्र व तस्बीह में इसकी गवाही दी है, क्योंकि उनके अज़कार तौहीद से भरे हुए हैं) और (दूसरे) इल्म वालों ने भी, (अपनी तक़रीरों व तहरीरों में इसकी गवाही दी है, जैसा कि ज़ाहिर है) और माबूद भी वह इस शान के हैं कि (हर चीज़ का) एतिदाल के साथ इन्तिज़ाम रखने वाले हैं। (और फिर कहा जाता है कि) उनके सिवा कोई माबूद होने के लायक़ नहीं, वह ज़बरदस्त हैं, हिक्मत वाले हैं। बेशक (हक़ और मक़बूल) दीन अल्लाह तआ़ला के नज़दीक सिर्फ़ इस्लाम ही है, और (उसके हक़ होने में अहले इस्लाम के साथ) अहले किताब ने जो इख़्तिलाफ़ किया (इस तरह से कि इस्लाम को बातिल कहा) तो ऐसी हालत के बाद कि उनको (इस्लाम के हक़ होने की) दलील पहुँच चुकी थी सिर्फ़ एक-दूसरे से बढ़ने की वजह से (यानी इस्लाम के हक़ होने में कोई वजह शुब्हे की नहीं हुई, बल्कि उनमें माद्दा दूसरों से बड़ा बनने का है और इस्लाम लाने में यह सरदारी जो उनको अब अ़वाम पर हासिल है ख़त्म होती थी, इसलिए इस्लाम को क़ुबूल नहीं किया, बल्कि उल्टा उसको बातिल बतलाने लगे) और जो शख़्स अल्लाह तआ़ला के अहकाम का इनकार करेगा (जैसे उन लोगों ने किया) तो इसमें कोई शुब्हा नहीं कि अल्लाह तआ़ला बहुत जल्द उसका हिसाब लेने वाले हैं (और ज़ाहिर है कि ऐसे शख़्स के हिसाब का अन्जाम अ़ज़ाब होगा)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

आयत 'शहिदल्लाहु......' के फ़ज़ाईल

यह आयते शहादत (गवाही की आयत) एक ख़ास शान रखती है। इमामे तफ़सीर अ़ल्लामा बग़वी रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने नक़ल किया है कि यहूदियों के दो बड़े आ़लिम मुल्के शाम से मदीना तय्यिबा में आये, मदीना की बस्ती को देखकर आपस में तज़किरा करने लगे कि यह बस्ती तो इस तरह की है जिसके लिये तौरात में भविष्यवाणी आई है कि उसमें आख़िरी ज़माने के नबी क़ियाम करेंगे। उसके बाद उनको इत्तिला मिली कि यहाँ कोई बुज़ुर्ग हैं जिनको लोग नबी कहते हैं, ये हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की ख़िदमत में हाज़िर हुए। आप पर नज़र पड़ते ही वे तमाम सिफ़तें (निशानियाँ) सामने आ गईं जो तौरात में आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व

सल्लम के लिये बतलाई गई थीं। हाज़िर होकर अ़र्ज़ किया कि आप मुहम्मद हैं? आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया हाँ। फिर अ़र्ज़ किया कि आप अहमद हैं? आपने फ़रमाया हाँ मैं मुहम्मद हूँ और अहमद हूँ। फिर अ़र्ज़ किया कि हम आप से एक सवाल करते हैं अगर आप उसका सही जवाब दें तो हम ईमान ले आयेंगे। आपने फ़रमाया पूछो। उन्होंने सवाल किया कि अल्लाह तआ़ला की किताब में सबसे बड़ी शहादत (गवाही) कौनसी है? इस सवाल के जवाब के लिये यह आयते शहादत नाज़िल हुई। आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने उनको पढ़कर सुना दी ये दोनों उसी वक़्त मुसलमान हो गये।

मुस्नद अहमद की हदीस में है कि अ़रफ़ात के मैदान में रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने यह आयत पढ़ी तो इसके बाद फ़रमायाः

وَاَنَا عَلٰى ذٰلِكَ مِنَ الشّٰهِدِيْنَ يَا رَبِّ. (ابن کثیر)

"यानी ऐ परवर्दिगार! मैं भी इस पर शाहिद (गवाह) हूँ।"

और इमाम आमश रहमतुल्लाहि अ़लैहि की एक रिवायत से मालूम हुआ कि जो शख़्स इस आयत की तिलावत के बाद यह कहे 'व अ-न अ़ला ज़ालि-क मिनश्शाहिदीन' तो अल्लाह तआ़ला क़ियामत के दिन फ़रिश्तों से फ़रमायेंगे कि "मेरे बन्दे ने एक अ़हद किया है और मैं अ़हद पूरा करने वालों में सबसे ज़्यादा हूँ इसलिये मेरे बन्दे को जन्नत में दाख़िल करो।"

(तफ़सीर इब्ने कसीर)

और हज़रत अबू अय्यूब अन्सारी रज़ियल्लाहु अ़न्हु की हदीस में है कि रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि जो शख़्स हर फ़र्ज़ नमाज़ के बाद सूरः फ़ातिहा और आयतुल-कुर्सी और आयत 'शहिदल्लाहु.....' (सूरः आले इमरान की आयत 18) और 'क़ुलिल्लाहुम्-म मालिकल् मुल्कि..................... बिग़ैरि हिसाब' (यानी सूरः आले इमरान की आयत 26 और 27 पूरी) तक पढ़ा करे तो अल्लाह तआ़ला उसके सब गुनाह माफ़ फ़रमायेंगे और जन्नत में जगह देंगे और उसकी सत्तर हाजतें पूरी फ़रमायेंगे, जिनमें से कम से कम हाजत उसकी मग़फ़िरत है। (तफ़सीर रूहुल-मआ़नी, दैलमी के हवाले से)

'दीन' और 'इस्लाम' के अलफ़ाज़ की वज़ाहत

अ़रबी ज़बान में लफ़्ज़ 'दीन' के चन्द मायने हैं जिनमें से एक मायने हैं तरीक़ा और चलन। क़ुरआन की इस्तिलाह में लफ़्ज़ दीन उन उसूल व अहकाम के लिये बोला जाता है जो हज़रत आदम अ़लैहिस्सलाम से ख़ातिमुल-अम्बिया हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम तक सब अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम में साझा और संयुक्त हैं। और लफ़्ज़ "शरीअ़त" या "मिन्हाज" या बाद की इस्तिलाह में लफ़्ज़ "मज़हब" फ़ुरूई (इन उसूल से निकलने वाले) अहकाम के लिये बोले जाते हैं जो मुख़्तलिफ़ ज़मानों और मुख़्तलिफ़ उम्मतों में मुख़्तलिफ़ (अलग-अलग) चले आये हैं। क़ुरआने करीम का इरशाद हैः

شَرَعَ لَكُمْ مِنَ الدِّيْنِ مَا وَصّٰى بِهٖ نُوْحًا. (۴۲:۱۳)

"यानी अल्लाह तआला ने तुम्हारे लिये वही दीन जारी फ़रमाया जिसकी वसीयत तुम से पहले हज़रत नूह अलैहिस्सलाम को और दूसरे अम्बिया अलैहिमुस्सलाम को की गई थी।"

इससे मालूम हुआ कि दीन सब अम्बिया (नबियों) का एक ही था, यानी अल्लाह तआला की ज़ात के जामे कमालात और तमाम नुक़्सों व कमियों से पाक होने और उसके सिवा किसी का लायक़े इबादत न होने पर दिल से ईमान और ज़बान से इक़रार, क़ियामत के दिन और उसमें हिसाब व किताब और जज़ा व सज़ा और जन्नत व दोज़ख़ पर दिल से ईमान लाना और ज़बान से इक़रार करना, उसके भेजे हुए हर नबी व रसूल और उनके लाये हुए अहकाम पर उसी तरह ईमान लाना।

और लफ़्ज़ "इस्लाम" के असली मायने हैं अपने आपको अल्लाह तआला के सुपुर्द कर देना और उसके फ़रमान के ताबे होना। इस मायने के एतिबार से हर नबी व रसूल के ज़माने में जो लोग उन पर ईमान लाये और उनके लाये हुए अहकाम में उनकी फ़रमाँबरदारी की वे सब मुसलमान और मुस्लिम कहलाने के मुस्तहिक़ थे, और उनका दीन दीने इस्लाम था। इसी मायने के लिहाज़ से हज़रत नूह अलैहिस्सलाम ने फ़रमायाः

وَاُمِرْتُ اَنْ اَكُوْنَ مِنَ الْمُسْلِمِيْنَ. (سورة يونس ۷۲)

(देखिये सूरः यूनुस आयत 72) और इसी लिये हज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलाम ने अपने आपको और अपनी उम्मत को उम्मते मुस्लिमा फ़रमायाः

رَبَّنَا وَاجْعَلْنَا مُسْلِمَيْنِ لَكَ وَمِنْ ذُرِّيَّتِنَآ اُمَّةً مُّسْلِمَةً لَّكَ. (سورة بقرة:۱۲۸)

(देखिये सूरः ब-क़रह आयत 128) और हज़रत ईसा अलैहिस्सलाम के हवारियों ने इसी मायने के एतिबार से कहा थाः

وَاشْهَدْ بِاَنَّا مُسْلِمُوْنَ. (سورة آل عمران: ۵۲)

(देखिये सूरः आले इमरान आयत 52) और कई बार यह लफ़्ज़ ख़ुसूसियत से उस दीन व शरीअत के लिये बोला जाता है जो सबसे आख़िर में ख़ातिमुल-अम्बिया सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम लेकर आये, और जिसने पिछली तमाम शरीअतों को मन्सूख़ (निरस्त और अमल के लिये ख़त्म) कर दिया और जो क़ियामत तक बाक़ी रहेगा। इस मायने के एतिबार से यह लफ़्ज़ सिर्फ़ दीने मुहम्मदी और उम्मते मुहम्मदिया के लिये ख़ास तौर पर बोला जाता है। हज़रत जिब्राईल अलैहिस्सलाम की एक हदीस जो हदीस की तमाम किताबों में मशहूर है, उसमें रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने इस्लाम की यही ख़ास तफ़सीर बयान फ़रमाई है। ज़िक्र हुई आयत के लफ़्ज़ "अल्-इस्लाम" में भी दोनों मायने का एहतिमाल (गुमान व संभावना) है। पहले मायने लिये जायें तो मतलब यह होगा कि अल्लाह तआला के नज़दीक मक़बूल दीन सिर्फ़ दीने इस्लाम है, यानी अपने आपको अल्लाह तआला के फ़रमान के ताबे बनाना और हर ज़माने में

जो रसूल आये और वह जो कुछ अहकाम लाये उस पर ईमान लाना और उसकी तामील करना। इसमें दीने मुहम्मदी की अगरचे तख़्सीस नहीं लेकिन आम कायदे के मातहत हज़रत सैयदुल-अम्बिया सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के तशरीफ़ लाने के बाद उन पर और उनके लाये हुए तमाम अहकाम पर ईमान व अमल भी इसमें दाख़िल हो जाता है, जिसका हासिल यह होगा कि नूह अलैहिस्सलाम के ज़माने में मक़बूल दीन वह था जो नूह अलैहिस्सलाम लाये, और हज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलाम के ज़माने में वह जो इब्राहीम अलैहिस्सलाम लेकर आये, इसी तरह हज़रत मूसा अलैहिस्सलाम के ज़माने का इस्लाम वह था जो तौरात की तख़्तियों और हज़रत मूसा की तालीमात की सूरत में आया, और ईसा अलैहिस्सलाम के ज़माने का इस्लाम वह था जो इन्जील और ईसवी इरशादात के रंग में नाज़िल हुआ, और आख़िर में ख़ातिमुल-अम्बिया सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के ज़माने का इस्लाम वह होगा जो क़ुरआन व सुन्नत के बतलाये हुए नक़्शे पर मुरत्तब हुआ।

ख़ुलासा यह हुआ कि हर नबी के ज़माने में उनका लाया हुआ दीन ही दीने इस्लाम और अल्लाह के नज़दीक मक़बूल था, जो बाद में एक के बाद दूसरा मन्सूख़ होता चला आया, आख़िर में ख़ातिमुल्-अम्बिया सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम का दीन दीने इस्लाम कहलाया जो कियामत तक बाक़ी रहेगा। और अगर इस्लाम के दूसरे मायने लिये जायें यानी वह शरीअत जो हज़रत ख़ातिमुल-अम्बिया सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम लेकर तशरीफ़ लाये तो आयत का मतलब यह हो जाता है कि इस ज़माने में सिर्फ़ वही इस्लाम मक़बूल है जो नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की तालीमात के मुताबिक़ है, पिछले दीनों को भी अगरचे उनके दौर और ज़माने में इस्लाम कहा जाता था, मगर अब वे मन्सूख़ (ख़त्म) हो चुके हैं और दोनों सूरतों में नतीजा-ए-कलाम एक ही है कि हर पैग़म्बर के ज़माने में अल्लाह के नज़दीक मक़बूल दीन वह इस्लाम है जो उस पैग़म्बर की वही और तालीमात के मुताबिक़ हो, उसके सिवा दूसरा कोई दीन मक़बूल नहीं, चाहे वह पिछली मन्सूख़ हुई (निरस्त शुदा) शरीअत ही हो, अगले ज़माने के लिये वह इस्लाम कहलाने की हक़दार नहीं।

हज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलाम की शरीअत उनके ज़माने में इस्लाम थी, मूसा अलैहिस्सलाम के ज़माने में उस शरीअत के जो अहकाम मन्सूख़ हो गये वे अब इस्लाम नहीं रहे, इसी तरह ईसा अलैहिस्सलाम के ज़माने में शरीअते मूसवी का अगर कोई हुक्म मन्सूख़ हुआ है तो वह अब इस्लाम नहीं, ठीक इसी तरह ख़ातिमुल-अम्बिया सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के ज़माने में पहली शरीअतों के जो अहकाम मन्सूख़ हो गये वे अब इस्लाम नहीं रहे। इसलिये जो उम्मत क़ुरआन की मुख़ातब है उसके लिये इस्लाम के मायने आम लिये जायें या ख़ास, दोनों का हासिल यही है कि रसूले करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की बेसत (नबी बनकर तशरीफ़ लाने) के बाद सिर्फ़ दीने इस्लाम कहलाने का मुस्तहिक़ वह है जो क़ुरआन और नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की तालीमात के मुताबिक़ हो और वही अल्लाह के नज़दीक मक़बूल है, उसके सिवा कोई

दीन मक़बूल और निजात का ज़रिया नहीं। यह मज़मून क़ुरआन मजीद की बेशुमार आयतों में विभिन्न उनवानों से आया है। एक आयत के अलफ़ाज़ में इस तरह बयान हुआ है:

وَمَنْ يَّبْتَغِ غَيْرَ الْاِسْلَامِ دِيْنًا فَلَنْ يُّقْبَلَ مِنْهُ. (٨٥:٣)

"यानी जो शख़्स इस्लाम के सिवा कोई दीन इख़्तियार करेगा तो वह उससे क़ुबूल न किया जायेगा, उसके ताबे जो अ़मल किया जायेगा वह ज़ाया (बेकार) होगा।"

इस ज़माने में निजात इस्लाम में सीमित है, ग़ैर-मुस्लिम के नेक आमाल और अच्छे अख़्लाक़ भी मक़बूल नहीं

इन आयतों ने पूरी स्पष्टता के साथ उस बेदीनी के नज़रिये का ख़ात्मा कर दिया जिसमें इस्लाम की रवादारी (सद्भावना) के नाम पर कुफ़्र व इस्लाम को एक करने की कोशिश की गई है, और यह क़रार दिया गया है कि दुनिया का हर मज़हब चाहे यहूदियत व ईसाईयत हो या बुतपरस्ती, हर एक निजात का ज़रिया और रास्ता बन सकता है बशर्तेकि नेक आमाल और अच्छे अख़्लाक़ का पाबन्द हो। और यह दर हक़ीक़त इस्लाम के उसूल को तबाह और पामाल करना है, जिसका हासिल यह हो जाता है कि इस्लाम की कोई हक़ीक़त ही नहीं, महज़ एक ख़्याली चीज़ है जो कुफ़्र के हर लिबास और शक्ल में भी खप सकता है। क़ुरआने करीम की इन आयतों और इन्हीं जैसी बेशुमार आयतों ने खोलकर बतला दिया है कि जिस तरह उजाला और अंधेरा एक नहीं हो सकते इसी तरह यह बात निहायत नामाक़ूल और नामुम्किन है कि अल्लाह तआ़ला को अपनी नाफ़रमानी और बग़ावत भी ऐसे ही पसन्द हो जैसे इताअ़त व फ़रमाँबरदारी। जो शख़्स इस्लाम के उसूल में से किसी एक चीज़ का मुन्किर (इनकार करने वाला) है वह बिला शुब्हा ख़ुदा तआ़ला का बाग़ी और उसके रसूलों का दुश्मन है, चाहे फ़ुरूई आमाल (ज़ाहिरी कामों) और रस्मी अख़्लाक़ में वह कितना ही अच्छा नज़र आये, आख़िरत की निजात का मदार सब से पहले अल्लाह तआ़ला और उसके रसूल सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की फ़रमाँबरदारी पर है, जो इससे मेहरूम रहा उसके किसी अ़मल का एतिबार नहीं। क़ुरआन मजीद में ऐसे ही लोगों के आमाल के बारे में इरशाद है:

فَلَا نُقِيْمُ لَهُمْ يَوْمَ الْقِيٰمَةِ وَزْنًا. (١٠٥:١٨)

"यानी हम क़ियामत के दिन उनके किसी अ़मल का वज़न क़ायम न करेंगे।"

इस आयत में और इससे पिछली आयतों में चूँकि ख़िताब अहले किताब (यहूदियों व ईसाईयों) से है इसलिये आयत के आख़िर में उनकी बेवक़ूफ़ी और ग़लत चलन को इस तरह बयान फ़रमाया है:

وَمَا اخْتَلَفَ الَّذِيْنَ اُوْتُوا الْكِتٰبَ اِلَّا مِنْۢ بَعْدِ مَا جَآءَهُمُ الْعِلْمُ بَغْيًاۢ بَيْنَهُمْ.

"यानी अहले किताब ने जो ख़ातिमुल-अम्बिया सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की नुबुव्वत

और इस्लाम में जो झगड़ा और इख़्तिलाफ़ डाला तो वह इस वजह से नहीं कि उनको कोई इस मामले में शक व शुब्हा रह गया, बल्कि उनको अपनी किताब तौरात व इन्जील से और दूसरे माध्यमों से पूरी तरह इस्लाम और पैग़म्बरे इस्लाम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की हक़्क़ानियत (सच्चा और हक़ होने) का इल्म हो चुका था लेकिन मुसलमानों से हसद (जलन) और रुतबे व माल की मुहब्बत ने उनको इस इख़्तिलाफ़ (झगड़े और मुख़ालफ़त करने) में मुब्तला किया है।"

आख़िर में फ़रमाया है:

وَمَنْ يَّكْفُرْ بِاٰيٰتِ اللّٰهِ فَاِنَّ اللّٰهَ سَرِيْعُ الْحِسَابِ○

"यानी जो शख़्स अल्लाह तआ़ला की आयतों का इनकार करता है तो अल्लाह तआ़ला जल्द उससे हिसाब लेने वाले हैं।" अव्वल तो मरने के बाद उस आ़लम का 'दाख़िला इम्तिहान' क़ब्र के उस आ़लम में होगा जिसको बर्ज़ख़ कहा जाता है और फिर तफ़सीली हिसाब क़ियामत में। उस हिसाब व किताब के वक़्त सब झगड़ों की हक़ीक़त खुल जायेगी, बातिल परस्तों को अपनी हक़ीक़त वाज़ेह हो जायेगी और फिर उसकी सज़ा सामने आ जायेगी।

فَاِنْ حَآجُّوْكَ فَقُلْ اَسْلَمْتُ وَجْهِيَ لِلّٰهِ وَمَنِ اتَّبَعَنِ ؕ
وَقُلْ لِّلَّذِيْنَ اُوْتُوا الْكِتٰبَ وَالْاُمِّيّٖنَ ءَاَسْلَمْتُمْ ؕ فَاِنْ اَسْلَمُوْا فَقَدِ اهْتَدَوْا ۚ وَاِنْ تَوَلَّوْا فَاِنَّمَا
عَلَيْكَ الْبَلٰغُ ؕ وَاللّٰهُ بَصِيْرٌۢ بِالْعِبَادِ ۞

फ़-इन् हाज्जू-क फ़क़ुल् अस्लम्तु वज्हि-य लिल्लाहि व मनित्त-ब-अ़नि, व क़ुल् लिल्लज़ी-न ऊतुल्-किता-ब वल्-उम्मिय्यी-न अ-अस्लम्तुम्, फ़-इन् अस्लमू फ़-क़दिहतदौ व इन् तवल्लौ फ़-इन्नमा अ़लैकल्-बलाग़ु, वल्लाहु बसीरुम् बिल्-अ़िबाद (20) ❁	फिर भी अगर तुझसे झगड़ें तो कह दे- मैंने ताबे किया अपना मुँह अल्लाह के हुक्म पर और उन्होंने भी कि जो मेरे साथ हैं। और कह दे किताब वालों को और अनपढ़ों को कि क्या तुम भी ताबे होते हो? फिर अगर वे ताबे हुए तो उन्होंने राह सीधी पाई, और अगर मुँह फेरें तो तेरे ज़िम्मे सिर्फ़ पहुँचा देना है, और अल्लाह की निगाह में हैं बन्दे। (20) ❁

इन आयतों के मज़मून का पीछे से ताल्लुक़

सूरत के शुरू में तौहीद (अल्लाह के एक होने) को साबित करने और तस्लीस (तीन ख़ुदाओं के वजूद और मानने) का रद्द किया गया था। इन आयतों में मुश्रिकों और इनकारी अहले किताब की हुज्जतों का जवाब दिया गया है:

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

(इस्लाम के हक़ होने पर दलील क़ायम होने के बाद) फिर भी अगर ये लोग आप से (ख़्वाह-म-ख़्वाह की) हुज्जतें निकालें तो आप (जवाब में) फ़रमा दीजिए कि (तुम मानो या न मानो) मैं तो अपना रुख़ ख़ास अल्लाह की तरफ़ कर चुका और जो मेरी पैरवी करने वाले थे वे भी (अपना रुख़ ख़ास अल्लाह की तरफ़ कर चुके। यह इशारा इस तरफ़ है कि हम सब इस्लाम इख़्तियार कर चुके, जिसमें माबूद का एतिक़ाद रखने के एतिबार से दिल का रुख़ ख़ास अल्लाह ही की तरफ़ होता है, क्योंकि दूसरे धर्मों में कुछ-कुछ शिर्क हो गया था)। और (इस जवाब के बाद पूछने के तौर पर) कहिये अहले किताब से और अ़रब (के मुश्रिकों) से कि क्या तुम भी इस्लाम लाते हो? सो अगर वे लोग इस्लाम ले आएँ तो वे लोग भी (सही) रास्ते पर आ जाएँगे, और अगर वे लोग (इससे बदस्तूर) मुँह मोड़ें तो (आप उसका भी ग़म न कीजिए, क्योंकि) आपके ज़िम्मे सिर्फ़ (अल्लाह के अहकाम का) पहुँचा देना है, और (आगे) अल्लाह तआ़ला ख़ुद देख (और समझ) लेंगे (अपने) बन्दों को (आप से कोई पूछताछ नहीं है)।

إِنَّ الَّذِينَ يَكْفُرُونَ بِآيَاتِ اللَّهِ وَيَقْتُلُونَ النَّبِيِّينَ
بِغَيْرِ حَقٍّ وَيَقْتُلُونَ الَّذِينَ يَأْمُرُونَ بِالْقِسْطِ مِنَ النَّاسِ فَبَشِّرْهُمْ بِعَذَابٍ أَلِيمٍ ۝ أُولَٰئِكَ
الَّذِينَ حَبِطَتْ أَعْمَالُهُمْ فِي الدُّنْيَا وَالْآخِرَةِ وَمَا لَهُمْ مِنْ نَاصِرِينَ ۝

इन्नल्लज़ी-न यक्फ़ुरू-न बिआयातिल्लाहि व यक़्तुलूनन्नबिय्यी-न बिग़ैरि हक़्क़िंव्-व यक़्तुलूनल्लज़ी-न यअ्मुरू-न बिल्क़िस्ति मिनन्नासि फ़-बश्शिर्हुम् बि-अ़ज़ाबिन् अलीम (21) उलाइ-कल्लज़ी-न हबितत् अअ्मालुहुम् फ़िद्दुन्या वल्-आख़ि-रति व मा लहुम् मिन्-नासिरीन (22)	जो लोग इनकार करते हैं अल्लाह के हुक्मों का और क़त्ल करते हैं पैग़म्बरों को नाहक़ और क़त्ल करते हैं उनको जो हुक्म करते हैं इन्साफ़ करने का लोगों में से, सो ख़ुशख़बरी सुना दे उनको दर्दनाक अ़ज़ाब की। (21) यही हैं जिनकी मेहनत ज़ाया हुई दुनिया में और आख़िरत में, और कोई नहीं उनका मददगार। (22)

इन आयतों के मज़मून का पीछे से सम्बन्ध

सूरत के शुरू में कलाम का ज़्यादा रुख़ ईसाईयों की तरफ़ था, फिर ऊपर की आयत में:

الَّذِينَ أُوتُوا الْكِتَابَ

"वे लोग जिन्हें किताब दी गयी है" का उनवान ईसाईयों और यहूदियों दोनों को शामिल

था। अब इन आयतों में यहूदियों के कुछ ख़ास हालात का बयान है। तफ़सीर 'रूहुल-मआनी' में इब्ने अबी हातिम रह. की रिवायत से इस आयत की तफ़सीर में ख़ुद हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से नक़ल किया गया है कि बनी इस्राईल ने तैंतालिस नबियों को एक वक़्त में क़त्ल किया, उनकी नसीहत के लिये एक सौ सत्तर बुज़ुर्ग खड़े हुए, उसी दिन उनका भी काम तमाम कर दिया। (बयानुल-क़ुरआन)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

बेशक जो लोग कुफ़्र करते हैं अल्लाह तआ़ला की आयतों के साथ (जैसे यहूदी लोग इन्जील और क़ुरआन को नहीं मानते थे) और क़त्ल करते हैं पैग़म्बरों को (और वह क़त्ल करना उनके ख़्याल में भी) नाहक़ (होता है) और (तथा) क़त्ल करते हैं ऐसे शख़्सों को जो (कामों व अख़्लाक़ के) एतिदाल की तालीम देते हैं, सो ऐसे लोगों को ख़बर सुना दीजिए एक दर्दनाक सज़ा की। (और) ये वे लोग हैं कि (ज़िक्र हुए कामों के कुल मजमूए के सबब से) उनके सब (नेक) आमाल ग़ारत हो गए दुनिया में (भी) और आख़िरत में (भी) और (सज़ा के वक़्त) उनका कोई हिमायती और मददगार न होगा।

أَلَمْ تَرَ إِلَى الَّذِينَ أُوتُوا نَصِيبًا

مِّنَ الْكِتَٰبِ يُدْعَوْنَ إِلَىٰ كِتَٰبِ اللَّهِ لِيَحْكُمَ بَيْنَهُمْ ثُمَّ يَتَوَلَّىٰ فَرِيقٌ مِّنْهُمْ وَهُم مُّعْرِضُونَ ۝ ذَٰلِكَ بِأَنَّهُمْ قَالُوا لَن تَمَسَّنَا النَّارُ إِلَّا أَيَّامًا مَّعْدُودَٰتٍ ۖ وَغَرَّهُمْ فِي دِينِهِم مَّا كَانُوا يَفْتَرُونَ ۝ فَكَيْفَ إِذَا جَمَعْنَٰهُمْ لِيَوْمٍ لَّا رَيْبَ فِيهِ وَوُفِّيَتْ كُلُّ نَفْسٍ مَّا كَسَبَتْ وَهُمْ لَا يُظْلَمُونَ ۝

अलम् त-र इलल्लज़ी-न ऊतू नसीबम् मिनल्-किताबि युद्औ-न इला किताबिल्लाहि लि-यह्कु-म बैनहुम् सुम्-म य-तवल्ला फ़रीक़ुम् मिन्हुम् व हुम् मुअ़्रिज़ून (23) ज़ालि-क बि-अन्नहुम् क़ालू लन् तमस्स-नन्नारु इल्ला अय्यामम् मअ़्दूदातिंव्-व ग़र्रहुम् फ़ी दीनिहिम् मा कानू	क्या न देखा तूने उन लोगों को जिनको मिला कुछ एक हिस्सा किताब का, उनको बुलाते हैं अल्लाह की किताब की तरफ़ ताकि वह किताब उनपर हुक्म करे, फिर मुँह फेरते हैं कुछ उनमें से लापरवाही करके। (23) यह इस वास्ते कि कहते हैं वे- हमको हरगिज़ न लगेगी आग दोज़ख़ की मगर चन्द दिन गिनती के, और बहके हैं अपने दीन में अपनी बनाई बातों पर। (24) फिर क्या हाल होगा जब हम उनको

यफ़्तरून (24) फ़कै-फ़ इज़ा जमअ्नाहुम् लियौमिल् ला रै-ब फ़ीहि, व वुफ़्फ़ियत् कुल्लु नफ़्सिम् मा क-सबत् व हुम् ला युज़्लमून (25)	जमा करेंगे एक दिन कि उसके आने में कुछ शुब्हा नहीं, और पूरा पायेगा हर कोई अपना किया, और उनकी हक़-तल्फ़ी न होगी। (25)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

(ऐ मुहम्मद सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम!) क्या आपने ऐसे लोग नहीं देखे जिनको (आसमानी) किताब (यानी तौरात) का एक (काफ़ी) हिस्सा दिया गया, (कि हिदायत के तालिब होते तो वह हिस्सा इस ग़र्ज़ के पूरा करने के लिये काफ़ी था) और उसी अल्लाह की किताब की तरफ़ इस ग़र्ज़ से उनको बुलाया भी जाता है कि वह उनके दरमियान (मज़हबी झगड़े का) फ़ैसला कर दे, फिर (भी) उनमें से कुछ लोग मुँह मोड़ते हैं बेरुख़ी करते हुए। (और) यह (बेतवज्जोही) इस सबब से है कि वे लोग यूँ कहते हैं (और यही उनका एतिक़ाद है) कि हमको सिर्फ़ गिनती के थोड़े दिनों तक दोज़ख़ की आग लगेगी (फिर मग़फ़िरत हो जायेगी), और उनको धोखे में डाल रखा है उनके दीन के बारे में उनकी गढ़ी हुई बातों ने, (जैसे इसी मन-गढ़त अ़क़ीदे ने उनको धोखा दिया कि हम नबियों की औलाद हैं, इस ख़ानदानी बुज़ुर्गी से हमारी निजात ज़रूर हो जायेगी, इसके नतीजे में वे अल्लाह की किताब से और ज़्यादा बेतवज्जोही बरतने लगे) सो (इन हालात, कामों और कुफ़्रिया बातों के सबब) उनका क्या (बुरा) हाल होगा जबकि हम उनको उस तारीख़ में जमा कर लेंगे जिस (के आने) में ज़रा-सा शुब्हा नहीं, और (उस तारीख़ में) पूरा-पूरा बदला मिल जाएगा (कि बिना जुर्म के या जुर्म से ज़्यादा सज़ा न होगी)।

قُلِ اللّٰهُمَّ مٰلِكَ الْمُلْكِ تُؤْتِي الْمُلْكَ مَنْ تَشَآءُ وَتَنْزِعُ الْمُلْكَ مِمَّنْ تَشَآءُ ز وَتُعِزُّ مَنْ تَشَآءُ وَتُذِلُّ مَنْ تَشَآءُ ط بِيَدِكَ الْخَيْرُ ط اِنَّكَ عَلٰى كُلِّ شَيْءٍ قَدِيْرٌ ۝ تُوْلِجُ الَّيْلَ فِي النَّهَارِ وَتُوْلِجُ النَّهَارَ فِي الَّيْلِ وَتُخْرِجُ الْحَيَّ مِنَ الْمَيِّتِ وَتُخْرِجُ الْمَيِّتَ مِنَ الْحَيِّ ز وَتَرْزُقُ مَنْ تَشَآءُ بِغَيْرِ حِسَابٍ ۝

क़ुलिल्लाहुम्-म मालिकल्मुल्कि तुअ्तिल्-मुल्-क मन् तशा-उ व तन्ज़िअुल्मुल्-क मिम्मन् तशा-उ व तुअिज़्ज़ु मन् तशा-उ व तुज़िल्लु मन्	तू कह या अल्लाह मालिक सल्तनत के! तू सल्तनत देवे जिसको चाहे और सल्तनत छीन लेवे जिससे चाहे, और इज़्ज़त देवे जिसको चाहे और ज़लील करे जिसको चाहे, तेरे हाथ है सब ख़ूबी,

तशा-उ, बि-यदिकल्-ख़ैरु, इन्न-क अ़ला कुल्लि शैइन् क़दीर (26) तूलिजुल्लै-ल फ़िन्नहारि व तूलिजुन्-नहा-र फ़िल्लैलि व तुख़्रिजुल्- हय्-य मिनल्-मय्यिति व तुख़्रिजुल् मय्यि-त मिनल्हय्यि व तरज़ुक़ु मन् तशा-उ बिग़ैरि हिसाब (27)	बेशक तू हर चीज़ पर क़ादिर है। (26) तू दाख़िल करता है रात को दिन में और दाख़िल करे दिन को रात में और तू निकाले ज़िन्दा को मुर्दा से और निकाले मुर्दा को ज़िन्दा से, और तू रिज़्क़ दे जिसको चाहे बेशुमार। (27)

इन आयतों के मज़मून का पीछे से ताल्लुक़

इन आयतों में उम्मते मुहम्मदिया को एक दुआ व मुनाजात की तल्क़ीन (तालीम व हिदायत) इस अन्दाज़ से की गई है कि उसके अन्दर उम्मते मुहम्मदिया के काफ़िरों पर ग़लबा पाने की तरफ़ इशारा भी है, जैसा कि इसके शाने नुज़ूल (उतरने के मौक़े) से साबित है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने रोम व फ़ारस फ़तह हो जाने का वायदा फ़रमाया तो मुनाफ़िक़ों और यहूदियों ने मज़ाक़ उड़ाया, इस पर यह आयत नाज़िल हुई (जैसा कि तफ़सीर रूहुल-मआनी में हज़रत इब्ने अ़ब्बास और हज़रत अनस रज़ि. से नक़ल किया गया है)।

इन आयतों की मुख़्तसर तफ़सीर यह है:

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

(ऐ मुहम्मद सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम!) आप (अल्लाह तआ़ला से) यूँ कहिये कि ऐ अल्लाह मालिक तमाम मुल्क के! आप मुल्क (का जितना हिस्सा चाहें) जिसको चाहें दे देते हैं और जिस (के क़ब्ज़े) से चाहें मुल्क (का हिस्सा) ले लेते हैं, और जिसको चाहें ग़ालिब कर देते हैं, और जिसको चाहें पस्त कर देते हैं, आप ही के इख़्तियार में है सब भलाई, बेशक आप हर चीज़ पर पूरी क़ुदरत रखने वाले हैं। आप (कुछ मौसमों में) रात (के हिस्सों) को दिन में दाख़िल कर देते हैं (जिससे दिन बड़ा होने लगता है) और (कुछ मौसमों में) दिन (के हिस्सों) को रात में दाख़िल कर देते हैं (जिससे रात बढ़ने लगती है), और आप जानदार चीज़ को बेजान चीज़ से निकाल लेते हैं (जैसे अण्डे से बच्चा) और बेजान चीज़ को जानदार से निकाल लेते हैं (जैसे परिन्दे से अण्डा) और आप जिसको चाहते हैं बेशुमार रिज़्क़ अ़ता फ़रमाते हैं।

मआ़रिफ़ व मसाईल

इस आयत के नाज़िल होने का मौक़ा और ख़न्दक़ की लड़ाई का वाक़िआ

'जंगे-बदर' और 'जंगे-उहुद' में मक्का के मुश्रिकों की लगातार शिकस्त और मुसलमानों के ख़िलाफ़ हर जिद्दोजहद में नाकामी के साथ मुसलमानों की लगातार तरक़्क़ी और इस्लाम के दिन प्रति दिन बढ़ते फैलाव ने मक्का के क़ुरैश और तमाम ग़ैर-मुस्लिमों में एक बोखलाहट पैदा कर दी थी जिससे वे अपना सब कुछ क़ुरबान करने को तैयार हो रहे थे, जिसका नतीजा एक आ़म साज़िश की सूरत में यह ज़ाहिर हुआ कि अ़रब के मुश्रिक और यहूदी व ईसाई सब का एक संयुक्त मोर्चा (संगठन) मुसलमानों के ख़िलाफ़ बन गया और सबने मिलकर मदीना प्रर एक बार में हमले और निर्णायक जंग की ठान ली, और उनका ज़बरदस्त लश्कर इस्लाम और मुसलमानों को दुनिया से मिटा डालने का इरादा लेकर मदीना पर चढ़ आया, जिसका नाम क़ुरआन में ग़ज़वा-ए-अहज़ाब और तारीख़ में ग़ज़वा-ए-ख़न्दक़ है, क्योंकि इसमें रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने सहाबा किराम के साथ मश्विरे से यह तय फ़रमाया था कि दुश्मन के रास्ते में मदीना से बाहर ख़न्दक़ (खाई) खोदी जाये।

'बैहक़ी', 'अबू नुऐम' और 'इब्ने ख़ुज़ैमा' (ये सब हदीस के इमाम हैं) की रिवायत में है कि ख़न्दक़ (खाई) खोदने का काम मुजाहिदीने इस्लाम सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम के सुपुर्द हुआ तो चालीस चालीस हाथ लम्बी ख़न्दक़ दस-दस आदमियों के सुपुर्द थी। यह ख़न्दक़ कई मील लम्बी और काफ़ी गहरी और चौड़ी थी, जिसको दुश्मन पार न कर सके, और खुदाई को जल्द से जल्द पूरा भी करना था, इसलिये जाँनिसार सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम बड़ी मेहनत से उसमें मशग़ूल थे कि क़ज़ा-ए-हाजत (पेशाब-पाख़ाने की ज़रूरत) और खाने वग़ैरह की ज़रूरतों के लिये यहाँ से हटना मुश्किल हो रहा था, लगातार भूखे रहकर यह काम अन्जाम दिया जा रहा था और यक़ीनन काम ऐसा था कि आजकल की आधुनिक उपकरणों (यंत्रों) से लैस पलटन भी होती तो इस थोड़े से वक़्त में उस काम का पूरा करना आसान न होता, मगर यहाँ ईमानी ताक़त काम कर रही थी जिसने आसानी से काम को पूरा करा दिया।

तमाम अम्बिया के सरदार हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम भी एक फ़र्द की हैसियत से उस खुदाई के काम में शरीक थे, इत्तिफ़ाक़न ख़न्दक़ के एक हिस्से में पत्थर की बड़ी चट्टान निकल आई, जिन हज़रात के हिस्से में ख़न्दक़ का यह टुकड़ा था वे अपनी पूरी ताक़त ख़र्च करके आ़जिज़ हो गये तो हज़रत सलमान फ़ारसी रज़ियल्लाहु अ़न्हु को हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के पास भेजा कि अब हुज़ूरे पाक का क्या हुक्म है? आप उसी वक़्त मौक़े पर तशरीफ़ लाये और लोहे की कुदाल ख़ुद हाथ मुबारक में लेकर एक चोट लगाई तो उस चट्टान के

टुकड़े हो गये और एक आग का शोला निकला जिससे दूर तक उसकी रोशनी फैल गई। आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि मुझे इस रोशनी में हीरा मुल्के फ़ारस के महल और इमारतें दिखलाये गये। फिर दूसरी चोट लगाई और फिर एक शोला निकला तो फ़रमाया कि इस रोशनी में मुझे रूम वालों के सुर्ख़-सुर्ख़ महल व इमारतें दिखलाई गईं। फिर तीसरी चोट लगाई और रोशनी फैली तो फ़रमाया कि इसमें मुझे सन्आ़ (यमन की राजधानी) के बड़े और विशाल महल दिखलाये गये और फ़रमाया कि मैं तुम्हें ख़ुशख़बरी देता हूँ कि मुझे जिब्रीले अमीन ने ख़बर दी है कि मेरी उम्मत इन तमाम मुल्कों पर ग़ालिब आयेगी।

मदीना के मुनाफ़िक़ों ने यह सुना तो उनको मज़ाक़ उड़ाने का मौक़ा हाथ आ गया, मुसलमानों का मज़ाक़ उड़ाया कि देखो इन लोगों को जो अपने मुक़ाबिल दुश्मन के ख़ौफ़ से ख़न्दक़ खोदने में इस तरह मशग़ूल हैं कि इनको अपनी ज़रूरतों का भी होश नहीं, अपनी जानों की हिफ़ाज़त इनको मुश्किल हो रही है, मुल्के फ़ारस व रूम और यमन पर ग़ालिब आने के ख़्वाब देख रहे हैं। हक़ तआ़ला ने उन बेख़बर ज़ालिमों के जवाब में यह आयत नाज़िल फ़रमाईः

قُلِ اللّٰهُمَّ مٰلِكَ الْمُلْكِ تُؤْتِی الْمُلْكَ مَنْ تَشَآءُ وَتَنْزِعُ الْمُلْكَ مِمَّنْ تَشَآءُ وَتُعِزُّ مَنْ تَشَآءُ وَتُذِلُّ مَنْ تَشَآءُ بِيَدِكَ الْخَيْرُ. اِنَّكَ عَلٰی كُلِّ شَیْءٍ قَدِيْرٌo

जिसमें मुनाजात व दुआ़ के अन्दाज़ में क़ौमों की तरक़्क़ी व गिरावट (पतन) और मुल्कों के इन्क़िलाब (क्रान्ति) में हक़ तआ़ला की कामिल क़ुदरत का बयान एक दिल में उतर जाने वाले अन्दाज़ से किया गया है। और फ़ारस व रूम की फ़ुतूहात (कामयाबियों) के बारे में रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की भविष्यवाणी के पूरा होने की तरफ़ इशारा किया गया। इसमें दुनिया के इन्क़िलाबात (बदलाव और उलट-फेर) से बेख़बर क़ौमों के तरक़्क़ी व पस्ती की तारीख़ से अज्ञानता, क़ौमे नूह और क़ौमे आ़द व समूद के वाक़िआ़त से ग़ाफ़िल और जाहिल, इस्लाम के दुश्मनों को चेतावनी दी गई है कि तुम ज़ाहिरी शान व शौकत के पुजारी यह नहीं जानते कि दुनिया की सारी ताक़तें और हुकूमतें सब एक पाक ज़ात के क़ब्ज़ा-ए-क़ुदरत में हैं, इज़्ज़त व ज़िल्लत उसी के हाथ में है, वह बिला शुब्हा इस पर क़ादिर है कि ग़रीबों और फ़क़ीरों को तख़्त व ताज का मालिक बना दे और बड़े-बड़े बादशाहों से हुकूमत व दौलत छीन ले, उसके लिये कुछ मुश्किल नहीं कि आज के ख़न्दक़ खोदने वाले फ़क़ीरों को कल मुल्के शाम व इराक़ और यमन की हुकूमत अ़ता फ़रमा देः

ज़र्रा ज़र्रा दह्र का पा-बस्ता-ए-तक़दीर है — ज़िन्दगी के ख़्वाब की जामी यही ताबीर है

जो चीज़ें आ़दतन् बुरी समझी जाती हैं अन्जाम के एतिबार से वो भी बुरी नहीं

आयत के आख़िर में फ़रमाया 'बि-यदिकल् ख़ैरु' यानी आपके हाथ में है हर भलाई। आयत

के शुरू में चूँकि हुकूमत देने और वापस लेने का तथा इज़्ज़त और ज़िल्लत दोनों का ज़िक्र था इसलिये ज़ाहिर में इस मकाम का तकाज़ा यह था कि इस जगह भी 'बि-यदिकल् ख़ैरु वश्शर्रु' कहा जाता, यानी हर भलाई और बुराई आप के हाथ में है। लेकिन इस आयत में इस जगह सिर्फ़ लफ़्ज़ "ख़ैर" लाकर एक अहम हक़ीक़त की तरफ़ इशारा कर दिया गया है, वह यह कि जिस चीज़ को कोई शख़्स या कोई क़ौम बुराई या मुसीबत समझती है और वह उस ख़ास क़ौम के लिये अगरचे तकलीफ़ व मुसीबत होती है लेकिन अगर गहरी नज़र से देखा जाये तो दुनिया के मजमूए के एतिबार से वह बुराई नहीं होती। क़ौमों की तरक़्क़ी व पस्ती और उसमें मुसीबतों के बाद फ़ायदों की तारीख़ पर नज़र डाली जाये तो अ़रबी के मशहूर शायर मुतनब्बी का यह मिसरा (पंक्ति) एक ज़िन्दा हक़ीक़त बनकर सामने आ जाता है किः

مَصَائِبُ قَوْمٍ عِنْدَ قَوْمٍ فَوَائِدُ

"यानी एक क़ौम की मुसीबतें दूसरी क़ौम के फ़ायदे होते हैं।"

कुल जहान की मस्लेहतों व फ़ायदों पर नज़र करने वाला किसी न किसी दर्जे में इस हक़ीक़त को पा सकता है कि उसमें जितनी चीज़ें ख़राब और बुरी समझी जाती हैं वे अपनी ज़ात में चाहे बुरी समझी जायें मगर पूरे आ़लम को अगर एक जिस्म फ़र्ज़ कर लिया जाये तो वे उसके चेहरे के ख़ाल (निशान, तिल वग़ैरह) और बाल हैं, ख़ाल और बाल अगर बदन से अलग करके देखे जायें तो उनसे ज़्यादा ख़राब कोई चीज़ नहीं, लेकिन एक हसीन चेहरे का हिस्सा होने की हालत में यही चीज़ें हुस्न की रौनक़ होती हैं।

खुलासा यह है कि जिन चीज़ों को हम बुरा कहते और बुरा समझते हैं उनकी बुराई आंशिक है और कायनात के पैदा करने वाले और रब्बुल-आ़लमीन की निस्बत और मजमूआ़-ए-आ़लम की मस्लेहत के एतिबार से कोई चीज़ बुरी या ख़राब नहीं। किसी ने ख़ूब कहा हैः

नहीं है कोई चीज़ निकम्मी ज़माने में
कोई बुरा नहीं क़ुदरत के कारख़ाने में

इसलिये इस आयत के ख़त्म में सिर्फ़ लफ़्ज़ "ख़ैर" पर इक्तिफ़ा करके फ़रमाया गयाः

بِيَدِكَ الْخَيْرُ

'बि-यदिकल् ख़ैरु' (आपके हाथ में है हर भलाई) क्योंकि कायनात के पैदा करने की हिक्मत और हुकूमत और पूरे आ़लम की मस्लेहत के लिहाज़ से हर चीज़ ख़ैर ही ख़ैर है। यहाँ तक पहली आयत का मज़मून ख़त्म हुआ जिसमें अ़नासिर (तत्वों) के आ़लम की तमाम ताक़तों और दुनिया की सब हुकूमतों का हक़ तआ़ला के क़ब्ज़ा-ए-क़ुदरत में होना बयान फ़रमाया है।

दूसरी आयत में आसमानी ताक़तों और आसमानी चीज़ों पर हक़ तआ़ला की कामिल क़ुदरत का इहाता (क़ब्ज़ा व इख़्तियार) इस तरह बयान फ़रमाया हैः

تُوْلِجُ الَّيْلَ فِى النَّهَارِ وَتُوْلِجُ النَّهَارَ فِى الَّيْلِ.

यानी आप जब चाहते हैं रात के हिस्से दिन में दाख़िल फ़रमाकर दिन को बड़ा कर देते हैं और जब चाहते हैं दिन के हिस्से रात में दाख़िल करके रात बड़ी कर देते हैं।

और यह ज़ाहिर है कि रात और दिन के बड़े छोटे होने का मदार सूरज निकलने, ग़ुरूब होने और उसकी हरकतों पर है, इसलिये इसका हासिल यह हुआ कि आसमान और उससे संबन्धित सबसे बड़ा सय्यारा सूरज और सबसे परिचित सय्यारा चाँद सब आपकी क़ुदरत के क़ब्ज़े में हैं। फिर अ़नासिर (तत्वों) से बनी इस दुनिया की बाक़ी ताक़तों में किसी शक व शुब्हे की क्या गुंजाईश हो सकती है।

इसके बाद रूहानियत के आ़लम (ग़ैबी और आख़िरत के जहान) पर हक़ तआ़ला की कामिल क़ुदरत, क़ब्ज़े और इख़्तियार को इस तरह बयान फ़रमायाः

تُخْرِجُ الْحَيَّ مِنَ الْمَيِّتِ وَتُخْرِجُ الْمَيِّتَ مِنَ الْحَيِّ

"यानी आप ज़िन्दा को मुर्दा से निकाल लेते हैं जैसे अण्डे से बच्चा या नुत्फ़े (क़तरे) से इनसान या दाने से पेड़ को निकाल लेते हैं, और मुर्दा को ज़िन्दा से निकाल लेते हैं जैसे जानवर से अण्डा और इनसान से नुत्फ़ा (वीर्य का क़तरा) या दरख़्त से फल और सूखा दाना।

और अगर ज़िन्दा और मुर्दा का मतलब आ़म लिया जाये तो आ़लिम और जाहिल और कामिल व नाक़िस और मोमिन व काफ़िर सब को शामिल हो जाता है, जिससे हक़ तआ़ला की कामिल क़ुदरत और उसके तसर्रुफ़ात (इख़्तियार व अ़मल-दख़ल) तमाम आ़लमे अरवाह और रूहानियत पर वाज़ेह हो जाते हैं, कि वह जब चाहें तो काफ़िर से मोमिन या जाहिल से आ़लिम पैदा कर दें और जब चाहें मोमिन से काफ़िर या आ़लिम से जाहिल पैदा कर दें। आज़र के घर में **ख़लीलुल्लाह** पैदा हो जाये और **नूह अ़लैहिस्सलाम** के घर में उनका बेटा काफ़िर रह जाये। आ़लिम की औलाद जाहिल रह जाये और जाहिल की औलाद आ़लिम हो जाये।

इस तफ़सील से आपने मालूम किया होगा कि कैसे उम्दा अन्दाज़ में हक़ तआ़ला की कामिल क़ुदरत का तमाम कायनाते आ़लम पर मुहीत (घेरे और छाये हुए) होना तरतीब वार बयान फ़रमाया गया है, कि पहले अ़नासिर (तत्वों) की दुनिया और उसकी ताक़तों और हुकूमतों का ज़िक्र आया है, फिर आसमानी दुनिया और उसकी ताक़तों का, और इन सब के बाद रूह और रूहानियत का ज़िक्र आया है जो वास्तव में सारे आ़लम की सारी ताक़तों में सबसे ऊपर की ताक़त है। आयत के आख़िर में इरशाद फ़रमायाः

وَتَرْزُقُ مَنْ تَشَآءُ بِغَيْرِ حِسَابٍ٥

"यानी आप जिसको चाहें बेशुमार रिज़्क़ अ़ता फ़रमा दें।" जिसको कोई मख़्लूक़ मालूम न कर सके अगरचे ख़ालिक़ के इल्म में ज़र्रा-ज़र्रा लिखा हुआ है।

इस आयत की ख़ास फ़ज़ीलत

इमाम बग़वी रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने अपनी सनद के साथ इस जगह एक हदीस नक़ल

फ़रमाई है कि रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया- हक़ तआ़ला का फ़रमान है कि जो शख़्स हर फ़र्ज़ नमाज़ के बाद सूरः फ़ातिहा, आयतुल-कुर्सी और सूरः आले इमरान की तीन आयतें एक आयत नम्बर 18 पूरी:

شَهِدَ اللّٰهُ اَنَّهٗ لَآ اِلٰهَ اِلَّا هُوَ .... الخ

दूसरी आयत नम्बर 26 और 27 पूरी:

قُلِ اللّٰهُمَّ مٰلِكَ الْمُلْكِ .... بِغَيْرِ حِسَابٍ○

तक पढ़ा करे तो उसका ठिकाना जन्नत में बना दूँगा और उसको अपने 'हज़ीरतुल-क़ुदुस' (जन्नत में एक ख़ास मक़ाम) में जगह दूँगा और हर रोज़ उसकी तरफ़ सत्तर मर्तबा रहमत की निगाह करूँगा और उसकी सत्तर हाजतें पूरी करूँगा और हर हासिद (जलने वाले) और दुश्मन से पनाह दूँगा और उनपर उसको ग़ालिब रखूँगा।

لَا يَتَّخِذِ الْمُؤْمِنُوْنَ الْكٰفِرِيْنَ اَوْلِيَآءَ مِنْ دُوْنِ الْمُؤْمِنِيْنَ ۚ وَمَنْ يَّفْعَلْ ذٰلِكَ فَلَيْسَ مِنَ اللّٰهِ فِيْ شَيْءٍ اِلَّآ اَنْ تَتَّقُوْا مِنْهُمْ تُقٰىةً ۭ وَيُحَذِّرُكُمُ اللّٰهُ نَفْسَهٗ ۭ وَاِلَى اللّٰهِ الْمَصِيْرُ ۝ قُلْ اِنْ تُخْفُوْا مَا فِيْ صُدُوْرِكُمْ اَوْ تُبْدُوْهُ يَعْلَمْهُ اللّٰهُ ۭ وَيَعْلَمُ مَا فِي السَّمٰوٰتِ وَمَا فِي الْاَرْضِ ۭ وَاللّٰهُ عَلٰي كُلِّ شَيْءٍ قَدِيْرٌ ۝ يَوْمَ تَجِدُ كُلُّ نَفْسٍ مَّا عَمِلَتْ مِنْ خَيْرٍ مُّحْضَرًا ښ وَّمَا عَمِلَتْ مِنْ سُوْۗءٍ ښ تَوَدُّ لَوْ اَنَّ بَيْنَهَا وَبَيْنَهٗٓ اَمَدًۢا بَعِيْدًا ۭ وَيُحَذِّرُكُمُ اللّٰهُ نَفْسَهٗ ۭ وَاللّٰهُ رَءُوْفٌۢ بِالْعِبَادِ ۝ ع ۳ ۱۱

ला यत्तख़िज़िल्-मुअ्मिनूनल् काफ़िरी-न औलिया-अ मिन् दूनिल्-मुअ्मिनी-न, व मंय्यफ़्अ़ल् ज़ालि-क फ़लै-स मिनल्लाहि फ़ी शैइन् इल्ला अन् तत्तक़ू मिन्हुम् तुक़ातन्, व युहज़्ज़िरुकुमुल्लाहु नफ़्सहू, व इलल्लाहिल्-मसीर (28) क़ुल् इन् तुख़्फ़ू मा फ़ी सुदूरिकुम् औ तुब्दूहु यअ्लम्हुल्लाहु, व यअ्लमु मा फ़िस्समावाति व मा फ़िल्अर्ज़ि,	न बनायें मुसलमान काफ़िरों को दोस्त मुसलमानों को छोड़कर, और जो कोई यह काम करे तो नहीं उसको अल्लाह से कोई ताल्लुक़ मगर इस हालत में कि करना चाहो तुम उनसे बचाव, और अल्लाह तुमको डराता है अपने से और अल्लाह ही की तरफ़ लौटकर जाना है। (28) तू कह- अगर तुम छुपाओगे अपने जी की बात या उसे ज़ाहिर करोगे जानता है उसको अल्लाह, और उसको मालूम है जो कुछ कि है आसमानों में और जो कुछ है ज़मीन में, और अल्लाह हर चीज़

वल्लाहु अ़ला कुल्लि शैइन् क़दीर (29) यौ-म तजिदु कुल्लु नफ़्सिम् मा अ़मिलत् मिन् ख़ैरिम् मुह्ज़रंव्-व मा अ़मिलत् मिन् सूइन् त-वद्दु लौ अन्-न बैनहा व बैनहू अ-मदम् बअ़ीदन्, व युहज़्ज़िरुकुमुल्लाहु नफ़्सहू, वल्लाहु रऊफ़ुम् बिल्अ़िबाद (30) ✿	पर क़ादिर है। (29) जिस दिन मौजूद पायेगा हर शख़्स जो कुछ कि की है उसने नेकी अपने सामने और जो कुछ कि की है उसने बुराई, आरज़ू (तमन्ना) करेगा कि मुझ में और उस में पड़ जाये फ़र्क़ दूर का, और अल्लाह डराता है तुमको अपने से और अल्लाह बहुत मेहरबान है बन्दों पर। (30) ✿

इन आयतों का पीछे से ताल्लुक़ व जोड़

ऊपर ज़िक्र हुई आयतों में मुसलमानों को हिदायत की गई है कि काफ़िरों को दोस्त न बनायें और इस हिदायत की मुख़ालफ़त (उल्लंघन) करने वालों के लिये सख़्त वईद (सज़ा की धमकी) है कि जो उनको दोस्त बनायेगा उसका अल्लाह तआ़ला से दोस्ती व मुहब्बत का रिश्ता टूट जाएगा। काफ़िरों से बातिनी और दिली दोस्ती तो बिल्कुल हराम है और ज़ाहिरी दोस्ती मामलात के दर्जे में अगरचे जायज़ है मगर बिना ज़रूरत वह भी पसन्दीदा नहीं।

इन आयतों की मुख़्तसर तफ़सीर यह है:

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

मुसलमानों को चाहिए कि काफ़िरों को (खुले तौर पर या छुपे तौर पर) दोस्त न बनाएँ मुसलमानों (की दोस्ती) से आगे बढ़ करके, (यह हद से बढ़ना दो सूरत से होता है- एक यह कि मुसलमानों से बिल्कुल दोस्ती न रखें दूसरे यह कि मुसलमानों के साथ भी दोस्ती हो और काफ़िरों के साथ भी, दोनों सूरतें मनाही में दाख़िल हैं)। और जो शख़्स ऐसा (काम) करेगा सो वह शख़्स अल्लाह के साथ दोस्ती रखने में किसी शुमार में नहीं (क्योंकि जिन दो शख़्सों में आपस में दुश्मनी हो एक से दोस्ती करके दूसरे से दोस्ती का दावा क़ाबिले भरोसा नहीं हो सकता)। मगर ऐसी सूरत में (ज़ाहिरी दोस्ती की इजाज़त है) कि तुम उनसे किसी क़िस्म का (सख़्त) अन्देशा रखते हो, (वहाँ नुक़सान से बचने की ज़रूरत है) और अल्लाह तआ़ला तुमको अपनी (अज़ीमुश्शान) ज़ात से डराता है (कि उसकी ज़ात से डरकर अहकाम की मुख़ालफ़त मत करो) और ख़ुदा ही की तरफ़ लौटकर जाना है (उस वक़्त की सज़ा का ख़ौफ़ करना ज़रूरी है)। आप (उनसे) फ़रमा दीजिए कि अगर तुम (दिल ही दिल में) छुपाकर रखोगे अपने दिल की बात या उसको (ज़बान व बदनी अंगों से) ज़ाहिर करोगे, अल्लाह तआ़ला उसको (हर हाल में) जानते हैं,

और (इसी की क्या तख़्सीस है) वह तो सब कुछ जानते हैं, जो कुछ आसमानों में है और जो कुछ ज़मीन में है (कोई चीज़ उनसे छुपी नहीं) और (इल्म के साथ-साथ) अल्लाह तआ़ला हर चीज़ पर मुकम्मल क़ुदरत भी रखते हैं। (सो अगर तुम किसी बुरे काम को करोगे चाहे ज़ाहिर में या बातिन में तो वह तुमको सज़ा दे सकते हैं) जिस दिन (ऐसा होगा) कि हर शख़्स अपने अच्छे किए हुए कामों को सामने लाया हुआ पायेगा, और अपने बुरे किए हुए कामों को (भी पायेगा उस रोज़) इस बात की तमन्ना करेगा कि क्या ख़ूब होता जो उस शख़्स के और उस दिन के बीच बहुत लम्बी दूरी (आड़) होती, (ताकि अपने बुरे आमाल को न देखना पड़ता)। और (तुमसे फिर दोबारा कहा जाता है कि) ख़ुदा तआ़ला तुमको अपनी (अज़ीमुश्शान) ज़ात से डराते हैं, (और यह डराना इस वजह से है कि) अल्लाह तआ़ला बन्दों पर निहायत मेहरबान हैं। (अपने) बन्दों (के हाल) पर (इस मेहरबानी से यूँ चाहते हैं कि ये आख़िरत की सज़ा से बचे रहें, और बचने का तरीक़ा है बुरे आमाल का छोड़ देना, और छोड़ देना आ़दतन बिना डराने के होता नहीं, इसलिए डराते हैं। पस यह डराना भी पूरी तरह शफ़क़त व रहमत है)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

इस मज़मून की आयतें क़ुरआने करीम में जगह-जगह विभिन्न उनवानों के साथ कसरत से आई हैं। सूरः मुम्तहिना में इरशाद है:

يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا لَا تَتَّخِذُوْا عَدُوِّيْ وَعَدُوَّكُمْ اَوْلِيَآءَ تُلْقُوْنَ اِلَيْهِمْ بِالْمَوَدَّةِ.

"यानी ऐ ईमान वालो! मेरे दुश्मन और अपने दुश्मन यानी काफ़िर को दोस्त न बनाओ कि तुम उनको पैग़ाम भेजो दोस्ती के।"

फिर उसके आख़िर में फ़रमायाः

وَمَنْ يَّفْعَلْهُ مِنْكُمْ فَقَدْ ضَلَّ سَوَآءَ السَّبِيْلِ○

"जिस शख़्स ने उनसे दोस्ती की तो वह सीधे रास्ते से गुमराह हो गया।"

और एक दूसरी जगह इरशाद है:

يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا لَا تَتَّخِذُوا الْيَهُوْدَ وَالنَّصٰرٰٓى اَوْلِيَآءَ بَعْضُهُمْ اَوْلِيَآءُ بَعْضٍ، وَمَنْ يَّتَوَلَّهُمْ مِّنْكُمْ فَاِنَّهٗ مِنْهُمْ.

(سورة٥:٥١)

"यानी ऐ ईमान वालो! यहूदियों व ईसाईयों को दोस्त न बनाओ, क्योंकि वे आपस में ही एक दूसरे के दोस्त हैं (मुसलमानों से उनको कोई दोस्ती और हमदर्दी नहीं)। तो जो उनसे दोस्ती करेगा वह उन्हीं में शुमार होगा।"

और सूरः मुजादला में है:

لَا تَجِدُ قَوْمًا يُّؤْمِنُوْنَ بِاللّٰهِ وَالْيَوْمِ الْاٰخِرِ يُوَآدُّوْنَ مَنْ حَآدَّ اللّٰهَ وَرَسُوْلَهٗ وَلَوْ كَانُوْٓا اٰبَآءَهُمْ اَوْ اَبْنَآءَهُمْ اَوْ اِخْوَانَهُمْ اَوْ عَشِيْرَتَهُمْ. (٥٨:٢٢)

"यानी आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम न पायेंगे किसी क़ौम को जो यक़ीन रखते हों अल्लाह पर और आख़िरत के दिन पर कि दोस्ती करें ऐसे लोगों से जो मुख़ालिफ़ हैं अल्लाह के और उसके रसूल के, चाहे वे अपने बाप-दादा ही हों या अपनी औलाद या अपने भाई या अपने ख़ानदान वाले।"

काफ़िरों के साथ मुसलमानों के ताल्लुक़ात कैसे होने चाहियें?

यह मज़मून बहुत सी क़ुरआनी आयतों में संक्षिप्त और विस्तृत तौर पर मज़कूर है, जिसमें मुसलमानों को ग़ैर-मुस्लिमों के साथ लगाव, दोस्ती और मुहब्बत से सख़्ती के साथ रोका गया है। उन स्पष्ट हिदायतों को देखकर हक़ीक़ते हाल से नावाक़िफ़ ग़ैर-मुस्लिमों को तो यह शुब्हा हो जाता है कि मुसलमानों के मज़हब में ग़ैर-मुस्लिमों से किसी क़िस्म की रवादारी (सद्भावना) और ताल्लुक़ की बल्कि उनके साथ अच्छे व्यवहार की भी कोई गुन्जाईश नहीं, और दूसरी तरफ़ इसके मुक़ाबिल जब क़ुरआन की बहुत सी आयतों से और रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के इरशादात और अ़मल तथा ख़ुलफ़ा-ए-राशिदीन रज़ियल्लाहु अ़न्हुम और दूसरे सहाबा किराम के अ़मल व रवैये से ग़ैर-मुस्लिमों के साथ एहसान व सुलूक और हमदर्दी व ग़मख़्वारी के अहकाम और ऐसे-ऐसे वाक़िआ़त साबित होते हैं जिनकी मिसालें दुनिया की क़ौमों में मिलना मुश्किल हैं, तो एक सरसरी नज़र रखने वाले मुसलमान को भी इस जगह क़ुरआन व सुन्नत के अहकाम व इरशादात में आपस में टकराव और विरोधाभास महसूस होने लगता है। मगर ये दोनों ख़्याल क़ुरआन की वास्तविक तालीमात पर ऊपरी और चलती हुई निगाह तथा नाक़िस तहक़ीक़ का नतीजा होते हैं, अगर मुख़्तलिफ़ मक़ामात से क़ुरआन की आयतों को जो इस मामले से संबन्धित हैं जमा करके ग़ौर किया जाये तो न ग़ैर-मुस्लिमों के लिये शिकायत की वजह बाक़ी रहती है न आयतों व रिवायतों में किसी क़िस्म का टकराव बाक़ी रहता है। इसलिये इस मक़ाम की पूरी वज़ाहत (ख़ुलासा) कर दी जाती है, जिससे दोस्ती और एहसान व सुलूक या हमदर्दी व ग़मख़्वारी में आपसी फ़र्क़ और हर एक की हक़ीक़त भी मालूम हो जायेगी और यह भी कि उनमें कौनसा दर्जा जायज़ है कौनसा नाजायज़, और जो नाजायज़ है उसकी वुजूहात और कारण क्या हैं?

बात यह है कि दो शख़्सों या दो जमाअ़तों में ताल्लुक़ात के मुख़्तलिफ़ (विभिन्न और अलग-अलग) दर्जे होते हैं- एक दर्जा ताल्लुक़ का मुवालात यानी दिली दोस्ती और मुहब्बत है, यह सिर्फ़ मोमिनों के साथ मख़्सूस है, ग़ैर-मोमिन के साथ मोमिन का यह ताल्लुक़ किसी हाल में क़तई जायज़ नहीं।

दूसरा दर्जा मुवासात यानी उस ताल्लुक़ का है जिसको हमदर्दी व ख़ैरख़्वाही और फ़ायदा पहुँचाना कहते हैं, यह सिवाय उन काफ़िरों के जो मुसलमानों से लड़ाई में मशग़ूल हों (यानी जिनसे मुसलमानों की जंग व लड़ाई जारी हो) बाक़ी सब ग़ैर-मुस्लिमों के साथ जायज़ है। सूरः मुम्तहिना की आठवीं आयत में इसकी तफ़सील बयान की गई है, जिसमें इरशाद है:

لَا يَنْهٰكُمُ اللّٰهُ عَنِ الَّذِيْنَ لَمْ يُقَاتِلُوْكُمْ فِى الدِّيْنِ وَلَمْ يُخْرِجُوْكُمْ مِّنْ دِيَارِكُمْ اَنْ تَبَرُّوْهُمْ وَتُقْسِطُوْٓا اِلَيْهِمْ.

(سورة الممتحنة:٨)

"यानी अल्लाह तआ़ला तुमको मना नहीं करता उनसे जो लड़ते नहीं तुमसे दीन पर, और निकाला नहीं तुमको तुम्हारे घरों से, कि उनके साथ एहसान और इन्साफ़ का सुलूक करो।"

तीसरा दर्जा मुदारात यानी अच्छे व्यवहार और दोस्ताना ताल्लुक़ का है, यह भी तमाम ग़ैर-मुस्लिमों के साथ जायज़ है जबकि इससे मक़सूद उनको दीनी नफ़ा पहुँचाना हो या वे अपने मेहमान हों या उनके सताने और नुक़सान पहुँचाने से अपने आपको बचाना मक़सूद हो। सूरः आले इमरान की उक्त आयत (यानी आयत नम्बर 28) में:

اِلَّآ اَنْ تَتَّقُوْا مِنْهُمْ تُقٰىةً.

'मगर इस हालत में कि तुम उनसे अपना बचाव करना चाहो' से यही दर्जा मुदारात का मुराद है, यानी काफ़िरों से मुवालात जायज़ नहीं मगर ऐसी हालत में जबकि तुम उनसे अपना बचाव करना चाहो, और चूँकि मुदारात में भी सूरत मुवालात की होती है इसलिये इसको मुवालात से अलग और ख़ारिज क़रार दे दिया गया। (तफ़सीर बयानुल-क़ुरआन)

चौथा दर्जा मामलात का है कि उनसे तिजारत या मज़दूरी व मुलाज़मत और दस्तकारी व कारीगरी के मामलात किये जायें, यह भी तमाम ग़ैर-मुस्लिमों के साथ जायज़ है सिवाय ऐसी हालत के कि उन मामलात से आ़म मुसलमानों को नुक़सान पहुँचता हो। रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम और ख़ुलफ़ा-ए-राशिदीन रज़ियल्लाहु अ़न्हुम और दूसरे सहाबा किराम का अ़मल व रवैया इस पर शाहिद (गवाह और सुबूत) है। फ़ुक़हा (मसाईल के माहिर उलेमा) ने इसी बिना पर लड़ाई वाले काफ़िरों के हाथ असलेहा (हथियार) फ़रोख़्त करने को नाजायज़ और मना क़रार दिया है, बाक़ी तिजारत वग़ैरह की इजाज़त दी है और उनको अपना मुलाज़िम रखना या ख़ुद उनके कारख़ानों और संस्थाओं में मुलाज़िम होना यह सब जायज़ है।

इस तफ़सील से आपको यह मालूम हो गया कि क़ल्बी और दिली दोस्ती व मुहब्बत तो किसी काफ़िर के साथ किसी हाल में जायज़ नहीं, और एहसान व हमदर्दी और उसको लाभ पहुँचाना सिवाय उन काफ़िरों के जिनसे मुसलमानों की लड़ाई जारी हो बाक़ी और सब के साथ जायज़ है। इसी तरह ज़ाहिरी तौर पर अच्छा व्यवहार और दोस्ताना बर्ताव भी सब के साथ जायज़ है, जबकि उसका मक़सद मेहमान की ख़ातिरदारी या ग़ैर-मुस्लिमों को इस्लामी मालूमात और दीनी नफ़ा पहुँचाना या अपने आपको उनके किसी नुक़सान व तकलीफ़ से बचाना हो।

रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम जो रहमतुल्-लिल्आ़लमीन होकर इस दुनिया में तशरीफ़ लाये, आपने ग़ैर-मुस्लिमों के साथ जो एहसान व हमदर्दी और अच्छे बर्ताव के मामलात किये उसकी नज़ीर दुनिया में मिलना मुश्किल है। मक्का में क़हत (सूखा) पड़ा तो जिन दुश्मनों ने आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को अपने वतन से निकाला था उनकी ख़ुद इमदाद फ़रमाई, फिर मक्का मुकर्रमा फ़तह होकर ये सब दुश्मन आपके क़ाबू में आ गये तो सब को यह

फ़रमाकर आज़ाद कर दियाः

لَا تَثْرِيْبَ عَلَيْكُمُ الْيَوْمَ.

यानी आज तुम्हें सिर्फ़ माफ़ी नहीं दी जाती बल्कि तुम्हारे पिछले अत्याचारों और तकलीफ़ें पहुँचाने पर हम कोई मलामत भी नहीं करते। ग़ैर-मुस्लिम जंगी कैदी हाथ आये तो उनके साथ वह सुलूक किया जो अपनी औलाद के साथ भी हर शख़्स नहीं करता। काफ़िरों ने आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को तरह-तरह की तकलीफ़ें पहुँचाईं, कभी आपका हाथ बदला लेने के लिये नहीं उठा, ज़बाने मुबारक से बददुआ़ भी नहीं फ़रमाई। बनू सक़ीफ़ जो अभी मुसलमान नहीं हुए थे, उनका एक वफ़्द (प्रतिनिधि मण्डल) आपकी ख़िदमत में हाज़िर हुआ तो उनको मस्जिदे नबवी में ठहरा गया जो मुसलमानों के लिये सबसे ज़्यादा इज़्ज़त का स्थान था।

हज़रत फ़ारूक़े आज़म रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने ग़ैर-मुस्लिम ज़रूरत मन्द ज़िम्मियों को मुसलमानों की तरह बैतुल-माल (इस्लामी सरकारी ख़ज़ाने) से वज़ीफ़े दिये, खुलफ़ा-ए-राशिदीन रज़ियल्लाहु अ़न्हुम और सहाबा किराम के मामलात इस क़िस्म के वाक़िआ़त से भरे हुए हैं, यह सब मुवासात या मुदारात या मामलात की सूरतें थीं, जिस मुवालात (दिली दोस्ती व मुहब्बत) से मना किया गया वह न थी।

इस तफ़सील और वज़ाहत से एक तरफ़ तो यह मालूम हो गया कि ग़ैर-मुस्लिमों के लिये इस्लाम में कितनी रवादारी (सद्भावना) और अच्छे बर्ताव की तालीम है, दूसरी तरफ़ जो ज़ाहिरी टकराव दिली दोस्ती के छोड़ने की आयतों से महसूस होता था वह भी दूर हो गया।

अब एक बात यह बाक़ी रह गई कि क़ुरआन ने काफ़िरों के साथ दिली मुहब्बत और दोस्ती से इतनी सख़्ती के साथ क्यों रोका कि वह किसी हालत में किसी काफ़िर के साथ जायज़ नहीं रखी, इसमें क्या हिक्मत है? इसकी एक ख़ास वजह यह है कि इस्लाम की नज़र में इस दुनिया के अन्दर इनसान का वजूद आ़म जानवरों या जंगल के पेड़-पौधों और घास-फूँस की तरह नहीं, कि पैदा हुए, फूले-फले फिर मरकर ख़त्म हो गये, बल्कि इनसान की ज़िन्दगी इस जहान में ज़िन्दगी का एक मक़सद लिये हुए है, उसकी ज़िन्दगी के तमाम दौर, उसका खाना-पीना, उठना-बैठना, सोना-जागना, यहाँ तक कि जीना और मरना सब एक मक़सद के गिर्द घूमते हैं, जब तक वे उस मक़सद के मुताबिक़ हैं तो ये सारे काम सही दुरुस्त हैं, उसके मुख़ालिफ़ हैं तो ये सब ग़लत हैं। मौलाना रूमी ने ख़ूब फ़रमाया हैः

ज़िन्दगी अज़ बहरे ज़िक्र व बन्दगीस्त
बे-इबादत ज़िन्दगी शर्मिन्दगीस्त

कि ज़िन्दगी बन्दगी और इबादत के लिये है, बिना इस मक़सद के ज़िन्दगी शर्मिन्दगी और पछतावे के सिवा कुछ नहीं। **(मुहम्मद इमरान क़ासमी बिज्ञानवी)**

जो इनसान इस मक़सद से हट जाये वह मौलाना रूमी रह. और अहले हक़ीक़त के नज़दीक इनसान नहीं:

आँचे मी बीनी ख़िलाफ़े आदम अन्द
नेस्तन्द आदम, ग़िलाफ़े आदम अन्द

यानी जिसे तुम आदमियत के ख़िलाफ़ चलता देखो वह आदमी नहीं बल्कि सिर्फ़ आदमियत का लिबास पहने हुए है। **(मुहम्मद इमरान क़ासमी बिज्ञानवी)**

क़ुरआने करीम ने इसी मक़सद का इक़रार इनसान से इन अलफ़ाज़ में लिया है:

قُلْ اِنَّ صَلَاتِیْ وَنُسُکِیْ وَمَحْیَایَ وَمَمَاتِیْ لِلّٰهِ رَبِّ الْعٰلَمِیْنَ ٥ (١٦٢:٦)

"आप कहिये कि मेरी नमाज़ और मेरी क़ुरबानी और मेरी ज़िन्दगी और मेरी मौत सब अल्लाह रब्बुल-आलमीन के लिये है।"

और जब इनसान की ज़िन्दगी का मक़सद अल्लाह रब्बुल-आलमीन की इताअ़त व इबादत ठहरा तो दुनिया के कारोबार या हुकूमत व सियासत, सामाजिक और घरेलू ताल्लुक़ात सब उसके ताबे ठहरे, तो जो इनसान इस मक़सद के मुख़ालिफ़ हैं वे इनसान के सबसे ज़्यादा दुश्मन हैं, और इस दुश्मनी में चूँकि शैतान सबसे आगे है इसलिये क़ुरआने हकीम ने फ़रमायाः

اِنَّ الشَّیْطٰنَ لَکُمْ عَدُوٌّ فَاتَّخِذُوْهُ عَدُوًّا. (٦:٣٥)

"यानी शैतान तुम्हारा दुश्मन है उसकी दुश्मनी को हमेशा याद रखो।"

इसी तरह जो लोग शैतानी वस्वसों (ख़्यालात) के पैरो और अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम के ज़रिये आये हुए अल्लाह के अहकाम के मुख़ालिफ़ हैं उनके साथ दिली हमदर्दी और दिली दोस्ती उस शख़्स की हो ही नहीं सकती जिसकी ज़िन्दगी एक मक़सद वाली ज़िन्दगी है और दोस्ती व दुश्मनी और मुवाफ़क़त व मुख़ालफ़त सब उस मक़सद के ताबे हैं।

इसी मज़मून को बुख़ारी व मुस्लिम की एक हदीस में इस तरह इरशाद फ़रमाया गया है:

مَنْ اَحَبَّ لِلّٰهِ وَاَبْغَضَ لِلّٰهِ فَقَدِ اسْتَکْمَلَ اِیْمَانَهٗ. (بخاری و مسلم)

"यानी जिस शख़्स ने अपनी दोस्ती और दुश्मनी को सिर्फ़ अल्लाह के लिये वक़्फ़ कर दिया उसने अपना ईमान मुकम्मल कर लिया।"

मालूम हुआ कि ईमान की तकमील (संपन्नता) उस वक़्त होती है जबकि इनसान अपनी मुहब्बत व दोस्ती और दुश्मनी व नफ़रत को अल्लाह तआ़ला के ताबे बना दे। इसलिये मोमिन की दिली दोस्ती और दिली मुहब्बत सिर्फ़ उसी के लिये हो सकती है जो उस मक़सद का साथी और अल्लाह तआ़ला के फ़रमान के ताबे है। इसलिये क़ुरआने करीम की उक्त आयतों में काफ़िरों के साथ दिली दोस्ती और मुहब्बत करने वालों के बारे में कहा गया कि वे उन्हीं में से हैं।

आयत के आख़िर में इरशाद फ़रमाया कि अल्लाह तआ़ला तुमको अपनी अ़ज़ीम ज़ात से डराता है, ऐसा न हो कि इन वक़्ती स्वार्थों और मक़ासिद की ख़ातिर काफ़िरों की मुहब्बत में मुब्तला होकर अल्लाह जल्ल शानुहू को नाराज़ कर बैठो, और चूँकि मुवालात का ताल्लुक़ दिल से है और दिल का हाल अल्लाह के सिवा कोई नहीं जानता, इसलिये यह हो सकता है कि कोई शख़्स वास्तव में तो काफ़िरों की दिली दोस्ती व मुहब्बत में मुब्तला हो मगर ज़बानी इनकार करे,

इसलिये दूसरी आयत में फ़रमाया कि तुम्हारे दिलों में जो कुछ है अल्लाह तआ़ला उससे ख़ूब वाक़िफ़ व ख़बरदार हैं, यह इनकार व बहना बनाना उनके सामने नहीं चल सकता:

कारहा बा-ख़ल्क़ आरी जुमला रास्त
बा-ख़ुदा तज़वीर व हीला के रवास्त

मख़्लूक़ के सामने तो तुम अपने मामलात को अच्छा बनाकर रखो तो फिर यह शोभा नहीं देता कि अल्लाह के सामने मक्र व फ़रेब और बहाने बाज़ी से काम लो।

(मुहम्मद इमरान क़ासमी बिज्ञानवी)

قُلْ إِنْ كُنْتُمْ تُحِبُّونَ اللّٰهَ فَاتَّبِعُونِي يُحْبِبْكُمُ اللّٰهُ وَيَغْفِرْ لَكُمْ ذُنُوبَكُمْ ۗ وَاللّٰهُ غَفُورٌ رَّحِيمٌ ۝ قُلْ أَطِيعُوا اللّٰهَ وَالرَّسُولَ ۖ فَإِنْ تَوَلَّوْا فَإِنَّ اللّٰهَ لَا يُحِبُّ الْكٰفِرِينَ ۝

क़ुल् इन् कुन्तुम् तुहिब्बूनल्ला-ह फ़त्तबिअ़ूनी युह्बिब्कुमुल्लाहु व यग़्फ़िर् लकुम् ज़ुनूबकुम, वल्लाहु ग़फ़ूरुर्रहीम (31) क़ुल् अतीअुल्ला-ह वर्रसू-ल फ़-इन् तवल्लौ फ़-इन्नल्ला-ह ला युहिब्बुल् काफ़िरीन (32)	तू कह- अगर तुम मुहब्बत रखते हो अल्लाह की तो मेरी राह चलो ताकि मुहब्बत करे तुमसे अल्लाह और बख़्शे तुम्हारे गुनाह, और अल्लाह बख़्शने वाला मेहरबान है। (31) तू कह- हुक्म मानो अल्लाह का और रसूल का, फिर अगर वे मुँह मोड़ें तो अल्लाह को मुहब्बत नहीं काफ़िरों से। (32)

इन आयतों के मज़मून से पीछे से ताल्लुक़

पिछली आयतों में तौहीद का वाजिब होना और कुफ़्र की मज़म्मत (निंदा) बयान हुई थी, आगे रिसालत के एतिक़ाद और इत्तिबा-ए-रसूल सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का वाजिब होना बयान फ़रमाते हैं, ताकि मालूम हो जाये कि जिस तरह तौहीद (अल्लाह के अकेला माबूद होने) का इनकार कुफ़्र है इसी तरह रिसालत का इनकार भी कुफ़्र है। इरशाद होता है:

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

आप (लोगों से) फ़रमा दीजिए कि अगर तुम (अपने गुमान में) ख़ुदा तआ़ला से मुहब्बत रखते हो (और मुहब्बत रखने की वजह से यह भी चाहते हो कि ख़ुदा तआ़ला भी तुमसे मुहब्बत करे) तो तुम लोग (इस मक़सद के हासिल करने के तरीक़ों में) मेरी पैरवी करो (क्योंकि मैं ख़ास इसी तालीम के लिये भेजा गया हूँ। जब ऐसा करोगे) ख़ुदा तआ़ला तुमसे मुहब्बत करने लगेंगे और तुम्हारे सब गुनाहों को माफ़ कर देंगे (क्योंकि मैं उस माफ़ी का तरीक़ा भी तालीम करता हूँ उस पर अ़मल करने से लाज़िमी तौर पर वायदे के अनुसार गुनाह माफ़ हो जायेंगे, जैसे गुनाहों से

तौबा करना, अल्लाह तआला के हुक़ूक़ जो फ़ौत किये हैं उनको पूरा करना, बन्दों के हुक़ूक़ का अदा कर लेना या माफ़ करा लेना), और अल्लाह तआला बड़े माफ़ करने वाले, बड़ी इनायत फ़रमाने वाले हैं। (और) आप यह (भी) फ़रमा दीजिए कि तुम फ़रमाँबरदारी किया करो अल्लाह तआला की (कि असल मक़सूद तो वही है) और (इताअत किया करो) उसके रसूल की (यानी मेरी इताअत इस हैसियत से करना ज़रूरी है कि मैं अल्लाह का रसूल हूँ, मेरी मारिफ़त अपनी इताअत के तरीक़े बतलाये हैं)। फिर (इस पर भी) अगर वे लोग (आपकी इताअत से जिसमें से एक चीज़ आपके रसूल होने का एतिक़ाद भी है) मुँह मोड़ें सो (वे लोग सुन लें कि) अल्लाह तआला काफ़िरों से मुहब्बत नहीं करते (और उस सूरत में ये लोग काफ़िर होंगे सो उनको अल्लाह से मुहब्बत का दावा करना या मुहब्बत की हवस रखना बिल्कुल बे-हक़ीक़त है)।

मआरिफ़ व मसाईल

मुहब्बत एक छुपी चीज़ है, किसी को किसी से मुहब्बत है या नहीं और कम है या ज़्यादा, इसका कोई पैमाना सिवाय इसके नहीं कि हालात और मामलात से अन्दाज़ा किया जाये। मुहब्बत के कुछ आसार और निशानियाँ होती हैं, उनसे पहचाना जाये। ये लोग जो अल्लाह तआला से मुहब्बत के दावेदार और उसके महबूब बनने के इच्छुक थे, अल्लाह तआला ने इनको इन आयतों में अपनी मुहब्बत का मेयार बतलाया है। यानी अगर दुनिया में आज किसी शख़्स को अपने मालिके हक़ीक़ी की मुहब्बत का दावा हो तो उसके लिये लाज़िम है कि उसको इत्तिबा-ए-मुहम्मदी की कसौटी पर आज़मा कर देख ले, सब खरा-खोटा मालूम हो जायेगा। जो शख़्स अपने दावे में जितना सच्चा होगा उतना ही हुज़ूरे अकरम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की इत्तिबा (पैरवी) का ज़्यादा एहतिमाम करेगा और आपकी लाई हुई रोशनी (शरीअत) को रास्ते की मशाल (राहनुमा) बनायेगा, और जितना अपने दावे में कमज़ोर होगा उसी क़द्र आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की इताअत (फ़रमाँबरदारी) में सुस्ती और कमज़ोरी देखी जायेगी।

एक हदीस में आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने इरशाद फ़रमाया- "जिसने मुहम्मद (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) का इत्तिबा किया उसने दर हक़ीक़त अल्लाह का इत्तिबा किया, और जिसने मुहम्मद (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) की नाफ़रमानी की उसने अल्लाह की नाफ़रमानी की।" (तफ़सीरे मज़हरी जिल्द 2)

إِنَّ اللَّهَ اصْطَفَىٰ آدَمَ وَ

نُوحًا وَآلَ إِبْرَاهِيمَ وَآلَ عِمْرَانَ عَلَى الْعَالَمِينَ ۝ ذُرِّيَّةً بَعْضُهَا مِنْ بَعْضٍ ۗ وَاللَّهُ سَمِيعٌ عَلِيمٌ ۝

इन्नल्लाहस्तफ़ा आद-म व नूहंव्-व आ-ल इब्राही-म व आ-ल अिम्रा-न	बेशक अल्लाह ने पसन्द किया आदम को और नूह को और इब्राहीम के घर को और इमरान के घर को सारे जहान से। (33)

अलल् आलमीन (33) ज़ुर्रिय्यतम् बअ़्ज़ुहा मिम्-बअ़्ज़िन्, वल्लाहु समीअुन् अ़लीम (34)	जो औलाद थे एक दूसरे की, और अल्लाह सुनने वाला जानने वाला है। (34)

नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की तसल्ली के लिये पहले नबियों का तज़किरा

जो लोग रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की इताअ़त (फ़रमाँबरदारी) से इसलिये गुरेज़ करते थे कि उनको आपकी नुबुव्वत व रिसालत (अल्लाह का नबी और रसूल होने) ही पर शुब्हा था उनकी हिदायत के लिये इन आयतों में कुछ नज़ीरें (मिसालें) पहले नबियों की बयान फ़रमाई हैं, जिनसे यह शुब्हे दूर हो जायें। उन पहले नबियों के तज़किरे में हज़रत आदम, हज़रत नूह, आले इब्राहीम, आले इमरान का ज़िक्र तो संक्षिप्त और मुख़्तसर तौर पर कर दिया गया है, इसके बाद दर असल ज़िक्र हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम का करना है, उससे पहले उनकी नानी और वालिदा (माँ) का भी तफ़सीली तज़किरा और हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम का बहुत ही विस्तृत ज़िक्र किया गया है, जिसकी हिक्मत व मस्लेहत का बयान 'मसला हयाते ईसा अ़लैहिस्सलाम' के तहत आयेगा। ख़ुलासा यह है कि उम्मते मुहम्मदिया को आख़िरी ज़माने में हज़रत मसीह अ़लैहिस्सलाम के साथ काम करना है इसी लिये उनकी पहचान और अ़लामतों के बयान करने का एहतिमाम क़ुरआन में सब अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम से ज़्यादा किया गया है।

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

बेशक अल्लाह तआ़ला ने (नुबुव्वत के लिए) चुन लिया है (हज़रत) आदम (अ़लैहिस्सलाम) को और (हज़रत) नूह (अ़लैहिस्सलाम) को और (हज़रत) इब्राहीम (अ़लैहिस्सलाम) की औलाद (में से कुछ) को (जैसे हज़रत इस्माईल अ़लैहिस्सलाम, हज़रत इस्हाक़ अ़लैहिस्सलाम, हज़रत याक़ूब अ़लैहिस्सलाम, और बनी इस्राईल के तमाम नबी जो कि याक़ूब अ़लैहिस्सलाम की औलाद हैं, और हमारे रसूल सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम जो कि इस्माईल अ़लैहिस्सलाम की औलाद में से हैं) और इमरान की औलाद (में से कुछ) को (अगर ये इमरान हज़रत मूसा अ़लैहिस्सलाम के वालिद हैं तो औलाद से मुराद हज़रत मूसा और हज़रत हारून अ़लैहिमस्सलाम हैं, और अगर ये इमरान हज़रत मरियम अ़लैहस्सलाम के वालिद हैं तो औलाद से मुराद हज़रत ईसा इब्ने मरियम अ़लैहिस्सलाम हैं, ग़र्ज़ कि इन हज़रात को नुबुव्वत के लिये) तमाम जहान (की मख़्लूक़ात) पर (चुन लिया है)। बाज़े उनमें बाज़ों की औलाद हैं (जैसे आदम अ़लैहिस्सलाम की औलाद सब हैं, इसी तरह नूह अ़लैहिस्सलाम की औलाद सब हैं और हज़रत इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम की औलाद में इमरान की औलाद भी है) और अल्लाह तआ़ला ख़ूब सुनने वाले हैं ख़ूब जानने वाले हैं (कि

सब के कौल सुनते हैं सब के हालात को जानते हैं, बस जिसके अक़्वाल व अहवाल यानी बातें और हालात शाने नुबुव्वत के पद के मुनासिब देखे उनको नबी बना दिया)।

إِذْ قَالَتِ امْرَاَتُ عِمْرٰنَ رَبِّ اِنِّیْ نَذَرْتُ لَکَ مَا فِیْ بَطْنِیْ مُحَرَّرًا فَتَقَبَّلْ مِنِّیْ ۚ اِنَّکَ اَنْتَ السَّمِیْعُ الْعَلِیْمُ ﴿۳۵﴾ فَلَمَّا وَضَعَتْهَا قَالَتْ رَبِّ اِنِّیْ وَضَعْتُهَاۤ اُنْثٰی ؕ وَاللّٰهُ اَعْلَمُ بِمَا وَضَعَتْ ؕ وَلَیْسَ الذَّکَرُ کَالْاُنْثٰی ۚ وَاِنِّیْ سَمَّیْتُهَا مَرْیَمَ وَاِنِّیْۤ اُعِیْذُهَا بِکَ وَذُرِّیَّتَهَا مِنَ الشَّیْطٰنِ الرَّجِیْمِ ﴿۳۶﴾

इज़् क़ा-लतिम्र-अतु अिम्रा-न रब्बि इन्नी नज़र्तु ल-क मा फ़ी बत्नी मुहर्र-रन् फ़-तक़ब्बल् मिन्नी इन्न-क अन्तस्-समीअ़ुल् अलीम (35) फ़-लम्मा व-ज़अत्हा क़ालत् रब्बि इन्नी वज़अ़्तुहा उन्सा, वल्लाहु अअ़्लमु बिमा व-ज़अ़त्, व लैसज़्ज़-करु कल्उन्सा व इन्नी सम्मैतुहा मर्य-म व इन्नी उअीज़ुहा बि-क व ज़ुर्रिय्य-तहा मिनश्-शैतानिर्-रजीम (36)	जब कहा इमरान की औरत ने कि ऐ रब! मैंने नज़्र किया तेरे (यानी भेंट किया तेरे लिये) जो कुछ मेरे पेट में है सबसे आज़ाद रखकर सो तू मुझसे क़ुबूल कर, बेशक तू ही है असल सुनने वाला जानने वाला। (35) फिर जब उसको जना (जन्म दिया) बोली- ऐ रब! मैंने तो इसको लड़की जनी और अल्लाह को ख़ूब मालूम है जो कुछ उसने जना, और बेटा न हो जैसी वह बेटी, और मैंने इसका नाम रखा मरियम और मैं तेरी पनाह में देती हूँ इसको और इसकी औलाद को शैतान मर्दूद से। (36)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

(वह वक़्त भी याद करने के क़ाबिल है) जबकि इमरान (मरियम के बाप) की बीवी ने (गर्भ की हालत में हक़ तआ़ला से) अ़र्ज़ किया कि ऐ मेरे परवर्दिगार! मैंने नज़्र (यानी मन्नत) मानी है आप (की इबादत) के लिए उस बच्चे की जो मेरे पेट में है, कि वह (अल्लाह के घर की ख़िदमत के वास्ते) आज़ाद (फ़ारिग़) रखा जाएगा (और मैं उसको अपने काम में न लगाऊँगी) सो आप (उसको) मुझसे (पैदाईश के बाद) क़ुबूल कर लीजिए, बेशक आप ख़ूब सुनने वाले, ख़ूब जानने वाले हैं (कि मेरी अ़र्ज़ को सुन रहे हैं और मेरी नीयत को जान रहे हैं)। फिर जब (उन बीबी ने) लड़की को जन्म दिया (तो उनको रंज हुआ कि यह तो बैतुल-मुक़द्दस की ख़िदमत के लायक़ नहीं, यह काम तो मर्दों का है, इसलिए हसरत से) कहने लगीं कि ऐ मेरे परवार्दिगार! मैंने तो वह हमल "यानी गर्भ" लड़की जन्मी, (हक़ तआ़ला फ़रमाते हैं कि वह अपने ख़्याल से हसरत कर

रही थीं) हालाँकि ख़ुदा तआ़ला ज़्यादा जानते हैं उस (लड़की की शान) को जो उन्होंने जन्मी, और (किसी तरह भी) वह लड़का (जो उन्होंने चाहा था) इस लड़की के बराबर नहीं (हो सकता था, बल्कि यह लड़की ही अफ़ज़ल है कि इसके कमालात व बरकतें अ़जीब व ग़रीब होंगे। अल्लाह तआ़ला का यह इरशाद बयान हो रही बात से एक ज़ायद चीज़ थी, फिर उन बीबी का क़ौल है) और मैंने इस लड़की का नाम मरियम रखा, और मैं इसको और इसकी औलाद को (अगर कभी औलाद हो) आपकी पनाह (और हिफ़ाज़त) में देती हूँ शैतान मर्दूद से।

मआ़रिफ़ व मसाईल

पहले अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम की शरीअ़त में एक तरीक़ा इबादत का यह भी था कि अपनी औलाद में से किसी बच्चे को अल्लाह के लिये मख़्सूस (ख़ास और नामित) कर दें कि उससे दुनिया की कोई ख़िदमत न लें। हज़रत मरियम अ़लैहस्सलाम की वालिदा ने इसी दस्तूर के मुताबिक़ अपने हमल (गर्भ) के बारे में यह मन्नत मान ली कि उसको ख़ास बैतुल-मुक़द्दस की ख़िदमत के लिये रखूँगी, दुनिया के काम में न लूँगी, मगर जब हमल (गर्भ) से लड़की पैदा हुई तो यह ख़्याल करके अफ़सोस किया कि लड़की तो यह काम नहीं कर सकती मगर हक़ तआ़ला ने उनके इख़्लास की बरकत से उस लड़की ही को क़ुबूल फ़रमा लिया और उसकी शान सारी दुनिया की लड़कियों से मुमताज़ (नुमायाँ और अलग) कर दी।

इससे मालूम हुआ कि माँ को अपने बच्चे की तालीम व तरबियत के लिये एक तरह से सरपरस्ती का हक़ हासिल है, क्योंकि अगर माँ को बच्चे पर वली होने का हक़ हासिल न होता तो हज़रम मरियम अ़लैहस्सलाम की वालिदा (माँ) मन्नत न मानतीं। इसी तरह यह भी साबित हुआ कि माँ को भी हक़ है कि अपने बच्चे का नाम ख़ुद तय करे (यानी नाम रख दे)।

(जस्सास)

فَتَقَبَّلَهَا رَبُّهَا بِقَبُوْلٍ حَسَنٍ وَّاَنْۢبَتَهَا نَبَاتًا حَسَنًا ۙ وَّكَفَّلَهَا زَكَرِيَّا ۚ كُلَّمَا دَخَلَ عَلَيْهَا زَكَرِيَّا الْمِحْرَابَ ۙ وَجَدَ عِنْدَهَا رِزْقًا ۚ قَالَ يٰمَرْيَمُ اَنّٰى لَكِ هٰذَا ۚ قَالَتْ هُوَ مِنْ عِنْدِ اللّٰهِ ۚ اِنَّ اللّٰهَ يَرْزُقُ مَنْ يَّشَآءُ بِغَيْرِ حِسَابٍ ﴿۳۷﴾

फ़-तक़ब्ब-लहा रब्बुहा बि-क़बूलिन् ह-सनिंव्-व अम्ब-तहा नबातन् ह-सनंव्-व कफ़्फ़-लहा ज़-करिय्या, कुल्लमा द-ख़-ल अ़लैहा ज़-करिय्यल् -मिह्रा-ब व-ज-द अ़िन्दहा रिज़्क़न्	फिर क़ुबूल किया उसको उसके रब ने अच्छी तरह का क़ुबूल और बढ़ाया उसको अच्छी तरह बढ़ाना और सुपुर्द की ज़करिया को। जिस वक़्त आते उसके पास ज़करिया मेहराब में पाते उसके पास कुछ खाना। कहा- ऐ मरियम! कहाँ से

क़ा-ल या मर्यमु अन्ना लकि हाज़ा, क़ालत् हु-व मिन् अिन्दिल्लाहि, इन्नल्ला-ह यर्ज़ुक़ु मंय्यशा-उ बिग़ैरि हिसाब (37)	आया तेरे पास यह? कहने लगी यह अल्लाह के पास से आता है, अल्लाह रिज़्क़ देता है जिसको चाहे बेक़ियास (यानी बेअन्दाज़ा और बिना गुमान के)। (37)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

हासिल यह कि हज़रत मरियम अ़लैहस्सलाम की वालिदा (माँ) उनको लेकर मस्जिद बैतुल-मुक़द्दस में पहुँचीं और वहाँ के मुजाविरों व आ़बिदों से जिनमें हज़रत ज़करिया अ़लैहिस्सलाम भी थे, जाकर कहा- इस लड़की को मैंने ख़ास ख़ुदा के लिये माना है, इसलिए मैं अपने पास नहीं रख सकती, सो इसको लाई हूँ, आप लोग रखिये।

हज़रत इमरान अ़लैहिस्सलाम इस मस्जिद के इमाम थे और हालते हमल में उनकी वफ़ात हो चुकी थी, वरना सबसे ज़्यादा मुस्तहिक़ इनके लेने के वह थे, लड़की के बाप भी थे और मस्जिदे बैतुल-मुक़द्दस के इमाम भी, इसलिए बैतुल-मुक़द्दस के मुजाविरों व आ़बिदों में से हर शख़्स इनको लेने और पालने की इच्छा रखता था। हज़रत ज़करिया अ़लैहिस्सलाम ने अपनी तरजीह की यह वजह बयान फ़रमाई कि मेरे घर में इनकी ख़ाला हैं, और वह माँ के दर्जे में होती है, इसलिए माँ के बाद वही रखने की हक़दार हैं, मगर और लोग इस तरजीह पर राज़ी और सहमत नहीं हुए, आख़िर क़ुरा-अन्दाज़ी पर इत्तिफ़ाक़ क़रार पाया, और क़ुरे की सूरत भी अ़जीब व ग़रीब ख़िलाफ़े आ़दत तय पाई, जिसका बयान आगे आएगा। उसमें भी हज़रत ज़करिया अ़लैहिस्सलाम कामयाब हुए।

चुनाँचे हज़रत मरियम अ़लैहस्सलाम उनको मिल गईं और उन्होंने कुछ रिवायतों के मुताबिक़ एक अन्ना को नौकर रखकर दूध पिलवाया, और कुछ रिवायतों में है कि दूध पीने की उनको हाजत ही नहीं हुई। ग़र्ज़ कि वह ख़ुद उठने-बैठने लगीं, उनको मस्जिद के एक उम्दा मकान में लाकर रखा, जब कहीं जाते उसको ताला लगाकर जाते, फिर आकर खोल लेते, इसी क़िस्से का ज़िक्र मुख़्तसर तौर पर आगे आता है (यानी):-

पस उन (मरियम अ़लैहस्सलाम) को उनके रब ने बेहतरीन तौर पर क़ुबूल फ़रमाया और उम्दा तौर पर परवान चढ़ाया, और (हज़रत) ज़करिया (अ़लैहिस्सलाम) को उनका सरपरस्त "यानी वली और अभिभावक" बनाया, (सो) जब कभी (हज़रत) ज़करिया (अ़लैहिस्सलाम) उनके पास (उसी) उम्दा मकान में (जिसमें उनको रखा था) तशरीफ़ लाते तो उनके पास कुछ खाने-पीने की चीज़ें पाते (और) यूँ फ़रमाते कि ऐ मरियम! ये चीज़ें तुम्हारे वास्ते कहाँ से आईं (जबकि मकान में ताला लगा है, या बाहर से किसी के आने-जाने की संभावना नहीं) वह कहतीं कि अल्लाह तआ़ला के पास (जो ग़ैब का ख़ज़ाना है उसमें) से आईं, बेशक अल्लाह तआ़ला जिसको

चाहते हैं बिना पात्रता के भी रिज़्क़ अता फ़रमाते हैं (जैसा कि इस मौक़े पर महज़ अपने फ़ज़्ल से बिना किसी मशक़्क़त के अता फ़रमाया)।

هُنَالِكَ دَعَا زَكَرِيَّا رَبَّهُ ۚ قَالَ رَبِّ هَبْ لِي مِن لَّدُنكَ ذُرِّيَّةً طَيِّبَةً ۖ إِنَّكَ سَمِيعُ الدُّعَاءِ

हुनालि-क दआ़ ज़-करिय्या रब्बहू का-ल रब्बि हब् ली मिल्लदुन्-क ज़ुर्रिय्यतन् तय्यि-बतन् इन्न-क समीअ़ुद्दुआ़-इ (38)	वहीं दुआ़ की ज़करिया ने अपने रब से, कहा ऐ रब मेरे! अ़ता कर मुझको अपने पास से औलाद पाकीज़ा, बेशक तू सुनने वाला है दुआ़ का। (38)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

(हज़रत ज़करिया अ़लैहिस्सलाम ने हज़रत मरियम अ़लैहस्सलाम की तरबियत में क़ुदरत की असाधारण निशानियाँ देखकर अपने लिये भी दुआ़ फ़रमाई, जिसका बयान यह है):

उस मौक़े पर दुआ़ की (हज़रत) ज़करिया (अ़लैहिस्सलाम) ने अपने रब से, अ़र्ज़ किया कि ऐ मेरे रब! इनायत कीजिए मुझको ख़ास अपने पास से कोई अच्छी औलाद, बेशक आप बहुत सुनने वाले हैं दुआ़ के।

मआ़रिफ़ व मसाईल

هُنَالِكَ دَعَا زَكَرِيَّا رَبَّهُ.........الخ

हज़रत ज़करिया अ़लैहिस्सलाम के उस वक़्त तक औलाद न थी, और ज़माना बुढ़ापे का आ गया था जिसमें आ़दतन औलाद नहीं हो सकती, अगरचे आ़दत और आ़म दस्तूर के बावजूद क़ुदरते ख़ुदावन्दी पर उनको पूरा एतिक़ाद था कि वह ज़ात इस बुढ़ापे के मौक़े में भी औलाद दे सकती है लेकिन चूँकि अल्लाह की ऐसी आ़दत आपने नज़रों से नहीं देखी थी कि वह बेमौक़ा और बेमौसम चीज़ें अ़ता करता है, इसलिये आपको औलाद के लिये दुआ़ करने की जुर्रत (साहस व हिम्मत) न होती थी, लेकिन उस वक़्त जब आपने देख लिया कि अल्लाह तआ़ला ने हज़रत मरियम अ़लैहस्सलाम को बेमौसम मेवे अ़ता फ़रमाये हैं तो अब आपको भी सवाल करने की जुर्रत हुई कि जो क़ादिरे मुतलक़ बेमौक़ा फल अ़ता कर सकता है वह बेमौक़ा औलाद भी अ़ता करेगा।

قَالَ رَبِّ هَبْ لِي مِن لَّدُنكَ ذُرِّيَّةً طَيِّبَةً.

इस आयत से मालूम हुआ कि औलाद के लिये दुआ़ करना अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम और नेक लोगों की सुन्नत है।

एक दूसरी आयत में हक़ तआ़ला का इरशाद है:

وَلَقَدْ اَرْسَلْنَا رُسُلًا مِّنْ قَبْلِكَ وَجَعَلْنَا لَهُمْ اَزْوَاجًا وَّ ذُرِّيَّةً. (۳۸:۱۳)

"यानी जिस तरह हुज़ूरे अकरम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को बीवियाँ और औलाद अ़ता की गई इसी तरह यह नेमत पहले अम्बिया को भी दी गई थी।"

अब अगर कोई शख़्स किसी माध्यम से औलाद को पैदा होने से रोकने की कोशिश करे तो वह न सिर्फ़ फ़ितरत के ख़िलाफ़ बग़ावत का झण्डा बुलन्द करेगा बल्कि अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम की एक साझा और सहमति पूर्ण सुन्नत से भी मेहरूम होगा। हुज़ूरे अकरम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने निकाह और औलाद के मसले को इतनी अहमियत दी है कि आपने उस शख़्स को अपनी जमाअ़त में शामिल होने की इजाज़त नहीं दी जो ब्याह-शादी और औलाद से ताक़त के बावजूद किनारा करता हो। चुनाँचे आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम फ़रमाते हैं:

١. اَلنِّكَاحُ مِنْ سُنَّتِىْ.

٢. فَمَنْ رَغِبَ عَنْ سُنَّتِىْ فَلَيْسَ مِنِّىْ.

٣. تَزَوَّجُوا الْوَدُوْدَ الْوَلُوْدَ فَاِنِّىْ مُكَاثِرٌ بِكُمُ الْاُمَمَ.

निकाह मेरी सुन्नत है।

जो मेरी सुन्नत से मुँह फेरे वह मुझसे नहीं होगा।

तुम शौहर से दोस्ती करने वाली और बहुत जनने वाली से निकाह करो, क्योंकि तुम्हारी अधिकता की वजह से मैं दूसरी उम्मतों पर फ़ख़्र (गर्व) करूँगा।

एक दूसरी आयत में अल्लाह तआ़ला ने ऐसे लोगों की तारीफ़ की है जो औलाद और बीवी के हासिल करने और उनके नेक सालेह होने के लिये अपने अल्लाह से दुआ़यें करते हैं। चुनाँचे इरशादे बारी है:

وَالَّذِيْنَ يَقُوْلُوْنَ رَبَّنَا هَبْ لَنَا مِنْ اَزْوَاجِنَا وَذُرِّيّٰتِنَا قُرَّةَ اَعْيُنٍ. (۲۵:۷٤)

"यानी अल्लाह के फ़रमाँबरदार लोग ऐसे हैं जो यह दुआ़ करते हैं कि हमें बीवी बच्चे ऐसे इनायत फ़रमा जिन्हें देखकर आँखें ठंडी और दिल ख़ुश हो।"

हज़रत हसन बसरी रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने फ़रमाया कि यहाँ आँखों की ठंडक से मुराद यह है कि अपने बीवी बच्चों को अल्लाह तआ़ला की इताअ़त में मश्गूल देखे।

एक हदीस में आता है कि हुज़ूरे अकरम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से उम्मे सुलैम ने दरख़्वास्त की कि आप अपने ख़ादिम "अनस" के लिये कोई दुआ़ फ़रमायें तो आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने उनके लिये यह दुआ़ की:

اَللّٰهُمَّ اَكْثِرْ مَالَهٗ وَوَلَدَهٗ وَبَارِكْ لَهٗ فِيْمَآ اَعْطَيْتَهٗ.

"यानी ऐ अल्लाह! इस (अनस) के माल और औलाद को ज़्यादा कर और उस चीज़ में बरकत अ़ता कर जो कि आपने इसको अ़ता की है।"

इसी दुआ़ का असर था कि हज़रत अनस रज़ियल्लाहु अ़न्हु की औलाद सौ के क़रीब हुई

और अल्लाह तआ़ला ने माली वुस्अ़त (ख़ुशहाली) भी अ़ता फ़रमाई।

فَنَادَتْهُ الْمَلٰٓئِكَةُ وَهُوَ قَآئِمٌ يُّصَلِّيْ فِي الْمِحْرَابِ ۙ اَنَّ اللّٰهَ يُبَشِّرُكَ
بِيَحْيٰى مُصَدِّقًا بِكَلِمَةٍ مِّنَ اللّٰهِ وَسَيِّدًا وَّحَصُوْرًا وَّنَبِيًّا مِّنَ الصّٰلِحِيْنَ ﴿۳۹﴾

फ़नादत्हुल् मलाइ-कतु व हु-व क़ा-इमुंय्युसल्ली फ़िल्-मिह़राबि अन्नल्ला-ह युबश्शिरु-क बि-यह़्या मुसद्दिक़म् बि-कलिमतिम् मिनल्लाहि व सय्यिदंव्-व हसूरंव्-व नबिय्यम् मिनस्सालिहीन (39)	फिर उसको आवाज़ दी फ़रिश्तों ने जब वह खड़े थे नमाज़ में हुजरे के अन्दर कि अल्लाह तुझको ख़ुशख़बरी देता है यहया की जो गवाही देगा अल्लाह के हुक्म की और सरदार होगा और औरत के पास न जायेगा और नबी होगा सालिहीन से। (39)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

पस पुकार कर कहा उनसे फ़रिश्तों ने और वह खड़े नमाज़ पढ़ रहे थे मेहराब में कि अल्लाह तआ़ला आपको ख़ुशख़बरी देते हैं यहया (नाम का बेटा अ़ता होने) की, जिनके हालात ये होंगे कि वह कलिमतुल्लाह (यानी हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम की नुबुव्वत) की तस्दीक़ करने वाले होंगे, और (दूसरे) (दीन के) पेशवा होंगे "यानी रहनुमा होंगे और उनकी पैरवी की जाएगी" और (तीसरे) अपने नफ़्स को (लज़्ज़तों से) बहुत रोकने वाले होंगे, और (चौथे) नबी भी होंगे और (पाँचवे) आला दर्जे के सलीक़े वाले और सभ्य होंगे।

मआ़रिफ़ व मसाईल

'कलिमतुल्लाहि'। हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम को कलिमतुल्लाह इसलिये कहते हैं कि वह महज़ अल्लाह तआ़ला के हुक्म से ख़िलाफ़े आ़दत बाप के वास्ते के बग़ैर पैदा किये गये।

'हसूरन्'। हज़रत यहया अ़लैहिस्सलाम की यह तीसरी सिफ़त बयान की गई कि वह अपने नफ़्स को लज़्ज़तों से बहुत रोकने वाले थे, और लज़्ज़तों से रोकने में जायज़ इच्छाओं से बचना भी दाख़िल है, जैसे अच्छा खाना, अच्छा पहनना और निकाह वग़ैरह करना। इस सिफ़त को तारीफ़ के तौर पर बयान फ़रमाने से बज़ाहिर यह मालूम होता है कि अफ़ज़ल तरीक़ा यही है हालाँकि हदीसों से निकाह की फ़ज़ीलत साबित है। तहक़ीक़ इसकी यह है कि जिस शख़्स की हालत हज़रत यहया अ़लैहिस्सलाम के जैसी हो कि उस पर आख़िरत का ख़्याल इस क़द्र ग़ालिब हो कि उसके ग़लबे की वजह से न बीवी की ज़रूरत महसूस करे और न बीवी बच्चों के हुक़ूक़ अदा करने की फ़ुर्सत हो, ऐसे शख़्स के लिये यही अफ़ज़ल है। इसी वजह से जिन हदीसों में

निकाह की फ़ज़ीलत आई है उनमें यह भी कैद लगाई गयी है:

مَنِ اسْتَطَاعَ مِنْكُمُ الْبَاءَةَ

यानी जो आदमी निकाह करने की क़ुदरत रखता हो और बीबी के हुक़ूक़ अदा कर सकता हो तो उसके लिये निकाह करना अफ़ज़ल है, वरना नहीं। (बयानुल-क़ुरआन)

قَالَ رَبِّ أَنَّىٰ يَكُونُ لِي غُلَامٌ وَقَدْ بَلَغَنِيَ الْكِبَرُ وَامْرَأَتِي عَاقِرٌ ۖ قَالَ كَذَٰلِكَ اللَّهُ يَفْعَلُ مَا يَشَاءُ ۝ قَالَ رَبِّ اجْعَل لِّي آيَةً ۖ قَالَ آيَتُكَ أَلَّا تُكَلِّمَ النَّاسَ ثَلَاثَةَ أَيَّامٍ إِلَّا رَمْزًا ۗ وَاذْكُر رَّبَّكَ كَثِيرًا وَسَبِّحْ بِالْعَشِيِّ وَالْإِبْكَارِ ۝

का-ल रब्बि अन्ना यकूनु ली ग़ुलामुंव्-व क़द् ब-ल-ग़नियल्-कि-बरु वम्र-अती आक़िरुन्, क़ा-ल कज़ालिकल्लाहु यफ़्अ़लु मा यशा-उ (40) क़ा-ल रब्बिज्अ़ल्ली आ-यतन्, क़ा-ल आयतु-क अल्ला तुकल्लिमन्--ना-स सला-स-त अय्यामिन् इल्ला रम्ज़न् वज़्कुर्-रब्ब-क कसीरंव्-व सब्बिह् बिल्-अ़शिय्यि वल्-इब्कार (41) ✿	कहा ऐ रब! कहाँ से होगा मेरे लड़का और पहुँच चुका मुझको बुढ़ापा और औरत मेरी बाँझ है, फ़रमाया इसी तरह अल्लाह करता है जो चाहे। (40) कहा ऐ रब! मुक़र्रर कर मेरे लिये कुछ निशानी, फ़रमाया निशानी तेरे लिए यह है कि न बात करेगा तू लोगों से तीन दिन मगर इशारे से, और याद कर अपने रब को बहुत और तस्बीह कर शाम और सुबह। (41) ✿

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

(हज़रत) ज़करिया (अ़लैहिस्सलाम) ने (अल्लाह के हुज़ूर में) अ़र्ज़ किया कि ऐ मेरे परवर्दिगार! मेरे लड़का किस तरह होगा हालाँकि मुझको बुढ़ापा आ पहुँचा और मेरी बीवी भी (बुढ़ापे की वजह से) बच्चा जनने के काबिल नहीं है? अल्लाह तआ़ला ने (जवाब में) इरशाद फ़रमाया कि इसी हालत में लड़का हो जाएगा (क्योंकि) अल्लाह तआ़ला जो कुछ इरादा करें कर देते हैं। उन्होंने अ़र्ज़ किया कि ऐ परवर्दिगार! (तो फिर) मेरे वास्ते कोई निशानी मुक़र्रर फ़रमा दीजिए (जिससे मुझे मालूम हो जाये कि अब गर्भ हो गया) अल्लाह तआ़ला ने फ़रमाया कि तुम्हारी निशानी यही है कि तुम लोगों से तीन दिन तक बातें न कर सकोगे सिवाय (हाथ या सर वग़ैरह के) इशारे के, (जब यह निशानी देखो तो समझ जाना कि अब घर में उम्मीद है) और

(उस ज़माने में जब आदमियों से गुफ़्तगू करने की क़ुदरत न रहे अल्लाह के ज़िक्र पर क़ादिर रहोगे, सो) अपने रब को (दिल से भी) कसरत से याद कीजियो और (ज़बान से भी) तस्बीह (और पाकी बयान) कीजियो दिन ढले भी और सुबह को भी (क्योंकि अल्लाह के ज़िक्र की क़ुदरत उस वक़्त भी पूरी रहेगी)।

मआरिफ़ व मसाईल

हज़रत ज़करिया अलैहिस्सलाम की दुआ और उसकी हिक्मत

اَنّٰى يَكُوْنُ لِىْ غُلٰمٌ

हज़रत ज़करिया अलैहिस्सलाम बावजूद इसके कि अल्लाह की क़ुदरत के मोतक़िद भी थे और नमूने को कई बार देख भी चुके थे और ख़ुद ही दरख़्वास्त की थी और क़ुबूल होने का इल्म भी हो गया था, फिर इस कहने के क्या मायने कि किस तरह लड़का होगा? बात दर हक़ीक़त यह है कि आपका यह सवाल करना अल्लाह तआला की क़ुदरत में शक की वजह से नहीं था बल्कि मक़सूद सवाल से कैफ़ियत (अन्दाज़) का मालूम करना था कि आया हम दोनों मियाँ-बीवी की जो मौजूदा हालत है कि दोनों ख़ूब बूढ़े हैं यही हालत रहेगी या कुछ इसमें तब्दीली आयेगी, अल्लाह तआला ने जवाब में फ़रमाया कि नहीं तुम बूढ़े ही रहोगे और इसी हालत में तुम्हारे औलाद होगी। अब इसमें कोई इश्काल (शुब्हा) न रहा। (तफ़सीर बयानुल-क़ुरआन)

قَالَ اٰيَتُكَ اَلَّا تُكَلِّمَ النَّاسَ ثَلٰثَةَ اَيَّامٍ اِلَّا رَمْزًا

हज़रत ज़करिया अलैहिस्सलाम का निशानी मालूम करने से मक़सद यह था कि हमें जल्दी ख़ुशी हो और बच्चे के पैदा होने से पहले ही शुक्र में मशग़ूल हों, चुनाँचे अल्लाह तआला ने आपको यह निशानी अता की कि आप तीन दिन तक लोगों से सिवाय इशारे के कोई कलाम नहीं कर सकेंगे।

इस निशानी में एक लतीफ़ बात यह भी है कि निशानी की दरख़्वास्त से जो उनका मक़सूद था कि शुक्र अदा करें, निशानी ऐसी तय की गई कि सिवाय उस मक़सूद के दूसरे काम ही के न रहेंगे। सौ निशानियों की एक निशानी हो गई और मक़सूद का मक़सूद पूरी तरह हासिल हो गया। (तफ़सीर बयानुल-क़ुरआन)

اِلَّا رَمْزًا

'मगर इशारे से' इस आयत से मालूम हुआ कि जब कलाम करना दुश्वार हो तो इशारा कलाम (बात करने) के क़ायम-मक़ाम समझा जायेगा। चुनाँचे एक हदीस में आता है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने एक गूँगी बाँदी से सवाल कियाः

اَيْنَ اللّٰهُ

"अल्लाह कहाँ है?" तो उसने आसमान की तरफ़ इशारा किया, हुज़ूरे अकरम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने इरशाद फ़रमाया कि यह बाँदी मुसलमान है। (तफ़सीरे क़ुर्तुबी)

وَإِذْ قَالَتِ الْمَلٰٓئِكَةُ يٰمَرْيَمُ إِنَّ اللّٰهَ اصْطَفٰىكِ وَطَهَّرَكِ وَاصْطَفٰىكِ
عَلٰى نِسَآءِ الْعٰلَمِيْنَ ۝ يٰمَرْيَمُ اقْنُتِىْ لِرَبِّكِ وَاسْجُدِىْ وَارْكَعِىْ مَعَ الرّٰكِعِيْنَ ۝

व इज़् कालतिल् मलाइ-कतु या मर्यमु इन्नल्लाहस्तफ़ाकि व तह्ह-रकि वस्तफ़ाकि अ़ला निसा-इल्-आ़लमीन (42) या मर्यमुक़्नुती लिरब्बिकि वस्जुदी वर्कअ़ी मअ़र्राकिअ़ीन (43)	**और जब फ़रिश्ते बोले ऐ मरियम! अल्लाह ने तुझको पसन्द किया और सुथरा (पवित्र) बना दिया और पसन्द किया तुझको सब जहान की औरतों पर। (42) ऐ मरियम! बन्दगी कर अपने रब की और सज्दा कर और रुकूअ़ कर साथ रुकूअ़ करने वालों के। (43)**

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

और (वह वक़्त ज़िक्र करने के क़ाबिल है) जबकि फ़रिश्तों ने (हज़रत मरियम अ़लैहस्सलाम से) कहा कि ऐ मरियम! बेशक तुमको अल्लाह तआ़ला ने मुन्तख़ब (यानी मक़बूल) फ़रमाया है, और (तमाम नापसन्दीदा कामों व अख़्लाक़ से) पाक बनाया है, और (मक़बूल फ़रमाना कुछ एक दो औरतों के एतिबार से नहीं बल्कि इस ज़माने की) तमाम जहान की औरतों के मुक़ाबले में तुमको मुन्तख़ब (चुना और मक़बूल) फ़रमाया है। (और फ़रिश्तों ने यह भी कहा कि) ऐ मरियम! फ़रमाँबरदारी करती रहो अपने परवर्दिगार की और सज्दा (यानी नमाज़ अदा) किया करो, और (नमाज़ में) रुकूअ़ (भी) किया करो उन लोगों के साथ जो रुकूअ़ करने वाले हैं।

मआ़रिफ़ व मसाईल

وَاصْطَفٰىكِ عَلٰى نِسَآءِ الْعٰلَمِيْنَ.

'तमाम जहान भर की औरतों के मुक़ाबले में चुना' से मुराद उस ज़माने में तमाम जहान की औरतें हैं, इसलिये हदीस में:

سَيِّدَةُ نِسَآءِ أَهْلِ الْجَنَّةِ فَاطِمَةُ

'जन्नत की औरतों की सरदार फ़ातिमा हैं' का इरशाद इसके मनाफ़ी (विरुद्ध) नहीं।

وَارْكَعِىْ مَعَ الرّٰكِعِيْنَ

'रुकूअ़ किया करो' यहाँ रुकूअ़ करने में दूसरे रुकूअ़ करने वालों के साथ की क़ैद ज़िक्र की

गई लेकिन 'सज्दा करो' में 'सज्दा करने वालों' के साथ सज्दा करने की क़ैद ज़िक्र नहीं की गई। इससे बज़ाहिर इशारा इस बात की तरफ़ कर दिया कि रुकूअ़ करने में लोग उमूमन एहतिमाम नहीं करते बल्कि मामूली सा झुक कर उठ जाते हैं, इस क़िस्म का रुकूअ़ क़ियाम (खड़े होने की हालत) के ज़्यादा क़रीब होता है इसलिये बज़ाहिर ऐसा मालूम होता है कि अल्लाह तआ़ला ने 'रुकूअ़ करने वालों' की क़ैद ज़िक्र करके लोगों के लिये एक नमूना बतला दिया कि तुम्हारा रुकूअ़ कामिल (पूरा और अच्छी तरह) रुकूअ़ करने वालों जैसा होना चाहिये।

ذٰلِكَ مِنْ اَنْۢبَآءِ الْغَيْبِ نُوْحِيْهِ اِلَيْكَ ۭ وَمَا كُنْتَ

لَدَيْهِمْ اِذْ يُلْقُوْنَ اَقْلَامَهُمْ اَيُّهُمْ يَكْفُلُ مَرْيَمَ ۠ وَمَا كُنْتَ لَدَيْهِمْ اِذْ يَخْتَصِمُوْنَ ۝

ज़ालि-क मिन् अम्बा-इल् ग़ैबि नूहीहि इलै-क, व मा कुन्-त लदैहिम इज़् युल्क़ू-न अक़्ला-महुम् अय्युहुम् यक्फ़ुलु मर्य-म व मा कुन्-त लदैहिम् इज़् यख़्तसिमून (44)	ये ख़बरें ग़ैब की हैं जो हम भेजते हैं तुझको, और तू न था उनके पास जब डालने लगे अपने क़लम कि कौन परवरिश में ले मरियम को, और तू न था उनके पास जब वे झगड़ते थे। (44)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

ये क़िस्से (जो ऊपर ज़िक्र हुए जनाब रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के एतिबार से इस वजह से कि आपके पास कोई ज़ाहिरी माध्यम इनके मालूम करने का न था) ग़ैब की ख़बरों में से हैं, जिनकी वही भेजते हैं हम आपके पास (उसके ज़रिये से आप ये ख़बरें मालूम करके औरों को बतलाते हैं) और (ज़ाहिर है कि जो लोग हज़रत मरियम अ़लैहस्सलाम के रखने में झगड़ रहे थे, जिसका फ़ैसला आख़िर में क़ुरा डालकर क़रार पाया था) आप उन लोगों के पास न तो उस वक़्त मौजूद थे जबकि वे (पर्ची डालने के तौर पर) अपने-अपने क़लमों को (पानी में) डालते थे (और सूरत क़ुरा निकलने की यह क़रार पाई थी कि जिसका क़लम पानी की हरकत के ख़िलाफ़ उल्टा बह जाये वह हक़दार समझा जाए, सो क़ुरा डालने से ग़र्ज़ इस बात का तय करना था) कि उन सब में कौन शख़्स (हज़रत) मरियम (अ़लैहस्सलाम) की (परवरिश की) ज़िम्मेदारी लें। (पस आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम न तो उस वक़्त मौजूद थे) और न आप उनके पास मौजूद थे जबकि वे लोग (क़ुरा डालने से पहले उस मामले में) आपस में झगड़ रहे थे (जिसके समाधान के लिये यह क़ुरा डालना क़रार पाया, और इन ख़बरों के मालूम होने के लिये दूसरे माध्यमों का न होना भी यक़ीनन मालूम है। पस ऐसी हालत में ये ग़ैबी ख़बरें आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की नुबुव्वत की दलील हैं)।

मआरिफ़ व मसाईल

मसलाः- शरीअ़ते मुहम्मदिया में हनफ़िया के मस्लक पर क़ुरा डालने का यह हुक्म है कि जिन हुक़ूक़ के असबाब शरीअ़त में मालूम व मुतैयन हैं उनमें क़ुरा डालना नाजायज़ और जुए में दाख़िल है, जैसे साझे की चीज़ में, कि जिसका नाम निकल आये वह सारी ले ले, या जिस बच्चे के नसब (ख़ानदान) में विवाद हो उसमें जिसका नाम निकल आये वही बाप समझा जाये। और जिन हुक़ूक़ के असबाब राय के सुपुर्द हों उनमें क़ुरा डालना (यानी पर्ची वग़ैरह डालकर उसके ज़रिये फ़ैसला करना) जायज़ है, जैसे साझा मकान की तक़सीम में क़ुरा डालना कि इसका कौनसा हिस्सा किसके हिस्से में आये, यह इसलिये जायज़ है कि बिना क़ुरे के भी ऐसा करना साझेदारों की सहमति से या क़ाज़ी के फ़ैसले से जायज़ था। (तफ़सीर बयानुल-क़ुरआन)

या यूँ कहिये कि जहाँ सब शरीकों के हुक़ूक़ बराबर हों वहाँ कोई एक दिशा एक शख़्स के लिये मुतैयन करने के वास्ते क़ुरा डालना जायज़ है।

إِذْ قَالَتِ الْمَلَٰٓئِكَةُ يَٰمَرْيَمُ إِنَّ اللَّهَ يُبَشِّرُكِ بِكَلِمَةٍ مِّنْهُ ۝ اسْمُهُ الْمَسِيحُ عِيسَى ابْنُ مَرْيَمَ وَجِيهًا فِي الدُّنْيَا وَالْآخِرَةِ وَمِنَ الْمُقَرَّبِينَ ۝ وَيُكَلِّمُ النَّاسَ فِي الْمَهْدِ وَكَهْلًا وَمِنَ الصَّٰلِحِينَ ۝

इज़् कालतिल् मलाइ-कतु या मर्यमु इन्नल्ला-ह युबश्शिरुकि बि-कलि-मतिम् मिन्हुस्मुहुल्-मसीहु ओसब्नु मर्य-म वजीहन् फ़िद्दुन्या वल्आख़ि-रति व मिनल्-मुक़र्रबीन (45) व युकल्लिमुन्ना-स फ़िल्मह्दि व कह्लंव्-व मिनस्सालिहीन (46)	जब कहा फ़रिश्तों ने ऐ मरियम! अल्लाह तुझको बशारत (ख़ुशख़बरी) देता है एक अपने हुक्म की जिसका नाम मसीह है, ईसा मरियम का बेटा, मर्तबे वाला दुनिया में और आख़िरत में, और अल्लाह के मुक़र्रबों (ख़ास और क़रीबी बन्दों) में। (45) और बातें करेगा लोगों से जबकि माँ की गोद में होगा और जबकि पूरी उम्र का होगा, और नेकबख़्तों में है। (46)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

(उस वक़्त को याद करो) जबकि फ़रिश्तों ने (हज़रत मरियम अ़लैहस्सलाम से यह भी) कहा कि ऐ मरियम! बेशक अल्लाह तआ़ला तुमको ख़ुशख़बरी देते हैं एक कलिमे की, जो अल्लाह की जानिब से होगा (यानी एक बच्चा पैदा होने की जो बाप के वास्ते के बग़ैर पैदा होने के सबब कलिमतुल्लाह कहलायेगा) उसका नाम (व उपनाम) मसीह ईसा बिन मरियम होगा। (उनके ये

हालात होंगे कि) आबरू वाले होंगे (ख़ुदा तआ़ला के नज़दीक) दुनिया में (भी कि उनको नुबुव्वत अ़ता होगी) और आख़िरत में (भी कि अपनी उम्मत के मोमिनों के बारे में उनकी शफ़ाअ़त मक़बूल होगी) और (जैसे उनमें नुबुव्वत व शफ़ाअ़त की सिफ़त होगी जिसका ताल्लुक़ दूसरों से भी है, इसी तरह ज़ाती कमाल वाले भी होंगे, अल्लाह के ख़ास और) मुक़र्रब हज़रात में से होंगे। और (मोजिज़े वाले भी होंगे)। आदमियों से (दोनों हालत में बराबर) कलाम करेंगे, गहवारे "यानी पालने" में (यानी बिल्कुल बचपन में भी) और बड़ी उम्र में (भी, दोनों कलामों में फ़र्क़ न होगा) और (आला दर्जे के सभ्य और) सलीक़े वाले लोगों में से होंगे।

मआ़रिफ़ व मसाईल

हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम के उतरने की एक दलील

बड़ी उम्र में भी हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम का कलाम मोजिज़ा ही है

इस आयत में हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम की एक सिफ़त यह भी बतलाई है कि वह बचपन के गहवारे में जब कोई बच्चा कलाम करने की सलाहियत नहीं रखता उस हालत में भी कलाम करेंगे जैसा कि एक दूसरी आयत में मज़कूर है कि जब लोगों ने उनकी पैदाईश के बाद हज़रत मरियम अ़लैहस्सलाम पर तोहमत की बिना पर लान-तान किया तो यह नवजात बच्चा हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम बोल उठेः

اِنِّیْ عَبْدُ اللّٰہِ.................الخ (۱۹:۳۰)

कि 'मैं अल्लाह का बन्दा हूँ..............' और इसके साथ यह भी फ़रमाया कि जब वह अधेड़ उम्र के होंगे, उस वक़्त भी लोगों से कलाम करेंगे। यहाँ यह बात क़ाबिले ग़ौर है कि बचपन की हालत में कलाम करना तो एक मोजिज़ा (चमत्कार) और निशानी थी, इसका ज़िक्र तो इस जगह करना मुनासिब है, मगर अधेड़ उम्र में लोगों से कलाम करना तो एक ऐसी चीज़ है जो हर इनसान मोमिन काफ़िर, आ़लिम जाहिल किया ही करता है, यहाँ इसको एक ख़ास सिफ़त और विशेषता के तौर पर ज़िक्र करने के क्या मायने हो सकते हैं।

इस सवाल का एक जवाब तो वह है जो तफ़सीर 'बयानुल-क़ुरआन' के ख़ुलासा-ए-तफ़सीर से समझ में आया कि मक़सद असल में बचपन की हालत ही के कलाम का बयान करना है, उसके साथ बड़ी उम्र के कलाम का ज़िक्र इस ग़र्ज़ से किया गया कि उनका बचपन का कलाम भी ऐसा नहीं होगा जैसे बच्चे शुरू में बोला करते हैं, बल्कि अ़क़्लमन्दों जैसा इल्म व समझ वाला और उम्दा व बेहतरीन कलाम होगा, जैसे अधेड़ उम्र के आदमी किया करते हैं। और अगर हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम के वाक़िए और उसकी पूरी तारीख़ पर ग़ौर किया जाये तो इस जगह अधेड़ उम्र में कलाम करने का तज़किरा एक मुस्तक़िल ज़बरदस्त फ़ायदे के लिये हो जाता है, वह यह कि इस्लामी और क़ुरआनी अ़क़ीदे के मुताबिक़ हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम को ज़िन्दा

आसमान पर उठा लिया गया है। रिवायात से यह साबित है कि उनको उठाने के वक़्त हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम की उम्र तक़रीबन तीस या पैतींस साल (1) के बीच थी जो ऐन जवानी का ज़माना था, अधेड़ उम्र जिसको अ़रबी में **कह्ल** कहते हैं वह इस दुनिया में उनकी हुई ही नहीं, इसलिये अधेड़ उम्र में लोगों से कलाम तभी हो सकता है जबकि वह फिर दुनिया में तशरीफ़ लायें इसलिये जिस तरह उनका बचपन का कलाम मोजिज़ा था इसी तरह अधेड़ उम्र का कलाम भी मोजिज़ा ही है।

قَالَتْ رَبِّ اَنّٰى يَكُوْنُ لِىْ وَلَدٌ وَّلَمْ يَمْسَسْنِىْ
بَشَرٌ ۚ قَالَ كَذٰلِكِ اللّٰهُ يَخْلُقُ مَا يَشَآءُ ۚ اِذَا قَضٰٓى اَمْرًا فَاِنَّمَا يَقُوْلُ لَهٗ كُنْ فَيَكُوْنُ ۝

क़ालत् रब्बि अन्ना यकूनु ली व-लदुंव्-व लम् यम्सस्नी ब-शरुन्, क़ा-ल कज़ालिकिल्लाहु यख़्लुक़ु मा यशा-उ, इज़ा क़ज़ा अम्रन् फ़-इन्नमा यक़ूलु लहू कुन् फ़-यकून (47)	**बोली ऐ रब! कहाँ से होगा मेरे लड़का और मुझको हाथ नहीं लगाया किसी बशर (इनसान) ने? फ़रमाया इसी तरह अल्लाह पैदा करता है जो चाहे, जब इरादा करता है किसी काम का तो यही कहता है उस को कि हो जा सो वह हो जाता है। (47)**

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

(हज़रत) मरियम (अ़लैहस्सलाम) बोलीं- ऐ मेरे परवर्दिगार! किस तरह होगा मेरे बच्चा हालाँकि मुझको किसी बशर ने (सोहबत के तौर पर) हाथ नहीं लगाया, (और कोई बच्चा जायज़ तरीक़े से आ़दतन् बग़ैर मर्द के पैदा नहीं होता, तो मालूम नहीं कि वैसे ही सिर्फ़ अल्लाह की क़ुदरत से बच्चा होगा या मुझको निकाह का हुक्म किया जाएगा) अल्लाह तआ़ला ने (जवाब में फ़रिश्ते के वास्ते से) फ़रमाया कि वैसे ही (बिना मर्द के) होगा, (क्योंकि) अल्लाह तआ़ला जो चाहें पैदा कर देते हैं। (यानी किसी चीज़ के पैदा होने के लिये सिर्फ़ उनका चाहना काफ़ी है, किसी वास्ते या ख़ास सबब की उनको हाजत नहीं और उनके चाहने का तरीक़ा यह है कि) जब किसी चीज़ को पूरा करना चाहते हैं तो उसको कह देते हैं कि (मौजूद) हो जा, बस वह चीज़ (मौजूद) हो जाती है (पस जिस चीज़ को बिना असबाब व माध्यमों के मौजूद होने को कह दिया वह उसी तरह हो जाती है)।

(1) तफ़सीरे क़ुर्तुबी जिल्द 2 पेज 91 में उम्र के बारे में यही लिखा है, लेकिन मुहक़्क़िक़ उलेमा-ए-किराम की एक तायदाद की राय यह है कि हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम को उठाये जाने के वक़्त उनकी उम्र अस्सी साल थी। देखिये 'अल-जवाबुल-फ़सीह' अज़ मौलाना बदरे आ़लम मेरठी। मुहम्मदी तक़ी उस्मानी (14/4/1426 हिजरी)

وَيُعَلِّمُهُ الْكِتٰبَ وَالْحِكْمَةَ وَالتَّوْرٰىةَ وَالْاِنْجِيْلَ ﴿٤٨﴾ وَرَسُوْلًا
اِلٰى بَنِيْٓ اِسْرَآءِيْلَ ۙ اَنِّيْ قَدْ جِئْتُكُمْ بِاٰيَةٍ مِّنْ رَّبِّكُمْ ۙ اَنِّيْٓ اَخْلُقُ لَكُمْ مِّنَ الطِّيْنِ كَهَيْـَٔةِ
الطَّيْرِ فَاَنْفُخُ فِيْهِ فَيَكُوْنُ طَيْرًا بِاِذْنِ اللّٰهِ ۚ وَاُبْرِئُ الْاَكْمَهَ وَالْاَبْرَصَ وَاُحْيِ الْمَوْتٰى بِاِذْنِ اللّٰهِ ۚ
وَاُنَبِّئُكُمْ بِمَا تَاْكُلُوْنَ وَمَا تَدَّخِرُوْنَ ۙ فِيْ بُيُوْتِكُمْ ۭ اِنَّ فِيْ ذٰلِكَ لَاٰيَةً لَّكُمْ اِنْ كُنْتُمْ
مُّؤْمِنِيْنَ ﴿٤٩﴾ وَمُصَدِّقًا لِّمَا بَيْنَ يَدَيَّ مِنَ التَّوْرٰىةِ وَلِاُحِلَّ لَكُمْ بَعْضَ الَّذِيْ حُرِّمَ عَلَيْكُمْ
وَجِئْتُكُمْ بِاٰيَةٍ مِّنْ رَّبِّكُمْ ۣ فَاتَّقُوا اللّٰهَ وَاَطِيْعُوْنِ ﴿٥٠﴾ اِنَّ اللّٰهَ رَبِّيْ وَرَبُّكُمْ فَاعْبُدُوْهُ ۭ
ھٰذَا صِرَاطٌ مُّسْتَقِيْمٌ ﴿٥١﴾

व युअ़ल्लिमुहुल्-किता-ब वल्-हिक्म-त वत्तौरा-त वल्-इन्जील (48) व रसूलन् इला बनी इस्राई-ल अन्नी क़द् जिअ्तुकुम् बिआ-यतिम् मिर्रब्बिकुम् अन्नी अख़्लुक़ु लकुम् मिनत्तीनि कहै-अतित्तैरि फ़-अन्फ़ुख़ु फ़ीहि फ़-यकूनु तैरम् बि-इज़्निल्लाहि, व उब्रिउल्-अक्म-ह वल्-अब्र-स व उह्यिल्मौता बि-इज़्निल्लाहि, व उनब्बिउकुम् बिमा तअ्कुलू-न व मा तद्दख़िरू-न फ़ी बुयूतिकुम्, इन्-न फ़ी ज़ालि-क लआ-यतल्-लकुम् इन् कुन्तुम् मुअ्मिनीन (49) व मुसद्दिक़ल्लिमा बै-न यदय्-य मिनत्तौराति व लि-उहिल्-ल लकुम् बअ्ज़ल्लज़ी हुर्रि-म अ़लैकुम् व

और सिखा देगा उसको किताब और तह (गहराई) की बातें और तौरात और इन्जील। (48) और करेगा उसको पैग़म्बर बनी इस्राईल की तरफ़। बेशक मैं आया हूँ तुम्हारे पास निशानियाँ लेकर तुम्हारे रब की तरफ़ से कि मैं बना देता हूँ तुमको गारे से परिन्दे की शक्ल फिर उसमें फूँक मारता हूँ तो हो जाता है वह उड़ता जानवर अल्लाह के हुक्म से। और अच्छा करता हूँ माँ के पेट से पैदा अंधे को और कोढ़ी को, और जिलाता हूँ मुर्दे को अल्लाह के हुक्म से, और बता देता हूँ तुमको जो खाकर आओ और जो रख आओ अपने घर में। इसमें निशानी पूरी है तुमको अगर यक़ीन रखते हो। (49) और सच्चा बताता हूँ अपने से पहली किताब को जो तौरात है और इस वास्ते कि हलाल कर दूँ तुमको बाज़ी वे चीज़ें जो हराम थीं तुम पर और आया हूँ

जिअ्तुकुम् बिआ-यतिम् मिर्रब्बिकुम्, फ़त्तक़ुल्ला-ह व अतीअ़ून (50) इन्नल्ला-ह रब्बी व रब्बुकुम् फ़अ्बुदूहु, हाज़ा सिरातुम् मुस्तक़ीम (51)	तुम्हारे पास निशानी लेकर तुम्हारे रब की, सो अल्लाह से डरो और मेरा कहा मानो। (50) बेशक अल्लाह है रब मेरा और रब तुम्हारा, सो उसकी बन्दगी करो यही राह सीधी है। (51)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

(और ऐ मरियम उस पैदा होने वाले मुबारक बच्चे की ये फ़ज़ीलतें होंगी कि) अल्लाह तआ़ला उनको तालीम फ़रमाएँगे (आसमानी) किताबें और समझ की बातें, (ख़ास तौर पर) तौरात और इन्जील। और उनको (तमाम) बनी इस्राईल की तरफ़ (पैग़म्बर बनाकर यह मज़मून देकर) भेजेंगे कि (वे कहेंगे)

انّي قَدْ جِئْتُكُمْ ....الى............صِرَاطٌ مُّسْتَقِيْمٌ○

(यानी) मैं तुम लोगों के पास (अपनी नुबुव्वत पर) काफ़ी दलील लेकर आया हूँ तुम्हारे परवर्दिगार की तरफ़ से। वह यह है कि मैं तुम लोगों के (यक़ीन लाने के) लिए गारे से ऐसी शक्ल बनाता हूँ जैसी परिन्दे की शक्ल होती है, फिर उस (बनाई हुई शक्ल) के अन्दर फूँक मार देता हूँ जिससे वह (सच-मुच का जानदार) परिन्दा बन जाता है ख़ुदा के हुक्म से (एक मोजिज़ा तो यह हुआ)। और मैं अच्छा कर देता हूँ जन्म के अन्धे को, और बर्स (कोढ़) के बीमार को, और ज़िन्दा कर देता हूँ मुर्दों को अल्लाह तआ़ला के हुक्म से (यह दूसरा तीसरा मोजिज़ा हुआ)। और मैं तुमको बतला देता हूँ जो कुछ अपने घरों में खा (खाकर) आते हो और जो (घरों में) कुछ रख आते हो (यह चौथा मोजिज़ा हुआ)। बेशक इन (ज़िक्र हुए मोजिज़ों) में (मेरे नबी होने की) काफ़ी दलील है तुम लोगों के लिए अगर तुम ईमान लाना चाहो। और मैं इस तौर पर आया हूँ कि तस्दीक़ करता हूँ उस किताब की जो मुझसे पहले (नाज़िल हुई) थी यानी तौरात की, और इसलिए आया हूँ कि तुम लोगों के वास्ते कुछ ऐसी चीज़ें हलाल कर दूँ जो (मूसा अ़लैहिस्सलाम की शरीअ़त में) तुम पर हराम कर दी गई थीं, (सो उनके हराम होने का हुक्म मेरी शरीअ़त में मन्सूख़ होगा)। और (मेरा यह दावा कि पिछले कुछ अहकाम को रद्द कर दिया जायेगा बिना दलील के नहीं है, बल्कि मैं साबित कर चुका हूँ कि) मैं तुम्हारे पास (नुबुव्वत की) दलील लेकर आया हूँ (और नबी का दावा अहकाम को बदलने या रद्द करने के बारे में हुज्जत है) तुम्हारे परवर्दिगार की ओर से। हासिल यह कि (जब मेरा नबी होना दलीलों से साबित हो चुका तो मेरी तालीम के मुवाफ़िक़) तुम लोग अल्लाह तआ़ला (के हुक्म की मुख़ालफ़त करने) से डरो और (दीन के मामले में) मेरा कहना मानो। (और ख़ुलासा मेरी दीनी तालीम का यह है कि) बेशक अल्लाह तआ़ला मेरे भी रब हैं (यह तो हासिल और निचोड़ है अ़क़ीदे की तकमील का) और

तुम्हारे भी रब हैं, सो तुम लोग उस (रब) की इबादत करो, (यह हासिल हुआ अ़मल की तकमील का) बस यह है (दीन का) सीधा रास्ता (जिसमें अ़क़ीदों व आमाल दोनों की तकमील हो, इसी से निजात और अल्लाह तक पहुँचना मयस्सर होता है)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

मसलाः परिन्दे (पक्षी) की शक्ल बनाना तस्वीर था जो उस शरीअ़त में जायज़ था, हमारी शरीअ़त में इसका जवाज़ (जायज़ होना) मन्सूख़ (रद्द) हो गया।

فَلَمَّآ اَحَسَّ عِيْسٰى مِنْهُمُ الْكُفْرَ قَالَ مَنْ اَنْصَارِيْٓ اِلَى اللّٰهِ ۭ قَالَ الْحَوَارِيُّوْنَ نَحْنُ اَنْصَارُ اللّٰهِ ۚ اٰمَنَّا بِاللّٰهِ ۚ وَاشْهَدْ بِاَنَّا مُسْلِمُوْنَ ۝ رَبَّنَآ اٰمَنَّا بِمَآ اَنْزَلْتَ وَاتَّبَعْنَا الرَّسُوْلَ فَاكْتُبْنَا مَعَ الشّٰهِدِيْنَ ۝

फ़-लम्मा अ-हस्-स ईसा मिन्हुमुल् कुफ़्-र का-ल मन् अन्सारी इलल्लाहि, क़ालल्-हवारिय्यू-न नह्नु अन्सारुल्लाहि आमन्ना बिल्लाहि वश्हद् बि-अन्ना मुस्लिमून (52) रब्बना आमन्ना बिमा अन्ज़ल्-त वत्त-बअ्-नर्रसू-ल फ़क्तुब्ना म-अश्शाहिदीन (53)	फिर जब मालूम किया (हज़रत) ईसा ने बनी इस्राईल का कुफ़्र, बोला कौन है कि मेरी मदद करे अल्लाह की राह में? कहा हवारियों ने हम हैं मदद करने वाले अल्लाह के, हम यक़ीन लाये अल्लाह पर और तू गवाह रह कि हमने हुक्म क़ुबूल किया। (52) ऐ रब! हमने यक़ीन किया उस चीज़ का जो तूने उतारी और हम ताबे (मानने वाले) हुए रसूल के, सो तू लिख ले हमको मानने वालों में। (53)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

(ग़र्ज़ कि उक्त ख़ुशख़बरी देने के बाद हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम इसी शान से पैदा हुए और बनी इस्राईल से बयान हुए मज़मून की गुफ़्तगू हुई और मोजिज़े ज़ाहिर फ़रमाये, मगर बनी इस्राईल आपकी नुबुव्वत के इनकारी रहे) सो जब (हज़रत) ईसा (अ़लैहिस्सलाम) ने उनसे इनकार देखा (और इनकार के साथ तकलीफ़ देने के पीछे भी पड़े, और इत्तिफ़ाक़न कुछ लोग उनको ऐसे मिले जो हवारिय्यीन कहलाते थे) तो (उन हवारियों से) आपने फ़रमाया कि कोई ऐसे आदमी भी हैं जो (दीने हक़ में मुख़ालिफ़ों व इनकारियों के मुक़ाबले में) मेरे मददगार हो जाएँ अल्लाह के वास्ते (जिससे दीन की दावत में मुझे कोई तकलीफ़ न पहुँचाये)। हवारी बोले कि हम हैं अल्लाह

(के दीन) के मददगार, हम अल्लाह तआ़ला पर (आपकी दावत के मुताबिक़) ईमान लाए और आप इस (बात) के गवाह रहिये कि हम (अल्लाह तआ़ला के और आपके) फ़रमाँबरदार हैं। (फिर इस बात की और ज़्यादा पुष्टि और एहतिमाम के लिये अल्लाह तआ़ला से मुनाजात की कि) ऐ हमारे परवर्दिगार! हम ईमान ले आए उन चीज़ों (यानी अहकाम) पर जो आपने नाज़िल फ़रमाईं और पैरवी इख़्तियार की हमने (इन) रसूल की, सो (हमारा ईमान क़ुबूल फ़रमाकर) हमको उन लोगों के साथ लिख दीजिए जो (मज़कूरा मज़ामीन की) तस्दीक़ करते हैं (यानी कामिल मोमिनों की जमाअ़त और दर्जे में हमारा भी शुमार फ़रमा लीजिये)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

قَالَ الْحَوَارِيُّوْنَ

'हवारियों ने कहा......' लफ़्ज़ हवारी हवर से लिया गया है जिसके मायने लुग़त में सफ़ेदी के हैं, इस्तिलाह में हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम के सच्चे और नेक साथियों को उनके इख़्लास और दिल की सफ़ाई की वजह से या उनकी सफ़ेद पोशाक की वजह से हवारी का लक़ब (उपनाम) दिया गया है, जैसे रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के साथियों को सहाबी के लक़ब से जाना गया है।

कुछ मुफ़स्सिरीन (क़ुरआन पाक के व्याख्यापकों) ने हवारियों की संख्या बारह बतलाई है। और कभी लफ़्ज़ हवारी मुतलक़ तौर पर मददगार के मायने में भी बोला जाता है, इसी मायने से एक हदीस में इरशाद है कि हर नबी का कोई हवारी यानी मुख़्लिस साथी होता है, मेरे हवारी ज़ुबैर हैं। (तफ़सीरे क़ुर्तुबी)

एक अहम फ़ायदाः- इस आयत में फ़रमाया गया है कि हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम को जब लोगों का कुफ़्र और मुख़ालफ़त महसूस हुई उस वक़्त मददगारों की तलाश हुई तो फ़रमायाः

مَنْ اَنْصَارِیْٓ اِلَی اللّٰهِ

'अल्लाह के लिये मेरा मददगार कौन है' शुरू में नुबुव्वत का मन्सबी काम और दावत शुरू करते वक़्त अकेले ही हुक्म के पालन के लिये खड़े हो गये थे, पहले से किसी पार्टी या जमाअ़त बनाने की फ़िक्र में नहीं पड़े, जब ज़रूरत पेश आई तो जमाअ़त सी बन गई। ग़ौर किया जाये तो हर काम ऐसे ही पुख़्ता इरादे और हिम्मत को चाहता है।

وَمَكَرُوْا وَمَكَرَ اللّٰهُ ۭ وَاللّٰهُ خَيْرُ الْمٰكِرِيْنَ ۝ اِذْ قَالَ اللّٰهُ يٰعِيْسٰٓى اِنِّىْ مُتَوَفِّيْكَ وَرَافِعُكَ اِلَىَّ وَمُطَهِّرُكَ مِنَ الَّذِيْنَ كَفَرُوْا وَجَاعِلُ الَّذِيْنَ اتَّبَعُوْكَ فَوْقَ الَّذِيْنَ كَفَرُوْٓا اِلٰى يَوْمِ الْقِيٰمَةِ ۚ ثُمَّ اِلَىَّ مَرْجِعُكُمْ فَاَحْكُمُ بَيْنَكُمْ فِيْمَا كُنْتُمْ فِيْهِ تَخْتَلِفُوْنَ ۝

व म-करू व म-करल्लाहु, वल्लाहु ख़ैरुल् माकिरीन (54) ✿ ▲	और मक्र किया उन काफ़िरों ने और मक्र किया अल्लाह ने और अल्लाह का दाव सबसे बेहतर है। (54) ✿ ▲
इज़् क़ालल्लाहु या अीसा इन्नी मु-तवफ़्फ़ी-क व राफ़िअु-क इलय्-य व मुतह्हिरु-क मिनल्लज़ी-न क-फ़रू व जाअिलुल्लज़ीनत्त-बअ़ू-क फ़ौक़ल्लज़ी-न क-फ़रू इला यौमिल्-क़ियामति, सुम्-म इलय्-य मर्जिअुकुम् फ़-अह्कुमु बैनकुम् फ़ीमा कुन्तुम् फ़ीहि तख़्तलिफ़ून (55)	जिस वक़्त कहा अल्लाह ने ऐ ईसा! मैं ले लूँगा तुझको और उठा लूँगा अपनी तरफ़ और पाक कर दूँगा तुझको काफ़िरों से, और रखूँगा उनको जो तेरे ताबे हैं ग़ालिब उन लोगों से जो इनकार करते हैं क़ियामत के दिन तक, फिर मेरी तरफ़ है सब को लौट आना, फिर फ़ैसला कर दूँगा तुममें जिस बात में तुम झगड़ते थे। (55)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

और उन लोगों ने (जो कि बनी इस्राईल में से आपकी नुबुव्वत के इनकारी थे आपको हलाक करने और तकलीफ़ पहुचाँने के लिये) ख़ुफ़िया तदबीर की, (चुनाँचे मक्र व बहाने से आपको गिरफ़्तार करके सूली देने पर तैयार हुए) और अल्लाह तआ़ला ने (आपको महफ़ूज़ रखने के लिये) ख़ुफ़िया तदबीर फ़रमाई (जिसकी हक़ीक़त का उन लोगों को भी पता न लगा, क्योंकि उन्हीं मुख़ालिफ़ों में से एक शख़्स को हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम की शक्ल पर बना दिया, और ईसा अ़लैहिस्सलाम को आसमान पर उठा लिया जिससे वह महफ़ूज़ रहे और वह हमशक्ल सूली दिया गया। उन लोगों को इस तदबीर का इल्म तक भी न हो सका उसके दूर करने और तोड़ने पर तो क्या क़ुदरत होती) और अल्लाह तआ़ला सब तदबीरें करने वालों से अच्छे हैं। (क्योंकि औरों की तदबीरें कमज़ोर होती हैं, और कभी बुरी और बेमौक़ा भी होती हैं, और हक़ तआ़ला की तदबीरें ताक़तवर और मज़बूत भी होती हैं और हमेशा पूरी तरह ख़ैर और हिक्मत के मुवाफ़िक़ होती हैं। और वह तदबीर अल्लाह तआ़ला ने उस वक़्त फ़रमाई) जबकि अल्लाह तआ़ला ने (हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम से जबकि वह गिरफ़्तारी के वक़्त असमंजस में और परेशान हुए) फ़रमाया- ऐ ईसा (कुछ ग़म न करो) बेशक मैं तुमको (अपने निर्धारित वक़्त पर तबई मौत से) वफ़ात देने वाला हूँ (पस जब तुम्हारे लिये तबई मौत मुक़द्दर है तो ज़ाहिर है कि इन दुश्मनों के हाथों सूली पर जान देने से महफ़ूज़ रहोगे) और (फ़िलहाल) मैं तुमको अपने (ऊपर के जहान की) तरफ़ उठाए लेता हूँ, और तुमको उन लोगों (की तोहमत) से पाक करने वाला हूँ जो (तुम्हारे) इनकारी हैं, और जो लोग तुम्हारा कहना मानने वाले हैं उनको ग़ालिब रखने

वाला हूँ उन लोगों पर जो कि (तुम्हारे) मुनकिर "यानी इनकार करने वाले" हैं क़ियामत के दिन तक (अगरचे इस वक़्त ये इनकारी लोग ग़लबा और क़ुदरत रखते हैं) फिर (जब क़ियामत आ जाएगी उस वक़्त) मेरी तरफ़ होगी सब की वापसी (दुनिया व बर्ज़ख़ से), सो मैं (उस वक़्त) तुम्हारे (सब के) बीच (अ़मली) फ़ैसला कर दूँगा उन मामलों में जिनमें तुम आपस में झगड़ा और विवाद करते थे (कि उन्हीं बातों में से एक ईसा अ़लैहिस्सलाम का मुक़द्दमा है)।

आयत के अहम अलफ़ाज़ का बयान

इस आयत के अलफ़ाज़ व मायने में कुछ फ़िर्क़ों ने रद्दोबदल करने का दरवाज़ा खोला है जो तमाम उम्मत के ख़िलाफ़ हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम के ज़िन्दा होने और आख़िर ज़माने में उनके आसमान से उतरने के इनकारी हैं, इसलिये मुनासिब मालूम हुआ कि इन अलफ़ाज़ की तशरीह व वज़ाहत कर दी जाये।

وَاللّٰهُ خَيْرُ الْمٰكِرِيْنَ

'अल्लाह हैं बेहतरीन तदबीर करने वाले।' लफ़्ज़ **'मक्र'** अ़रबी ज़बान में लतीफ़ व ख़ुफ़िया तदबीर को कहते हैं। अगर वह अच्छे मक़सद के लिये हो तो अच्छा है और बुराई के लिये हो तो बुरा है। इसी लिये क़ुरआन पाक में एक दूसरी जगह मक्र के साथ बुराई का लफ़्ज़ स्पष्ट तौर पर आया है:

وَلَا يَحِيْقُ الْمَكْرُ السَّيِّئُ. (٣٥:٤٣)

इसमें मक्र के साथ "सय्यिउ" (यानी बुरे) की क़ैद लगाई है। उर्दू ज़बान के मुहावरों में मक्र सिर्फ़ साज़िश, बुरी तदबीर और हीले के लिये बोला जाता है। इससे अ़रबी मुहावरों पर शुब्हा न किया जाये, इसी लिये यहाँ ख़ुदा तआ़ला को "ख़ैरुल-माकिरीन" कहा गया। मतलब यह है कि यहूद ने हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम के ख़िलाफ़ तरह-तरह की साज़िशें और ख़ुफ़िया तदबीरें शुरू कर दीं यहाँ तक कि बादशाह के कान भर दिये कि यह शख़्स (अल्लाह की पनाह) बद्दीन है, तौरात को बदलना चाहता है सब को बद्दीन बनाकर छोड़ेगा। उसने हज़रत मसीह अ़लैहिस्सलाम की गिरफ़्तारी का हुक्म दे दिया। इधर यह हो रहा था और उधर हक़ तआ़ला की लतीफ़ व ख़ुफ़िया तदबीर उनके तोड़ में अपना काम कर रही थी, जिसका ज़िक्र अगली आयतों में है।

(तफ़सीरे उस्मानी)

اِنِّىْ مُتَوَفِّيْكَ

'इन्नी मुतवफ़्फ़ी-क' लफ़्ज़ "मुतवफ़्फ़ी" "तवफ़्फ़ा" से निकला है और इसका माद्दा "वफ़्युन" है। इसके असल मायने अ़रबी लुग़त के एतिबार से पूरा-पूरा लेने के हैं। वफ़ा, ईफ़ा, इस्तीफ़ा इसी मायने के लिये बोले जाते हैं। तुवफ़्फ़ा के भी असल मायने पूरा-पूरा लेने के हैं, अ़रबी भाषा की लुग़त की तमाम किताबें इस पर सुबूत हैं। और चूँकि मौत के वक़्त इनसान अपनी तयशुदा मुद्दत पूरी कर लेता है और ख़ुदा की दी हुई रूह पूरी ले ली जाती है, इसकी

मुनासबत से यह लफ़्ज़ किनाये के तौर पर मौत के मायने में भी इस्तेमाल होता है और मौत का एक हल्का-सा नमूना रोज़ाना इनसान की नींद है, इसके लिये भी क़ुरआने करीम में इस लफ़्ज़ का इस्तेमाल हुआ हैः

اَللّٰهُ يَتَوَفَّى الْاَنْفُسَ حِيْنَ مَوْتِهَا وَالَّتِيْ لَمْ تَمُتْ فِيْ مَنَامِهَا. (٤٢:٣٩)

जिसका तर्जुमा यह है कि "अल्लाह ले लेता है जानों को उनकी मौत के वक़्त, और जिनकी मौत नहीं आती उनकी नींद के वक़्त।"

हाफ़िज़ इब्ने तैमिया रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने 'अल-जवाबुस्सही' में पेज 83 जिल्द 2 में फ़रमायाः

اَلتَّوَفِّيْ فِيْ لُغَةِ الْعَرَبِ مَعْنَاهَا الْقَبْضُ وَالْاِسْتِيْفَاءُ وَذٰلِكَ ثَلَاثَةُ اَنْوَاعٍ، اَحَدُهَا التَّوَفِّيْ فِي النَّوْمِ وَالثَّانِيْ تَوَفِّي الْمَوْتِ وَالثَّالِثُ تَوَفِّي الرُّوْحِ وَالْبَدَنِ جَمِيْعًا.

यानी 'तवफ़्फ़ी' लफ़्ज़ के मायने अ़रबी लुग़त में क़ब्ज़ करने और पूरा-पूरा लेने के हैं, और इसकी तीन क़िस्में हैं- अव्वल यह कि नींद में लेना, दूसरे मौत के वक़्त लेना और तीसरे बदन और रूह का साथ लेना और क़ब्ज़ करना।

और 'कुल्लियाते अबुल-बक़ा' में हैः

التوفى الاماتة وقبض الروح وعليه استعمال العامة او الاستيفاء واخذ الحق وعليه استعمال البلغاء.

इसी लिये मज़कूरा आयत में लफ़्ज़ 'मुतवफ़्फ़ी-क' का तर्जुमा अक्सर हज़रात ने पूरा लेने से किया है जैसा कि 'तर्जुमा शैख़ुल-हिन्द' में मज़कूर है। इस तर्जुमे के लिहाज़ से मतलब वाज़ेह है कि हम आपको यहूदियों के हाथ में न छोड़ेंगे बल्कि ख़ुद आपको ले लेंगे जिसकी सूरत यह होगी कि अपनी तरफ़ आसमान पर चढ़ा लेंगे।

और कुछ हज़रात ने इसका तर्जुमा मौत देने से किया है, जैसा कि तफ़सीर 'बयानुल-क़ुरआन' के ख़ुलासे में ऊपर ज़िक्र हुआ है, और यही तर्जुमा मुफ़स्सिरे क़ुरआन हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु से सही सनदों के साथ नक़ल किया गया है, मगर उसके साथ ही यह भी मन्क़ूल है कि आयत के मायने यह हैं कि हक़ तआ़ला ने उस वक़्त जबकि यहूदी आपके क़त्ल के पीछे लगे थे आपकी तसल्ली के लिये दो लफ़्ज़ इरशाद फ़रमाये- एक यह कि आपकी मौत उनके हाथों क़त्ल की सूरत में नहीं बल्कि तबई मौत की सूरत में होगी, दूसरा यह कि इस वक़्त उन लोगों के नरग़े (घेरे) से निजात देने की हम यह सूरत करेंगे कि आपको अपनी तरफ़ उठा लेंगे। यही तफ़सीर हज़रत इब्ने अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु से मन्क़ूल है।

तफ़सीरे दुर्रे मन्सूर में हज़रत इब्ने अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु की यह रिवायत इस तरह मन्क़ूल हैः

اَخْرَجَ اِسْحٰقُ بْنُ بِشْرٍ وَابْنُ عَسَاكِرٍ مِنْ طَرِيْقِ جَوْهَرٍ عَنِ الضَّحَّاكِ عَنِ ابْنِ عَبَّاسٍ فِيْ قَوْلِهٖ تَعَالٰى: اِنِّيْ مُتَوَفِّيْكَ وَرَافِعُكَ اِلَيَّ. يعنى رَافِعُكَ ثُمَّ مُتَوَفِّيْكَ فِيْ اٰخِرِ الزَّمَانِ. (درمنثور ص ٣٦ ج ٢)

"इस्हाक़ बिन बिशर और इब्ने असाकिर ने इमाम ज़हहाक से जौहर की रिवायत द्वारा हज़रत इब्ने अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु से आयत "इन्नी मुतवफ़्फ़ी-क व राफ़िउ़-क इलय्-य" की तफ़सीर में यह लफ़्ज़ नक़ल किये हैं कि मैं आपको अपनी तरफ़ उठा लूँगा, फिर आख़िरी ज़माने में आपको तबई तौर पर वफ़ात दूँगा।"

इस तफ़सीर का ख़ुलासा यह है कि तुवफ़्फ़ा के मायने मौत ही के हैं मगर अलफ़ाज़ आगे-पीछे बयान हुए हैं। 'राफ़िउ-क' (यानी उठाने) का पहले और "मुतवफ़्फ़ी-क" (वफ़ात देने) का ज़हूर बाद में होगा, और इस मौक़े पर 'मुतवफ़्फ़ी-क' को पहले ज़िक्र करने की हिक्मत व मस्लेहत उस पूरे मामले की तरफ़ इशारा करना है जो आगे होने वाला है, यानी यह अपनी तरफ़ बुलाना हमेशा के लिये नहीं कुछ वक़्त के लिये होगा, और फिर आप इस दुनिया में आयेंगे, दुश्मनों पर फ़तह पायेंगे और बाद में तबई तौर पर आपकी मौत वाक़े होगी। इस तरह दोबारा आसमान से नाज़िल होने और दुनिया पर फ़तह पाने के बाद मौत आने का वाक़िआ एक मोजिज़ा भी था और हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम के सम्मान व इकराम की तकमील (पूरा करना) भी, तथा इसमें ईसाईयों के उनके बारे में ख़ुदाई का अ़क़ीदा रखने को बातिल करना (ग़लत और ग़ैर-हक़ व झूठा ठहराना) भी था, वरना उनके ज़िन्दा आसमान पर चले जाने के वाक़िए से इनका यह बातिल (ग़लत) अ़क़ीदा और पुख़्ता हो जाता कि वह भी ख़ुदा तआ़ला की तरह हय्यु व क़य्यूम (ज़िन्दा और क़ायम रहने वाले) हैं। इसलिये पहले 'मुतवफ़्फ़ी-क' का लफ़्ज़ इरशाद फ़रमाकर इन तमाम ख़्यालात का ग़लत और बातिल होना ज़ाहिर कर दिया फिर अपनी तरफ़ बुलाने का ज़िक्र फ़रमाया।

और हक़ीक़त यह है कि कुफ़्फ़ार व मुश्रिकीन की मुख़ालफ़त व दुश्मनी तो अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम से हमेशा ही होती चली आई है, और अल्लाह की आ़दत (दस्तूर) यह रही है कि जब किसी नबी की क़ौम अपने इनकार और ज़िद पर जमी रही, पैग़म्बर की बात न मानी, उनके मोजिज़े देखने के बाद भी ईमान न लाई तो दो सूरतों में से एक सूरत की गई है- या तो उस क़ौम पर आसमानी अ़ज़ाब भेजकर सब को फ़ना कर दिया गया, जैसे क़ौमे आ़द व समूद और क़ौमे लूत व क़ौमे सालेह के साथ मामला किया गया, या फिर यह सूरत होती कि अपने पैग़म्बर को उस कुफ़्र के स्थान से हिजरत कराकर किसी दूसरी तरफ़ मुन्तक़िल किया गया और वहाँ उनको वह ताक़त व मज़बूती दी गई कि फिर अपनी क़ौम पर फ़तह पाई। हज़रत इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम ने इराक़ से हिजरत करके शाम में पनाह ली, इसी तरह हज़रत मूसा अ़लैहिस्सलाम मिस्र से हिजरत करके शाम के इलाक़े में तशरीफ़ लाये, और आख़िर में ख़ातिमुल-अम्बिया सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम मक्का से हिजरत करके मदीना तैयबा तशरीफ़ लाये, फिर वहाँ से हमलावर होकर मक्का फ़तह किया। यहूदियों के नरग़े (घेरे और पंजे) से बचाने के लिये यह आसमान पर बुला लेना भी दर हक़ीक़त एक क़िस्म की हिजरत थी जिसके बाद वह फिर दुनिया में वापस आकर यहूदियों पर मुकम्मल फ़तह हासिल करेंगे।

रहा यह मामला कि उनकी यह हिजरत सबसे अलग आसमान की तरफ़ क्यों है? तो हक़

तआ़ला ने उनके बारे में ख़ुद फ़रमा दिया है कि उनकी मिसाल आदम अ़लैहिस्सलाम के जैसी है। जिस तरह आदम अ़लैहिस्सलाम की पैदाईश आ़म मख़्लूक़ात के पैदा होने के तरीक़े से अलग बग़ैर माँ-बाप के है इसी तरह इनकी पैदाईश आ़म इनसानों की पैदाईश से अलग सूरत से हुई और मौत भी अ़जीब व ग़रीब तरीक़े से सालों बाद दुनिया में आकर अ़जीब होगी, तो इसमें क्या ताज्जुब है कि उनकी हिजरत भी किसी ऐसे अ़जीब तरीक़े से हो।

क़ुदरत के यही अजायबात (करिश्मे) तो जाहिल ईसाईयों के लिये इस अ़क़ीदे में मुब्तला होने का सबब बन गये कि उनको ख़ुदा कहने लगे, हालाँकि इन्हीं अ़जायब के हर क़दम और हर चीज़ पर ग़ौर किया जाये तो हर एक वाक़िए में उनकी अ़ब्दियत व बन्दगी और अल्लाह के फ़रमान के ताबे होने और इनसानी ख़ुसूसियतों वाला होने की दलीलें हैं, और इसी लिये हर ऐसे मौक़े पर क़ुरआन ने ख़ुदाई के अ़क़ीदे के ग़लत होने की तरफ़ इशारा कर दिया है। आसमान पर उठाने से यह शुब्हा बहुत क़वी (प्रबल) हो जाता, इसलिये 'मुतवफ़्फ़ी-क' को पहले बयान करके शुब्हे को मिटाकर रख दिया। इससे मालूम हुआ कि इस आयत में यहूद की तरदीद तो मक़सूद ही है कि यहूद जो हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम को क़त्ल करने और सूली देने का इरादा कर रहे थे अल्लाह तआ़ला ने उनके इरादों को ख़ाक में मिला दिया, अलफ़ाज़ के इस आगे-पीछे करने के ज़रिये इसी के साथ ईसाईयों की भी तरदीद की गई कि वह ख़ुदा नहीं जो मौत से बरी हों, एक वक़्त आयेगा जब उनको भी मौत आयेगी।

इमाम राज़ी रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने तफ़सीरे कबीर में फ़रमाया कि क़ुरआने करीम में इस तरह की तक़दीम व ताख़ीर (अलफ़ाज़ को आगे पीछे करना) इसी तरह की मस्लेहतों के लिये कसरत से आई है कि जो वाक़िआ़ बाद में होने वाला था उसको पहले और पहले होने वाले वाक़िए को बाद में बयान फ़रमाया। (तफ़सीरे कबीर, पेज 481 जिल्द 2)

وَرَافِعُكَ إِلَيَّ

'व राफ़िउ़-क इलय्-य' इसका मफ़्हूम ज़ाहिर है कि ईसा अ़लैहिस्सलाम को ख़िताब करके कहा गया है कि आपको अपनी तरफ़ उठा लूँगा, और सब जानते हैं कि ईसा नाम सिर्फ़ रूह का नहीं बल्कि रूह मय जिस्म का है। तो ईसा को उठाने का यह मतलब लेना कि सिर्फ़ रूहानी तौर पर उनको उठाया गया जिस्मानी तौर पर नहीं उठाया गया, बिल्कुल ग़लत है। रहा यह कि लफ़्ज़ रफ़-अ़ कभी मर्तबा बुलन्द करने के लिये भी इस्तेमाल होता है जैसा कि क़ुरआने करीम में हैः

رَفَعَ بَعْضَكُمْ فَوْقَ بَعْضٍ دَرَجٰتٍ. (١٦٦:٦)

(सूरः अन्आ़म आयत 166) औरः

يَرْفَعِ اللّٰهُ الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا مِنْكُمْ، وَالَّذِيْنَ اُوْتُوا الْعِلْمَ. (١١:٥٨)

(सूरः मुजादला आयत 11) वग़ैरह आयतों में मज़कूर है।

तो यह ज़ाहिर है कि लफ़्ज़ रफ़-अ़ को दर्जे बुलन्द करने के मायने में इस्तेमाल करना एक मजाज़ (यानी काल्पित और समझाने के लिये) है जो मौक़े के हिसाब से उक्त आयतों में हुआ है,

यहाँ वास्तविक मायने छोड़कर मजाज़ी (काल्पित) मायने लेने की कोई वजह नहीं। इसके अ़लावा इस जगह लफ़्ज़ रफ़-अ़ के साथ लफ़्ज़ इला इस्तेमाल फ़रमाकर इस मजाज़ी मायने की गुंजाईश को बिल्कुल ख़त्म कर दिया गया है। इस आयत में:

رَافِعُكَ إِلَيَّ

'राफ़िउ-क इलय्-य' फ़रमाया, और सूरः निसा की आयत में भी जहाँ यहूदियों के अ़क़ीदे का रद्द किया गया वहाँ भी यही फ़रमायाः

وَمَاقَتَلُوْهُ يَقِيْنًاo بَلْ رَّفَعَهُ اللّٰهُ إِلَيْهِ. (٤:١٥٨)

यानी यहूदियों ने यक़ीनन हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम को क़त्ल नहीं किया बल्कि उनको तो अल्लाह तआ़ला ने अपनी तरफ़ उठा लिया। अपनी तरफ़ उठा लेना रूह को जिस्म के साथ ज़िन्दा उठा लेने ही के लिये बोला जाता है। यहाँ तक आयत के अलफ़ाज़ की वज़ाहत हुई।

ज़िक्र हुई आयत में हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम से अल्लाह तआ़ला के पाँच वायदे

इस आयत में हक़ तआ़ला ने यहूदियों के मुक़ाबले में हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम से पाँच वायदे फ़रमाये हैं:

सबसे पहला वायदा यह था कि उनकी मौत यहूदियों के हाथों क़त्ल के ज़रिये नहीं होगी, तबई तौर से तयशुदा वक़्त पर होगी, और वह निर्धारित वक़्त क़ियामत के क़रीब में आयेगा, जब ईसा अ़लैहिस्सलाम आसमान से ज़मीन पर नाज़िल होंगे जैसा कि सही मुतवातिर हदीसों में इसकी तफ़सील मौजूद है और इसका कुछ हिस्सा आगे आयेगा।

दूसरा वायदा फ़िलहाल ऊपर के जहान की तरफ़ उठा लेने का था, यह उसी वक़्त पूरा कर दिया गया, जिसके पूरा करने की ख़बर सूरः निसा की आयत में इस तरह दे दी गईः

وَمَا قَتَلُوْهُ يَقِيْنًاo بَلْ رَّفَعَهُ اللّٰهُ إِلَيْهِ. (٤:١٥٨)

"यक़ीनन उनको यहूदियों ने क़त्ल नहीं किया बल्कि अल्लाह तआ़ला ने अपनी तरफ़ उठा लिया।"

तीसरा वायदा उनको दुश्मनों की तोहमतों (झूठे इल्ज़ामों) से पाक करने का था, वह आयतः

وَمُطَهِّرُكَ مِنَ الَّذِيْنَ كَفَرُوْا

में इस तरह पूरा हुआ कि ख़ातिमुल-अम्बिया सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम तशरीफ़ लाये और यहूद के सब ग़लत इल्ज़ामों को साफ़ कर दिया। जैसे यहूद हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम के बग़ैर बाप के पैदा होने की वजह से उनके नसब (ख़ानदान) को ताना देते थे, क़ुरआने करीम ने इस इल्ज़ाम को यह फ़रमाकर साफ़ कर दिया कि वह महज़ अल्लाह की क़ुदरत और उसके हुक्म से

बिना बाप के पैदा हुए, और यह कोई ताज्जुब की चीज़ नहीं, हज़रत आदम अ़लैहिस्सलाम की पैदाईश इससे ज़्यादा ताज्जुब की चीज़ है कि माँ और बाप दोनों के बग़ैर पैदा हुए।

यहूदी हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम पर ख़ुदाई के दावे का इल्ज़ाम लगाते थे, क़ुरआने करीम की बहुत सी आयतों में हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम का इसके ख़िलाफ़ अपनी अ़ब्दियत, बन्दगी और इनसान होने का इक़रार नक़ल फ़रमाया।

चौथा वायदा आयतः

وَجَاعِلُ الَّذِيْنَ اتَّبَعُوْكَ

में है कि 'आपके पैरोकारों को आपके इनकारियों पर क़ियामत तक ग़ालिब रखा जायेगा', यह वायदा इस तरह पूरा हुआ कि यहाँ इत्तिबा (पैरवी) से मुराद हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम की नुबुव्वत का एतिक़ाद और इक़रार है, उनके सब अहकाम पर ईमान व एतिक़ाद (यक़ीन लाने) की शर्त नहीं, तो इस तरह ईसाई और मुसलमान दोनों इसमें दाख़िल हो गये कि वे हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम की नुबुव्वत व रिसालत के मोतक़िद (यक़ीन रखने वाले) हैं, यह अलग बात है कि सिर्फ़ इतना एतिक़ाद आख़िरत की निजात के लिये काफ़ी नहीं बल्कि आख़िरत की निजात इस पर मौक़ूफ़ है कि ईसा अ़लैहिस्सलाम के तमाम अहकाम पर एतिक़ाद व ईमान रखे और हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम के क़तई और ज़रूरी अहकाम में से एक यह भी था कि उनके बाद ख़ातिमुल-अम्बिया सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम पर भी ईमान लायें, ईसाईयों ने इस पर एतिक़ाद व ईमान इख़्तियार न किया इसलिये आख़िरत की निजात से मेहरूम रहे, मुसलमानों ने इस पर भी अ़मल किया इसलिये आख़िरत की निजात के मुस्तहिक़ (पात्र) हो गये, लेकिन दुनिया में यहूदियों पर ग़ालिब रहने का वायदा सिर्फ़ ईसा अ़लैहिस्सलाम की नुबुव्वत पर मौक़ूफ़ था, वह दुनिया का ग़लबा ईसाईयों और मुसलमानों को यहूद के मुक़ाबले में हमेशा हासिल रहा और यक़ीनन क़ियामत तक रहेगा।

जब से अल्लाह तआ़ला ने यह वायदा फ़रमाया था उस वक़्त से आज तक हमेशा देखने में यही आया है कि यहूद के मुक़ाबले में हमेशा ईसाई और मुसलमान ग़ालिब रहे, उन्हीं की हुकूमतें क़ायम हुईं और रहीं।

इस्राईल की मौजूदा हुकूमत से इस पर कोई शुब्हा नहीं हो सकता

क्योंकि अव्वल तो उस हुकूमत की हक़ीक़त इसके सिवा नहीं कि वह रूस और यूरोप के ईसाईयों की संयुक्त छावनी है जो उन्होंने मुसलमानों के ख़िलाफ़ क़ायम कर रखी है, एक दिन के लिये भी अगर रूस व अमेरिका और यूरोप के दूसरे मुल्कों की हुकूमतें अपना हाथ उसके सर से हटा लें तो दुनिया के नक़्शे से उसका वजूद मिटता हुआ सारी दुनिया अपनी आँखों से देख ले,

इसलिये यहूद या इस्राईल की यह हुकूमत हक़ीक़त पर नज़र रखने वाले लोगों की नज़र में असली मायनों में यहूद की हुकूमत नहीं, और अगर फ़र्ज़ करो उसको उनकी ही हुकूमत तस्लीम कर लिया जाये तो भी ईसाईयों और मुसलमानों के मजमूए के मुक़ाबले में उसके मग़लूब व दबी हुई होने से कौनसा सही अक़्ल वाला इनसान इनकार कर सकता है। इसको भी छोड़िये तो क़ियामत के क़रीब कुछ दिनों के यहूदी ग़लबे की ख़बर तो ख़ुद इस्लाम की निरन्तर रिवायतों में मौजूद है, अगर इस दुनिया को अब ज़्यादा बाक़ी रहना नहीं है और क़ियामत क़रीब ही आ चुकी है तो इसका होना भी इस्लामी रिवायतों के मनाफ़ी (विपरीत) नहीं, और ऐसे चन्द दिन के उभार और हंगामे को सल्तनत या हुकूमत नहीं कह सकते।

पाँचवाँ वायदा क़ियामत के दिन इन मज़हबी झगड़ों और विवादों का फ़ैसला फ़रमाने का है, तो वह वायदा भी अपने वक़्त पर ज़रूर पूरा होगा जैसा कि इस आयत में इरशाद है:

ثُمَّ اِلَیَّ مَرْجِعُکُمْ فَاَحْکُمُ بَیْنَکُمْ

फिर तुम सब की वापसी मेरी ही तरफ़ होगी तो मैं तुम्हारे बीच फ़ैसला कर दूँगा।

ईसा अलैहिस्सलाम के ज़िन्दा होने और उतरने का मसला

दुनिया में सिर्फ़ यहूदियों का यह कहना है कि ईसा अलैहिस्सलाम सूली व क़त्ल के बाद दफ़न हो गये और फिर ज़िन्दा नहीं हुए, और उनके इस ख़्याल की हक़ीक़त क़ुरआने करीम ने सूरः निसा की आयत में स्पष्ट कर दी है, और इस आयत में भी:

وَمَکَرُوْا وَمَکَرَ اللّٰہُ......الخ

में इसकी तरफ़ इशारा कर दिया गया है कि हक़ तआ़ला ने हज़रत ईसा अलैहिस्सलाम के दुश्मनों के मक्र और तदबीर को ख़ुद उन्हीं की तरफ़ लौटा दिया कि जो यहूदी हज़रत ईसा अलैहिस्सलाम के क़त्ल के लिये मकान के अन्दर गये थे, अल्लाह तआ़ला ने उन्हीं में से एक शख़्स की शक्ल व सूरत तब्दील करके बिल्कुल ईसा अलैहिस्सलाम की सूरत में ढाल दिया और हज़रत ईसा अलैहिस्सलाम को ज़िन्दा आसमान पर उठा लिया। आयत के अलफ़ाज़ ये हैं:

وَمَا قَتَلُوْہُ وَمَا صَلَبُوْہُ وَلٰکِنْ شُبِّہَ لَھُمْ. (۴:۱۵۷)

"न उन्होंने ईसा अलैहिस्सलाम को क़त्ल किया न सूली चढ़ाया लेकिन हक़ तआ़ला की तदबीर ने उनको शुब्हे में डाल दिया (कि अपने ही आदमी को क़त्ल करके ख़ुश हो लिये)।" इसकी अधिक तफ़सील सूरः निसा में आयेगी।

ईसाईयों का कहना यह था कि ईसा अलैहिस्सलाम क़त्ल व सूली दिये जाने के मर्हले से तो गुज़रे मगर फिर दोबारा ज़िन्दा करके आसमान पर उठा लिये गये, मज़कूरा आयत ने उनके इस ग़लत ख़्याल की भी तरदीद कर दी, और बतला दिया कि जैसे यहूदी अपने ही आदमी को क़त्ल करके ख़ुशियाँ मना रहे थे इससे यह धोखा ईसाईयों को भी लग गया कि क़त्ल होने वाले ईसा अलैहिस्सलाम हैं, इसलिये 'धोखे और शुब्हे में पड़ने' का हुक्म यहूदियों की तरह ईसाई पर भी

फ़िट हो सकता है।

इन दोनों गिरोहों के मुक़ाबले में इस्लाम का वह अ़क़ीदा है जो इस आयत और दूसरी कई आयतों में वज़ाहत से बयान हुआ है कि अल्लाह तआ़ला ने उनको यहूदियों के हाथ से निजात देने के लिये आसमान पर ज़िन्दा उठा लिया, न उनको क़त्ल किया जा सका न सूली चढ़ाया जा सका, वह ज़िन्दा आसमान पर मौजूद हैं और क़ियामत के निकट आसमान से नाज़िल होकर यहूदियों पर फ़तह पायेंगे और आख़िर में अपनी तबई मौत से वफ़ात पायेंगे।

इसी अ़क़ीदे पर तमाम उम्मते मुस्लिमा का इजमा व इत्तिफ़ाक़ (एक राय और सहमति) है। हाफ़िज़ इब्ने हजर रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने 'तल्ख़ीसुल-हबीर' पेज 319 में यह इजमा (इसी राय पर सब का जमा होना) नक़ल किया है। क़ुरआन मजीद की अनेक आयतों और हदीस की मुतवातिर रिवायतों से यह अ़क़ीदा और इस पर उम्मत का इजमा साबित है। यहाँ इसकी पूरी तफ़सील का मौक़ा भी नहीं और ज़रूरत भी नहीं, क्योंकि उम्मत के उलेमा ने इस मसले को मुस्तक़िल किताबों और रिसालों में पूरा-पूरा वाज़ेह फ़रमा दिया है और इनकार करने वालों के जवाबात तफ़सील से दिये हैं, उनका मुताला (पढ़ना और अध्ययन करना) काफ़ी है। जैसे हज़रत हुज्जतुल-इस्लाम मौलाना सैयद अनवर शाह कशमीरी की अ़रबी किताब 'अ़क़ीदतुल-इस्लाम फ़ी हयाति ईसा अ़लैहिस्सलाम'। हज़रत मौलाना बदरे आ़लम साहिब मुहाजिरे मदनी की किताब उर्दू में 'हयाते ईसा अ़लैहिस्सलाम'। मौलाना सैयद मुहम्मद इदरीस साहिब की किताब 'हयाते मसीह अ़लैहिस्सलाम'। और भी सैंकड़ों छोटे बड़े रिसाले इस मसले पर प्रकाशित होकर सामने आ चुके हैं, अहक़र ने उस्तादे मोहतरम हज़रत मौलाना सैयद मुहम्मद अनवर शाह कशमीरी रहमतुल्लाहि अ़लैहि के हुक्म से सौ से ज़्यादा हदीसें जिनसे हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम का ज़िन्दा उठाया जाना और फिर क़ियामत के क़रीब में नाज़िल होना तवातुर (निरन्तरता) से साबित होता है, एक मुस्तक़िल किताब 'अत्तसरीह बिमा फ़ी तवातुरि फ़ी नुज़ूलिल्-मसीह' में जमा कर दी हैं, जिसको हाल ही में हाशियों और शरह के साथ हलब (मुल्क शाम) के एक बुज़ुर्ग अ़ल्लामा अ़ब्दुल-फ़त्ताह अबू ग़ुद्दह ने बैरूत में छपवाकर प्रकाशित किया है।

और हाफ़िज़ इब्ने कसीर रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने सूरः ज़ुख़रुफ़ की आयतः

وَاِنَّهٗ لَعِلْمٌ لِّلسَّاعَةِ. (۴۳: ۶۱)

(सूरः 43 आयत 61) की तफ़सीर में लिखा हैः

وَقَدْ تَوَاتَرَتِ الْاَحَادِيْثُ عَنْ رَسُوْلِ اللّٰهِ صَلَّى اللّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ اَنَّهٗ اَخْبَرَ بِنُزُوْلِ عِيْسٰى عَلَيْهِ السَّلَامُ قَبْلَ يَوْمِ الْقِيَامَةِ اِمَامًا عَادِلًا ...... الخ

"यानी रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की हदीसें इस मामले में मुतवातिर (निरन्तर) हैं कि आपने हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम के क़ियामत से पहले नाज़िल होने की ख़बर दी है।"

हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम के ज़िन्दा आसमान पर उठाये जाने, ज़िन्दा रहने और फिर क़ियामत के निकट नाज़िल होने (आसमान से उतरने) का अ़क़ीदा क़ुरआने करीम की क़तई

दलीलों और मुतवातिर हदीसों से साबित है, जिनको उम्मत के उलेमा ने मुस्तकिल किताबों, रिसालों की सूरत में शाया (प्रकाशित) कर दिया है, जिनमें से कुछ के नाम ऊपर दर्ज हैं। मसले की मुकम्मल तहक़ीक़ के लिये तो उन्हीं की तरफ़ रुजू करना चाहिये।

यहाँ सिर्फ़ एक बात की तरफ़ तवज्जोह दिलाता हूँ जिस पर नज़र करने से ज़रा भी अ़क़्ल व इन्साफ़ हो तो इस मसले में किसी शक व शुब्हे की गुन्जाईश नहीं रहती, वह यह है कि सूरः आले इमरान के चौथे रुकूअ़ में हक़ तआ़ला ने पहले अम्बिया का ज़िक्र फ़रमाया तो हज़रत आदम, आले इब्राहीम, आले इमरान सब का ज़िक्र एक ही आयत में इजमाली तौर पर (संक्षेप में) बयान करने पर बस फ़रमाया, उसके बाद तक़रीबन तीन रुकूअ़ और बाईस आयतों में हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम और उनके ख़ानदान का ज़िक्र इस विस्तार व तफ़सील के साथ किया गया कि ख़ुद ख़ातिमुल-अम्बिया सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम, जिन पर क़ुरआन नाज़िल हुआ उनका ज़िक्र भी इतनी तफ़सील के साथ नहीं आया। हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम की नानी का ज़िक्र, उनकी मन्नत का बयान, वालिदा की पैदाईश, उनका नाम, उनकी तरबियत का तफ़सीली ज़िक्र, हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम का माँ के पेट में आना, फिर पैदाईश का विस्तृत हाल, पैदाईश के बाद माँ ने क्या खाया पिया उसका ज़िक्र, अपने ख़ानदान में बच्चे को लेकर आना, उनके ताने-तश्ने, हवारियों की इमदाद, यहूदियों का घेरा, उनको ज़िन्दा आसमान पर उठाया जाना वग़ैरह। फिर मुतवातिर हदीसों में उनकी और ज़्यादा सिफ़ात, शक्ल व सूरत, मुद्रा, लिबास वग़ैरह की पूरी तफ़सीलात, ये ऐसे हालात हैं कि पूरे क़ुरआन व हदीस में किसी नबी व रसूल के हालात इस तफ़सील से बयान नहीं किये गये, यह बात हर इनसान को सोच व विचार की दावत देती है कि ऐसा क्यों और किस हिक्मत से हुआ।

ज़रा भी ग़ौर किया जाये तो बात साफ़ हो जाती है कि हज़रत ख़ातिमुल-अम्बिया सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम चूँकि आख़िरी नबी व रसूल हैं, कोई दूसरा नबी आपके बाद आने वाला नहीं, इसलिये आपने अपनी तालीमात में इसका बड़ा एहतिमाम फ़रमाया कि क़ियामत तक जो-जो मरहले उम्मत को पेश आने वाले हैं उनके बारे में हिदायत दे दें। इसलिये आपने एक तरफ़ तो इसका एहतिमाम फ़रमाया कि आपके बाद पैरवी के क़ाबिल कौन लोग होंगे, उनका तज़किरा उसूली तौर पर आ़म सिफ़तों के साथ भी बयान फ़रमाया, बहुत से हज़रात के नाम मुतैयन करके भी उम्मत को उनकी पैरवी की ताकीद फ़रमाई, इसके मुक़ाबले में उन गुमराह लोगों का भी पता दिया जिनसे उम्मत के दीन को ख़तरा था।

बाद में आने वाले गुमराहों में सबसे बड़ा शख़्स मसीह दज्जाल था जिसका फ़ितना सख़्त गुमराह करने वाला था, उसके इतने हालात व सिफ़ात बयान फ़रमा दिये कि उसके आने के वक़्त उम्मत को उसके गुमराह होने में किसी शक व शुब्हे की गुन्जाईश न रहे। इसी तरह बाद के आने वाले सुधारकों और पैरवी किये जाने वाले बुज़ुर्गों में सबसे ज़्यादा बड़े हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम हैं जिनको हक़ तआ़ला ने नुबुव्वत व रिसालत से नवाज़ा, और दज्जाल के फ़ितने में उम्मते मुस्लिमा की इमदाद के लिये उनको आसमान में ज़िन्दा रखा और क़ियामत के क़रीब

उनको दज्जाल के कत्ल करने के लिये मामूर फ़रमाया। इसलिये ज़रूरत थी कि उनके हालात व सिफ़ात भी उम्मत को ऐसे स्पष्ट और खुले अन्दाज़ में बतलाये जायें जिनके बाद ईसा अ़लैहिस्सलाम के नाज़िल होने के वक़्त किसी इनसान को उनके पहचानने में कोई शक व शुब्हा न रह जाये।

इसमें बहुत सी हिक्मतें व मस्लेहतें हैं- अव्वल यह कि अगर उम्मत को उनके पहचानने में ही इश्काल (शक व शुब्हा) पेश आया तो उनके नुज़ूल (आसमान से उतरने) का मकसद ही ख़त्म हो जायेगा, उम्मते मुस्लिमा उनके साथ न लगेगी तो वह उम्मत की मदद व नुसरत किस तरह फ़रमायेंगे।

दूसरे यह कि हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम अगरचे उस वक़्त नुबुव्वत व रिसालत के फ़राइज़ (ज़िम्मेदारियों) पर मामूर होकर दुनिया में न आयेंगे, बल्कि उम्मते मुहम्मदिया के नेतृत्व व इमामत (सरदारी) के लिये रसूले पाक सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के ख़लीफ़ा (जानशीन) की हैसियत से तशरीफ़ लायेंगे, मगर ज़ाती तौर पर उनको जो नुबुव्वत व रिसालत का मर्तबा व मकाम हासिल है उससे अलग और बेदख़ल भी न होंगे, बल्कि उस वक़्त उनकी मिसाल उस गवर्नर की सी होगी जो अपने राज्य का गवर्नर है मगर किसी ज़रूरत से दूसरे राज्य में चला गया है, तो वह अगरचे उस राज्य में गवर्नर की हैसियत पर नहीं मगर अपने गवर्नरी के ओहदे से माज़ूल (अलग और बेदख़ल) भी नहीं। ख़ुलासा यह है कि हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम उस वक़्त भी नुबुव्वत व रिसालत की सिफ़त से अलग नहीं होंगे, और जिस तरह उनकी नुबुव्वत से इनकार पहले कुफ़्र था उस वक़्त भी कुफ़्र होगा। तो उम्मते मुस्लिमा जो पहले से उनकी नुबुव्वत पर क़ुरआनी इरशादात की बिना पर ईमान लाये हुए है अगर नुज़ूल (उतरने) के वक़्त उनको न पहचाने तो इनकार में मुब्तला हो जायेगी, इसलिये उनकी निशानियों व सिफ़तों को बहुत ज़्यादा वाज़ेह (स्पष्ट) करने की ज़रूरत थी।

तीसरे यह कि हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम के उतरने का वाक़िआ़ तो दुनिया की आख़िरी उम्र में पेश आयेगा, अगर उनकी निशानियाँ और हालात मुब्हम (ग़ैर-वाज़ेह और अस्पष्ट) होते तो बहुत मुम्किन है कि कोई दूसरा आदमी दावा कर बैठे कि मैं मसीह ईसा इब्ने मरियम हूँ। इन निशानियों के ज़रिये उसकी तरदीद की जा सकेगी। जैसा कि हिन्दुस्तान में मिर्ज़ा क़ादियानी ने दावा किया कि मैं मसीहे मौऊद (आने वाला मसीह) हूँ और उलेमा-ए-उम्मत ने इन्हीं निशानियों की बुनियाद पर उसके क़ौल को रद्द किया।

ख़ुलासा यह है कि इस जगह और दूसरे मौक़ों में हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम के हालात व सिफ़ात का इतनी तफ़सील के साथ बयान होना ख़ुद उनके क़ियामत के क़रीब ज़माने में नाज़िल होने और दोबारा दुनिया में तशरीफ़ लाने ही की ख़बर दे रहा है। अहक़र ने इस मज़मून को पूरी वज़ाहत के साथ अपने रिसाले 'मसीहे मौऊद की पहचान' में बयान कर दिया है, उसको देख लिया जाये।

فَاَمَّا الَّذِيْنَ كَفَرُوْا فَاُعَذِّبُهُمْ عَذَابًا شَدِيْدًا فِي الدُّنْيَا وَالْاٰخِرَةِ ؗ وَمَا لَهُمْ مِّنْ نّٰصِرِيْنَ ۞ وَاَمَّا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا وَعَمِلُوا الصّٰلِحٰتِ فَيُوَفِّيْهِمْ اُجُوْرَهُمْ ؕ وَاللّٰهُ لَا يُحِبُّ الظّٰلِمِيْنَ ۞ ذٰلِكَ نَتْلُوْهُ عَلَيْكَ مِنَ الْاٰيٰتِ وَالذِّكْرِ الْحَكِيْمِ ۞

फ़-अम्मल्लज़ी-न क-फ़रू फ़-उअ़ज़्ज़िबुहुम् अ़ज़ाबन् शदीदन् फ़िद्दुन्या वल्-आख़ि-रति व मा लहुम् मिन्-नासिरीन (56) व अम्मल्लज़ी-न आमनू व अ़मिलुस्--सालिहाति फ़-युवफ़्फ़ीहिम् उजूरहुम्, वल्लाहु ला युहिब्बुज़्ज़ालिमीन (57) ज़ालि-क नत्लूहु अ़लै-क मिनल्-आयाति वज़्ज़िक्रिल् हकीम (58)	सो वे लोग जो काफ़िर हुए उनको अ़ज़ाब करूँगा सख़्त अज़ाब दुनिया में और आख़िरत में, और कोई नहीं उनका मददगार। (56) और वे लोग जो ईमान लाये और काम नेक किये सो उनको पूरा देगा उनका हक़, और अल्लाह को ख़ुश (पसन्द) नहीं आते बेइन्साफ़। (57) ये पढ़ सुनाते हैं हम तुझको आयतें और बयान तहक़ीक़ी। (58)

इन आयतों के मज़मून का पीछे से जोड़

ऊपर आयत में ज़िक्र हुआ था कि "मैं इन झगड़ने और विवाद करने वालों के बीच क़ियामत के दिन अ़मली फ़ैसला करूँगा" इस आयत में उस फ़ैसले का बयान है।

तफ़सील (फ़ैसले की) यह है कि जो लोग (इन इख़्तिलाफ़ करने वालों में) काफ़िर थे सो उनको (उनके कुफ़्र पर) सख़्त सज़ा दूँगा (कुल मिलाकर दोनों जहान में) दुनिया में भी (कि वह तो हो चुकी) और आख़िरत में भी (कि वह बाक़ी रही), और उन लोगों का कोई हिमायती (व तरफ़दार) न होगा। और जो लोग मोमिन थे और उन्होंने नेक काम किए थे, सो उनको अल्लाह तआ़ला उनके (ईमान और नेक कामों के) सवाब देंगे, और (कुफ़्फ़ार को सज़ा मिलने की वजह यह है कि) अल्लाह तआ़ला मुहब्बत नहीं रखते (ऐसे) ज़ुल्म करने वालों से (जो ख़ुदा तआ़ला या पैग़म्बरों के मुन्किर हों, यानी चूँकि यह बहुत बड़ा ज़ुल्म है, माफ़ी के क़ाबिल नहीं, इसलिए सख़्त नापसन्दीदा होकर सज़ा पाने वाला हो जाता है)। यह (ज़िक्र हुआ क़िस्सा) हम तुमको (वही के ज़रिये) पढ़-पढ़कर सुनाते हैं जो कि (आपकी नुबुव्वत की) दलीलों में से है, और हिक्मत भरे मज़ामीन में से है।

मआ़रिफ़ व मसाईल

दुनिया की मुसीबतें काफ़िरों के लिये कफ़्फ़ारा नहीं होतीं मोमिन के लिये कफ़्फ़ारा होकर मुफ़ीद होती हैं

فَاُعَذِّبُهُمْ عَذَابًا شَدِيْدًا فِى الدُّنْيَا وَالْاٰخِرَةِ

'सो उनको सख़्त सज़ा दूँगा दुनिया में भी और आख़िरत में भी' इस आयत के मज़मून पर एक हल्का सा इश्काल (शुब्हा) होता है कि क़ियामत के फ़ैसले के बयान में इस कहने के क्या मायने कि मैं दुनिया व आख़िरत में सज़ा दूँगा, क्योंकि उस वक़्त तो दुनिया की सज़ा नहीं होगी।

हल इसका यह है कि इस कहने की ऐसी मिसाल है जैसे कोई हाकिम किसी मुजरिम को यह कहे कि इस वक़्त तो एक साल की क़ैद करता हूँ अगर जेलख़ाने में कोई शरारत की तो दो साल की सज़ा करूँगा। इससे उसका सिर्फ़ यह मतलब होता है कि यह दो साल आज की तारीख़ से होंगे, पस इस बिना पर यक़ीनी है कि शरारत के बाद दो साल का हुक्म हो जायेगा। हासिल यह होता है कि शरारत करने पर इस कुल मुद्दत की तक्मील एक साल और मिलाकर उस पर मुरत्तब हो जायेगी।

इसी तरह यहाँ समझना चाहिये कि दुनिया में तो सज़ा हो चुकी, इसके साथ आख़िरत की सज़ा शामिल होकर मजमूआ़ क़ियामत के दिन पूरा कर दिया जायेगा, यानी सज़ा-ए-दुनिया कफ़्फ़ारा न होगा आख़िरत की सज़ा के लिये, जबकि इसके उलट ईमान वालों का हाल यह है कि अगर उन पर दुनिया में कोई मुसीबत वग़ैरह आती है तो गुनाह माफ़ होते हैं और आख़िरत की सज़ा में कमी या ख़त्म हो जाती है, और इसी वजह से इसकी तरफ़ः

لَا يُحِبُّ الظّٰلِمِيْنَ

'अल्लाह तआ़ला मुहब्बत नहीं रखते ज़ुल्म करने वालों से' में इशारा फ़रमाया गया। यानी ईमान वाले अपने ईमान के सबब महबूब हैं, महबूब के साथ ऐसे मामलात हुआ करते हैं, और कुफ़्र वाले अपने कुफ़्र की वजह से नापसन्दीदा और नफ़रत के पात्र हैं, नफ़रत वालों के साथ ऐसा मामला नहीं होता। (तफ़सीर बयानुल-क़ुरआन)

اِنَّ مَثَلَ عِيْسٰى عِنْدَ اللّٰهِ كَمَثَلِ اٰدَمَ ؕ خَلَقَهٗ مِنْ تُرَابٍ ثُمَّ قَالَ لَهٗ كُنْ فَيَكُوْنُ ۝ اَلْحَقُّ مِنْ رَّبِّكَ فَلَا تَكُنْ مِّنَ الْمُمْتَرِيْنَ ۝ فَمَنْ حَآجَّكَ فِيْهِ مِنْ بَعْدِ مَا جَآءَكَ مِنَ الْعِلْمِ فَقُلْ تَعَالَوْا نَدْعُ اَبْنَآءَنَا وَاَبْنَآءَكُمْ وَنِسَآءَنَا وَنِسَآءَكُمْ وَاَنْفُسَنَا وَاَنْفُسَكُمْ ثُمَّ نَبْتَهِلْ فَنَجْعَلْ لَّعْنَتَ اللّٰهِ عَلَى الْكٰذِبِيْنَ ۝ اِنَّ هٰذَا لَهُوَ الْقَصَصُ الْحَقُّ ۚ وَمَا مِنْ اِلٰهٍ اِلَّا اللّٰهُ ؕ وَاِنَّ اللّٰهَ لَهُوَ الْعَزِيْزُ الْحَكِيْمُ ۝ فَاِنْ تَوَلَّوْا فَاِنَّ اللّٰهَ عَلِيْمٌۢ بِالْمُفْسِدِيْنَ ۝

इन्-न म-स-ल अीसा अिन्दल्लाहि क-म-सलि आद-म, ख़-ल-क़हू मिन् तुराबिन् सुम्-म क़ा-ल लहू कुन् फ़-यकून (59) अल्-हक़्क़ु मिर्रब्बि-क फ़ला तकुम् मिनल्-मुम्तरीन (60) फ़-मन् हाज्ज-क फ़ीहि मिम्-बअ़्दि मा जाअ-क मिनल् अिल्मि फ़क़ुल् तआलौ नद्अ़ु अब्ना-अना व अब्ना-अकुम् व निसा-अना व निसा-अकुम् व अन्फ़ु-सना व अन्फ़ु-सकुम्, सुम्-म नब्तहिल् फ़-नज्अल्-लअ़्नतल्लाहि अलल्-काज़िबीन (61) इन्-न हाज़ा लहुवल् क़-ससुल्-हक़्क़ु व मा मिन् इलाहिन् इल्लल्लाहु, व इन्नल्ला-ह ल-हुवल्-अज़ीज़ुल् हकीम (62) फ़-इन् तवल्लौ फ़-इन्नल्ला-ह अलीमुम् बिल्मुफ़्सिदीन (63) ❁	बेशक ईसा (अ़लैहिस्सलाम) की मिसाल अल्लाह के नज़दीक जैसे मिसाल आदम की, बनाया उसको मिट्टी से फिर कहा उसको कि हो जा वह हो गया। (59) हक़ वह है जो तेरा रब कहे फिर तू मत रह शक लाने वालों में से। (60) फिर जो कोई झगड़ा करे तुझसे इस क़िस्से में बाद इसके कि आ चुकी तेरे पास ख़बर सच्ची, तो तू कह दे आओ बुलायें हम अपने बेटे और तुम्हारे बेटे और अपनी औरतें और तुम्हारी औरतें और अपनी जान और तुम्हारी जान, फिर इल्तिजा करें हम सब और लानत करें अल्लाह की उनपर कि जो झूठे हैं। (61) बेशक यही है बयान सच्चा, और किसी की बन्दगी नहीं है सिवाय अल्लाह के, और अल्लाह जो है वही है ज़बरदस्त हिक्मत वाला। (62) फिर अगर क़ुबूल न करें तो अल्लाह को मालूम हैं फ़साद करने वाले। (63) ❁

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

बेशक अ़जीब हालत (हज़रत) ईसा (अ़लैहिस्सलाम) की अल्लाह तआ़ला के नज़दीक (यानी उनकी तक़दीरी तजवीज़ में हज़रत) आदम (अ़लैहिस्सलाम) की अ़जीब हालत की तरह है, कि उन (आदम अ़लैहिस्सलाम) को (यानी उनके जिस्मानी ढाँचे को) मिट्टी से बनाया फिर उन (के जिस्म) को हुक्म दिया कि (जानदार) हो जा, पस वह (जानदार) हो गये, यह हक़ बात (जो ऊपर ज़िक्र हुई) आपके परवर्दिगार की तरफ़ से (बतलायी गयी) है। सो आप शुब्हा करने वालों में से न हो जाईये। पस जो शख़्स आप से ईसा अ़लैहिस्सलाम के बारे में (अब भी) हुज्जत करे, आपके पास (क़तई) इल्म आने के बाद तो आप (जवाब में यूँ) फ़रमा दीजिए कि (अच्छा अगर

दलील से नहीं मानते तो फिर) आ जाओ हम (और तुम) बुला (कर जमा कर) लें अपने बेटों को और तुम्हारे बेटों को, और अपनी औरतों को और तुम्हारी औरतों को, और ख़ुद अपने तनों को और तुम्हारे तनों को, फिर हम (सब मिलकर) ख़ूब दिल से दुआ करें, इस तौर पर कि अल्लाह की लानत भेजें उन पर जो (इस बहस में) नाहक़ पर हों। बेशक यह (जो कुछ ज़िक्र हुआ) वही है सच्ची बात, और कोई माबूद होने के लायक़ नहीं सिवाय अल्लाह तआ़ला के, (यह तौहीदे ज़ाती हुई) और बेशक अल्लाह तआ़ला ही ग़लबे वाले, हिक्मत वाले हैं (यह तौहीदे सिफ़ाती हुई)। फिर (उन सब हुज्जतों के बाद भी) अगर (हक़ क़ुबूल करने से) नाफ़रमानी करें तो (आप उनका मामला ख़ुदा के हवाले कीजिए, क्योंकि) बेशक अल्लाह तआ़ला ख़ूब जानने वाले हैं फ़साद करने वालों को।

मआ़रिफ़ व मसाईल

क़ियास का हुज्जत और दलील होना

إِنَّ مَثَلَ عِيسَىٰ عِندَ اللَّهِ كَمَثَلِ آدَمَ

'बेशक ईसा की मिसाल अल्लाह के नज़दीक आदम के जैसी मिसाल है' इस आयत से मालूम होता है कि क़ियास (एक चीज़ को दूसरी पर अन्दाज़ा करके उसी के जैसा हुक्म उस पर भी लगाना) भी शरीअ़त की हुज्जतों (दलीलों) में से है, इसलिये अल्लाह तआ़ला ने फ़रमाया कि ईसा अ़लैहिस्सलाम की पैदाईश ऐसी है जैसे आदम अ़लैहिस्सलाम की। यानी जिस तरह आदम अ़लैहिस्सलाम को बग़ैर बाप (और माँ) के पैदा किया इसी तरह हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम को भी बग़ैर बाप के पैदा किया, तो यहाँ अल्लाह तआ़ला ने ईसा अ़लैहिस्सलाम की पैदाईश को हज़रत आदम अ़लैहिस्सलाम की पैदाईश पर क़ियास करने की तरफ़ इशारा फ़रमा दिया।

(तफ़सीरे मज़हरी)

मुबाहले की परिभाषा

فَقُلْ تَعَالَوْا نَدْعُ .... الخ

'आप फ़रमा दीजिये कि आ जाओ हम बुला लें अपने बेटों को........' इस आयत से अल्लाह तआ़ला ने नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को मुबाहला करने का हुक्म दिया है, जिसकी तारीफ़ (परिभाषा) यह है कि अगर किसी मामले के हक़ व बातिल होने में दो फ़रीक़ों में विवाद हो जाये और दलीलों से झगड़ा ख़त्म न हो तो फिर उनको यह तरीक़ा इख़्तियार करना चाहिये कि सब मिलकर अल्लाह तआ़ला से दुआ़ करें कि जो इस मामले में बातिल (ग़लत रास्ते) पर हो उस पर ख़ुदा की तरफ़ से वबाल और हलाकत पड़े, क्योंकि लानत के मायने अल्लाह की रहमत से दूर हो जाना है, और रहमत से दूर होना क़हर से क़रीब होना है। पस इसके मायनों का हासिल यह हुआ कि झूठे पर क़हर नाज़िल हो। सो जो शख़्स झूठा होगा वह उसका

ख़ामियाज़ा भुगतेगा। उस वक़्त सच्चा झूठा होने की सही तस्वीर भी इनकार करने वालों पर भी वाज़ेह हो (खुल कर सामने आ) जायेगी, इस तौर पर दुआ करने को "मुबाहला" कहते हैं, और इसमें असल ख़ुद मुबाहसा करने वालों का जमा होकर दुआ करना है अपने अ़ज़ीज़ों व रिश्तेदारों को जमा करने की ज़रूरत नहीं, लेकिन अगर जमा किया जाये तो इससे और एहतिमाम बढ़ जाता है।

मुबाहले का वाक़िआ और शियों का रद्द

इसका पसे-मन्ज़र यह है कि हुज़ूरे अकरम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने नजरान के ईसाईयों की जानिब एक फ़रमान भेजा जिसमें तीन चीज़ें तरतीब वार ज़िक्र की गई थीं:

1. इस्लाम क़ुबूल करो।
2. या जिज़या (इस्लामी हुकूमत में रहने का टैक्स) अदा करो।
3. या जंग के लिये तैयार हो जाओ।

ईसाईयों ने आपस में मश्विरा करके शुरहबील, अ़ब्दुल्लाह बिन शुरहबील और जब्बार बिन क़ैस को हुज़ूरे अकरम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की ख़िदमत में भेजा। इन लोगों ने आकर मज़हबी मामलात पर बातचीत शुरू की, यहाँ तक कि हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम का ख़ुदा (यानी ख़ुदाई में हिस्सेदार) होना साबित करने में उन लोगों ने बहुत ज़्यादा बहस व तकरार से काम लिया, इतने में यह मुबाहले वाली आयत नाज़िल हुई, इस पर आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने ईसाईयों को मुबाहले की दावत दी और ख़ुद भी हज़रत फ़ातिमा, हज़रत अ़ली, इमाम हसन और इमाम हुसैन रज़ियल्लाहु अ़न्हुम को साथ लेकर मुबाहले के लिये तैयार होकर तशरीफ़ लाये। शुरहबील ने यह देखकर अपने दोनों साथियों से कहा कि तुमको मालूम है कि यह अल्लाह का नबी है, नबी से मुबाहला करने में हमारी हलाकत और बरबादी यक़ीनी है, इसलिये निजात का कोई दूसरा रास्ता तलाश करो। साथियों ने कहा कि तुम्हारे नज़दीक निजात की क्या सूरत है? उसने कहा कि मेरे नज़दीक बेहतर सूरत यह है कि नबी की राय के मुवाफ़िक़ सुलह की जाये, चुनाँचे इस पर सब का इत्तिफ़ाक़ हो गया, चुनाँचे नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने उन पर जिज़या मुक़र्रर करके सुलह कर दी जिसको उन्होंने भी मन्ज़ूर कर लिया।

(तफ़सीर इब्ने कसीर जिल्द 1)

इस आयत में 'अबनाअना' (अपने बेटों) से मुराद सिर्फ़ सगी औलाद नहीं है बल्कि आ़म मुराद है, चाहे औलाद हो या औलाद की औलाद हो, क्योंकि आ़म बोलचाल में इन सब पर औलाद का हुक्म होता है, लिहाज़ा 'अबनाअना' में आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के नवासे हज़रत हुसैन रज़ियल्लाहु अ़न्हु और आपके दामाद हज़रत अ़ली रज़ियल्लाहु अ़न्हु दाख़िल हैं, ख़ुसूसन हज़रत अ़ली रज़ियल्लाहु अ़न्हु को 'अबनाअना' में दाख़िल करना इसलिये भी सही है कि आपने तो परवरिश भी हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की गोद में पाई थी, आपने इनको अपने बच्चों की तरह पाला पोसा और आपकी तरबियत का पूरा-पूरा ख़्याल रखा, ऐसे बच्चे पर

उर्फ़ में बेटे का इतलाक़ (हुक्म) किया जाता है।

इस बयान से यह बात वाज़ेह हो गई कि हज़रत अली रज़ियल्लाहु अन्हु औलाद में दाख़िल हैं, लिहाज़ा शियों का आपको "अबनाअना' से ख़ारिज करके और 'अनफ़ु-सना' में दाख़िल करके आपकी डायरेक्ट ख़िलाफ़त पर दलील पकड़ना और इसको दलील बनाना सही नहीं है।

قُلْ يٰٓاَهْلَ الْكِتٰبِ تَعَالَوْا اِلٰى كَلِمَةٍ سَوَآءٍۢ بَيْنَنَا وَبَيْنَكُمْ اَلَّا نَعْبُدَ اِلَّا اللّٰهَ وَلَا نُشْرِكَ بِهٖ شَيْـًٔا وَّلَا يَتَّخِذَ بَعْضُنَا بَعْضًا اَرْبَابًا مِّنْ دُوْنِ اللّٰهِ ۭ فَاِنْ تَوَلَّوْا فَقُوْلُوا اشْهَدُوْا بِاَنَّا مُسْلِمُوْنَ ۝

क़ुल् या अह्लल्-किताबि तआ़लौ इला कलि-मतिन् सवा-इम् बैनना व बैनकुम् अल्ला नअ्बु-द इल्लल्ला-ह व ला नुश्रि-क बिही शैअंव्-व ला यत्तख़ि-ज बअ्ज़ुना बअ्ज़न् अर्बाबम् मिन् दूनिल्लाहि, फ़-इन् तवल्लौ फ़-क़ूलुश्-हदू बिअन्ना मुस्लिमून (64)	**तू कह- ऐ अहले किताब! आओ एक बात की तरफ़ जो बराबर है हम में और तुम में कि बन्दगी न करें मगर अल्लाह की, और शरीक न ठहरायें उसका किसी को, और न बनाये कोई किसी को रब सिवाय अल्लाह के, फिर अगर वे क़ुबूल न करें तो कह दो गवाह रहो कि हम तो हुक्म के ताबे हैं। (64)**

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

(ऐ मुहम्मद सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम!) आप फ़रमा दीजिए कि ऐ अहले किताब! आओ एक ऐसी बात की तरफ़ जो कि हमारे और तुम्हारे बीच (मानी हुई होने में) बराबर है, (वह) यह (है) कि सिवाय अल्लाह तआ़ला के हम किसी और की इबादत न करें, और अल्लाह तआ़ला के साथ किसी को शरीक न ठहराएँ, और हममें से कोई किसी दूसरे को रब क़रार न दे ख़ुदा तआ़ला को छोड़कर, फिर अगर (इसके बाद भी) वे लोग (हक़ से) मुँह मोड़ें तो तुम (मुसलमान) लोग कह दो कि तुम (हमारे) इस (इक़रार) के गवाह रहो कि हम तो (इस बात के) मानने वाले हैं (अगर तुम न मानो तो तुम जानो)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

تَعَالَوْا اِلٰى كَلِمَةٍ سَوَآءٍۢ بَيْنَنَا وَبَيْنَكُمْ

'आओ एक ऐसी बात की तरफ़ जो हमारे और तुम्हारे बीच बराबर है' इस आयत से

तब्लीग़ व दावत का एक अहम उसूल मालूम होता है, वह यह कि अगर कोई शख़्स किसी ऐसी जमाअ़त को दावत देने का इच्छुक हो जो अ़क़ीदों व नज़रियों में उससे अलग और भिन्न हो तो इसका तरीक़ा यह है कि मुख़ालिफ़ अ़क़ीदे वाली जमाअ़त को सिर्फ़ उसी चीज़ पर जमा होने की दावत दी जाये जिस पर दोनों का इत्तिफ़ाक़ (सहमति) हो सकता हो। जैसे रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने जब रूम के बादशाह हिरक़्ल को इस्लाम की दावत दी तो ऐसे मसले की तरफ़ दी जिस पर दोनों का इत्तिफ़ाक़ था, यानी अल्लाह तआ़ला के वाहिद व अकेला होने पर। वह दावत नामा नीचे नक़ल किया जाता है:

بِسْمِ اللّٰهِ الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِo مِنْ مُحَمَّدٍ عَبْدِاللّٰهِ وَرَسُوْلِهٖ اِلٰى هِرَقْلَ عَظِيْمِ الرُّوْمِ، سَلَامٌ عَلٰى مَنِ اتَّبَعَ الْهُدٰى، اَمَّا بَعْدُ: فَاِنِّىْ اَدْعُوْكَ بِدِعَايَةِ الْاِسْلَامِ اَسْلِمْ تَسْلَمْ. يُؤْتِكَ اللّٰهُ اَجْرَكَ مَرَّتَيْنِ فَاِنْ تَوَلَّيْتَ فَاِنَّ عَلَيْكَ اِثْمُ الْيَرِيْسِيِّيْنَ، يٰٓاَهْلَ الْكِتٰبِ تَعَالَوْا اِلٰى كَلِمَةٍ سَوَآءٍ ۢ بَيْنَنَا وَبَيْنَكُمْ اَلَّا نَعْبُدَ اِلَّا اللّٰهَ وَلَا نُشْرِكَ بِهٖ شَيْئًا وَّلَا يَتَّخِذَ بَعْضُنَا بَعْضًا اَرْبَابًا مِّنْ دُوْنِ اللّٰهِ. (بخارى)

“मैं शुरू करता हूँ अल्लाह के नाम से जो निहायत मेहरबान और रहम करने वाला है। यह ख़त मुहम्मद अल्लाह के बन्दे और उसके रसूल की तरफ़ से रोम के बादशाह हिरक़्ल की जानिब है। सलामती हो उस शख़्स के लिये जो हिदायत के रास्ते की पैरवी करे। इसके बाद- मैं तुझे इस्लाम के बुलावे की तरफ़ दावत देता हूँ, इस्लाम ला तू सलामत रहेगा, और अल्लाह तुझको दोहरा अज्र देगा। और अगर तू मुँह फेरेगा (यानी यह दावत क़ुबूल न करेगा) तो तुझ पर उन सब किसानों का वबाल होगा जो तेरी रियाया हैं। ऐ अहले किताब! एक ऐसी बात पर आकर जमा हो जाओ जो हम और तुम दोनों में बराबर है, यह कि हम सिवाय अल्लाह के किसी की इबादत न करें और न उसके साथ शरीक करें, और न हम अल्लाह को छोड़कर आपस में अपनों को रब बनायें।”

فَقُوْلُوا اشْهَدُوْا بِاَنَّا مُسْلِمُوْنَo

‘तो तुम लोग कह दो कि तुम हमारे इस इक़रार के गवाह रहो’ इस आयत में जो यह कहा गया कि तुम गवाह रहो, इससे यह तालीम दी गई है कि जब दलीलें वाज़ेह होने के बाद भी कोई हक़ को न माने तो हुज्जत तमाम करने के लिये अपना मस्लक ज़ाहिर करके कलाम ख़त्म कर देना चाहिये, ज़्यादा बहस व तकरार करना मुनासिब नहीं है।

يٰٓاَهْلَ الْكِتٰبِ لِمَ تُحَآجُّوْنَ فِىْٓ اِبْرٰهِيْمَ وَمَآ اُنْزِلَتِ التَّوْرٰىةُ وَالْاِنْجِيْلُ اِلَّا مِنْۢ بَعْدِهٖ ؕ اَفَلَا تَعْقِلُوْنَ ۞ هٰٓاَنْتُمْ هٰٓؤُلَآءِ حَاجَجْتُمْ فِيْمَا لَكُمْ بِهٖ عِلْمٌ فَلِمَ تُحَآجُّوْنَ فِيْمَا لَيْسَ لَكُمْ بِهٖ عِلْمٌ ؕ وَاللّٰهُ يَعْلَمُ وَاَنْتُمْ لَا تَعْلَمُوْنَ ۞ مَا كَانَ اِبْرٰهِيْمُ يَهُوْدِيًّا وَّلَا نَصْرَانِيًّا وَّلٰكِنْ كَانَ حَنِيْفًا مُّسْلِمًا ؕ وَمَا كَانَ مِنَ الْمُشْرِكِيْنَ ۞ اِنَّ اَوْلَى النَّاسِ بِاِبْرٰهِيْمَ

لِلَّذِيْنَ اتَّبَعُوْهُ وَهٰذَا النَّبِيُّ وَالَّذِيْنَ اٰمَنُوْا ۚ وَاللّٰهُ وَلِيُّ الْمُؤْمِنِيْنَ ۝

या अह्लल्-किताबि लि-म तुहाज्जू-न फ़ी इब्राही-म व मा उन्ज़ि-लतित्-तौरातु वल्-इन्जीलु इल्ला मिम्-बअ़्दिही, अ-फ़ला तअ़्क़िलून (65) हा-अन्तुम् हा-उला-इ हाजज्तुम् फ़ीमा लकुम् बिही अ़िल्मुन् फ़लि-म तुहाज्जू-न फ़ी मा लै-स लकुम् बिही अ़िल्मुन्, वल्लाहु यअ़्लमु व अन्तुम् ला तअ़्लमून (66) मा का-न इब्राहीमु यहूदिय्यंव्-व ला नस्रानिय्यंव्-व लाकिन् का-न हनीफ़म् मुस्लिमन्, व मा का-न मिनल्-मुश्रिकीन (67) इन्-न औलन्नासि बि-इब्राही-म लल्लज़ीनत्त-बअ़ूहु व हाज़न्नबिय्यु वल्लज़ी-न आमनू, वल्लाहु वलिय्युल् मुअ्मिनीन (68)	ऐ अहले किताब! क्यों झगड़ते हो इब्राहीम के बारे में और तौरात और इन्जील तो उतरीं उसके बाद क्या तुमको अक्ल नहीं। (65) सुनते हो तुम लोग झगड़ चुके जिस बात में तुमको कुछ ख़बर थी, अब क्यों झगड़ते हो जिस बात में तुमको कुछ ख़बर नहीं, और अल्लाह जानता है और तुम नहीं जानते। (66) न था इब्राहीम यहूदी और न था ईसाई लेकिन था हनीफ़ (यानी सब झूठे मज़हबों से बेज़ार और) हुक्म मानने वाला, और न था मुश्रिक। (67) लोगों में ज़्यादा मुनासबत इब्राहीम से उनको थी जो साथ उसके थे और इस नबी को और जो ईमान लाये इस नबी पर, और अल्लाह वाली है मुसलमानों का। (68)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

ऐ अहले किताब! क्यों हुज्जत करते हो (हज़रत) इब्राहीम (अ़लैहिस्सलाम) के बारे में (कि वह यहूदियत या ईसाईयत के तरीक़े पर थे) हालाँकि नहीं नाज़िल की गई तौरात और इन्जील मगर उनके (ज़माने के बहुत) बाद, (और ये दोनों तरीक़े इन दोनों किताबों के उतरने के बाद से ज़ाहिर हुए, पहले से इनका वजूद ही न था, फिर हज़रत इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम इन तरीक़ों पर किस तरह हो सकते हैं) क्या (ऐसी ख़िलाफ़े अ़क्ल बात मुँह से निकालते हो और) फिर समझते नहीं हो? हाँ तुम ऐसे हो कि ऐसी बात में तो हुज्जत कर ही चुके थे जिससे तुम्हें किसी क़द्र तो जानकारी थी (अगरचे उसमें एक ग़लत बात लगाकर नतीजा ग़लत निकालते थे, इससे मुराद

ईसा अलैहिस्सलाम के मोजिज़े हैं कि यह हक़ीक़त के मुताबिक़ है, अलबत्ता इसमें यह बात ग़लत मिला ली गयी कि ऐसे मोजिज़ों (यानी असाधारण कामों) वाला ख़ुदा या ख़ुदा का बेटा होगा, लेकिन एक बात इस धोखा लगने और शुब्हा पेश आने की मंशा तो थी, इसलिए इसको नाकाफ़ी वाक़फ़ियत कहेंगे। जब इसमें तुम्हारी ग़लती ज़ाहिर हो गयी) सो ऐसी बात में (फिर) क्यों हुज्जत करते हो जिससे तुमको बिल्कुल जानकारी नहीं, (क्योंकि इस दावे के लिये तो शुब्हा पेश आने या धोखा लगने का कोई सबब भी तुम्हारे पास नहीं, क्योंकि उनके और इब्राहीम अलैहिस्सलाम की शरीअ़त के अहकाम में समानता भी न थी) और अल्लाह तआ़ला (इब्राहीम अलैहिस्सलाम के तरीक़े को ख़ूब) जानते हैं और तुम नहीं जानते। (जब तुम ऐसे बिना सर पैर के दावे करते हो जिससे जानकारी भी ना-जानकारी की तरह समझी जाती है तो अब अल्लाह तआ़ला से उनके तरीक़े को सुनो कि) इब्राहीम (अलैहिस्सलाम) न तो यहूदी थे और न ईसाई थे, लेकिन (अलबत्ता) सीधे तरीक़े वाले (यानी) इस्लाम वाले थे, और मुश्रिकों में से (भी) न थे। (सो यहूदियों और ईसाईयों को तो मज़हबी तरीक़े के एतिबार से उनके साथ कोई मुनासबत और ताल्लुक़ न हुआ, हाँ) बेशक सब आदमियों में ज़्यादा ख़ुसूसियत रखने वाले (हज़रत) इब्राहीम (अलैहिस्सलाम) के साथ अलबत्ता वे लोग थे जिन्होंने (उनके वक़्त में) उनका इत्तिबा "यानी पैरवी" किया था, और यह नबी (मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) हैं और ये ईमान वाले (जो नबी सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की उम्मत हैं) और अल्लाह तआ़ला हिमायती हैं ईमान वालों के (कि उनको उनके ईमान का सवाब देंगे)।

وَدَّتْ طَّآئِفَةٌ مِّنْ اَهْلِ الْكِتٰبِ لَوْ يُضِلُّوْنَكُمْ ؕ وَمَا يُضِلُّوْنَ اِلَّآ اَنْفُسَهُمْ وَمَا يَشْعُرُوْنَ ۞ يٰۤاَهْلَ الْكِتٰبِ لِمَ تَكْفُرُوْنَ بِاٰيٰتِ اللّٰهِ وَاَنْتُمْ تَشْهَدُوْنَ ۞ يٰۤاَهْلَ الْكِتٰبِ لِمَ تَلْبِسُوْنَ الْحَقَّ بِالْبَاطِلِ وَتَكْتُمُوْنَ الْحَقَّ وَاَنْتُمْ تَعْلَمُوْنَ ۞

वद्दत्ताइ-फ़तुम् मिन् अह्लिल्-किताबि लौ युज़िल्लू-नकुम, व मा युज़िल्लू-न इल्ला अन्फ़ु-सहुम् व मा यश्अुरून (69) या अह्लल्-किताबि लि-म तक्फ़ुरू-न बिआयातिल्लाहि व अन्तुम् तश्हदून (70) या अह्लल्-किताबि लि-म तल्बिसूनल् हक़्-क़ बिल्-बातिलि व तक्तुमूनल्-हक़्-क़ व अन्तुम् तअ्लमून (71) ✿	आरज़ू है कुछ अहले किताब को कि किसी तरह गुमराह करें तुमको, और गुमराह नहीं करते मगर अपने आपको और नहीं समझते। (69) ऐ अहले किताब! क्यों इनकार करते हो अल्लाह के कलाम का और तुम क़ायल हो। (70) ऐ अहले किताब! क्यों मिलाते हो सच में झूठ और छुपाते हो सच्ची बात जानकर। (71) ✿

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

दिल से चाहते हैं अहले किताब में से कुछ लोग इस बात को कि तुमको (हक़ दीन से) गुमराह कर दें, और वे किसी को गुमराह नहीं कर सकते मगर ख़ुद अपने आपको (गुमराही के वबाल में गिरफ़्तार कर रहे हैं) और इसकी ख़बर नहीं रखते। ऐ अहले किताब! क्यों कुफ़्र करते हो अल्लाह तआ़ला की (उन) आयतों के साथ? (जो तौरात और इन्जील में नुबुव्वते मुहम्मदिया पर दलालत करती हैं, क्योंकि हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की नुबुव्वत का इनकार करना उन आयतों को झुठलाना है, जो कुफ़्र है) हालाँकि तुम (अपनी ज़बान से) इक़रार करते हो (कि वे आयतें हक़ हैं। यह तो मलामत हुई उनके गुमराह होने पर, आगे उनके दूसरों को गुमराह करने पर मलामत फ़रमाते हैं कि) ऐ अहले किताब! क्यों गड्-मड् करते हो असल (मज़मून यानी नुबुव्वते मुहम्मदिया) को ग़ैर-असली (यानी रद्दोबदल की हुई इबारत या ग़लत मायने बयान करने) से, और (क्यों) छुपाते हो हकीकी (असली और सही) बात को हालाँकि तुम जानते हो (कि हक़ बात छुपा रहे हो)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

'अन्तुम तश्हदून' और 'अन्तुम तअ़लमून' (यानी तुम इक़रार करते हो और तुम जानते हो) के अलफ़ाज़ से यह न समझा जायेगा कि अगर वे हक़ का इक़रार न करें या उनको इल्म न हो तो उनके लिये कुफ़्र जायज़ होगा। वजह इसकी यह है कि कुफ़्र अपनी ज़ात के एतिबार से एक बुरा फ़ेल है, यह हर हालत में नाजायज़ है, अलबत्ता इल्म व इक़रार के बाद कुफ़्र इख़्तियार करने में मलामत और ज़्यादा बढ़ जाती है।

وَقَالَتْ طَّآئِفَةٌ مِّنْ اَهْلِ الْكِتٰبِ اٰمِنُوْا بِالَّذِیْٓ اُنْزِلَ عَلَى الَّذِیْنَ اٰمَنُوْا وَجْهَ النَّهَارِ وَاكْفُرُوْٓا اٰخِرَهٗ لَعَلَّهُمْ یَرْجِعُوْنَ ۝ وَلَا تُؤْمِنُوْٓا اِلَّا لِمَنْ تَبِعَ دِیْنَكُمْ ؕ قُلْ اِنَّ الْهُدٰى هُدَى اللّٰهِ ۙ اَنْ یُّؤْتٰٓى اَحَدٌ مِّثْلَ مَآ اُوْتِیْتُمْ اَوْ یُحَآجُّوْكُمْ عِنْدَ رَبِّكُمْ ؕ قُلْ اِنَّ الْفَضْلَ بِیَدِ اللّٰهِ ۚ یُؤْتِیْهِ مَنْ یَّشَآءُ ؕ وَاللّٰهُ وَاسِعٌ عَلِیْمٌ ۝ یَّخْتَصُّ بِرَحْمَتِهٖ مَنْ یَّشَآءُ ؕ وَاللّٰهُ ذُو الْفَضْلِ الْعَظِیْمِ ۝

व कालत्ताइ-फ़तुम् मिन् अह्लिल्-किताबि आमिनू बिल्लज़ी उन्ज़ि-ल अ़लल्लज़ी-न आमनू वज्हन्नहारि वक्फ़ुरू आख़ि-रहू लअ़ल्लहुम् यर्जिअ़ून (72) व ला तुअ्मिनू	और कहा कुछ अहले किताब ने- मान लो जो कुछ उतरा मुसलमानों पर दिन चढ़े और इनकारी हो जाओ दिन के आख़िरी हिस्से में, शायद वे फिर जायें। (72) और न मानियो मगर उसी की जो चले तुम्हारे दीन पर। कह दे कि बेशक हिदायत वही

इल्ला लिमन् तबि-अ दीनकुम, क़ुल् इन्नल्हुदा हुदल्लाहि अंय्युअ्ता अ-हदुम् मिस्-ल मा ऊतीतुम् औ युहाज्जूकुम् अिन्-द रब्बिकुम्, क़ुल् इन्नल् फ़ज़्-ल बि-यदिल्लाहि युअ्तीहि मंय्यशा-उ, वल्लाहु वासिअुन् अ़लीम (73) यख़्तस्सु बिरह्मतिही मंय्यशा-उ, वल्लाहु ज़ुल्फ़ज़्लिल् अ़ज़ीम (74)	है जो अल्लाह हिदायत करे, और यह सब कुछ इसलिए है कि और किसी को भी क्यों मिल गया जैसा कुछ तुमको मिला था, या वे ग़ालिब क्यों आ गये तुम पर तुम्हारे रब के आगे। तू कह- बड़ाई अल्लाह के हाथ में है, देता है जिसको चाहे, और अल्लाह बहुत गुंजाईश वाला है, ख़बरदार। (73) ख़ास करता है अपनी मेहरबानी जिस पर चाहे, और अल्लाह का फ़ज़्ल बड़ा है। (74)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

और अहले किताब में से कुछ लोगों ने (आपसी मश्विरा करने के तौर पर) कहा कि (मुसलमानों को गुमराह करने की एक तदबीर है कि ज़ाहिर में) ईमान ले आओ उस (किताब) पर जो नाज़िल की गई है (रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के वास्ते से) मुसलमानों पर (यानी क़ुरआन पर), (मुराद यह कि क़ुरआन पर ईमान ले आओ) शुरू दिन में (यानी सुबह के वक़्त) और (फिर) इनकार कर बैठो आख़िर दिन में (यानी शाम को), क्या ताज्जुब है कि (इस तदबीर से मुसलमानों को भी क़ुरआन और इस्लाम के हक़ होने में शुब्हा पड़ जाये और) वे (अपने दीन से) फिर जाएँ (और यह ख़्याल करें कि ये लोग इल्म वाले हैं और बेतास्सुब भी हैं कि इस्लाम क़ुबूल कर लिया, इस पर भी जो फिर गये तो ज़रूर इस्लाम का ग़ैर-हक़ (ग़लत और हक़ के ख़िलाफ़) होना इनको इल्मी दलीलों से साबित (मालूम) हो गया होगा, और ज़रूर इन्होंने इस्लाम में कोई ख़राबी देखी होगी जब ही तो उससे फिर गये।

और अहले किताब ने आपस में यह भी कहा कि मुसलमानों के दिखलाने को सिर्फ़ ज़ाहिरी ईमान लाना) और (सच्चे दिल से) किसी के रू-ब-रू (दीन का) इक़रार मत करना, मगर ऐसे शख़्स के रू-ब-रू (सामने) जो तुम्हारे दीन की पैरवी करने वाला हो। (उसके रू-ब-रू तुमको अपने पुराने दीन का इक़रार ख़ुलूस से करना चाहिए बाक़ी ग़ैर-मज़हब वालों के यानी मुसलमानों के रू-ब-रू वैसे ही उक्त मस्लेहत की ख़ातिर इस्लाम का ज़बानी इक़रार कर लेना। हक़ तआ़ला उनकी तदबीर के लचर होने का इज़हार फ़रमाते हैं कि) ऐ मुहम्मद (सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम)! आप कह दीजिए कि (इन चालाकियों से कुछ नहीं होता, क्योंकि) यक़ीनन हिदायत (जो बन्दों को होती है वह) हिदायत अल्लाह की (तरफ़ से होती) है, (पस जब हिदायत अल्लाह के क़ब्ज़े में है तो वह जिसको हिदायत पर क़ायम रखना चाहें उसको कोई दूसरा किसी तदबीर से नहीं बिचला सकता है। आगे उनके इस मश्विरे व तदबीर की वजह बतलाते हैं कि ऐ अहले

किताब! तुम) ऐसी बातें इसलिए करते हो कि किसी और को भी ऐसी चीज़ मिल रही है जैसी तुमको मिली थी, (यानी किताब और आसमानी दीन) या वे लोग तुम पर ग़ालिब आ जाएँ (उस दीने हक़ को मुतैयन करके पेश करने में जो) तुम्हारे रब के नज़दीक (है। हासिल सबब और कारण का यह हुआ कि तुमको मुसलमानों पर जलन है कि उनको आसमानी किताब क्यों मिल गई, या ये लोग हम पर मज़हबी मुनाज़रे में क्यों ग़ालिब आ जाते हैं, इस जलन की वजह से इस्लाम और मुसलमानों को नीचा दिखाने की कोशिश कर रहे हैं। आगे इस हसद ''जलन'' का रद्द है कि) ऐ मुहम्मद! (सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम) आप कह दीजिए कि बेशक फ़ज़्ल तो ख़ुदा के क़ब्ज़े में है वह उसको जिसे चाहें अ़ता फ़रमा दें, और अल्लाह तआ़ला बड़ी वुस्अ़त वाले हैं (उनके यहाँ फ़ज़्ल की कमी नहीं और) ख़ूब जानने वाले हैं, (कि किस वक़्त किसको देना मुनासिब है इसलिए) ख़ास कर देते हैं अपनी रहमत (व फ़ज़्ल) के साथ जिसको चाहें, और अल्लाह तआ़ला बड़े फ़ज़्ल वाले हैं (पस इस वक़्त अपनी हिक्मत से मुसलमानों पर फ़ज़्ल व रहमत फ़रमा दिया इसमें हसद और ईर्ष्या करना फ़ुज़ूल और जहालत है)।

وَمِنْ اَهْلِ الْكِتٰبِ مَنْ اِنْ تَاْمَنْهُ بِقِنْطَارٍ يُّؤَدِّهٖٓ اِلَيْكَ ۚ وَمِنْهُمْ مَّنْ اِنْ تَاْمَنْهُ بِدِيْنَارٍ لَّا يُؤَدِّهٖٓ اِلَيْكَ اِلَّا مَا دُمْتَ عَلَيْهِ قَآئِمًا ۗ ذٰلِكَ بِاَنَّهُمْ قَالُوْا لَيْسَ عَلَيْنَا فِى الْاُمِّيّٖنَ سَبِيْلٌ ۚ وَيَقُوْلُوْنَ عَلَى اللّٰهِ الْكَذِبَ وَهُمْ يَعْلَمُوْنَ ﴿٧٥﴾

व मिन् अह्लिल्-किताबि मन् इन् तअ्मन्हु बिकिन्तारिंय्युअद्दिही इलै-क व मिन्हुम् मन् इन् तअ्मन्हु बिदीनारिल् ला युअद्दिही इलै-क इल्ला मा दुम्-त अ़लैहि क़ा-इमन्, ज़ालि-क बिअन्नहुम् क़ालू लै-स अ़लैना फ़िल्उम्मिय्यी-न सबीलुन् व यक़ूलू-न अ़लल्लाहिल्-कज़ि-ब व हुम् यअ़्लमून (75)	और बाज़े अहले किताब में वे हैं कि अगर तू उनके पास अमानत रखे ढेर माल का तो अदा करें तुझको, और बाज़े उनमें वे हैं कि अगर तू उनके पास अमानत रखे एक अशरफ़ी तो अदा न करें तुझको मगर जब तक तू रहे उसके सर पर खड़ा, यह इस वास्ते कि उन्होंने कह रखा है कि नहीं है हम पर उन लोगों के हक़ लेने में कुछ गुनाह, और झूठ बोलते हैं अल्लाह पर और वे जानते हैं। (75)

इन आयतों के मज़मून का पीछे से ताल्लुक़

ऊपर की आयतों में अहले किताब (यहूदियों व ईसाईयों) की दीन में ख़ियानत (चोरी और बद्दियानती) का ज़िक्र था, यानी उनका अल्लाह की आयतों के साथ कुफ़्र करना और हक़ को

बातिल (ग़ैर-हक़) के साथ मिला देने का, और हक़ के छुपाने का, और मोमिनों को गुमराह करने की तदबीर करना। अगली आयत में मालों में उनकी ख़ियानत (अनियमितता और बदूदियानती) करने का ज़िक्र है और उनमें से चूँकि कुछ अमानतदार भी थे इसलिये दोनों क़िस्मों का ज़िक्र फ़रमाया।

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

और अहले किताब (यहूदियों व ईसाईयों) में से बाज़ा शख़्स ऐसा है कि (ऐ मुख़ातब!) अगर तुम उसके पास ढेर-का-ढेर माल भी अमानत का रख दो तो वह (माँगने के साथ ही) उसको तुम्हारे पास ला रखे। और उन्हीं में से बाज़ा वह शख़्स है कि अगर तुम उसके पास एक दीनार भी अमानत रख दो तो वह भी तुमको अदा न करे (बल्कि अमानत रखाने का भी इक़रार न करे) मगर जब तक कि तुम (अमानत रखकर) उसके सर पर (बराबर) खड़े रहो, (उस वक़्त तक तो इनकार न करे और जहाँ अलग हुए फिर अदा करने का तो क्या ज़िक्र है, सिरे से अमानत ही से मुकर जाये)। यह (अमानत का अदा न करना) इस सबब से है कि वे लोग कहते हैं कि हम पर अहले-किताब के अलावा (दूसरों के माल) के बारे में (अगर चोरी-छुपे लिया जाए मज़हबी एतिबार से) किसी तरह का इल्ज़ाम नहीं। (यानी ग़ैर-अहले किताब जैसे क़ुरैश का माल चुरा लेना या छीन लेना सब जायज़ है। अल्लाह तआ़ला आगे उनके इस दावे को झुठला रहे हैं) और वे लोग अल्लाह तआ़ला पर झूठ लगाते हैं (कि इस फ़ेल को हलाल समझते हैं) और दिल में वे भी जानते हैं (अल्लाह तआ़ला ने इसको हलाल नहीं किया, यह ख़ालिस अपना गढ़ा हुआ दावा है)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

किसी ग़ैर-मुस्लिम के अच्छे गुणों की तारीफ़ करना दुरुस्त है

وَمِنْ اَهْلِ الْكِتٰبِ مَنْ اِنْ تَاْمَنْهُ بِقِنْطَارٍ يُّؤَدِّهٖٓ اِلَيْكَ.........الخ

'और अहले किताब में से.........' इस इस आयत में कुछ लोगों की अमानतदार होने पर तारीफ़ की गई है। अगर इस 'बाज़े' (कुछ) से मुराद वो अहले किताब हैं जो ईमान ला चुके थे तो उनकी तारीफ़ करने में कोई शुब्हा पैदा नहीं होता, लेकिन अगर ख़ालिस मोमिन मुराद न हों बल्कि मुतलक़ तौर पर अहले किताब हों जिनमें ग़ैर-मुस्लिम भी शामिल हैं तो इस सूरत में यह सवाल पैदा होता है कि काफ़िर का कोई अ़मल मक़बूल नहीं होता तो फिर उनकी तारीफ़ से क्या फ़ायदा?

जवाब यह है कि किसी चीज़ का मक़बूल होना और चीज़ है और उसकी तारीफ़ करना और चीज़ है। तारीफ़ करने से यह लाज़िम नहीं आता कि वह अल्लाह के यहाँ मक़बूल भी है। इससे

यह बतलाना मक़सूद है कि अच्छी बात चाहे काफ़िर की हो वह भी किसी दर्जे में अच्छी ही है, जिसका फ़ायदा उसको दुनिया में "नेकनामी" (अच्छी शोहरत) है और आख़िरत में अ़ज़ाब का कम होना।

इस बयान से यह बात भी स्पष्ट हो जाती है कि इस्लाम तास्सुब (ग़लत भेदभाव) और तंग-नज़री से काम नहीं लेता बल्कि वह खुले दिल से अपने मुख़ालिफ़ के हुनर की भी उसके मर्तबे के मुताबिक़ दाद देता है।

إِلَّا مَادُمْتَ عَلَيْهِ قَائِمًا.

-'मगर जब तक कि तुम उसके सर पर खड़े रहो' इस आयत से इमाम अबू हनीफ़ा रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने दलील हासिल की है कि क़र्ज़ वाले (लेनदार) को यह हक़ है कि वह अपने क़र्ज़दार (देनदार) से अपना हक़ वसूल करने तक उसका पीछा करता रहे।

(तफ़सीरे क़ुर्तुबी जिल्द 4)

بَلٰى مَنْ اَوْفٰى بِعَهْدِهٖ وَاتَّقٰى فَاِنَّ اللّٰهَ يُحِبُّ الْمُتَّقِيْنَ ۝ اِنَّ الَّذِيْنَ يَشْتَرُوْنَ بِعَهْدِ اللّٰهِ وَاَيْمَانِهِمْ ثَمَنًا قَلِيْلًا اُولٰٓئِكَ لَا خَلَاقَ لَهُمْ فِى الْاٰخِرَةِ وَلَا يُكَلِّمُهُمُ اللّٰهُ وَلَا يَنْظُرُ اِلَيْهِمْ يَوْمَ الْقِيٰمَةِ وَلَا يُزَكِّيْهِمْ ۖ وَلَهُمْ عَذَابٌ اَلِيْمٌ ۝

बला मन् औफ़ा बि-अ़हिदही वत्तक़ा फ़-इन्नल्ला-ह युहिब्बुल् मुत्तक़ीन (76) इन्नल्लज़ी-न यश्तरू-न बि-अ़हिदल्लाहि व ऐमानिहिम् स-मनन् क़लीलन् उलाइ-क ला ख़ला-क़ लहुम् फ़िल्-आख़ि-रति व ला युकल्लिमुहुमुल्लाहु व ला यन्ज़ुरु इलैहिम् यौमल्-क़ियामति व ला युज़क्कीहिम् व लहुम् अ़ज़ाबुन् अलीम (77)	क्यों नहीं! जो कोई पूरा करे अपना इक़रार और वह परहेज़गार है तो अल्लाह को मुहब्बत है परहेज़गारों से। (76) जो लोग मोल (क़ीमत यानी दुनियावी फ़ायदा) लेते हैं अल्लाह के इक़रार पर और अपनी क़समों पर थोड़ा सा मोल, उनका कुछ हिस्सा नहीं आख़िरत में और न बात करेगा उनसे अल्लाह और न निगाह करेगा उनकी तरफ़ क़ियामत के दिन, और न पाक करेगा उनको, और उनके वास्ते दर्दनाक अ़ज़ाब है। (77)

इन आयतों के मज़मून का पीछे से जोड़

ऊपर 'व यक़ूलू-न' से अहले किताब के दावे का झूठा और ग़लत होना बयान किया गया

था आगे इन आयतों से उसी झूठा होने की ताकीद और वायदे को पूरा करने की फ़ज़ीलत और अहद व समझौते को तोड़ने की बुराई व निंदा बयान की गयी है।

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

(ख़ियानत करने वाले पर) इल्ज़ाम क्यों न होगा (ज़रूर होगा, क्योंकि उसके बारे में हमारे ये दो क़ानून हैं- एक यह कि) जो शख़्स अपने अहद को (चाहे वह अहद अल्लाह तआ़ला से हुआ हो, या जायज़ होने की शर्त के साथ किसी मख़्लूक़ से) पूरा करे, और अल्लाह तआ़ला से डरे तो बेशक अल्लाह तआ़ला महबूब रखते हैं (ऐसे) मुत्तक़ियों को। (और दूसरा क़ानून यह है कि) यक़ीनन जो लोग हक़ीर मुआ़वज़ा (यानी दुनियावी नफ़ा) ले लेते हैं उस अहद के मुक़ाबले में जो अल्लाह तआ़ला से (उन्होंने) किया है, (जैसे अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम पर ईमान लाना) और (मुक़ाबले में) अपनी क़समों के (जैसे बन्दों के हुक़ूक़ और मामलात के बारे में क़सम खा लेना) उन लोगों को कुछ हिस्सा आख़िरत में (वहाँ की नेमत का) न मिलेगा, और न ख़ुदा तआ़ला उनसे (नर्मी का) कलाम फ़रमाएँगे, और न उनकी तरफ़ (मुहब्बत की नज़र से) देखेंगे क़ियामत के दिन, और न उनको (गुनाहों से) पाक करेंगे, और उनके लिये दर्दनाक अ़ज़ाब (तजवीज़) होगा।

मआ़रिफ़ व मसाईल

अ़हद की परिभाषा और उसके ख़िलाफ़ करने वाले पर चन्द वईदें

अ़हद उस क़ौल का नाम है जो दो फ़रीक़ों के बीच आपसी बातचीत से तय होता है, जिस पर दोनों पक्षों को क़ायम रहना ज़रूरी होता है, बख़िलाफ़ वायदे के कि वह सिर्फ़ एक तरफ़ से होता है, यानी अ़हद आ़म है और वायदा ख़ास है।

अ़हद के पूरा करने की क़ुरआन व सुन्नत में बहुत ताकीद आई है। चुनाँचे ऊपर की आयत नम्बर 77 में भी अ़हद की ख़िलाफ़वर्ज़ी (उल्लंघन) करने वाले पर पाँच वईदें (सज़ा की धमकियाँ) बयान हुई हैं:

1. उनके लिये जन्नत की नेमतों में से कोई हिस्सा नहीं मिलेगा। एक हदीस में रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम इरशाद फ़रमाते हैं कि जिस आदमी ने झूठी क़सम के ज़रिये किसी मुसलमान का हक़ दबाया तो उसने अपने लिये आग को वाजिब कर दिया। हदीस को बयान करने वाले ने अ़र्ज़ किया कि अगर वह चीज़ मामूली सी हो तो तब भी उसके लिये आग वाजिब होगी? आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने जवाब में फ़रमाया अगरचे वह पेड़ की हरी टहनी ही क्यों न हो। (तफ़सीरे मज़हरी, मुस्लिम शरीफ़ के हवाले से)

2. अल्लाह तआ़ला उनसे ख़ुश करने वाली बात नहीं करेंगे।

3. अल्लाह तआ़ला उनकी तरफ़ क़ियामत के दिन रहमत की नज़र से नहीं देखेंगे।

4. अल्लाह तआ़ला उनके गुनाह को माफ़ नहीं करेंगे, क्योंकि अ़हद के ख़िलाफ़ करने की वजह से बन्दे का हक़ बरबाद हुआ है और बन्दे के हक़ को अल्लाह तआ़ला माफ़ नहीं करेंगे।

5. उनके लिये दर्दनाक अ़ज़ाब होगा।

وَإِنَّ مِنْهُمْ لَفَرِيقًا يَلْوُنَ أَلْسِنَتَهُم بِالْكِتَٰبِ لِتَحْسَبُوهُ مِنَ الْكِتَٰبِ وَمَا هُوَ مِنَ الْكِتَٰبِ وَيَقُولُونَ هُوَ مِنْ عِندِ اللَّهِ وَمَا هُوَ مِنْ عِندِ اللَّهِ وَيَقُولُونَ عَلَى اللَّهِ الْكَذِبَ وَهُمْ يَعْلَمُونَ ۞ مَا كَانَ لِبَشَرٍ أَن يُؤْتِيَهُ اللَّهُ الْكِتَٰبَ وَالْحُكْمَ وَالنُّبُوَّةَ ثُمَّ يَقُولَ لِلنَّاسِ كُونُوا عِبَادًا لِّي مِن دُونِ اللَّهِ وَلَٰكِن كُونُوا رَبَّٰنِيِّـۧنَ بِمَا كُنتُمْ تُعَلِّمُونَ الْكِتَٰبَ وَبِمَا كُنتُمْ تَدْرُسُونَ ۞ وَلَا يَأْمُرَكُمْ أَن تَتَّخِذُوا الْمَلَٰٓئِكَةَ وَالنَّبِيِّـۧنَ أَرْبَابًا ۗ أَيَأْمُرُكُم بِالْكُفْرِ بَعْدَ إِذْ أَنتُم مُّسْلِمُونَ ۞

व इन्-न मिन्हुम् ल-फ़रीक़ंय्यल्वू-न अल्सि-न-तहुम् बिल्किताबि लि-तह्सबूहु मिनल्-किताबि व मा हु-व मिनल्-किताबि व यक़ूलू-न हु-व मिन् अ़िन्दिल्लाहि व मा हु-व मिन् अ़िन्दिल्लाहि व यक़ूलू-न अ़लल्लाहिल्-कज़ि-ब व हुम् यअ़्लमून (78) मा का-न लि-ब-शरिन् अंय्युअ्ति-यहुल्लाहुल् किता-ब वल्हुक्-म वन्नुबुव्व-त सुम्-म यक़ू-ल लिन्नासि कूनू अ़िबादल्ली मिन् दूनिल्लाहि व लाकिन् कूनू रब्बानिय्यी-न बिमा कुन्तुम् तुअ़ल्लिमूनल्-किता-ब व बिमा कुन्तुम् तद्रुसून (79) व ला यअ्मु-रकुम् अन् तत्तख़िज़ुल्-मलाइ-क-त वन्नबिय्यी-न अर्बाबन्,	और उनमें एक फ़रीक़ है कि ज़बान मरोड़ कर पढ़ते हैं किताब ताकि तुम जानो कि वह किताब में है और वह नहीं किताब में, और कहते हैं- वह अल्लाह का कहा है, और वह नहीं अल्लाह का कहा, और अल्लाह पर झूठ बोलते हैं जानकर। (78) किसी बशर (इनसान) का काम नहीं कि अल्लाह उसको देवे किताब और हिक्मत और पैग़म्बर करे फिर वह कहे लोगों को कि तुम मेरे बन्दे हो जाओ अल्लाह को छोड़कर, लेकिन यूँ कहे कि तुम अल्लाह वाले हो जाओ जैसे कि तुम सिखलाते थे किताब और जैसे कि तुम आप भी पढ़ते थे उसे। (79) और न यह कहे तुमको कि ठहरा (मुक़र्रर कर) लो फ़रिश्तों को और नबियों को रब, क्या तुमको कुफ़्र

अ-यअ्मुरुकुम् बिल्कुफ़्रि बअ्-द इज़् अन्तुम् मुस्लिमून (80) ✿	सिखायेगा इसके बाद कि तुम मुसलमान हो चुके हो?। (80) ✿

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

और बेशक उनमें से कुछ ऐसे हैं कि टेढ़ा करते हैं अपनी ज़बानों को किताब (पढ़ने) में (यानी उनमें कोई लफ़्ज़ या कोई तफ़सीर ग़लत मिला देते हैं और ग़लत पढ़ना ज़बान को टेढ़ा करना कहलाता है), ताकि तुम लोग (जो उसको सुनो तो) उस (मिलाई हुई चीज़) को (भी) किताब का हिस्सा समझो, हालाँकि वह किताब का हिस्सा नहीं। और (सिर्फ़ धोखा देने के लिये इस अमली तरीक़े पर बस नहीं करते बल्कि ज़बान से भी) कहते हैं कि यह (लफ़्ज़ या मतलब) ख़ुदा के पास से (जो अलफ़ाज़ या क़वाईद नाज़िल हुए हैं उनसे साबित) है, हालाँकि वह (किसी तरह) ख़ुदा तआ़ला के पास से नहीं। (पस उनका झूठा होना लाज़िम आ गया। आगे ताकीद के लिये इसकी फिर वज़ाहत है) और अल्लाह तआ़ला पर झूठ बोलते हैं और वे (अपना झूठा होना दिल में ख़ुद भी) जानते हैं। किसी बशर से यह बात नहीं हो सकती कि अल्लाह तआ़ला (तो) उसको किताब और (दीन की) समझ और नुबुव्वत अ़ता फ़रमाएँ (जिनमें से हर एक का तक़ाज़ा यह है कि कुफ़्र व शिर्क से रोका जाये, और) फिर वह लोगों से (यूँ) कहने लगे कि मेरे बन्दे (यानी इबादत करने वाले) बन जाओ ख़ुदा तआ़ला (की तौहीद) को छोड़कर (यानी नुबुव्वत और शिर्क करने का हुक्म जमा नहीं हो सकते) व लेकिन (वह नबी यह तो) (कहेगा कि) तुम लोग अल्लाह वाले बन जाओ, (यानी सिर्फ़ अल्लाह तआ़ला की इबादत करो) इस वजह से कि तुम (अल्लाह की) किताब (औरों को भी) सिखाते हो और इस वजह से कि (ख़ुद भी उसको) तुम पढ़ते हो। (और उस किताब में तालीम है तौहीद की) और न (वह इनसान जो नुबुव्वत से सम्मानित है) यह बात बतलायेगा कि तुम फ़रिश्तों को (या दूसरे) और नबियों को रब क़रार दे लो, क्या (भला) वह तुमको कुफ़्र की बात बतलायेगा इसके बाद कि तुम (इस ख़ास अ़क़ीदे में चाहे वास्तव में या अपने गुमान के मुताबिक़) मुसलमान हो।

मआ़रिफ़ व मसाईल

अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम के मासूम (गुनाहों से सुरक्षित) होने की एक दलील

'किसी बशर का यह काम नहीं.......' नजरान के ईसाईयों के वफ़्द (प्रतिनिधि मण्डल) की मौजूदगी में कुछ यहूदियों व ईसाईयों ने कहा था कि ऐ मुहम्मद! क्या तुम यह चाहते हो कि हम तुम्हारी उसी तरह पूजा करें जैसे ईसाई ईसा बिन मरियम को पूजते हैं? आप सल्लल्लाहु अ़लैहि

व सल्लम ने फ़रमाया- अल्लाह की पनाह! कि हम ग़ैरुल्लाह की बन्दगी करें, या दूसरों को इसकी दावत दें, हक़ तआ़ला ने हमको इस काम के लिये नहीं भेजा। इस पर यह आयत नाज़िल हुई- "यानी जिस बशर को हक़ तआ़ला किताब व हिक्मत और क़ुव्वते फ़ैसला देता और पैग़म्बरी के ऊँचे मक़ाम पर पहुँचाता है कि वह अल्लाह का पैग़ाम ठीक-ठीक पहुँचाकर लोगों को उसकी बन्दगी और वफ़ादारी की तरफ़ मुतवज्जह करे, उसका यह काम कभी नहीं हो सकता कि उनको ख़ालिस एक ख़ुदा की बन्दगी से हटाकर ख़ुद अपना या किसी दूसरी मख़्लूक़ का बन्दा बनाने लगे, इसके तो यह मायने होंगे कि ख़ुदावन्दे करीम ने जिसको जिस मन्सब (पद) का अहल जानकर भेजा था वास्तव में वह उसका अहल (पात्र और योग्य) न था। दुनिया की कोई हुकूमत भी अगर किसी शख़्स को एक ज़िम्मेदारी के ओहदे पर मामूर करती है तो पहले दो बातें सोच लेती है:

1. यह शख़्स हुकूमत की पॉलिसी को समझने और अपने फ़राईज़ (ड्यूटी) अन्जाम देने की क़ाबलियत रखता है या नहीं?

2. हुकूमत के अहकाम (आदेशों) की तामील करने और रियाया को वफ़ादारी के रास्ते पर क़ायम रखने की कहाँ तक उससे अपेक्षा की जा सकती है।

कोई बादशाह या पार्लिमेन्ट ऐसे आदमी को हुकूमत का नायब या दूत मुक़र्रर नहीं कर सकती जिसके बारे में हुकूमत के ख़िलाफ़ बग़ावत फैलाने या उसकी पॉलिसी और अहकाम से मुँह फेर लेने या ख़िलाफ़ करने का मामूली सा भी शुब्हा हो। बेशक यह मुम्किन है कि एक शख़्स की क़ाबलियत या वफ़ादारी की भावना का अन्दाज़ा हुकूमत सही तौर पर न कर सकी हो, लेकिन ख़ुदावन्दे क़ुद्दूस के यहाँ यह भी शुब्हा व संभावना नहीं, अगर किसी मर्द (शख़्स) के बारे में उसको इल्म है कि यह मेरी वफ़ादारी और हुक्मों के पालन में बाल बराबर इधर-उधर न होगा, तो मुहाल (नामुम्किन) है कि वह आगे चलकर इसके ख़िलाफ़ साबित हो सके, वरना अल्लाह के इल्म का ग़लत होना लाज़िम आता है। अल्लाह की पनाह।

यहीं से अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम के मासूम (ग़लतियों और गुनाहों से सुरक्षित) होने का मसला स्पष्ट हो जाता है। फिर जब अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम मामूली सी नाफ़रमानी से भी पाक हैं तो शिर्क और ख़ुदा के मुक़ाबले में बग़ावत करने की संभावना कहाँ बाक़ी रह सकती है।

इसमें ईसाईयों के इस दावे का भी रद्द हो गया जो कहते थे कि मसीह इब्ने मरियम के अल्लाह का बेटा और ख़ुदा होने का अ़क़ीदा हमको ख़ुद मसीह अ़लैहिस्सलाम ने तालीम फ़रमाया था, और उन मुसलमानों को भी नसीहत कर दी गई जिन्होंने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से अ़र्ज़ किया था कि हम सलाम के बजाय आपको सज्दा किया करें तो क्या हर्ज है? और अहले किताब पर भी एक एतिराज़ व हमला हो गया जिन्होंने अपने 'अहबार' व 'रुहबान' (पादरियों व धार्मिक गुरुओं) को ख़ुदाई का दर्जा दे रखा था। (अल्लाह की पनाह)

(फ़वाईद-ए-उस्मानी)

وَاِذْ اَخَذَ اللّٰهُ مِيْثَاقَ النَّبِيّٖنَ لَمَاۤ اٰتَيْتُكُمْ مِّنْ كِتٰبٍ
وَّحِكْمَةٍ ثُمَّ جَآءَكُمْ رَسُوْلٌ مُّصَدِّقٌ لِّمَا مَعَكُمْ لَتُؤْمِنُنَّ بِهٖ وَلَتَنْصُرُنَّهٗ ؕ قَالَ ءَاَقْرَرْتُمْ وَاَخَذْتُمْ
عَلٰى ذٰلِكُمْ اِصْرِىْ ؕ قَالُوْۤا اَقْرَرْنَا ؕ قَالَ فَاشْهَدُوْا وَاَنَا مَعَكُمْ مِّنَ الشّٰهِدِيْنَ ۝ فَمَنْ تَوَلّٰى بَعْدَ
ذٰلِكَ فَاُولٰٓئِكَ هُمُ الْفٰسِقُوْنَ ۝ اَفَغَيْرَ دِيْنِ اللّٰهِ يَبْغُوْنَ وَلَهٗۤ اَسْلَمَ مَنْ فِى السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضِ
طَوْعًا وَّكَرْهًا وَّاِلَيْهِ يُرْجَعُوْنَ ۝ قُلْ اٰمَنَّا بِاللّٰهِ وَمَاۤ اُنْزِلَ عَلَيْنَا وَمَاۤ اُنْزِلَ عَلٰۤى اِبْرٰهِيْمَ وَاِسْمٰعِيْلَ
وَاِسْحٰقَ وَيَعْقُوْبَ وَالْاَسْبَاطِ وَمَاۤ اُوْتِىَ مُوْسٰى وَعِيْسٰى وَالنَّبِيُّوْنَ مِنْ رَّبِّهِمْ ۪ لَا نُفَرِّقُ بَيْنَ
اَحَدٍ مِّنْهُمْ ۫ وَنَحْنُ لَهٗ مُسْلِمُوْنَ ۝

व इज़् अ-ख़ज़ल्लाहु मीसाक़न्-नबिय्यी-न लमा आतैतुकुम् मिन् किताबिंव्-व हिक्मतिन् सुम्-म जा-अकुम् रसूलुम् मुसद्दिक़ुल्लिमा म-अकुम् लतुअ्मिनुन्-न बिही व ल-तन्सुरुन्नहू, क़ा-ल अ-अक़्ररतुम् व अ-ख़ज़्तुम् अला ज़ालिकुम् इस्री, क़ालू अक़्ररना, क़ा-ल फ़श्हदू व अ-न म-अकुम् मिनश्शाहिदीन (81) फ़-मन् तवल्ला बअ्-द ज़ालि-क फ़-उलाइ-क हुमुल् फ़ासिक़ून (82) अ-फ़ग़ै-र दीनिल्लाहि यब्ग़ू-न व लहू अस्ल-म मन् फ़िस्समावाति वल्अर्ज़ि तौअंव्-व करहंव्-व इलैहि युरजअून (83) क़ुल् आमन्ना बिल्लाहि व मा उन्जि-ल अलैना व मा उन्जि-ल अला इब्राही-म व इस्माअी-ल व इस्हा-क़ व यअ्क़ू-ब वल्अस्बाति व

और जब लिया अल्लाह ने अ़हद नबियों से कि जो कुछ मैंने तुमको दिया किताब और इल्म फिर आये तुम्हारे पास कोई रसूल कि सच्चा बताये तुम्हारे पास वाली किताब को तो उस रसूल पर ईमान लाओगे और उसकी मदद करोगे। फ़रमाया कि क्या तुमने इक़रार किया और इस शर्त पर मेरा अ़हद क़ुबूल किया? बोले हमने इक़रार किया। फ़रमाया तो अब गवाह रहो और मैं भी तुम्हारे साथ गवाह हूँ। (81) फिर जो कोई फिर जाये उसके बाद तो वही लोग हैं नाफ़रमान। (82) अब कोई और दीन ढूँढते हैं अल्लाह के दीन के अ़लावा, और उसी के हुक्म में है जो कोई आसमान और ज़मीन में है ख़ुशी से या लाचारी से, और उसी की तरफ़ सब लौटकर जायेंगे। (83) तू कह- हम ईमान लाये अल्लाह पर और जो कुछ उतरा हम पर और जो कुछ उतरा इब्राहीम पर और इस्माईल पर और

मा ऊति-य मूसा व अीसा वन्नबिय्यू-न मिर्रब्बिहिम् ला नुफ़र्रिक़ु बै-न अ-हदिम् मिन्हुम् व नह्नु लहू मुस्लिमून (84)	इस्हाक़ पर और याक़ूब पर और उसकी औलाद पर, और जो मिला मूसा को और ईसा को और जो मिला सब नबियों को उनके परवर्दिगार की तरफ़ से, हम जुदा (अलग) नहीं करते उनमें किसी को और हम उसी के फ़रमाँबरदार हैं। (84)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

और (वह वक़्त भी क़ाबिले ज़िक्र है) जबकि अल्लाह ने अ़हद लिया (हज़राते) अम्बिया (अ़लैहिमुस्सलाम) से कि जो कुछ मैं तुमको किताब और इल्म (शरीअ़त) दूँ (और) फिर तुम्हारे पास कोई (और) पैग़म्बर आए जो तस्दीक़ करने वाला (और मुवाफ़िक़) हो उस (निशानी) के जो तुम्हारे पास (की किताब और शरीअ़त में) है, (यानी शरीअ़त की मोतबर दलीलों से उसकी रिसालत साबित हो) तो तुम ज़रूर उस रसूल (की रिसालत) पर (दिल से) ईमान व यक़ीन भी लाना और (हाथ-पाँव से) उसकी हिमायत भी करना। (फिर यह अ़हद बयान करके इरशाद) फ़रमाया कि क्या तुमने इक़रार किया और लिया इस (मज़मून) पर मेरा अ़हद (और हुक्म क़ुबूल किया)? वे बोले हमने इक़रार किया। इरशाद फ़रमाया- तो (अपने इस इक़रार पर) गवाह भी रहना (क्योंकि गवाही से फिरने को हर शख़्स हर हाल में बुरा समझता है, बख़िलाफ़ इक़रार करने वाले के कि उसकी ग़र्ज़ होती है इसलिये उसका फिर जाना कुछ बड़ी बात नहीं होती। इसी तरह तुम सिर्फ़ इक़रारी नहीं बल्कि गवाह की तरह इस पर क़ायम रहना) और मैं (भी) इस (मज़मून) पर तुम्हारे साथ गवाहों में से (यानी वाक़िए की इत्तिला और इल्म रखने वाला) हूँ। सो जो शख़्स (उम्मतों में से) मुँह मोड़ेगा (यानी उल्लंघन करेगा, उस अ़हद से) बाद इसके (कि अम्बिया तक से अ़हद लिया गया और उम्मतें तो किस गिनती में हैं) तो ऐसे ही लोग (पूरी) नाफ़रमानी करने वाले (यानी काफ़िर) हैं। क्या (दीने इस्लाम से जिसका अ़हद लिया गया है नाफ़रमानी व ख़िलाफ़वर्ज़ी करके) फिर (उस) अल्लाह के दीन के सिवा और किसी तरीक़े को चाहते हैं, हालाँकि अल्लाह तआ़ला (की यह शान है कि उन) के (हुक्म के) सामने सब सर झुकाये हुए हैं जितने आसमानों में (हैं) और (जितने) ज़मीन में हैं (बाज़े) ख़ुशी (और इख़्तियार) से और (बाज़े) बेइख़्तियारी से, और (अव्वल तो इस बड़ाई व शान ही का तक़ाज़ा यह था कि कोई उनके अ़हद की मुख़ालफ़त न करे, ख़ासकर जबकि आईन्दा सज़ा का भी डर हो, चुनाँचे) सब अल्लाह ही की तरफ़ (क़ियामत के दिन) लौटाए (भी) जाएँगे (और उस वक़्त मुख़ालिफ़ों को सज़ा होगी)।

(ऐ मुहम्मद सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम!) आप (दीने इस्लाम के इज़हार के लिये ख़ुलासे के तौर पर यह) फ़रमा दीजिए कि हम ईमान रखते हैं अल्लाह पर और उस (हुक्म) पर जो हमारे पास भेजा गया, और उस (हुक्म) पर जो (हज़रत) इब्राहीम व इस्माईल व इस्हाक़ व याक़ूब

(अ़लैहिमुस्सलाम) और याक़ूब की औलाद (में जो नबी गुज़रे हैं उन) की तरफ़ भेजा गया, और उस (हुक्म व मोजिज़े) पर भी जो (हज़रत) मूसा और ईसा (अ़लैहिमस्सलाम) और दूसरे नबियों को दिया गया उनके परवर्दिगार की तरफ़ से, (सो हम इन सब पर ईमान रखते हैं, और ईमान भी) इस अन्दाज़ से कि हम इन (हज़रात) में से किसी एक में भी (ईमान लाने के मामले में) फ़र्क़ (और भेदभाव) नहीं करते (कि किसी पर ईमान रखें और किसी पर न रखें) और हम तो अल्लाह ही के फ़रमाँबरदार हैं (उसने ही दीन हमको बतलाया, हमने इख़्तियार कर लिया)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

अल्लाह तआ़ला के तीन अ़हद

अल्लाह तआ़ला ने अपने बन्दों से तीन तरह के अ़हद (इक़रार) लिये हैं:

एक का ज़िक्र सूरः आराफ़ की आयत नम्बर 172 में इस तरह है:

اَلَسْتُ بِرَبِّكُمْ (۷:۱۷۲)

'क्या मैं तुम्हारा रब नहीं हूँ'। इस अ़हद का मक़सद यह था कि तमाम इनसान ख़ुदा की हस्ती और उसके रब होने पर एतिक़ाद रखें, क्योंकि मज़हब की सारी इमारत इसी बुनियादी पत्थर पर है, जब तक यह एतिक़ाद न हो मज़हबी मैदान में अ़क़्ल व विचार की रहनुमाई कुछ नफ़ा नहीं पहुँचा सकती। इसकी अधिक तफ़सील इन्शा-अल्लाह अपनी जगह पर आयेगी।

दूसरे अ़हद का ज़िक्र सूरः आले इमरान की आयत 187 में है:

وَاِذْ اَخَذَ اللّٰهُ مِيْثَاقَ الَّذِيْنَ اُوْتُوا الْكِتٰبَ لَتُبَيِّنُنَّهٗ لِلنَّاسِ وَلَا تَكْتُمُوْنَهٗ......الخ (۳:۱۸۷)

यह अ़हद सिर्फ़ अहले किताब (यहूदियों व ईसाईयों) के उलेमा से लिया गया था कि वे हक़ को न छुपायें, बल्कि साफ़ और वाज़ेह तौर पर बयान करें।

तीसरे अ़हद का बयान इस आयत (यानी जिसकी तफ़सीर बयान हो रही है) में है:

وَاِذْ اَخَذَ اللّٰهُ مِيْثَاقَ النَّبِيّٖنَ لَمَآ اٰتَيْتُكُمْ مِّنْ كِتٰبٍ وَّ حِكْمَةٍ......

इसकी तफ़सील आगे आ रही है। (तफ़सीरे अहमदी)

'मीसाक़' से क्या मुराद है और यह कहाँ हुआ?

मीसाक़ (अ़हद व इक़रार) कहाँ हुआ? या तो रूहों के आ़लम में हुआ या दुनिया में वही के ज़रिये हुआ, दोनों की गुंजाईश है। (बयानुल-क़ुरआन)

मीसाक़ क्या है? इसकी वज़ाहत तो क़ुरआन ने कर दी है लेकिन यह मीसाक़ किस चीज़ के बारे में लिया गया है? इसमें क़ौल भिन्न हैं- हज़रत अ़ली और हज़रत इब्ने अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हुमा फ़रमाते हैं कि इससे मुराद अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम हैं, यानी अल्लाह तआ़ला ने यह अ़हद तमाम अम्बिया से सिर्फ़ मुहम्मद सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के बारे में लिया था कि

अगर वे खुद उनका ज़माना पायें तो उन पर ईमान लायें और उनकी ताईद व मदद करें और अपनी-अपनी उम्मतों को भी यही हिदायत कर जायें।

हज़रत ताऊस, हसन बसरी और क़तादा रहमतुल्लाहि अ़लैहिम फ़रमाते हैं कि यह मीसाक़ (अ़हद व इक़रार) अम्बिया से इसलिये लिया गया था कि वे आपस में एक दूसरे की ताईद व मदद करें। (तफ़सीर इब्ने कसीर)

इस दूसरे क़ौल की ताईद अल्लाह तआ़ला के इस क़ौल से भी की जा सकती है:

وَاِذْ اَخَذْنَا مِنَ النَّبِيّٖنَ مِيْثَاقَهُمْ وَمِنْكَ وَمِنْ نُّوْحٍ وَّاِبْرٰهِيْمَ وَمُوْسٰى وَعِيْسَى ابْنِ مَرْيَمَ وَاَخَذْنَا مِنْهُمْ مِّيْثَاقًا غَلِيْظًا ۞ (۷:۳۳)

(सूरः अहज़ाब आयत 7) क्योंकि यह अ़हद एक दूसरे की ताईद व तस्दीक़ के लिये लिया गया था। (तफ़सीरे अहमदी)

दर हक़ीक़त उक्त दोनों तफ़सीरों में कोई टकराव नहीं है, इसलिये दोनों ही मुराद ली जा सकती हैं। (तफ़सीर इब्ने कसीर)

तमाम अम्बिया से ईमान के मुतालबे का फ़ायदा

बज़ाहिर यहाँ यह शुब्हा हो सकता है कि अल्लाह तआ़ला तो अ़लीम व ख़बीर हैं, उनको अच्छी तरह मालूम है कि मुहम्मद सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम किसी नबी की मौजूदगी में तशरीफ़ नहीं लायेंगे तो फिर अम्बिया के ईमान लाने का क्या फ़ायदा?

ज़रा ग़ौर किया जाये तो फ़ायदा बिल्कुल ज़ाहिर मालूम होगा कि जब वे अल्लाह तआ़ला के इरशाद पर मुहम्मद सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की ज़ात व सिफ़ात पर ईमान क़ुबूल करने का पुख़्ता इरादा करेंगे तो उसी वक़्त से सवाब पायेंगे। (सावी, जलालैन के हवाले से)

हुज़ूरे अकरम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की नुबुव्वते आ़म्मा

وَاِذْ اَخَذَ اللّٰهُ مِيْثَاقَ النَّبِيّٖنَ............ الخ

'और जब लिया अ़हद अल्लाह ने नबियों से........' इन आयतों में इस बात की वज़ाहत की गई है कि अल्लाह तआ़ला ने तमाम अम्बिया से यह पुख़्ता अ़हद लिया कि जब तुम में से किसी नबी के बाद दूसरा नबी आये जो यक़ीनन पहले अम्बिया और उनकी किताबों की तस्दीक़ करने वाला होगा, तो पहले नबी के लिये ज़रूरी है कि पिछले नबी की सच्चाई और नुबुव्वत पर ईमान खुद भी लाये और दूसरों को भी इसकी हिदायत करे। क़ुरआन के इस कुल्ली क़ायदे से रोज़े रोशन की तरह स्पष्ट हो जाता है कि अल्लाह तआ़ला ने मुहम्मद सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के बारे में भी इसी तरह का अ़हद अम्बिया से लिया होगा, जैसा कि अ़ल्लामा सबुकी रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने अपने रिसाले "अत्तअ़ज़ीम वलमिन्नति फ़ी लतुअ्मिनन्-न बिही व लतन्सुरुन्नहू" में फ़रमाते हैं कि "आयत में रसूल से मुराद मुहम्मद सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम हैं और कोई नबी

भी ऐसा नहीं गुज़रा जिससे अल्लाह तआ़ला ने आपकी करीम ज़ात के बारे में ताईद व मदद और आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम पर ईमान लाने का अ़हद न लिया हो। और कोई भी ऐसा नबी नहीं गुज़रा जिसने अपनी उम्मत को आप पर ईमान लाने और ताईद व मदद की वसीयत न की हो, और अगर हुज़ूरे अकरम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की बेसत (नबी बनकर तशरीफ़ लाना) अम्बिया के ज़माने में होती तो उन सब के नबी आप ही होते और वे तमाम अम्बिया आपकी उम्मत में शुमार होते।

इससे मालूम हुआ कि आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की शान महज़ उम्मत के नबी ही की नहीं है, बल्कि नबियों के नबी की भी है। चुनाँचे एक हदीस में आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ख़ुद इरशाद फ़रमाते हैं कि अगर आज मूसा अ़लैहिस्सलाम भी ज़िन्दा होते तो उनको भी मेरी इत्तिबा (पैरवी) के अ़लावा कोई चारा-ए-कार न था।

और एक दूसरी जगह इरशाद फ़रमाया कि जब ईसा अ़लैहिस्सलाम नाज़िल होंगे तो वह भी क़ुरआने करीम और तुम्हारे नबी ही के अहकाम पर अ़मल करेंगे। (तफ़सीर इब्ने कसीर)

इससे मालूम हुआ कि आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की नुबुव्वत ''आ़म्मा और शामिला'' है और आपकी शरीअ़त में पहली तमाम शरीअ़तें समाई हुई हैं। इस बयान से आपके इस इरशाद का सही मफ़्हूम व मतलब भी निखर कर सामने आ जाता है:

بُعِثْتُ اِلَى النَّاسِ كَآفَّةً.

इस हदीस का मतलब यह समझना कि आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की नुबुव्वत आपके ज़माने से क़ियामत तक के लिये है, सही नहीं, बल्कि आपकी नुबुव्वत का ज़माना इतना वसीअ़ (फैला हुआ) है कि आदम अ़लैहिस्सलाम की नुबुव्वत से पहले शुरू होता है, जैसा कि हदीस में आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम फ़रमाते हैं कि:

كُنْتُ نَبِيًّا وَّ اٰدَمُ بَيْنَ الرُّوْحِ وَالْجَسَدِ

'मैं उस वक़्त भी नबी था जब आदम अ़लैहिस्सलाम के जिस्म में अभी रूह भी नहीं पड़ी थी।' मेहशर में शफ़ाअ़ते कुबरा के लिये आगे बढ़ना और तमाम इनसानों का आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के झण्डे के नीचे जमा होना और मेराज की रात में बैतुल-मुक़द्दस के अन्दर तमाम अम्बिया की इमामत कराना हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की इसी उमूमी सरदारी और बुलन्द मर्तबे की निशानियों में से है।

وَمَنْ يَّبْتَغِ غَيْرَ الْاِسْلَامِ دِيْنًا فَلَنْ يُّقْبَلَ مِنْهُ ۚ وَهُوَ فِى الْاٰخِرَةِ مِنَ الْخٰسِرِيْنَ ۝

व मंय्यब्तगि ग़ैरल्-इस्लामि दीनन् फ़-लंय्युक़्ब-ल मिन्हु व हु-व फ़िल्-आख़ि-रति मिनल् ख़ासिरीन (85)	और जो कोई चाहे दीन इस्लाम के अ़लावा और कोई दीन सो उससे हरगिज़ क़ुबूल न होगा, और वह आख़िरत में ख़राब है। (85)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

और जो शख़्स इस्लाम के सिवा किसी दूसरे दीन को तलब करेगा तो वह (दीन) उस (शख़्स) से (ख़ुदा तआ़ला के नज़दीक) मक़बूल व (मन्ज़ूर) न होगा, और (वह शख़्स) आख़िरत में तबाहकारों में से होगा (यानी निजात न पायेगा)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

इस्लाम की परिभाषा और उसका निजात का मदार होना

"इस्लाम" के लफ़्ज़ी मायने इताअ़त व फ़रमाँबरदारी के हैं और इस्तिलाह में ख़ास उस दीन की इताअ़त का नाम "इस्लाम" है जो अल्लाह तआ़ला ने अपने पैग़म्बरों के ज़रिये इनसानों की हिदायत के लिये भेजा है, क्योंकि दीन की बुनियादी बातें तमाम नबियों की शरीअ़तों में एक ही हैं।

फिर लफ़्ज़ "इस्लाम" कभी तो इस आ़म मफ़्हूम (मायनों) के लिये इस्तेमाल किया जाता है और कभी सिर्फ़ उस आख़िरी शरीअ़त के लिये बोला जाता है जो ख़ातिमुल-अम्बिया मुहम्मद मुस्तफ़ा सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम पर नाज़िल हुई, क़ुरआने करीम में ये दोनों तरह के बयानात मौजूद हैं। पहले नबियों का अपने आपको मुस्लिम कहना और अपनी उम्मत को उम्मते मुस्लिमा कहना भी क़ुरआनी नुसूस (स्पष्ट अहकाम) से साबित है, और इसका ख़ातिमुल-अम्बिया की उम्मत के साथ मख़्सूस होना भी ज़िक्र हुआ है जैसा कि फ़रमायाः

هُوَ سَمّٰكُمُ الْمُسْلِمِيْنَ. مِنْ قَبْلُ وَفِيْ هٰذَا..... (٧٨:٢٢)

(सूरः हज आयत 78) ख़ुलासा यह कि हर दीने इलाही जो किसी नबी व रसूल के ज़रिये दुनिया में आया उसको भी "इस्लाम" कहा जाता है और उम्मते मुहम्मदिया के लिये यह ख़ास लक़ब (उपनाम) के तौर पर इस्तेमाल होता है। अब सवाल यह है कि क़ुरआने करीम में इस जगह "इस्लाम" के लफ़्ज़ से कौनसा मफ़्हूम (मायने और मतलब) मुराद है।

सही बात यह है कि दोनों में से जो भी मुराद लिया जाये नतीजे के एतिबार से कोई ख़ास फ़र्क़ नहीं पड़ता, क्योंकि पहले अम्बिया के दीन को जो इस्लाम का नाम दिया गया है वह एक सीमित तब्क़े और मख़्सूस ज़माने के लिये था, उस वक़्त का इस्लाम वही था, उस तब्क़े और उम्मत के अ़लावा दूसरों के लिये उस वक़्त भी वह इस्लाम मोतबर न था, और जब उस नबी के बाद और कोई नबी भेज दिया गया तो अब वह इस्लाम नहीं रहा, उस वक़्त का इस्लाम वह होगा जो नया आने वाला नबी पेश करेगा, जिसमें यह तो ज़ाहिर है कि कोई उसूली (बुनियादी और अ़क़ीदे का) इख़्तिलाफ़ नहीं होगा मगर ऊपर के अहकाम मुख़्तलिफ़ (अलग और भिन्न) हो सकते हैं, और ख़ातिमुल-अम्बिया सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को जो इस्लाम दिया गया वह

नाक़ाबिले नस्ख़, हमेशा के लिये क़ियामत तक बाक़ी रहेगा, और मज़कूरा क़ायदे के मुताबिक़ आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की बेसत (नबी बनकर तशरीफ़ लाने) के बाद पिछले तमाम दीन मन्सूख़ (निरस्त और ख़त्म) हो गये, अब वह इस्लाम नहीं बल्कि इस्लाम सिर्फ़ वह दीन है जो हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के वास्ते से पहुँचा, इसी लिये मोतबर सही हदीसों में है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया- आज अगर हज़रत मूसा अ़लैहिस्सलाम ज़िन्दा होते तो इस वक़्त उन पर भी मेरा ही इत्तिबा (पैरवी करना) लाज़िम होता। और एक हदीस में इरशाद फ़रमाया कि क़ियामत के क़रीब हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम नाज़िल होंगे तो बावजूद इसके कि नुबुव्वत की सिफ़त और ओ़हदा रखते होंगे, उस वक़्त वह भी आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ही की शरीअ़त का इत्तिबा करेंगे।

इसलिये इस जगह चाहे इस्लाम का मफ़्हूम (मतलब) आ़म मुराद लें या मख़्सूस उम्मते मुहम्मदिया का दीन मुराद लें, नतीजा दोनों का एक ही है कि ख़ातिमुल-अम्बिया सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की बेसत के बाद सिर्फ़ वही दीन इस्लाम कहलायेगा जो आपके ज़रिये दुनिया को पहुँचा है, वही तमाम इनसानों के लिये निजात का मदार है।

उक्त आयत में इसी के बारे में इरशाद फ़रमाया गया कि जो कोई इस्लाम के सिवा कोई दूसरा दीन इख़्तियार करे (अपनाये) वह अल्लाह के नज़दीक मक़बूल नहीं, इस मज़मून की अधिक तफ़सील इसी सूरत की आयत नम्बर 19:

إِنَّ الدِّيْنَ عِنْدَ اللّٰهِ الْإِسْلَامُ

के तहत गुज़र चुकी है, वहाँ देख सकते हैं।

كَيْفَ يَهْدِى اللّٰهُ قَوْمًا كَفَرُوْا بَعْدَ إِيْمَانِهِمْ وَشَهِدُوْٓا اَنَّ الرَّسُوْلَ حَقٌّ وَّ جَآءَهُمُ الْبَيِّنٰتُ ۭ وَاللّٰهُ لَا يَهْدِى الْقَوْمَ الظّٰلِمِيْنَ ۝ اُولٰٓئِكَ جَزَآؤُهُمْ اَنَّ عَلَيْهِمْ لَعْنَةَ اللّٰهِ وَالْمَلٰٓئِكَةِ وَالنَّاسِ اَجْمَعِيْنَ ۝ خٰلِدِيْنَ فِيْهَا ۚ لَا يُخَفَّفُ عَنْهُمُ الْعَذَابُ وَلَا هُمْ يُنْظَرُوْنَ ۝ اِلَّا الَّذِيْنَ تَابُوْا مِنْۢ بَعْدِ ذٰلِكَ وَاَصْلَحُوْا ۣ فَاِنَّ اللّٰهَ غَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ ۝ اِنَّ الَّذِيْنَ كَفَرُوْا بَعْدَ اِيْمَانِهِمْ ثُمَّ ازْدَادُوْا كُفْرًا لَّنْ تُقْبَلَ تَوْبَتُهُمْ ۚ وَاُولٰٓئِكَ هُمُ الضَّآلُّوْنَ ۝ اِنَّ الَّذِيْنَ كَفَرُوْا وَمَاتُوْا وَهُمْ كُفَّارٌ فَلَنْ يُّقْبَلَ مِنْ اَحَدِهِمْ مِّلْءُ الْاَرْضِ ذَهَبًا وَّلَوِ افْتَدٰى بِهٖ ۭ اُولٰٓئِكَ لَهُمْ عَذَابٌ اَلِيْمٌ وَّمَا لَهُمْ مِّنْ نّٰصِرِيْنَ ۝

ع 9 11 / 17

कै-फ़ यह्दिल्लाहु क़ौमन् क-फ़रू बअ्-द ईमानिहिम् व शहिदू अन्नर्रसू-ल हक़्क़ुंव्-व जा-अहुमुल्-बय्यिनातु, वल्लाहु ला यह्दिल्	क्योंकर राह देगा अल्लाह ऐसे लोगों को कि काफ़िर हो गये ईमान लाकर और गवाही देकर कि बेशक रसूल सच्चा है और आयें उनके पास निशानियाँ लेकर,

क़ौमज़्ज़ालिमीन (86) उलाइ-क जज़ाउहुम् अन्-न अ़लैहिम् लअ़्नतल्लाहि वल्मलाइ-कति वन्नासि अज्मअ़ीन (87) ख़ालिदी-न फ़ीहा ला युख़फ़्फ़फ़ु अ़न्हुमुल्-अ़ज़ाबु व ला हुम् युन्ज़रून (88) इल्लल्लज़ी-न ताबू मिम्-बअ़्दि ज़ालि-क व अस्लहू फ़-इन्नल्ला-ह ग़फ़ूरुर्रहीम (89) इन्नल्लज़ी-न क-फ़रू बअ़्-द ईमानिहिम् सुम्मज़्दादू कुफ़्रल्-लन् तुक़्ब-ल तौबतुहुम् व उलाइ-क हुमुज़्ज़ाल्लून (90) इन्नल्लज़ी-न क-फ़रू व मातू व हुम् कुफ़्फ़ारुन् फ़-लंय्युक़्ब-ल मिन् अ-हदिहिम् मिल्उल्-अर्ज़ि ज़-हबंव्-व लविफ़्तदा बिही, उलाइ-क लहुम् अ़ज़ाबुन् अलीमुंव्-व मा लहुम् मिन्नासिरीन (91) ✿	और अल्लाह राह नहीं देता ज़ालिम लोगों को। (86) ऐसे लोगों की सज़ा यह है कि उनपर लानत है अल्लाह की और फ़रिश्तों की और लोगों की सब की। (87) हमेशा रहेंगे उसमें, न हल्का होगा उनसे अ़ज़ाब और न उनको फ़ुरसत मिले। (88) मगर जिन्होंने तौबा की उसके बाद और नेक काम किये तो बेशक अल्लाह ग़फ़ूरुर्रहीम (माफ़ करने और रहम करने वाला) है। (89) जो लोग इनकारी हुए मानकर, फिर बढ़ते रहे इनकार में, हरगिज़ क़ुबूल न होगी उनकी तौबा, वही हैं गुमराह। (90) जो लोग काफ़िर हुए और मर गये काफ़िर ही तो हरगिज़ क़ुबूल न होगा किसी ऐसे से ज़मीन भरकर सोना अगरचे बदला देवे इस क़द्र सोना, उनके लिये दर्दनाक अ़ज़ाब है, और कोई नहीं उनका मददगार। (91) ✿

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

(पहले उन मुर्तद लोगों का बयान है जो कुफ़्र पर क़ायम रहकर उसको हिदायत समझते रहे। चूँकि उनका एतिक़ाद या दावा यह था कि ख़ुदा तआ़ला ने हमको अब हिदायत फ़रमाई लिहाज़ा उनकी निंदा और बुराई में इसकी नफ़ी भी फ़रमाते हैं कि भला) अल्लाह तआ़ला ऐसे लोगों को कैसे हिदायत करेंगे जो काफ़िर हो गये अपने ईमान लाने के बाद (दिल से), और अपने इस इक़रार के बाद (ज़बान से) कि रसूल (सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम रिसालत के दावे में) सच्चे हैं, और इसके बाद कि उनको खुली दलीलें (इस्लाम के हक़ होने की) पहुँच चुकी थीं, और अल्लाह

तआला ऐसे बेढंगे लोगों को हिदायत नहीं किया करते। (यह मतलब नहीं कि ऐसों को कभी इस्लाम की तौफ़ीक़ नहीं देते, बल्कि मक़सूद उनके इसी उपरोक्त दावे की नफ़ी करना है कि वे कहते थे कि हमने जो इस्लाम छोड़कर यह तरीक़ा इख़्तियार किया है हमको ख़ुदा ने हिदायत दी है। ख़ुलासा नफ़ी का यह हुआ कि जो शख़्स कुफ़्र का बेढंगा रास्ता इख़्तियार करे वह अल्लाह की हिदायत पर नहीं, इसलिए वह यह नहीं कह सकता कि मुझको ख़ुदा ने हिदायत दी है, क्योंकि हिदायत का यह रास्ता नहीं है, बल्कि ऐसे लोग यक़ीनन गुमराह हैं और) ऐसे लोगों की सज़ा यह है कि उन पर अल्लाह तआला की भी लानत होती है और फ़रिश्तों की भी और (बहुत से) आदमियों की भी, (ग़र्ज़ कि) सब की। (और फिर वह लानत भी ऐसे तौर पर रहेगी कि) वे हमेशा-हमेशा को उसी (लानत) में रहेंगे, (और चूँकि उस लानत का असर जहन्नम है तो हासिल यह हुआ कि वे जहन्नम में हमेशा-हमेशा रहेंगे और) उन पर से अ़ज़ाब हल्का भी न होने पायेगा और न (दाख़िल होने से पहले) उनको (किसी मियाद तक) मोहलत ही दी जाएगी।

(आगे उनका बयान है जो फिर मुसलमान हो गये, उनको इस हुक्म से अलग फ़रमाते हैं, यानी) हाँ! मगर जो लोग तौबा कर लें उस (कुफ़्र) के बाद (यानी मुसलमान हो जायें) और अपने (दिल) को (भी) संवारें (यानी मुनाफ़िक़ाना तौर पर सिर्फ़ ज़बान से तौबा काफ़ी नहीं), सो बेशक (ऐसों के लिये) ख़ुदा तआला बख़्श देने वाले, रहमत करने वाले हैं। बेशक जो लोग काफ़िर हुए अपने ईमान लाने के बाद, फिर बढ़ते रहे कुफ़्र में (यानी कुफ़्र पर ही जमे रहे ईमान नहीं लाये) उनकी तौबा (जो कि और दूसरे गुनाहों से करते हैं) हरगिज़ मक़बूल न होगी, (क्योंकि गुनाहों से तौबा भी अहकाम में इताअ़त व फ़रमाँबरदारी है, और अहकाम में इताअ़त के मक़बूल होने की शर्त ईमान है) और ऐसे लोग (उस तौबा के बाद भी बदस्तूर) पक्के गुमराह हैं।

बेशक जो लोग काफ़िर हुए और वे मर भी गए कुफ़्र ही की हालत में, सो उनमें से किसी का (कफ़्फ़ारे यानी बदले के तौर पर) ज़मीन भर "यानी ज़मीन के बराबर" सोना भी न लिया जायेगा अगरचे वह मुआवज़े में उसको देना भी चाहे (और बिना दिये तो कौन पूछता है), उन लोगों को दर्दनाक सज़ा होगी और कोई उनके हामी (मददगार) भी न होंगे।

मआरिफ़ व मसाईल

एक शुब्हे का जवाब

كَيْفَ يَهْدِى اللّٰهُ قَوْمًا كَفَرُوْا...... الخ

'क्योंकर राह देगा अल्लाह ऐसे लोगों को कि काफ़िर हो गये ईमान लाकर......' इस आयत से बज़ाहिर यह शुब्हा होता है कि किसी को मुर्तद होने (दीन इस्लाम से फिर जाने) के बाद हिदायत नसीब नहीं होती, हालाँकि वाक़िआ इसके ख़िलाफ़ है, क्योंकि बहुत से लोग मुर्तद होने के बाद ईमान क़ुबूल करके हिदायत पाने वाले बन जाते हैं।

जवाब यह है कि यहाँ जो हिदायत की नफ़ी की गई है उसकी मिसाल हमारे मुहावरे में ऐसी

है जैसे किसी बदमाश को कोई हाकिम अपने हाथ से सज़ा दे और वह कहे कि मुझको हाकिम ने अपने हाथ से सम्मान दिया है, और इसके जवाब में कहा जाये कि ऐसे बदमाश को हम ख़ुसूसियत और सम्मान क्यों देने लगे, यानी यह कोई विशेषता और ख़ुसूसियत की बात ही नहीं, और यह मतलब नहीं होता कि ऐसा शख़्स किसी तरह भी ख़ुसूसियत व सम्मान वाला नहीं हो सकता चाहे वह अच्छा और शरीफ़ आदमी ही बन जाये। (तफ़सीर बयानुल-क़ुरआन)

वज़ाहतः- इसको दूसरे लफ़्ज़ों में यूँ भी कहा जा सकता है कि अल्लाह तआ़ला ने किसी को ईमान व इस्लाम की नेमत दी और उस शख़्स ने इस अ़ज़ीम नेमत की नाशुक्री करते हुए इसको छोड़कर फिर कुफ़्र इख़्तियार कर लिया। तो भला ऐसे शख़्स से वह हिदायत व नेमत वाबस्ता न रहेगी, उससे चली जायेगी। हाँ अगर वह अपनी ग़लती सुधार ले, तौबा करे और सच्चे दिल से फिर इस्लाम के दायरे में आ जाये तो अल्लाह फिर उसको हिदायत से नवाज़ देते हैं। मगर बेक़द्री के साथ यह नेमत बाक़ी नहीं रह सकती। वल्लाहु आलम।

मुहम्मद इमरान क़ासमी बिज्ञानवी

चौथा पारा

لَنْ تَنَالُوا الْبِرَّ حَتّٰى تُنْفِقُوْا مِمَّا تُحِبُّوْنَ ۥ وَمَا تُنْفِقُوْا مِنْ شَيْءٍ فَاِنَّ اللّٰهَ بِهٖ عَلِيْمٌ ۝

लन् तनालुल्बिर्-र हत्ता तुन्फ़िक़ू मिम्मा तुहिब्बू-न, व मा तुन्फ़िक़ू मिन् शैइन् फ़-इन्नल्ला-ह बिही अ़लीम (92)	हरगिज़ न हासिल कर सकोगे नेकी में कमाल जब तक न ख़र्च करो अपनी प्यारी चीज़ से कुछ, और जो चीज़ ख़र्च करोगे सो अल्लाह को मालूम है। (92)

इन आयतों के मज़मून का पीछे से जोड़

इससे पहली आयत में काफ़िरों व इनकारियों के सदक़ात व ख़ैरात का अल्लाह तआ़ला के नज़दीक ग़ैर-मक़बूल (अस्वीकारीय) होना बयान किया गया था, इस आयत में मोमिनों को मक़बूल होने वाले सदक़े और उसके आदाब बतलाये गये हैं। इस आयत के अलफ़ाज़ में सबसे पहले लफ़्ज़ **'बिर्र'** के मायने और इसकी हक़ीक़त को समझिये, ताकि आयत का पूरा मफ़्हूम सही तौर पर ज़ेहन में उतर जाये।

लफ़्ज़ बिर्र के लफ़्ज़ी और वास्तविक मायने हैं किसी शख़्स के हक़ की पूरी अदायेगी और उससे पूरी तरह भार-मुक्ति। यह एहसान और अच्छे सुलूक के मायने में भी आता है:

बर्र और बार्र उस शख़्स के लिये इस्तेमाल होता है जो अपने ज़िम्मे आ़यद होने वाले हुक़ूक़ को पूरी तरह अदा कर दे। क़ुरआने करीम में "बर्रम् बिवालिदती" और "बर्रम् बिवालिदैहि" इसी मायने में इस्तेमाल हुआ है। उन हज़रात के लिये यह लफ़्ज़ इस्तेमाल किया गया है जो

अपने माँ-बाप के हुक़ूक़ को मुकम्मल तौर पर अदा करने वाले थे।

इसी लफ़्ज़ बर्र की जमा (बहुवचन) **अबरार** है, जो क़ुरआने करीम में अधिकता से इस्तेमाल हुई है। इरशाद है:

إِنَّ الْأَبْرَارَ يَشْرَبُونَ مِن كَأْسٍ كَانَ مِزَاجُهَا كَافُورًا (٧٦:٥)

और एक जगह इरशाद है:

إِنَّ الْأَبْرَارَ لَفِي نَعِيمٍ۝ عَلَى الْأَرَائِكِ يَنظُرُونَ۝ (٨٣:٢٢،٢٣)

और एक जगह इरशाद है:

إِنَّ الْأَبْرَارَ لَفِي نَعِيمٍ۝ وَإِنَّ الْفُجَّارَ لَفِي جَحِيمٍ۝ (٨٢:١٣،١٤)

इस आख़िरी आयत से यह भी मालूम हुआ कि "बर्र" का मुक़ाबिल और ज़िद (विपरीत) "फ़ुजूर" है।

इमाम बुख़ारी रहमतुल्लाहि अ़लैहि के **अदबुल-मुफ़रद** में और **इब्ने माजा** और **मुस्नद अहमद** में हज़रत सिद्दीक़े अकबर रज़ियल्लाहु अ़न्हु से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि सच बोलने को लाज़िम पकड़ो, क्योंकि "सिद्क़" (सच्चाई) "बर्र" का साथी है, और वे दोनों जन्नत में हैं। और झूठ से बचो, क्योंकि वह फ़ुजूर का साथी है, और ये दोनों दोज़ख़ में हैं।

और सूरः ब-क़रह की आयत में मज़कूर है कि:

لَيْسَ الْبِرَّ أَن تُوَلُّوا وُجُوهَكُمْ قِبَلَ الْمَشْرِقِ وَالْمَغْرِبِ وَلَٰكِنَّ الْبِرَّ مَنْ آمَنَ بِاللَّهِ وَالْيَوْمِ الْآخِرِ. (٢:١٧٧)

इस आयत में नेक आमाल की एक फ़ेहरिस्त देकर उन सब को "बिर्र" फ़रमाया गया है। उक्त आयत से मालूम हुआ कि नेक आमाल में सबसे अफ़ज़ल नेकी यह है कि अपनी महबूब चीज़ अल्लाह की राह में ख़र्च की जाये। उक्त आयत में इरशाद है कि तुम हरगिज़ "बिर्र" (नेकी) को हासिल नहीं कर सकते जब तक अपनी प्यारी चीज़ों में से कुछ ख़र्च न करो। तो मायने यह हुए कि अल्लाह तआ़ला के हक़ की मुकम्मल अदायेगी और उससे पूरी भार-मुक्ति उस वक़्त तक नहीं हो सकती जब तक अपनी महबूब और प्यारी चीज़ों से अल्लाह तआ़ला की राह में ख़र्च न करें, इसी मुकम्मल अदायेगी को ख़ैरे-कामिल या नेकी में कमाल या सवाबे-अ़ज़ीम से तर्जुमा किया गया है, और मुराद यह है कि **अबरार** (नेक लोगों) की सफ़ में दाख़िल होना इस पर निर्भर है कि अपनी महबूब चीज़ें अल्लाह की राह में क़ुरबान की जायें।

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

(ऐ मुसलमानों) तुम कामिल ख़ैर (यानी बड़े सवाब) को कभी न हासिल कर सकोगे यहाँ तक कि अपनी (बहुत) प्यारी चीज़ को (अल्लाह की राह में) ख़र्च न करोगे। और (यूँ) जो कुछ भी ख़र्च करोगे (चाहे ग़ैर-महबूब चीज़ हो) अल्लाह तआ़ला उसको ख़ूब जानते हैं। (आ़म सवाब

उस पर भी दे देंगे, लेकिन पूरा और बड़ा सवाब हासिल करने का वही तरीक़ा है)।

मआरिफ़ व मसाईल

उक्त आयत और सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम का जज़्बा-ए-अ़मल

सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम जो क़ुरआनी अहकाम के सबसे पहले मुख़ातब और रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के अप्रत्यक्ष रूप से शागिर्द और क़ुरआनी अहकाम की तामील के आ़शिक़ थे, इस आयत के नाज़िल होने पर एक-एक ने अपनी महबूब (प्यारी) चीज़ों पर नज़र डाली, और उनको अल्लाह की राह में ख़र्च करने के लिये आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के सामने दरख़्वास्तें होने लगीं। मदीना के अन्सार में सबसे ज़्यादा मालदार हज़रत अबू तलहा रज़ियल्लाहु अ़न्हु थे, मस्जिदे नबवी के बिल्कुल सामने और क़रीब ही उनका बाग़ था, जिसमें एक कुआँ **बीरे-हा** के नाम से नामित था। अब उस बाग़ की जगह तो **बाबे मजीदी** के सामने **इस्तिफ़ा मन्ज़िल** के नाम से एक इमारत बनी हुई है जिसमें मदीना की ज़ियारत करने वाले क़ियाम करते हैं, मगर उसके उत्तर पूरब में के गोशे में यह **बीरे-हा** उसी नाम से अब तक मौजूद है। रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम कभी-कभी उस बाग़ में तशरीफ़ ले जाते और बीरे-हा का पानी पीते थे। आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को उस कुएँ का पानी पसन्द था, हज़रत तलहा रज़ियल्लाहु अ़न्हु का यह बाग़ बड़ा क़ीमती, फलदायक और उनको अपनी जायदाद में सबसे ज़्यादा महबूब था। इस आयत के नाज़िल होने पर वह हज़रत रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की ख़िदमत में हाज़िर हुए और अ़र्ज़ किया कि मेरे सारे मालों में बीरे-हा मुझे सबसे ज़्यादा महबूब है, मैं उसको अल्लाह तआ़ला की राह में ख़र्च करना चाहता हूँ। आप जिस काम में पसन्द फ़रमायें उसको ख़र्च फ़रमा दें। आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि वह तो अ़ज़ीमुश्शान मुनाफ़े का बाग़ है, मैं मुनासिब यह समझता हूँ कि उसको आप अपने रिश्तेदारों में तक़सीम कर दें। हज़रत अबू तलहा रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के इस मश्विरे को क़ुबूल फ़रमाकर अपने रिश्तेदारों और चचाज़ाद भाईयों में तक़सीम फ़रमा दिया। (यह हदीस बुख़ारी व मुस्लिम की है) इस हदीस से यह भी मालूम हुआ कि ख़ैरात सिर्फ़ वह नहीं जो आम फ़क़ीरों और मिस्कीनों पर ख़र्च की जाये, अपने अहल व अ़याल और अ़ज़ीज़ व रिश्तेदारों को देना भी बड़ी ख़ैरात और सवाब का सबब है।

हज़रत ज़ैद बिन हारिसा रज़ियल्लाहु अ़न्हु अपना एक घोड़ा लिये हुए हाज़िरे ख़िदमत हुए और अ़र्ज़ किया कि मुझे अपनी मिल्क में यह सबसे ज़्यादा महबूब है, मैं इसको अल्लाह की राह में ख़र्च करना चाहता हूँ। आपने उसको क़ुबूल फ़रमा लिया, लेकिन उनसे लेकर उन्हीं के बेटे उसामा रज़ियल्लाहु अ़न्हु को दे दिया। ज़ैद बिन हारिसा रज़ियल्लाहु अ़न्हु इस पर कुछ दुखी हुए

कि मेरा सदका मेरे ही घर में वापस आ गया, लेकिन आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने उनकी तसल्ली के लिये फ़रमाया कि अल्लाह तआ़ला ने तुम्हारा यह सदका क़ुबूल कर लिया है।

(तफ़सीरे मज़हरी, इब्ने जरीर व तबरी वग़ैरह के हवाले से)

हज़रत फ़ारूक़े आज़म रज़ियल्लाहु अ़न्हु के पास एक कनीज़ (बाँदी) सबसे ज़्यादा महबूब थी, आपने उसको अल्लाह के लिये आज़ाद कर दिया।

इसी तरह हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन उमर रज़ियल्लाहु अ़न्हु के पास एक कनीज़ थी जिससे वह मुहब्बत करते थे, उसको अल्लाह के लिये आज़ाद कर दिया।

ग़र्ज़ यह कि उक्त आयत का हासिल यह है कि अल्लाह के हक़ की मुकम्मल अदायेगी, पूरी भलाई और नेकी का कमाल तब ही हासिल हो सकता है जबकि आदमी अपनी महबूब चीज़ों में से कुछ अल्लाह की राह में ख़र्च करे। मज़कूरा आयत में चन्द मसाईल क़ाबिले ग़ौर और याद रखने के क़ाबिल हैं।

इस आयत में लफ़्ज़ बिर्र तमाम वाजिब और नफ़्ली सदक़ों को शामिल है

अव्वल यह कि इस आयत में अल्लाह की राह में ख़र्च करने की तरग़ीब (प्रेरणा और शौक़ दिलाया) है। इससे मुराद कुछ हज़राते मुफ़स्सिरीन के नज़दीक वाजिब सदक़ात यानी ज़कात वग़ैरह हैं, और कुछ के नज़दीक नफ़्ली सदक़े हैं, लेकिन मुहक़्क़िक़ीन की बड़ी जमाअ़त ने इसके मफ़्हूम (मतलब और मायने) को वाजिब और नफ़्ली सदक़ात दोनों में आ़म क़रार दिया है, और ऊपर बयान हुए सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम के वाक़िआ़त इस पर शाहिद (गवाह और सुबूत) हैं कि उनके ये सदक़ात, नफ़्ली सदक़ात थे।

इसलिये आयत का मतलब यह हो गया कि अल्लाह की राह में जो सदक़ा भी अदा करो चाहे फ़र्ज़ ज़कात हो या कोई नफ़्ली सदक़ा व ख़ैरात, उन सब में मुकम्मल फ़ज़ीलत और सवाब तब है जबकि अपनी महबूब और प्यारी चीज़ को अल्लाह की राह में ख़र्च करो, यह नहीं कि सदक़े को तावान (जुर्माने) की तरह सर से टालने के लिये फ़ालतू, बेकार या ख़राब चीज़ों का चयन करो। क़ुरआने करीम की एक दूसरी आयत में इस मज़मून को और ज़्यादा खोलकर इस तरह बयान फ़रमाया गया है:

يَـٰٓأَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْٓا اَنْفِقُوْا مِنْ طَيِّبٰتِ مَا كَسَبْتُمْ وَمِمَّآ اَخْرَجْنَا لَكُمْ مِّنَ الْاَرْضِ وَلَا تَيَمَّمُوا الْخَبِيْثَ مِنْهُ تُنْفِقُوْنَ وَلَسْتُمْ بِاٰخِذِيْهِ اِلَّآ اَنْ تُغْمِضُوْا فِيْهِ. (٢:٢٦٨)

"यानी ऐ ईमान वालो! अपनी कमाई में से और जो कुछ हमने तुम्हारे लिये ज़मीन से निकाला है उसमें से उम्दा चीज़ों को छाँटकर उसमें से ख़र्च करो और रद्दी चीज़ की तरफ़ नीयत मत ले जाया करो कि उसमें से ख़र्च कर दो, हालाँकि ये चीज़ें अगर तुम्हारे हक़ के बदले में तुम्हें

दी जायें तो तुम हरगिज़ क़ुबूल न करोगे सिवाये इसके कि किसी वजह से आँख बचा जाओ।"

इसका हासिल यह हुआ कि ख़राब और बेकार चीज़ों को छाँट करके सदक़ा करना मक़बूल नहीं, बल्कि मक़बूल सदक़ा जिस पर मुकम्मल सवाब मिलता है वही है जो महबूब और प्यारी चीज़ों में से ख़र्च किया जाये।

सदक़ा करने में एतिदाल चाहिये

दूसरा मसला यह है कि आयत में लफ़्ज़ 'मिम्मा' से इशारा कर दिया गया है कि यह मक़सूद नहीं है कि जितनी चीज़ें अपने नज़दीक महबूब और प्यारी हैं उन सभी को अल्लाह की राह में ख़र्च कर दिया जाये, बल्कि मक़सद यह है कि जितना भी ख़र्च करना है उसमें अच्छी और प्यारी चीज़ देखकर ख़र्च करें तो मुकम्मल सवाब के मुस्तहिक़ होंगे।

तीसरा मसला यह कि महबूब चीज़ ख़र्च करना सिर्फ़ इसी का नाम नहीं कि कोई बड़ी क़ीमत की चीज़ ख़र्च की जाये, बल्कि जो चीज़ किसी के नज़दीक अज़ीज़ और महबूब है चाहे वह कितनी ही थोड़ी और क़ीमत के एतिबार से कम हो, उसके ख़र्च करने से भी इस 'बिर्र' का हक़दार हो जायेगा। हज़रत हसन बसरी रहमतुल्लाहि अलैहि ने फ़रमाया कि जो चीज़ आदमी इख़्लास के साथ अल्लाह की रज़ा के लिये ख़र्च करे वह अगरचे खजूर का एक दाना ही हो उससे भी इनसान बड़े सवाब और बिर्र (नेकी) का कामिल हक़दार हो जाता है जिसका आयत में वायदा किया गया है।

चौथा मसला यह है कि इस आयत से बज़ाहिर यह मालूम होता है कि इसमें जिस चीज़ **ख़ैरे अज़ीम** (बहुत बड़ी भलाई) और **बिर्र** (नेकी) का ज़िक्र है उससे वे ग़रीब लोग मेहरूम रहेंगे जिनके पास ख़र्च करने के लिये माल नहीं, क्योंकि आयत में यह फ़रमाया गया है कि यह ख़ैरे-अज़ीम महबूब माल के ख़र्च किये बग़ैर हासिल नहीं की जा सकती, और फ़क़ीर व मिस्कीनों के पास माल ही नहीं जिसके ज़रिये उनकी यहाँ तक रसाई हो। लेकिन ग़ौर किया जाये तो आयत का यह मफ़्हूम (मतलब) नहीं कि ख़ैरे-अज़ीम और सवाबे-अज़ीम हासिल करना चाहें तो सिवाय महबूब माल ख़र्च करने के उनका यह मक़सद पूरा नहीं हो सकता, बल्कि बात यह है कि यह ख़ैरे-अज़ीम किसी दूसरे ज़रिये से जैसे इबादत, अल्लाह के ज़िक्र, क़ुरआन की तिलावत, नवाफ़िल की अधिकता से भी हासिल की जा सकती है, इसलिये फ़क़ीरों व ग़रीबों को भी यह ख़ैरे-अज़ीम दूसरे माध्यमों से हासिल हो सकती है जैसा कि बाज़ हदीस की रिवायतों में स्पष्ट तौर पर भी यह मज़मून आया है।

महबूब माल से क्या मुराद है?

पाँचवा मसला यह है कि माल के महबूब होने से क्या मुराद है? क़ुरआन की एक दूसरी आयत से मालूम हुआ कि महबूब (प्यारा और पसन्दीदा) होने का मतलब यह है कि वह चीज़ उसके काम में आ रही हो और उसको उस चीज़ की ज़रूरत हो, ज़रूरत से फ़ालतू और बेकार न

हो। क़ुरआने करीम का इरशाद हैः

وَيُطْعِمُوْنَ الطَّعَامَ عَلٰى حُبِّهٖ مِسْكِيْنًا. (٨:٧٦)

"यानी अल्लाह के मक़बूल बन्दे वे हैं जो ज़रूरत मन्दों को खाना खिलाते हैं बावजूद इसके कि उस खाने की ख़ुद उनको भी ज़रूरत है।"

इसी तरह दूसरी आयत में इसी मज़मून की और ज़्यादा वज़ाहत इस तरह फ़रमाई हैः

وَيُؤْثِرُوْنَ عَلٰٓى اَنْفُسِهِمْ وَلَوْ كَانَ بِهِمْ خَصَاصَةٌ. (٩:٥٩)

"यानी अल्लाह के मक़बूल बन्दे अपने ऊपर दूसरों को मुक़द्दम (आगे) रखते हैं अगरचे ख़ुद भी हाजत मन्द हों।"

फ़ालतू सामान और ज़रूरत से ज़्यादा चीज़ें

अल्लाह की राह में ख़र्च करना भी सवाब से ख़ाली नहीं

छठा मसला यह है कि आयत में बतलाया गया है कि पूरी ख़ैर, बड़े सवाब और नेक लोगों की सफ़ (जमाअ़त) में दाख़िला इस पर निर्भर है कि अपनी प्यारी चीज़ अल्लाह की राह में ख़र्च करें, मगर इससे यह लाज़िम नहीं आता कि ज़रूरत से ज़्यादा फ़ालतू माल ख़र्च करने वाले को कोई सवाब ही न मिले, बल्कि आयत के आख़िर में जो यह इरशाद हैः

وَمَا تُنْفِقُوْا مِنْ شَيْءٍ فَاِنَّ اللّٰهَ بِهٖ عَلِيْمٌ ۝

यानी "तुम जो कुछ माल ख़र्च करोगे अल्लाह तआ़ला उससे बाख़बर है।"

आयत के इस जुमले का मफ़्हूम यह है कि अगरचे ख़ैरे-कामिल और नेक लोगों की सफ़ में दाख़िला ख़ास महबूब चीज़ ख़र्च करने पर मौक़ूफ़ है, लेकिन आ़म सवाब से कोई सदक़ा ख़ाली नहीं, चाहे महबूब चीज़ ख़र्च करें या ज़्यादा और फ़ालतू चीज़ें, हाँ मक्रूह (बुरा) और ममनू (वर्जित) यह है कि कोई आदमी अल्लाह की राह में ख़र्च करने के लिये यही तरीक़ा इख़्तियार कर ले कि जब ख़र्च करे फ़ालतू और ख़राब चीज़ का ही चयन करके ख़र्च किया करे। लेकिन जो शख़्स सदक़े ख़ैरात में अपनी महबूब और उम्दा चीज़ें भी ख़र्च करता है और अपनी ज़रूरत से ज़्यादा चीज़ें बचा हुआ खाना या पुराने कपड़े, नाक़िस बर्तन या इस्तेमाल की हुई चीज़ें भी ख़ैरात में दे देता है, वह उन चीज़ों का सदक़ा करने से किसी गुनाह का करने वाला नहीं, बल्कि उसको उन पर भी ज़रूर सवाब मिलेगा। और महबूब चीज़ों के ख़र्च करने पर उसको ख़ैरे-अज़ीम (बड़ी भलाई) भी हासिल होगी, और नेक लोगों की जमाअ़त में उसका दाख़िला भी होगा।

आयत के इस आख़िरी जुमले में यह बतलाया गया है कि आदमी जो कुछ ख़र्च करता है उसकी असलियत अल्लाह पर स्पष्ट है कि वह उसके नज़दीक महबूब है या नहीं, और इख़्लास के साथ अल्लाह की रज़ा के लिये ख़र्च कर रहा है या दिखावे और शोहरत के लिये। किसी का सिर्फ़ ज़बानी दावा इसके लिये काफ़ी नहीं कि मैं अपनी महबूब चीज़ को अल्लाह के लिये ख़र्च

कर रहा हूँ, बल्कि अ़लीम व ख़बीर (सब कुछ जानने और हर चीज़ की ख़बर रखने वाले यानी अल्लाह तआ़ला) जो दिल के छुपे राज़ों से वाकिफ़ है, देख रहा है कि वास्तव में उसके लिये ख़र्च का क्या दर्जा है।

كُلُّ الطَّعَامِ كَانَ حِلًّا لِّبَنِىٓ إِسْرَآءِيلَ إِلَّا مَا حَرَّمَ إِسْرَآءِيلُ عَلٰى نَفْسِهٖ مِنْ قَبْلِ أَنْ تُنَزَّلَ التَّوْرٰىةُ ۗ قُلْ فَأْتُوْا بِالتَّوْرٰىةِ فَاتْلُوْهَآ إِنْ كُنْتُمْ صٰدِقِيْنَ ۝ فَمَنِ افْتَرٰى عَلَى اللّٰهِ الْكَذِبَ مِنْ بَعْدِ ذٰلِكَ فَأُولٰٓئِكَ هُمُ الظّٰلِمُوْنَ ۝ قُلْ صَدَقَ اللّٰهُ ۗ فَاتَّبِعُوْا مِلَّةَ إِبْرٰهِيْمَ حَنِيْفًا ۗ وَمَا كَانَ مِنَ الْمُشْرِكِيْنَ ۝

कुल्लुत्तआ़मि का-न हिल्लल् लि-बनी इस्राई-ल इल्ला मा हर्र-म इस्राईलु अ़ला नफ़्सिही मिन् क़ब्लि अन् तुनज़्ज़लत्तौरातु, क़ुल् फ़अ्तू बित्तौराति फ़त्लूहा इन् कुन्तुम् सादिक़ीन (93) फ़-मनिफ़्तरा अ़लल्लाहिल् कज़ि-ब मिम्-बअ़्दि ज़ालि-क फ़-उलाइ-क हुमुज़्ज़ालिमून (94) क़ुल् स-दक़ल्लाहु फ़त्तबिअ़ू मिल्ल-त इब्राही-म हनीफ़न्, व मा का-न मिनल् मुश्रिकीन (95)	सब खाने की चीज़ें हलाल थीं बनी इस्राईल को मगर वे जो हराम कर ली थीं इस्राईल ने अपने ऊपर तौरात नाज़िल होने से पहले। तू कह- लाओ तौरात और पढ़ो उसको अगर तुम सच्चे हो। (93) फिर जो कोई जोड़े अल्लाह पर झूठ उसके बाद तो वही हैं बड़े बेइन्साफ़। (94) तू कह- सच फ़रमाया अल्लाह ने अब ताबे हो जाओ दीने इब्राहीम के जो एक ही का हो रहा था और न था शिर्क करने वाला। (95)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

(जिन खाने की चीज़ों में गुफ़्तगू है ये) सब खाने की चीज़ें (हज़रत इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम के वक़्त से हरगिज़ हराम नहीं चली आ रही हैं बल्कि ये चीज़ें) तौरात के नाज़िल होने से पहले उसको छोड़कर (यानी ऊँट के गोश्त को) जिसको (हज़रत) याक़ूब (अ़लैहिस्सलाम) ने (एक ख़ास कारण से) अपने नफ़्स पर हराम कर लिया था (और फिर वह उनकी औलाद में भी हराम चला आया, बाक़ी सब चीज़ें ख़ुद) बनी इस्राईल (तक) पर (भी) हलाल थीं, (तो इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम के वक़्त से उनके हराम होने का दावा कब सही हो सकता है, और तौरात के नाज़िल होने से पहले इस वास्ते फ़रमाया कि तौरात के नाज़िल होने के बाद इन ज़िक्र हुई हलाल

चीज़ों में से भी बहुत सी चीज़ें हराम हो गई थीं, जिसकी कुछ तफ़सील सूरः अन्आ़म की आयत नम्बर 147 में है:

وَعَلَى الَّذِيْنَ هَادُوْا حَرَّمْنَا كُلَّ ذِىْ ظُفُرٍ ...... الخ (٦:١٤٧)

(और अगर अब भी यहूद को (इन चीज़ों के पहले ही से और) पुराने (ज़माने से) हराम होने का दावा है तो ऐ मुहम्मद सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम! उनसे) फ़रमा दीजिए कि (अच्छा तो) फिर तौरात लाओ फिर उसको (लाकर) पढ़ो अगर तुम (उक्त दावे में) सच्चे हो। (तो उसमें कोई आयत वग़ैरह इस मज़मून की निकाल दो, क्योंकि नक़ल की जाने वाली चीज़ों में नस्स (स्पष्ट शरई हुक्म) की ज़रूरत है, और दूसरी नुसूस (स्पष्ट शरई दलीलें) यक़ीनन मनफ़ी (विरुद्ध) हैं, सिर्फ़ तौरात बाक़ी है, सो उसमें दिखला दो। चुनाँचे उसमें न दिखला सके तो इस दावे में उनका झूठा होना साबित हो गया। आगे इस पर नतीजा निकाल कर फ़रमाते हैं) सो जो शख़्स इस (दलील के साथ इस झूठ के ज़ाहिर हो जाने) के बाद (भी) अल्लाह तआ़ला पर झूठ बात की तोहमत लगाये (जाये) कि अल्लाह तआ़ला ने हज़रत इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम के वक़्त से ऊँट के गोश्त वग़ैरह को हराम फ़रमाया है, तो ऐसे लोग बड़े बेइन्साफ़ हैं।

आप कह दीजिए कि अल्लाह तआ़ला ने सच कह दिया सो (अब) तुम (को चाहिए कि क़ुरआन के हक़ और सच्चा साबित होने के बाद) मिल्लते इब्राहीम (यानी इस्लाम) की पैरवी (इख़्तियार) करो जिसमें ज़रा भी टेढ़ नहीं, और वह (यानी इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम) मुश्रिक न थे।

मआ़रिफ़ व मसाईल

ऊपर की आयतों में अहले किताब (यहूदियों व ईसाईयों) से बहस चली आती है। कहीं यहूद से कहीं ईसाईयों से, कहीं दोनों से। एक बहस का आगे बयान आता है जिसका क़िस्सा तफ़सीर **रूहुल-मआ़नी** में वाहिदी कल्बी की रिवायत से नक़ल किया गया है कि जब हुज़ूरे अकरम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने अपना मिल्लते इब्राहीमी (हज़रत इब्राहीम के तरीक़े) पर होना तमाम शरई उसूलों और अक्सर मसाईल व अहकाम में बयान फ़रमाया तो यहूद ने एतिराज़ के तौर पर कहा कि आप ऊँट का गोश्त खाते और उसका दूध पीते हैं हालाँकि यह हज़रत इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम पर हराम था। जनाब रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने जवाब दिया कि नहीं! उन पर यह हलाल था। यहूद ने कहा जितनी चीज़ें हम हराम समझते हैं ये सब हज़रत नूह और हज़रत इब्राहीम अ़लैहिमस्सलाम के वक़्त से हराम चली आती हैं, यहाँ तक कि हम तक वह तहरीम (हराम होना) पहुँची, तो अल्लाह तआ़ला ने उक्त आयतः

كُلُّ الطَّعَامِ كَانَ حِلًّا لِّبَنِىٓ اِسْرَآءِيْلَ............ الخ

यहूद के झूठा होने के लिये नाज़िल फ़रमाई, जिसमें इरशाद फ़रमाया गया कि तौरात के नाज़िल होने से पहले ऊँट के गोश्त को छोड़कर जिसको हज़रत याक़ूब अ़लैहिस्सलाम ने एक ख़ास वजह से ख़ुद अपने नफ़्स पर हराम कर लिया था और फिर वह उनकी औलाद में हराम

चला आया, बाक़ी सब चीज़ें ख़ुद बनी इस्राईल पर भी हलाल थीं।

दर असल इसमें क़िस्सा यह हुआ कि हज़रत याक़ूब अ़लैहिस्सलाम को इरक़ुन्निसा (लंगड़ी के दर्द) का रोग था। आपने मन्नत मानी थी कि अगर अल्लाह तआ़ला इससे शिफ़ा दें तो सबसे ज़्यादा जो खाना मुझको महबूब (पसन्दीदा) है उसको छोड़ दूँगा। उनको शिफ़ा हो गई और सबसे ज़्यादा महबूब आपको ऊँट का गोश्त था, उसको आपने छोड़ दिया।

(हाकिम वग़ैरह, हज़रत इब्ने अ़ब्बास से सही सनद के साथ, रूहुल-मआ़नी, तिर्मिज़ी)

फिर यही तहरीम (हराम होने का हुक्म) जो मन्नत मानने से हुई थी बनी इस्राईल में वही के हुक्म से बाक़ी रह गई, और मालूम होता है कि उनकी शरीअ़त में नज़्र (मन्नत मानने) से तहरीम भी हो जाती होगी, जिस तरह हमारी शरीअ़त में मुबाह का ईजाब हो जाता है (यानी जो काम सिर्फ़ जायज़ हो अगर उसे शुरू किया जाये या उसकी मन्नत मानी जाये तो उसका करना वाजिब हो जाता है) मगर तहरीम की नज़्र जो दर हक़ीक़त यमीन (एक तरह की क़सम) है हमारी शरीअ़त में जायज़ नहीं, बल्कि इसमें क़सम तोड़ना फिर उसका कफ़्फ़ारा (बदलना) देना वाजिब है। जैसा कि अल्लाह तआ़ला का इरशाद है:

لِمَ تُحَرِّمُ مَآ اَحَلَّ اللّٰهُ لَكَ........(١:٦٦)

(क्यों हराम करते हैं उस चीज़ को जो अल्लाह तआ़ला ने आपके लिये हलाल की है) तफ़सीरे कबीर में भी यह मज़मून इसी तरह आया है।

اِنَّ اَوَّلَ بَيْتٍ وُّضِعَ لِلنَّاسِ لَلَّذِىْ بِبَكَّةَ مُبٰرَكًا وَّهُدًى لِّلْعٰلَمِيْنَ ۚ

इन्-न अव्व-ल बैतिंव्वुज़ि-अ़ लिन्नासि लल्लज़ी बि-बक्क-त मुबा-रकवं्-व हुदल्-लिल्आ़लमीन (96)	बेशक सबसे पहला घर जो मुक़र्रर हुआ लोगों के वास्ते यही है जो मक्का में है बरकत वाला और हिदायत जहान के लोगों को। (96)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

यक़ीनन वह मकान जो सब (इबादत के मकानों) से पहले लोगों (की इबादत का स्थान बनने) के लिए (अल्लाह की ओर से) मुक़र्रर किया गया, वह मकान है जो कि (शहर) मक्का में है (यानी ख़ाना-ए-काबा)। जिसकी हालत यह है कि वह बरकत वाला है (क्योंकि उसमें दीनी नफ़ा यानी सवाब है) और (ख़ास इबादत जैसे नमाज़ का रुख़ बतलाने में) दुनिया भर के लोगों का रहनुमा है। (मतलब यह है कि हज वहाँ होता है और जैसे हदीस के बयान के मुताबिक़ नमाज़ का सवाब वहाँ बहुत ज़्यादा होता है, दीनी बरकत तो यह हुई। और जो वहाँ नहीं हैं उनको उस मकान के ज़रिये से नमाज़ का रुख़ मालूम होता है, यह रहनुमाई हुई)।

मआरिफ़ व मसाईल

उक्त आयत में सारी दुनिया के मकानात यहाँ तक कि तमाम मस्जिदों के मुक़ाबले में बैतुल्लाह यानी काबा का शर्फ़ (सम्मान) और फ़ज़ीलत का बयान है, और यह शर्फ़ व फ़ज़ीलत (बड़ाई) कई कारणों से है।

बैतुल्लाह के फ़ज़ाईल और उसके निर्माण का इतिहास

अव्वल इसलिये कि वह दुनिया की तमाम सच्ची इबादत गाहों (इबादत के मक़ामों) में सबसे पहली इबादत गाह है।

दूसरे यह कि वह बरकत वाला है।

तीसरे यह कि वह पूरे जहान के लिये हिदायत व रहनुमाई (सही राह दिखाने) का ज़रिया है।

आयत के अलफ़ाज़ का ख़ुलासा यह है कि सबसे पहला घर जो अल्लाह की तरफ़ से लोगों के लिये मुक़र्रर किया गया है वह है जो मक्का में है। इसका मतलब यह है कि दुनिया में सबसे पहला इबादत ख़ाना (इबादत का स्थान) काबा है। इसकी यह सूरत भी हो सकती है कि दुनिया के सब घरों में पहला घर इबादत ही के लिये बनाया गया हो, उससे पहले न कोई इबादत ख़ाना हो न दौलत ख़ाना (रहने का घर)। हज़रत आदम अ़लैहिस्सलाम अल्लाह तआ़ला के नबी हैं, उनकी शान से कुछ बईद (दूर की बात) नहीं कि उन्होंने ज़मीन पर आने के बाद अपना घर बनाने से पहले अल्लाह का घर यानी इबादत की जगह बनाई हो। इसी लिये हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन उमर, मुजाहिद, क़तादा, सुद्दी वग़ैरह सहाबा व ताबिईन इसी के क़ायल हैं कि काबा दुनिया का सबसे पहला घर है। और यह भी मुम्किन है कि लोगों के रहने-सहने के मकानात पहले भी बन चुके हों मगर इबादत के लिये यह पहला घर बना हो, हज़रत अ़ली रज़ियल्लाहु अ़न्हु से यही नक़ल किया गया है।

इमाम बैहक़ी रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने अपनी किताब दलाईलुन्नुबुव्वत में हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन अ़मर बिन आ़स रज़ियल्लाहु अ़न्हु की रिवायत से नक़ल किया है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया- हज़रत आदम व हव्वा अ़लैहिमस्सलाम के दुनिया में आने के बाद अल्लाह तआ़ला ने हज़रत जिब्राईल अ़लैहिस्सलाम के ज़रिये उनको यह हुक्म भेजा कि वह बैतुल्लाह (काबा) बनायें। उन हज़रात ने हुक्म की तामील कर ली तो उनको हुक्म दिया गया कि उसका तवाफ़ करें, और उनसे कहा गया कि आप 'अव्वलुन्नास' (यानी सबसे पहले इनसान) हैं, और यह घरः

اَوَّلُ بَيْتٍ وُّضِعَ لِلنَّاسِ

है (यानी सबसे पहला घर जो लोगों के लिये मुक़र्रर किया गया है)। (इब्ने कसीर। लेकिन अ़ल्लामा इब्ने कसीर ने इस रिवायत को कमज़ोर क़रार दिया है)

कुछ रिवायतों में है कि हज़रत आदम अ़लैहिस्सलाम का यह निर्माण (काबे को बनाना) हज़रत नूह अ़लैहिस्सलाम के ज़माने तक बाक़ी था, तूफ़ाने नूह में वह इमारत ढह गयी और उसके निशानात मिट गये। उसके बाद हज़रत इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम ने उन्हीं बुनियादों पर दोबारा काबे को तामीर किया, फिर एक मर्तबा किसी हादसे में उसकी तामीर गिर गयी तो क़बीला-ए-जुर्हुम की एक जमाअ़त ने उसकी तामीर की। फिर एक मर्तबा इमारत ढह गई तो अ़मालिक़ा ने तामीर की, और फिर इमारत गिर गई तो क़ुरैश ने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के शुरूआ़ती दौर (यानी जवानी के दौर) में तामीर की, जिसमें आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम भी शरीक हुए और हजरे-अस्वद (जन्नत से आये हुए काले पत्थर) को अपने हाथ मुबारक से क़ायम फ़रमाया। लेकिन क़ुरैश ने इस तामीर में इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम की बुनियाद से किसी क़द्र भिन्न और अलग तामीर की थी कि एक हिस्सा बैतुल्लाह से अलग कर दिया जिसको हतीम कहा जाता है, और ख़लीलुल्लाह अ़लैहिस्सलाम की तामीर में काबा के दो दरवाज़े थे एक दाख़िल होने के लिये दूसरा पीछे की ओर से बाहर निकलने के लिये, क़ुरैश ने सिर्फ़ पूर्वी दरवाज़े को बाक़ी रखा। तीसरी तब्दीली यह की कि बैतुल्लाह का दरवाज़ा ज़मीन की सतह से काफ़ी ऊँचा कर दिया ताकि हर शख़्स आसानी से अन्दर न जा सके, बल्कि जिसको वे इजाज़त दें वही जा सके। रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने हज़रत आयशा रज़ियल्लाहु अ़न्हा से फ़रमाया- मेरा दिल चाहता है कि मौजूदा तामीर को गिराकर इसको बिल्कुल इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम की तामीर के मुताबिक़ बना दूँ, क़ुरैश ने जो दख़ल-अन्दाज़ी और तब्दीली इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम की बुनियाद के ख़िलाफ़ की हैं उनको सही कर दूँ लेकिन नव-मुस्लिम नावाक़िफ़ मुसलमानों में ग़लत-फ़हमी पैदा होने का ख़तरा है, इसी लिये फ़िलहाल इसको इसी हाल पर छोड़ता हूँ।

इस इरशाद के बाद इस दुनिया में आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की हयात (ज़िन्दगी) ज़्यादा नहीं रही, लेकिन हज़रत आयशा रज़ियल्लाहु अ़न्हा के भांजे हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर रज़ियल्लाहु अ़न्हु आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का यह इरशाद सुने हुए थे, ख़ुलफ़ा-ए-राशिदीन के बाद जिस वक़्त मक्का मुकर्रमा पर उनकी हुकूमत हुई तो उन्होंने बैतुल्लाह गिराकर हुज़ूरे पाक सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के इरशाद और इब्राहीमी तामीर के मुताबिक़ बना दिया, मगर अ़ब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर रज़ियल्लाहु अ़न्हु की हुकूमत मक्का मुअ़ज़्ज़मा में चन्द दिन की थी, ज़ालिमे उम्मत हज्जाज बिन यूसुफ़ ने फ़ौजी चढ़ाई करके उनको शहीद कर दिया और हुकूमत पर क़ब्ज़ा करके इसको गवारा न किया कि अ़ब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर रज़ियल्लाहु अ़न्हु का यह कारनामा रहती दुनिया तक उनकी तारीफ़ व प्रशंसा का सबब बना रहे। इसलिये लोगों में यह मशहूर कर दिया कि अ़ब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर का यह काम ग़लत था, रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने इसको जिस हालत पर छोड़ा था हमें उसी हालत पर इसको रखना चाहिये। इस बहाने से बैतुल्लाह को फिर गिराकर उसी तरह तामीर बना दी जो ज़माना-ए-जाहिलीयत (इस्लाम से पहले ज़माने) में क़ुरैश ने बना ली थी।

हज्जाज बिन यूसुफ़ के बाद आने वाले कुछ मुस्लिम बादशाहों ने फिर हदीसे मज़कूर की बिना पर यह इरादा किया कि बैतुल्लाह को नये सिरे से रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व-सल्लम की हदीस के मुवाफ़िक़ बना दें, लेकिन उस ज़माने के इमाम हज़रत इमाम मालिक बिन अनस रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने यह फ़तवा दिया कि अब बार-बार बैतुल्लाह को गिराना और बनाना आगे आने वाले बादशाहों के लिये बैतुल्लाह को एक खिलौना बना देगा, हर आने वाला बादशाह अपना नाम करने के लिये यही काम करेगा, इसलिये अब जिस हालत में भी है उसी हालत में छोड़ देना मुनासिब है। तमाम उम्मत ने इसको क़ुबूल किया। इसी वजह से आज तक वही हज्जाज बिन यूसुफ़ ही की तामीर बाक़ी है, अलबत्ता टूट-फूट और मरम्मत का सिलसिला हमेशा जारी रहा।

इन रिवायतों से एक तो यह मालूम हुआ कि काबा दुनिया का सबसे पहला घर है, और या कम से कम सबसे पहला इबादत का मक़ाम है। क़ुरआने करीम में जहाँ यह ज़िक्र है कि काबा की तामीर अल्लाह तआ़ला के हुक्म से हज़रत इब्राहीम व इस्माईल अ़लैहिमस्सलाम ने की है वहीं इसके इशारे भी मौजूद हैं कि इन बुज़ुर्गों ने इसकी प्रारंभिक तामीर नहीं फ़रमाई, बल्कि पहले की बुनियादों पर उसी के मुताबिक़ तामीर फ़रमाई और काबे की असल बुनियाद पहले ही से थी। क़ुरआने करीम के इरशादः

وَاِذْ يَرْفَعُ اِبْرٰهٖمُ الْقَوَاعِدَ مِنَ الْبَيْتِ وَاِسْمٰعِيْلُ. (٢:١٢٧)

से भी ऐसा ही मफ़्हूम होता (समझ में आता) है कि क़वाइदे-बैतुल्लाह (यानी उसकी बुनियादें) पहले से मौजूद थीं। सूरः हज की आयत में हैः

وَاِذْ بَوَّاْنَا لِاِبْرٰهِيْمَ مَكَانَ الْبَيْتِ. (٢٢:٢٦)

"यानी जब ठीक कर दिया हमने इब्राहीम के लिये ठिकाना उस घर का।"

इससे भी यही मालूम होता है कि बैतुल्लाह की जगह पहले से मुतैयन चली आती थी, और पहली आयत से इसकी बुनियादों का होना भी समझ में आता है।

कुछ रिवायतों में है कि जब हज़रत ख़लीलुल्लाह अ़लैहिस्सलाम को बैतुल्लाह के बनाने का हुक्म दिया गया तो फ़रिश्ते के ज़रिये उनको बैतुल्लाह की जगह पहली बुनियादों की निशानदेही की गई जो रेत के तोदों में दबी हुई थी।

बहरहाल उक्त आयत से काबा की एक फ़ज़ीलत (सम्मान व बड़ाई) यह साबित हुई कि वह दुनिया का सबसे पहला घर या पहला इबादत ख़ाना है। बुख़ारी व मुस्लिम की एक हदीस में है कि हज़रत अबूज़र रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से मालूम किया कि दुनिया की सबसे पहली मस्जिद कौनसी है? आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया मस्जिदे हराम (यानी काबे की मस्जिद)। उन्होंने अ़र्ज़ किया उसके बाद कौनसी है? आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया मस्जिदे बैतुल-मुक़द्दस है। फिर पूछा कि इन दोनों की तामीर के दरमियान कितनी मुद्दत का फ़ासला है? आपने फ़रमाया चालीस साल का।

इस हदीस में बैतुल्लाह की नई तामीर जो इब्राहीम अलैहिस्सलाम के हाथों हुई उसके एतिबार से बैतुल-मुक़द्दस की तामीर का फ़ासला बयान किया गया है, क्योंकि रिवायतों से यह भी साबित है कि बैतुल-मुक़द्दस की शुरूआती तामीर भी हज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलाम के द्वारा बैतुल्लाह की तामीर से चालीस साल बाद में हुई, और हज़रत सुलैमान अलैहिस्सलाम ने जो बैतुल-मुक़द्दस की तामीर की यह भी बैतुल्लाह की तरह बिल्कुल नई और प्रारंभिक तामीर न थी, बल्कि सुलैमान अलैहिस्सलाम ने इब्राहीमी तामीर पर उसका नवीकरण किया है। इस तरह रिवायतों में आपस में कोई टकराव नहीं रहता।

हासिल यह है कि हमेशा से दुनिया में उसकी ताज़ीम व तकरीम (आदर व सम्मान) होती चली आई है। इसमें लफ़्ज़ 'वुज़ि-अ लिन्नासि' (मुक़र्रर किया गया है लोगों के लिये) में इसकी तरफ़ भी इशारा है कि इस घर की ताज़ीम व तकरीम किसी ख़ास क़ौम या जमाअत ही का हिस्सा नहीं बल्कि आम मख़्लूक़ और सब इनसान इसकी ताज़ीम करेंगे। उसके वजूद में हक़ तआला ने एक अज़मत (बड़ाई) और हैबत (रौब व दबदबे) का तत्व रखा है कि लोगों के दिल उसकी तरफ़ अपने आप माईल होते हैं। इसमें लफ़्ज़ **बक्का** से मुराद **मक्का मुअ़ज़्ज़मा** है, चाहे यह कहा जाये कि **मीम** को **बा** से बदल दिया गया है, अरब वालों के कलाम में इसकी बहुत सी मिसालें हैं कि **मीम** को **बा** से बदल दिया करते हैं, और या यह कहा जाये कि **मक्का** का दूसरा नाम **बक्का** भी है।

बैतुल्लाह की बरकतें

इस आयत में बैतुल्लाह की दूसरी फ़ज़ीलत यह बयान की गई है कि वह मुबारक है। लफ़्ज़ मुबारक, बरकत से निकला है। **बरकत** के मायने हैं बढ़ना और साबित रहना, फिर किसी चीज़ का बढ़ना इस तरह भी हो सकता है कि उसका वजूद खुले तौर पर मात्रा और आकार में बढ़ जाये और इस तरह भी कि अगरचे उसकी मात्रा व आकार में कोई ख़ास इज़ाफ़ा न हो लेकिन उससे काम इतने निकलें जितने आ़दतन् उससे ज़्यादा से निकला करते हैं, इसको भी मानवी तौर पर ज़्यादती कहा जा सकता है।

बैतुल्लाह का बरकत वाला होना ज़ाहिरी तौर पर भी है और मानवी तौर पर भी। इसकी ज़ाहिरी बरकतों में यह खुली आँखों नज़र आता है कि मक्का और उसके आस-पास एक ख़ुश्क रेगिस्तान और बंजर ज़मीन होने के बावजूद उसमें हमेशा हर मौसम में हर तरह के फल और तरकारियाँ और तमाम ज़रूरतें मुहैया रहती हैं, कि सिर्फ़ मक्का वालों के लिये नहीं बल्कि पूरी दुनिया से आने वालों के लिये भी काफ़ी हो जाती हैं। और आने वालों का हाल दुनिया को मालूम है कि ख़ास हज के मौसम में तो लाखों इनसान दुनिया भर से जमा होते हैं जिनकी जनसंख्या मक्के वालों से चौगुनी पाँच गुनी होती है। यह ज़बरदस्त हुजूम वहाँ सिर्फ़ दो-चार रोज़ नहीं बल्कि महीनों रहता है। हज के मौसम के अ़लावा भी कोई वक़्त ऐसा नहीं आता जिसमें बाहर से हज़ारों इनसानों की आवा-जाही न रहती हो, फिर ख़ास हज के मौसम में जबकि वहाँ

लाखों इनसानों का अतिरिक्त मजमा होता है, कभी नहीं सुना गया कि बाज़ार में किसी वक़्त भी ज़रूरत की चीज़ें ख़त्म हो गई हों, या मिलती न हों, यहाँ तक कि क़ुरबानी के बकरे जो वहाँ पहुँचकर एक-एक इनसान सौ-सौ भी करता है और प्रत्येक आदमी एक का औसत तो यक़ीनी है, ये लाखों बकरे वहाँ हमेशा मिलते हैं, यह भी नहीं कि दूसरे मुल्कों से मंगाने का एहतिमाम किया जाता हो। क़ुरआने करीम में है:

يُجْبَىٰ إِلَيْهِ ثَمَرٰتُ كُلِّ شَيْءٍ. (٥٧:٢٨)

"यानी उसमें बाहर से लाये जाते हैं समरात (फल) हर चीज़ के।"

इन अलफ़ाज़ में इसकी तरफ़ वाज़ेह इशारा भी मौजूद है।

यह तो ज़ाहिरी बरकतों का हाल है जो मक़सूद की हैसियत नहीं रखतीं, और मानवी व बातिनी बरकतें तो इतनी हैं कि उनकी गिनती नहीं हो सकती। कुछ अहम इबादतें तो बैतुल्लाह के साथ मख़्सूस हैं, उनमें जो ज़बरदस्त अज्र और रूहानी बरकतें हैं उन सब का मदार बैतुल्लाह पर है, जैसे हज व उमरा। और कुछ दूसरी इबादतों का भी मस्जिदे हराम में कई गुना सवाब बढ़ जाता है। रसूले करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम का इरशाद है कि कोई इनसान घर में नमाज़ पढ़े तो उसको एक नमाज़ का सवाब मिलेगा, और अगर अपने मौहल्ले की मस्जिद में अदा करे तो उसको पच्चीस नमाज़ों का सवाब हासिल होगा, और जो जामा मस्जिद में अदा करे तो पाँच सौ नमाज़ों का सवाब पायेगा, और अगर मस्जिदे अक़्सा (बैतुल-मुक़द्दस की मस्जिद) में नमाज़ अदा की तो एक हज़ार नमाज़ों का और मेरी मस्जिद में पचास हज़ार नमाज़ों का सवाब मिलता है, और मस्जिदे हराम (काबा शरीफ़ की मस्जिद) में एक लाख नमाज़ों का। (यह रिवायत इब्ने माजा व तहावी वग़ैरह ने नक़ल की है)

हज के फ़ज़ाईल में यह हदीस आम मुसलमान जानते हैं कि हज को सही तौर पर अदा करने वाला मुसलमान पिछले गुनाहों से ऐसा पाक हो जाता है जैसे आज माँ के पेट से पाक व साफ पैदा हुआ है। ज़ाहिर है कि ये सब बैतुल्लाह की मानवी और रूहानी बरकतें हैं। इन्हीं बरकतों को आयत के आख़िर में लफ़्ज़ 'हुदन्' से ताबीर फ़रमाया गया है। फ़रमायाः मुबारकंव्-व हुदल्-लिल्आलमीन।

فِيهِ اٰيٰتٌۢ بَيِّنٰتٌ مَّقَامُ اِبْرٰهِيْمَ ۚ وَمَنْ دَخَلَهٗ كَانَ اٰمِنًا ۗ
وَلِلّٰهِ عَلَى النَّاسِ حِجُّ الْبَيْتِ مَنِ اسْتَطَاعَ اِلَيْهِ سَبِيْلًا ۗ وَمَنْ كَفَرَ فَاِنَّ اللّٰهَ غَنِيٌّ عَنِ الْعٰلَمِيْنَ ۝

फ़ीहि आयातुम् बय्यिनातुम् मक़ामु इब्राही-म, व मन् द-ख़-लहू का-न आमिनन्, व लिल्लाहि अलन्नासि	इसमें निशानियाँ हैं ज़ाहिर जैसे- मक़ामे इब्राहीम, और जो इसके अन्दर आया उसको अमन मिला, और अल्लाह का हक़ है लोगों पर हज करना इस घर का जो

हिज्जुल्बैति मनिस्तता-अ इलैहि सबीलन्, व मन् क-फ़-र फ़-इन्नल्ला-ह ग़निय्युन् अ़निल् आ़लमीन (97)	शख़्स क़ुदरत (ताक़त व गुंजाईश) रखता हो इसकी तरफ़ राह चलने की, और जो न माने तो फिर अल्लाह परवाह नहीं रखता जहान के लोगों की। (97)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

इसमें (कुछ क़ानूनी कुछ क़ुदरती) खुली निशानियाँ (उसके अफ़ज़ल होने की मौजूद) हैं (चुनाँचे क़ानूने शरीअ़त की निशानियों में उसका मुबारक और रहनुमा होना पहले बयान हो चुका, और कुछ मक़ामे इब्राहीम के बाद मज़कूर हैं, यानी उसमें दाख़िल होने वाले का अमन का हक़दार हो जाना और उसका हज उसकी शर्तों के साथ फ़र्ज़ होना जो कि पहले बयान हुए अहकाम से अलग ज़ायद मफ़्हूम है। ये चार निशानियाँ तो शरई क़ानून की इस जगह बयान हुई हैं, अब बीच में तकवीनी का ज़िक्र फ़रमाते हैं कि) उन तमाम (निशानियों) में से एक मक़ामे इब्राहीम (निशानी) है। और जो शख़्स उस (की तयशुदा सीमाओं) में दाख़िल हो जाए वह (शरई तौर पर) अमन वाला हो जाता है। और (एक क़ानूनी निशानी यह है कि) अल्लाह के (ख़ुश करने के) वास्ते लोगों के ज़िम्मे उस मकान का हज करना (फ़र्ज़) है (मगर सब के ज़िम्मे नहीं, बल्कि ख़ास-ख़ास के), यानी उस शख़्स के ज़िम्मे जो कि ताक़त रखे वहाँ तक (पहुँचने) की। और जो शख़्स (अल्लाह के अहकाम का) मुन्किर "यानी इनकार करने वाला" हो तो (ख़ुदा तआ़ला का क्या नुक़सान, क्योंकि) अल्लाह तआ़ला तमाम जहान वालों से ग़नी हैं (किसी के मानने पर उनका कोई काम अटका नहीं पड़ा, बल्कि ख़ुद उस इनकारी ही का नुक़सान है)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

बैतुल्लाह की तीन विशेषतायें

इस आयत में बैतुल्लाह यानी काबा शरीफ़ की ख़ुसूसियतें (विशेषतायें) और फ़ज़ाईल बयान किये गये हैं। एक यह कि उसमें अल्लाह की क़ुदरत की बहुत सी निशानियाँ हैं, उनमें से एक मक़ामे इब्राहीम है, दूसरे यह कि जो शख़्स उसमें दाख़िल हो जाये वह अमन वाला और महफ़ूज़ हो जाता है, कोई उसको क़त्ल नहीं कर सकता। तीसरे यह कि सारी दुनिया के मुसलमानों पर उस (यानी बैतुल्लाह) का हज फ़र्ज़ है बशर्तेकि वहाँ तक पहुँचने की गुंजाईश व ताक़त रखता हो।

पहली बात कि उसमें अल्लाह जल्ल शानुहू की क़ुदरत की बड़ी निशानियाँ हैं। इसकी वज़ाहत यह है कि जब से बैतुल्लाह क़ायम हुआ उसकी बरकत से अल्लाह तआ़ला ने मक्का वालों को मुख़ालिफ़ों के हमलों से महफ़ूज़ फ़रमा दिया। अब्रहा ने हाथियों का लश्कर लेकर

चढ़ाई की तो अल्लाह तआ़ला ने अपनी कामिल क़ुदरत से उनको परिन्दों के ज़रिये तबाह व हलाक कर दिया। हरमे मक्का में दाख़िल होने वाला इनसान बल्कि जानवर तक महफ़ूज़ है, जानवरों में भी इसका एहसास है, हरम की सीमाओं के अन्दर जानवर भी अपने आपको महफ़ूज़ (सुरक्षित) समझते हैं। वहाँ जंगली शिकारी जानवर इनसान से नहीं भागता।

आ़म तौर पर यह भी देखा जाता है कि बैतुल्लाह के जिस तरफ़ बारिश होती है उस तरफ़ के मुल्क ज़्यादा बारिश से सैराब होते हैं। एक अ़जीब निशानी यह है कि जमरात जिन पर हर एक हज करने वाला सात-सात कंकरियाँ रोज़ाना तीन दिन तक फेंकता है और हर साल लाखों हाजी वहाँ जमा होते हैं, ये सारी कंकरियाँ अगर वहाँ जमा होकर बाक़ी रहें तो एक ही साल में वे जमरात कंकरियों के ढेर में दब जायें, और चन्द साल में तो वहाँ एक पहाड़ बन जाये। हालाँकि देखने में यह आता है कि हज के तीनों दिन गुज़रने के बाद वहाँ कंकरियों का कोई बहुत बड़ा अंबार जमा नहीं होता, कुछ कंकरियाँ फैली हुई नज़र आती हैं, जिसकी वजह हदीस में नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने यह बयान फ़रमाई है कि ये कंकरियाँ फ़रिश्ते उठा लेते हैं और सिर्फ़ ऐसे लोगों की कंकरियाँ बाक़ी रह जाती हैं जिनका हज किसी वजह से क़ुबूल नहीं हुआ। और यही वजह है कि जमरात (सुतोनों) के पास से कंकरियाँ उठाकर रमी करने की मनाही की गई है, क्योंकि वो ग़ैर-मक़बूल हैं। रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के इस इरशाद की तस्दीक़ हर देखने वाला खुली आँखों से देखता है कि जमरात के आस-पास बहुत थोड़ी सी कंकरियाँ नज़र आती हैं, हालाँकि वहाँ से उठाने या साफ़ करने का न कोई एहतिमाम (व्यवस्था) न हुकूमत की तरफ़ से होता है न अ़वाम की तरफ़ से। (1)

इस वजह से शैख़ जलालुद्दीन सुयूती रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने अपनी किताब **ख़साईसे-कुबरा** में फ़रमाया कि रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के कुछ मोजिज़े ऐसे भी हैं जो आपकी वफ़ात के बाद भी मौजूद और क़ायम हैं और क़ियामत तक बाक़ी रहेंगे, और हर शख़्स उनको देख सकेगा। उनमें से एक तो क़ुरआन का बेनज़ीर होना है कि सारी दुनिया उसकी मिसाल लाने से आ़जिज़ है। यह आ़जिज़ व लाचार होना जैसे नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के ज़माने में था ऐसे ही आज भी मौजूद है और क़ियामत तक बाक़ी रहेगा। हर ज़माने का मुसलमान पूरी दुनिया को चेलैंज कर सकता है:

فَأْتُوا بِسُورَةٍ مِّن مِّثْلِهِ

(कि बना लाओ तुम इसके जैसी एक सूरत) इसी तरह जमरात के बारे में जो आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का इरशाद है कि उन पर फेंकी हुई कंकरियाँ नामालूम तौर पर

(1) अब मालूम हुआ है कि हुकूमत ने उठवाने का इन्तिज़ाम किया है। मुहम्मद तक़ी उस्मानी

फ़रिश्ते उठा लेते हैं, सिर्फ़ उन बदनसीब लोगों की कंकरियाँ रह जाती हैं जिनके हज क़ुबूल नहीं होते। आपके इस इरशाद की तस्दीक़ हर ज़माने और हर दौर में होती रही है और क़ियामत तक होती रहेगी। यह रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का हमेशा बाक़ी रहने वाला मोजिज़ा (चमत्कार) और बैतुल्लाह से मुताल्लिक़ अल्लाह तआ़ला की एक बड़ी निशानी है।

मक़ामे इब्राहीम

उन निशानियों में से एक बड़ी निशानी मक़ामे इब्राहीम है। इसी लिये क़ुरआने करीम ने इसको मुस्तक़िल तौर पर अलग बयान फ़रमाया। मक़ामे इब्राहीम वह पत्थर है जिस पर खड़े होकर हज़रत इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम बैतुल्लाह की तामीर फ़रमाते थे, और कुछ रिवायतों में है कि यह पत्थर तामीर की ऊँचाई के साथ-साथ अपने आप ऊँचा हो जाता था, और नीचे उतरने के वक़्त नीचा हो जाता था। उस पत्थर के ऊपर हज़रत इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम के क़दमे मुबारक का गहरा निशान आज तक मौजूद है। ज़ाहिर है कि एक बेहिस व बेशऊर पत्थर में यह एहसास व इल्म कि ज़रूरत के मुताबिक़ ऊँचा या नीचा हो जाये और यह तासीर कि मोम की तरह नर्म होकर क़दमों का मुकम्मल नक़्श अपने अन्दर ले ले, ये सब क़ुदरत की निशानियाँ हैं जो बैतुल्लाह की आला फ़ज़ीलत ही से जुड़ी हुई हैं। यह पत्थर बैतुल्लाह के नीचे दरवाज़े के क़रीब था, जब क़ुरआने करीम का यह हुक्म नाज़िल हुआ कि मक़ामे इब्राहीम पर नमाज़ पढ़ोः

وَاتَّخِذُوا مِن مَّقَامِ إِبْرٰهِيمَ مُصَلًّى.

उस वक़्त तवाफ़ करने वालों की मस्लेहत से उसको उठाकर बैतुल्लाह के सामने ज़रा फ़ासले पर मताफ़ से बाहर बीरे ज़मज़म के क़रीब रख दिया गया, और आजकल इसको उसी जगह एक महफ़ूज़ मकान में मुन्तक़िल किया हुआ है, तवाफ़ के बाद की दो रक्अ़तें उसी मकान के पीछे पढ़ी जाती हैं। हाल में यह तरमीम (तब्दीली) हुई कि वह मकान तो हटा दिया गया और मक़ामे इब्राहीम को एक बिल्लोरी (शीशे के) ख़ोल के अन्दर महफ़ूज़ कर दिया गया। मक़ामे इब्राहीम असल में उस ख़ास पत्थर का नाम है और तवाफ़ के बाद की रक्अ़तें उसके ऊपर या उसके पास पढ़ना अफ़ज़ल है, लेकिन मक़ामे इब्राहीम के लफ़्ज़ी मायने के एतिबार से यह लफ़्ज़ तमाम मस्जिदे हराम को शामिल है, इसी लिये हज़राते फ़ुक़हा ने फ़रमाया कि मस्जिदे हराम के अन्दर जिस जगह भी तवाफ़ की रक्अ़तें पढ़ ले वाजिब अदा हो जायेगा।

बैतुल्लाह में दाख़िल होने वाले का सुरक्षित होना

उक्त आयत में बैतुल्लाह की दूसरी ख़ुसूसियत यह बतलाई गई है कि जो उसमें दाख़िल हो जाये वह अमन वाला यानी मामून व महफ़ूज़ हो जाता है। उसमें दाख़िल होने वाले का मामून व महफ़ूज़ (सुरक्षित) होना एक तो क़ानूने शरअ़ एतिबार से है, यानी अल्लाह तआ़ला की तरफ़ से लोगों को यह हुक्म है कि जो शख़्स उसमें दाख़िल हो जाये उसको न सताओ न क़त्ल करो, अगर कोई शख़्स किसी को क़त्ल करके या कोई और जुर्म करके वहाँ चला जाये उसको भी उस

जगह सज़ा न दी जाये बल्कि उसको इस पर मजबूर किया जाये कि वह हरम से बाहर निकले, हरम से बाहर आने पर सज़ा जारी की जायेगी। इस तरह हरम में दाख़िल होने वाला शरई तौर पर मामून व महफ़ूज़ हो गया।

दूसरे हरम में दाख़िल होने वाले का मामून व महफ़ूज़ होना यूँ भी है कि अल्लाह तआ़ला ने क़ुदरती तौर पर हर कौम व मिल्लत के दिलों में बैतुल्लाह की ताज़ीम व तकरीम (सम्मान व इज़्ज़त) डाल दी है, और वे सब उमूमन हज़ारों मतभेदों और विवादों के बावजूद इस अ़क़ीदे पर मुत्तफ़िक़ (सहमत) हैं कि उसमें दाख़िल होने वाला अगरचे मुजरिम या हमारा दुश्मन ही हो, तो हरम का सम्मान व अदब इसको चाहता है कि वहाँ उसको कुछ न कहें, हरम को आम झगड़ों लड़ाईयों से महफ़ूज़ रखा जाये, जाहिलीयत के ज़माने में अ़रब के लोग और उनके विभिन्न कबीले चाहे कितनी ही अ़मली ख़राबियों में मुब्तला थे मगर बैतुल्लाह और सम्मानित हरम की अ़ज़मत पर सब जान देते थे। उनकी लड़ाईयाँ और सख़्त मिजाज़ी सारी दुनिया में मशहूर है लेकिन हरम के एहतिराम का यह हाल था कि बाप का क़ातिल बेटे के सामने आता तो मक़्तूल का बेटा जो उसके ख़ून का प्यासा होता था अपनी आँखें नीची करके गुज़र जाता था, उसको कुछ न कहता था।

मक्का फ़तह होने के वक़्त सिर्फ़ रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के लिये दीन की अहम मस्लेहत और बैतुल्लाह को पाक करने की ख़ातिर सिर्फ़ चन्द घन्टों के लिये हरम में क़िताल की इजाज़त अल्लाह तआ़ला की तरफ़ से नाज़िल हुई थी, और फ़तह के बाद आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने बड़ी ताकीद के साथ इसका ऐलान व इज़हार फ़रमाया कि यह इजाज़त सिर्फ़ रसूलुल्लाह के लिये बैतुल्लाह को पाक करने और उसकी सफ़ाई की ग़र्ज़ से थी, और वह भी चन्द घन्टों के लिये थी, इसके बाद हमेशा के लिये फिर इसकी वही हुर्मत (सम्मान व इज़्ज़त) साबित है जो पहले से थी। और फ़रमाया कि हरम के अन्दर क़त्ल व क़िताल न मुझसे पहले हलाल था न मेरे बाद किसी के लिये हलाल है, और मेरे लिये भी सिर्फ़ चन्द घंन्टों के लिये हलाल हुआ था, फिर हराम कर दिया गया।

रहा यह मामला कि रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के बाद हज्जाज बिन यूसुफ़ ने हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर रज़ियल्लाहु अ़न्हु के ख़िलाफ़ मक्का में फ़ौजी चढ़ाई की और क़त्ल व ग़ारत किया, यह उस अमने आ़म के शरई क़ानून के इसलिये ख़िलाफ़ नहीं हुआ कि पूरी उम्मत के इजमा (सर्वसम्मति) से उसका यह फ़ेल हराम और सख़्त गुनाह था, तमाम उम्मत ने उस पर नफ़रत व लानत का इज़हार किया और तकवीनी तौर पर भी इसको बैतुल्लाह के सम्मान के ख़िलाफ़ इसलिये नहीं कह सकते कि हज्जाज ख़ुद भी अपने इस अ़मल के हलाल होने का मोतक़िद न था, वह भी जानता था कि मैं एक संगीन जुर्म कर रहा हूँ लेकिन सियासत व हुकूमत के तक़ाज़ों ने उसको अंधा किया हुआ था।

बहरहाल यह बात फिर भी महफ़ूज़ थी कि आ़म मख़्लूक़ बैतुल्लाह और हरम को इस दर्जा वाजिबुल-एहतिराम (सम्मानीय) समझते रही है कि उसमें क़त्ल व क़िताल और लड़ाई झगड़े को

बदतरीन गुनाह समझते हैं, और यह सारी दुनिया में सिर्फ़ बैतुल्लाह और सम्मानित हरम ही की ख़ुसूसियत (विशेषता) है।

बैतुल्लाह का हज फ़र्ज़ होना

आयत में बैतुल्लाह की तीसरी ख़ुसूसियत यह बयान फ़रमाई कि अल्लाह तआ़ला ने अपनी मख़्लूक़ पर बैतुल्लाह का हज करना लाज़िम व वाजिब क़रार दिया है, बशर्तेकि वे बैतुल्लाह तक पहुँचने की ताक़त और गुंजाईश रखते हों। इस ताक़त व गुंजाईश की तफ़सील यह है कि उसके पास असली और आवश्यक ज़रूरतों से फ़ालतू इतना माल हो जिससे वह बैतुल्लाह तक आने-जाने और वहाँ के क़ियाम का ख़र्च बरदाश्त कर सके, और अपनी वापसी तक उन अहल व अ़याल (घर वालों) का इन्तिज़ाम भी कर सके जिनका नफ़का (ख़र्चा) उसके ज़िम्मे वाजिब है, तथा हाथ-पाँव और आँखों से माज़ूर न हो, क्योंकि ऐसे माज़ूर को तो अपने वतन में चलना फिरना भी मुश्किल है, वहाँ जाने और हज के अरकान (आमाल) अदा करने पर कैसे क़ुदरत होगी।

इसी तरह औरत के लिये चूँकि बग़ैर मेहरम के सफ़र करना शरीअ़त के हुक्म की रू से जायज़ नहीं इसलिये वह हज पर क़ादिर उस वक़्त समझी जायेगी जबकि उसके साथ कोई मेहरम हज करने वाला हो, चाहे मेहरम अपने ख़र्च से हज कर रहा हो या यह औरत उसका ख़र्च भी बरदाश्त करे। इसी तरह वहाँ तक पहुँचने के लिये रास्ते का मामून (सुरक्षित) होना भी ताक़त व हिम्मत होने का एक हिस्सा है, अगर रास्ते में बंद-अमनी हो, जान व माल का प्रबल ख़तरा हो तो हज की ताक़त व गुंजाईश नहीं समझी जायेगी।

लफ़्ज़ हज के लुग़वी मायने इरादा करने के हैं, और शरई मायने की ज़रूरी तफ़सील तो ख़ुद क़ुरआने करीम ने बयान फ़रमाई कि काबे का तवाफ़ और अ़रफ़ा व मुज़्दलिफ़ा वग़ैरह का क़ियाम हैं, और बाक़ी तफ़सीलात रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने अपने ज़बानी इरशादात और अ़मली बयानात के ज़रिये वाज़ेह फ़रमा दी हैं। इस आयत में बैतुल्लाह का हज फ़र्ज़ होने का ऐलान फ़रमाने के बाद आख़िर में फ़रमायाः

وَمَنْ كَفَرَ فَإِنَّ اللّٰهَ غَنِىٌّ عَنِ الْعٰلَمِيْنَ○

यानी जो शख़्स मुन्किर (इनकारी) हो तो अल्लाह तआ़ला बेनियाज़ (बेपरवाह) है तमाम जहान वालों से।

इसमें वह शख़्स दाख़िल है जो खुले तौर पर फ़रीज़ा-ए-हज का इनकारी हो, हज को फ़र्ज़ न समझे, उसका इस्लाम के दायरे से ख़ारिज और काफ़िर होना तो ज़ाहिर है। इसलिये कि 'व मन् क-फ़-र' (और जिसने इनकार किया) का लफ़्ज़ उस पर स्पष्ट तौर पर सादिक़ (फ़िट) है, और जो शख़्स अक़ीदे के तौर पर फ़र्ज़ समझता है लेकिन बावजूद गुंजाईश व ताक़त के हज नहीं करता, वह भी एक हैसियत से मुन्किर (इनकार करने वाला) ही है, उस पर लफ़्ज़ 'व मन्

क-फ़-र' का हुक्म डराने, धमकी और ताकीद के लिये है, कि यह शख़्स काफ़िरों जैसे अ़मल में मुब्तला है, जैसे काफ़िर व मुन्किर हज नहीं करते यह भी ऐसा ही है। इसी लिये फ़ुक़हा (दीनी मसाईल के माहिर उलेमा) ने फ़रमाया कि आयत के इस जुमले में उन लोगों के लिये सख़्त वईद (धमकी और डाँट-डपट) है जो बावजूद क़ुदरत व गुंजाईश के हज नहीं करते, कि वे अपने इस अ़मल से काफ़िरों की तरह हो गये। अल्लाह की पनाह

قُلْ يٰٓاَهْلَ الْكِتٰبِ لِمَ تَكْفُرُوْنَ بِاٰيٰتِ اللّٰهِ ۖ وَاللّٰهُ شَهِيْدٌ عَلٰى مَا تَعْمَلُوْنَ ۝ قُلْ يٰٓاَهْلَ الْكِتٰبِ لِمَ تَصُدُّوْنَ عَنْ سَبِيْلِ اللّٰهِ مَنْ اٰمَنَ تَبْغُوْنَهَا عِوَجًا وَّاَنْتُمْ شُهَدَآءُ ۭ وَمَا اللّٰهُ بِغَافِلٍ عَمَّا تَعْمَلُوْنَ ۝ يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْٓا اِنْ تُطِيْعُوْا فَرِيْقًا مِّنَ الَّذِيْنَ اُوْتُوا الْكِتٰبَ يَرُدُّوْكُمْ بَعْدَ اِيْمَانِكُمْ كٰفِرِيْنَ ۝ وَكَيْفَ تَكْفُرُوْنَ وَاَنْتُمْ تُتْلٰى عَلَيْكُمْ اٰيٰتُ اللّٰهِ وَفِيْكُمْ رَسُوْلُهٗ ۭ وَمَنْ يَّعْتَصِمْ بِاللّٰهِ فَقَدْ هُدِيَ اِلٰى صِرَاطٍ مُّسْتَقِيْمٍ ۝

ع

क़ुल् या अह्लल्-किताबि लि-म तक्फ़ुरू-न बिआयातिल्लाहि वल्लाहु शहीदुन् अ़ला मा तअ़्मलून (98) क़ुल् या अह्लल्-किताबि लि-म तसुद्दू-न अ़न् सबीलिल्लाहि मन् आम-न तब्ग़ूनहा अ़ि-वजंव्-व अन्तुम् शु-हदा-उ, व मल्लाहु बिग़ाफ़िलिन् अ़म्मा तअ़्मलून (99) या अय्युहल्लज़ी-न आमनू इन् तुतीअ़ू फ़रीक़म् मिनल्लज़ी-न ऊतुल्-किता-ब यरुद्दूकुम् बअ़्-द ईमानिकुम् काफ़िरीन (100) व कै-फ़ तक्फ़ुरू-न व अन्तुम् तुत्ला अ़लैकुम् आयातुल्लाहि व फ़ीकुम् रसूलुहू, व मंय्यअ़्तसिम् बिल्लाहि फ़-क़द् हुदि-य इला

तू कह- ऐ अहले किताब! क्यों इनकारी हुए हो अल्लाह के कलाम के और अल्लाह के रू-ब-रू (सामने) है जो तुम करते हो। (98) तू कह- ऐ अहले किताब! क्यों रोकते हो अल्लाह की राह से ईमान लाने वालों को कि ढूँढते हो उसमें ऐब और तुम ख़ुद जानते हो, और अल्लाह बेख़बर नहीं तुम्हारे काम से। (99) ऐ ईमान वालो! अगर तुम कहा मानोगे अहले किताब (यहूदी और ईसाई लोगों) में से कुछ लोगों का तो फिर कर देंगे वे तुमको ईमान लाने के बाद काफ़िर। (100) और तुम किस तरह काफ़िर होते हो और तुम पर पढ़ी जाती हैं आयतें अल्लाह की? और तुममें उसका रसूल है। और जो कोई मज़बूत पकड़े अल्लाह को तो उसको

सिरातिम् मुस्तक़ीम (101) ✿	हिदायत हुई सीधे रास्ते की। (101) ✿

इन आयतों के मज़मून का पीछे से ताल्लुक़

ऊपर से अहले किताब (यहूदियों व ईसाईयों) के बुरे अ़क़ीदों और उनके शुब्हात पर कलाम चल रहा था, दरमियान में बैतुल्लाह और हज का तज़किरा आया, आगे फिर अहले किताब ही से ख़िताब है जिसका ताल्लुक़ एक ख़ास वाकिए से है, कि एक यहूदी शमास बिन क़ैस मुसलमानों से बहुत कीना रखता था। उसने एक मजलिस में अन्सार के दो क़बीलों औस और ख़ज़रज को एक जगह इकट्ठे व मुत्तफ़िक़ देखा तो हसद (जलन) से बेचैन हो गया, और उनमें फूट व झगड़ा डालने की फ़िक्र में लग गया। आख़िर यह तजवीज़ की कि एक शख़्स से कहा कि इन दोनों क़बीलों में इस्लाम से पहले जो एक बड़ी जंग लम्बे समय तक रह चुकी है, और उसके बारे में दोनों फ़रीक़ों के फ़ख़्र भरे अश्आ़र हैं, वे अश्आ़र उनकी मजलिस में पढ़ दिये जायें। चुनाँचे अश्आ़र का पढ़ना था कि फ़ौरन एक आग सी भड़क उठी और आपस में नोक-झोंक होने लगी, यहाँ तक कि लड़ाई का मौक़ा और वक़्त फिर तय हो गया। हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को ख़बर हुई तो आप उनके पास तशरीफ़ लाये और फ़रमाया- क्या अंधेर है, मेरे होते हुए फिर मुसलमान होने और आपस में मुत्तफ़िक़ व मानूस होने के बाद यह क्या जहालत है। क्या तुम इसी हालत में कुफ़्र की तरफ़ लौट जाना चाहते हो? सब सचेत हुए और समझा कि यह शैतानी हरकत थी, और एक दूसरे के गले लगकर बहुत रोये और तौबा की। इस वाकिए में ये आयतें नाज़िल हुईं।

इस वाकिए को तफ़सीर रूहुल-मआ़नी में इब्ने इस्हाक़ और एक जमाअ़त ने ज़ैद बिन असलम से रिवायत किया है। यह मज़मून कई आयतों तक चला गया है, जिसमें अव्वल मलामत है उन अहले किताब पर जिन्होंने यह कार्रवाई की थी और यह मलामत बहुत ही प्रभावी अन्दाज़ से की गई है, कि इस फ़ेल पर मलामत से पहले उनके कुफ़्र पर भी मलामत की, जिसका हासिल यह हुआ कि चाहिए तो यह था कि ख़ुद भी मुसलमान हो जाते, न यह कि दूसरों को गुमराह करने की फ़िक्र में लग रहे हैं। फिर मुसलमानों को ख़िताब व तंबीह है।

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

(ऐ मुहम्मद सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम) आप (उन अहले किताब से) फ़रमा दीजिए कि ऐ अहले किताब! तुम (इस्लाम की निशानियों व हक़्क़ानियत के ज़ाहिर होने के बाद भी) क्यों इनकार करते हो अल्लाह तआ़ला के अहकाम का, (अ़क़ीदे और अहकाम इसमें सब आ गये) हालाँकि अल्लाह तआ़ला तुम्हारे सब कामों की इत्तिला रखते हैं (तुमको इससे भी डर नहीं लगता। और ऐ मुहम्मद सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम उनसे यह भी) आप फ़रमा दीजिए कि ऐ अहले किताब क्यों (हटाने की कोशिश करते) हो अल्लाह तआ़ला की राह (यानी उसके दीने

हक़) से ऐसे शख़्स को जो (इस दीने हक़ के सच्चा होने पर) ईमान ला चुका, इस तौर पर कि टेढ़ (की बातें) ढूँढ़ते हो उस राह के (अन्दर पैदा करने के) लिए (जैसा कि बयान हुए क़िस्से में कोशिश की थी, कि इस कार्रवाई से उनके दीन के अन्दर बिना वजह ना-इत्तिफ़ाक़ी जो कि गुनाह भी है और सामूहिक क़ुव्वत की बरबादी भी, और यह कि इन बखेड़ों में पड़कर दीने हक़ से उनको दूरी भी हो जाएगी) हालाँकि तुम ख़ुद भी (इस हरकत के बुरा होने की) इत्तिला रखते हो, और अल्लाह तआ़ला तुम्हारे कामों से बेख़बर नहीं (तयशुदा वक़्त पर उनकी सज़ा देंगे)।

ऐ ईमान वालो! अगर तुम कहना मानोगे किसी फ़िर्क़े का उन लोगों में से जिनको किताब दी गई है (यानी अहले किताब में से) तो वे लोग तुमको तुम्हारे ईमान लाने के बाद (एतिक़ाद में या अ़मल में) काफ़िर बना देंगे। और (भला) तुम कुफ़्र कैसे कर सकते हो (यानी तुम्हारे लिये कब सही और जायज़ हो सकता है) हालाँकि (कुफ़्र से रोकने के तमाम साधन जमा हैं, क्योंकि) तुमको अल्लाह तआ़ला के अहकाम (क़ुरआन में) पढ़कर सुनाये जाते हैं, और (फिर) तुम में अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम) मौजूद हैं (और दोनों क़वी माध्यम हैं ईमान पर क़ायम रहने के, पस तुमको चाहिए कि इन दोनों माध्यमों की तालीम व हिदायत के मुवाफ़िक़ ईमान पर और ईमान की बातों पर क़ायम रहो) और (याद रखो कि) जो शख़्स अल्लाह तआ़ला को मज़बूत पकड़ता है (यानी ईमान पर पूरा क़ायम रहता है, क्योंकि अल्लाह को मज़बूत पकड़ना यही है कि उसकी ज़ात व सिफ़ात की तस्दीक़ करे, उसके अहकाम को मज़बूत पकड़े, किसी दूसरे मुख़ालिफ़ की मुवाफ़क़त न करे) तो (ऐसा शख़्स) ज़रूर सीधे रास्ते की हिदायत किया जाता है (यानी वह सही रास्ते पर होता है, और सही रास्ते पर होना ही बुनियाद है हर बेहतरी व कामयाबी की। पस इसमें ऐसे शख़्स के लिये हर कामयाबी व बेहतरी की ख़ुशख़बरी और वायदा है)।

يَآيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوا اتَّقُوا اللّٰهَ حَقَّ تُقٰتِهٖ وَلَا تَمُوْتُنَّ اِلَّا وَاَنْتُمْ مُّسْلِمُوْنَ ۝ وَاعْتَصِمُوْا بِحَبْلِ اللّٰهِ جَمِيْعًا وَّلَا تَفَرَّقُوْا ۪ وَاذْكُرُوْا نِعْمَتَ اللّٰهِ عَلَيْكُمْ اِذْ كُنْتُمْ اَعْدَآءً فَاَلَّفَ بَيْنَ قُلُوْبِكُمْ فَاَصْبَحْتُمْ بِنِعْمَتِهٖٓ اِخْوَانًا ۚ وَكُنْتُمْ عَلٰى شَفَا حُفْرَةٍ مِّنَ النَّارِ فَاَنْقَذَكُمْ مِّنْهَا ۭ كَذٰلِكَ يُبَيِّنُ اللّٰهُ لَكُمْ اٰيٰتِهٖ لَعَلَّكُمْ تَهْتَدُوْنَ ۝

या अय्युहल्लज़ी-न आमनुत्तक़ुल्ला-ह हक़्-क़ तुक़ातिही व ला तमूतुन्-न इल्ला व अन्तुम् मुस्लिमून (102) वअ्तसिमू बि-हब्लिल्लाहि जमीअंव्-	ऐ ईमान वालो! डरते रहो अल्लाह से जैसा चाहिए उससे डरना, और न मरना मगर मुसलमान। (102) और मज़बूत पकड़ो रस्सी अल्लाह की सब मिलकर, और फूट न डालो, और याद करो एहसान

व ला तफ़र्रक़ू वज़्कुरू निअ्मतल्लाहि अ़लैकुम् इज़् कुन्तुम् अअ्दाअन् फ़-अल्ल-फ़ बै-न क़ुलूबिकुम् फ़-अस्बह्तुम् बिनिअ्मतिही इख़्वानन् व कुन्तुम् अ़ला शफ़ा हुफ़्रतिम् मिनन्नारि फ़-अन्क़-ज़कुम् मिन्हा, कज़ालि-क युबय्यिनुल्लाहु लकुम् आयातिही लअ़ल्लकुम् तह्तदून (103)	अल्लाह का अपने ऊपर जबकि थे तुम आपस में दुश्मन फिर उल्फ़त (मुहब्बत) दी तुम्हारे दिलों में, अब हो गये उसके फ़ज़्ल से भाई। और तुम थे किनारे पर एक आग के गढ़े के, फिर तुमको उससे निजात दी, इसी तरह खोलता है अल्लाह तुम पर आयतें ताकि तुम राह पाओ। (103)

इन आयतों के मज़मून का पीछे से जोड़

पहली आयतों में मुसलमानों को इस पर तंबीह (चेतावनी) की गई थी कि अहले किताब और दूसरे लोग जो तुम्हें गुमराही में मुब्तला करना चाहते हैं उनकी गुमराही से अवगत व सचेत रहकर बचने का एहतिमाम करें। इन दो आयतों में मुसलमानों की सामूहिक क़ुव्वत को मज़बूत, नाक़ाबिले तोड़ बनाने के दो अहम उसूल बतलाये गये हैं।

अव्वल तक़्वा (यानी परहेज़गारी, अल्लाह से डरना और बुरी बातों से बचना), दूसरे आपसी इत्तिफ़ाक़ व एकता, और फूट, बिखराव तथा झगड़ों से बचना।

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

ऐ ईमान वालो! अल्लाह तआ़ला से (ऐसा) डरा करो (जैसा) डरने का हक़ है। (पूरा डरने का मतलब यह है कि जिस तरह शिर्क व कुफ़्र से बचे हो इसी तरह तमाम गुनाहों से भी बचा करो, और बिना किसी शरई वजह के लड़ना गुनाह व नाफ़रमानी है तो इससे भी बचना फ़र्ज़ है) और सिवाय (कामिल) इस्लाम के (जिसका हासिल वही है जो कामिल डरने का हक़ था) और किसी हालत पर जान मत देना (यानी इसी कामिल तक़्वे और कामिल इस्लाम पर मरते दम तक क़ायम रहना)।

और मज़बूत पकड़े रहो अल्लाह तआ़ला के सिलसिले को (यानी अल्लाह तआ़ला के दीन को जिसमें अ़क़ीदे और अहकाम सब आ गये) इस तौर पर कि (तुम सब) आपस में मुत्तफ़िक़ भी रहो, (जिसकी इसी दीन में तालीम भी है) और आपस में ना-इत्तिफ़ाक़ी मत करो, (जिसकी इसी दीन में मनाही भी है)। और तुम पर जो अल्लाह तआ़ला का इनाम (हुआ) है उसको याद करो जबकि तुम (आपस में) दुश्मन थे (यानी इस्लाम से पहले, चुनाँचे औस व ख़ज़्रज के दो क़बीलों में लम्बी मुद्दत से जंग चली आती थी, और आ़म तौर पर अक्सर अ़रब के लोगों को

यही हालत थी) पस अल्लाह तआ़ला ने (अब) तुम्हारे दिलों में (एक दूसरे की उलफ़त व मुहब्बत डाल दी, सो तुम ख़ुदा तआ़ला के (इस) इनाम (दिलों के जोड़ देने) से (अब) आपस में भाई-भाई (की तरह) हो गये।

और (एक इनाम जो कि ज़िक्र हुए इनाम की भी असल और बुनियाद है, यह फ़रमाया कि) तुम लोग (बिल्कुल) दोज़ख़ के गढ़े के किनारे (ही) पर थे (यानी काफ़िर होने की वजह से दोज़ख़ से इतने क़रीब थे कि बस दोज़ख़ में जाने के लिये सिर्फ़ मरने की देर थी) सो उस (गढ़े) से अल्लाह तआ़ला ने तुम्हारी जान बचाई (यानी इस्लाम नसीब किया, जिसने जहन्नम से निजात दिलाई। तो अब तुम इन इनामों की क़द्र पहचानो और आपस के लड़ाई-झगड़ों और मरने-मारने से जो कि अल्लाह की नाफ़रमानी है, इन नेमतों को अपने से छिन जाने का सामान न करो, क्योंकि आपसी जंग व झगड़े से पहला इनाम यानी सब के दिलों का आपस में जुड़ा हुआ और मानूस होना तो ख़ुद ही ख़त्म हो जाएगा और दूसरा इनाम यानी दीने इस्लाम भी उससे कमज़ोर हो जाएगा और उसमें ख़लल आ जायेगा। और जिस तरह अल्लाह तआ़ला ने ये अहकाम स्पष्ट तौर पर बयान फ़रमाये हैं) इसी तरह अल्लाह तआ़ला तुम लोगों को अपने (और) अहकाम (भी) बयान करके बतलाते रहते हैं, ताकि तुम लोग (सही और सीधे) रास्ते पर क़ायम रहो।

मआ़रिफ़ व मसाईल

मुसलमानों की सामूहिक ताक़त के दो उसूल- तक़वा और आपसी इत्तिफ़ाक़

ऊपर बयान हुई दो आयतों में से पहली आयत में पहला उसूल और दूसरी में दूसरा उसूल बतलाया गया है। पहला उसूल जो मज़कूरा आयत ने बतलाया वह यह है कि अल्लाह तआ़ला से डरने यानी उसकी नापसन्दीदा चीज़ों से बचने की मुकम्मल पाबन्दी, जो अल्लाह तआ़ला के हक़ के मुताबिक़ हो।

लफ़्ज़ **तक़वा** दर असल अ़रबी भाषा में बचने और परहेज़ करने के मायने में आता है। इसका तर्जुमा डरना भी इस मुनासबत से किया जाता है कि जिन चीज़ों से बचने का हुक्म दिया गया है वे डरने ही की चीज़ें होती हैं, या कि उनसे अ़ज़ाबे इलाही का ख़तरा है वह डरने की चीज़ है। तक़वे के कई दर्जे हैं, मामूली दर्जा कुफ़्र व शिर्क से बचना है, इस मायने के लिहाज़ से हर मुसलमान मुत्तक़ी कहा जा सकता है अगरचे वह गुनाहों में मुब्तला हो। इस मायने के लिये भी क़ुरआन में कई जगह **लफ़्ज़ मुत्तक़ीन** और **तक़वा** इस्तेमाल हुआ है। दूसरा दर्जा जो असल में मतलूब है वह है उस चीज़ से बचना जो अल्लाह तआ़ला और उसके रसूल के नज़दीक पसन्दीदा नहीं। तक़वे के फ़ज़ाईल व बरकतें जो क़ुरआन व हदीस में आयी हैं उनका वायदा इसी दर्जे पर हुआ है।

तीसरा दर्जा तक़वे का वह आला मक़ाम है जो अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम और उनके ख़ास

नायबों औलिया-अल्लाह को नसीब होता है, कि अपने दिल को हर ग़ैरुल्लाह से बचाना और अल्लाह की याद और उसकी रज़ा हासिल करने से आबाद रखना। उक्त आयत में 'इत्तक़ुल्ला-ह' (अल्लाह से डरो) के बाद 'हक़्-क़ तुक़ातिही' (जैसा कि उससे डरने का हक़ है) का कलिमा बढ़ाया गया है, कि तक़वे का वह दर्जा हासिल करो जो हक़ है तक़वे का।

तक़्वे का हक़ क्या है?

इसकी तफ़सीर हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन मसऊद और हज़रत रबीअ़, हज़रत क़तादा और हसन बसरी रज़ियल्लाहु अ़न्हुम ने यह फ़रमाई है जो मरफ़ूअ़न् खुद रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से भी मन्क़ूल है:

حَقَّ تُقَاتِهٖ هُوَاَنْ يُّطَاعَ فَلَا يُعْصٰى وَيُذْكَرُ فَلَا يُنْسٰى وَيُشْكَرُ فَلَا يُكْفَرُ. (بحرمحيط)

कि "तक़्वे का हक़ यह है कि अल्लाह की इताअ़त हर काम में की जाये, कोई काम नेकी के ख़िलाफ़ न हो, और उसको हमेशा याद रखें कभी भूलें नहीं, और उसका शुक्र हमेशा अदा करें कभी नाशुक्री न करें।"

इसी मफ़्हूम को तफ़सीर के इमामों ने दूसरे उनवानों से भी अदा किया है। जैसे कुछ हज़रात ने फ़रमाया कि तक़वे का हक़ यह है कि अल्लाह तआ़ला के मामले में किसी की मलामत और बुराई की परवाह न करे और हमेशा इन्साफ़ पर क़ायम रहे चाहे इन्साफ़ करने में खुद अपनी जान या अपनी औलाद या माँ-बाप ही का नुक़सान होता हो। और कुछ हज़रात ने फ़रमाया कि कोई आदमी उस वक़्त तक तक़वे का हक़ अदा नहीं कर सकता जब तक कि वह अपनी ज़बान को महफ़ूज़ न रखे।

और क़ुरआने करीम की एक दूसरी आयत में जो:

اِتَّقُوا اللّٰهَ مَا اسْتَطَعْتُمْ

है, "यानी अल्लाह से डरो जितना तुम्हारी ताक़त में है" तो हज़रत इब्ने अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु और हज़रत ताऊस रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने फ़रमाया कि यह दर हक़ीक़त "हक़्-क़ तुक़ातिही" की ही तफ़सीर व व्याख्या है। और मतलब यह है कि नाफ़रमानियों और गुनाहों से बचने में अपनी पूरी हिम्मत व ताक़त ख़र्च कर दे तो तक़्वे का हक़ अदा हो गया। अगर कोई शख़्स अपनी पूरी ताक़त लगाने के बाद किसी नाजायज़ काम में मुब्तला ही हो गया तो वह तक़वे के हुक़ूक़ के ख़िलाफ़ नहीं।

अगले जुमले में जो इरशाद फ़रमाया:

فَلَا تَمُوْتُنَّ اِلَّا وَاَنْتُمْ مُّسْلِمُوْنَ○

"कि मरते दम तक इस्लाम ही पर क़ायम रहना" इससे मालूम हुआ कि तक़वा दर हक़ीक़त पूरा इस्लाम ही है, कि अल्लाह तआ़ला और उसके रसूल सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की पूरी इताअ़त (फ़रमाँबरदारी) और उनकी नाफ़रमानी से मुकम्मल परहेज़ का ही नाम तक़वा है। और

इसी को इस्लाम कहा जाता है।

रहा यह मामला कि आयत में हुक्म यह है कि तुम्हारी मौत इस्लाम ही पर आनी चाहिये, इस्लाम के सिवा किसी हाल पर मौत न आनी चाहिये। तो यहाँ यह शुब्हा न किया जाये कि मौत तो आदमी के इख़्तियार में नहीं, किसी वक़्त किसी हाल में भी आ सकती है, क्योंकि हदीस में है:

كَمَا تَحْيَوْنَ تَمُوْتُوْنَ وَكَمَا تَمُوْتُوْنَ تُحْشَرُوْنَ.

यानी "जिस हालत पर तुम अपनी ज़िन्दगी गुज़ार दोगे उसी पर मौत आ जायेगी, और जिस हालत में मौत आयेगी उसी हालत में मेहशर में खड़े किये जाओगे।" तो जो शख़्स अपनी पूरी ज़िन्दगी इस्लाम पर गुज़ारने का पुख़्ता इरादा रखता है और कोशिश भर इस पर अ़मल करता है तो उसकी मौत इन्शा-अल्लाह तआ़ला इस्लाम ही पर आयेगी। हदीस की कुछ रिवायतों में जो यह आया है कि बाज़े आदमी ऐसे भी होंगे कि सारी उम्र नेक आमाल करते हुए गुज़र गई आख़िर में कोई काम ऐसा कर बैठे जिससे सारे आमाल बरबाद हो गये, यह ऐसे ही लोगों को पेश आ सकता है जिनके अ़मल में शुरू ही से इख़्लास और पुख़्तगी नहीं थी। वल्लाहु आलम

मुसलमानों की सामूहिक ताक़त का दूसरा उसूल 'आपसी इत्तिफ़ाक़'

दूसरी आयतः

وَاعْتَصِمُوْا بِحَبْلِ اللّٰهِ جَمِيْعًا.

में इसको बहुत ही स्पष्ट और हकीमाना अन्दाज़ से बयान फ़रमाया है कि सबसे पहले वह उसूल और गुर बतलाया जो इनसानों को आपस में जोड़ने और एकजुट करने का अक्सीर नुस्ख़ा है, उसके बाद आपस में मुत्तफ़िक़ (एकजुट) होने का हुक्म दिया। उसके बाद आपस के बिखराव और फूट से मना फ़रमाया।

वज़ाहत इसकी यह है कि इत्तिफ़ाक़ व इत्तिहाद (एकता व एकजुटता) एक ऐसी चीज़ है जिसके पसन्दीदा व मतलूब होने पर दुनिया के तमाम इनसान चाहे वे किसी मुल्क और किसी दौर के हों, किसी मज़हब व मस्लक से ताल्लुक़ रखते हों सब का इत्तिफ़ाक़ है, इसमें दो राय होने की संभावना ही नहीं। दुनिया में शायद कोई एक आदमी भी ऐसा न निकले जो लड़ाई-झगड़े को अपने आप में मुफ़ीद और बेहतर जानता हो। इसलिये दुनिया की हर जमाअ़त, हर पार्टी लोगों को मुत्तफ़िक़ (एकजुट) करने की ही दावत देती है। लेकिन दुनिया के हालात का तजुर्बा बतलाता है कि इत्तिफ़ाक़ के मुफ़ीद और ज़रूरी होने पर सब के इत्तिफ़ाक़ (सहमति) के बावजूद हो यह रहा है कि इनसानियत फ़िर्क़ों, गिरोहों, पार्टियों में बंटी हुई है। फिर हर फ़िर्क़े के अन्दर फ़िर्क़े और पार्टी के अन्दर पार्टियों का असीमित सिलसिला ऐसा है कि सही मायने में दो

आदमियों का इत्तिहाद व इत्तिफ़ाक़ भी एक अफ़साना बनकर रह गया है। वक़्ती स्वार्थों के तहत चन्द आदमी किसी बात पर इत्तिफ़ाक़ करते हैं, फ़ायदे और स्वार्थ पूरे हो जायें या उनमें नाकामी हो जाये तो न सिर्फ़ यह कि इत्तिफ़ाक़ ख़त्म हो जाये बल्कि फूट और दुश्मनियों की नौबत आती है।

ग़ौर किया जाये तो इसका सबब यह मालूम होगा कि हर गिरोह, हर फ़िर्क़ा और हर शख़्स लोगों को अपने ख़ुद बनाये हुए प्रोग्राम पर एकजुट और जमा करना चाहता है और जबकि दूसरे लोग अपना बनाया हुआ कोई निज़ाम व प्रोग्राम रखते हों तो वे उनसे मुत्तफ़िक़ होने की बजाय उनको अपने प्रोग्राम पर मुत्तहिद होने की दावत देते हैं इसलिये लाज़िमी तौर पर एकजुट और एक होने की हर दावत का नतीजा एक ही निकलता है यानी जमाअ़तों और अफ़राद का बिखराव और उनमें फूट, और इख़्तिलाफ़ात की दलदल में फंसी हुई इनसानियत के हाथ इसके सिवा कुछ नहीं आता कि:

मर्ज़ बढ़ता गया जूँ जूँ दवा की

इसलिये क़ुरआने हकीम ने सिर्फ़ एकता व इत्तिफ़ाक़ और संगठन व एकजुटता का वअ़ज़ (नसीहत) ही नहीं फ़रमाया बल्कि उसके हासिल करने और बाक़ी रखने का एक ऐसा इन्साफ़ पर आधारित उसूल भी बता दिया जिसके मानने से किसी गिरोह को इख़्तिलाफ़ (विरोध और मतभेद) नहीं होना चाहिये, वह यह कि किसी इनसानी दिमाग़ या चन्द इनसानों के बनाये हुए निज़ाम व प्रोग्राम को दूसरे इनसानों पर थोप कर उनसे यह उम्मीद रखना कि वे सब उस पर सहमत हो जायेंगे, अ़क़्ल व इन्साफ़ के ख़िलाफ़ और अपने आपको धोखा देने के सिवा कुछ नहीं, अलबत्ता रब्बुल-आ़लमीन का दिया हुआ निज़ाम व प्रोग्राम ज़रूर ऐसी चीज़ है कि उस पर सब इनसानों को मुत्तफ़िक़ (सहमत और जमा) होना ही चाहिये। कोई अ़क़्लमन्द इनसान इससे उसूलन इनकार नहीं कर सकता। अब अगर इख़्तिलाफ़ात की कोई राह बाक़ी रहती है तो वह सिर्फ़ इस बात के पहचानने में हो सकती है कि अहकमुल-हाकिमीन रब्बुल-आ़लमीन का भेजा हुआ निज़ाम क्या और कौनसा है? यहूदी तौरात के निज़ाम (क़ानून और शरीअ़त) को, ईसाई इन्जील के निज़ाम को ख़ुदा तआ़ला का भेजा हुआ और तामील के लिये वाजिब बतलाते हैं, यहाँ तक कि मुश्रिकों की अनेक जमाअ़तें भी अपनी-अपनी मज़हबी रस्मों को ख़ुदा तआ़ला ही की तरफ़ मन्सूब करती हैं।

लेकिन अव्वल तो अगर इनसान अपने गिरोही व जमाअ़ती तास्सुब (दलीय पक्षपात) और बाप-दादा की पैरवी से ज़रा ऊपर होकर ख़ुदा की दी हुई अपनी अ़क़्ल से काम ले तो यह हक़ीक़त बेनक़ाब होकर उसके सामने आ जाती है कि ख़ातिमुल-अम्बिया सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम जो अल्लाह तआ़ला का आख़िरी प्याम क़ुरआन की सूरत में लाये हैं आज उसके सिवा कोई निज़ाम (शरीअ़त और क़ानून) ख़ुदा तआ़ला के नज़दीक मक़बूल नहीं। इससे भी हटकर देखा जाये तो इस वक़्त मुख़ातब मुसलमान हैं जिनका इस पर ईमान है कि आज क़ुरआने करीम की ज़िन्दगी का एक ऐसा निज़ाम और क़ानून है जो बिला शुब्हा अल्लाह तआ़ल की तरफ़ से

भेजा हुआ है, और चूँकि ख़ुद हक़ तआ़ला ने इसकी हिफ़ाज़त का ज़िम्मा लिया है इसलिये क़ियामत तक इसमें किसी क़िस्म की तहरीफ़ व तग़य्युर (तब्दीली और रद्दोबदल) की भी संभावना नहीं। इसलिये फ़िलहाल मैं ग़ैर-मुस्लिम जमाअ़तों की बहस को छोड़कर क़ुरआने करीम पर ईमान रखने वाले मुसलमानों ही से कहता हूँ कि उनके लिये तो सिर्फ़ यही अ़मल का क़ानून और निज़ाम है, अगर मुसलमानों की विभिन्न पार्टियाँ क़ुरआने करीम के निज़ाम पर मुत्तफ़िक़ हो जायें तो हज़ारों गिरोही, नस्ली और वतनी झगड़े एक पल में ख़त्म हो सकते हैं, जो इनसानियत की तरक़्क़ी की राह में रोड़ा और बाधा हैं। अब अगर मुसलमानों में कोई आपसी विवाद रहेगा तो वह सिर्फ़ क़ुरआन के समझने और उसकी ताबीर में रह सकता है, और अगर ऐसा इख़्तिलाफ़ (मतभेद) हदों के अन्दर रहे भी तो न वह बुरा है और न इनसान की सामूहिक व सामाजिक ज़िन्दगी के लिये नुक़सानदेह, बल्कि ऐसा राय का इख़्तिलाफ़ अ़क़्लमन्दों के दरमियान रहना स्वभाविक चीज़ है, सो उस पर क़ाबू पाना और हदों के अन्दर रखना कुछ दुश्वार नहीं। और अगर इसके विपरीत क़ुरआनी निज़ाम से आज़ाद होकर हमारी पार्टियाँ लड़ती रहीं तो उस वक़्त मुख़ालफ़त व झगड़े का कोई इलाज नहीं रहता, और इसी झगड़े व बिखराव को क़ुरआने करीम ने सख़्ती के साथ मना फ़रमाया है। आज इसी क़ुरआनी उसूल को नज़र-अन्दाज़ कर देने की वजह से हमारी पूरी मिल्लत बिखराव, फूट और टुकड़े हो जाने में फंसकर बरबाद हो रही है। क़ुरआने करीम की आयते मज़कूरा में इस बिखराव और आपसी फूट को मिटाने का अक्सीर नुस्ख़ा इस तरह बतलाया है:

وَاعْتَصِمُوْا بِحَبْلِ اللّٰهِ جَمِيْعًا.

"यानी अल्लाह की रस्सी को सब मिलकर मज़बूत थामो।"

अल्लाह की रस्सी से मुराद क़ुरआने मजीद है। हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन मसऊद रज़ियल्लाहु अ़न्हु रिवायत करते हैं कि हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमायाः

كِتَابُ اللّٰهِ هُوَ حَبْلُ اللّٰهِ الْمَمْدُوْدُ مِنَ السَّمَآءِ إِلَى الْأَرْضِ.

"यानी किताबुल्लाह अल्लाह तआ़ला की रस्सी है, जो आसमान से ज़मीन तक लटकी हुई है।" (इब्ने कसीर)

हज़रत ज़ैद बिन अरक़म रज़ियल्लाहु अ़न्हु की रिवायत में "हब्लुल्लाहि हुवल-क़ुरआनु" के अलफ़ाज़ आये हैं (यानी अल्लाह की रस्सी से मुराद क़ुरआन है)। (इब्ने कसीर)

अ़रबी भाषा के मुहावरे में हब्ल से मुराद अ़हद भी होता है और मुतलक़ तौर पर हर वह चीज़ जो माध्यम या वसीले का काम दे सके। क़ुरआन को या दीन को रस्सी से इसलिये ताबीर किया गया कि यही वह रिश्ता है जो एक तरफ़ ईमान वालों का ताल्लुक़ अल्लाह तआ़ला से क़ायम करता है और दूसरी तरफ़ तमाम ईमान वालों को आपस में मिलाकर एक जमाअ़त बनाता है।

हासिल यह है कि क़ुरआन के इस एक जुमले में दो हकीमाना उसूल बतलाये गये- एक यह

कि हर इनसान पर लाज़िम है कि अल्लाह तआ़ला के भेजे हुए ज़िन्दगी के निज़ाम यानी क़ुरआन पर मज़बूती से आ़मिल हो, दूसरे यह कि सब मुसलमान मिलकर इस पर अ़मल करें, जिसका लाज़िमी नतीजा यह है कि सब मुसलमान आपस में मुत्तफ़िक़ व मुत्तहिद (एकजुट) और संगठित हो जायें, जैसे कोई जमाअ़त एक रस्सी को पकड़े हुए हो तो पूरी जमाअ़त एक वाहिद जिस्म बन जाती है। क़ुरआने करीम ने एक दूसरी आयत में इसको और ज़्यादा स्पष्ट अन्दाज़ से इस तरह बयान फ़रमाया है:

اِنَّ الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا وَعَمِلُوا الصّٰلِحٰتِ سَيَجْعَلُ لَهُمُ الرَّحْمٰنُ وُدًّا○ (١٩: ٩٦)

"यानी जो लोग ईमान लायें और नेक अ़मल करें अल्लाह तआ़ला उनमें आपस में दोस्ती व मुहब्बत पैदा फ़रमा देते हैं।"

फिर इसमें एक बारीक इशारा और मिसाल भी है कि मुसलमान जब अल्लाह की किताब से मज़बूती से चिमट रहे हों तो इसकी मिसाल उस हालत जैसी है जो किसी बुलन्दी पर चढ़ते वक़्त एक मज़बूत रस्सी को पकड़ लें और हलाकत से महफ़ूज़ रहें। लिहाज़ा इशारा फ़रमाया कि अगर सब मिलकर इसको पूरी क़ुव्वत से पकड़े रहोगे तो कोई शैतान तुम में बुराई उभारने में कामयाब न हो सकेगा, और व्यक्तिगत ज़िन्दगी की तरह मुस्लिम क़ौम की सामूहिक ताक़त भी न लड़खड़ाने वाली और अजय हो जायेगी (यानी जिस पर कोई फ़तह न पा सके)। क़ुरआने करीम से मज़बूती के साथ जुड़ना ही वह चीज़ है जिससे बिखरी हुई ताक़तें जमा होती हैं और एक मुर्दा क़ौम नई ज़िन्दगी हासिल कर लेती है, और इससे हटकर उनकी क़ौमी व सामूहिक ज़िन्दगी तो तबाह हो ही जायेगी और इसके बाद व्यक्तिगत व निजी ज़िन्दगी की भी कोई ख़ैर नहीं।

पूरी मुस्लिम क़ौम का इत्तिफ़ाक़ सिर्फ़ इस्लाम ही की बुनियाद पर हो सकता है, नसबी और वतनी एकता से यह काम नहीं हो सकता

यहाँ सबसे पहले यह जानना लाज़िमी है कि एकता व इत्तिफ़ाक़ के लिये ज़रूरी है कि उस एकता का कोई मर्कज़ (केन्द्र) हो, फिर एकता के केन्द्र के बारे में दुनिया की क़ौमों के रास्ते अलग-अलग और भिन्न हैं। कहीं नस्ली और नसबी (ख़ानदानी) रिश्तों को एकता का मर्कज़ समझा गया जैसे अ़रब के क़बीलों की एकता थी कि क़ुरैश एक क़ौम और बनू तमीम दूसरी क़ौम समझी जाती थी। और कहीं रंग का भेद इस एकता का मर्कज़ (केन्द्र) बन रहा था कि काले लोग एक क़ौम और गोरे दूसरी क़ौम समझे जाते। कहीं क्षेत्रीय और भाषाई एकता को एकजुटता का केन्द्र बनाया हुआ था कि हिन्दी एक क़ौम और अ़रबी दूसरी क़ौम। कहीं बाप-दादा से चली आ रही रस्मों व रिवाजों को एकता का केन्द्र बनाया गया था कि जो उन रस्मों के पाबन्द हैं वे एक क़ौम और जो उनके पाबन्द नहीं वे दूसरी क़ौम, जैसे हिन्दुस्तान के हिन्दू और आर्य समाजी वग़ैरह।

क़ुरआने करीम ने इन सब को छोड़कर एकता का मर्कज़ हब्लुल्लाह (अल्लाह की रस्सी)

क़ुरआने करीम को यानी अल्लाह तआ़ला के भेजे हुए स्थिर निज़ाम को क़रार दिया, और दोटूक फ़ैसला कर दिया कि मोमिन एक क़ौम है जो अल्लाह की रस्सी (क़ुरआने मजीद) से जुड़ा है, और काफ़िर दूसरी क़ौम जो इस मज़बूत रस्सी से जुड़ा हुआ नहीं:

خَلَقَكُمْ فَمِنْكُمْ كَافِرٌ وَّمِنْكُمْ مُّؤْمِنٌ. (٣:٦٤)

का यही मतलब है। भूगोलिक और क्षेत्रीय एकतायें हरगिज़ इस क़ाबिल नहीं कि उनको एकता और संगठित होने का मर्कज़ (केन्द्र) बनाया जाये। क्योंकि वे एकतायें उमूमन ग़ैर-इख़्तियारी चीज़ें हैं, जिनको कोई इनसान अपनी कोशिश व अ़मल से हासिल नहीं कर सकता। जो काला है वह गोरा नहीं हो सकता, जो क़ुरैशी है वह तमीमी नहीं बन सकता, जो हिन्दी है वह अ़रबी नहीं बन सकता। इसलिये ऐसी एकतायें बहुत ही सीमित दायरे में हो सकती हैं इनका दायरा कभी और कहीं पूरी इनसानियत को अपनी वुस्अ़त में लेकर पूरी दुनिया को एक केन्द्र पर जमा करने का दावा कर ही नहीं सकता। इसलिये क़ुरआने करीम ने एकता का केन्द्र हब्लुल्लाह यानी क़ुरआन और ख़ुदा तआ़ला के भेजे हुए ज़िन्दगी के निज़ाम (क़ानून और शरीअ़त) को बनाया, जिसका इख़्तियार करना इख़्तियारी चीज़ है। कोई पूरब का रहने वाला हो या पश्चिम का, गोरा हो या काला, अ़रबी भाषा बोलता हो या हिन्दी व अंग्रेज़ी, किसी क़बीले किसी ख़ानदान का हो हर शख़्स इस माक़ूल और सही एकता के केन्द्र को इख़्तियार कर सकता है, और दुनिया भर के पूरे इनसान इस एकता के मर्कज़ पर जमा होकर भाई भाई बन सकते हैं। और अगर वे बाप-दादा के रस्म व रिवाज से ज़रा ऊपर होकर ग़ौर करें तो उनको इसके सिवा कोई माक़ूल और सही राह ही न मिलेगी कि ख़ुदा तआ़ला के भेजे हुए निज़ाम (क़ानून) को पहचानें और उसकी पैरवी करके अल्लाह की रस्सी को मज़बूती से थाम लें।

जिसका नतीजा एक तरफ़ यह होगा कि पूरी इनसानियत एक मज़बूत व स्थिर एकता के बन्धन में बंध जायेगी, दूसरा यह कि उस एकता का हर फ़र्द अल्लाह तआ़ला के भेजे हुए निज़ाम के मुताबिक़ अपने आमाल व अख़्लाक़ की इस्लाह (दुरुस्ती) करके अपनी दुनियावी और दीनी ज़िन्दगी को दुरुस्त कर लेगा। यह वह हकीमाना उसूल है जिसको लेकर एक मुसलमान सारी दुनिया की क़ौमों को ललकार सकता है कि यही सही रास्ता है, इस तरफ़ आओ। और मुसलमान इस पर जितना भी फ़ख़्र (गर्व) करें बजा है, लेकिन अफ़सोस है कि यूरोप वालों की गहरी साज़िश जो इस्लामी एकता को टुकड़े-टुकड़े करने के लिये सदियों से चल रही है वह ख़ुद इस्लाम के दावेदारों में कामयाब हो गई, अब उम्मते इस्लामिया की एकता अ़रबी, मिस्री, हिन्दी, सिंधी में बंटकर पारा-पारा हो गई। क़ुरआने करीम की यह आयत हर वक़्त और हर जगह इन सब को बुलन्द आवाज़ से यह दावत दे रही है कि यह जाहिलाना विशेषतायें और फ़र्क़ दर हक़ीक़त न विशेषतायें हैं और न इनकी बुनियाद पर क़ायम होने वाली एकता कोई माक़ूल (व्यापक) एकता है। इसलिये अल्लाह की रस्सी को मज़बूत थामने की एकता इख़्तियार करें, जिसने उनको पहले भी सारी दुनिया में ग़ालिब, बरतर और सर-बुलन्द बनाया और अगर फिर

उनकी क़िस्मत में कोई ख़ैर मुक़द्दर है तो वह इसी रास्ते से मिल सकती है।

ग़र्ज़ कि इस आयत में मुसलमानों को दो हिदायतें दी गई हैं- अव्वल यह कि अल्लाह तआ़ला के भेजे हुए ज़िन्दगी के निज़ाम (यानी इस्लामी शरीअ़त) के पाबन्द हो जायें। दूसरे यह कि सब मिलकर मज़बूती के साथ इस निज़ाम को थाम लें ताकि मिल्लते इस्लामिया का शीराज़ा अपने आप संगठित हो जाये, जैसा कि इस्लाम के शुरू के दौर में इसको खुली आँखों देखा जा चुका है।

मुसलमानों में इत्तिफ़ाक़ के इख़्तियार किये जाने के क़ाबिल पहलू की वज़ाहत के बाद फ़रमायाः

وَلَا تَفَرَّقُوْا

"आपस में ना-इत्तिफ़ाक़ी न करो" क़ुरआने करीम का यह हकीमाना अन्दाज़ है कि वह जहाँ अच्छी बातें इख़्तियार करने के पहलू को वाज़ेह करता है वहीं उसके उलट और मुख़ालिफ़ चीज़ों से मना फ़रमाता है। चुनाँचे एक दूसरी आयत में इरशाद फ़रमायाः

وَاَنَّ هٰذَا صِرَاطِیْ مُسْتَقِیْمًا فَاتَّبِعُوْهُ، وَلَا تَتَّبِعُوا السُّبُلَ فَتَفَرَّقَ بِكُمْ عَنْ سَبِيْلِهٖ. (٦:١٥٤)

इस आयत में भी 'सिराते मुस्तक़ीम' (सीधे रास्ते) पर क़ायम रहने की तल्क़ीन (तालीम व हिदायत) है और अपनी इच्छाओं से प्रभावित होकर खुद बनाये और गढ़े हुए रास्तों पर चलने की मनाही। ना-इत्तिफ़ाक़ी किसी क़ौम की हलाकत का सबसे पहला और आख़िरी सबब है, इसी लिये क़ुरआने करीम ने बार-बार विभिन्न अन्दाज़ और तरीक़ों से इसकी मनाही फ़रमाई है।

एक दूसरी आयत में फ़रमायाः

اِنَّ الَّذِيْنَ فَرَّقُوْا دِيْنَهُمْ وَكَانُوْا شِيَعًا لَّسْتَ مِنْهُمْ فِىْ شَىْءٍ. (١٦:١٦٠)

"यानी जिन लोगों ने अपने दीन में तफ़र्क़े (फूट और बिखराव) डाले और मुख़्तलिफ़ पार्टियों में तक़सीम हो गये, आप (सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम) का उनसे कोई ताल्लुक़ और कोई वास्ता नहीं।"

इसके अ़लावा अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम की उम्मतों के वाक़िआ़त को नक़ल फ़रमाया कि किस तरह वे उम्मतें आपसी झगड़ों, विवादों और बिखराव के कारण ज़िन्दगी के मक़सद से रुख़ बदलकर दुनिया व आख़िरत की रुस्वाईयों में मुब्तला हो चुकी हैं।

हुज़ूरे अकरम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने इरशाद फ़रमाया कि अल्लाह तआ़ला ने तुम्हारे लिये तीन चीज़ों को पसन्द फ़रमाया है और तीन चीज़ों को ना-पसन्द। पसन्दीदा चीज़ें ये हैं:

1. यह कि तुम इबादत अल्लाह तआ़ला के लिये करो और उसके साथ किसी को शरीक न ठहराओ।

2. यह कि अल्लाह तआ़ला की किताब को मज़बूती से थामो और ना-इत्तिफ़ाक़ी से बचो।

3. यह कि अपने हाकिमों सरदारों के हक़ में ख़ैरख़्वाही का जज़्बा रखो।

और वे तीन चीज़ें जिनसे अल्लाह तआ़ला नाराज़ होते हैं ये हैं:

1. बिना ज़रूरत कहना-सुनना और बहस-मुबाहसा।

2. बिना ज़रूरत किसी से सवाल करना।

3. माल का बरबाद करना। (इब्ने कसीर हज़रत अबू हुरैरह रज़ियल्लाहु अन्हु के हवाले से)

अब सवाल यह रह जाता है कि क्या हर इख़्तिलाफ़ (मतभेद) बुरा है? या कोई मतभेद ऐसा भी है जो बुरा नहीं। जवाब यह है कि हर इख़्तिलाफ़ बुरा नहीं है बल्कि बुरा वह इख़्तिलाफ़ है कि जिसमें अपनी इच्छाओं और स्वार्थों की बिना पर क़ुरआन से दूर रहकर सोचा जाये। लेकिन अगर क़ुरआन पर केन्द्रित रहते हुए और हुज़ूरे अकरम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की वज़ाहत व तफ़सील को क़ुबूल करते हुए अपनी फ़ितरी क्षमताओं और दिमाग़ी सलाहियतों की बिना पर ऊपर की बातों और मसाईल में इख़्तिलाफ़ (मतभेद) किया जाये तो यह इख़्तिलाफ़ फ़ितरी है और इस्लाम इससे मना नहीं करता। सहाबा रज़ियल्लाहु अन्हुम, ताबिईन हज़रात और फ़िक़ा के इमामों का इख़्तिलाफ़ इसी क़िस्म का इख़्तिलाफ़ था और इसी इख़्तिलाफ़ को रहमत क़रार दिया गया। हाँ अगर उन्हीं फ़रूई (निकलने वाले अहकाम व मसाईल की) बहसों को असल दीन क़रार दिया जाये और उनमें इख़्तिलाफ़ (मतभेद) को लड़ाई-झगड़े, मरने-मारने और गाली-गलोज का ज़रिया बना लिया जाये तो यह भी बुरा और निंदनीय है।

आपसी इत्तिहाद के इन दोनों पहलुओं को स्पष्ट करने के बाद उस हालत की तरफ़ इशारा किया गया जिसमें इस्लाम से पहले अ़रब वाले मुब्तला थे। क़बीलों की आपसी दुश्मनियाँ, बात-बात पर उनकी लड़ाईयाँ और दिन रात की मार-काट की बदौलत क़रीब था कि पूरी अ़रब क़ौम नेस्त व नाबूद हो जाती, उस आग में जल मरने से अगर किसी चीज़ ने उन्हें बचाया तो वह यही इस्लाम की नेमत थी। चुनाँचे फ़रमाया गयाः

وَاذْكُرُوْا نِعْمَةَ اللّٰهِ عَلَيْكُمْ اِذْ كُنْتُمْ اَعْدَآءً فَاَلَّفَ بَيْنَ قُلُوْبِكُمْ فَاَصْبَحْتُمْ بِنِعْمَتِهٖٓ اِخْوَانًا، وَكُنْتُمْ عَلٰى شَفَا حُفْرَةٍ مِّنَ النَّارِ فَاَنْقَذَكُمْ مِّنْهَا.

"यानी अल्लाह का यह इनाम अपने ऊपर याद रखो कि जब तुम आपस में दुश्मन थे तो उसने तुम्हारे दिलों में उलफ़त (मुहब्बत) डाल दी, सो तुम उसके इनाम से आपस में भाई-भाई बन गये। और तुम दोज़ख़ के गढ़े के किनारे पर थे सो उसने तुम्हें उससे बचा लिया।"

यानी सदियों की दुश्मनियाँ और दिलों के कीने निकाल कर ख़ुदा तआ़ला ने इस्लाम और नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की बरकत से भाई-भाई बना दिया, जिससे तुम्हारे दीन व दुनिया दुरुस्त हो गये और ऐसी दोस्ती क़ायम हो गई जिसे देखकर तुम्हारे दुश्मन मरऊब हुए और यह भाई-चारे की फ़िज़ा और एकता ख़ुदा की इतनी बड़ी नेमत है जो रू-ए-ज़मीन का ख़ज़ाना ख़र्च करके भी मयस्सर न आ सकती थी।

इस आयत के नाज़िल होने के वाक़िए में जैसा कि ज़िक्र किया गया कि शरीर लोगों ने जो **औस व ख़ज़्रज** के क़बीलों को पिछली जंग याद दिलाकर फ़साद बरपा करना चाहा था आयते मज़कूरा में उसका मुकम्मल इलाज हो गया, परिणामों और इस्लाम के ज़रिये उनसे रिहाई का

बयान फ़रमा दिया।

मुसलमानों का आपसी इत्तिहाद अल्लाह तआ़ला की फ़रमाँबरदारी पर निर्भर है

क़ुरआने करीम के इस इरशाद से एक और हक़ीक़त खुलकर सामने आई, वह यह कि दिलों का मालिक दर हक़ीक़त अल्लाह जल्ल शानुहू है, दिलों के अन्दर मुहब्बत या नफ़रत पैदा करना उसी का काम है, किसी जमाअ़त के दिलों में आपसी मुहब्बत और दोस्ती पैदा करना अल्लाह का ख़ालिस इनाम है, और यह भी ज़ाहिर है कि अल्लाह तआ़ला का इनाम सिर्फ़ उसकी इताअ़त व फ़रमाँबरदारी ही से हासिल हो सकता है, गुनाह व नाफ़रमानी के साथ यह इनाम नहीं मिल सकता।

इसका नतीजा यह भी हुआ कि अगर मुसलमान स्थिर संगठन और इत्तिहाद चाहते हैं तो इसका ज़रिया सिर्फ़ यह है कि अल्लाह तआ़ला की इताअ़त व फ़रमाँबरदारी को अपना शिआ़र बना लें, इसी तरफ़ इशारा करने के लिये आयत के आख़िर में इरशाद फ़रमाया है:

كَذٰلِكَ يُبَيِّنُ اللّٰهُ لَكُمْ اٰيٰتِهٖ لَعَلَّكُمْ تَهْتَدُوْنَ○

यानी इसी तरह अल्लाह तआ़ला तुम लोगों के लिये तथ्य और वास्तविकतायें खोलकर बयान फ़रमाते हैं ताकि तुम लोग सही राह पर रहो।

وَلْتَكُنْ مِّنْكُمْ اُمَّةٌ يَّدْعُوْنَ اِلَى الْخَيْرِ وَيَاْمُرُوْنَ بِالْمَعْرُوْفِ وَيَنْهَوْنَ عَنِ الْمُنْكَرِ ۚ وَاُولٰٓئِكَ هُمُ الْمُفْلِحُوْنَ ۞ وَلَا تَكُوْنُوْا كَالَّذِيْنَ تَفَرَّقُوْا وَاخْتَلَفُوْا مِنْۢ بَعْدِ مَا جَآءَهُمُ الْبَيِّنٰتُ ۚ وَاُولٰٓئِكَ لَهُمْ عَذَابٌ عَظِيْمٌ ۞

वल्तकुम् मिन्कुम् उम्मतुंय्यद्अ़ू-न इलल्ख़ैरि व यअ्मुरू-न बिल्मअ़्रूफ़ि व यन्हौ-न अ़निल्मुन्करि, व उलाइ-क हुमुल् मुफ़्लिहून (104) व ला तकूनू कल्लज़ी-न तफ़र्रक़ू वख़्त-लफ़ू मिम्-बअ़्दि मा जा-अहुमुल्-बय्यिनातु, व उलाइ-क लहुम् अ़ज़ाबुन् अ़ज़ीम (105)	और चाहिए कि रहे तुम में एक जमाअ़त ऐसी जो बुलाती रहे नेक काम की तरफ़ और हुक्म करती रहे अच्छे कामों का और मना करें बुराई से, और वही पहुँचे अपनी मुराद को। (104) और मत हो उनकी तरह जो बिखर गये और इख़्तिलाफ़ करने लगे इसके बाद कि पहुँच चुके उनको साफ़ हुक्म, और उनको बड़ा अ़ज़ाब है। (105)

इन आयतों के मज़मून का पीछे से ताल्लुक़

पिछली दो आयतों में मुसलमानों की सामूहिक कामयाबी व बेहतरी के दो उसूल बतलाये गये थे, जिनमें हर फ़र्द को एक ख़ास अन्दाज़ से अपनी इस्लाह (सुधार व बेहतरी) करने की हिदायत थी, कि हर शख़्स तक़वा इख़्तियार करे और अल्लाह तआ़ला के सिलसिले (इस्लाम) से जुड़ जाये। इस तरह व्यक्तिगत सुधार के साथ-साथ ख़ुद-ब-ख़ुद एक सामूहिक क़ुव्वत भी मुसलमानों को हासिल हो जायेगी। मज़कूरा दो आयतों में इसी कामयाबी व बेहतरी के निज़ाम का आख़िरी हिस्सा इस तरह बयान किया गया है कि मुसलमान सिर्फ़ अपने आमाल व अफ़आ़ल की इस्लाह (सुधार) पर बस न करें बल्कि साथ-साथ अपने दूसरे भाईयों की इस्लाह की फ़िक्र भी रखें। इसी सूरत से पूरी क़ौम की इस्लाह भी होगी, और इत्तिहाद व मेलजोल को स्थिरता व बक़ा भी होगी।

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

और तुम में एक ऐसी जमाअ़त होना ज़रूरी है जो कि (और लोगों को भी) ख़ैर की तरफ़ बुलाया करें और नेक कामों के करने को कहा करें और बुरे कामों से रोका करें। और ऐसे लोग (आख़िरत में सवाब से) पूरे कामयाब होंगे। और तुम लोग उन लोगों की तरह मत हो जाना जिन्होंने (दीन में) आपस में तफ़रीक़ कर ली, और (नफ़्सानियत से) आपस में इख़्तिलाफ़ कर लिया, उनके पास स्पष्ट अहकाम पहुँचने के बाद, और उन लोगों के लिए बड़ी सज़ा होगी (यानी क़ियामत के दिन)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

मुसलमानों की क़ौमी और सामूहिक कामयाबी दो चीज़ों पर निर्भर है

पहले तक़वे और अल्लाह की रस्सी को मज़बूत पकड़ने के ज़रिये अपने को दुरुस्त करना, दूसरे दावत व तब्लीग़ के ज़रिये दूसरों की इस्लाह (सुधार)।

आयत 'वल्तकुम्-मिन्कुम उम्मतुन्......' (यानी आयत 104) में इसी दूसरी हिदायत का बयान है। गोया इन दोनों आयतों का ख़ुलासा यह हुआ कि ख़ुद भी अपने आमाल व अख़्लाक़ को अल्लाह तआ़ला के भेजे हुए क़ानून के मुताबिक़ दुरुस्त करो और अपने दूसरे भाईयों के आमाल को दुरुस्त करने की भी फ़िक्र रखो। यही मज़मून है जो सूरः अ़स्र में इरशाद फ़रमाया है:

إِلَّا الَّذِينَ آمَنُوا وَعَمِلُوا الصّٰلِحٰتِ وَتَوَاصَوْا بِالْحَقِّ وَتَوَاصَوْا بِالصَّبْرِ ○

"यानी आख़िरत के ख़सारे (घाटे और नुक़सान उठाने) से सिर्फ़ वे लोग महफ़ूज़ हैं जो ख़ुद भी ईमान और नेक अ़मल के पाबन्द हैं और दूसरों को भी सही अ़क़ीदों और नेक आमाल की हिदायत करते रहते हैं।"

क़ौमी और सामूहिक ज़िन्दगी के लिये जिस तरह यह ज़रूरी था कि उनका कोई एकता का मज़बूत व स्थिर रिश्ता हो जिसको पहली आयत में अल्लाह की रस्सी के साथ मज़बूती से जुड़ने के अलफ़ाज़ से वाज़ेह फ़रमाया गया है, इसी तरह रिश्ते को क़ायम और बाक़ी रखने के लिये यह दूसरा अ़मल भी ज़रूरी है जो इस आयत में इरशाद फ़रमाया गया है, यानी दूसरे भाईयों को क़ुरआन व सुन्नत के अहकाम के मुताबिक़ अच्छे कामों की हिदायत और बुरे कामों से रुकने को हर शख़्स अपना फ़रीज़ा समझे ताकि यह अल्लाह की रस्सी (यानी अल्लाह का क़ानून) उसके हाथ से छूट न जाये, क्योंकि बक़ौल उस्तादे मरहूम शैख़ुल-इस्लाम मौलाना शब्बीर अहमद उस्मानी रहमतुल्लाहि अ़लैहि "अल्लाह तआ़ला की यह रस्सी टूट तो नहीं सकती हाँ छूट सकती है।" इसलिये क़ुरआने करीम ने इस रस्सी के छूट जाने के ख़तरे को देखते हुए यह हिदायत जारी फ़रमाई कि हर मुसलमान जिस तरह ख़ुद नेक अ़मल करने को और गुनाह से बचने को अपना फ़र्ज़ समझता है, इसको भी ज़रूरी समझे कि दूसरे लोगों को भी नेक अ़मल की हिदायत और बुरे आमाल से रोकने की कोशिश करता रहे। जिसका नतीजा यह होगा कि ये सब मिलकर मज़बूती के साथ (दीन की) मज़बूत रस्सी को थामे रहेंगे और इसके नतीजे में दुनिया व आख़िरत की कामयाबी उनके साथ होगी। अपनी इस्लाह (सुधार) के साथ दूसरों की इस्लाह की ज़िम्मेदारी हर मुसलमान पर डालने के लिये क़ुरआने करीम में बहुत से वाज़ेह इरशादात आये हैं। सूरः अ़स्र का मज़मून अभी आप पढ़ चुके हैं और इसी सूरः आले इमरान में (आयत 110 के अन्दर) इरशाद है:

كُنْتُمْ خَيْرَ اُمَّةٍ اُخْرِجَتْ لِلنَّاسِ تَاْمُرُوْنَ بِالْمَعْرُوْفِ وَتَنْهَوْنَ عَنِ الْمُنْكَرِ. (٣: ١١٠)

"तुम बेहतरीन उम्मत हो जो लोगों के लिये निकाली गई है, क्योंकि तुम नेक कामों का लोगों को हुक्म करते हो और बुरे कामों से रोकते हो।"

इसमें भी पूरी उम्मत पर 'अमर बिल्-मअ़रूफ़' (अच्छे कामों का हुक्म करने) और 'नही अ़निल-मुन्कर' (बुरे कामों से रोकने) का फ़रीज़ा लागू किया गया है, और दूसरी उम्मतों पर इसकी फ़ज़ीलत का सबब ही इस ख़ास काम को बतलाया गया है। इसी तरह रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के इरशादात इस बारे में बेशुमार हैं। तिर्मिज़ी और इब्ने माजा वग़ैरह की रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमायाः

وَالَّذِىْ نَفْسِىْ بِيَدِهٖ لَتَاْمُرُنَّ بِالْمَعْرُوْفِ وَلَتَنْهَوُنَّ عَنِ الْمُنْكَرِ اَوْلَيُوْشِكَنَّ اللّٰهُ اَنْ يَّبْعَثَ عَلَيْكُمْ عِقَابًا مِّنْ عِنْدِهٖ ثُمَّ لَتَدْعُنَّهٗ فَلَا يَسْتَجِيْبُ لَكُمْ.

"क़सम है उस ज़ात की जिसके क़ब्ज़े में मेरी जान है कि तुम ज़रूर 'अमर बिल-मअ़रूफ़' और 'नही अ़निल-मुन्कर' करते रहो, वरना क़रीब है कि अल्लाह तआ़ला गुनाहगारों के साथ तुम सब पर भी अपना अ़ज़ाब भेज दे। उस वक़्त तुम ख़ुदा तआ़ला से दुआ़ माँगोगे तो क़ुबूल न होगी।"

एक हदीस में रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का इरशाद है:

مَنْ رَاٰى مِنْكُمْ مُنْكَرًا فَلْيُغَيِّرْهُ بِيَدِهٖ فَاِنْ لَّمْ يَسْتَطِعْ فَبِلِسَانِهٖ وَاِنْ لَّمْ يَسْتَطِعْ فَبِقَلْبِهٖ وَذٰلِكَ اَضْعَفُ الْاِيْمَانِ.

"यानी तुम में से जो शख़्स कोई गुनाह होता हुआ देखे तो उसको चाहिये कि अपने हाथ और ताक़त से उसको रोक दे, और अगर यह न कर सके तो ज़बान से रोके, और यह भी न कर सके तो कम से कम दिल में उस फ़ेल को बुरा समझे, और यह अदना (कम) दर्जे का ईमान है।"

इन तमाम आयतों और रिवायतों से यही साबित हुआ कि 'अमर बिल्-मअ़रूफ़' (अच्छे कामों का हुक्म करना) और 'नही अ़निल-मुन्कर' (बुरे कामों से रोकना) उम्मत के हर फ़र्द पर लाज़िम है, अलबत्ता शरीअ़त के तमाम अहकाम की तरह इसमें भी हर शख़्स की ताक़त व गुंजाईश पर अहकाम दायर होंगे, जिसको जितनी क़ुदरत हो उतना ही 'अमर बिल्-मअ़रूफ़' (अच्छे कामों का हुक्म करने) और 'नही अ़निल-मुन्कर' (बुरे कामों से रोकने) का फ़रीज़ा उस पर लागू होगा। अभी जो हदीस आपने देखी है उसमें गुंजाईश व ताक़त ही पर मदार रखा गया है।

फिर हिम्मत व क़ुदरत हर काम की अलग-अलग होती है। 'अमर बिल्-मअ़रूफ़' (अच्छे कामों का हुक्म करने) और 'नही अ़निल-मुन्कर' (बुरे कामों से रोकने) की क़ुदरत पहले तो इसी पर मौक़ूफ़ है कि वह 'मारूफ़' (अच्छाई) व 'मुन्कर' (बुराई) उस शख़्स को पूरी तरह सही-सही मालूम हो, जिसको ख़ुद ही मारूफ़ व मुन्कर की तमीज़ न हो, या उस मसले का पूरा इल्म न हो वह अगर दूसरों को 'अमर बिल्-मअ़रूफ़' (अच्छे कामों का हुक्म) और 'नही अ़निल-मुन्कर' (बुरे कामों से रोकना) करने लगे तो ज़ाहिर है कि बजाय इस्लाह (सुधार) होने के फ़साद (ख़राबी) होगा और बहुत मुम्किन है कि वह अपनी नावाक़फ़ियत की बिना पर किसी मारूफ़ (अच्छे काम) को मना करने लगे, या मुन्कर (बुराई) का हुक्म करने लगे, इसलिये जो शख़्स ख़ुद मारूफ़ व मुन्कर से वाक़िफ़ नहीं उस पर यह फ़रीज़ा तो आयद है कि वाक़फ़ियत (जानकारी) पैदा करे और शरीअ़त के अहकाम के मारूफ़ व मुन्कर का इल्म हासिल करे और फिर उसके मुताबिक़ 'अमर बिल्-मअ़रूफ़' (अच्छे कामों का हुक्म) और 'नही अ़निल-मुन्कर' (बुरे कामों से रोकने) की ख़िदमत अन्जाम दे।

लेकिन जब तक उसको वाक़फ़ियत (इल्म और जानकारी) नहीं उसका इस ख़िदमत के लिये खड़ा होना जायज़ नहीं। जैसे इस ज़माने में बहुत से जाहिल वअ़ज़ कहने (दीनी बयान करने) के लिये खड़े हो जाते हैं, न उन्हें क़ुरआन का इल्म है न हदीस का। या बहुत से अ़वाम सुनी-सुनाई ग़लत बातों को लेकर लोगों से झगड़ने लगते हैं कि ऐसा करो, ऐसा न करो। यह तरीक़े-कार समाज के सुधार और बेहतरी के बजाय और ज़्यादा हलाकत और लड़ाई-झगड़े का सबब होता है।

इसी तरह 'अमर बिल्-मअ़रूफ़' (अच्छे कामों का हुक्म करने) की क़ुदरत में यह भी दाख़िल है कि अपने आपको कोई नाक़ाबिले बरदाश्त नुक़सान पहुँचने का प्रबल ख़तरा न हो। इसलिए हदीस में इरशाद फ़रमाया गया कि गुनाह को हाथ और क़ुव्वत से न रोक सके तो ज़बान से

रोके, और ज़बान से रोकने पर क़ुदरत न हो तो दिल से बुरा समझे। ज़ाहिर है कि ज़बान से रोकने पर क़ुदरत न होने के यह मायने तो हैं नहीं कि उसकी ज़बान हरकत नहीं कर सकती, बल्कि मुराद यही है कि उसको प्रबल ख़तरा है कि उसने हक़ बात की तालीम की तो उसकी जान जाएगी, या कोई दूसरा सख़्त क़िस्म का नुक़सान पहुँच जायेगा। ऐसी हालत में उस शख़्स को क़ादिर (समर्थ) न समझा जाएगा, और 'अमर बिल्-मअ़्रूफ़' (अच्छे कामों का हुक्म करने) और 'नही अ़निल-मुन्कर' (बुरे कामों से रोकने) के छोड़ने पर उसको गुनाहगार न कहा जाएगा। यह दूसरी बात है कि अल्लाह की राह में अपनी जान व माल की परवाह न करे और नुक़सान बरदाश्त करके भी 'अमर बिल्-मअ़्रूफ़' (अच्छे कामों का हुक्म करने) और 'नही अ़निल-मुन्कर' (बुरे कामों से रोकने) की ख़िदमत अन्जाम दे, जैसे बहुत से सहाबा रज़ियल्लाहु अ़न्हुम, ताबिईन हज़रात और दीन के इमामों के वाक़िआ़त मन्क़ूल हैं। यह उनकी उलुल-अ़ज़्मी (हिम्मत व साबित-क़दमी) और बड़ी फ़ज़ीलत है, जिससे उनका मक़ाम दुनिया व आख़िरत में बुलन्द हुआ, मगर उनके ज़िम्मे ऐसा करना फ़र्ज़ व वाजिब न था।

सूरः वल्-अ़स्र की आयत 3 और सूरः आले इमरान की आयत 110 वग़ैरह से, तथा मज़कूरा हदीसों से उम्मत के हर फ़र्द पर उसकी क़ुदरत के मुताबिक़ 'अमर बिल्-मअ़्रूफ़' (अच्छे कामों का हुक्म करना) और 'नही अ़निल-मुन्कर' (बुरे कामों से रोकना) वाजिब किया जा रहा है, लेकिन इसके वाजिब होने में यह तफ़सील है कि वाजिब बातों में मारूफ़ (अच्छाई) का हुक्म और मुन्कर (बुराई) से रोकना वाजिब और मुस्तहब बातों में मुस्तहब है। मिसाल के तौर पर पाँच वक़्त की नमाज़ फ़र्ज़ है तो हर शख़्स पर वाजिब होगा कि वह बेनमाज़ी को नसीहत करे, और नवाफ़िल मुस्तहब हैं उसकी नसीहत करना मुस्तहब होगा। इसके अ़लावा एक ज़रूरी अदब यह भी पेशे-नज़र रखना होगा कि मुस्तहब बातों और चीज़ों में पूरी तरह नर्मी से इज़हार करे, और वाजिब बातों में पहले नर्मी और न मानने पर सख़्ती की भी गुंजाईश है। आजकल लोग मुस्तहब में या मुबाह में तो सख़्ती से रोक-टोक करते हैं लेकिन वाजिब बातों और फ़राईज़ के छोड़ने पर कोई मलामत नहीं करते।

और हर शख़्स पर 'अमर बिल्-मअ़्रूफ़' (अच्छे कामों का हुक्म करने) और 'नही अ़निल-मुन्कर' (बुरे कामों से रोकने) का फ़रीज़ा उस वक़्त आ़यद होगा जबकि वह अपने सामने किसी मुन्कर (बुराई) को होते हुए देखे। जैसे एक शख़्स देख रहा है कि कोई मुसलमान शराब पी रहा है या चोरी कर रहा है या किसी ग़ैर-औ़रत से अपराधिक मेलजोल कर रहा है, तो उसके ज़िम्मे वाजिब होगा कि अपनी हिम्मत व ताक़त के मुताबिक़ उसको रोके, और अगर उसके सामने यह सब कुछ नहीं हो रहा है तो यह फ़रीज़ा उसके ज़िम्मे नहीं, बल्कि अब यह फ़रीज़ा इस्लामी हुकूमत का है कि मुजरिम के जुर्म की तफ़्तीश व तहक़ीक़ करके उसको सज़ा दे।

नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के इरशाद 'मन रआ मिन्कुम' (जो तुम में से देखे) में इसी तरफ़ इशारा है। क्योंकि इसमें इरशाद है कि जो शख़्स तुम में से किसी मुन्कर (बुराई) को देखे।

'अमर बिल्-मअ्रूफ़' (अच्छे कामों का हुक्म करने) का दूसरा दर्जा यह है कि मुसलमानों में से एक जमाअ़त ख़ास दावत व इरशाद ही के लिये क़ायम रहे, उसका काम ही यह हो कि अपने क़ौल व अ़मल से लोगों को क़ुरआन व सुन्नत की तरफ़ बुलाये और जब लोगों को अच्छे कामों में सुस्त या बुराईयों में मुब्तला देखे उस वक़्त भलाई की तरफ़ मुतवज्जह करने और बुराई से रोकने की अपनी हिम्मत व ताक़त के मुवाफ़िक़ कोताही न करे, और चूँकि इस अहम फ़रीज़े यानी नेक कामों का हुक्म करने और बुराईयों से रोकने को पूरी तरह उसी वक़्त अदा किया जा सकता है जबकि उसको मसाईल का पूरा इल्म भी हो, और दावत के काम को असरदार बनाने के आदाब और तरीक़े भी सुन्नत के मुताबिक़ उसको मालूम हों, इसलिये मुकम्मल तौर पर अच्छे कामों का हुक्म और बुरे कामों से रोकने का फ़रीज़ा अदा करने के लिये मुसलमानों में से एक मख़्सूस जमाअ़त को इस ज़िम्मेदारी पर मामूर (पाबन्द) किया गया जो हर तरह अच्छे कामों के करने का हुक्म और बुरे कामों से रोकने की अहल हो। चुनाँचे इसी आयत में ऐसी जमाअ़त की ज़रूरत और अहमियत को बतलाते हुए फ़रमायाः

وَلْتَكُنْ مِّنْكُمْ اُمَّةٌ يَّدْعُوْنَ اِلَى الْخَيْرِ وَيَاْمُرُوْنَ بِالْمَعْرُوْفِ وَيَنْهَوْنَ عَنِ الْمُنْكَرِ.

यानी तुम में एक जमाअ़त ऐसी होनी ज़रूरी है जो कि ख़ैर की तरफ़ बुलाया करें और नेक कामों के करने को कहा करें, और बुरे कामों से रोका करें।

وَلْتَكُنْ مِّنْكُمْ اُمَّةٌ

'तुम में एक जमाअ़त' में इशारा है कि उस जमाअ़त का वजूद ज़रूरी है। अगर कोई हुकूमत यह फ़रीज़ा अन्जाम न दे तो तमाम मुसलमानों पर फ़र्ज़ होगा कि वे ऐसी जमाअ़त क़ायम करें क्योंकि उनकी मिल्ली ज़िन्दगी उसी वक़्त तक महफ़ूज़ रहेगी जब तक यह जमाअ़त बाक़ी है। फिर उस जमाअ़त की कुछ अहम सिफ़तों और विशेषताओं की तरफ़ इशारा करते हुए फ़रमायाः

يَدْعُوْنَ اِلَى الْخَيْرِ

यानी उस जमाअ़त की पहली ख़ुसूसी सिफ़त यह होगी कि वह ख़ैर की तरफ़ दावत दिया करेगी। गोया भलाई की तरफ़ दावत उसका आला मक़सद होगा। ख़ैर से मुराद क्या है? रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने इसकी तफ़सीर में इरशाद फ़रमायाः

اَلْخَيْرُ هُوَ اتِّبَاعُ الْقُرْاٰنِ وَسُنَّتِيْ.

यानी ख़ैर से मुराद क़ुरआन और मेरी सुन्नत का इत्तिबा (पैरवी) है। (इब्ने कसीर)

"ख़ैर" की इससे ज़्यादा मुकम्मल परिभाषा नहीं हो सकती, पूरा दीने शरीअ़त इसमें आ गया। फिर 'यदऊ-न' के अन्दर यह बात बतला दी कि लगातार और मुस्तक़िल तौर पर उस जमाअ़त का काम ही ख़ैर और भलाई की तरफ़ दावत देना होगा। यानी दावत देने की उनकी यह कोशिश लगातार और निरन्तर जारी रहेगी।

'अमर बिल्-मअ़रूफ़' (अच्छे कामों का हुक्म करने) और 'नही अ़निल-मुन्कर' (बुरे कामों से रोकने) से तो यह समझा जा सकता था कि इसकी ज़रूरत ख़ास मौक़ों पर होगी जब वे मुन्करात (बुराईयाँ) देखे जायें, लेकिन 'यदऊ-न इलल्-ख़ैरि' कहकर बतला दिया कि उस जमाअ़त का काम ख़ैर की तरफ़ दावत होगा चाहे उस वक़्त मुन्करात (बुराईयाँ) मौजूद न हों, या किसी फ़र्ज़ की अदायेगी का वक़्त न हो। मिसाल के तौर पर सूरज निकलने के बाद ज़वाल तक नमाज़ का वक़्त नहीं है लेकिन वह जमाअ़त उस वक़्त भी नमाज़ पढ़ने की तल्क़ीन (तालीम) करेगी कि नमाज़ का वक़्त आने के बाद नमाज़ अदा करना ज़रूरी है। या रोज़े का वक़्त नहीं आया, अभी रमज़ान का महीना दूर है, लेकिन वह जमाअ़त अपने फ़र्ज़ से ग़ाफ़िल नहीं रहेगी बल्कि वह पहले से लोगों को बतलाती रहेगी कि जब रमज़ान का महीना आये तो रोज़े रखना फ़र्ज़ होगा। ग़र्ज़ यह कि उस जमाअ़त का फ़रीज़ा ख़ैर और भलाई की तरफ़ दावत देना होगा।

फिर इस ख़ैर की तरफ़ दावत देने के भी दो दर्जे हैं- पहला यह कि ग़ैर-मुस्लिमों को ख़ैर यानी इस्लाम की तरफ़ दावत देना है। मुसलमानों का हर फ़र्द उमूमन और यह जमाअ़त ख़ुसूसन दुनिया की तमाम क़ौमों को ख़ैर यानी इस्लाम की दावत दे, ज़बान से भी और अ़मल से भी। चुनाँचे मुसलमानों को जिस आयत में क़िताल व जिहाद का हुक्म दिया वहाँ सच्चे मोमिनों की इस तरह तारीफ़ कीः

اَلَّذِيْنَ اِنْ مَّكَّنّٰهُمْ فِى الْاَرْضِ اَقَامُوا الصَّلٰوةَ وَاٰتَوُا الزَّكٰوةَ وَاَمَرُوْا بِالْمَعْرُوْفِ وَنَهَوْا عَنِ الْمُنْكَرِ. (٢٢:٤١)

यानी सच्चे मुसलमान वे हैं कि जब हम उनको ज़मीन की मज़बूती व ताक़त यानी हुकूमत देते हैं तो उनका पहला काम यह होता है कि अल्लाह की ज़मीन में फ़रमाँबरदारी का निज़ाम क़ायम करते हैं जिसका एक प्रतीक नमाज़ है, और अपनी अर्थ-व्यवस्था ज़कात के उसूलों पर क़ायम करते हैं, तथा 'अमर बिल्-मअ़रूफ़' (अच्छे कामों का हुक्म करने) और 'नही अ़निल-मुन्कर' (बुरे कामों से रोकने) को अपनी ज़िन्दगी का मक़सद बनाते हैं।

अगर आज उम्मते मुस्लिमा अपना मक़सद दूसरी क़ौमों को ख़ैर की तरफ़ दावत देना बना ले तो वे सब बीमारियाँ ख़त्म हो जायेंगी जो दूसरी क़ौमों की नक़ल करने से हमारे अन्दर फैली हैं। क्योंकि जब कोई क़ौम इस अ़ज़ीम मक़सद (ख़ैर की तरफ़ दावत देने) पर जमा हो जाये और यह समझ ले कि हमें इल्मी और अ़मली हैसियत से दुनिया की क़ौमों पर ग़ालिब आना है और क़ौमों की तरबियत और उनका संवारना हमारे ज़िम्मे है तो उसकी ना-इत्तिफ़ाक़ियाँ भी पूरी तरह ख़त्म हो जायेंगी, और पूरी क़ौम एक अ़ज़ीम मक़सद के हासिल करने के लिये लग जायेगी। रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम और सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम की कामयाबियों का राज़ इसी में छुपा था। तफ़सीर इब्ने जरीर में है कि हज़रत ज़ह्हाक रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने यह आयतः

وَلْتَكُنْ مِّنْكُمْ.........الخ

तिलावत फ़रमाई और फिर फ़रमायाः

هُمْ خَاصَّةُ اَصْحَابِ رَسُوْلِ اللّٰهِ صَلَّى اللّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ. (ابن جرير)

यानी यह जमाअ़त मख़्सूस सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम की जमाअ़त है, क्योंकि उन पाक हज़रात में का हर फ़र्द ख़ुद को दीन की दावत का ज़िम्मेदार समझता था।

ख़ैर की तरफ़ दावत का दूसरा दर्जा ख़ुद मुसलमानों को ख़ैर और भलाई की दावत देना है, कि तमाम मुसलमान आ़म तौर पर और ख़ास जमाअ़त विशेष रूप से मुसलमानों के दरमियान तब्लीग़ करे और दावत का फ़रीज़ा अन्जाम दे। फिर उसमें भी एक तो ख़ैर की दावत आ़म होगी, यानी तमाम मुसलमानों को ज़रूरी अहकाम व इस्लामी अख़्लाक़ से वाक़िफ़ किया जाये, दूसरी ख़ैर की तरफ़ दावत ख़ास होगी, यानी उम्मते मुस्लिमा में क़ुरआन व सुन्नत के उलूम के माहिर हज़रात पैदा करना। इसकी तरफ़ एक दूसरी आयत में रहनुमाई की गई है:

فَلَوْلَا نَفَرَ مِنْ كُلِّ فِرْقَةٍ مِّنْهُمْ طَآئِفَةٌ لِّيَتَفَقَّهُوْا فِى الدِّيْنِ وَلِيُنْذِرُوْا قَوْمَهُمْ اِذَا رَجَعُوْآ اِلَيْهِمْ لَعَلَّهُمْ يَحْذَرُوْنَ٥

(سورة٩: آيت١٢٢)

आगे इस दावत देने वाली जमाअ़त का दूसरा वस्फ़ (सिफ़त) और ख़ास पहचान व विशेषता यह बतलायी:

يَاْمُرُوْنَ بِالْمَعْرُوْفِ وَيَنْهَوْنَ عَنِ الْمُنْكَرِ

यानी वे लोग भलाई का हुक्म देते हैं और मुन्कर (बुराई) से रोकते हैं।

मारूफ़ में वे तमाम नेकियाँ और भलाईयाँ दाख़िल हैं जिनका इस्लाम ने हुक्म दिया है, और हर नबी ने हर ज़माने में उसको फैलाने और रिवाज देने की कोशिश की। और चूँकि ये ख़ैर की बातें जानी पहचानी हुई हैं इसलिये **मारूफ़** (यानी परिचित) कहलाती हैं।

इस तरह **मुन्कर** में तमाम वे बुराईयाँ और ख़राबियाँ दाख़िल हैं जिनको रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की तरफ़ से नाजायज़ क़रार देना मालूम व परिचित है। इस मक़ाम पर वाजिबात और गुनाहों के बजाय **मारूफ़** व **मुन्कर** का उनवान इख़्तियार करने में शायद यह हिक्मत भी हो कि रोकने टोकने का मामला सिर्फ़ उन मसाईल में होगा जो उम्मत में मशहूर व परिचित हैं, और सब के नज़दीक मुत्तफ़क़ अ़लैहि (सहमति प्राप्त) हैं, **इज्तिहादी मसाईल** जिन में शरीअ़त के उसूल के मातहत रायें हो सकती हैं, उनमें यह रोक-टोक का सिलसिला न होना चाहिये। अफ़सोस है कि आ़म तौर पर इस हकीमाना तालीम से ग़फ़लत बरती जाती है, और इज्तिहादी मसाईल को झगड़े और विवाद का मैदान बनाकर मुसलमानों की जमाअ़त को भिड़ाया जाता है, और इसको सबसे बड़ी नेकी क़रार दिया जाता है। और इसके मुक़ाबिल मुत्तफ़क़ अ़लैहि (सब के नज़दीक माने हुए) गुनाहों और बुराईयों से रोकने की तरफ़ तवज्जोह बहुत कम दी जाती है। आयत के समापन पर इस जमाअ़त के अन्जाम और अच्छे परिणाम को इन लफ़्ज़ों में बयान फ़रमाया:

وَاُولٰٓئِكَ هُمُ الْمُفْلِحُوْنَ

यानी हक़ीक़त में यही लोग कामयाब हैं। फ़लाह और दोनों जहान की भलाई इन्हीं का हिस्सा है।

इस जमाअ़त का सबसे पहला मिस्दाक़ (यानी जिस पर यह सही बैठती और फ़िट होती है) सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम की जमाअ़त है जो ख़ैर की तरफ़ दावत देने, नेकियों का हुक्म करने और बुराईयों से रोकने के अ़ज़ीम मक़सद को लेकर उठी और थोड़े ही समय में सारी दुनिया पर छा गई। रोम व ईरान की अ़ज़ीम सल्तनतें रौंद डालीं और दुनिया को अख़्लाक़ व पाकीज़गी का सबक़ पढ़ाया, नेकी और तक़वे की शमा रोशन कीं।

हक़ तआ़ला ने दावत देने वाली उम्मत की ज़रूरत और उसके औसाफ़ (सिफ़तों और गुणों) को बयान करने के बाद ऊपर गुज़री दूसरी आयत में मुसलमानों को आपसी झगड़ों और फूट व बिखराव से बचाने की हिदायत फ़रमाई है। इरशाद है:

وَلَا تَكُونُوا كَالَّذِينَ تَفَرَّقُوا وَاخْتَلَفُوا مِنْ بَعْدِ مَا جَآءَهُمُ الْبَيِّنٰتُ.

"यानी उन लोगों की तरह न बनो जिन्होंने खुली और रोशन दलीलें आने के बाद इख़्तिलाफ़ किया (यानी आपस में झगड़े और विवाद पैदा करके बिखर गये)।"

मतलब यह है कि यहूदियों व ईसाईयों की तरह मत बनो, जिन्होंने ख़ुदा तआ़ला के साफ़ अहकाम पहुँचने के बाद महज़ वहमों और इच्छाओं की पैरवी करके शरीअ़त के उसूलों में एक जगा जमा न रह सके आपस में लड़ाई-झगड़ा करने से अल्लाह के अ़ज़ाब में मुब्तला हो गये। यह आयत दर हक़ीक़त आयतः

وَاعْتَصِمُوا بِحَبْلِ اللّٰهِ جَمِيعًا.

(तुम सब के सब अल्लाह की रस्सी को मज़बूती से थाम लो) का पूरक है। इसी आयत में एकता के केन्द्र यानी अल्लाह की रस्सी को मज़बूती से थामने की दावत दी गई और इशारे में बतलाया गया कि संगठन और एकता तमाम उम्मत और क़ौम को एक अकेले व्यक्ति में तब्दील कर देती है। फिर ख़ैर की तरफ़ दावत देने, अच्छे कामों का हुक्म करने और बुराईयों से रोकने से इसी एकता व संगठन को ग़िज़ा पहुँचाई जाती है, और पाला-पोषा जाता है। फिरः

وَلَا تَفَرَّقُوا

और आयतः

وَلَا تَكُونُوا كَالَّذِينَ تَفَرَّقُوا

से इसकी हिदायत की गई है कि आपस के झगड़ों और फूट व बिखराव ने पिछली क़ौमों को तबाह कर दिया, उनसे सीख हासिल करो और अपने अन्दर यह रोग पैदा न होने दो।

आयत में जिस फूट, बिखरने और झगड़े व मतभेद की निंदा है, इससे मुराद वह तफ़रीक़ व गुटबन्दी है जो नफ़्सानियत के ग़लबे की वजह से दीन के उसूल (बुनियादी बातों, अ़क़ीदों) या अहकाम में हो, चुनाँचे आयत में यह क़ैद कि "स्पष्ट अहकाम आने के बाद" इस बात पर खुला

इशारा है, क्योंकि दीन के तमाम उसूल (अक़ीदे) स्पष्ट होते हैं, और अहकाम भी कुछ ऐसे वाज़ेह होते हैं कि अगर नफ़्सानियत न हो तो मतभेद व विवाद की गुन्जाईश नहीं होती, लेकिन जो अहकाम ग़ैर-वाज़ेह (पूरी तरह स्पष्ट नहीं) हैं किसी स्पष्ट शरई दलील न होने की वजह से या शरई दलीलों के ज़ाहिरी टकराव की वजह से, ऐसे अहकाम में राय व इज्तिहाद से जो इख़्तिलाफ़ (मतभेद) पैदा होता है वह इस आयत के मफ़्हूम में दाख़िल नहीं, और वह सही हदीस इसकी इजाज़त के लिये काफ़ी है जिसको बुख़ारी व मुस्लिम ने मरफ़ूअन् हज़रत अ़मर बिन आ़स से रिवायत की है कि जब कोई इज्तिहाद करे (यानी क़ुरआन व हदीस और सहाबा के अ़मल में सोच-विचार करके कोई हुक्म निकाले) और वह हुक्म ठीक हो तो उसको दो अज्र मिलते हैं, और जब इज्तिहाद में ग़लती करे तो उसको एक अज्र मिलता है।

तो मालूम हुआ कि जिस राय के मतभेद में ग़लती और चूक होने पर भी एक सवाब मिलता है वह बुरा नहीं हो सकता। लिहाज़ा वह राय और वैचारिक मतभेद जो सहाबा रज़ियल्लाहु अ़न्हुम और दीन में ग़ौर व फ़िक्र करने वाले इमामों में हुआ है, उसको इस ज़िक्र हुई आयत से कोई ताल्लुक़ नहीं, बक़ौल हज़रत क़ासिम बिन मुहम्मद रज़ियल्लाहु अ़न्हु व हज़रत उमर बिन अ़ब्दुल-अ़ज़ीज़ रह.- सहाबा रज़ियल्लाहु अ़न्हुम का इख़्तिलाफ़ (मतभेद) लोगों के लिये रहमत व सहूलत का सबब है। (तफ़सीर रूहुल-मआ़नी, बैहक़ी से)

वैचारिक मतभेद में कोई पहलू बुरा नहीं होता, उसकी आलोचना जायज़ नहीं

यहाँ से एक बहुत अहम उसूली बात स्पष्ट हो गई कि जो वैचारिक मतभेद शरई इज्तिहाद (क़ुरआन व हदीस में सोचने व ग़ौर करने) की परिभाषा में दाख़िल है, उसमें अपने इज्तिहाद (राय और मेहनत) से जिस इमाम ने जो पहलू इख़्तियार कर लिया अगरचे अल्लाह के नज़दीक उसमें से दुरुस्त और सही सिर्फ़ एक है, दूसरा ख़ता (चूक) है, लेकिन यह सही और ग़ैर-सही होने का फ़ैसला सिर्फ़ हक़ तआ़ला के करने का है, वह इज्तिहाद (दीनी कोशिश) में सही बात पर पहुँचने वाले आ़लिम को दोहरा सवाब अ़ता फ़रमा देंगे और जिसके इज्तिहाद (विचार व कोशिश) ने ख़ता (चूक) की है उसको एक सवाब देंगे। अल्लाह तआ़ला के सिवा किसी को (दीनी अहकाम में) वैचारिक मतभेद में यह कहने का हक़ नहीं कि यक़ीनी तौर पर यह सही है दूसरा ग़लत है। हाँ अपनी समझ व अ़क़्ल की हद तक उन दोनों में जिसको वह क़ुरआन व हदीस से ज़्यादा क़रीब समझे उसके बारे में यह कह सकता है कि मेरे नज़दीक यह सही है मगर ग़लती और ख़ता की शंका भी है, और दूसरा पहलू ख़ता (यानी ग़ैर-सही) है मगर यह भी संभव है कि वह सही हो। और यह वह बात है जो तमाम फ़िक़्ही इमामों में मानी हुई है। इसमें यह भी वाज़ेह हो गया कि वैचारिक मतभेद में कोई जानिब (पहलू और रुख़) बुरा नहीं होती कि 'अमर बिल-मअ़रूफ़' और 'नही अ़निल-मुन्कर' के अन्तर्गत उस पर रोक-टोक की जाये, और जब वह

मुन्कर नहीं तो ग़ैर-मुन्कर पर रोक-टोक ख़ुद एक बुरी बात है। इससे परहेज़ लाज़िम है। यह वह बात है जिसमें आजकल बहुत से उलेमा भी ग़फ़लत में मुब्तला हैं, अपने मुख़ालिफ़ नज़रिया रखने वालों पर लानत भेजने और बुरा-भला कहने से भी परहेज़ नहीं करते, जिसका नतीजा मुसलमानों में लड़ाई-झगड़े, बिखराव और गुटबन्दी की सूरत में जगह-जगह देखने में आ रहा है।

वैचारिक मतभेद बशर्तेकि इज्तिहादी (वैचारिक) उसूल के मुताबिक़ हो, वह तो हरगिज़ इस आयत 'व ला तफ़र्रक़ू' के ख़िलाफ़ और बुरा नहीं, अलबत्ता इस वैचारिक मतभेद के साथ जो मामला आजकल किया जा रहा है कि इसी की बहस व मुबाहसे को दीन की बुनियाद बना ली गई, और इसी पर आपसी लड़ाई-झगड़े और एक दूसरे को बुरा-भला कहने व गाली-गलोज तक नौबत पहुँचा दी गई यह तर्ज़े-अ़मल (तरीक़ा और चलन) निःसंदेह 'व ला तफ़र्रक़ू' (और आपस में फूट का शिकार न बनो) की खुली मुख़ालफ़त, बुरा और बुज़ुर्गों, सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम व ताबिईन हज़रात के तरीक़े व अ़मल के बिल्कुल ख़िलाफ़ है। उम्मत के बुज़ुर्गों में कभी कहीं नहीं सुना गया कि वैचारिक मतभेद की बिना पर अपने से अलग और भिन्न नज़रिया रखने वालों पर इस तरह लान-तान किया गया हो।

मिसाल के तौर पर इमाम शाफ़ई रहमतुल्लाहि अ़लैहि और दूसरे इमामों का मस्लक यह है कि जो नमाज़ जमाअ़त के साथ इमाम के पीछे पढ़ी जाये उसमें भी मुक़्तदियों को सूरः फ़ातिहा पढ़ना फ़र्ज़ है, और ज़ाहिर है कि जो इस फ़र्ज़ को अदा नहीं करेगा उसकी नमाज़ उनके नज़दीक नहीं होगी। इसके मुक़ाबले में इमाम अबू हनीफ़ा रहमतुल्लाहि अ़लैहि के नज़दीक मुक़्तदी को इमाम के पीछे सूरः फ़ातिहा पढ़ना जायज़ नहीं, इसी लिये हनफ़िया नहीं पढ़ते। लेकिन पूरी उम्मत की तारीख़ में किसी से नहीं सुना गया कि शाफ़ई मज़हब वाले हनफ़ी लोगों को नमाज़ का छोड़ने वाला कहते हों, कि तुम्हारी नमाज़ें नहीं हुईं, इसलिये तुम बेनमाज़ी हो। या उन पर इस तरह बुराई करते हों जैसे उन कामों पर की जाती है जो शरई तौर पर बुरे हैं।

इमाम इब्ने अ़ब्दुल-बर्र अपनी किताब जामिउल-इल्म में इस मामले के बारे में उम्मत के बुज़ुर्गों के तरीक़े और अ़मल के बारे में यह बयान फ़रमाते हैं:

عَنْ يَحْيىَ بْنِ سَعِيْدٍ قَالَ مَا بَرِحَ اَهْلُ الْفَتْوٰى يُفْتُوْنَ فَيُحِلُّ هٰذَا وَيُحَرِّمُ هٰذَا فَلَا يَرَى الْمُحَرِّمُ اَنَّ الْمُحِلَّ هَلَكَ لِتَحْلِيْلِهٖ وَلَا يَرَى الْمُحِلُّ اَنَّ الْمُحَرِّمَ هَلَكَ لِتَحْرِيْمِهٖ. (جامع بيان العلم ص ٨٠)

"यहया बिन सईद फ़रमाते हैं कि फ़तवा देने वाले हमेशा फ़तवा देते रहे हैं एक शख़्स ग़ैर-मन्सूस (स्पष्ट रूप से न बयान हुए) अहकाम में एक चीज़ को अपने विचार से हलाल क़रार देता है दूसरा हराम कहता है, मगर न हराम कहने वाला यह समझता है कि जिसने हलाल होने का फ़तवा दिया है वह हलाक और गुमराह हो गया और न हलाल कहने वाला यह समझता है कि हराम का फ़तवा देने वाला हलाक और गुमराह हो गया।"

एक ज़रूरी तंबीह

यह तमाम गुफ़्तगू उस इज्तिहाद (कोशिश व विचार) में है जो शरीअ़त के इज्तिहादी उसूल

के मातहत हो, जिसकी पहली शर्त यह है कि इज्तिहाद सिर्फ़ उन मसाईल में किया जा सकता है जिनके मुताल्लिक़ क़ुरआन व हदीस में कोई फ़ैसला मौजूद नहीं, या ऐसा ग़ैर-वाज़ेह (अस्पष्ट) है कि उसकी तफ़सीरें (व्याख्यायें) अलग-अलग हो सकती हैं, या चन्द आयतों व रिवायतों से ज़ाहिरी नज़र में दो एक-दूसरे के उलट चीज़ें समझी जाती हैं ऐसे मौक़ों में सिर्फ़ उन लोगों को इज्तिहाद करने की इजाज़त है जिनमें इज्तिहाद की शर्तें मौजूद हैं, जैसे क़ुरआन व हदीस के मुताल्लिक़ तमाम उलूम व फ़ुनून की मुकम्मल महारत, अरबी भाषा की मुकम्मल महारत, सहाबा रज़ियल्लाहु अ़न्हुम व ताबिईन हज़रात के अक़वाल व आसार (बातों और अ़मल व रुझान) की मुकम्मल वाक़फ़ियत वग़ैरह। तो जो शख़्स किसी मन्सूस (साफ़ बयान हुए) मसले में अपनी राय चलाये वह वैचारिक मतभेद नहीं।

इसी तरह इज्तिहाद की शर्तें जिस शख़्स में मौजूद नहीं उसके मतभेद को वैचारिक मतभेद नहीं कहा जा सकता। उसके क़ौल का कोई असर मसले पर नहीं पड़ता। जैसे आजकल बहुत से लिखे पढ़े लोगों ने यह सुन लिया है कि इस्लाम में इज्तिहाद (राय से फ़ैसला करना) भी एक उसूल है, और उन शरई मन्सूस (स्पष्ट बयान हुए) अहकाम में राय चलाने लगे जिनमें किसी मुज्तहिद इमाम को भी बोलने का हक़ नहीं, और यहाँ तो इज्तिहाद की शर्तें तो क्या इल्मे दीन से भी वाक़फ़ियत नहीं होती। अल्लाह की पनाह।

يَّوْمَ تَبْيَضُّ وُجُوْهٌ وَّتَسْوَدُّ وُجُوْهٌ ۚ فَاَمَّا الَّذِيْنَ

اسْوَدَّتْ وُجُوْهُهُمْ ۣ اَكَفَرْتُمْ بَعْدَ اِيْمَانِكُمْ فَذُوْقُوا الْعَذَابَ بِمَا كُنْتُمْ تَكْفُرُوْنَ ۝ وَاَمَّا

الَّذِيْنَ ابْيَضَّتْ وُجُوْهُهُمْ فَفِيْ رَحْمَةِ اللّٰهِ ۭ هُمْ فِيْهَا خٰلِدُوْنَ ۝ تِلْكَ اٰيٰتُ اللّٰهِ نَتْلُوْهَا

عَلَيْكَ بِالْحَقِّ ۭ وَمَا اللّٰهُ يُرِيْدُ ظُلْمًا لِّلْعٰلَمِيْنَ ۝ وَلِلّٰهِ مَا فِي السَّمٰوٰتِ وَمَا فِي الْاَرْضِ ۭ وَاِلَى اللّٰهِ

تُرْجَعُ الْاُمُوْرُ ۝

ع ۸ ۲

यौ-म तब्यज़्ज़ु वुजूहुंव्-व तस्वद्दु वुजूहुन् फ़-अम्मल्लज़ीनस्-वद्दत् वुजूहुहुम्, अ-कफ़र्तुम् बअ़्-द ईमानिकुम् फ़ज़ूक़ुल्-अ़ज़ा-ब बिमा कुन्तुम् तक्फ़ुरून (106) व अम्मल्लज़ीनब्यज़्ज़त् वुजूहुहुम् फ़-फ़ी रह़्मतिल्लाहि, हुम् फ़ीहा	जिस दिन कि सफ़ेद होंगे बाज़े मुँह और सियाह (काले) होंगे बाज़े मुँह। सो वे लोग कि सियाह हुए मुँह उनके, उनसे कहा जायेगा क्या तुम काफ़िर हो गये ईमान लाकर? अब चखो अ़ज़ाब बदला उस कुफ़्र करने का। (106) और वे लोग कि सफ़ेद हुए मुँह उनके सो रहमत में हैं अल्लाह की और वे उसमें हमेशा रहेंगे। (107)

ख़ालिदून (107) तिल्-क आयातुल्लाहि नत्लूहा अलै-क बिल्हक़्क़ि, व मल्लाहु युरीदु ज़ुल्मल् लिल्आलमीन (108) व लिल्लाहि मा फ़िस्समावाति व मा फ़िल्अर्ज़ि, व इलल्लाहि तुर्जअुल् उमूर (109) ❁	ये हुक्म हैं अल्लाह के हम सुनाते हैं तुझको ठीक-ठीक, और अल्लाह ज़ुल्म करना नहीं चाहता ख़ल्क़त पर। (108) और अल्लाह ही का है जो कुछ कि है आसमानों में और जो कुछ कि है ज़मीन में, और अल्लाह ही की तरफ़ लौटना है हर काम का। (109) ❁

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

उस दिन (यानी क़ियामत के रोज़) कि बाज़े चेहरे सफ़ेद (व रोशन) हो जाएँगे और बाज़े चेहरे सियाह (और तारीक) होंगे। सो जिनके चेहरे सियाह हो गए होंगे उनसे कहा जाएगा- क्या तुम (ही) लोग काफ़िर हो गए थे अपने ईमान लाने के बाद? तो (अब) सज़ा चखो अपने कुफ़्र के सबब से। और जिनके चेहरे सफ़ेद हो गये होंगे वे अल्लाह की रहमत (यानी जन्नत) में (दाख़िल) होंगे (और) वे उसमें हमेशा-हमेशा रहेंगे। ये (जो ऊपर ज़िक्र हुई) अल्लाह तआ़ला की आयतें हैं, जो सही-सही तौर पर हम तुमको पढ़-पढ़कर सुनाते हैं। (इससे तो ऊपर के मज़मून का सही होना मालूम हुआ) और अल्लाह तआ़ला मख़्लूक़ात पर ज़ुल्म करना नहीं चाहते (पस जो कुछ किसी के लिये जज़ा व सज़ा तजवीज़ की है, वह बिल्कुल मुनासिब है। इससे उक्त तजवीज़ का मुनासिब होना मालूम हुआ)। और अल्लाह ही की मिल्क है जो कुछ आसमानों और ज़मीन में है, (पस जब सब उनकी मिल्क है तो इन सब के ज़िम्मे इताअ़त वाजिब थी, इससे इनका ममलूक होना और फ़रमाँबरदारी का वाजिब होना साबित हुआ) और अल्लाह ही की तरफ़ सब मुक़द्दमे लौटाये जाएँगे (कोई दूसरा इख़्तियार वाला न होगा)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

चेहरे की सफ़ेदी और सियाही से क्या मुराद है?

चेहरे की सफ़ेदी और सियाही का ज़िक्र क़ुरआन मजीद में बहुत सी जगहों में आया है। जैसे:

وَيَوْمَ الْقِيٰمَةِ تَرَى الَّذِيْنَ كَذَبُوْا عَلَى اللّٰهِ وُجُوْهُهُمْ مُّسْوَدَّةٌ. (سورة زمر: ٦٠)

وُجُوْهٌ يَّوْمَئِذٍ مُّسْفِرَةٌo ضَاحِكَةٌ مُّسْتَبْشِرَةٌo وَوُجُوْهٌ يَّوْمَئِذٍ عَلَيْهَا غَبَرَةٌo تَرْهَقُهَا قَتَرَةٌo (سورة عبس: ٣٨-٤١)

وُجُوْهٌ يَّوْمَئِذٍ نَّاضِرَةٌ، اِلٰى رَبِّهَا نَاظِرَةٌo (سورة القيامة: ٢٢،٢٣)

(यानी सूरः ज़ुमर आयत 60, सूरः अ़-ब-स आयत 38-41 और सूरः क़ियामत आयत 22, 23)

इन आयतों में एक ही मफ़्हूम से मुताल्लिक़ अनेक अलफ़ाज़ ज़िक्र किये गये हैं यानी अलफ़ाज़ अलग-अलग हैं मगर मतलब एक ही है।

मुफ़स्सिरीन की अक्सरियत के नज़दीक **सफ़ेदी** से मुराद **ईमान के नूर** की सफ़ेदी है। यानी मोमिनों के चेहरे ईमान के नूर से रोशन और बहुत ज़्यादा ख़ुशी से हंसते और मुस्कुराते होंगे। और **सियाही** से मुराद **कुफ़्र की कालिख** है, यानी काफ़िरों के चेहरों पर कुफ़्र की सियाही छाई होगी, और ऊपर से फ़िस्क़ व फ़ुजूर (गुनाहों व बुराईयों) की अंधेरी और ज़्यादा तारीक कर देगी।

सियाह चेहरे वाले और सफ़ेद चेहरे वाले कौन लोग हैं?

उन लोगों के निर्धारण में मुफ़स्सिरीन के कई अक़वाल बयान हुए हैं। हज़रत इब्ने अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु फ़रमाते हैं कि **अहले सुन्नत** के चेहरे सफ़ेद होंगे और **अहले बिदअ़त** के सियाह होंगे। हज़रत अ़ता रहमतुल्लाहि अ़लैहि फ़रमाते हैं कि मुहाजिरीन और अन्सार (सहाबा) के चेहरे सफ़ेद होंगे और बनू क़ुरैज़ा और बनू नज़ीर (यहूदियों) के चेहरे सियाह होंगे।

(तफ़सीरे क़ुर्तुबी)

इमाम तिर्मिज़ी रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने हज़रत अबू उमामा रज़ियल्लाहु अ़न्हु से एक हदीस नक़ल की है कि इससे मुराद **ख़ारिजी** हैं (यह एक फ़िर्क़ा है), यानी सियाह चेहरे ख़ारिजी लोगों के होंगे, और सफ़ेद चेहरे उन लोगों के होंगे जिनको वे क़त्ल करेंगेः

فَقَالَ اَبُوْاُمَامَةَ كِلَابُ النَّارِ شَرُّ قَتْلٰى تَحْتَ اَدِيْمِ السَّمَآءِ وَخَيْرُ قَتْلٰى مَنْ قَتَلُوْهُ، ثُمَّ قَرَاَ "يَوْمَ تَبْيَضُّ وُجُوْهٌ وَّتَسْوَدُّ وُجُوْهٌ."

हज़रत अबू उमामा रज़ियल्लाहु अ़न्हु से जब यह पूछा गया कि आपने यह हदीस हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से सुनी है? तो आपने जवाब में गिनकर बतला दिया कि अगर हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से मैंने सात मर्तबा यह हदीस सुनी हुई न होती तो मैं बयान न करता। (तिर्मिज़ी)

हज़रत इक्रिमा रज़ियल्लाहु अ़न्हु फ़रमाते हैं कि सियाह (काले) चेहरे अहले किताब (यहूदियों व ईसाईयों) के उन लोगों के होंगे जो आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के तशरीफ़ लाने से पहले तो आपकी तस्दीक़ करते थे लेकिन जब आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम मबऊस हुए (यानी आपने नुबुव्वत का ऐलान फ़रमाया) तो बजाय आपकी ताईद व मदद करने के उल्टा आपको झुठलाना शुरू कर दिया। (तफ़सीरे क़ुर्तुबी)

ऊपर दर्ज हुए अक़वाल के अ़लावा और बहुत से अक़वाल हैं लेकिन उन सब में टकराव नहीं है, सब का हासिल एक ही है। इमाम क़ुर्तुबी रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने अपनी तफ़सीर में आयतः

يَوْمَ تَبْيَضُّ وُجُوْهٌ وَّتَسْوَدُّ وُجُوْهٌ.

के बारे में फ़रमाया कि इख़्लास वाले मोमिनों के चेहरे सफ़ेद होंगे लेकिन उनके अलावा उन तमाम लोगों के चेहरे सियाह होंगे जिन्होंने दीन में तग़य्युर व तबद्दुल (हेर-फेर और तब्दीली) किया हो, चाहे वे मुर्तद (इस्लाम से फिर जाने वाले) और काफ़िर हो गये हों चाहे अपने दिलों में निफ़ाक़ (बेईमानी) को छुपाये हुए हों, उन सब के साथ यही मामला किया जायेगा।

(तफ़सीरे क़ुर्तुबी)

चन्द अहम फ़ायदे

अल्लाह तआ़ला नेः

يَوْمَ تَبْيَضُّ وُجُوْهٌ وَّتَسْوَدُّ وُجُوْهٌ

में सफ़ेदी को सियाही से पहले बयान किया है लेकिनः

فَاَمَّا الَّذِيْنَ اسْوَدَّتْ وُجُوْهُهُمْ

में सियाही को सफ़ेदी से पहले बयान किया, हालाँकि तरतीब का तक़ाज़ा यह था कि सफ़ेदी को यहाँ भी पहले रखा जाता। इस तरतीब को उल्टा करने से ऐसा मालूम होता है कि अल्लाह तआ़ला ने मख़्लूक़ को पैदा करने के अपने मक़सद की तरफ़ इशारा किया है, वह मक़सद अपनी मख़्लूक़ पर रहमत करना है न कि अ़ज़ाब करना। इसलिये सबसे पहले अल्लाह तआ़ला ने सफ़ेदी वालों को बयान किया जो अल्लाह तआ़ला की रहमत और सवाब के मुस्तहिक़ हैं, उसके बाद सियाही वालों को ज़िक्र किया गया जो अ़ज़ाब के मुस्तहिक़ हैं। इसके बाद अल्लाह तआ़ला ने आयत के ख़ात्मे पर 'फ़-फ़ी रहमतिल्लाहि' (सो अल्लाह की रहमत में हैं) से अपनी अ़ज़ीम और विशाल रहमत का भी इज़्हार फ़रमाया, तो आयत के शुरू और उसके आख़िर में दोनों जगह रहमत वालों को बयान किया, बीच में सियाही वालों को, जिसमें अपनी असीमित रहमत की तरफ़ इशारा कर दिया है कि इनसानों को इसलिये पैदा नहीं किया कि उनको अपने अ़ज़ाब का महल व मज़हर (अ़ज़ाब ज़ाहिर होने का स्थान) बनाया जाये, बल्कि इसलिये पैदा किया कि वे मेरी रहमत से फ़ायदा उठा सकें।

दूसरा फ़ायदा यह कि सफ़ेदी वालों के बारे में इरशाद है कि वे हमेशा अल्लाह की रहमत में रहेंगे। हज़रत इब्ने अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु फ़रमाते हैं कि इस जगह रहमत से मुराद जन्नत है। यहाँ भी बज़ाहिर जन्नत को रहमत से ताबीर करने में यह हिक्मत है कि आदमी चाहे कितना ही आ़बिद और ज़ाहिद (नेक व परहेज़गार और इबादत-गुज़ार) क्यों न हो वह जन्नत में सिर्फ़ अल्लाह तआ़ला की रहमत ही से जायेगा, क्योंकि इबादत करना भी इनसान का कोई ज़ाती कमाल नहीं है बल्कि इसकी क़ुदरत भी अल्लाह तआ़ला ही की अ़ता की हुई है, इसलिये इबादत करने से जन्नत में दाख़िल होना ज़रूरी नहीं हो जाता, बल्कि जन्नत का दाख़िला तो अल्लाह तआ़ला की रहमत ही से होगा। (तफ़सीरे कबीर)

तीसरा फ़ायदा यह कि अल्लाह तआ़ला ने 'फ़-फ़ी रहमतिल्लाहि' (सो अल्लाह की रहमत में

हैं) के बाद 'हुम फ़ीहा ख़ालिदून' (वह उसमें हमेशा रहेंगे) फ़रमाकर बता दिया कि मोमिन लोग अल्लाह की जिस रहमत में होंगे वह उनके लिये आरज़ी (वक़्ती और अस्थायी) नहीं होगी बल्कि हमेशा-हमेशा के लिये होगी। उनसे यह नेमत कभी न छिनेगी और न कम की जायेगी। इसके मुक़ाबले में सियाही वालों के लिये यह स्पष्टता नहीं फ़रमाई कि वे इस हाल में हमेशा रहेंगे।

आदमी सज़ा अपने ही गुनाहों की पाता है

فَذُوْقُوا الْعَذَابَ بِمَا كُنْتُمْ تَكْفُرُوْنَ○

में इशारा फ़रमा दिया कि आज का अ़ज़ाब हमारी तरफ़ से नहीं बल्कि तुम्हारी अपनी उस कमाई की वजह से है जो दुनिया में करते रहे हो। क्योंकि जन्नत व दोज़ख़ की नेमतें और मुसीबतें दर हक़ीक़त हमारे आमाल ही की बदली हुई सूरतें हैं। इसी बात पर सचेत करने के लिये आख़िर में यह भी फ़रमा दियाः

وَمَا اللّٰهُ يُرِيْدُ ظُلْمًا لِّلْعٰلَمِيْنَ○

यानी अल्लाह तआ़ला अपने बन्दों पर ज़ुल्म करने का कोई इरादा नहीं रखते, अ़ज़ाब सवाब जो कुछ है पूरी तरह इन्साफ़ व हिक्मत और रहमत का तक़ाज़ा है।

كُنْتُمْ خَيْرَ اُمَّةٍ اُخْرِجَتْ لِلنَّاسِ تَاْمُرُوْنَ بِالْمَعْرُوْفِ وَتَنْهَوْنَ عَنِ الْمُنْكَرِ وَتُؤْمِنُوْنَ بِاللّٰهِ ۭ وَلَوْ اٰمَنَ اَهْلُ الْكِتٰبِ لَكَانَ خَيْرًا لَّهُمْ ۭ مِنْهُمُ الْمُؤْمِنُوْنَ وَاَكْثَرُهُمُ الْفٰسِقُوْنَ ۝

कुन्तुम् ख़ै-र उम्मतिन् उख़्रिजत् लिन्नासि तअ्मुरू-न बिल्मअ्रूफ़ि व तन्हौ-न अ़निल्-मुन्करि व तुअ्मिनू-न बिल्लाहि, व लौ आम-न अह्लुल्-किताबि लका-न ख़ैरल्लहुम, मिन्हुमुल् मुअ्मिनू-न व अक्सरुहुमुल् फ़ासिक़ून (110)	**तुम हो बेहतर सब उम्मतों से जो भेजी गयी आ़लम (दुनिया) में, हुक्म करते हो अच्छे कामों का और मना करते हो बुरे कामों से, और ईमान लाते हो अल्लाह पर। और अगर ईमान लाते अहले किताब (ईसाई और यहूदी लोग) तो उनके लिये बेहतर था, कुछ तो उनमें से हैं ईमान पर और अक्सर उनमें नाफ़रमान हैं। (110)**

इन आयतों का पीछे से ताल्लुक़

पिछली आयतों में मुसलमानों को ईमान पर साबित-क़दम (जमे) रहने, नेक कामों का हुक्म करने और बुराईयों से रोकने का ख़ास एहतिमाम करने की हिदायत थी। इस आयत में इसकी और ज़्यादा ताकीद इस तरह की गई है कि उम्मते मुहम्मदिया को जो हक़ तआ़ला ने तमाम उम्मतों से अफ़ज़ल व आला और बेहतरीन उम्मत क़रार दिया है इसकी बड़ी वजह उनकी यही

सिफ़तें (ख़ूबियाँ) हैं।

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

(ऐ उम्मते मुहम्मदिया) तुम लोग (तमाम मज़हब वालों से) अच्छी जमाअ़त हो, कि वह जमाअ़त (जो आ़म) लोगों के (लिये सही रास्ता दिखाने का फ़ायदा पहुँचाने के) लिये ज़ाहिर की गई है (और लाभ पहुँचाना जो इस उम्मत के अच्छा और अफ़ज़ल होने की वजह है उसकी सूरत यह है कि) तुम लोग (शरीअ़त के तक़ाज़े के मुताबिक़ ज़्यादा पाबन्दी के साथ) नेक कामों को बतलाते हो और बुरी बातों से रोकते हो और (ख़ुद भी) अल्लाह तआ़ला पर ईमान लाते हो (यानी ईमान पर क़ायम रहते हो। यहाँ अल्लाह पर ईमान में वे तमाम अ़क़ीदे व आमाल दाख़िल हैं जो अल्लाह की तरफ़ से नाज़िल हुए हैं) और अगर अहले किताब (भी जो तुम्हारी मुख़ालफ़त कर रहे हैं, तुम्हारी तरह) ईमान ले आते तो उनके लिए ज़्यादा अच्छा होता (कि वे भी हक़ वालों की इसी बेहतर जमाअ़त में दाख़िल हो जाते, मगर अफ़सोस कि वे सब मुसलमान न हुए बल्कि) उनमें से बाज़े तो मुसलमान हैं (जो रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम पर ईमान लाकर इस्लाम में दाख़िल हो गये) और ज़्यादा हिस्सा उनमें से काफ़िर हैं (कि ख़ातिमुल-अम्बिया सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम पर ईमान नहीं लाये और उनकी बेहतर उम्मत में शामिल नहीं हुए)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

उम्मते मुहम्मदिया का सब उम्मतों से बेहतर होना और इसकी चन्द वुजूहात

क़ुरआने करीम ने उम्मते मुहम्मदिया को ख़ैरुल-उमम (उम्मतों में सबसे बेहतर) क़रार देने की चन्द वजहें (कारण) कई आयतों में बयान फ़रमाई हैं। इस सिलसिले की सबसे अहम आयत सूरः ब-क़रह में गुज़र चुकी हैः

وَكَذٰلِكَ جَعَلْنٰكُمْ اُمَّةً وَّسَطًا..........الخ (۲:۱٤۳)

(यानी आयत नम्बर 143) वहीं इस आयत की तफ़सीर और उम्मते मुहम्मदिया के बेहतरीन उम्मत होने की बड़ी वजह इसका एतिदाल वाला मिज़ाज होना और फिर ज़िन्दगी के हर विभाग और क्षेत्र में उम्मते मुहम्मदिया के एतिदाल की तफ़सील बयान हुई है। (देखिये मआ़रिफ़ुल-क़ुरआन जिल्द 1)

इस आयत में उम्मते मुहम्मदिया के उम्मतों में सबसे बेहतर होने की वजह यह बयान फ़रमाई है कि यह अल्लाह की मख़्लूक़ को नफ़ा पहुँचाने ही के लिये वजूद में आई है, और इसका सबसे बड़ा नफ़ा यह है कि अल्लाह की मख़्लूक़ की रूहानी और अख़्लाक़ी इस्लाह (सुधार

और बेहतरी) की फ़िक्र इसकी ज़िम्मेदारी है, और पिछली सब उम्मतों से ज़्यादा 'अमर बिल-मअ़रूफ़' और 'नही अ़निल-मुन्कर' (अच्छे कामों का हुक्म करने और बुरे कामों से रोकने) की तक्मील इस उम्मत के ज़रिये हुई। अगरचे 'अमर बिल-मअ़रूफ़' और 'नही अ़निल-मुन्कर' (अच्छे कामों का हुक्म करने और बुरे कामों से रोकने) का फ़रीज़ा पिछली उम्मतों पर आयद (लागू) था जिसकी तफ़सील सही हदीसों में बयान हुई है, मगर अव्वल तो पिछली बहुत सी उम्मतों में जिहाद का हुक्म नहीं था इसलिये उनका 'अमर बिल-मअ़रूफ़' नेक कामों का हुक्म करना सिर्फ़ दिल और ज़बान से हो सकता था, उम्मते मुहम्मदिया में इसका तीसरा दर्जा हाथ की ताक़त से नेक काम का हुक्म भी है जिसमें जिहाद की तमाम क़िस्में भी दाख़िल हैं, और हुकूमत की ताक़त से इस्लामी क़ानूनों का लागू और जारी करना भी इसका हिस्सा है। इसके अ़लावा पहली उम्मतों में जिस तरह दीन के दूसरे निशानात आम ग़फ़लत का शिकार होकर मिट गये थे इसी तरह 'नेक कामों का हुक्म करने' का फ़रीज़ा भी बिल्कुल छोड़ दिया गया था, और इस उम्मते मुहम्मदिया के बारे में नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की यह पेशीनगोई (भविष्यवाणी) है कि "इस उम्मत में क़ियामत तक एक ऐसी जमाअ़त क़ायम रहेगी जो 'अमर बिल-मअ़रूफ़' और 'नही अ़निल-मुन्कर' (अच्छे कामों का हुक्म करने और बुरे कामों से रोकने) के फ़रीज़े पर क़ायम रहेगी।"

दूसरी इस उम्मत की विशेष सिफ़त यह बयान फ़रमाईः

تُؤْمِنُوْنَ بِاللّٰهِ

(तुम लोग ईमान लाते हो अल्लाह पर) यहाँ यह सवाल होता है कि अल्लाह पर ईमान तो पहले तमाम अम्बिया हज़रात और उनकी उम्मतों का भी संयुक्त वस्फ़ (ख़ूबी) है, फिर इसको इस उम्मत की विशेषता का सबब किस बिना पर क़रार दिया?

जवाब स्पष्ट है कि असल ईमान तो सब में संयुक्त है मगर ईमान के कामिल होने के दर्जे अलग-अलग हैं। उनमें उम्मते मुहम्मदिया को जो दर्जा हासिल है वह पहली उम्मतों के मुक़ाबले में ख़ास विशेषता रखता है।

और आयत के आख़िर में जो अहले किताब (यहूदियों व ईसाईयों) के बारे में फ़रमाया कि उनमें से कुछ मुसलमान हैं, इससे मुराद वे लोग हैं जो रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम पर ईमान ले आये थे जैसे हज़रत अ़ब्दुल्लाह इब्ने सलाम वग़ैरह।

لَنْ يَّضُرُّوْكُمْ اِلَّآ اَذًى ؕ وَاِنْ يُّقَاتِلُوْكُمْ يُوَلُّوْكُمُ الْاَدْبَارَ ۫ ثُمَّ لَا يُنْصَرُوْنَ ﴿۱۱۱﴾

लंय्यज़ुर्रूकुम् इल्ला अज़न्, व इंय्युक़ातिलूकुम् युवल्लूकुमुल् अद्बा-र, सुम्-म ला युन्सरून (111)	वे कुछ न बिगाड़ सकेंगे तुम्हारा मगर सताना ज़बान से, और अगर तुम से लड़ेंगे तो पीठ देंगे (यानी तुम्हारे मुक़ाबले में टिक न सकेंगे) फिर उनकी मदद न होगी। (111)

इन आयतों के मज़मून का पीछे से ताल्लुक़

पिछली आयतों में अहले किताब की मुसलमानों से दुश्मनी और इनको दीनी नुक़सान पहुँचाने की तदबीरें करना (योजनायें बनाना) बयान हुआ था, इस आयत में मुसलमानों के लिये दुनियावी नुक़सान की तदबीरें करने का ज़िक्र है।

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

वे (अहले किताब) तुमको हरगिज़ कोई नुक़सान न पहुँचा सकेंगे, मगर ज़रा मामूली सी तकलीफ़ (यानी ज़बानी बुरा-भला कहकर दिल दुखाना)। और अगर तुमसे वे (इससे ज़्यादा की हिम्मत करें) लड़ाई और जंग करें तो तुमको पीठ दिखाकर भाग जाएँगे, फिर (इससे बढ़कर यह होगा कि) किसी की तरफ़ से उनकी हिमायत भी न की जायेगी।

मआरिफ़ व मसाईल

यह क़ुरआन की पेशीनगोई (भविष्यवाणी) इस तरह पूरी हुई कि अहले किताब हुज़ूरे पाक के दौर में किसी मौक़े पर भी सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अन्हुम पर जो कि इस मज़मून के ख़ास मुख़ातब हैं, ग़ालिब न आ सके, ख़ुसूसन यहूद जिनके क़बीलों का ख़ुसूसियत से इस जगह ज़िक्र है, जिसमें सहाबा किराम में आपस में फूट डालने की कार्रवाई का वह हिस्सा भी शामिल है, अन्जाम यह हुआ कि ये लोग ज़लील व ख़्वार हुए, कुछ पर जिज़या (टैक्स) लगाया गया कुछ क़त्ल हुए और कुछ को देश-निकाला दिया गया। आने वाली आयत में इसी मज़मून का आख़िरी हिस्सा बयान हुआ है।

ضُرِبَتْ عَلَيْهِمُ الذِّلَّةُ اَيْنَ مَا ثُقِفُوْٓا اِلَّا بِحَبْلٍ مِّنَ اللّٰهِ وَحَبْلٍ
مِّنَ النَّاسِ وَبَآءُوْ بِغَضَبٍ مِّنَ اللّٰهِ وَضُرِبَتْ عَلَيْهِمُ الْمَسْكَنَةُ ۗ ذٰلِكَ بِاَنَّهُمْ كَانُوْا يَكْفُرُوْنَ
بِاٰيٰتِ اللّٰهِ وَيَقْتُلُوْنَ الْاَنْۢبِيَآءَ بِغَيْرِ حَقٍّ ۗ ذٰلِكَ بِمَا عَصَوْا وَّكَانُوْا يَعْتَدُوْنَ ۟

ज़ुरिबत् अ़लैहिमुज़्ज़िल्लतु ऐनमा सुक़िफ़ू इल्ला बि-हब्लिम् मिनल्लाहि व हब्लिम्-मिनन्नासि व बाऊ बि-ग़-ज़बिम् मिनल्लाहि व ज़ुरिबत् अ़लैहिमुल्-मस्क-नतु, ज़ालि-क बि-अन्नहुम् कानू यक्फ़ुरू-न	मारी गई उन पर ज़िल्लत जहाँ देखे जायें सिवाय अल्लाह के अ़हद और लोगों के अ़हद के, और कमाया उन्होंने ग़ुस्सा अल्लाह का और लाज़िम कर दी गयी उनके ऊपर हाजत मन्दी (यानी दूसरों के आगे हाथ फैलाना और मदद माँगना, चाहे वह जैसी मदद हो), यह इस वास्ते

बिआयातिल्लाहि व यक़्तुलूनल्-अम्बिया-अ बिग़ैरि हक़्किन्, ज़ालि-क बिमा अ-सव्-व कानू यअ़्तदून (112)	कि वे इनकार करते रहे हैं अल्लाह की आयतों का और क़त्ल करते रहे हैं पैग़म्बरों को नाहक़, यह इस वास्ते कि नाफ़रमानी की उन्होंने और हद से निकल गये। (112)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

जमा दी गई उन पर ज़िल्लत (बेक़द्री) जहाँ कहीं भी पाये जाएँगे, मगर हाँ! (दो माध्यमों से वे इस ज़िल्लत से निजात पा सकते हैं) एक तो ऐसे ज़रिये के सबब जो अल्लाह तआ़ला की तरफ़ से है, और एक ऐसे ज़रिये से जो आदमियों की तरफ़ से है। (अल्लाह की तरफ़ का ज़रिया तो यह है कि कोई किताबी ग़ैर-मुस्लिम अल्लाह तआ़ला की इबादत में अपने तरीक़े पर ऐसा मशग़ूल व मसरूफ़ हो कि मुसलमानों से लड़ता-भिड़ता न हो, उसको जिहाद में क़त्ल नहीं किया जाता, अगरचे उसकी काफ़िराना इबादत आख़िरत में उसके काम न आएगी। इसी तरह अल्लाह की तरफ़ के ज़रिये में यह भी आ गया कि वह किताबी नाबालिग़ या औरत हो, कि इस्लामी शरीअ़त की रू से उनको भी जिहाद में क़त्ल करने की इजाज़त नहीं है। और आदमियों की तरफ़ के ज़रिये (माध्यम) से मुराद मुआ़हदा (समझौता) और सुलह है जो मुसलमानों के साथ हो जाये। क्योंकि इस्लामी शरीअ़त में जिस शख़्स से सुलह का कोई समझौता हो जाये वह भी सुरक्षित है, उसका क़त्ल जायज़ नहीं) और मुस्तहिक़ हो गये (ये लोग) अल्लाह के ग़ज़ब के, और जमा दी गई इन पर पस्ती (कि इनकी तबीयतों में भी हिम्मत व बुलन्दी न रही, तथा जिज़या व ख़िराज (मुस्लिम हुकूमत में रहने का टैक्स) मुसलमानों को अदा करके रहना भी ज़िल्लत और पस्ती में दाख़िल है। यह (ज़िल्लत और अल्लाह का ग़ज़ब) इस वजह से हुआ कि वे लोग इनकारी हो जाते थे अल्लाह के अहकाम के, और क़त्ल कर दिया करते थे पैग़म्बरों को (इस तरह से कि वह क़त्ल ख़ुद उनके नज़दीक भी) नाहक़ (होता था) और यह ज़िल्लत व ग़ज़ब इस वजह से हुआ कि उन्होंने इताअ़त न की, और इताअ़त (फ़रमाँबरदारी) के दायरे से निकल-निकल जाते थे।

मआ़रिफ़ व मसाईल

यहूद पर ज़िल्लत व ग़ज़ब का मतलब

मौजूदा इस्राईली हुकूमत से शुब्हा और उसका जवाब

यह बहस सूरः ब-क़रह की आयत (61) में तफ़सील से गुज़र चुकी है, जिसमें किसी को इस

हुक्म से बाहर नहीं रखा गया। सूरः आले इमरान की आयत में:

إِلَّا بِحَبْلٍ مِّنَ اللَّهِ وَحَبْلٍ مِّنَ النَّاسِ

को इस हुक्म से बाहर रखा गया है (यानी वह इस पस्ती व ग़ज़ब से अलग रहेगा जो अल्लाह के अ़हद और लोगों के अ़हद में आ जाये) इस बाहर रखने की तहकीक़ वहाँ गुज़र चुकी है, इसको मआरिफ़ुल-क़ुरआन जिल्द 1 सूरः ब-क़रह की आयत 60 की तफ़सीर में देख लिया जाये। इतनी बात यहाँ दोबारा क़ाबिले ज़िक्र है कि तफ़सीरे कश्शाफ़ के मुताबिक़ आयत के मायने यह हैं कि यहूद पर ज़िल्लत व रुस्वाई लगी ही रहेगी, मगर सिर्फ़ दो सूरतों में वे इस ज़िल्लत से बच सकते हैं- एक अल्लाह का अ़हद जैसे नाबालिग़ बच्चा या औ़रत होने की बिना पर हुक्मे इलाही से वे क़त्ल वग़ैरह से सुरक्षित हैं। दूसरे लोगों से सुलह के समझौते की बिना पर उनकी ज़िल्लत व ख़्वारी का इज़हार न हो। इस जगह क़ुरआन के अलफ़ाज़ 'बि-हब्लिम् मिनन्नासि' हैं जो मोमिन व काफ़िर सब को शामिल हैं। इसमें यह सूरत भी दाख़िल है कि ये लोग मुसलमानों से सुलह का समझौता करके बेफ़िक्र हो जायें और यह भी संभव है कि दूसरी ग़ैर-मुस्लिम ताक़तों से सुलह का समझौता करके महफ़ूज़ हो जायें जैसा कि इस्राईल की हुकूमत की मौजूदा सूरत है, कि किसी अ़क्ल व समझ रखने वाले पर यह बात छुपी नहीं कि इस्राईल की मौजूदा हुकूमत दर असल यूरोप वालों की एक संयुक्त छावनी से ज़्यादा नहीं, इसकी जो क़ुव्वत नज़र आती है वह सब ग़ैरों के बल-बूते पर है, अगर अमेरिका, बरतानिया और रूस वग़ैरह आज उस पर से अपना हाथ उठा लें तो वह एक दिन अपना वजूद क़ायम नहीं रख सकता। वल्लाहु आलम

لَيْسُوا سَوَاءً ۗ مِّنْ أَهْلِ الْكِتَابِ أُمَّةٌ قَائِمَةٌ يَتْلُونَ آيَاتِ اللَّهِ آنَاءَ اللَّيْلِ وَهُمْ يَسْجُدُونَ ۝ يُؤْمِنُونَ بِاللَّهِ وَالْيَوْمِ الْآخِرِ وَيَأْمُرُونَ بِالْمَعْرُوفِ وَيَنْهَوْنَ عَنِ الْمُنكَرِ وَيُسَارِعُونَ فِي الْخَيْرَاتِ ۖ وَأُولَٰئِكَ مِنَ الصَّالِحِينَ ۝ وَمَا يَفْعَلُوا مِنْ خَيْرٍ فَلَن يُكْفَرُوهُ ۗ وَاللَّهُ عَلِيمٌ بِالْمُتَّقِينَ ۝ إِنَّ الَّذِينَ كَفَرُوا لَن تُغْنِيَ عَنْهُمْ أَمْوَالُهُمْ وَلَا أَوْلَادُهُم مِّنَ اللَّهِ شَيْئًا ۖ وَأُولَٰئِكَ أَصْحَابُ النَّارِ ۚ هُمْ فِيهَا خَالِدُونَ ۝ مَثَلُ مَا يُنفِقُونَ فِي هَٰذِهِ الْحَيَاةِ الدُّنْيَا كَمَثَلِ رِيحٍ فِيهَا صِرٌّ أَصَابَتْ حَرْثَ قَوْمٍ ظَلَمُوا أَنفُسَهُمْ فَأَهْلَكَتْهُ ۚ وَمَا ظَلَمَهُمُ اللَّهُ وَلَٰكِنْ أَنفُسَهُمْ يَظْلِمُونَ ۝

लैसू सवाअन्, मिन् अह्लिल्-किताबि उम्मतुन् क़ाइ-मतुंय्यत्लू-न आयातिल्लाहि आनाअल्लैलि व	वे सब बराबर नहीं, अहले किताब में एक फ़िर्क़ा है सीधी राह पर, पढ़ते हैं आयतें अल्लाह की रातों के वक़्त और वे सज्दे

हुम् यस्जुदून (113) युअ्मिनू-न बिल्लाहि वल्यौमिल्-आख़िरि व यअ्मुरू-न बिल्-मअ्रूफ़ि व यन्हौ-न अ़निल्-मुन्करि व युसारिअ़ू-न फ़िल्ख़ैराति, व उलाइ-क मिनस्सालिहीन (114) व मा यफ़्अ़लू मिन् ख़ैरिन् फ़-लंय्युक्फ़रूहु, वल्लाहु अ़लीमुम् बिकल्-मुत्तक़ीन (115) इन्नल्लज़ी-न क-फ़रू लन् तुग़्नि-य अ़न्हुम् अम्वालुहुम् व ला औलादुहुम् मिनल्लाहि शैअन्, व उलाइ-क अस्हाबुन्नारि हुम् फ़ीहा ख़ालिदून (116) म-सलु मा युन्फ़िक़ू-न फ़ी हाज़िहिल् हयातिद्दुन्या क-म-सलि रीहिन् फ़ीहा सिर्रुन् असाबत् हर्-स क़ौमिन् ज़-लमू अन्फ़ु-सहुम् फ़-अह्ल-कत्हु, व मा ज़-ल-महुमुल्लाहु व लाकिन् अन्फ़ु-सहुम् यज़्लिमून (117)	करते हैं। (113) ईमान लाते हैं अल्लाह पर और कियामत के दिन पर और हुक्म करते हैं अच्छी बात का और मना करते हैं बुरे कामों से, और दौड़ते हैं नेक कामों पर, और वही लोग नेकबख़्त हैं। (114) और जो कुछ करेंगे वे लोग नेक काम उसकी हरगिज़ नाक़द्री न होगी और अल्लाह को ख़बर है परहेज़गारों की। (115) वे लोग जो काफ़िर हैं हरगिज़ काम न आयेंगे उनको उनके माल और न औलाद अल्लाह के आगे कुछ, और वही लोग रहने वाले हैं आग में दोज़ख़ की, वे उस आग में हमेशा रहेंगे। (116) जो कुछ ख़र्च करते हैं इस दुनिया की ज़िन्दगी में इसकी मिसाल जैसे एक हवा कि उसमें हो पाला, जा लगी खेती को उस क़ौम की कि उन्होंने अपने हक़ में बुरा किया था फिर उसको नाबूद कर गई और अल्लाह ने उन पर ज़ुल्म नहीं किया लेकिन वे अपने ऊपर ज़ुल्म करते रहे। (117)

इन आयतों के मज़मून का पीछे से ताल्लुक़

ऊपर अहले किताब के बारे में बयान हुआ था कि उनमें कुछ लोग मुसलमान भी हैं और ज़्यादा काफ़िर हैं। इसी मज़मून की अधिक तफ़सील इन आयतो में है।

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

ये (अहले किताब) सब बराबर नहीं (बल्कि) इन (ही) अहले किताब में से एक जमाअ़त वह भी है जो (दीने हक़ पर) क़ायम हैं (और) अल्लाह तआ़ला की आयतें (यानी क़ुरआन) रात के

वक़्तों में पढ़ते हैं, और वे नमाज़ भी पढ़ते हैं। (और) अल्लाह पर और क़ियामत वाले दिन पर (पूरा-पूरा) ईमान रखते हैं और (दूसरों को) नेक काम बतलाते हैं और बुरी बातों से रोकते हैं और नेक कामों में दौड़ते हैं, और ये लोग (अल्लाह के नज़दीक) सलीक़े वाले लोगों में (शुमार किये जाते) हैं। और ये लोग जो नेक काम करेंगे उस (के सवाब) से मेहरूम न किए जाएँगे, और अल्लाह तआ़ला तक़वे वालों को ख़ूब जानते हैं (और ये लोग चूँकि तक़वे वाले हैं तो वायदे के अनुसार जज़ा के मुस्तहिक़ हैं)।

जो लोग काफ़िर हैं हरगिज़ उनके काम न आएँगे उनके माल और न उनकी औलाद अल्लाह तआ़ला के (अ़ज़ाब के) मुक़ाबले में ज़रा भी, और वे लोग दोज़ख़ वाले हैं (और) वे हमेशा-हमेशा उसी में रहेंगे (और कभी निजात न होगी)। वे (कुफ़्फ़ार) जो कुछ ख़र्च करते हैं इस दुनियावी ज़िन्दगानी में उसकी हालत (बरबाद व ज़ाया होने में) इस हालत जैसी है कि एक हवा हो जिसमें तेज़ सर्दी (यानी पाला) हो, (और) वह लग जाए ऐसे लोगों की खेती को जिन्होंने (बद्दीनी से) अपना नुक़सान कर रखा हो, पस वह (हवा) उस (खेती) को बरबाद कर डाले, (इसी तरह उन लोगों का ख़र्च करना आख़िरत में सब ज़ाया है) और (उस ज़ाया करने में) अल्लाह तआ़ला ने उन पर (कोई) ज़ुल्म नहीं किया लेकिन वे ख़ुद ही (कुफ़्र का अपराध करके जो कि क़ुबूलियत के लिये बाधा है) अपने आपको नुक़सान पहुँचा रहे हैं (न वे कुफ़्र करते न उनके ख़र्च किये हुए तमाम माल ज़ाया होते)।

يَا أَيُّهَا الَّذِينَ آمَنُوا لَا تَتَّخِذُوا بِطَانَةً مِّن دُونِكُمْ لَا يَأْلُونَكُمْ خَبَالًا ۚ وَدُّوا
مَا عَنِتُّمْ ۚ قَدْ بَدَتِ الْبَغْضَاءُ مِنْ أَفْوَاهِهِمْ ۖ وَمَا تُخْفِي صُدُورُهُمْ أَكْبَرُ ۚ قَدْ بَيَّنَّا لَكُمُ
الْآيَاتِ إِن كُنتُمْ تَعْقِلُونَ ۞ هَا أَنتُمْ أُولَاءِ تُحِبُّونَهُمْ وَلَا يُحِبُّونَكُمْ وَتُؤْمِنُونَ بِالْكِتَابِ
كُلِّهِ ۚ وَإِذَا لَقُوكُمْ قَالُوا آمَنَّا ۚ وَإِذَا خَلَوْا عَضُّوا عَلَيْكُمُ الْأَنَامِلَ مِنَ الْغَيْظِ ۚ قُلْ مُوتُوا بِغَيْظِكُمْ ۗ
إِنَّ اللَّهَ عَلِيمٌ بِذَاتِ الصُّدُورِ ۞ إِن تَمْسَسْكُمْ حَسَنَةٌ تَسُؤْهُمْ ۖ وَإِن تُصِبْكُمْ سَيِّئَةٌ يَفْرَحُوا
بِهَا ۖ وَإِن تَصْبِرُوا وَتَتَّقُوا لَا يَضُرُّكُمْ كَيْدُهُمْ شَيْئًا ۗ إِنَّ اللَّهَ بِمَا يَعْمَلُونَ مُحِيطٌ ۞

या अय्युहल्लज़ी-न आमनू ला तत्तख़िज़ू बितान-तम् मिन् दूनिकुम् ला यअ्लूनकुम् ख़बालन्, वद्दू मा अ़नित्तुम् क़द् ब-दतिल्-बग़्ज़ा-उ मिन् अफ़्वाहिहिम् व मा तुख़्फ़ी	ऐ ईमान वालो! न बनाओ भेदी (राज़दार) किसी को अपनों के सिवा, वे कमी नहीं करते तुम्हारी ख़राबी में, उनकी ख़ुशी है तुम जिस क़द्र तकलीफ़ में रहो, निकली पड़ती है दुश्मनी उनकी ज़बान से और जो कुछ छुपा है उनके जी में वह उससे

सुदूरुहुम् अक्बरु, क़द् बय्यन्ना लकुमुल्-आयाति इन् कुन्तुम् तअ्क़िलून (118) हा-अन्तुम् उला-इ तुहिब्बूनहुम् व ला युहिब्बूनकुम् व तुअ्मिनू-न बिल्किताबि कुल्लिही व इज़ा लक़ूकुम् क़ालू आमन्ना व इज़ा ख़लौ अ़ज़्ज़ू अ़लैकुमुल्-अनामि-ल मिनल्-ग़ैज़ि, क़ुल् मूतू बिग़ैज़िकुम्, इन्नल्ला-ह अ़लीमुम् बिज़ातिस्सुदूर (119) इन् तम्सस्कुम् ह-स-नतुन् तसुअ्हुम् व इन् तुसिब्कुम् सय्यि-अतुंय्यफ़्रहू बिहा, व इन् तस्बिरू व तत्तक़ू ला यज़ुर्रुकुम् कैदुहुम् शैअन्, इन्नल्ला-ह बिमा यअ्मलू-न मुहीत (120) ❁	बहुत ज़्यादा है, हमने बता दिये तुमको पते अगर तुमको अ़क़्ल है। (118) सुन लो तुम लोग उनके दोस्त हो और वे तुम्हारे दोस्त नहीं और तुम सब किताबों को मानते हो, और जब तुमसे मिलते हैं कहते हैं- हम मुसलमान हैं, और जब अकेले होते हैं तो काट-काट खाते हैं तुम पर उंगलियाँ ग़ुस्से से। तू कह- मरो तुम अपने ग़ुस्से में, अल्लाह को ख़ूब मालूम हैं दिलों की बातें। (119) अगर तुमको मिले कुछ भलाई तो बुरी लगती है उनको, और अगर तुम पर पहुँचे कोई बुराई तो ख़ुश हों उससे, और अगर तुम सब्र करो और बचते रहो तो कुछ न बिगड़ेगा तुम्हारा उनके फ़रेब से, बेशक जो कुछ वे करते हैं सब अल्लाह के बस में है। (120) ❁

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

ऐ ईमान वालो! अपने (लोगों के) सिवा (दूसरे मज़हब वालों में से) किसी को (मुहब्बत के बर्ताव में) अहमियत व विशेषता वाला मत बनाओ, (क्योंकि) वे लोग तुम्हारे साथ फ़साद करने में कोई कसर उठा नहीं रखते, (और दिल से भी) तुम्हारे (दुनियावी व दीनी) नुक़सान की तमन्ना रखते हैं। (उनके दिलों में तुम्हारी तरफ़ से इस क़द्र नफ़रत भरी है कि) वाक़ई (वह) बुग़्ज़ व नफ़रत (कई बार) उनके मुँह से (बेइख़्तियार बातचीत में) ज़ाहिर हो पड़ती है, और जिस क़द्र उनके दिलों में है वह तो बहुत कुछ है। (चुनाँचे) हम (उनकी दुश्मनी की) निशानियाँ (और अन्दाज़े व इशारात) तुम्हारे सामने ज़ाहिर कर चुके, अगर तुम अ़क़्ल रखते हो (तो उन यक़ीनी निशानियों से देख लो)। हाँ! (समझो) तुम ऐसे हो कि इन लोगों से मुहब्बत (का बर्ताव) रखते हो और ये लोग तुमसे बिल्कुल मुहब्बत नहीं रखते (न दिल से न बर्ताव से), हालाँकि तुम तमाम (आसमानी) किताबों पर ईमान रखते हो (इसमें उनकी किताबें भी शामिल हैं और वे तुम्हारी

किताब यानी क़ुरआन पर ईमान नहीं रखते, मगर वे तो बावजूद इस तुम्हारे ईमान के भी तुमसे मुहब्बत नहीं रखते और तुम बावजूद उनके इस ईमान न लाने के भी उनसे मुहब्बत रखते हो) और (तुम उनके ईमान लाने के ज़ाहिरी दावे से धोखे में मत पड़ना कि वे भी तो हमारी किताब पर ईमान रखते हैं, क्योंकि) ये लोग जो तुमसे मिलते हैं (सिर्फ़ तुम्हारे दिखाने को दोग़लेपन और मुनाफ़िक़ाना तौर पर) कह देते हैं कि हम ईमान ले आए, और जब (तुमसे) अलग होते हैं तो तुम पर अपनी उंगलियाँ काट-काट खाते हैं मारे सख़्त गुस्से (व ग़ज़ब) के, (इससे उनकी बेइन्तिहा दुश्मनी बयान करना मक़सद है, यह एक मुहावरा है)। आप (उनसे) कह दीजिए कि तुम मर रहो अपने गुस्से में, (मुराद यह कि अगर तुम मर भी जाओगे तब भी तुम्हारी मुराद पूरी न होगी) बेशक अल्लाह तआ़ला ख़ूब जानते हैं दिलों की बातों को (इसी लिये उन लोगों के दिलों में जो रंज व गुबार और दुश्मनी तुम्हारी तरफ़ से भरी है सब बतला दी)।

(और उनका यह हाल है कि) अगर तुमको कोई अच्छी हालत पेश आती है (जैसे तुम में आपस में इत्तिफ़ाक़ हो, ग़ैरों पर ग़लबा हो जाये) तो उनके लिये दुख का सबब होती है (जिसका सबब हद से बढ़ी हुई जलन है) और अगर तुमको कोई नागवार (बुरी) हालत पेश आती है तो वे उससे (बड़े) खुश होते हैं (जिससे उनका तुम्हारे लिये बुरा चाहना साबित है। सो उनके जब ये हालात हैं तो वे इस क़ाबिल कब हैं कि उनसे दोस्ती या दोस्ती का बर्ताव किया जाये, उनके मज़्कूरा हालात सुनने के बाद दिलों में यह ख़्याल पैदा होना कोई दूर की बात न थी कि ये लोग मुसलमानों को नुक़सान पहुँचाने में कोई कसर नहीं रखेंगे, इसलिये अगली आयत में मुसलमानों की तसल्ली के लिये फ़रमाया) और अगर तुम जमाव और तक़्वे के साथ रहो तो उन लोगों की तदबीर तुमको ज़रा भी नुक़सान न पहुँचा सकेगी (तुम इससे बेफ़िक्र रहो। सो दुनिया में तो उनको यह नाकामी नसीब होगी और आख़िरत में दोज़ख़ की सज़ा होगी क्योंकि) बेशक अल्लाह तआ़ला उनके तमाम आमाल की मुकम्मल जानकारी रखते हैं (कोई अ़मल हमसे छुपा नहीं, इसलिए वहाँ सज़ा से बचने के लिये किसी हीले-बहाने की गुंजाईश नहीं)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

इस आयत का शाने नुज़ूल (उतरने का मौक़ा और सबब) यह है कि मदीना के आस-पास के इलाक़ों में जो यहूदी आबाद थे उनके साथ **औस** और **ख़ज़्रज** के लोगों की पुराने ज़माने से दोस्ती चली आती थी। व्यक्तिगत तौर पर भी इन क़बीलों के अफ़राद उनके अफ़राद से दोस्ताना ताल्लुक़ात रखते थे और क़बाईली हैसियत से भी ये और यहूद एक दूसरे के पड़ोसी और साथी थे। जब **औस** और **ख़ज़्रज** के क़बीले मुसलमान हो गये तो उसके बाद भी वे यहूदियों के साथ पुराने ताल्लुक़ात निभाते रहे और उनके अफ़राद अपने पहले यहूदी दोस्तों से उसी मुहब्बत व ख़ुलूस के साथ मिलते रहे, लेकिन यहूदियों को हज़रत ख़ातिमुल-अम्बिया सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से और आपके लाये हुए दीन से जो दुश्मनी थी उसकी बिना पर वे किसी ऐसे शख़्स से मुख़्लिसाना (सच्ची और दिली) मुहब्बत रखने के लिये तैयार न थे जो इस दावत को क़ुबूल करके

मुसलमान हो गया हो। उन्होंने अन्सार के साथ ज़ाहिर में तो वही ताल्लुक़ात रखे जो पहले से चले आ रहे थे मगर दिल में अब वे उनके दुश्मन हो चुके थे और इसी ज़ाहिरी दोस्ती से नाजायज़ फ़ायदा उठाकर हर वक़्त इस कोशिश में लगे रहते थे कि किसी तरह मुसलमानों की जमाअ़त में अन्दरूनी फ़ितना व फ़साद बरपा कर सकें और उनके जमाअ़ती राज़ मालूम करके उनके दुश्मनों तक पहुँचायें। अल्लाह तआ़ला यहाँ उनकी इस मुनाफ़िक़ाना (दिल की छुपी दुश्मनी और दोग़ली) रविश से मुसलमानों को सचेत रहने की हिदायत फ़रमा रहे हैं और एक निहायत अहम उसूल बयान फ़रमाते हैं कि:

يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا لَا تَتَّخِذُوْا بِطَانَةً مِّنْ دُوْنِكُمْ

"ऐ ईमान वालो! अपने (यानी मुसलमानों के) अ़लावा किसी को गहरा और राज़दार दोस्त न बनाओ।" 'बितानत' के मायने हैं वली, दोस्त, राज़दार और भेदी। कपड़े का अन्दरूनी अस्तर जो जिस्म से मिला रहे वह भी बिताना कहलाता है। यह **बतन** से निकला है, बतन का इस्तेमाल हर चीज़ में उसके पिछले हिस्से के ख़िलाफ़ होता है। ऊपर की तरफ़ को **ज़हर** (पीठ) और अन्दर की तरफ़ को **बतन** बोलते हैं, और कपड़े के ऊपर के हिस्से को **ज़हारा** और अन्दरूनी और नीचे के हिस्से को जो जिस्म से मिला रहे जैसे **अस्तर** वग़ैरह को **बिताना** कहते हैं। जिस तरह हम अपनी भाषा में बोलते हैं कि वह उसका ओढ़ना-बिछौना है, यानी वह उसको बहुत ही प्यारा और पसन्दीदा है, इसी तरह **बितानतुस्सौब** से मुराद वली, दोस्त और सैक्रेट्री जो अन्दरूनी मामलात का राज़दार हो, उसके लिये बितानत का लफ़्ज़ इस्तेमाल होता है। अ़रबी लुग़त की मशहूर मोतबर किताब **लिसानुल-अ़रब** में बितानत के मायने इस तरह किये हैं:

بطانة الرّجل صاحب سرّه وداخلة امره الذى يشاوره فى احواله.

यानी **बितानतुर्रजुलि** किसी शख़्स के वली, राज़दार दोस्त और उसके मामलात में दख़ील को कहा जाता है जिससे वह अपने मामलात में मश्विरा ले। अ़ल्लामा अस्फ़हानी ने **मुफ़रदातुल-क़ुरआन** में और इमाम क़ुर्तुबी ने अपनी तफ़सीर में भी यही मायने बयान किये हैं। जिसका हासिल यह हुआ कि बिताना उस शख़्स को कहा जाता है जिसको राज़दार, वली और दोस्त समझा जाये, और उसको अपने मामलात में विश्वसनीय और सलाहकार बनाया जाये।

तो इस आयत में मुसलमानों को हुक्म दिया गया है कि अपनी मिल्लत वालों के सिवा किसी को इस तरह का विश्वसनीय और सलाहकार न बनाओ कि उससे अपने और अपनी मिल्लत व हुकूमत के राज़ खोल दो। इस्लाम ने अपनी वैश्विक रहमत के साये में जहाँ मुसलमानों को ग़ैर-मुस्लिमों के साथ हमदर्दी, ख़ैरख़्वाही, नफ़ा पहुँचाने और मुरव्वत व रवादारी की बहुत ज़्यादा हिदायतें फ़रमाईं और न सिर्फ़ ज़बानी हिदायतें बल्कि रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने तमाम मामलात में इसको अ़मली तौर पर रिवाज दिया है, वहीं मस्लेहत के ऐन मुताबिक़ मुसलमानों के अपने संगठन और उनके मख़्सूस शआ़ईर (पहचान व निशानियों) की हिफ़ाज़त के लिये ये अहकाम भी जारी फ़रमाये कि इस्लामी क़ानून के मुन्किरों (यानी काफ़िरों)

और बाग़ियों से ताल्लुक़ात एक ख़ास हद से आगे बढ़ाने की इजाज़त मुसलमान को नहीं दी जा सकती, इसलिये कि इससे व्यक्ति और मिल्लत (क़ौम) दोनों के लिये नुक़सान और ख़तरे खुले हैं और यह ऐसा स्पष्ट, व्यापाक, मुनासिब और ज़रूरी इन्तिज़ाम है जिससे व्यक्ति और मिल्लत दोनों की हिफ़ाज़त होती है। जों ग़ैर-मुस्लिम इस्लामी सल्तनत के नागरिक हैं या मुसलमानों से कोई समझौता किये हुए हैं उनके बारे में रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की तालीमात और उनकी हिफ़ाज़त के लिये अत्यन्त ताकीदें इस्लामी क़ानून का हिस्सा हैं। हुज़ूरे अकरम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का इरशाद है:

مَنْ اٰذٰى ذِمِّيًّا فَاَنَا خَصْمُهٗ وَمَنْ كُنْتُ خَصْمَهٗ خَصَمْتُهٗ يَوْمَ الْقِيٰمَةِ. (عن ابن مسعودؓ)

"जिस शख़्स ने किसी ज़िम्मी (इस्लामी हुकूमत में रहने वाले काफ़िर) को सताया तो क़ियामत के दिन उसकी तरफ़ से मैं दावेदार बनूँगा और जिस मुक़द्दमे में मैं दावेदार हूँ तो मैं ही ग़ालिब रहूँगा।"

एक दूसरी हदीस में फ़रमाया:

مَنَعَنِيْ رَبِّيْ اَنْ اَظْلِمَ مُعَاهِدًا وَّلَا غَيْرَهٗ. (عن علیؓ)

"मुझे मेरे परवर्दिगार ने मना फ़रमाया है कि मैं किसी समझौते वाले या किसी दूसरे पर ज़ुल्म करूँ।"

एक और हदीस में फ़रमाया:

اَلَا مَنْ ظَلَمَ مُعَاهِدًا اَوِ انْتَقَصَهٗ اَوْ كَلَّفَهٗ فَوْقَ طَاقَتِهٖ اَوْ اَخَذَ مِنْهُ شَيْئًا بِغَيْرِ طِيْبِ نَفْسٍ مِّنْهُ فَاَنَا حَجِيْجُهٗ يَوْمَ الْقِيٰمَةِ.

"ख़बरदार! जो किसी ग़ैर-मुस्लिम समझौते वाले पर ज़ुल्म करे, या उसके हक़ में कमी करे या उस पर उसकी ताक़त से ज़्यादा बोझ डाले, या उससे कोई चीज़ बग़ैर उसकी दिली रज़ामन्दी के हासिल करे तो क़ियामत के दिन मैं उसका वकील हूँगा।"

लेकिन इन तमाम सहूलतों और रियायतों के साथ मुसलमानों की अपनी जमाअ़त और मिल्लत की हिफ़ाज़त के लिये ये हिदायतें भी दी गईं कि इस्लाम और मुसलमानों के दुश्मनों को अपना गहरा दोस्त और राज़दार व सैक्रेट्री न बनाया जाये।

इब्ने अबी हातिम रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने नक़ल किया है कि हज़रत उमर फ़ारूक़ रज़ियल्लाहु अ़न्हु से कहा गया कि यहाँ एक ग़ैर-मुस्लिम लड़का है जो बड़ा अच्छा कातिब (लिखने वाला) है, अगर उसको आप अपना मीर मुंशी (क्लर्क) बना लें तो बेहतर हो। इस पर हज़रत फ़ारूक़े आज़म रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने फ़रमाया:

قَدِ اتَّخَذْتُ اِذًا بِطَانَةً مِّنْ دُوْنِ الْمُؤْمِنِيْنَ.

"यानी उसको मैं ऐसा करूँ तो मुसलमानों को छोड़कर दूसरे मिल्लत वाले को राज़दार बना लूँगा जो क़ुरआनी हुक्म के ख़िलाफ़ है।"

इमाम क़ुर्तुबी रहमतुल्लाहि अ़लैहि जो पाँचवीं सदी के मशहूर आ़लिम और मुफ़स्सिर हैं, बड़ी

हसरत और दर्द के साथ मुसलमानों में इस तालीम की ख़िलाफ़वर्ज़ी और इसके बुरे परिणामों का बयान इस तरह फ़रमाते हैं:

وَقَدِانْقَلَبَتِ الْاَحْوَالُ فِیْ هٰذِهِ الْاَزْمَانِ بِاتِّخَاذِ اَهْلِ الْكِتٰبِ كَتَبَةً وَاُمَنَآءَ وَتَسَوَّدُوْا بِذٰلِكَ عِنْدَ جَهَلَةِ الْاَغْنِيَآءِ مِنَ الْوُلَاةِ وَالْاُمَرَآءِ.

"यानी इस ज़माने में हालात में ऐसा इन्क़िलाब (बदलाव) आया कि यहूदियों व ईसाईयों को राज़दार व अमीन बना लिया गया और इस माध्यम से वे जाहिल मालदारों व अमीरों पर मुसल्लत हो गये।"

आज भी किसी ऐसी हुकूमत में जिसका क़ियाम (स्थापना) किसी ख़ास नज़रिये पर हो, वहाँ इस नई रविश (चलन) के ज़माने में भी किसी ऐसे शख़्स को जो उस नज़रिये को क़ुबूल नहीं करता सलाहकार और सैक्रेट्री नहीं बनाया जा सकता।

रूस और चीन में किसी ऐसे शख़्स को जो कम्यूनिज़्म पर ईमान न रखता हो, किसी ज़िम्मेदार ओहदे पर नहीं बिठाया जाता, और उसको हुकूमत का राज़दार और सलाहकार नहीं बनाया जाता। इस्लामी हुकूमतों के ज़वाल (पतन और ख़ात्मे) की दास्तानें पढ़िये तो ज़वाल के दूसरे कारणों के साथ कसरत से यह भी मिलेगा कि मुसलमानों ने अपने मामलात का राज़दार व सैक्रेट्री ग़ैर-मुस्लिमों को बना लिया था। उस्मानी सल्तनत के ज़वाल (पतन) में भी इसको काफ़ी दख़ल था।

उक्त आयत में इस हुक्म की वजह यह बयान की गई है:

لَا يَأْلُوْنَكُمْ خَبَالًا........... الآية

यानी वे लोग तुम्हें वबाल व फ़साद में मुब्तला करने में कोई मौक़ा नहीं चूकते, और तुम्हारे दुख पहुँचने की आरज़ू रखते हैं। कुछ बातें तो उनकी ज़बानों से ज़ाहिर हो पड़ती हैं और जो कुछ वे अपने दिल में छुपाये हुए हैं वह भी और बढ़कर है। हम तो तुम्हारे लिये निशानियाँ खोलकर ज़ाहिर कर चुके हैं अगर तुम अक़्ल से काम लेने वाले हो।

मतलब यह है कि मुसलमानों को आगाह किया जा रहा है कि मुसलमान अपने इस्लामी भाईयों के सिवा किसी को भेदी और सलाहकार न बनायें, क्योंकि यहूद हों या ईसाई, मुनाफ़िक़ लोग हों या मुश्रिक कोई जमाअत तुम्हारी सच्ची और दिल से भला चाहने वाली नहीं हो सकती, बल्कि हमेशा ये लोग इस कोशिश में लगे रहते हैं कि तुम्हें बेवक़ूफ़ बनाकर नुक़सान पहुँचायें और दीनी व दुनियावी ख़राबियों में मुब्तला करें। उनकी आरज़ू यह है कि तुम तकलीफ़ में रहो और किसी न किसी तदबीर से तुमको दीनी या दुनियावी नुक़सान पहुँचे। जो दुश्मनी या नुक़सान उनके दिलों में है वह तो बहुत ही ज़्यादा है लेकिन बहुत सी बार अपने ग़ुस्से, दुश्मनी और आक्रोश में दबकर वे खुल्लम-खुल्ला भी ऐसी बातें कर गुज़रते हैं जो उनकी गहरी दुश्मनी का साफ़ पता देती हैं। दुश्मनी और जलने के कारण उनकी ज़बान क़ाबू में नहीं रहती। पस अक़्लमन्द आदमी का काम नहीं कि ऐसे दुश्मनों को राज़दार बनाये। ख़ुदा तआ़ला ने दोस्त

दुश्मन के पते और दोस्ती व ताल्लुक़ात के अहकाम बतला दिये हैं, जिसमें अ़क़्ल होगी उससे काम लेगा।

وَدُّوْا مَا عَنِتُّمْ

'वद्दू मा अ़नित्तुम' यह टुकड़ा काफ़िरों की मानसिकता का पूरा तर्जुमान है। इसके अन्दर गहरी तालीम इस बात की आ गई कि कोई ग़ैर-मुस्लिम किसी हाल में मुसलमानों का सच्चा और दिली दोस्त और भला चाहने वाला नहीं हो सकता।

इसके बाद फ़रमाया गयाः

هٰٓاَنْتُمْ اُولَآءِ تُحِبُّوْنَهُمْ ....الاية

यानी तुम तो ऐसे हो कि इनसे मुहब्बत रखते हो और ये तुम से ज़रा भी मुहब्बत नहीं रखते और तुम सब किताबों को मानते हो और वे जब तुम से मिलते हैं कहते हैं कि हम मुसलमान हैं और जब अकेले होते हैं तो काट-काट खाते हैं तुम पर उंगलियाँ ग़ुस्से से। कह दीजिये कि तुम ग़ुस्से में जल-भुनकर मर जाओ, बेशक अल्लाह दिलों की बातों को ख़ूब जानता है।

यानी यह कैसी बेमौक़ा बात है कि तुम उनकी दोस्ती का दम भरते रहो और वे तुम्हारे दोस्त नहीं बल्कि जड़ काटने वाले दुश्मन हैं। और अ़जीब बात यह है कि तुम तमाम आसमानी किताबों को मानते हो चाहे वे किसी क़ौम की हों, और किसी ज़माने में किसी पैग़म्बर पर नाज़िल हुई हों, इसके विपरीत ये लोग तुम्हारी किताब और पैग़म्बर को नहीं मानते बल्कि अपनी किताबों पर भी ख़ुद उनका ईमान सही नहीं। इस लिहाज़ से चाहिये था कि वे तुम से थोड़ी-बहुत मुहब्बत करते और तुम उनसे सख़्त नफ़रत व बेज़ारी का मामला करते, मगर यहाँ मामला बिल्कुल उल्टा हो रहा है।

इस कुफ़्र भरी मानसिकता की अधिक वज़ाहत यह है किः

اِنْ تَمْسَسْكُمْ حَسَنَةٌ......................الخ

यानी उन लोगों का यह हाल है कि अगर तुम्हें कोई अच्छी हालत पेश आ जाये तो यह उन लोगों को दुख पहुँचाती है, और अगर तुम पर कोई बुरी हालत आ पड़ती है तो ये उससे ख़ुश होते हैं।

फिर मुनाफ़िक़ों की चालों व फ़रेब और सख़्त मुख़ालिफ़ों की दुश्मनी व मुख़ालफ़त के परिणामों से महफ़ूज़ रहने का आसान और सहजा पूर्ण हासिल होने वाला नुस्ख़ा यह बयान किया गया किः

وَاِنْ تَصْبِرُوْا وَتَتَّقُوْا لَا يَضُرُّكُمْ كَيْدُهُمْ شَيْئًا اِنَّ اللّٰهَ بِمَا يَعْمَلُوْنَ مُحِيْطٌ٥

अगर तुम सब्र और तक़्वा इख़्तियार किये रहो तो तुमको उनकी चालें ज़रा भी नुक़सान न पहुँचा सकेंगी।

मुसलमानों की फ़तह व कामयाबी का नुस्ख़ा

मुसलमानों की फ़तह व कामयाबी और तमाम मुश्किलों में आसानी का राज़ सब्र और तक़्वे की दो सिफ़तों में छुपा है। क़ुरआने करीम ने मुसलमानों को हर क़िस्म की मुसीबतों और परेशानियों से महफ़ूज़ रहने के लिये सब्र व तक़्वे को सिर्फ़ इसी आयत में नहीं बल्कि दूसरी आयतों में भी एक प्रभावी इलाज की हैसियत से बयान फ़रमाया है। इसी रुकूअ़ के बाद दूसरे रुकूअ़ में है:

بَلٰى اِنْ تَصْبِرُوْا وَتَتَّقُوْا وَيَاْتُوْكُمْ مِّنْ فَوْرِهِمْ هٰذَا يُمْدِدْكُمْ رَبُّكُمْ بِخَمْسَةِ اٰلَافٍ مِّنَ الْمَلٰٓئِكَةِ مُسَوِّمِيْنَ. (۱۲۵:۳)

इसमें ग़ैबी इमदाद का वायदा इन्हीं दो शर्तों यानी सब्र व तक़्वे पर मौक़ूफ़ (निर्भर) रखा गया है। सूरः यूसुफ़ में फ़रमाया:

اِنَّهٗ مَنْ يَّتَّقِ وَيَصْبِرْ. (۱۲:۹۰)

इसमें भी फ़लाह व कामयाबी सब्र व तक़्वे के साथ जुड़ी हुई बतलाई गई है। इसी सूरत के ख़त्म पर सब्र की हिदायत व तालीम इन अलफ़ाज़ में की जा रही है:

يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوا اصْبِرُوْا وَصَابِرُوْا وَرَابِطُوْا، وَاتَّقُوا اللّٰهَ لَعَلَّكُمْ تُفْلِحُوْنَ ○ (۳:۲۰۰)

इसमें भी फ़लाह व कामयाबी को सब्र व तक़्वे पर मौक़ूफ़ रखा गया है।

सब्र व तक़्वा के मुख़्तसर उनवान के अन्दर व्यक्तिगत और सामूहिक ज़िन्दगी के हर शोबे (क्षेत्र), अ़वामी और फ़ौजी इन्तिज़ाम व व्यवस्था का एक कामयाब उसूल व नियम बड़े ही जामे और मुकम्मल अन्दाज़ में आ गया।

हज़रत ख़ातिमुल-अम्बिया सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का पाक इरशाद है:

عَنْ اَبِىْ ذَرٍّ قَالَ قَالَ رَسُوْلُ اللّٰهِ صَلَّى اللّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ: اِنِّىْ لَاَعْلَمُ اٰيَةً لَوْ اَخَذَ النَّاسُ بِهَا لَكَفَتْهُمْ وَمَنْ يَّتَّقِ اللّٰهَ يَجْعَلْ لَّهٗ مَخْرَجًا......... (الاية ٦٥:٢) (رواه احمد)

"रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि मैं एक ऐसी आयत जानता हूँ कि अगर लोग उसपर अ़मल इख़्तियार कर लें तो उनके दीन व दुनिया के लिये वही काफ़ी है। वह आयत यह है:

وَمَنْ يَّتَّقِ اللّٰهَ يَجْعَلْ لَّهٗ مَخْرَجًا.

"व मंय्यत्तक़िल्ला-ह यज्अ़ल्-लहू मख़्रजा" यानी जो शख़्स अल्लाह तआ़ला से डरे अल्लाह तआ़ला उसके लिये रास्ता निकाल देते हैं।"

وَاِذْ غَدَوْتَ مِنْ اَهْلِكَ تُبَوِّئُ الْمُؤْمِنِيْنَ مَقَاعِدَ لِلْقِتَالِ ۭ وَاللّٰهُ سَمِيْعٌ عَلِيْمٌ ۝ اِذْ هَمَّتْ طَّآئِفَتٰنِ مِنْكُمْ اَنْ تَفْشَلَا ۙ وَاللّٰهُ وَلِيُّهُمَا ۭ وَعَلَى اللّٰهِ فَلْيَتَوَكَّلِ الْمُؤْمِنُوْنَ ۝ وَلَقَدْ نَصَرَكُمُ اللّٰهُ بِبَدْرٍ وَّاَنْتُمْ اَذِلَّةٌ ۚ فَاتَّقُوا اللّٰهَ لَعَلَّكُمْ تَشْكُرُوْنَ ۝

व इज़् ग़दौ-त मिन् अह्लि-क तुबव्विउल्-मुअ्मिनी-न मक़ाअि-द लिल्क़ितालि, वल्लाहु समीअुन् अ़लीम (121) इज़् हम्मत्ता-इ-फ़तानि मिन्कुम् अन् तफ़्शला वल्लाहु वलिय्युहुमा, व अ़लल्लाहि फ़ल्य-तवक्कलिल् मुअ्मिनून (122) व लक़द् न-स-रकुमुल्लाहु बिबद्रिंव्-व अन्तुम् अज़िल्लतुन् फ़त्तक़ुल्ला-ह लअ़ल्लकुम् तश्कुरून (123)	और जब तू सुबह को निकला अपने घर से बिठलाने लगा मुसलमानों को लड़ाई के ठिकानों पर, और अल्लाह सब कुछ सुनता जानता है। (121) जब इसदा किया दो फ़िर्क़ों (जमाअ़तों) ने तुम में से कि नामर्दी करें (यानी बुज़दिली दिखायें) और अल्लाह मददगार था उनका, और अल्लाह ही पर चाहिए कि भरोसा करें मुसलमान। (122) और तुम्हारी मदद कर चुका है अल्लाह बदर की लड़ाई में और तुम कमज़ोर थे, सो डरते रहो अल्लाह से ताकि तुम एहसान मानो। (123)

इन आयतों के मज़मून का पीछे से ताल्लुक़

पहले गुज़री आयतों में बयान हुआ था कि अगर मुसलमान सब्र व तक़वा पर क़ायम रहें तो कोई ताक़त उनको नुक़सान नहीं पहुँचा सकती, और यह कि जंगे-उहुद के मौक़े पर जो वक़्ती और अस्थायी पराजय और तकलीफ़ मुसलमानों को पहुँची, वह इन्हीं दो चीज़ों में कुछ हज़रात की तरफ़ से कोताही की बिना पर थी। उक्त आयतों में इसी जंगे-उहुद का वाक़िआ बयान किया गया है, और जंगे-बदर में फ़तह (विजय) का।

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

और (वह वक़्त भी याद करने के क़ाबिल है) जबकि आप सुबह के वक़्त (लड़ाई की तारीख़ से पहले) अपने घर से (इस ग़र्ज़ से) चले (कि) मुसलमानों को (काफ़िरों से) जंग करने के लिये (मुनासिब) मक़ामात पर जमा (-ने के लिये तैयार कर) रहे थे। (फिर इसी तजवीज़ के मुताबिक़ सब को उन मक़ामात पर जमा दिया) और अल्लाह तआ़ला (उस वक़्त की बातें) सब सुन रहे थे (और उस वक़्त के हालात) सब जान रहे थे। (इसी के साथ यह क़िस्सा भी हुआ कि) जब तुम (मुसलमानों) में से दो जमाअ़तों ने (जो कि बनी सलमा और बनी हारिसा हैं) दिल में ख़्याल किया कि हिम्मत हार दें (और हम भी अ़ब्दुल्लाह इब्ने उबई मुनाफ़िक़ की तरह अपने घर जा बैठें) और अल्लाह तो उन दोनों जमाअ़तों का मददगार था (भला उनको कब हिम्मत हारने देता, चुनाँचे ख़ुदा तआ़ला ने उनको इस ख़्याल पर अ़मल करने से महफ़ूज़ रखा) और (हम आईन्दा के लिये उन जमाअ़तों और सब को नसीहत करते हैं कि जब तुम मुसलमान हो) बस

मुसलमानों को तो अल्लाह तआ़ला ही पर भरोसा करना चाहिए (और ऐसी कम-हिम्मती कभी न करनी चाहिए)। और यह बात एक वास्तविकता है कि हक़ तआ़ला ने तुमको (ग़ज़वा-ए-) बदर में विजय व कामयाब फ़रमाया, हालाँकि तुम सामान व हथियार से (बिल्कुल) ख़ाली थे, (क्योंकि मजमा भी काफ़िरों के मुक़ाबले में कम था, वे एक हज़ार थे और मुसलमान तीन सौ तेरह थे और हथियार वग़ैरह भी बहुत कम थे) सो (चूँकि यह कामयाब होना परहेज़गारी और अल्लाह के डर की बदौलत था जिसमें जमाव व सब्र भी दाख़िल है तो तुम पर लाज़िम है कि आगे भी) अल्लाह तआ़ला से डरते रहा करो (इसी का नाम तक़वा है) ताकि तुम (इस मदद की नेमत के) शुक्रगुज़ार रहो (क्योंकि शुक्रगुज़ारी सिर्फ़ ज़बान के साथ ख़ास नहीं बल्कि पूरा शुक्र यह है कि ज़बान और दिल भी मशग़ूल हो, और फ़रमाँबरदारी की भी पाबन्दी हो, ख़ास कर जबकि उस फ़रमाँबरदारी व नेकी का उस नेमत में प्रभावी होना भी साबित हो जाये)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

जंग-ए-उहुद का पसे-मन्ज़र

उक्त आयत की तफ़सीर से पहले ज़रूरी है कि जंगे-उहुद के वाक़िआ़ती पसे-मन्ज़र को समझ लिया जाये।

रमज़ान मुबारक सन् 2 हिजरी में बदर के मक़ाम पर क़ुरैशी फ़ौज और मुसलमान मुजाहिदों में जंग हुई, जिसमें मक्का के काफ़िरों के सत्तर मशहूर व्यक्ति मारे गये और इतने ही गिरफ़्तार हुए। उस तबाह करने वाली और ज़िल्लत भरी शिकस्त से जो वास्तव में अल्लाह के अ़ज़ाब की पहली क़िस्त थी, क़ुरैश की बदले की भावना भड़क उठी। जो सरदार मारे गये थे उनके रिश्तेदारों ने तमाम अ़रब को ग़ैरत दिलाई और यह मुआ़हदा किया कि जब तक हम इसका बदला मुसलमानों से न लेंगे चैन से न बैठेंगे और मक्का वालों से अपील की कि उनका तिजारती क़ाफ़िला जो माल मुल्क शाम से लाया है वह सब इसी मुहिम पर ख़र्च किया जाये ताकि हम मुहम्मद (सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम) और उनके साथियों से अपने मक़्तूल लोगों का बदला ले सकें। सब ने मन्ज़ूर किया और सन् 3 हिजरी में क़ुरैश के साथ बहुत से दूसरे क़बीले भी मदीना पर चढ़ाई करने की ग़र्ज़ से निकल पड़े, यहाँ तक कि औ़रतें भी साथ आईं ताकि मौक़ा आने पर मर्दों को ग़ैरत दिलाकर पीछे हटने से रोक सकें।

जिस वक़्त यह तीन हज़ार का लश्कर हथियार वग़ैरह से पूरी तरह लैस होकर मदीना से तीन चार मील पहले उहुद पहाड़ के क़रीब पहुँचा और वहाँ पड़ाव डाला तो नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने मुसलमानों से मश्विरा लिया। आपकी राय मुबारक यह थी कि मदीना के अन्दर रहकर दुश्मन का मुक़ाबला बहुत आसानी और कामयाबी के साथ किया जा सकता है। यह पहला मौक़ा था कि मुनाफ़िक़ों के सरदार अ़ब्दुल्लाह बिन उबई जो बज़ाहिर मुसलमानों में शामिल था उससे भी राय ली गई जो हुज़ूरे अकरम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम

की राय के मुवाफ़िक़ थी मगर कुछ जोशीले मुसलमान जिन्हें बदर की शिर्कत नसीब न हुई थी और शहादत का शौक़ उन्हें बेचैन कर रहा था इस पर अड़े रहे कि हमको बाहर निकल कर मुक़ाबला करना चाहिये ताकि दुश्मन हमारे बारे में बुज़दिली और कमज़ोरी का गुमान न करे। बहुमत इसी तरफ़ हो गया।

उसी समय आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम मकान के अन्दर तशरीफ़ ले गये और ज़िरह (लोहे की जैकिट) पहनकर बाहर आये तो उस वक़्त कुछ लोगों को ख़्याल हुआ कि हमने आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को आपकी राय के ख़िलाफ़ मदीना से बाहर जंग करने पर मजबूर किया, यह ग़लत हुआ। इसलिये अ़र्ज़ किया कि या रसूलल्लाह! अगर आपका मंशा न हो तो यहीं तशरीफ़ रखिये। आपने फ़रमाया-

"एक पैग़म्बर को शोभा नहीं देता कि जब वह ज़िरह (लड़ाई का लिबास) पहन ले और हथियार लगा ले फिर बिना जंग किये हुए उसे बदन से उतारे।"

इस जुमले में नबी और ग़ैर-नबी का फ़र्क़ वाज़ेह हो रहा है कि नबी की ज़ात से कभी कमज़ोरी का इज़हार नहीं हो सकता, और इसमें उम्मत के लिये भी एक बड़ा सबक़ है।

जब आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम मदीना से बाहर तशरीफ़ ले गये, तक़रीबन एक हज़ार आदमी आपके साथ थे, मगर मुनाफ़िक़ अ़ब्दुल्लाह बिन उबई तक़रीबन तीन सौ आदमियों को साथ लेकर रास्ते में से यह कहता हुआ वापस हो गया कि जब मेरा मश्विरा न माना और दूसरों की राय पर अ़मल किया तो हमको लड़ने की ज़रूरत नहीं, क्यों हम ख़्वाह-म-ख़्वाह अपने को हलाकत में डालें। उसके आदमियों में ज़्यादा तो मुनाफ़िक़ ही थे मगर कुछ मुसलमान भी उनके फ़रेब में आकर साथ लग गये थे।

आख़िर आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम कुल सात सौ आदमियों की जमाअ़त लेकर मैदाने जंग में पहुँच गये। आपने ख़ुद फ़ौजी क़ायदे से सफ़ें तरतीब दीं। सफ़ बनाने (मुजाहिदों को उनकी पोज़ीशनों पर तैनात करने) का काम इस तरह किया कि उहुद पहाड़ को पीछे की ओर रखा और दूसरे इन्तिज़ामात इस तरह किये कि हज़रत मुसअ़ब बिन उमैर को अ़लम (झण्डा) इनायत किया। हज़रत ज़ुबैर बिन अ़व्वाम रज़ियल्लाहु अ़न्हु को रिसाले (टुकड़ी) का अफ़सर मुक़र्रर किया। हज़रत हमज़ा रज़ियल्लाहु अ़न्हु को फ़ौज के उस हिस्से की कमान मिली जो ज़िरह पहने हुए न थे। पीछे की तरफ़ से आशंका थी कि दुश्मन उधर से आये इसलिये पचास तीर-अन्दाज़ों का दस्ता मुतैयन किया और हुक्म दिया कि वे पीछे की तरफ़ टीले पर हिफ़ाज़त का काम अन्जाम दें, लड़ने वालों की फ़तह व शिकस्त से ताल्लुक़ न रखें और अपनी जगह से न हटें। अ़ब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर रज़ियल्लाहु अ़न्हु उन तीर-अन्दाज़ों के अफ़सर मुक़र्रर हुए। क़ुरैश को बदर में अनुभव हो चुका था इसलिये उन्होंने भी तरतीब से अपने आदमियों की पोज़ीशनें तय कीं।

हुज़ूरे पाक सल्ल. की जंगी तरतीब ग़ैरों की नज़र में

नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की इस पोज़ीशन बिठाने और फ़ौजी क़ायदों के

लिहाज़ से इन्तिज़ाम व व्यवस्था को देखकर यह हकीकत खुलकर सामने आ जाती है कि हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम उम्मत के रहबरे कामिल और मुक़द्दस नबी होने के साथ एक बड़े फ़ौजी कमांडर की हैसियत से भी बेनज़ीर हैं। आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने जिस अन्दाज़ में मोर्चे क़ायम किये और लड़ाई की व्यवस्था संभाली उस वक़्त की दुनिया इससे नावाकिफ़ थी और आज जबकि क़ानूने जंग एक मुस्तकिल साईंस की हैसियत इख़्तियार कर गया है, वह भी आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के फ़ौजी क़ायदे-क़ानून और इन्तिज़ाम व व्यवस्था को सराहता है। इसी हकीकत को देखकर एक ईसाई इतिहासकार बोल उठाः

> "अपने मुख़ालिफ़ों के विपरीत जो सिर्फ़ हिम्मत व वीरता ही रखते थे, मुहम्मद (सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम) ने कहना चाहिये कि जंगी फ़न की भी नई राह निकाली। मक्का वालों की बेधड़क और अंधाधुंध लड़ाई के मुक़ाबले में ख़ूब दूरदर्शिता और सख़्त क़िस्म की व्यवस्था व क़ानूनी सिस्टम से काम लिया।"

ये अलफ़ाज़ बीसवीं सदी के एक इतिहासकार टॉम अन्डर के हैं जो उसने **लाईफ़ ऑफ़ मुहम्मद** में बयान किये।

जंग की शुरूआ़त

इसके बाद जंग शुरू हुई। शुरूआ़त में मुसलमानों का पल्ला भारी रहा यहाँ तक कि मुक़ाबिल की फ़ौज में मायूसी और भगदड़ फैल गई। मुसलमान समझे कि फ़तह हो गई, माले ग़नीमत की तरफ़ मुतवज्जह हुए। उधर जिन तीर-अन्दाज़ों को नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने पीछे की जानिब हिफ़ाज़त के लिये बैठाया था उन्होंने जब देखा कि दुश्मन भाग निकला है तो वे भी अपनी जगह छोड़कर पहाड़ के दामन की तरफ़ आने लगे। हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन जुबैर रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने उनको नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का ताकीदी हुक्म याद दिलाकर रोका, मगर चन्द आदमियों के सिवा दूसरों ने कहा कि हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के हुक्म की तामील तो एक ख़ास समय तक थी, अब हमें सब के साथ मिल जाना चाहिये। इस मौक़े से ख़ालिद बिन वलीद ने जो अभी तक मुसलमान न थे और उस वक़्त काफ़िरों के लश्कर के एक दस्ते की कमान संभाले हुए थे फ़ायदा उठाया और पहाड़ी का चक्कर काटकर पीछे की ओर के दर्रे से हमला कर दिया। अ़ब्दुल्लाह बिन जुबैर रज़ियल्लाहु अ़न्हु और उनके थोड़े से साथियों ने उस हमले को हिम्मत व बहादुरी से रोकना चाहा मगर बचाव न कर सके, और यह सैलाब एक दम से मुसलमानों पर टूट पड़ा।

दूसरी तरफ़ जो दुश्मन भाग गये थे वे भी पलट कर हमलावर हो गये। इस तरह लड़ाई का पाँसा एक दम पलट गया और मुसलमान उम्मीद के ख़िलाफ़ पेश आई इस स्थिति से इस क़द्र हैरान व परेशान हुए कि उनका एक बड़ा हिस्सा बिखर कर मैदान से चला गया, फिर भी कुछ सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम अभी तक मैदान में डटे हुए थे। इतने में कहीं से यह अफ़वाह उड़ गई कि नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम शहीद हो गये। इस ख़बर ने सहाबा किराम

के रहे-सहे होश व हवास भी गुम कर दिये और बाक़ी बचे लोग भी हिम्मत हारकर बैठ गये। उस वक़्त नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के आस-पास सिर्फ़ दस-बारह जाँनिसार रह गये थे और आप ख़ुद भी ज़ख़्मी हो गये थे। शिकस्त के पूरा होने में कोई कसर बाक़ी नहीं रही थी कि ऐन वक़्त पर सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम को मालूम हो गया कि आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम सही-सलामत तशरीफ़ रखते हैं। चुनाँचे वे हर तरफ़ से सिमट कर फिर आपके गिर्द जमा हो गये और आपको ख़ैरियत से पहाड़ी की तरफ़ ले गये। इस पराजय के बाद मुसलमान बहुत ही ज़्यादा परेशान रहे और यह अस्थायी शिकस्त चन्द असबाब का परिणाम थी। क़ुरआन मजीद ने हर सबब (कारण) पर जंचे-तुले अलफ़ाज़ में टिप्पणी की और आगे के लिये एहतियात से रहने की हिदायत फ़रमाई।

इस वाक़िए की तफ़सील में कुछ ऐसे वाक़िआत हैं जो अपने अन्दर बहुत बड़ा सबक़ लिये हुए हैं और इसमें तमाम मुसलमानों के लिये सीख और नसीहत के क़ीमती मोती छुपे हैं।

उहुद के वाक़िए से चन्द सबक़

1. पहली बात जैसा कि पहले मालूम हो चुका है कि क़ुरैश के काफ़िर इस जंग में औरतों को भी लाये थे ताकि वे मर्दों को पीछे हटने और हिम्मत हारने से रोक सकें। नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने देखा कि औरतें हिन्दा (अबू सुफ़ियान की बीवी) की अगुवाई में शे'र (कवितायें) गाकर मर्दों को जोश दिला रही हैं:

اِنْ تُقْبِلُوْا نُعَانِقْ ☆ وَنَفْرِشُ النَّمَارِقْ

اَوْتُدْبِرُوْا نُفَارِقْ ☆ فِرَاقَ غَيْرِوَامِقْ

"मतलब यह था कि अगर मुक़ाबले पर डटे रहे और फ़तह पाई तो हम तुमको गले लगायेंगे और तुम्हारे लिये नर्म बिस्तर बिछायेंगे। लेकिन अगर तुमने पीठ मोड़ी तो हम तुमको बिल्कुल छोड़ देंगे।"

ख़ातिमुल-अम्बिया नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की ज़बाने मुबारक पर दुआ़ के ये अलफ़ाज़ जारी थे:

اَللّٰهُمَّ بِكَ اَصُوْلُ وَبِكَ اُقَاتِلُ حَسْبِيَ اللّٰهُ وَنِعْمَ الْوَكِيْلُ.

"ऐ अल्लाह! मैं तुझ ही से क़ुव्वत हासिल करता हूँ और तेरे ही नाम से हमला करता हूँ और तेरे ही दीन के लिये जंग करता हूँ। अल्लाह ही काफ़ी है और वह बड़ा अच्छा काम बनाने वाला है।"

इस दुआ़ का एक-एक लफ़्ज़ अल्लाह के साथ ताल्लुक़ की ताकीद और मुसलमानों के तमाम आमाल व हरकतों यहाँ तक कि जंग व क़िताल को भी अन्य क़ौमों के जंग व क़िताल से अलग और ख़ास कर रहा है।

2. दूसरी चीज़ क़ाबिले ग़ौर यह है कि इस ग़ज़वे (जंग) में कुछ सहाबा रज़ियल्लाहु अ़न्हुम

ने बहादुरी, वीरता, जाँनिसारी और फ़िदा होने के वे नुक़ूश छोड़े कि इतिहास उसकी नज़ीर पेश करने से आ़जिज़ (असमर्थ) है। हज़रत अबू दुजाना रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने अपने जिस्म को हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के लिये ढाल बना लिया था कि हर आने वाला तीर अपने सीने पर खाते थे। हज़रत तल्हा रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने भी इसी तरह अपने बदन को छलनी करा लिया था लेकिन हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का साथ नहीं छोड़ा। हज़रत अनस बिन मालिक रज़ियल्लाहु अ़न्हु के चचा हज़रत अनस बिन नज़र रज़ियल्लाहु अ़न्हु जंगे-बदर से ग़ैर-हाज़िर रहे थे, इसलिये उनको इसका अफ़सोस था, आरज़ू करते थे कि नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के साथ अगर कोई मौक़ा हाथ आया तो अपने दिल की हसरत (तमन्ना) पूरी करूँगा।

जब कुछ दिन के बाद जंगे-उहुद का वाक़िआ़ पेश आया तो अनस बिन नज़र रज़ियल्लाहु अ़न्हु शरीक हुए। मुसलमान जब मुन्तशिर हो (बिखर) गये थे और क़ुरैश के काफ़िरों का सैलाब (भारी भीड़) उमड़ रहा था तो यह अपनी तलवार लेकर आगे बढ़े। इत्तिफ़ाक़ से हज़रत सअ़द रज़ियल्लाहु अ़न्हु से मुलाक़ात हुई। हज़रत सअ़द रज़ियल्लाहु अ़न्हु भी मुन्तशिर होने वालों में जा रहे थे, पुकार कर कहा- "सअ़द! कहाँ चले जा रहे हो? मैं तो उहुद के इस दामन में जन्नत की ख़ुशबू महसूस कर रहा हूँ।" यह कहकर आगे बढ़े और सख़्त लड़ाई के बाद अपनी जान अल्लाह के हुज़ूर में पेश कर दी। (तफ़सीर इब्ने कसीर)

हज़रत जाबिर रज़ियल्लाहु अ़न्हु फ़रमाते हैं कि जब मुसलमान मुन्तशिर हो गये (अफ़रा-तफ़री का शिकार हुए और बिखर गये) उस वक़्त हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के साथ सिर्फ़ ग्यारह हज़रात रह गये थे जिनमें हज़रत तल्हा भी थे। क़ुरैश के काफ़िरों का सैलाब (जनसमूह) उमड़ रहा था। हुज़ूरे अकरम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया- कौन इनकी ख़बर लेगा? हज़रत तल्हा रज़ियल्लाहु अ़न्हु बोल उठे- "मैं या रसूलल्लाह!" एक दूसरे अन्सारी सहाबी ने कहा- "मैं हाज़िर हूँ।" अन्सारी सहाबी को आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने जाने का हुक्म दिया, वह लड़ने के बाद शहीद हो गये। फिर काफ़िरों का एक रेला आया, आपने फिर वही सवाल किया- हज़रत तल्हा रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने जवाब दिया और बेताब हो रहे थे कि हुज़ूर हुक्म दें तो मैं आगे बढ़ूँ। हुज़ूरे पाक ने फिर किसी दूसरे अन्सारी सहाबी को भेज दिया और हज़रत तल्हा रज़ियल्लाहु अ़न्हु की तमन्ना पूरी नहीं हुई। इसी तरह सात बार हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने कहा और हर मर्तबा हज़रत तल्हा रज़ियल्लाहु अ़न्हु को इजाज़त नहीं दी गई और दूसरे सहाबा को इजाज़त दी जाती थी और वे शहीद हो जाते थे।

जंगे-बदर में कम संख्या होने के बावजूद मुसलमानों को फ़तह हुई, जंगे-उहुद में बदर की तुलना में संख्या अधिक थी फिर भी शिकस्त हुई, इसमें भी मुसलमानों के लिये एक सीख है कि मुसलमान को कभी भी सामान या अफ़राद की अधिकता पर नहीं जाना चाहिये, बल्कि फ़तह को हमेशा अल्लाह तआ़ला की तरफ़ से समझे और उसी से अपने ताल्लुक़ को मज़बूत रखे।

यरमूक की जंग के मौक़े पर जब जंग के मोर्चे से हज़रत उमर रज़ियल्लाहु अ़न्हु को अतिरिक्त फ़ौजी कुमक (मदद) भेजने के लिये लिखा गया और तादाद कम होने की शिकायत

की गई तो आपने लिखाः

قَدْ جَآءَ نِیْ كِتَابُكُمْ تَسْتَمِدُّوْنَنِیْ وَاِنِّیْ اَدُلُّكُمْ عَلٰی مَنْ هُوَ اَعَزُّ نَصْرًا وَّاَحْصَنُ جُنْدًا اَللّٰهُ عَزَّوَجَلَّ فَاسْتَنْصِرُوْهُ فَاِنَّ مُحَمَّدًا صَلَّى اللّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ قَدْ نُصِرَ فِیْ يَوْمِ بَدْرٍ فِیْ اَقَلَّ مِنْ عِدَّتِكُمْ فَاِذَا جَآءَكُمْ كِتَابِیْ هٰذَا فَقَاتِلُوْهُمْ وَلَا تُرَاجِعُوْنِیْ. (بحواله مسند احمد، ابن كثير)

"मेरे पास तुम्हारा ख़त आया जिसमें तुमने ज़्यादा फ़ौजी मदद तलब की है लेकिन मैं तुमको एक ऐसी ज़ात का पता देता हूँ जो मदद के लिहाज़ से सबसे ज़्यादा ग़ालिब और फ़ौज के लिहाज़ से ज़्यादा महफ़ूज़ है, वह अल्लाह रब्बुल-आलमीन की ज़ात है। लिहाज़ा तुम उसी से मदद तलब करो। मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम को बदर में कम संख्या होने के बावजूद मदद दी गई। जब मेरा यह ख़त तुमको पहुँचे तो उन पर टूट पड़ो और अब मुझसे इस बारे में कोई संपर्क न करो।"

इस वाक़िए के रावी ब्रयान करते हैं कि जब हमको यह ख़त मिला तो हमने अल्लाह का नाम लेकर काफ़िरों के भारी लश्कर पर एक ही बार में हमला किया, जिसमें उनको खुली शिकस्त हुई। हज़रत फ़ारूक़े आज़म रज़ियल्लाहु अन्हु को मालूम था कि मुसलमानों की फ़तह व शिकस्त कम या ज़्यादा संख्या पर दायर नहीं होती बल्कि अल्लाह पर तवक्कुल और उसकी मदद पर मौक़ूफ़ (निर्भर) है जैसा कि क़ुरआने करीम ने जंगे-हुनैन के बारे में इस हक़ीक़त को स्पष्टता के साथ बयान फ़रमा दिया। इरशाद हैः

يَوْمَ حُنَيْنٍ اِذْ اَعْجَبَتْكُمْ كَثْرَتُكُمْ فَلَمْ تُغْنِ عَنْكُمْ شَيْئًا. (٢٥:٩)

"यानी जंगे-हुनैन को याद करो जबकि तुमको अपनी कसरत (अधिक संख्या व बल) पर नाज़ हो गया था, तो यह कसरत तुमको कोई फ़ायदा नहीं पहुँचा सकी।"

अब आयतों की तफ़सीर पर ग़ौर फ़रमाईयेः

اِذْ غَدَوْتَ مِنْ اَهْلِكَ.............. الاية

यानी जबकि आप सुबह के वक़्त अपने घर से चले, जंग के लिये विभिन्न मोर्चों पर मुसलमानों को बिठा रहे थे।

वाक़िआत को नक़ल करने में क़ुरआन मजीद का एक ख़ास अलग और करिश्माती अन्दाज़ यह है कि वह आम तौर पर कोई वाक़िआ पूरी तफ़सील और उससे संबन्धित हर छोटी-छोटी बात (हिस्से) के साथ बयान नहीं किया करता, मगर जिन वाक़िआत और उनके हिस्सों में ख़ास हिदायतें छुपी होती हैं वे बयान की जाती हैं। उक्त आयत में जो ख़ास संबन्धित बातों का ज़िक्र है जैसे घर से निकलने का वक़्त क्या था, इसको लफ़्ज़ 'ग़दौ-त' से बयान फ़रमा दिया, और हदीस की रिवायतों से यह साबित है कि यह सुबह सन् तीन हिजरी में शव्वाल के महीने की सातवी तारीख़ की थी।

इसके बाद यह भी बतलाया कि इस सफ़र की शुरूआत किस जगह से हुईः

مِنْ اَهْلِكَ

'मिन् अह्लि-क' के लफ़्ज़ से इशारा हुआ कि आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम उस वक़्त अपने अहल व अ़याल (घर वालों) में थे, उनको वहीं छोड़कर निकल खड़े हुए हालाँकि यह हमला मदीने ही पर होने वाला था। इन आंशिक हालात में यह हिदायत छुपी है कि जब अल्लाह का हुक्म आ जाये तो उसकी तामील में अहल व अ़याल (घर वालों और बाल-बच्चों) की मुहब्बत रास्ते का रोड़ा नहीं होनी चाहिये। इसके बाद घर से निकल कर जंग के मोर्चे तक पहुँचने के आंशिक वाकिआ़त को छोड़कर जंग के महाज़ (मोर्चे) का पहला काम यह बयान किया गया किः

تُبَوِّئُ الْمُؤْمِنِيْنَ مَقَاعِدَ لِلْقِتَالِ

यानी आप मुसलमानों को क़िताल (लड़ाई) के लिये मुनासिब जगहों (स्थानों और मोर्चों) पर जमा रहे थे।

फिर इस आयत को इस तरह ख़त्म किया गया किः

وَاللّٰهُ سَمِيْعٌ عَلِيْمٌO

यानी अल्लाह तआ़ला बड़ा सुनने वाला, बड़ा जानने वाला है। समीअ़ अ़लीम की सिफ़ात को याद दिलाकर इस तरफ़ इशारा कर दिया कि उस वक़्त मुख़ालिफ़ और मुवाफ़िक़ दोनों जो कुछ अपनी-अपनी जगह कह सुन रहे थे वो सब अल्लाह तआ़ला के इल्म में आ चुका। और उस मौके पर मुख़ालिफ़ों व मुवाफ़िक़ों के साथ जो कुछ पेश आया उसमें से कोई चीज़ उससे छुपी नहीं रही और इसी तरह इस जंग का अन्जाम (परिणाम) भी उससे छुपा नहीं।

इसके बाद दूसरी आयत हैः

اِذْ هَمَّتْ طَّآئِفَتٰنِ مِنْكُمْ اَنْ تَفْشَلَا ....الخ

यानी जब तुम में से दो जमाअ़तें इसका ख़्याल कर बैठीं कि हिम्मत हार दें, जबकि अल्लाह तआ़ला उन दोनों का मददगार था। इन दोनों जमाअ़तों से मुराद क़बीला औस के बनी हारिसा और ख़ज़रज क़बीले के बनी सलमा हैं। इन दोनों जमाअ़तों ने अ़ब्दुल्लाह बिन उबई की मिसाल देखकर अपने में कमज़ोरी और कम-हिम्मती महसूस की लेकिन अल्लाह के फ़ज़्ल ने मदद की और इस वस्वसे (एक ख़्याल और दिल की खटक) को वस्वसे के दर्जे से आगे न बढ़ने दिया, और यह ख़्याल भी जो उन्हें पैदा हुआ अपनी कम संख्या, सामान की कमी और ज़ाहिरी कमज़ोरी की बिना पर था, न कि ईमान की कमज़ोरी की बिना पर। जंगों के हालात बयान करने के माहिर, मशहूर इतिहासकार इमाम इब्ने हिशाम रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने इसको स्पष्ट फ़रमा दिया है और 'वल्लाहु वलिय्युहुमा' (और अल्लाह उनका मददगार था) का जुमला ख़ुद उनके कामिल ईमान की गवाही दे रहा है। इसलिये इन दोनों क़बीलों के कुछ बुज़ुर्ग फ़रमाया करते थे कि "अगरचे इस आयत में हम पर कुछ इताब (नाराज़गी) भी है लेकिन 'वल्लाहु वलिय्युहुमा' (और अल्लाह उनका मददगार था) की ख़ुशख़बरी भी हमारे लिये आई है।"

इस आयत के आख़िर में फ़रमाया कि "मुसलमानों को अल्लाह पर भरोसा रखना चाहिये।" इसमें वाज़ेह कर दिया कि संख्या की अधिकता और साज़ व सामान पर मुसलमानों को भरोसा नहीं करना चाहिये, बल्कि हिम्मत व ताक़त के मुताबिक़ माद्दी सामान जमा करने के बाद भरोसा सिर्फ़ अल्लाह तआ़ला की पाक ज़ात पर होना चाहिये। बनू हारिसा और बनू सलमा को कमज़ोरी और कम-हिम्मती का जो वस्वसा (ख़्याल) पैदा हुआ था वह इसी माद्दी कमज़ोरी की बिना पर था, इसलिये उनके वस्वसे (इस ख़्याल) का इलाज तवक्कुल (अल्लाह पर भरोसे) से बतलाया गया कि तवक्कुल व भरोसा इन वस्वसों (ख़्यालात) के लिये बेहतरीन और कामयाब नुस्ख़ा है।

तवक्कुल इनसान की ऊँची सिफ़ात में से है। मुहक़्क़िक़ीन सूफ़िया ने इसकी हक़ीक़त पर विस्तार से बहसें की हैं। यहाँ इस क़द्र समझिये कि तवक्कुल के मायने यह नहीं कि तमाम ज़ाहिरी असबाब (सामान) से बिल्कुल ताल्लुक़ ख़त्म करके अल्लाह पर भरोसा किया जाये, बल्कि तवक्कुल यह है कि तमाम ज़ाहिरी असबाब (सामान और साधनों) को अपनी हिम्मत व ताक़त के मुताबिक़ जमा करे और अपनाये और फिर नतीजा (परिणाम) अल्लाह के सुपुर्द कर दे। और उन ज़ाहिरी असबाब पर इतराये नहीं, नाज़ न करे, बल्कि भरोसा सिर्फ़ अल्लाह पर रहे। नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का नमूना-ए-अ़मल हमारे सामने है, ख़ुद इसी जिहाद में मुसलमानों के लश्कर को जंग के लिये तरतीब देना, अपनी ताक़त व गुंजाईश के मुताबिक़ हथियार और दूसरे लड़ाई के सामान मुहैया करना, जंग के मोर्चे पर पहुँचकर हालात व मक़ाम के मुनासिब जंग का नक़्शा तैयार करना, विभिन्न मोर्चे बनाकर सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम को उन पर बैठाना वग़ैरह, ये सब माद्दी इन्तिज़ामात ही तो थे जिनको सय्यिदुल-अम्बिया सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने अपने हाथ मुबारक से इस्तेमाल फ़रमाकर बतला दिया कि माद्दी असबाब भी अल्लाह तआ़ला की नेमत हैं, उनसे नज़र फेर लेने और ताल्लुक़ तोड़ने का नाम तवक्कुल नहीं। यहाँ मोमिन और ग़ैर-मोमिन में फ़र्क़ सिर्फ़ इतना होता है कि मोमिन सब सामान और माद्दी ताक़तें अपनी हिम्मत व गुंजाईश के मुताबिक़ जमा करने के बाद भी भरोसा व तवक्कुल सिर्फ़ अल्लाह पर करता है, ग़ैर-मोमिन को यह रूहानियत नसीब नहीं, उसको सिर्फ़ अपनी माद्दी ताक़त पर भरोसा होता है, और इसी फ़र्क़ का ज़हूर तमाम इस्लामी जंगों में हमेशा देखने में आता रहा है।

अब इसके बाद उस ग़ज़वे (जंग और लड़ाई) की तरफ़ ज़ेहन को फेरा जा रहा है जिसमें मुसलमानों ने पूरे तवक्कुल का प्रदर्शन किया था और अल्लाह तआ़ला ने उनको कामयाबी व मदद से नवाज़ा था। इरशाद है:

وَلَقَدْ نَصَرَكُمُ اللّٰهُ بِبَدْرٍ وَّاَنْتُمْ اَذِلَّةٌ .... الخ

यानी उस वक़्त को याद करो जब अल्लाह तआ़ला ने बदर में तुम्हारी इमदाद फ़रमाई जबकि तुम संख्या में भी सिर्फ़ तीन सौ तेरह थे, और वह भी सब बिना सामान के।

बदर की अहमियत और उसका स्थान

बदर मदीना मुनव्वरा के दक्षिण पश्चिम में कोई अस्सी मील के फ़ासले पर एक पड़ाव और

मंडी का नाम है।

उस वक़्त उसको इसलिये अहमियत (महत्ता) हासिल थी कि यहाँ पानी की बोहतात थी और यह अ़रब के रेगिस्तानी मैदानों में बड़ी चीज़ थी। **तौहीद और शिर्क** के बीच यहीं सबसे पहली जंग और मुक़ाबला जुमा के दिन 17 रमज़ान मुबारक सन् 2 हिजरी (मुताबिक़ 11 मार्च सन् 624 ई.) को पेश आया था। यह जंग बज़ाहिर तो एक स्थानीय जंग मालूम होती है लेकिन हक़ीक़त यह है कि इसने दुनिया के इतिहास में एक अ़ज़ीम इन्क़िलाब (भारी बदलाव) पैदा कर दिया। इसी लिये क़ुरआन की ज़बान में इसको यौमुल-फ़ुरक़ान (फ़ैसले का दिन) कहा गया है। अंग्रेज़ इतिहासकारों ने भी इसकी अहमियत (महत्ता) का इक़रार किया है।

अमेरिकी प्रोफ़ेसर हटी अपनी किताब **हिस्ट्री ऑफ़ दि अ़रेबियन** में कहता है:

"यह इस्लाम की सब से पहली स्पष्ट विजय थी।"

وَاَنْتُمْ اَذِلَّةٌ

यानी तुम उस वक़्त तादाद (संख्या) में थोड़े और सामान में मामूली थे। मज़बूत रिवायतों के अनुसार मुसलमान तादाद में 313 थे। इस फ़ौज के साथ घोड़े सिर्फ़ दो थे और ऊँट सत्तर की तादाद में थे। उन्हीं पर लोग बारी-बारी (नम्बर वार) सवार होते थे।

आख़िर की आयत में फ़रमाया गया:

فَاتَّقُوا اللّٰهَ لَعَلَّكُمْ تَشْكُرُوْنَ۝

"यानी अल्लाह से डरते रहो ताकि तुम शुक्रगुज़ार रहो।"

क़ुरआन ने जगह-जगह मुनाफ़िक़ों के फ़रेब, जाल और सख़्त मुख़ालिफ़ों की दुश्मनी व मुख़ालफ़त के बुरे परिणामों से सुरक्षित रहने के लिये तक़्वा और सब्र को इलाज बतलाया है, इन्हीं दो चीज़ों के अन्दर सारी संगठनात्मक जिद्दोजहद और स्पष्ट फ़तह का राज़ छुपा है। जैसा कि पहले बयान हो चुका है और यहाँ सब्र व तक़्वे के बजाय सिर्फ़ तक़्वे पर इक्तिफ़ा (बस) किया गया है, क्योंकि वास्तव में तक़्वा ऐसी जामे और मुकम्मल सिफ़त है कि सब्र भी इसमें सम्मिलित है।

اِذْ تَقُوْلُ لِلْمُؤْمِنِيْنَ اَلَنْ يَّكْفِيَكُمْ اَنْ يُّمِدَّكُمْ رَبُّكُمْ بِثَلٰثَةِ اٰلٰفٍ مِّنَ الْمَلٰٓئِكَةِ مُنْزَلِيْنَ۝ بَلٰٓى ۙ اِنْ تَصْبِرُوْا وَتَتَّقُوْا وَيَاْتُوْكُمْ مِّنْ فَوْرِهِمْ هٰذَا يُمْدِدْكُمْ رَبُّكُمْ بِخَمْسَةِ اٰلٰفٍ مِّنَ الْمَلٰٓئِكَةِ مُسَوِّمِيْنَ۝ وَمَا جَعَلَهُ اللّٰهُ اِلَّا بُشْرٰى لَكُمْ وَلِتَطْمَئِنَّ قُلُوْبُكُمْ بِهٖ ۭ وَمَا النَّصْرُ اِلَّا مِنْ عِنْدِ اللّٰهِ الْعَزِيْزِ الْحَكِيْمِ۝ لِيَقْطَعَ طَرَفًا مِّنَ الَّذِيْنَ كَفَرُوْٓا اَوْ يَكْبِتَهُمْ فَيَنْقَلِبُوْا خَآئِبِيْنَ۝ لَيْسَ لَكَ مِنَ الْاَمْرِ شَيْءٌ اَوْ يَتُوْبَ عَلَيْهِمْ اَوْ يُعَذِّبَهُمْ فَاِنَّهُمْ ظٰلِمُوْنَ۝ وَلِلّٰهِ مَا فِي السَّمٰوٰتِ وَمَا فِي الْاَرْضِ ۭ يَغْفِرُ لِمَنْ يَّشَآءُ وَيُعَذِّبُ مَنْ يَّشَآءُ ۭ وَاللّٰهُ غَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ۝

इज़् तक़ूलु लिल्-मुअ्मिनी-न अलंय्यक्फ़ि-यकुम् अंय्युमिद्दकुम् रब्बुकुम् बि-सलासति आलाफ़िम् मिनल्-मलाइ-कति मुन्ज़लीन (124) बला इन् तस्बिरू व तत्तक़ू व यअ्तूकुम् मिन् फ़ौरिहिम् हाज़ा युम्दिद्कुम् रब्बुकुम् बि-ख़म्सति आलाफ़िम् मिनल् मलाइ-कति मुसव्विमीन (125) ❖ व मा ज-अ-लहुल्लाहु इल्ला बुश्रा लकुम् व लि-तत्मइन्-न क़ुलूबुकुम् बिही, व मन्नस्रु इल्ला मिन् अिन्दिल्लाहिल् अज़ीज़िल् हकीम (126) लि-यक़्त-अ त-रफ़म् मिनल्लज़ी-न क-फ़रू औ यक्बि-तहुम् फ़-यन्क़लिबू ख़ा-इबीन (127) लै-स ल-क मिनल्-अम्रि शैउन् औ यतू-ब अलैहिम् औ युअ़ज़्ज़ि-बहुम् फ़-इन्नहुम् ज़ालिमून (128) व लिल्लाहि मा फ़िस्समावाति व मा फ़िल्अर्ज़ि, यग़्फ़िरु लिमंय्यशा-उ व युअ़ज़्ज़िबु मंय्यशा-उ, वल्लाहु ग़फ़ूरुर्-रहीम (129) ✿

जब तू कहने लगा मुसलमानों को- क्या तुमको काफ़ी नहीं कि तुम्हारी मदद को भेजे तुम्हारा रब तीन हज़ार फ़रिश्ते आसमान से उतरने वाले। (124) अलबत्ता अगर तुम सब्र करो और बचते रहो और वे आयें तुम पर उसी दम तो मदद भेजे तुम्हारा रब पाँच हज़ार फ़रिश्ते निशान लगे घोड़ों पर। (125) ❖ और यह तो अल्लाह ने तुम्हारे दिल की ख़ुशी की और ताकि तुम्हारे दिलों को सुकून व तसल्ली हो उससे, और मदद है सिर्फ़ अल्लाह ही की तरफ़ से जो कि ज़बरदस्त है हिक्मत वाला। (126) ताकि हलाक करे बाज़े काफ़िरों को या उनको ज़लील करे तो फिर जायें मेहरूम होकर। (127) तेरा कुछ इख़्तियार नहीं, या उनको तौबा देवे ख़ुदा तआ़ला या उनको अ़ज़ाब करे कि वे नाहक़ पर हैं। (128) और अल्लाह ही का माल है जो कुछ आसमानों में है और जो कुछ कि ज़मीन में है, बख़्श दे जिसको चाहे और अ़ज़ाब करे जिसको चाहे, और अल्लाह बख़्शने वाला मेहरबान है। (129) ✿

इन आयतों के मज़मून का पीछे से जोड़

पहले गुज़री आयतों में बदर व उहुद के क़िस्से व जंग के तहत में अल्लाह तआ़ला की तरफ़ से ग़ैबी मदद होने का ज़िक्र था, आगे उस मदद की कुछ तफ़सील और फ़रिश्तों के भेजने की हिक्मत का बयान है।

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

اِذْ تَقُوْلُ لِلْمُؤْمِنِيْنَ...... (الٰى)......... فَيَنْقَلِبُوْا خَآئِبِيْنَ ○

(जंगे-बदर में अल्लाह तआ़ला की यह इमदाद उस वक़्त हुई थी) जबकि आप (ऐ मुहम्मद सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम!) मुसलमानों से (यूँ) फ़रमा रहे थे कि क्या तुमको (दिल की तसल्ली व मज़बूती के लिये) यह बात काफ़ी न होगी कि तुम्हारा रब तुम्हारी इमदाद करे तीन हज़ार फ़रिश्तों के साथ (जो इसी काम के लिये आसमान से) उतारे जाएँगे। (जिससे मालूम होता है कि बड़े दर्जे के फ़रिश्ते होंगे, वरना जो फ़रिश्ते पहले से ज़मीन पर मौजूद थे उनसे भी यह काम लिया जा सकता था। फिर ऊपर के समझाने का खुद जवाब इस तरह इरशाद फ़रमाया) हाँ! क्यों नहीं (काफ़ी होगा, उसके बाद उस इमदाद में अधिक ज़्यादती का वादा इस तरह फ़रमाया कि मुक़ाबले के वक़्त) अगर तुम जमे रहोगे और मुत्तक़ी रहोगे (यानी कोई काम फ़रमाँबरदारी के ख़िलाफ़ न करोगे) और वे लोग तुम पर एक दम से आ पहुँचेंगे (जिसमें आ़दतन् किसी मख़्लूक़ से मदद पहुँचना मुश्किल होता है) तो तुम्हारा रब तुम्हारी इमदाद फ़रमायेगा पाँच हज़ार फ़रिश्तों से, जो एक ख़ास शक्ल और हुलिया बनाए होंगे। (जैसे आ़म जंगों में अपनी-अपनी फ़ौज की पहचान के लिये कोई ख़ास वर्दी होती है। आगे इस इमदाद व नुसरत की हिक्मत का बयान है कि) और अल्लाह तआ़ला ने यह (ज़िक्र हुई) इमदाद (जो फ़रिश्तों से हुई) महज़ इसलिए की कि तुम्हारे लिये (ग़लबा और फ़तह की) ख़ुशख़बरी हो, और तुम्हारे दिलों को उससे क़रार आये, और नुसरत (व ग़लबा) तो सिर्फ़ अल्लाह की तरफ़ से है जो कि ज़बरदस्त हैं (कि वैसे भी ग़ालिब कर सकते हैं लेकिन) हकीम (भी) हैं (तो जब हिक्मत का तक़ाज़ा यह होता है कि असबाब के द्वारा ग़लबा दिया जाये तो वैसे ही असबाब पैदा फ़रमा देते हैं। यह तो फ़रिश्तों के ज़रिये इमदाद की हिक्मत थी, आगे इसकी हिक्मत का बयान है कि यह फ़तह व ग़लबा तुम्हें क्यों अ़ता किया गया, इसके लिये इरशाद फ़रमाया गया) ताकि काफ़िरों में से एक गिरोह को हलाक कर दे (चुनाँचे काफ़िरों के सत्तर मुख्य सरदार मारे गये) या उन (में से कुछ) को ज़लील व ख़्वार कर दे फिर वे नाकाम लौट जायें (यानी इनमें से कोई न कोई बात ज़रूर हो जाये, और अगर दोनों हो जायें तो और भी बेहतर है। चुनाँचे दोनों बातें हुईं कि सत्तर सरदार मारे गये, सत्तर क़ैद होकर ज़लील हुए, बाक़ी ज़लील व ख़्वार होकर भाग गये)।

لَيْسَ لَكَ مِنَ الْاَمْرِ شَيْءٌ........ (الٰى قوله)........... غَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ ○

(ऐ मुहम्मद सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम) आपको (किसी के मुसलमान होने या काफ़िर रहने के बारे में ख़ुद) कोई दख़ल नहीं (चाहे इल्म का दख़ल हो या क़ुदरत का, बल्कि यह सब ख़ुदा तआ़ला के इल्म और क़ब्ज़े में है। आपको सब्र करना चाहिए) यहाँ तक कि ख़ुदा तआ़ला उन पर या तो (रहमत से) मुतवज्जह हो जाएँ (यानी उनको इस्लाम की तौफ़ीक़ दे दें, तो उस वक़्त सब्र ख़ुशी व प्रसन्नता से बदल जाएगा) या उनको (दुनिया ही में) कोई सज़ा दे दें (तो उस वक़्त

सब्र दिल के सुकून में बदल जाएगा, और सज़ा देना कुछ बेजा भी नहीं) क्योंकि वे ज़ुल्म भी बड़ा कर रहे हैं (इससे मुराद कुफ़्र व शिर्क है, जैसा कि एक जगह क़ुरआन में फ़रमाया 'इन्नशिर्-क लज़ुल्मुन् अ़ज़ीम' कि बेशक शिर्क बड़ा भारी ज़ुल्म है। आगे इस मज़मून की ताकीद है) और अल्लाह ही की मिल्क है जो कुछ भी आसमानों में है और जो कुछ कि ज़मीन में है, वह जिसको चाहें बख़्श दें (यानी इस्लाम नसीब कर दें जिससे मग़फ़िरत होती है) और जिसको चाहें अ़ज़ाब दें (यानी इस्लाम नसीब न हो और इस वजह से हमेशा का अ़ज़ाब हो) और अल्लाह तआ़ला बड़े मग़फ़िरत करने वाले (और) बड़े रहमत करने वाले हैं (तो बख़्शने का तो ज़रा भी ताज्जुब नहीं, क्योंकि रहमत तो उनकी हर चीज़ पर छाई हुई है, इसलिये अ़ज़ाब देने की वजह ऊपर बयान फ़रमाई 'फ़-इन्नहुम् ज़ालिमून' कि वे ज़ुल्म भी बड़ा कर रहे हैं)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

फ़रिश्तों की इमदाद भेजने का सबब और असल मक़सद

तथा फ़रिश्तों की संख्या विभिन्न अ़दद में बयान करने की हिक्मत

यहाँ तबई तौर पर एक सवाल यह पैदा होता है कि अल्लाह तआ़ला ने अपने फ़रिश्तों को वह ताक़त बख़्शी है कि एक ही फ़रिश्ता पूरी बस्ती का तख़्ता उलट सकता है, जैसा कि क़ौमे लूत की ज़मीन अकेले जिब्रीले अमीन ने उलट दी थी, तो फिर फ़रिश्तों का लश्कर भेजने की क्या ज़रूरत थी? और यह कि जब फ़रिश्ते मैदान में आये ही थे तो एक काफ़िर भी बचना नहीं चाहिये था। इसका जवाब ख़ुद क़ुरआने करीम ने आयतः

وَمَا جَعَلَهُ اللّٰهُ اِلَّا بُشْرٰى لَكُمْ............

(यानी आयत नम्बर 126) में दे दिया है, कि फ़रिश्तों के भेजने में दर हक़ीक़त उनसे कोई मैदाने जंग फ़तह कराना मक़सूद न था बल्कि मुसलमान मुजाहिदीन की तसल्ली, दिल की मज़बूती और फ़तह (जीत) की ख़ुशख़बरी देना मक़सूद था, जैसा कि इस आयत के अलफ़ाज़ 'इल्ला बुशरा लकुम' और 'लितत्मइन्-न क़ुलूबुकुम बिही' से स्पष्ट है। और इससे ज़्यादा खुले लफ़्ज़ों में सूरः अनफ़ाल में इसी वाक़िए के बारे में यह आया हैः

فَثَبِّتُوا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا. (۸:۱۲)

जिसमें फ़रिश्तों को ख़िताब करके उनके सुपुर्द यह ख़िदमत की गई है कि वे मुसलमानों के दिलों को जमाये रखें, परेशान न होने दें। इस दिलों के जमाने की अनेक सूरतें हो सकती हैं- एक यह भी है कि अपने अ़मल व इख़्तियार के द्वारा उनके दिलों को मज़बूत कर दें जैसा कि तसर्रुफ़ करने वाले सूफ़िया हज़रात का मामूल है। और यह सूरत भी हो सकती है कि मुसलमानों को विभिन्न तरीक़ों से यह वाज़ेह कर दें कि अल्लाह के फ़रिश्ते उनकी मदद पर खड़े हैं। कभी सामने ज़ाहिर होकर, कभी आवाज़ से, कभी किसी और तरीक़े से। जैसा कि बदर के मैदान में ये

सब तरीक़े इस्तेमाल किये गये। सूरः अनफ़ाल की आयत 'फ़ज़्रिबू फ़ौक़ल् अअ्नाकि' (यानी आयत 12) की एक तफ़सीर में यह ख़िताब फ़रिश्तों को है, और हदीस की कुछ रिवायतों में है कि एक मुसलमान ने किसी मुश्रिक पर हमला करने का इरादा किया तो उसका सर ख़ुद ही बदन से अलग हो गया। (हाकिम व बैहक़ी)

और कुछ सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम ने जिब्रीले अमीन की आवाज़ भी सुनी कि आगे बढ़ने को फ़रमा रहे हैं। और कुछ ने ख़ुद भी कुछ फ़रिश्तों को देखा भी। (मुस्लिम शरीफ़)

ये सब बातें और वाक़िआत इसी सिलसिले की कड़ियाँ हैं कि अल्लाह के फ़रिश्तों ने मुसलमानों को अपनी मदद का यक़ीन दिलाने के लिये कुछ-कुछ काम ऐसे भी किये हैं कि गोया वे भी क़िताल (जंग) में शरीक हैं, जबकि असल में उनका काम मुसलमानों की तसल्ली और दिल को मज़बूत करना था, फ़रिश्तों के ज़रिये मैदाने जंग फ़तह कराना मक़सूद नहीं था। इसकी स्पष्ट दलील यह भी है कि इस दुनिया में जंग व जिहाद के फ़राईज़ इनसानों पर आयद किये गये हैं और इसी वजह से उनको फ़ज़ाईल व दर्जे हासिल होते हैं, अगर अल्लाह तआ़ला की मर्ज़ी यह होती कि फ़रिश्तों के लश्कर से मुल्क फ़तह कराये जायें तो दुनिया में कुफ़्र और काफ़िर का नाम ही न रहता, हुकूमत व सल्तनत की तो क्या गुन्जाईश थी। मगर क़ुदरत के इस कारख़ाने में अल्लाह तआ़ला की यह मशीयत (मर्ज़ी) ही नहीं, यहाँ तो कुफ़्र व ईमान और फ़रमाँबरदारी व नाफ़रमानी मिले-जुले ही चलते रहेंगे, इनके निखार के लिये हश्र का दिन है।

रहा यह मामला कि जंगे-बदर में फ़रिश्तों को मदद के लिये भेजने में जो वादे आये हैं उनमें सूरः अनफ़ाल की आयत में तो एक हज़ार का वादा है और सूरः आले इमरान की उक्त आयत में पहले तीन हज़ार का फिर पाँच हज़ार का वादा है, इसमें क्या हिक्मत है? बात यह है कि सूरः अनफ़ाल में ज़िक्र यह हुआ है कि जब बदर के मैदान में मुसलमानों ने मुख़ालिफ़ की संख्या एक हज़ार देखी और इनकी संख्या तीन सौ तेरह थी तो अल्लाह तआ़ला की बारगाह में मदद की फ़रियाद की। इस पर यह वादा एक हज़ार फ़रिश्तों की इमदाद का किया गया कि जो अ़दद (संख्या) तुम्हारे दुश्मन का है उतना ही अ़दद फ़रिश्तों का भेज दिया जायेगा। आयत के अलफ़ाज़ ये हैं:

إِذْ تَسْتَغِيثُونَ رَبَّكُمْ فَاسْتَجَابَ لَكُمْ أَنِّي مُمِدُّكُمْ بِأَلْفٍ مِنَ الْمَلَائِكَةِ مُرْدِفِينَ ۝ (٨:٩)

और इस आयत के बाद भी फ़रिश्तों की मदद भेजने का यही मक़सद ज़ाहिर फ़रमा दिया कि मुसलमानों के दिल जमे रहें और उनको फ़तह की ख़ुशख़बरी मिले। चुनाँचे इसके बाद की आयत के अलफ़ाज़ ये हैं:

وَمَا جَعَلَهُ اللّٰهُ إِلَّا بُشْرٰى وَلِتَطْمَئِنَّ بِهٖ قُلُوبُكُمْ.

और सूरः आले इमरान की इस आयत में (जिसकी यह तफ़सीर बयान हो रही है) तीन हज़ार फ़रिश्तों का वादा शायद इस बिना पर किया गया कि बदर के मैदान में मुसलमानों को यह ख़बर मिली कि कुर्ज़ बिन जाबिर मुहारिबी अपने क़बीले का लश्कर लेकर मक्का के मुश्रिकों

की इमदाद को आ रहा है (जैसा कि तफ़सीर रूहुल-मआ़नी में बयान किया है)। यहाँ दुश्मन की तादाद मुसलमानों से तीन गुना ज़्यादा पहले से ही थी, मुसलमान इस ख़बर से कुछ परेशान हुए तो तीन हज़ार फ़रिश्तों का वादा किया गया, ताकि मामला उल्टा होकर मुसलमानों की तादाद दुश्मन से तीन गुना हो जायेगी।

फिर इसी आयत के आख़िर में इस तादाद (संख्या) को चन्द शर्तों के साथ बढ़ाकर पाँच हज़ार कर दिया। वे शर्तें दो थीं- एक यह कि मुसलमान सब्र व तक़वे के ऊँचे मक़ाम पर क़ायम रहें, दूसरे यह कि दुश्मन उन पर एक ही बार में हमला कर दे। मगर इन दो शर्तों में से दूसरी शर्त एक बार में (यानी अचानक) हमले की उत्पन्न नहीं हुई इसलिये पाँच हज़ार की तादाद का वादा न रहा। फिर इसमें तफ़सीर व तारीख़ के इमामों अक़वाल भिन्न हैं कि अगरचे वादे की यह शर्त वजूद में नहीं आई फिर भी यह वादा पाँच हज़ार की सूरत में पूरा हुआ या सिर्फ़ तीन हज़ार की सूरत में? ये विभिन्न अक़वाल तफ़सीर रूहुल-मआ़नी में ज़िक्र किये गये हैं।

لَيْسَ لَكَ مِنَ الْأَمْرِ شَيْءٌ.

'लै-स ल-क मिनल् अम्रि शैउन्.....' (आयत 128) यहाँ से फिर उहुद के असल क़िस्से की तरफ़ वापस आते हैं, बीच में जंगे-बदर के क़िस्से का ज़िक्र आ गया था। इस आयत के उतरने का सबब यह है कि इस जंगे-उहुद में हुज़ूरे अकरम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का दाँत मुबारक (जो कि सामने के 'दो ऊपर के दो नीचे के' दाँतों की करवटों में चार दाँत होते हैं 'दो ऊपर दाहिने बायें, दो नीचे दाहिने बायें' इन चारों में 'नीचे दाहिनी तरफ़' का दाँत शहीद हो गया और चेहरा-ए-मुबारक ज़ख़्मी हो गया तो आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की ज़बाने मुबारक पर ये कलिमात आ गये कि ऐसी क़ौम को कैसे फ़लाह (ख़ैर और कामयाबी हासिल) होगी जिन्होंने अपने नबी के साथ ऐसा किया, हालाँकि वह नबी उनको ख़ुदा की तरफ़ बुला रहा है। उस वक़्त यह आयत नाज़िल हुई।

बुख़ारी शरीफ़ में एक क़िस्सा और भी नक़ल किया गया है कि आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने कुछ काफ़िरों के लिये बददुआ़ भी फ़रमाई थी, इस पर यह आयत नाज़िल फ़रमाई जिसमें रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को सब्र व संयम की तालीम दी गई है। (संक्षिप्त में, बयानुल-क़ुरआन से)

يَٰٓأَيُّهَا ٱلَّذِينَ ءَامَنُوا۟ لَا تَأْكُلُوا۟ ٱلرِّبَوٰٓا۟ أَضْعَٰفًا مُّضَٰعَفَةً ۖ وَٱتَّقُوا۟ ٱللَّهَ لَعَلَّكُمْ تُفْلِحُونَ ۝ وَٱتَّقُوا۟ ٱلنَّارَ ٱلَّتِىٓ أُعِدَّتْ لِلْكَٰفِرِينَ ۝

या अय्युहल्लज़ी-न आमनू ला तअ्कुलुर्रिबा अज़्आफ़म् मुज़ा-अ-फ़तन् वत्तक़ुल्ला-ह लअ़ल्लकुम्	ऐ ईमान वालो! मत खाओ सूद दूने पर दूना और डरो अल्लाह से ताकि तुम्हारा भला हो। (130) और बचो उस आग से

तुफ़्लिहून (130) वत्तक़ुन्नारल्लती उअ़िद्दत् लिल्-काफ़िरीन (131)	जो तैयार हुई काफ़िरों के वास्ते। (131)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

ऐ ईमान वालो! सूद मत खाओ (यानी मत लो असल से) कई हिस्से ज़ायद (करके), और अल्लाह तआ़ला से डरो, उम्मीद है कि तुम कामयाब हो (यानी जन्नत नसीब हो और दोज़ख़ से निजात हो)। और उस आग से बचो जो (दर असल) काफ़िरों के लिये तैयार की गई है (और आग से बचने की सूरत यह है कि सूद वग़ैरह हराम कामों से बचो)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

इस आयत में सूद खाने की हुर्मत (हराम होना) व मनाही के साथ 'कई हिस्से ज़ायद करके' का ज़िक्र हुर्मत की क़ैद नहीं बल्कि सूद की बुराई को स्पष्ट करने के लिये है, क्योंकि दूसरी आयतों में बिना किसी शर्त व क़ैद के सूद के हराम होने का निहायत सख़्ती व ताकीद के साथ बयान आया है जिसकी तफ़सील सूरः ब-क़रह में आ चुकी है। और 'कई हिस्से ज़ायद करके' के ज़िक्र में इस तरफ़ भी इशारा हो सकता है कि जिसको सूद खाने की आ़दत हो जाये तो चाहे वह रिवाजी सूद दर सूद के मामले से परहेज़ भी कर ले तो सूद से हासिल होने वाली कमाई को जब दोबारा सूद पर चलायेगा तो वह 'कई गुना अधिक' होता चला जायेगा अगरचे सूद खाने वालों की इस्तिलाह (बोलचाल) में इसको सूदे मुरक्कब (यानी सूद दर सूद) न कहें। इसका हासिल यह है कि एक सूद आख़िरकार (यानी अपने परिणाम के एतिबार से) 'कई गुना ज़ायद' ही होता है।

وَاَطِيْعُوا اللّٰهَ وَالرَّسُوْلَ لَعَلَّكُمْ تُرْحَمُوْنَ ۚ وَسَارِعُوْٓا اِلٰى مَغْفِرَةٍ مِّنْ رَّبِّكُمْ
وَجَنَّةٍ عَرْضُهَا السَّمٰوٰتُ وَالْاَرْضُ ۙ اُعِدَّتْ لِلْمُتَّقِيْنَ ۙ

व अतीउ़ल्ला-ह वर्रसू-ल लअ़ल्लकुम् तुर्हमून (132) व सारिअ़ू इला मग़्फ़ि-रतिम् मिर्रब्बिकुम् व जन्नतिन् अ़र्ज़ुहस्समावातु वल्अर्ज़ु उअ़िद्दत् लिल्मुत्तक़ीन (133)	और हुक्म मानो अल्लाह का और रसूल का ताकि तुम पर रहम हो। (132) और दौड़ो अपने रब की बख़्शिश की तरफ़ और जन्नत की तरफ़ जिसका अ़र्ज़ (चौड़ाई) है आसमान और ज़मीन, तैयार हुई वास्ते परहेज़गारों के। (133)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

और ख़ुशी से कहना मानो अल्लाह तआ़ला का और (उसके) रसूल (सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम) का, उम्मीद है कि तुम रहम किये जाओगे (यानी क़ियामत में)। और मग़फ़िरत की तरफ़ दौड़ो जो तुम्हारे परवर्दिगार की तरफ़ से (नसीब) हो, और (दौड़ो) जन्नत की तरफ़ (मतलब यह है कि ऐसे नेक काम इख़्तियार करो जिससे परवर्दिगार तुम्हारी मग़फ़िरत कर दें और तुमको जन्नत इनायत हो, और वह जन्नत ऐसी है) जिसकी वुस्अ़त (लम्बाई-चौड़ाई) ऐसी (तो) है (ही) जैसे सब आसमान और ज़मीन (और इससे ज़्यादा होने की नफ़ी नहीं, चुनाँचे वास्तव में ज़ायद होना साबित है, और) वह तैयार की गई है ख़ुदा से डरने वालों के लिये।

मआ़रिफ़ व मसाईल

उक्त आयत में दो मसले ज़्यादा अहम हैं- अव्वल पहली आयत का मज़्मून जिसमें अल्लाह तआ़ला की इताअ़त (फ़रमाँबरदारी) के साथ रसूल की इताअ़त का भी हुक्म दिया गया है। इसमें यह बात क़ाबिले ग़ौर है कि अगर रसूल की इताअ़त (हुक्मों का पालन करना) अल्लाह तआ़ला की और उसकी भेजी हुई किताब ''क़ुरआन'' की ही इताअ़त का नाम है तो फिर इसको अलग से बयान करने की ज़रूरत ही क्या है? और अगर दोनों में कुछ फ़र्क़ है तो क्या है?

दूसरी बात जो हमेशा याद रखने और अपनी अ़मली ज़िन्दगी का क़िब्ला (धुरी व केन्द्र) बनाने के क़ाबिल है वह वे सिफ़ात और निशानात हैं जो अल्लाह तआ़ला ने अपने मक़बूल और परहेज़गार बन्दों के लिये इन आयतों में बतलाकर यह वाज़ेह फ़रमा दिया है कि अल्लाह और रसूल की इताअ़त (फ़रमाँबरदारी) सिर्फ़ ज़बानी जमा-ख़र्च से नहीं होती बल्कि इताअ़त गुज़ारों (हुक्मों का पालन करने वालों) के कुछ सिफ़ात और हालात होते हैं जिनसे वे पहचाने जाते हैं।

रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की इताअ़त को अल्लाह से अलग करके बयान करने की हिक्मत

पहला मसलाः- पहली मुख़्तसर आयत में इस तरह बयान फ़रमायाः

وَاَطِيْعُوا اللّٰهَ وَالرَّسُوْلَ لَعَلَّكُمْ تُرْحَمُوْنَ○

यानी ''अल्लाह और रसूल की इताअ़त (आज्ञा का पालन) करो ताकि तुम पर रहम किया जाये।'' इसमें अल्लाह की रहमत के लिये जिस तरह अल्लाह तआ़ला की इताअ़त को ज़रूरी और लाज़िम क़रार दिया है, रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की इताअ़त को भी उसी तरह लाज़िम और ज़रूरी क़रार दिया है। और यह फिर सिर्फ़ इसी आयत में नहीं पूरे क़ुरआन में बार-बार इसका तकरार (दोहराना) इसी तरह है कि जहाँ अल्लाह तआ़ला की इताअ़त का हुक्म होता है वहीं रसूल की इताअ़त का भी अलग से ज़िक्र है। क़ुरआने हकीम के ये निरन्तर और

मुसलसल इरशादात एक इनसान को इस्लाम और ईमान के बुनियादी उसूल की तरफ़ मुतवज्जह कर रहे हैं कि ईमान का पहला जुज़ (भाग और हिस्सा) ख़ुदा तआ़ला के वजूद, उसके एक और तन्हा माबूद होने, उसकी बन्दगी और उसकी इताअ़त का इक़रार करना है तो दूसरा जुज़ "रसूल" की तस्दीक़ और उसकी इताअ़त है।

अब यहाँ ग़ौर करने की बात यह है कि क़ुरआने करीम ही के इरशादात से यह भी साबित है कि "रसूले करीम" सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम जो कुछ फ़रमाते हैं वह सब अल्लाह के हुक्म व इजाज़त से होता है, अपनी तरफ़ से कुछ नहीं होता। क़ुरआने करीम का इरशाद है:

وَمَا يَنْطِقُ عَنِ الْهَوٰىO إِنْ هُوَ إِلَّا وَحْيٌ يُّوْحٰىO (٥٣:٣،٤)

यानी रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम जो कुछ बोलते हैं वह अपनी किसी इच्छा से नहीं कहते बल्कि वह सब अल्लाह तआ़ला की तरफ़ से "वही" होती है। इसका हासिल तो यह हुआ कि "रसूल" की इताअ़त वास्तव में ख़ुदा तआ़ला ही की इताअ़त होती है, उससे अलग कोई चीज़ नहीं। सूरः निसा आयत 80 में ख़ुद क़ुरआन ने भी इन अलफ़ाज़ में इसको स्पष्ट फ़रमा दिया है:

مَنْ يُّطِعِ الرَّسُوْلَ فَقَدْ اَطَاعَ اللّٰهَ.

"यानी जिसने इताअ़त (फ़रमाँबरदारी) की रसूल की, उसने इताअ़त की अल्लाह की।"

तो अब सवाल यह पैदा होता है कि फिर इन दोनों इताअ़तों को अलग-अलग बयान करने में क्या फ़ायदा है? ख़ास तौर से इस पाबन्दी और एहतिमाम के साथ कि पूरे क़ुरआने करीम में बयान का मुसलसल यही अन्दाज़ है कि दोनों इताअ़तों का साथ-साथ हुक्म दिया जाता है।

राज़ इसमें यह है कि अल्लाह तआ़ला ने दुनिया की हिदायत के लिये एक किताब भेजी और एक रसूल, रसूल के ज़िम्मे ये काम लगाये गये- अव्वल यह कि वह क़ुरआने करीम की आयतें ठीक उसी सूरत और अन्दाज़ व लहजे के साथ लोगों को पहुँचा दें जिस सूरत में वे नाज़िल हुईं।

दूसरे यह कि वे लोगों को ज़ाहिरी और बातिनी (अन्दरूनी) गन्दगियों से पाक करें।

तीसरे यह कि वे इस किताब के मज़ामीन की उम्मत को तालीम दें, और इसके उद्देश्यों को बयान फ़रमायें, और यह कि वे किताब के साथ हिक्मत (अ़क़्ल व समझ की बातों) की तालीम दें। यह मज़मून क़ुरआने करीम की कई आयतों में तक़रीबन एक ही उनवान से आया है। फ़रमायाः

يَتْلُوْا عَلَيْهِمْ اٰيٰتِهٖ وَيُزَكِّيْهِمْ وَيُعَلِّمُهُمُ الْكِتٰبَ وَالْحِكْمَةَ. (٢:٦٢)

मालूम हुआ कि रसूल के मन्सबी फ़राईज़ (ज़िम्मेदारियों) में सिर्फ़ इतना ही दाख़िल नहीं कि वह क़ुरआन को लोगों तक पहुँचा दें बल्कि उसकी तालीम देना और मतलब बयान करना भी रसूल के ज़िम्मे है। और यह भी ज़ाहिर है कि रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के मुख़ातब अ़रब के वे लोग थे जो अ़रबी भाषा के माहिर और उसमें ऊँचा मक़ाम रखने वाले थे,

उनके लिये क़ुरआने करीम की तालीम के यह मायने तो नहीं हो सकते कि सिर्फ़ क़ुरआनी अलफ़ाज़ के लुग़वी मायने उनको समझाये जायें, क्योंकि वे सब ख़ुद-ब-ख़ुद उनको अच्छी तरह समझते थे। बल्कि इस तालीम व व्याख्या का मक़सद सिर्फ़ यही था और यही हो सकता है कि क़ुरआने करीम ने एक हुक्म संक्षिप्त रूप से या अस्पष्ट अलफ़ाज़ में बयान फ़रमाया उसकी व्याख्या व ख़ुलासा रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने उस वही के ज़रिये से लोगों तक पहुँचाया जो क़ुरआन के अलफ़ाज़ में नहीं आया बल्कि अल्लाह तआ़ला ने आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के मुबारक दिल में डाला, जिसकी तरफ़ क़ुरआन पाक की आयत 'इन् हु-व इल्ला वह्युंयू-यूहा' में इशारा किया गया है। मिसाल के तौर पर क़ुरआन ने बेशुमार मौक़ों पर सिर्फ़ 'अक़ीमुस्सला-त व आतुज़्ज़ाका-त' (नमाज़ क़ायम करो और ज़कात दो) फ़रमाने पर बस किया है, कहीं नमाज़ के मामले में क़ियाम, रुकूअ़ और सज्दे का ज़िक्र भी आया तो वह भी बिल्कुल ग़ैर-वाज़ेह (अस्पष्ट) है, इनकी कैफ़ियतों का ज़िक्र नहीं। रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को हज़रत जिब्राईल ने ख़ुद आकर अल्लाह के हुक्म से इन तमाम आमाल और अरकान की पूरी तफ़सीली शक्ल अ़मल करके बतलाई, और आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने उसी तरह क़ौल व अ़मल के ज़रिये उम्मत को पहुँचा दिया।

ज़कात के विभिन्न निसाब और हर निसाब पर ज़कात की एक अलग मात्रा का निर्धारण, फिर यह बात कि किस माल पर ज़कात है और किस माल पर नहीं, और निसाब के मिक़्दार (मात्रा) में कितना हिस्सा माफ़ है ये सब तफ़सीलात रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने बयान फ़रमाईं और इनके अहकाम व इरशादात लिखवाकर कई सहाबा किराम के सुपुर्द फ़रमाये।

या जैसे क़ुरआने हकीम ने हुक्म दिया कि:

لَا تَأْكُلُوْٓا اَمْوَالَكُمْ بَيْنَكُمْ بِالْبَاطِلِ. (۲:۱۸۸)

"यानी आपस में एक दूसरे का माल बातिल (ग़लत व नाजायज़) तरीक़े पर नाहक़ न खाओ।"

अब इसकी यह तफ़सील कि मौजूदा वक़्त के रिवाजी मामलात, ख़रीद व बेच और उजरत व मज़दूरी में क्या-क्या सूरतें नाहक़ और बेइन्साफ़ी या अ़वाम के नुक़सान पर आधारित होने की वजह से बातिल (नाहक़ और नाजायज़) हैं, ये सब हुज़ूरे अकरम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने अल्लाह के हुक्म व इजाज़त से उम्मत को बतलाईं। इसी तरह तमाम शरई अहकाम का भी यही हाल है।

तो ये तमाम तफ़सीलात (ख़ुलासे और वज़ाहतें) जो आँ हज़रत सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने अपने फ़र्ज़े मन्सबी की अदायेगी के लिये अल्लाह की वही से उम्मत को पहुँचाईं चूँकि ये तफ़सीलात क़ुरआने करीम में बयान नहीं हुईं इसलिये यह शंका थी कि किसी वक़्त किसी नावाक़िफ़ को यह धोखा हो कि ये तफ़सीली अहकाम ख़ुदा तआ़ला के दिये हुए अहकाम नहीं, इसलिये ख़ुदा तआ़ला की इताअ़त में इनकी तामील (पालन करना) ज़रूरी नहीं। इसलिये हक़

तआ़ला ने सारे क़ुरआन में बार-बार अपनी इताअ़त के साथ-साथ रसूल की इताअ़त को लाज़िम क़रार दिया है, जो हक़ीक़त में तो ख़ुदा तआ़ला ही की इताअ़त है मगर ज़ाहिरी सूरत और तफ़सीली बयान के एतिबार से उससे कुछ अलग और भिन्न भी है, इसलिये बार-बार ताकीदों के साथ बतला दिया कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम तुम्हें जो कुछ हुक्म दें उसको भी ख़ुदा तआ़ला ही की इताअ़त समझकर मानो, चाहे वह क़ुरआन में स्पष्ट तौर पर मौजूद हो या न हो। यह मसला चूँकि अहम था और किसी नावाक़िफ़ को धोखा लग जाने के अ़लावा इस्लाम के दुश्मनों के लिये इस्लामी उसूल में गड़बड़ फैलाने और मुसलमानों को इस्लाम के सही रास्ते से बहकाने का भी एक मौक़ा था इसलिये क़ुरआने करीम ने इस मज़मून को सिर्फ़ इताअ़ते रसूल के लफ़्ज़ के साथ ही नहीं बल्कि विभिन्न उनवानों से उम्मते मुहम्मदिया को बतलाया है। मसलन् आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के फ़राईज़ (ज़िम्मेदारियों) में किताब की तालीम के साथ हिक्मत की तालीम का इज़ाफ़ा करके इस तरफ़ इशारा कर दिया कि किताब के अ़लावा कुछ और भी आपकी तालीमात में दाख़िल है, और वह भी मुसलमानों के लिये पैरवी करने के लिये लाज़िमी है जिसको लफ़्ज़ **हिक्मत** से ताबीर फ़रमाया गया है। कहीं इरशाद फ़रमाया किः

لِتُبَيِّنَ لِلنَّاسِ مَانُزِّلَ اِلَيْهِمْ. (١٦:٤٤)

"यानी रसूल के भेजने का मक़सद यह है कि लोगों के लिये आप पर नाज़िल हुई आयतों के मायनों, उद्देश्यों और व्याख्याओं को बयान फ़रमायें।"

और कहीं यह इरशाद है किः

مَآ اٰتٰكُمُ الرَّسُوْلُ فَخُذُوْهُ، وَمَانَهٰكُمْ عَنْهُ فَانْتَهُوْا. (٥٩:٧)

"यानी रसूल तुमको जो कुछ दें वह ले लो और जिससे रोकें उससे बाज़ आ जाओ।"

यह सब इसका इन्तिज़ाम किया गया कि कल को कोई शख़्स यह न कहने लगे कि हम तो सिर्फ़ उन अहकाम के पाबन्द हैं जो क़ुरआन में आये हैं, जो अहकाम हमें क़ुरआन में न मिलें उनके हम मुकल्लफ़ (पाबन्द) नहीं। रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम पर ग़ालिबन यह खुल गया था कि किसी ज़माने में ऐसे लोग पैदा होंगे जो रसूल की तालीमात और बयानात से छुटकारा हासिल करने के लिये यही दावा करेंगे कि हमें किताबुल्लाह (क़ुरआन) काफ़ी है, इसलिये एक हदीस में स्पष्ट तौर पर इसका भी ज़िक्र फ़रमाया जिसको तिर्मिज़ी, अबू दाऊद, इब्ने माजा, बैहक़ी और इमाम अहमद रहमतुल्लाहि अ़लैहिम ने अपनी-अपनी किताबों में इन अलफ़ाज़ से नक़ल फ़रमाया हैः

لَاۤ اُلْفِيَنَّ اَحَدَكُمْ مُتَّكِئًا عَلٰى اَرِيْكَتِهٖ يَاْتِيْهِ الْاَمْرُ مِنْ اَمْرِىْ مِمَّاۤ اَمَرْتُ بِهٖ اَوْنَهَيْتُ عَنْهُ فَيَقُوْلُ لَاۤ اَدْرِىْ مَا وَجَدْنَا فِىْ كِتَابِ اللّٰهِ اتَّبَعْنَاهُ.

"यानी ऐसा न हो कि मैं तुम में से किसी को ऐसा पाऊँ कि वह अपनी मस्नद पर तकिया लगाये हुए बेफ़िक्री से बैठे हुए मेरे हुक्म व मनाही के बारे में यह कह दे कि हम

इसको नहीं जानते, हमारे लिये तो किताबुल्लाह काफ़ी है, जो कुछ उसमें पाते हैं उसकी पैरवी कर लेते हैं।"

ख़ुलासा यह है कि अल्लाह तआ़ला की इताअ़त के साथ जगह-जगह रसूल की इताअ़त का बार-बार इरशाद और फिर विभिन्न उनवानों से रसूल के दिये हुए अहकाम को मानने की हिदायतें, ये सब इसी ख़तरे को सामने रखते हुए हैं कि कोई शख़्स हदीस के ज़ख़ीरे में रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की बयान की हुई अहकाम की तफ़सीलात को क़ुरआन से अलग और अल्लाह की इताअ़त (फ़रमाँबरदारी) से अलग समझकर इनकार न कर बैठे, कि वह वास्तव में अलग नहीं:

गुफ़्ता-ए-ऊ गुफ़्ता-ए-अल्लाह बुवद्
गरचे अज़ हुल्क़ूमे अ़ब्दुल्लाह बुवद

यानी नबी की ज़बान से निकली हुई बात दर असल अल्लाह ही की तरफ़ से कही हुई होती है अगरचे ज़ाहिर में वह आपके ज़रिये हो। **मुहम्मद इमरान क़ासमी बिज्ञानवी**

दूसरी आयत में मग़फ़िरत और जन्नत की तरफ़ मुतवज्जह होने और दौड़ने (यानी इनको हासिल करने की कोशिश करने) का हुक्म दिया गया है। अल्लाह और उसके रसूल की इताअ़त के बाद यह दूसरा हुक्म दिया गया। यहाँ मग़फ़िरत (बख़्शिश) से मुराद मग़फ़िरत के असबाब हैं, यानी वो नेक आमाल जो मग़फ़िरते इलाही का ज़रिया हैं। सहाबा रज़ियल्लाहु अ़न्हुम व ताबिईन हज़रात से इसकी तफ़सीरें विभिन्न उनवानों से नक़ल की गयी हैं मगर मायने और मज़मून सब का एक ही है। हज़रत अ़ली कर्रमल्लाहु वज्हहू ने इसकी तफ़सीर "फ़राईज़ की अदायेगी" से फ़रमाई। हज़रत इब्ने अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने "इस्लाम" से। हज़रत अबुल-आ़लिया रह. ने "हिजरत" से। हज़रत अनस बिन मालिक रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने "तकबीरे ऊला" (नमाज़ की पहली तकबीर) से। हज़रत सईद बिन जुबैर रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने "नेकी अदा करने" से। ज़ह्हाक रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने "जिहाद" से। इक्रिमा रह. ने "तौबा" से की है। इन तमाम अक़वाल का हासिल यही है कि मग़फ़िरत से मुराद वो तमाम नेक आमाल हैं जो मग़फ़िरते इलाही (अल्लाह की तरफ़ से बख़्शिश) का ज़रिया और सबब होते हैं।

इस जगह पर दो बातें क़ाबिले ग़ौर हैं- पहली बात तो यह है कि इस आयत में मग़फ़िरत और जन्नत की तरफ़ दौड़ने का हुक्म दिया जा रहा है, हालाँकि एक दूसरी आयत में:

لَا تَتَمَنَّوْا مَا فَضَّلَ اللّٰهُ بِهٖ بَعْضَكُمْ عَلٰى بَعْضٍ. (٤:٣٢)

फ़रमाकर दूसरे फ़ज़ाईल हासिल करने की तमन्ना करने से भी मना किया गया है।

जवाब इसका यह है कि फ़ज़ाईल दो क़िस्म के हैं- एक फ़ज़ाईल तो वे हैं जिनका हासिल करना इनसान के इख़्तियार और बस से बाहर हो, जिनको ग़ैर-इख़्तियारी फ़ज़ाईल कहते हैं। जैसे किसी का सफ़ेद रंग या हसीन होना, या किसी बुज़ुर्ग ख़ानदान से होना वग़ैरह। दूसरे वे फ़ज़ाईल (ख़ूबियाँ व कमालात हैं) जिनको इनसान अपनी मेहनत और कोशिश से हासिल कर सकता है,

उनको इख़्तियारी फ़ज़ाईल कहते हैं। ग़ैर-इख़्तियारी फ़ज़ाईल में दूसरे की फ़ज़ीलत हासिल करने की कोशिश बल्कि उसकी तमन्ना करने से भी इसलिये रोका गया है कि वो अल्लाह तआ़ला ने अपनी हिक्मत (मर्ज़ी व तक़दीर) के मुताबिक़ मख़्लूक़ में तक़सीम किये हैं, किसी की कोशिश का इसमें दख़ल नहीं। इसलिये वो फ़ज़ाईल जो कोशिश और तमन्ना से हासिल तो नहीं होंगे अब सिवाय इसके कि उसके दिल में हसद और बुग़्ज़ (दूसरों से जलने और नफ़रत) की आग भड़कती रहे और कोई फ़ायदा नहीं। जैसे एक शख़्स काला है, वह गोरा होने की तमन्ना करता रहे तो इससे क्या नतीजा निकलेगा। अलबत्ता जो फ़ज़ाईल इख़्तियार में हैं उनमें दौड़, कोशिश और मुक़ाबले का हुक्म दिया गया। सिर्फ़ एक आयत में नहीं बल्कि अनेक आयतों में आया है। एक जगह इरशाद है:

فَاسْتَبِقُوا الْخَيْرَاتِ. (١٤٨:٢)

तुम आगे बढ़ो नेकियों में।

दूसरी जगह इरशाद है:

وَفِىْ ذٰلِكَ فَلْيَتَنَا فَسِ الْمُتَنَافِسُوْنَ ○ (٢٦:٨٣)

और यही वह चीज़ है जिस पर ललचाने वालों को बढ़-चढ़कर ललचाना चाहिये।

एक बुज़ुर्ग ने फ़रमाया कि अगर किसी इनसान में कोई फ़ितरी और तबई कोताही हो जिसका दूर करना उसके बस से बाहर हो तो उसको चाहिये कि अपनी उस कोताही पर ही सब्र करके दूसरों के कमाल को देखे बग़ैर अपना काम करता रहे, क्योंकि अगर वह अपनी कोताही पर अफ़सोस और दूसरों के कमाल पर हसद (ईर्ष्या) करता रहे तो जितना काम कर सकता है उस क़द्र भी नहीं कर सकेगा, और बिल्कुल नाकारा होकर रह जायेगा।

दूसरी चीज़ जो इस जगह क़ाबिले ग़ौर है वह यह कि अल्लाह तबारक व तआ़ला ने मग़फ़िरत को जन्नत से पहले बयान किया। इसमें मुम्किन है कि इस बात की तरफ़ इशारा हो कि जन्नत हासिल कर लेना अल्लाह की मग़फ़िरत के बग़ैर नामुम्किन है। क्योंकि इनसान अगर तमाम उम्र भी नेकियाँ करता रहे और नाफ़रमानी से बिल्कुल अलग रहे तब भी उसके तमाम आमाल जन्नत की क़ीमत नहीं हो सकते, जन्नत में ले जाने वाली सिर्फ़ एक चीज़ है और वह अल्लाह तआ़ला की तरफ़ से मग़फ़िरत व बख़्शिश और उसका फ़ज़्ल है। रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमायाः

سَدِّدُوْا وَقَارِبُوْا وَاَبْشِرُوْا فَاِنَّهٗ لَنْ يُّدْخِلَ اَحَدًا الْجَنَّةَ عَمَلُهٗ قَالُوْا وَلَا اَنْتَ يَا رَسُوْلَ اللّٰهِ، قَالَ وَلَا اَنَا اِلَّا اَنْ يَّتَغَمَّدَنِيَ اللّٰهُ بِرَحْمَتِهٖ. (ترغيب و ترهيب بحواله بخاری و مسلم)

"सही रास्ते और हक़ को इख़्तियार करो, दरमियानी राह इख़्तियार करो और (अल्लाह के फ़ज़्ल की) बशारत (ख़ुशख़बरी) हासिल करो। किसी शख़्स का अ़मल उसको जन्नत में नहीं पहुँचायेगा। लोगों ने कहा न आपका या रसूलल्लाह? आपने फ़रमाया न मेरा अ़मल जन्नत में पहुँचायेगा मगर यह कि अल्लाह तआ़ला मुझको अपनी रहमत से ढाँप ले।"

हासिल यह है कि हमारे आमाल जन्नत की क़ीमत नहीं हैं, लेकिन अल्लाह तआ़ला की आ़दत यही है कि अल्लाह तआ़ला अपने फ़ज़्ल से उसी बन्दे को नवाज़ता है जो नेक आमाल करता है, बल्कि जिसको नेक आमाल क़ी तौफ़ीक़ होगी वही निशानी है कि अल्लाह तआ़ला उससे राज़ी हैं लिहाज़ा आमाल की अदायेगी में कभी कोताही नहीं करनी चाहिये। मालूम हुआ कि जन्नत में दाख़िल होने का असली सबब और ज़रिया अल्लाह की तरफ़ से मग़फ़िरत है। इसी लिये मग़फ़िरत की अहमियत को सामने रखते हुए सिर्फ़ 'मग़फ़िरत' नहीं फ़रमाया गया बल्कि:

مَغْفِرَةٍ مِّنْ رَّبِّكُمْ

(तुम्हारे रब की तरफ़ से मग़फ़िरत) फ़रमाया गया। रब होने की सिफ़त बयान करने में अतिरिक्त लुत्फ़ और एहसान का मामला करने का इज़हार मक़सूद है।

दूसरी चीज़ जिसकी तरफ़ दौड़ने का हुक्म दिया जा रहा है वह जन्नत है, और जन्नत के बारे में फ़रमाया गया है कि उसकी वुस्अ़त (लम्बाई-चौड़ाई अर्थात् एरिया) इस क़द्र है जितना सारा आसमान व ज़मीन है। इनसान के दिमाग़ में आसमान व ज़मीन की वुस्अ़त से ज़्यादा और कोई वुस्अ़त आ ही नहीं सकती, इसलिये समझाने के लिये जन्नत के अ़र्ज़ (चौड़ाई) को इससे तशबीह (संज्ञा) दी। गोया बतला दिया कि जन्नत बहुत वसीअ़ (बड़ी) है, उसके अ़र्ज़ (चौड़ाई) में सारे ज़मीन व आसमान समा सकते हैं। फिर जब उसके अ़र्ज़ (चौड़ाई) का यह हाल है तो लम्बाई का हाल ख़ुदा जाने क्या होगा। यह मायने तो उस वक़्त हैं जब अ़र्ज़ को लम्बाई के मुक़ाबिल लिया जाये, लेकिन अगर अ़र्ज़ को समन यानी क़ीमत के मायने में लिया जाये तो मतलब यह होगा कि जन्नत कोई मामूली चीज़ नहीं है, उसकी क़ीमत सारा आसमान व ज़मीन हैं। लिहाज़ा ऐसी क़ीमती और अ़ज़ीमुश्शान चीज़ के लिये कोशिश और दौड़-धूप करो।

तफ़सीरे कबीर में है:

قَالَ اَبُوْ مُسْلِمٍ اِنَّ الْعَرْضَ هٰهُنَا مَا يُعْرَضُ مِنَ الثَّمَنِ فِىْ مُقَابَلَةِ الْمَبِيْعِ اَىْ ثَمَنُهَا لَوْ بِيْعَتْ كَثَمَنِ السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضِ وَالْمُرَادُ بِذٰلِكَ عِظَمُ مِقْدَارِهَا وَجَلَالَةُ خَطَرِهَا وَاِنَّهٗ لَا يُسَاوِيْهَا شَيْءٌ وَاِنْ عَظُمَ.

"अबू मुस्लिम कहते हैं कि अ़र्ज़ से मुराद आयत में वह चीज़ है जो बेची जाने वाली चीज़ के मुक़ाबले में क़ीमत के तौर पर पेश की जाये। मतलब यह है कि अगर फ़र्ज़ करो जन्नत की क़ीमत लगाई जाये तो सारा आसमान व ज़मीन और उनकी कायनात उसकी क़ीमत होगी। मक़सूद इससे जन्नत की बड़ाई, अहमियत और बुलन्द शान वाली होना बयान करना है।"

जन्नत का दूसरा वस्फ़ (ख़ूबी और विशेषता) यह बतलाया:

اُعِدَّتْ لِلْمُتَّقِيْنَ○

कि जन्नत परहेज़गारों के लिये तैयार की गई है। इससे यह भी मालूम हुआ कि जन्नत पैदा की जा चुकी है, क़ुरआन व हदीस के स्पष्ट इशारों से मालूम होता है कि जन्नत सातवें आसमान के ऊपर है, इस तरह कि सातवाँ आसमान उसकी ज़मीन है।

الَّذِيْنَ يُنْفِقُوْنَ فِي السَّرَّآءِ وَ الضَّرَّآءِ وَالْكٰظِمِيْنَ الْغَيْظَ وَالْعَافِيْنَ عَنِ النَّاسِ، وَاللّٰهُ يُحِبُّ الْمُحْسِنِيْنَ ۚ وَ الَّذِيْنَ اِذَا فَعَلُوْا فَاحِشَةً اَوْ ظَلَمُوْٓا اَنْفُسَهُمْ ذَكَرُوا اللّٰهَ فَاسْتَغْفَرُوْا لِذُنُوْبِهِمْ ۠ وَمَنْ يَّغْفِرُ الذُّنُوْبَ اِلَّا اللّٰهُ ۠ وَلَمْ يُصِرُّوْا عَلٰى مَا فَعَلُوْا وَهُمْ يَعْلَمُوْنَ ۝ اُولٰٓئِكَ جَزَآؤُهُمْ مَّغْفِرَةٌ مِّنْ رَّبِّهِمْ وَجَنّٰتٌ تَجْرِيْ مِنْ تَحْتِهَا الْاَنْهٰرُ خٰلِدِيْنَ فِيْهَا، وَنِعْمَ اَجْرُ الْعٰمِلِيْنَ ۝ قَدْ خَلَتْ مِنْ قَبْلِكُمْ سُنَنٌ ۙ فَسِيْرُوْا فِي الْاَرْضِ فَانْظُرُوْا كَيْفَ كَانَ عَاقِبَةُ الْمُكَذِّبِيْنَ ۝ هٰذَا بَيَانٌ لِّلنَّاسِ وَهُدًى وَّمَوْعِظَةٌ لِّلْمُتَّقِيْنَ ۝

अल्लज़ी-न युन्फ़िक़ू-न फ़िस्सर्रा-इ वज़्ज़र्रा-इ वल्काज़िमीनल्-ग़ै-ज़ वल्आफ़ी-न अनिन्नासि, वल्लाहु युहिब्बुल्-मुह्सिनीन (134) वल्लज़ी-न इज़ा फ़-अ़लू फ़ाहि-शतन् औ ज़-लमू अन्फ़ु-सहुम् ज़-करुल्ला-ह फ़स्तग़्फ़रू लिज़ुनूबिहिम्, व मंय्यग़्फ़िरुज़्ज़ुनू-ब इल्लल्लाहु व लम् युसिर्रू अ़ला मा फ़-अ़लू व हुम् यअ़्लमून (135) उलाइ-क जज़ाउहुम् मग़्फ़ि-रतुम् मिर्रब्बिहिम् व जन्नातुन् तज्री मिन् तह्तिहल्-अन्हारु ख़ालिदी-न फ़ीहा, व निअ़्-म अज्रुल् आ़मिलीन (136) क़द् ख़लत् मिन् क़ब्लिकुम् सु-ननुन् फ़सीरू फ़िल्अर्ज़ि फ़न्ज़ुरू कै-फ़ का-न आ़कि-बतुल् मुकज़्ज़िबीन (137) हाज़ा बयानुल्-लिन्नासि व हुदंव् -व मौअि-ज़तुल् लिल्मुत्तक़ीन (138)	जो ख़र्च किये जाते हैं ख़ुशी में और तकलीफ़ में और दबा लेते हैं ग़ुस्सा और माफ़ करते हैं लोगों को, और अल्लाह चाहता है नेकी करने वालों को। (134) और वे लोग कि जब कर बैठें कुछ खुला गुनाह या बुरा काम करें अपने हक़ में तो याद करें अल्लाह को और बख़्शिश माँगें अपने गुनाहों की, और कौन है गुनाह बख़्शने वाला सिवाय अल्लाह के? और अड़ते नहीं अपने किये पर और वे जानते हैं। (135) उन्हीं की जज़ा (बदला) है बख़्शिश उनके रब की और बाग़ जिनके नीचे नहरें बहती हैं, हमेशा रहेंगे वे लोग उन बाग़ों में, और क्या ख़ूब मज़दूरी है काम करने वालों की। (136) हो चुके हैं तुम से पहले वाक़िआ़त सो फिरो ज़मीन में और देखो कि क्या हुआ अन्जाम झुठलाने वालों का। (137) यह बयान है लोगों के वास्ते और हिदायत और नसीहत है डरने वालों को। (138)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

ऐसे लोग (हैं) जो कि (नेक कामों में) ख़र्च करते हैं (हर हाल में) फ़रागत में (भी) और तंगी में (भी)। और गुस्से के ज़ब्त करने वाले और लोगों (की ग़लतियों) से दरगुज़र करने वाले। और अल्लाह तआ़ला ऐसे नेक काम करने वालों को (जिनमें ये आदतें और गुण हों बहुत) महबूब रखता है। और (इनके मुक़ाबले में कुछ दूसरे दर्जे के मुसलमान) ऐसे लोग (हैं) कि जब कोई ऐसा काम कर गुज़रते हैं जिसमें (दूसरों पर) ज़्यादती हो, या (कोई गुनाह करके ख़ास) अपनी ज़ात का नुक़सान उठाते हैं तो (फ़ौरन) अल्लाह तआ़ला (की बड़ाई और अ़ज़ाब) को याद कर लेते हैं, फिर अपने गुनाहों की माफ़ी चाहने लगते हैं (यानी उस तरीक़े से जो माफ़ी के लिये मुक़र्रर है कि दूसरों पर ज़्यादती करने में उन हुक़ूक़ वालों से भी माफ़ कराये और ख़ास अपनी ज़ात से संबन्धित गुनाह में इसकी हाजत नहीं, और अल्लाह तआ़ला से माफ़ कराना दोनों में संयुक्त रूप से है) और (वाक़ई) अल्लाह तआ़ला के सिवा और है कौन जो गुनाहों को बख़्शता हो (रहा हक़ वालों का माफ़ करना तो वे लोग इसका इख़्तियार तो नहीं रखते कि अ़ज़ाब से भी बचा लें और वास्तव में बख़्शिश इसी का नाम है)। और वे लोग अपने (बुरे) फ़ेल (काम और अ़मल) पर इसरार (यानी अड़ते और हठ) नहीं करते, और वे (इन बातों को) जानते हैं (कि फ़ुलाँ काम हमने गुनाह का किया और यह कि तौबा ज़रूरी है, और यह कि ख़ुदा तआ़ला बख़्शिश करने वाला है। मतलब यह कि आमाल को भी सही कर लेते हैं और अक़ीदों को भी दुरुस्त और सही रखते हैं)। उन लोगों की जज़ा बख़्शिश है उनके रब की तरफ़ से, और (जन्नत के) ऐसे बाग़ हैं कि उनके (पेड़ों और मकानों के) नीचे नहरें चलती होंगी। ये हमेशा-हमेशा उन्हीं में रहेंगे (और इसी मग़फ़िरत और जन्नत को हासिल करने का आयतों के शुरू में हुक्म था। बीच में इसका तरीक़ा बतलाया, ख़त्म पर इसका वादा फ़रमाया) और (यह) अच्छा बदला है उन काम करने वालों का। (वह काम इस्तिग़फ़ार और अ़क़ीदों का सही रखना है, और इस्तिग़फ़ार का नतीजा आईन्दा नेक कामों और फ़रमाँबरदारी की पाबन्दी है, जिस पर न अड़ना इशारा करता है)।

तहक़ीक़ कि तुमसे पहले (ज़मानों में) विभिन्न तरीक़ों (के लोग) गुज़र चुके हैं (उनमें मुसलमान भी थे और काफ़िर भी, और उनमें मतभेद व विवाद और मुक़ाबला व लड़ाई भी हुई, लेकिन आख़िरकार काफ़िर ही हलाक हुए। चुनाँचे अगर तुम निशानात को देखना चाहो) तो तुम रू-ए-ज़मीन पर चलो फिरो और देख लो कि अख़ीर अन्जाम झुठलाने वालों का (यानी काफ़िरों का) कैसा हुआ (यानी हलाक व बरबाद हुए। चुनाँचे उनकी हलाकत के निशानात उस वक़्त तक भी बाक़ी थे, जिसको दूसरी आयतों में यूँ बयान फ़रमाया है:

فَتِلْكَ بُيُوْتُهُمْ خَاوِيَةً......... الخ(٢٧:٥٢)

فَتِلْكَ مَسٰكِنُهُمْ لَمْ تُسْكَنْ.... الخ (٢٨:٥٨)

وَإِنَّهُمَا لَبِإِمَامٍ مُّبِينٍ ٥ (١٥:٧٩).

(यानी सूरः 27 आयत 52, सूरः 28 आयत 58 और सूरः 15 आयत 79 में)

यह बयान (यानी ज़िक्र किया गया मज़मून) काफ़ी है तमाम लोगों के लिए (कि अगर इसमें ग़ौर करें तो सबक़ और नसीहत हासिल कर सकते हैं) और हिदायत व नसीहत है ख़ास ख़ुदा से डरने वालों के लिए (यानी हिदायत और नसीहत भी यही लोग हासिल करते हैं। हिदायत यह कि इसके मुवाफ़िक़ अ़मल करें)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

इन आयतों में हक़ तआ़ला ने मुत्तक़ी (नेक और परहेज़गार) मोमिनों की ख़ास सिफ़तें और निशानियाँ बतलाई हैं, जिनसे बहुत से फ़ायदे संबन्धित हैं, जैसे यह कि क़ुरआने हकीम ने जगह-जगह नेक बन्दों की सोहबत और उनकी तालीम से फ़ायदा उठाने की ताकीद फ़रमाई है। कहीं 'सिरातल्लज़ी-न अन्अ़म्-त अ़लैहिम्' (उन लोगों का रास्ता जिन पर तूने इनाम फ़रमाया) फ़रमाकर दीन की सीधी और सही राह उन्हीं मक़बूल बन्दों से सीखने की तरफ़ इशारा फ़रमाया। कहीं 'कूनू मअ़स्सादिक़ीन' (सच्चों के साथ रहो) फ़रमाकर उनकी सोहबत (संगति) और साथ रहकर ख़ास लाभ उठाने की हिदायत फ़रमाई।

दुनिया में हर गिरोह के अन्दर अच्छे-बुरे लोग हुआ करते हैं। अच्छों के लिबास में बुरे भी उनकी जगह ले लेते हैं। इसलिये ज़रूरी था कि मक़बूल बन्दों की ख़ास निशानियाँ और सिफ़तें बतलाकर यह समझा दिया जाये कि लोग ग़लत रहनुमाओं और मुक़्तदाओं (धर्मगुरुओं) से परहेज़ करें और सच्चों की निशानियाँ की पहचान कर उनकी पैरवी करें। मुत्तक़ी मोमिनों की निशानियाँ और सिफ़तें बयान फ़रमाने के बाद उनकी हमेशा की कामयाबी और जन्नत के ऊँचे मक़ामात बतलाकर नेक बन्दों को ख़ुशख़बरी और बुरी राहों पर चलने वालों के लिये नसीहत व तरग़ीब (सही राह की ओर शौक़ दिलाने) का रास्ता खोला गया है। इन आयतों के आख़िर में 'हाज़ा बयानुल्-लिन्नासि व हुदंव्-व मौअ़िज़तुल्-लिल्मुत्तक़ीन' (यह बयान है लोगों के वास्ते, और हिदायत और नसीहत है डरने वालों को) में इसी की तरफ़ इशारा है। अल्लाह के मक़बूल बन्दों की जो सिफ़तें और निशानियाँ यहाँ ज़िक्र की गई हैं, इसमें शुरू की आयतों में उन सिफ़तों का बयान है जिनका ताल्लुक़ इनसानी हुक़ूक़ और आपसी रहन-सहन व सामाजिक ज़िन्दगी से है, और बाद की आयतों में वे सिफ़तें हैं जिनका ताल्लुक़ हक़ तआ़ला की इबादत व फ़रमाँबरदारी से है, जिनको दूसरे लफ़्ज़ों में **बन्दों के हुक़ूक़** और **अल्लाह के हुक़ूक़** से ताबीर किया जा सकता है।

ऊपर ज़िक्र हुई आयतों में इनसानी हुक़ूक़ से मुताल्लिक़ सिफ़तों को पहले और अल्लाह के हुक़ूक़ से सम्बन्धित सिफ़तों को बाद में बयान फ़रमाकर इस तरफ़ इशारा फ़रमाया कि अगरचे असल के एतिबार से अल्लाह के हुक़ूक़ तमाम हुक़ूक़ पर मुक़द्दम (प्राथमिकता रखने वाले) हैं,

लेकिन दोनों में एक ख़ास फ़र्क़ यह है कि अल्लाह तआ़ला ने जो अपने हुक़ूक़ बन्दों पर लाज़िम किये हैं उनसे न ख़ुदा तआ़ला का अपना कोई फ़ायदा जुड़ा हुआ है न ख़ुदा तआ़ला को उनकी हाजत है, और न उनके अदा न करने से अल्लाह तआ़ला का कोई नुक़सान है। उसकी ज़ात सबसे बेनियाज़ (बेपरवाह) है, उसकी इबादत से फ़ायदा ख़ुद इबादत करने वाले का है। फिर वह तमाम रहम करने वालों से ज़्यादा रहम करने वाला और तमाम मेहरबानी करने वालों से ज़्यादा मेहरबान भी है, उसके हुक़ूक़ में बड़ी से बड़ी कोताही और ग़लती करने वाला इनसान जिस वक़्त भी अपने किये हुए पर शर्मिन्दा होकर उसकी तरफ़ मुतवज्जह हो जाये और तौबा कर ले तो उसकी रहम व करम की बारगाह से उसके सारे गुनाह एक लम्हे में माफ़ हो सकते हैं। इसके विपरीत बन्दों के हुक़ूक़ का मामला यह है कि इनसान उनका मोहताज है और जिस शख़्स के हुक़ूक़ किसी के ज़िम्मे वाजिब हैं अगर वह अदा न करे तो उसका नुक़सान भी है और अपने नुक़सान को माफ़ करना भी इनसान के लिये आसान नहीं, इसलिये बन्दों के हुक़ूक़ को एक ख़ास अहमियत हासिल है।

इसके अ़लावा कायनात की व्यवस्था के दुरुस्त रखने और इनसानी समाज के सुधार का सबसे बड़ा दारोमदार आपसी हुक़ूक़ की अदायेगी पर है। इसमें ज़रा सी कोताही लड़ाई-झगड़ों और फ़साद (ख़राबी व बिगाड़) की राहें खोल देती है। और अगर अच्छे और ऊँचे अख़्लाक़ पैदा कर लिये जायें तो दुश्मन भी दोस्त बन जाते हैं, सदियों की लड़ाईयाँ सुलह व शांति में तब्दील हो जाती हैं, इसलिये भी उन सिफ़तों व निशानियों को मुक़द्दम किया गया (प्राथमिकता दी गयी) जिनका ताल्लुक़ इनसानी हुक़ूक़ से है। उन सिफ़तों में से सबसे पहली सिफ़त यह बतलाई गई है:

اَلَّذِيْنَ يُنْفِقُوْنَ فِي السَّرَّآءِ وَالضَّرَّآءِ

यानी वे लोग हैं जो अल्लाह की राह में अपना माल ख़र्च करने के ऐसे आ़दी हैं कि उन पर फ़राख़ी (ख़ुशहाली) हो या तंगी हर हाल में अपनी हिम्मत भर ख़र्च करते रहते हैं, ज़्यादा में से ज़्यादा और कम में से कम। इसमें एक तरफ़ तो यह हिदायत है कि ग़रीब फ़क़ीर आदमी भी अपने आपको अल्लाह की राह में ख़र्च करने से बिल्कुल फ़ारिग़ न समझे और उसकी राह में ख़र्च करने की सआ़दत (सौभाग्य) से मेहरूम न हों, क्योंकि हज़ार रुपये में से एक रुपया ख़र्च करने का जो दर्जा है अल्लाह तआ़ला के नज़दीक वही हज़ार पैसे में से एक पैसा ख़र्च करने का भी है, और अ़मली तौर पर जिस तरह हज़ार रुपये के मालिक को एक रुपया अल्लाह की राह में ख़र्च कर देना कुछ मुश्किल नहीं इसी तरह हज़ार पैसों के मालिक को एक पैसा ख़र्च करने में कोई तकलीफ़ नहीं हो सकती।

दूसरी तरफ़ यह हिदायत भी है कि तंगी की हालत में भी अपनी हैसियत के मुताबिक़ ख़र्च करते रहने से ख़र्च करने की अच्छी आ़दत फ़ना (ख़त्म) नहीं होगी, और शायद अल्लाह तआ़ला उसी की बरकत से फ़राग़त और फ़राख़ी (ख़ुशहाली) भी अ़ता फ़रमा दें।

तीसरी अहम चीज़ इसमें यह है कि जो शख़्स इसका आ़दी हो कि दूसरे इनसानों पर अपना

माल ख़र्च करके उनको फ़ायदा पहुँचा सके, ग़रीबों, फ़क़ीरों की इमदाद करे, ज़ाहिर है कि वह कभी दूसरों के हुक़ूक़ मारने, दबाने, उन पर डाका डालने और उनकी मर्ज़ी के ख़िलाफ़ हुज़्म करने के पास भी न जायेगा। इसलिये इस पहली सिफ़त का हासिल यह हुआ कि मुत्तक़ी मोमिन और अल्लाह तआ़ला के मक़बूल बन्दे दूसरे इनसानों को फ़ायदा पहुँचाने की फ़िक्र में रहा करते हैं चाहे उन पर ख़ुशहाली हो या तंगी। हज़रत आयशा रज़ियल्लाहु अ़न्हा ने एक वक़्त सिर्फ़ एक अंगूर का दाना ख़ैरात में दिया क्योंकि उस वक़्त उनके पास उसके सिवा कुछ न था। कुछ बुज़ुर्गों से नक़ल किया गया है कि किसी वक़्त उन्होंने सिर्फ़ एक प्याज़ का सदक़ा किया (यानी प्याज़ ही अल्लाह की राह में दे दी)। रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया हैः

اِتَّقُوا النَّارَ وَلَوْ بِشِقِّ تَمْرَةٍ وَرُدُّوا السَّآئِلَ وَلَوْ بِظِلْفِ شَاةٍ

"यानी तुम जहन्नम की आग से अपने आपको बचाओ अगरचे एक खजूर का टुकड़ा सदक़े में देकर ही हो। और माँगने वाले को ख़ाली वापस न करो, और कुछ न हो तो बकरी के पाँव की खुरी ही दे दो।"

तफ़सीरे कबीर में इमाम राज़ी ने यह हदीस भी नक़ल की है कि एक दिन रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने लोगों को सदक़ा देने की तरग़ीब (प्रेरणा) दी तो जिनके पास सोना चाँदी था उन्होंने वह सदक़े में दे दिया। एक शख़्स खजूर के छिलके लाया कि मेरे पास और कुछ नहीं, वही सदक़ा कर दिये गये। एक और शख़्स आया और अ़र्ज़ किया या रसूलल्लाह! मेरे पास कोई चीज़ सदक़ा करने के लिये नहीं है अलबत्ता मैं अपनी क़ौम में इज़्ज़तदार समझा जाता हूँ मैं अपनी इज़्ज़त की ख़ैरात करता हूँ कि आईन्दा कोई आदमी मुझे कितना ही भला-बुरा कहे मैं उससे नाराज़ नहीं हूँगा।

रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की तालीमात और सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम के अ़मली नमूने से यह बात स्पष्ट हो गई कि अल्लाह के रास्ते में ख़र्च करना सिर्फ़ मालदारों और अमीरों ही का हिस्सा नहीं है, ग़रीब, फ़क़ीर भी इस सिफ़त के वाहक हो सकते हैं, कि अपनी अपनी कोशिश के मुताबिक़ अल्लाह की राह में ख़र्च करके इस अ़ज़ीम सिफ़त को हासिल कर लें।

अल्लाह के रास्ते में ख़र्च करने के लिये ज़रूरी नहीं कि माल ही ख़र्च किया जाये

यहाँ यह बात भी क़ाबिले ग़ौर है कि क़ुरआने करीम ने इस जगह 'युन्फ़िक़ू-न' का तो ज़िक्र फ़रमाया कि वे लोग तंगी और ख़ुशहाली हर हाल में अल्लाह के रास्ते में ख़र्च करते हैं, यह मुतैयन नहीं फ़रमाया कि क्या ख़र्च करते हैं। इसके आ़म होने से मालूम होता है कि इसमें सिर्फ़ माल व दौलत ही नहीं बल्कि हर ख़र्च करने की चीज़ दाख़िल है। मसलन् जो शख़्स अपना वक़्त, अपनी मेहनत अल्लाह की राह में ख़र्च करे वह भी इस इन्फ़ाक़ (ख़र्च करने) की सिफ़त वाला

माना जायेगा। तफ़सीरे कबीर में ऊपर बयान हुई हदीस इस पर गवाह और सुबूत है।

तंगी और ख़ुशहाली के ज़िक्र में एक और हिक्मत

तंगी और ख़ुशहाली का ज़िक्र करने में एक हिक्मत यह भी है कि यही वो हालतें हैं जिनमें आ़दतन् इनसान ख़ुदा को भूलता है। जब माल व दौलत की अधिकता हो तो ऐश में ख़ुदा को भूल जाता है, और जब तंगी और मुसीबत हो तो बहुत सी बार उसी के फ़िक्र में रहकर ख़ुदा से ग़ाफ़िल हो जाता है। इस आयत में इस तरफ़ भी इशारा कर दिया कि अल्लाह के मक़बूल बन्दे वे हैं जो न ऐश में ख़ुदा को भूलते हैं न मुसीबत व तकलीफ़ में। बहादुर शाह ज़फ़र शाह देहलवी का कलाम इस मायने में ख़ूब है:

ज़फ़र आदमी उसको न जानियेगा ख़्वाह हो कितना ही साहिबे फ़हम व ज़का
जिसे ऐश में यादे-ख़ुदा न रही जिसे तेश में ख़ौफ़े-ख़ुदा न रहा

इसके बाद उनकी (यानी मुत्तक़ी मोमिनों की) एक ख़ास सिफ़त और निशानी यह बतलाई गई कि अगर उनको किसी ऐसे शख़्स से वास्ता पड़े जो उनको दुख और तकलीफ़ पहुँचाये तो वे ग़ुस्से में आग-बगूला और मग़लूब नहीं हो जाते, और ग़ुस्से के तक़ाज़े पर अ़मल करके बदला नहीं लेते। फिर सिर्फ़ यही नहीं कि बदला न लें बल्कि दिल से भी माफ़ कर देते हैं। और फिर इसी पर बस नहीं बल्कि तकलीफ़ देने वाले के साथ एहसान का मामला फ़रमाते हैं। इसी एक सिफ़त में गोया तीन सिफ़तें शामिल हैं- अपने ग़ुस्से पर क़ाबू पाना, तकलीफ़ देने वाले को माफ़ करना, फिर उसके साथ एहसान का मामला करना। इन तीनों चीज़ों को इस आयत में बयान फ़रमाया है:

وَالْكٰظِمِيْنَ الْغَيْظَ وَالْعَافِيْنَ عَنِ النَّاسِ، وَاللّٰهُ يُحِبُّ الْمُحْسِنِيْنَ○

यानी वे लोग जो अपने ग़ुस्से को दबा लेते हैं और लोगों का क़सूर माफ़ कर देते हैं, और अल्लाह तआ़ला एहसान करने वालों को पसन्द करता है।

इमाम बैहक़ी रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने इस आयत की तफ़सीर में सैयदना हज़रत अ़ली इब्ने हुसैन रज़ियल्लाहु अ़न्हु का एक अ़जीब वाक़िआ़ नक़ल फ़रमाया है कि आपकी एक बाँदी आपको वुज़ू करा रही थी कि अचानक पानी का बरतन उसके हाथ से छूटकर हज़रत अ़ली इब्ने हुसैन रज़ियल्लाहु अ़न्हु के ऊपर गिरा, तमाम कपड़े भीग गये, ग़ुस्सा आना फ़ितरी बात थी, बाँदी को ख़तरा हुआ तो उसने फ़ौरन यह आयत पढ़ी:

وَالْكٰظِمِيْنَ الْغَيْظَ

यह सुनते ही ख़ानदाने नुबुव्वत के उस बुज़ुर्ग का सारा ग़ुस्सा ठंडा हो गया, बिल्कुल ख़ामोश हो गये। उसके बाद बाँदी ने आयत का दूसरा जुमलाः

وَالْعَافِيْنَ عَنِ النَّاسِ

पढ़ दिया तो फ़रमाया कि मैंने तुझे दिल से भी माफ़ कर दिया। बाँदी भी होशियार थी,

इसके बाद उसने तीसरा जुमला भी सुना दियाः

وَاللّٰهُ يُحِبُّ الْمُحْسِنِيْنَ

जिसमें एहसान और अच्छा सुलूक करने की हिदायत है। हज़रत अ़ली बिन हुसैन रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने यह सुनकर फ़रमाया कि जा मैंने तुझे आज़ाद कर दिया। (रूहुल-मआ़नी, बैहकी के हवाले से)

लोगों की ख़ताओं और ग़लतियों को माफ़ कर देना इनसानी अख़्लाक़ में एक बड़ा दर्जा रखता है और आख़िरत में इसका सवाब निहायत आला है। हदीस में रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का इरशाद है कि "क़ियामत के दिन हक़ तआ़ला की तरफ़ से ऐलान होगा कि जिस शख़्स का अल्लाह तआ़ला पर कोई हक़ है वह खड़ा हो जाये, तो उस वक़्त वे लोग खड़े होंगे जिन्होंने लोगों के ज़ुल्म व ज़्यादती को दुनिया में माफ़ किया होगा।"

एक हदीस में इरशाद हैः

مَنْ سَرَّهٗ اَنْ يُّشْرَفَ لَهُ الْبُنْيَانُ وَتُرْفَعَ لَهُ الدَّرَجٰتُ فَلْيَعْفُ عَنْ مَّنْ ظَلَمَهٗ وَيُعْطِ مَنْ حَرَمَهٗ وَيَصِلُ مَنْ قَطَعَهٗ.

"जो शख़्स यह चाहे कि उसके महल जन्नत में ऊँचे हों और उसके दर्जे बुलन्द हों उसको चाहिये कि जिसने उस पर ज़ुल्म किया हो उसको माफ़ कर दे और जिसने उसको कभी कुछ न दिया हो उसको बख़्शिश व हदिया दिया करे और जिसने उससे ताल्लुक़ात तोड़ लिये हों यह उससे मिलने में परहेज़ न करे।"

क़ुरआने करीम ने दूसरी जगह इससे ज़्यादा वज़ाहत (स्पष्टता) से बुराई करने वालों के साथ एहसान करने का अदब व अख़्लाक़ सिखलाया और यह बतलाया है कि इसके ज़रिये दुश्मन भी दोस्त हो जाते हैं। इरशाद फ़रमायाः

اِدْفَعْ بِالَّتِىْ هِىَ اَحْسَنُ فَاِذَا الَّذِىْ بَيْنَكَ وَبَيْنَهٗ عَدَاوَةٌ كَاَنَّهٗ وَلِىٌّ حَمِيْمٌO (٤١: ٣٤)

"यानी बुराई को भलाई और एहसान के साथ दूर करो तो जिसके साथ दुश्मनी है वह तुम्हारा गहरा दोस्त बन जायेगा।"

हक़ तआ़ला ने रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की अख़्लाक़ी तरबियत भी इसी आला पैमाने पर फ़रमाई है कि आपने अपनी उम्मत को भी यह हिदायत दी किः

صِلْ مَنْ قَطَعَكَ وَاعْفُ عَمَّنْ ظَلَمَكَ وَاَحْسِنْ اِلٰى مَنْ اَسَآءَ اِلَيْكَ.

"यानी जो शख़्स आपसे क़ता ताल्लुक़ करे (संबन्ध तोड़े) आप उनसे मिलें और जो आप पर ज़ुल्म करे आप उसको माफ़ करें और जो आपके साथ बुराई करे आप उस पर एहसान करें।"

रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की तो बड़ी शान है, आपकी तालीमात की बरकत से यही अख़्लाक़ व गुण आपके ख़ादिमों में भी हक़ तआ़ला ने पैदा फ़रमा दिये थे जो इस्लामी समाज की एक अलग शान और पहचान है। सहाबा व ताबिईन रज़ियल्लाहु अ़न्हुम और उम्मत के बुज़ुर्गों की तारीख़ (इतिहास) इस क़िस्म के वाक़िआ़त से भरी पड़ी है।

इमामे आज़म अबू हनीफ़ा रहमतुल्लाहि अ़लैहि का एक वाक़िआ़ है कि एक शख़्स ने भरे

बाज़ार में इमामे आज़म की शान में गुस्ताख़ी की और गालियाँ दीं। हज़रत इमामे आज़म रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने ग़ुस्से को ज़ब्त किया और उसको कुछ नहीं कहा और घर वापस आने के बाद एक थाली में काफ़ी दिरहम व दीनार रखकर उस शख़्स के घर तशरीफ़ ले गये। दरवाज़े पर दस्तक दी, वह शख़्स बाहर आया तो अशरफ़ियों की यह थाली उसके सामने यह कहते हुए पेश फ़रमायी कि आज तुमने मुझ पर बहुत बड़ा एहसान किया, अपनी नेकियाँ मुझे दे दीं, मैं उस एहसान का बदला उतारने के लिये यह तोहफ़ा पेश कर रहा हूँ। इमाम साहिब के इस मामले का उसके दिल पर असर होना ही था, उसने आगे के लिये इस बुरी आ़दत से हमेशा के लिये तौबा कर ली, हज़रत इमाम से माफ़ी माँगी और आपकी ख़िदमत और सोहबत में इल्म हासिल करने लगा, यहाँ तक कि आपके शागिर्दों में एक बड़े आ़लिम की हैसियत हासिल की।

यहाँ तक उन सिफ़तों और गुणों का बयान था जो इनसानी हुक़ूक़ से संबन्धित हैं। इसके बाद अल्लाह के हुक़ूक़ से सम्बन्धित सिफ़तों का बयान इस तरह फ़रमाया कि ये लोग अल्लाह तआ़ला की नाफ़रमानी नहीं करते और अगर इनसान होने के नाते कभी उनसे गुनाह हो जाता है तो फ़ौरन अल्लाह तआ़ला की तरफ़ मुतवज्जह होकर इस्तिग़फ़ार करते हैं और आगे के लिये उस गुनाह से बाज़ आने का इरादा पुख़्ता कर लेते हैं। इरशाद फ़रमायाः

وَالَّذِيْنَ إِذَا فَعَلُوْا فَاحِشَةً اَوْ ظَلَمُوْٓا اَنْفُسَهُمْ ذَكَرُوا اللّٰهَ فَاسْتَغْفَرُوْا لِذُنُوْبِهِمْ وَمَنْ يَّغْفِرُ الذُّنُوْبَ اِلَّا اللّٰهُ وَلَمْ يُصِرُّوْا عَلٰى مَا فَعَلُوْا وَهُمْ يَعْلَمُوْنَ۝

जिसमें एक तो यह हिदायत की गई कि गुनाहों में मुब्तला होना अल्लाह तआ़ला की याद और ज़िक्र से ग़फ़लत के सबब होता है, इसलिये जब कोई गुनाह हो जाये तो अल्लाह तआ़ला की याद को फ़ौरन ताज़ा करना चाहिये और ज़िक्रुल्लाह में मशग़ूल होना चाहिये।

दूसरी यह हिदायत है कि गुनाहों की माफ़ी के लिये दो चीज़ें ज़रूरी हैं- एक पिछले गुनाहों पर शर्मिन्दगी व पछतावा और उससे माफ़ी माँगना और मग़फ़िरत की दुआ़ करना, दूसरी आगे के लिये उसके पास न जाने का मुकम्मल और पुख़्ता इरादा करना।

अल्लाह तआ़ला हम सब को क़ुरआने करीम के बतलाये हुए बुलन्द और अच्छे अख़्लाक़ नसीब फ़रमा दे। अल्लाहुम्-म आमीन

وَلَا تَهِنُوْا وَلَا تَحْزَنُوْا وَاَنْتُمُ الْاَعْلَوْنَ اِنْ كُنْتُمْ مُّؤْمِنِيْنَ۝ اِنْ يَّمْسَسْكُمْ قَرْحٌ فَقَدْ مَسَّ الْقَوْمَ قَرْحٌ مِّثْلُهٗ ؕ وَتِلْكَ الْاَيَّامُ نُدَاوِلُهَا بَيْنَ النَّاسِ ۚ وَلِيَعْلَمَ اللّٰهُ الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا وَيَتَّخِذَ مِنْكُمْ شُهَدَآءَ ؕ وَاللّٰهُ لَا يُحِبُّ الظّٰلِمِيْنَ۝ وَلِيُمَحِّصَ اللّٰهُ الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا وَيَمْحَقَ الْكٰفِرِيْنَ۝ اَمْ حَسِبْتُمْ اَنْ تَدْخُلُوا الْجَنَّةَ وَلَمَّا يَعْلَمِ اللّٰهُ الَّذِيْنَ جٰهَدُوْا مِنْكُمْ وَيَعْلَمَ الصّٰبِرِيْنَ۝ وَلَقَدْ كُنْتُمْ تَمَنَّوْنَ الْمَوْتَ مِنْ قَبْلِ اَنْ تَلْقَوْهُ ۪ فَقَدْ رَاَيْتُمُوْهُ وَاَنْتُمْ تَنْظُرُوْنَ۝

व ला तहिनू व ला तह्ज़नू व अन्तुमुल्-अअ़्लौ-न इन् कुन्तुम् मुअ्मिनीन (139) इंय्यम्सस्कुम् क़र्हुन् फ़-क़द् मस्सल्-क़ौ-म क़र्हुम् मिस्लुहू, व तिल्कल्-अय्यामु नुदाविलुहा बैनन्नासि व लि-यअ़्-लमल्लाहुल्लज़ी-न आमनू व यत्तख़ि-ज मिन्कुम् शु-हदा-अ, वल्लाहु ला युहिब्बुज़्ज़ालिमीन (140) व लियुमह्हिसल्लाहुल्लज़ी-न आमनू व यम्ह-क़ल् काफ़िरीन (141) अम् हसिब्तुम् अन् तद्ख़ुलुल्-जन्न-त व लम्मा यअ़्लमिल्लाहुल्लज़ी-न जाहदू मिन्कुम् व यअ़्-लमस्साबिरीन (142) व ल-क़द् कुन्तुम् तमन्नौनल्मौ-त मिन् क़ब्लि अन् तल्क़ौहु फ़-क़द् रऐतुमूहु व अन्तुम् तन्ज़ुरून (143) ❁	और सुस्त न होओ और न ग़म खाओ और तुम ही ग़ालिब रहोगे अगर तुम ईमान रखते हो। (139) अगर पहुँचा तुमको ज़ख़्म तो पहुँच चुका है उनको भी ज़ख़्म ऐसा ही, और ये दिन बारी-बारी बदलते रहते हैं हम इनको लोगों में, और इसलिए कि मालूम करे अल्लाह जिनको ईमान है और करे तुम में से शहीद, और अल्लाह को मुहब्बत नहीं ज़ुल्म करने वालों से। (140) और इस वास्ते कि पाक साफ़ करे अल्लाह ईमान वालों को और मिटा दे काफ़िरों को। (141) क्या तुमको ख़्याल है कि दाख़िल हो जाओगे जन्नत में और अभी तक मालूम नहीं किया अल्लाह ने जो तुम में लड़ने वाले हैं, और मालूम नहीं किया साबित (जमे और डटे) रहने वालों को। (142) और तुम तो आरज़ू करते थे मरने की उसकी मुलाक़ात से पहले सो अब देख लिया तुमने उसको आँखों के सामने। (143) ❁

इन आयतों के मज़मून का पीछे से जोड़

इन आयतों में फिर उहुद के किस्से के मुताल्लिक़ मुसलमानों को तसल्ली देने का मज़मून है, कि हमेशा से अल्लाह का यही तरीक़ा व आ़दत चली आई है कि अन्जाम कार काफ़िर ही नुक़सान व घाटा उठाने वाले होते हैं, अगरचे तुम इस वक़्त अपनी बेउनवानी (कोताही और चूक) से मग़लूब हो गये लेकिन अगर अपने ईमान के तक़ाज़ों और उद्देश्यों (यानी साबित क़दमी और तक़्वे) पर क़ायम रहे तो आख़िर में काफ़िर ही मग़लूब (पस्त और पराजित) होंगे।

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

और तुम (अगर इस वक़्त मग़लूब हो गये तो क्या हुआ) हिम्मत मत हारो और रंज मत

करो, और ग़ालिब तुम ही रहोगे अगर तुम पूरे मोमिन रहे (यानी ईमान के तक़ाज़ों पर क़ायम रहे)। अगर तुमको ज़ख़्म (सदमा) पहुँच जाए (जैसा कि उहुद में हुआ) तो (कोई घबराने की बात नहीं, क्योंकि इसमें चन्द हिक्मतें हैं। एक तो यह कि) उस क़ौम को भी (जो कि तुम्हारे मुक़ाबले में थी यानी काफ़िर लोग) ऐसा ही ज़ख़्म (सदमा) पहुँच चुका है (चुनाँचे इससे पहले जंगे-बदर में वे सदमा उठा चुके हैं)। और (हमारा मामूल है कि) हम इन दिनों को (यानी ग़ालिब व मग़लूब होने के ज़माने को) उन लोगों के बीच अदलते-बदलते रहा करते हैं (यानी कभी एक क़ौम को ग़ालिब और दूसरी को मग़लूब कर दिया, कभी इसके उलट कर दिया। सो इसी मामूल के मुताबिक़ पिछले साल वह मग़लूब हुए थे अब के तुम हो गये। एक हिक्मत तो यह हुई) और (दूसरी हिक्मत यह है) ताकि अल्लाह तआ़ला ईमान वालों को (ज़ाहिरी तौर पर) जान लें, (क्योंकि मुसीबत के वक़्त सच्चे और नेक का इम्तिहान हो जाता है) और (तीसरी हिक्मत यह है कि) तुम में से बाज़ों को शहीद बनाना था, (बाक़ी की हिक्मतें आगे आती हैं बीच में एक दूसरी बात यह इरशाद फ़रमाते हैं) और अल्लाह तआ़ला ज़ुल्म (यानी कुफ़्र व शिर्क) करने वालों से मुहब्बत नहीं रखते (पस इसका गुमान न किया जाए कि शायद उनको महबूब होने की वजह से ग़ालिब फ़रमा दिया हो, हरगिज़ नहीं)।

और (चौथी हिक्मत यह है) ताकि (गुनाहों के) मैल-कुचैल से साफ़ कर दे ईमान वालों को (क्योंकि मुसीबत से अख़्लाक़ व आमाल की सफ़ाई हो जाती है) और (पाँचवीं हिक्मत यह है कि) मिटा दे काफ़िरों को (यह इसलिये कि ग़ालिब आ जाने से उनकी हिम्मत बढ़ेगी, फिर मुक़ाबले में आयेंगे और हलाक होंगे। दूसरे यह कि मुसलमानों पर ज़ुल्म करने की वजह से अल्लाह के क़हर में मुब्तला होकर हलाक होंगे)।

हाँ और सुनो! क्या तुम यह ख़्याल करते हो कि जन्नत में (ख़ुसूसियत के साथ) दाख़िल हो जाओगे हालाँकि अभी अल्लाह तआ़ला ने (ज़ाहिरी तौर पर) उन लोगों को तो देखा (आज़माया) ही नहीं जिन्होंने तुम में से (ख़ूब) जिहाद किया हो, और न उनको देखा जो साबित-क़दम (जमे) रहने वाले हों। और तुम तो (शहीद होकर) मरने की (बड़ी) तमन्ना किया करते थे मौत के सामने आने से पहले, सो (तमन्ना के मुताबिक़) उस (के सामान) को तो खुली आँखों देख लिया (फिर उसको देखकर क्यों भागने लगे, और वह तमन्ना कहाँ भूल गये?)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

जंग-ए-उहुद का वाक़िआ़ अपनी पूरी तफ़सील के साथ इसी सूरत में बयान किया जा चुका है, जिसमें यह बात स्पष्ट हो चुकी है कि इस जिहाद में मुसलमानों की कुछ कोताहियों के सबब शुरूआ़ती फ़तह के बाद फिर मुसलमानों को शिकस्त हुई, सत्तर सहाबा किराम शहीद हुए, हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को ज़ख़्म आये। मगर इन सब बातों के बाद फिर अल्लाह तआ़ला ने जंग का पाँसा पलटा और दुश्मन मैदान छोड़कर भागने पर मजबूर हो गये।

इस वक़्ती और अस्थायी शिकस्त (पराजय) के तीन सबब थे- पहला यह कि हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने जो हुक्म तीर-अन्दाज़ों को दिया था वे हज़रात कुछ कारणों से उस पर क़ायम न रहे। क्योंकि इस बारे में मतभेद हो गया, कोई कहता था कि हमको यहीं जमे रहना चाहिये, अक्सर ने कहा कि अब यहाँ ठहरने की कोई ज़रूरत नहीं रही, चलकर सब के साथ ग़नीमत का माल हासिल करने में लगना चाहिये। तो पहला सबब आपस का झगड़ा था।

दूसरा सबब यह हुआ कि जब हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के क़त्ल की ख़बर मशहूर हो गई तो मुसलमानों के दिलों में कमज़ोरी पैदा हो गई, जिसका नतीजा बुज़दिली और कम-हिम्मती की सूरत में ज़ाहिर हुआ।

तीसरा सबब जो इन दोनों सबबों (कारणों) से ज़्यादा अहम था, यह है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के हुक्म की तामील में इख़्तिलाफ़ (मतभेद) पेश आया। ये तीन चूक और कोताहियाँ मुसलमानों से हो गई थीं जिनकी बिना पर उनको वक़्ती और अस्थायी शिकस्त हुई। यह वक़्ती शिकस्त अगरचे आख़िर में फ़तह में तब्दील हो चुकी थी लेकिन मुसलमान मुजाहिदीन ज़ख़्मों से चूर-चूर थे, उनके बड़े-बड़े बहादुरों की लाशें आँखों के सामने पड़ी थीं, पैग़म्बर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को भी बदबख़्तों ने ज़ख़्मी कर दिया था, सख़्तियों और मायूसी का हुजूम था और अपनी इन कोताहियों का भी बहुत ज़्यादा सदमा था।

अब यहाँ दो चीज़ें पैदा हो चुकी थीं- एक तो गुज़री बातों का रंज व ग़म, दूसरी चीज़ जिसका ख़तरा था वह यह कि मुसलमान आईन्दा के लिये कहीं कमज़ोर न हो जायें और दुनिया की क़ौमों के नेतृत्व व रहनुमाई का जो फ़रीज़ा उन पर लागू है उसमें कमज़ोरी व सुस्ती पैदा न हो जाये, इसलिये इन दोनों सुराख़ों को बन्द करने और रुकावटों को हटाने के लिये क़ुरआने करीम का यह इरशाद आयाः

لَا تَهِنُوْا وَلَا تَحْزَنُوْا وَاَنْتُمُ الْاَعْلَوْنَ اِنْ كُنْتُمْ مُّؤْمِنِيْنَ○

यानी तुम आईन्दा के लिये कमज़ोरी और सुस्ती अपने पास न आने दो और गुज़री स्थिति पर रंज व मलाल न करो और अन्जामकार तुम ही ग़ालिब होकर रहोगे, शर्त यह है कि ईमान व यक़ीन के रास्ते पर जमे रहो और हक़ तआ़ला के वादों पर पूरा यक़ीन व भरोसा रखते हुए रसूल की इताअ़त (फ़रमाँबरदारी) और अल्लाह के रास्ते में जिहाद से क़दम पीछे न हटाओ।

मतलब यह था कि गुज़री (पिछली) बातें और कोताहियाँ जो हो चुकी हैं उन पर रंज व ग़म में अपना वक़्त और ऊर्जा गंवाने के बजाय भविष्य में अपने काम की दुरुस्ती की फ़िक्र करो और उसे कामयाब बनाओ। ईमान व यक़ीन, रसूल की फ़रमाँबरदारी कामयाब भविष्य की ज़ामिन (गारंटी देने वाली चीज़) है इनको हाथ से न जाने दो, अन्जाम के एतिबार से तुम ही ग़ालिब रहोगे।

इस क़ुरआनी आवाज़ ने टूटे हुए दिलों को जोड़ दिया और बेजान पड़े मुर्दा जिस्मों में ताज़ा रूह फूँक दी। ग़ौर फ़रमाईये कि अल्लाह तआ़ला ने इन हज़रात की किस तरह तरबियत व इस्लाह फ़रमाई और हमेशा के लिये मुसलमानों को एक ज़ाब्ता (नियम) और उसूल दे दिया कि

गुज़रे वक़्त में हाथ से निकल जाने वाली चीज़ों पर रंज व मलाल में वक़्त गंवाने के बजाय आईन्दा के लिये ताक़त व दबदबे के असबाब मुहैया करने चाहियें। फिर इसके साथ ही साथ यह भी बतला दिया गया कि ग़लबा (फ़तह) और बुलन्दी हासिल करने के लिये सिर्फ़ एक ही चीज़ असल है यानी ईमान और उसके तक़ाज़े पूरे करना। ईमान के तक़ाज़े में वो तैयारियाँ भी दाख़िल हैं जो जंग के सिलसिले में की जाती हैं, यानी अपनी फ़ौजी ताक़त को मज़बूत करना, जंग के सामान को मुहैया और उपलब्ध करना और ज़ाहिरी सामान से अपनी हिम्मत व गुंजाईश के मुताबिक़ लैस होना। जंगे-उहुद के वाक़िआत शुरू से आख़िर तक इन तमाम बातों की दलील हैं।

इस आयत के बाद एक दूसरे अन्दाज़ में मुसलमानों की तसल्ली के लिये इरशाद है कि अगर इस लड़ाई में तुमको ज़ख़्म पहुँचा या तकलीफ़ उठानी पड़ी तो इसी तरह के हादसे फ़रीक़े मुक़ाबिल (सामने वाले पक्ष) को भी तो पेश आ चुके हैं। अगर उहुद में तुम्हारे सत्तर आदमी शहीद और बहुत से ज़ख़्मी हुए तो एक साल पहले उनके सत्तर आदमी जहन्नम रसीद और बहुत से ज़ख़्मी हो चुके हैं, और ख़ुद इस लड़ाई में भी शुरूआत में उनके बहुत से आदमी क़त्ल व ज़ख़्मी हुए। लिहाज़ा फ़रमायाः

اِنْ يَّمْسَسْكُمْ قَرْحٌ فَقَدْ مَسَّ الْقَوْمَ قَرْحٌ مِّثْلُهٗ وَتِلْكَ الْاَيَّامُ نُدَاوِلُهَا بَيْنَ النَّاسِ

यानी अगर तुमको ज़ख़्म पहुँचा तो उनको भी ऐसा ही ज़ख़्म पहुँच चुका है, और हम इन दिनों को बारी-बारी बदलते रहते हैं, जिसमें बहुत सी हिक्मतें छुपी हैं।

इस आयत में एक अहम ज़ाब्ते और उसूल की तरफ़ रहनुमाई फ़रमाई। वह यह कि अल्लाह तआ़ला की आ़दत इस जहान में यही है कि वह सख़्ती व नर्मी, दुख व सुख, तकलीफ़ व राहत के दिनों को लोगों में अदल-बदल करते हैं। अगर किसी वजह से किसी बातिल क़ुव्वत को अस्थायी फ़तह व कामयाबी हासिल हो जाये तो हक़ वाली जमाअ़त को उससे मायूस व परेशान नहीं होना चाहिये, और यह न समझना चाहिये कि हमको अब हमेशा शिकस्त ही हुआ करेगी बल्कि उस शिकस्त (हार और नाकामी) के कारणों का पता लगाकर उन कारणों की तलाफ़ी करनी चाहिये, अन्जाम कार फ़तह हक़ जमाअ़त ही को नसीब होगी।

وَمَا مُحَمَّدٌ اِلَّا رَسُوْلٌ ۚ قَدْ خَلَتْ مِنْ قَبْلِهِ الرُّسُلُ ۭ اَفَاۡىِٕنْ مَّاتَ اَوْ قُتِلَ انْقَلَبْتُمْ
عَلٰٓى اَعْقَابِكُمْ ۭ وَمَنْ يَّنْقَلِبْ عَلٰي عَقِبَيْهِ فَلَنْ يَّضُرَّ اللّٰهَ شَيْـًٔا ۭ وَسَيَجْزِي اللّٰهُ الشّٰكِرِيْنَ ۝
وَمَا كَانَ لِنَفْسٍ اَنْ تَمُوْتَ اِلَّا بِاِذْنِ اللّٰهِ كِتٰبًا مُّؤَجَّلًا ۭ وَمَنْ يُّرِدْ ثَوَابَ الدُّنْيَا نُؤْتِهٖ مِنْهَا ۚ
وَمَنْ يُّرِدْ ثَوَابَ الْاٰخِرَةِ نُؤْتِهٖ مِنْهَا ۭ وَسَنَجْزِي الشّٰكِرِيْنَ ۝

व मा मुहम्मदुन् इल्ला रसूलुन् क़द् ख़लत् मिन् क़ब्लिहिर्रुसुलु,	और मुहम्मद (सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम) तो एक रसूल है, हो चुके उससे पहले

अ-फ़-इम्मा-त औ क़ुतिलन्-क़लब्तुम् अला अअ्क़ाबिकुम्, व मंय्यन्क़लिब् अला अक़िबैहि फ़-लंय्यज़ुर्रल्ला-ह शैअन्, व स-यजूज़िल्लाहुश शाकिरीन (144) व मा का-न लि-नफ़्सिन् अन् तमू-त इल्ला बि-इज़्निल्लाहि किताबम् मुअज्जलन्, व मंय्युरिद् सवाबद्दुन्या नुअ्तिही मिन्हा व मंय्युरिद् सवाबल्-आख़ि-रति नुअ्तिही मिन्हा, व स-नजूज़िश्शाकिरीन (145)	बहुत रसूल, फिर क्या अगर वह मर गया या मारा गया तो तुम फिर जाओगे उल्टे पाँव? और जो कोई फिर जाएगा उल्टे पाँव तो हरगिज़ न बिगाड़ेगा अल्लाह का कुछ, और अल्लाह सवाब देगा शुक्रगुज़ारों को। (144) और कोई मर नहीं सकता बग़ैर अल्लाह के हुक्म के, लिखा हुआ है एक निर्धारित वक़्त, और जो कोई चाहेगा बदला दुनिया का देंगे हम उसको दुनिया ही से, और जो कोई चाहेगा बदला आख़िरत में उसमें से देंगे हम उसको, और हम सवाब देंगे एहसान मानने वालों को। (145)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

और मुहम्मद (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) सिर्फ़ रसूल ही तो हैं (ख़ुदा तो नहीं जिस पर क़त्ल या मौत मुम्किन न हो)। आप से पहले और भी बहुत-से रसूल गुज़र चुके हैं (इसी तरह आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम भी एक रोज़ गुज़र ही जायेंगे) सो अगर आपका इन्तिक़ाल हो जाए या आप शहीद ही हो जाएँ तो क्या तुम लोग (जिहाद या इस्लाम से) उल्टे फिर जाओगे (जैसा कि इस वाक़िए में बाज़े मुसलमान मैदाने जंग से भाग पड़े थे और मुनाफ़िक़ लोग उनको इस्लाम से फिर जाने के लिये उक्सा रहे थे), और जो शख़्स (जिहाद या इस्लाम से) उल्टा फिर भी जाएगा तो ख़ुदा तआला का कोई नुक़सान न करेगा (बल्कि अपना ही कुछ खो देगा), और ख़ुदा तआला जल्द ही (नेक) बदला देगा हक़ पहचानने वाले लोगों को। (जो ऐसे मौक़ों पर अल्लाह तआला के इनामों को याद रखकर उसकी फ़रमाँबरदारी पर क़ायम व मुस्तक़िल रहते हैं, और क़ियामत को मिलना जल्द ही मिलना है, क्योंकि क़ियामत रोज़ाना क़रीब ही हो रही है) और (साथ ही यह कि किसी के मरने से इतना घबराना भी फ़ुज़ूल है, क्योंकि अव्वल तो) किसी शख़्स को मौत आना मुम्किन नहीं ख़ुदा तआला के हुक्म के बग़ैर (चाहे तबई तौर पर चाहे अक़्ली तौर पर, फिर जब ख़ुदा के हुक्म से है तो उस पर राज़ी रहना ज़रूरी है। दूसरे यह कि जिसकी मौत आती भी है तो) इस तरह से कि उसकी तयशुदा मियाद लिखी हुई रहती है (जिसमें आगे-पीछे नहीं हो सकता, बस फिर अरमान और अफ़सोस बिल्कुल बेकार है, वह वक़्त पर ज़रूर होगी, और वक़्त से पहले हरगिज़ न होगी)। और (फिर यह कि इस घबराहट से भागने का आख़िर नतीजा क्या! सिवाय इसके कि दुनिया में और चन्द रोज़ ज़िन्दा रहें, सो ऐसी तदबीर

का असर सुन लो कि) जो शख़्स (अपने आमाल व तदबीरों में) दुनियावी परिणाम चाहता है तो हम उसको दुनिया का हिस्सा (जबकि हमारी मर्ज़ी हो) दे देते हैं (और आख़िरत में उसके लिये कुछ हिस्सा नहीं)। और जो शख़्स (अपने आमाल व तदबीरों में) आख़िरत का नतीजा चाहता है (जैसे जिहाद में इसलिए डटा रहा कि यह तदबीर है आख़िरत के सवाब की) तो हम उसको आख़िरत का (हिस्सा और ज़िम्मा करके) देंगे, और हम बहुत जल्द (नेक) बदला देंगे (ऐसे) हक़ पहचानने वालों को (जो अपने आमाल में आख़िरत की नेमत चाहें)।

मआरिफ़ व मसाईल

ये आयतें भी जंगे-उहुद के वाक़िआत से मुताल्लिक़ हैं, क्योंकि इन वाक़िआत को कई कारणों से ख़ास अहमियत हासिल है, यही वजह है कि क़ुरआने करीम ने-सूरः आले इमरान के चार पाँच रुकूअ़ तक जंगे-उहुद में पेश आने वाली फ़तह व शिकस्त और इन दोनों में जो क़ुदरती हिदायतें छुपी थीं उनका बयान मुसलसल फ़रमाया है।

उक्त आयतों में से पहली आयत में कुछ सहाबा किराम की एक चूक और कोताही पर धमकी भरी चेतावनी देकर एक ऐसे उसूली मसले की तरफ़ हिदायत की गई है कि सोचने वालों को इससे यह भी पता लग जाता है कि इस वक़्ती (अस्थायी) शिकस्त और इसमें नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के ज़ख़्मी होने और हुज़ूरे पाक की वफ़ात की ख़बर फैल जाने की और इस पर कुछ सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम की हिम्मत पस्त हो जाने में यह राज़ भी था कि मुसलमान इस उसूली मसले पर अ़मली तौर पर पुख़्ता हो जायें। वह मसला यह था कि जहाँ इस्लाम के उसूल में इसकी बड़ी अहमियत है कि रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की बड़ाई व मुहब्बत को ईमान का हिस्सा क़रार दिया गया है, इसमें अदना कमज़ोरी को कुफ़्र के बराबर बतलाया गया है, वहीं यह बात भी इतनी ही अहम थी कि कहीं मुसलमान उस रोग का शिकार न हो जायें जिसमें नसारा और ईसाई मुब्तला हो गये थे कि हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम की बड़ाई व मुहब्बत को पूजा और इबादत की हद तक पहुँचा दिया और उनको अल्लाह तआ़ला के साथ ख़ुदाई में हिस्सेदार ठहरा लिया।

जंगे-उहुद की वक़्ती और अस्थायी शिकस्त (हार) के वक़्त जब किसी ने यह मशहूर कर दिया कि नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की वफ़ात हो गई तो सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम पर जो कुछ गुज़री और गुज़रनी चाहिये थी उसका अदना सा अन्दाज़ा करना भी हर शख़्स के लिये आसान नहीं। इसका कुछ अन्दाज़ा वही लगा सकता है जिसको सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम की जाँनिसारी और इश्क़े रसूल का कुछ अन्दाज़ा हो, जिसको यह पूरी तरह मालूम हो कि ये वे हज़रात हैं जिन्होंने हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की मुहब्बत में माल, औलाद, अपनी जानें और सब कुछ गंवा देने को दुनिया की सबसे बड़ी सआ़दत (नेकबख़्ती) समझी और अ़मल से इसका सुबूत दिया है।

रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के इन आ़शिक़ों के कानों में जब यह ख़बर पड़ी

होगी तो उनके होश व हवास का क्या आलम होगा। ख़ास तौर पर जबकि मैदाने जंग गर्म है और फ़तह के बाद शिकस्त का मन्ज़र आँखों के सामने है, मुसलमानों के पाँव उखड़ रहे हैं, उस आलम में वह हस्ती जो सारी कोशिशों का मेहवर (धुरी) और सारी उम्मीदों का प्रतीक और केन्द्र थी, वह भी उनसे रुख़्सत होती है। इसका तबई नतीजा यह था कि सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अन्हुम की एक भारी संख्या हैरान व परेशान होकर मैदाने जंग से हटने लगी। यह मैदाने जंग से हट जाना अगरचे आपातकालीन, सरसरी और वक़्ती हैरानी व परेशानी का नतीजा था, ख़ुदा न करे इस्लाम से फिर जाने का कोई शुब्हा या ख़्याल भी न था, लेकिन हक़ तआला तो अपने रसूल सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के सहाबा को एक ऐसी पाकबाज़ फ़रिश्तों जैसी ख़स्लत वाली जमाअ़त बनाना चाहता है जो दुनिया के लिये अ़मली नमूना बने। इसलिये उनकी मामूली कोताही और चूक भी सख़्त (बड़ी) क़रार दी गईः

नज़दीकाँ रा बेश बुवद् हैरानी

उनके लिये मैदाने जंग छोड़ने पर ऐसा ख़िताब किया गया जैसे इस्लाम छोड़ने पर किया जाता है, और सख़्त नाराज़गी के साथ इस बुनियादी मसले पर तंबीह की गई कि दीन व इबादत अल्लाह के लिये और जिहाद उसी के लिये हैं, जो हमेशा ज़िन्दा और क़ायम है। अगर फ़र्ज़ करो यह ख़बर सही भी होती कि हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की वफ़ात हो गई तो बहरहाल यह तो एक दिन होना ही है, इस पर हिम्मत हार बैठना और दीन का काम छोड़ देना उन हज़रात की शान के लायक़ नहीं। इसलिये इरशाद फ़रमायाः

وَمَا مُحَمَّدٌ اِلَّا رَسُوْلٌ...............الاية

यानी मुहम्मद (सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम) एक रसूल ही तो हैं (ख़ुदा तो नहीं)। आप से पहले भी बहुत से रसूल गुज़र चुके हैं, अगर आपकी वफ़ात हो जाये या आपको शहीद कर दिया जाये तो क्या तुम लोग उल्टे पाँव फिर जाओगे? और जो कोई उल्टे पाँव फिर जायेगा वह अल्लाह का कुछ नहीं बिगाड़ेगा, और अल्लाह तआला सवाब देगा शुक्रगुज़ारों को।

इसमें तंबीह (चेतावनी) फ़रमा दी कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम तो एक न एक दिन इस दुनिया से रुख़्सत होने वाले हैं। आपके बाद भी मुसलमानों को दीन पर साबित क़दम (जमे) रहना है। इससे यह भी मालूम हो गया कि इस वक़्ती शिकस्त के वक़्त हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के ज़ख़्मी होने और वफ़ात पा जाने की ख़बर मशहूर होने में यह क़ुदरती राज़ था कि आपके बाद जो हालात सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम पर पेश आ सकते थे वे आपकी दुनियावी ज़िन्दगी ही में ज़ाहिर कर दिये गये, ताकि उनमें जो ग़लती और चूक हो उसकी इस्लाह (सुधार और निवारण) ख़ुद आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की ज़बाने मुबारक से हो जाये, और आईन्दा जब यह वफ़ात का वाक़िआ सचमुच पेश आये तो रसूले पाक के ये आशिक़ बेक़ाबू न हो जायें। चुनाँचे यही हुआ, आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की वफ़ात के वक़्त जब बड़े-बड़े सहाबा किराम के होश व हवास अपनी जगह न थे तो हज़रत सिद्दीक़े अकबर रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने इसी क़िस्म की क़ुरआनी आयतों की सनद लेकर उनको समझाया और वे

सब संभल गये।

इसके बाद दूसरी आयत में भी हादसों (घटनाओं) और मुसीबतों के वक़्त साबित-क़दम (जमे) रहने की तालीम देने के लिये यह इरशाद फ़रमाया कि हर इनसान की मौत अल्लाह तआ़ला के नज़दीक लिखी हुई है। उसकी तारीख़, दिन और वक़्त तय है, न उससे पहले किसी की मौत आ सकती है न उसके बाद वह ज़िन्दा रह सकता है, फिर किसी की मौत से ऐसे बेख़ुद व परेशान हो जाने के कोई मायने नहीं।

आख़िर में इस पर तंबीह फ़रमाई कि इस हादसे के ज़ाहिरी असबाब (कारणों) में एक सबब यह भी था कि जिन हज़रात को आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने पीछे की तरफ़ पहाड़ी पर चौकसी करने वाला बनाकर बैठाया था, शुरूआती फ़तह के वक़्त आम मुसलमानों को माले ग़नीमत जमा करने में मशग़ूल देखकर उनमें से भी चन्द हज़रात को यह ख़्याल पैदा हो गया कि अब तो फ़तह हो गई, इस जगह ठहरने की ज़रूरत न रही, फिर हम भी माले ग़नीमत जमा करने में क्यों हिस्सा न लें? वे अपनी जगह से हट गये। इसलिये फ़रमायाः

وَمَنْ يُّرِدْ ثَوَابَ الدُّنْيَا نُؤْتِهٖ مِنْهَا وَمَنْ يُّرِدْ ثَوَابَ الْاٰخِرَةِ نُؤْتِهٖ مِنْهَا وَسَنَجْزِى الشّٰكِرِيْنَ۝

यानी जो शख़्स अपने अ़मल से दुनिया का बदला चाहता है हम उसको दुनिया में कुछ हिस्सा दे देते हैं। और जो आख़िरत में सवाब चाहता है तो उसको आख़िरत में सवाब मिलता है और हम जल्द ही शुक्रगुज़ारों को बदला देंगे।

इसमें इशारा फ़रमाया कि माले ग़नीमत (जंग में दुश्मन से हासिल होने वाला माल) जमा करने की फ़िक्र में हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के मुक़र्रर किये हुए काम को छोड़ बैठने में उनसे ग़लती हुई। याद रहे कि वास्तव में माले ग़नीमत जमा करना भी निरी दुनिया तलबी नहीं जो शरई एतिबार से कोई बुरी चीज़ हो, बल्कि माले ग़नीमत जमा करके महफ़ूज़ करना और फिर उसको उसकी सही जगह में ख़र्च करना यह भी जिहाद ही का एक हिस्सा और इबादत है। उन हज़राते सहाबा रज़ियल्लाहु अ़न्हुम का इसमें (ग़नीमत का माल हासिल करने में) शरीक होना सिर्फ़ दुनियावी लालच की वजह से न था, क्योंकि शरई क़ानून की रू से अगर वे उस माल के जमा करने में शरीक न होते तब भी उनको माले ग़नीमत में वह हिस्सा मिलता जो अब मिला, इसलिये यह नहीं कहा जा सकता कि उन हज़रात ने दुनिया के लालच के लिये अपनी जगह को छोड़ा, लेकिन जैसा कि पहली आयत की तफ़सीर में बतलाया गया है कि बड़ों की थोड़ी कोताही और भूल भी बड़ी समझी जाती है, उनके मामूली जुर्म को बड़ा सख़्त जुर्म क़रार देकर नाराज़गी का इज़हार किया जाता है, वही यहाँ भी है कि माले ग़नीमत जमा करने में कुछ न कुछ दुनियावी लाभ का ताल्लुक़ ज़रूर था, और उस ताल्लुक़ का तबई असर दिलों में होना भी असंभव नहीं था, सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम के अख़्लाक़ी मेयार को बुलन्द से बुलन्द करने के लिये उनके इस अ़मल को भी दुनिया के इरादे से ताबीर कर दिया, ताकि दुनिया के लालच का हल्का सा गुबार भी उनके दिलों तक न जा सके।

وَكَأَيِّنْ مِّنْ نَّبِيٍّ قُتِلَ مَعَهُ رِبِّيُّوْنَ كَثِيْرٌ فَمَا وَهَنُوْا لِمَا أَصَابَهُمْ فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ وَمَا ضَعُفُوْا وَمَا اسْتَكَانُوْا ۗ وَاللّٰهُ يُحِبُّ الصّٰبِرِيْنَ ۝ وَمَا كَانَ قَوْلَهُمْ إِلَّآ أَنْ قَالُوْا رَبَّنَا اغْفِرْ لَنَا ذُنُوْبَنَا وَإِسْرَافَنَا فِيْٓ أَمْرِنَا وَثَبِّتْ أَقْدَامَنَا وَانْصُرْنَا عَلَى الْقَوْمِ الْكٰفِرِيْنَ ۝ فَاٰتٰىهُمُ اللّٰهُ ثَوَابَ الدُّنْيَا وَحُسْنَ ثَوَابِ الْاٰخِرَةِ ۗ وَاللّٰهُ يُحِبُّ الْمُحْسِنِيْنَ ۝

ع ۱۵

व क-अय्यिम् मिन् नबिय्यिन् का-त-ल म-अ़हू रिब्बिय्यू-न कसीरुन् फ़मा व-हनू लिमा असाबहुम् फ़ी सबीलिल्लाहि व मा ज़अ़ुफ़ू व मस्तकानू, वल्लाहु युहिब्बुस्-साबिरीन (146) व मा का-न क़ौलहुम् इल्ला अन् क़ालू रब्बनग़्फ़िर् लना ज़ुनूबना व इस्राफ़ना फ़ी अम्रिना व सब्बित् अक़्दामना वन्सुर्ना अ़लल्-क़ौमिल् काफ़िरीन (147) फ़-आताहुमुल्लाहु सवाबद्दुन्या व हुस्-न सवाबिल्-आख़ि-रति, वल्लाहु युहिब्बुल्-मुह्सिनीन (148) ✿

और बहुत नबी हैं जिनके साथ होकर लड़े हैं बहुत ख़ुदा के तालिब, फिर न हारे हैं कुछ तकलीफ़ पहुँचने से अल्लाह की राह में और न सुस्त हुए हैं और न दब गये हैं, और अल्लाह तआ़ला मुहब्बत करता है साबित- क़दम (जमे और डटे) रहने वालों से। (146) और कुछ नहीं बोले मगर यही कहा- ऐ रब हमारे! बख़्श हमारे गुनाह और जो हमसे ज़्यादती हुई हमारे काम में, और साबित (जमाये) रख क़दम हमारे, और मदद दे हमको काफ़िरों की क़ौम पर। (147) फिर दिया अल्लाह ने उनको सवाब दुनिया का और ख़ूब सवाब आख़िरत का, और अल्लाह मुहब्बत रखता है नेक काम करने वालों से। (148) ✿

इन आयतों के मज़मून का पीछे से ताल्लुक़

पहले गुज़री आयतों में जंगे-उहुद में पेश आने वाली कुछ कोताहियों (भूल-चूकों) पर मुसलमानों को तंबीह और मलामत थी। इन आयतों में भी इसी से संबन्धित पिछली उम्मतों के कुछ हालात व वाक़िआ़त की तरफ़ इशारा करके बताया गया है कि वे किस तरह मैदाने जंग में साबित-क़दम और इस्तिक़लाल के साथ (यानी दिली जमाव और हिम्मत से जमे) रहे, तुम्हें भी ऐसा ही करना चाहिये।

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

और बहुत नबी हो चुके हैं जिनके साथ बहुत-बहुत अल्लाह वाले (काफ़िरों के साथ) लड़े हैं, सो न तो उन्होंने उन मुसीबतों की वजह से हिम्मत हारी जो उन पर अल्लाह की राह में आईं और न उनके (दिल या बदन) का ज़ोर घटा, और न वे (दुश्मन के सामने) दबे (कि उनसे आजिज़ी और ख़ुशामद की बातें करने लगें), और अल्लाह तआ़ला को ऐसे मुस्तक़िल-मिज़ाजों (बहादुरों) से मुहब्बत है। और (कामों में तो उनसे क्या ग़लती और ख़ता होती) उनकी ज़बान से भी तो इसके सिवा और कुछ नहीं निकला कि उन्होंने (अल्लाह तआ़ला की बारगाह में) अ़र्ज़ किया कि ऐ हमारे परवर्दिगार! हमारे गुनाहों को और हमारे कामों में हमारे हद से आगे निकल जाने को बख़्श दीजिए और हमको (काफ़िरों के मुक़ाबले में) साबित-क़दम (जमाये) रखिये, और हमको काफ़िर लोगों पर ग़ालिब कीजिए। तो (इस जमाव, हिम्मत और दुआ़ की बरकत से) उनको अल्लाह तआ़ला ने दुनिया का भी बदला दिया (यानी कामयाबी व फ़तह) और आख़िरत का भी उम्दा बदला दिया (यानी अपनी रज़ा और जन्नत), और अल्लाह तआ़ला को ऐसे नेकी करने वालों से मुहब्बत है।

मआ़रिफ़ व मसाईल

ऊपर ज़िक्र हुई आयतों में पहले अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम के साथ जिहाद में शरीक अल्लाह वालों की जंग में साबित-क़दमी (बहादुरी व जमाव) और मुसीबतों व सख़्तियों से न घबराना, न कमज़ोर होना बयान फ़रमाने के बाद उनकी एक और अ़ज़ीमुश्शान सिफ़त (गुण और ख़ूबी) का बयान भी इस तरह फ़रमाया है कि वे अपनी इस बेमिसाल क़ुरबानी के साथ भी अल्लाह तआ़ला की बारगाह में चन्द दुआ़यें करते रहते थे:

अव्वल यह कि हमारे पिछले गुनाह माफ़ फ़रमा दे। **दूसरे** यह कि मौजूदा जिहाद के अ़मल में हम से जो कोताही हो गई हो उसको माफ़ फ़रमा दे। **तीसरे** यह कि हमें साबित-क़दमी (अपने दीन व मिशन) पर क़ायम रखे। **चौथे** यह कि हमें दुश्मनों पर ग़ालिब करे।

इन दुआ़ओं के अन्दर मुसलमानों के लिये चन्द अहम हिदायतें हैं:

अपने किसी नेक अ़मल पर नाज़ नहीं करना चाहिये बल्कि हर हाल में अल्लाह से मग़फ़िरत और नेक अ़मल पर क़ायम रहने की दुआ़ करते रहना चाहिये

अव्वल यह कि हक़ीक़त पहचानने वाले मोमिन का काम यह है कि वह कितना ही बड़ा नेक काम और कितनी ही मेहनत व कोशिश अल्लाह की राह में कर रहा हो, उसको यह हक़ नहीं कि अपने अ़मल पर नाज़ व फ़ख़्र करे, क्योंकि दर हक़ीक़त उसका अ़मल भी अल्लाह तआ़ला ही के फ़ज़्ल व करम का नतीजा है उसके बग़ैर कोई नेक अ़मल हो ही नहीं सकता।

हदीस में मज़कूर है:

فَوَاللّٰهِ لَوْلَا اللّٰهُ مَا اهْتَدَيْنَا وَلَا تَصَدَّقْنَا وَلَا صَلَّيْنَا.

"यानी अगर अल्लाह का फ़ज़्ल व करम न होता तो हमें न सीधे-रास्ते की हिदायत मिलती और न हम से ज़कात व नमाज़ अदा हो सकती।"

इसके अ़लावा जो नेक अ़मल कोई इनसान करता है वह कितना ही दुरुस्त और सही करके करे लेकिन अल्लाह तआ़ला की शाने जलाली के मुताबिक़ कर लेना उसके बस में नहीं, इसलिये उसके हक़ की अदायेगी में कोताही से बचा नहीं जा सकता, इससे अ़मल की हालत में भी इस्तिग़फ़ार की ज़रूरत है।

नोटः इसी लिये नमाज़ में भी सलाम फैरने के बाद इस्तिग़फ़ार किया जाता है जिससे इस बात का इज़हार मक़सूद होता है कि या अल्लाह हम आपकी शायाने शान इस इबादत को अदा नहीं कर सके हैं, इसलिये आपकी बारगाह में इसके सही अदा न कर पाने के लिये माफ़ी की दरख़्वास्त करते हैं। **मुहम्मद इमरान क़ासमी बिज्ञानवी**

और यह भी किसी को इत्मीनान नहीं हो सकता कि जो नेक अ़मल वह इस वक़्त कर रहा है आगे भी उसकी तौफ़ीक़ होगी, इसलिये मौजूदा अ़मल में कोताही पर शर्मिन्दगी और आईन्दा के लिये उस पर क़ायम रहने की दुआ़ मोमिन का वज़ीफ़ा (आ़दत और अ़मल) होना चाहिये।

ज़िक्र हुई दुआ़ओं में सबसे पहले अपने पिछले गुनाहों की माफ़ी की दरख़्वास्त करने में इस तरफ़ इशारा है कि दुनिया में इनसान को जो रंज व ग़म या कोई तकलीफ़ या दुश्मन के मुक़ाबले में शिकस्त पेश आती है वह अक्सर उसके पहले गुनाहों का असर होता है, जिसका इलाज इस्तिग़फ़ार व तौबा है। मौलाना रूमी रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने फ़रमायाः

ग़म चू बीनी ज़ूद इस्तिग़फ़ार कुन
ग़म ब-अमरे ख़ालिक़ आमद कार कुन

यानी जब तू किसी मुसीबत व परेशानी को देखे तो इस्तिग़फ़ार कर (अल्लाह से माफ़ी चाह), इसलिये कि ग़म उसी मालिक की मर्ज़ी से आया है तो तू उसी की तरफ़ रुजू हो।

मुहम्मद इमरान क़ासमी बिज्ञानवी

आख़िरी आयत में अल्लाह वालों को दुनिया व आख़िरत दोनों में अच्छा बदला देने का ज़िक्र है कि दुनिया में भी अल्लाह तआ़ला अन्जामकार दुश्मनों पर ग़ालिब और अपने मक़सद में कामयाब फ़रमाते हैं, फिर आख़िरत का बदला तो असल बदला और हमेशा की राहत है, जिसको कभी फ़ना नहीं। इसकी तरफ़ इशारा करने के लिये आख़िरत के सवाब के साथ लफ़्ज़ हुस्न बढ़ा दिया गया 'व हुस्-न सवाबिल् आख़ि-रति' फ़रमाया।

يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْٓا اِنْ تُطِيْعُوا الَّذِيْنَ كَفَرُوْا يَرُدُّوْكُمْ عَلٰٓى اَعْقَابِكُمْ فَتَنْقَلِبُوْا خٰسِرِيْنَ ۝ بَلِ اللّٰهُ مَوْلٰكُمْ ۚ وَهُوَ خَيْرُ النّٰصِرِيْنَ ۝

या अय्युहल्लज़ी-न आमनू इन् तुतीअुल्लज़ी-न क-फ़रू यरुद्दूकुम् अला अअ्क़ाबिकुम् फ़-तन्क़लिबू ख़ासिरीन (149) बलिल्लाहु मौलाकुम् व हु-व ख़ैरुन्-नासिरीन (150)	ऐ ईमान वालो! अगर तुम कहा मानोगे काफ़िरों का तो वे तुमको फेर देंगे उल्टे पाँव, फिर जा पड़ोगे तुम नुक़सान में। (149) बल्कि अल्लाह तुम्हारा मददगार है और उसकी मदद सब से बेहतर है। (150)

इन आयतों के मज़मून का ऊपर से ताल्लुक़

जंगे-उहुद में मुसलमानों की वक़्ती शिकस्त और रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की वफ़ात की अफ़वाह गर्म होने पर मुनाफ़िक़ों ने जब जंग का पाँसा पलटते हुए देखा तो शरारत का मौक़ा मिल गया। मुसलमानों से कहने लगे कि जब आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ही न रहे तो हम अपना ही दीन क्यों न इख़्तियार कर लें, जिससे सारे झगड़े मिट जायें। इससे मुनाफ़िक़ों की ख़बासत और मुसलमानों का बुरा चाहने वाले दुश्मन होना ज़ाहिर है, इसलिये उक्त आयत में मुसलमानों को हिदायत की गई है कि उन दुश्मनों की बात पर कान न लगायें, उनको अपने किसी मश्विरे में शरीक न करें, न उनके किसी मश्विरे को मानें। तो जैसे पिछली आयतों में अल्लाह वालों की पैरवी करने की हिदायत थी इसमें मुनाफ़िक़ों और इस्लाम के मुख़ालिफ़ों के मश्विरे पर अ़मल न करने और उनसे बचते रहने की हिदायत है। ख़ुलासा-ए-तफ़सीर यह है:

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

ऐ ईमान वालो! अगर तुम काफ़िरों का कहना मानोगे तो वे तुमको (कुफ़्र की तरफ़) उल्टा फेर देंगे (मतलब यह है कि उन लोगों का असल मक़सद मुसलमानों को उनके दीन से हटाना और बदगुमान करना है, जिसको खुल्लम-खुल्ला भी कह देते हैं, और कभी साफ़ नहीं कहते मगर अन्दाज़ ऐसा अपनाते हैं कि धीरे-धीरे इनके दिल से इस्लाम की बड़ाई व मुहब्बत कम होती चली जाये) फिर तुम (हर तरह) नाकाम हो जाओगे। (ख़ुलासा यह कि वे तुम्हारे दोस्त हरगिज़ नहीं चाहे इज़हार दोस्ती का करें) बल्कि अल्लाह तआ़ला तुम्हारा दोस्त है, और वह सबसे बेहतर मदद करने वाला है (इसलिए मुसलमानों को चाहिए कि सिर्फ़ अल्लाह तआ़ला पर भरोसा करें, उसी की मदद पर भरोसा करें, मुख़ालिफ़ लोग अगर तुम्हारी नुसरत व इमदाद की कुछ तदबीरें भी बतलायें तो अल्लाह व रसूल के अहकाम के ख़िलाफ़ उन पर अ़मल न करो)।

سَنُلْقِىْ فِىْ قُلُوْبِ الَّذِيْنَ كَفَرُوا الرُّعْبَ بِمَآ اَشْرَكُوْا بِاللّٰهِ

مَا لَمْ يُنَزِّلْ بِهٖ سُلْطٰنًا ۚ وَمَاْوٰىهُمُ النَّارُ ۗ وَبِئْسَ مَثْوَى الظّٰلِمِيْنَ ﴿١٥١﴾ وَلَقَدْ صَدَقَكُمُ اللّٰهُ

وَعْدَهٗٓ اِذْ تَحُسُّوْنَهُمْ بِاِذْنِهٖ ۚ حَتّٰٓى اِذَا فَشِلْتُمْ وَ تَنَازَعْتُمْ فِى الْاَمْرِ وَ عَصَيْتُمْ مِّنْ بَعْدِ مَآ اَرٰىكُمْ مَّا تُحِبُّوْنَ ۭ مِنْكُمْ مَّنْ يُّرِيْدُ الدُّنْيَا وَ مِنْكُمْ مَّنْ يُّرِيْدُ الْاٰخِرَةَ ۚ ثُمَّ صَرَفَكُمْ عَنْهُمْ لِيَبْتَلِيَكُمْ ۚ وَلَقَدْ عَفَا عَنْكُمْ ۭ وَاللّٰهُ ذُوْ فَضْلٍ عَلَى الْمُؤْمِنِيْنَ ۝

सनुल्क़ी फ़ी क़ुलूबिल्लज़ी-न क-फ़रुर्रुअ्-ब बिमा अशरकू बिल्लाहि मा लम् युनज़्ज़िल् बिही सुल्तानन् व मअ्वाहुमुन्नारु, व बिअ्-स मस्वज़्ज़ालिमीन (151) व ल-क़द् स-द-क़कुमुल्लाहु वअ्दहू इज़् तहुस्सूनहुम् बि-इज़्निही हत्ता इज़ा फ़शिल्तुम् व तनाज़अ्तुम् फ़िल्अम्रि व अ़सैतुम् मिम्- बअ्दि मा अराकुम् मा तुहिब्बू-न, मिन्कुम् मंय्युरीदुद्दुन्या व मिन्कुम् मंय्युरीदुल्-आख़ि-र-त सुम्-म स-र-फ़कुम् अ़न्हुम् लि-यब्तलि-यकुम् व ल-क़द् अ़फ़ा अ़न्कुम्, वल्लाहु ज़ू फ़ज़्लिन् अ़लल् मुअ्मिनीन (152)

अब डालेंगे हम काफ़िरों के दिल में हैबत (रौब और ख़ौफ़) इस वास्ते कि उन्होंने शरीक ठहराया अल्लाह का जिसकी उसने कोई सनद नहीं उतारी, और उनका ठिकाना दोज़ख़ है और वह बुरा ठिकाना है ज़ालिमों का। (151) और अल्लाह तो सच्चा कर चुका तुमसे अपना वादा जब तुम क़त्ल करने लगे उनको उसके हुक्म से यहाँ तक कि जब तुमने नामर्दी (कमज़ोरी और बुज़दिली) की और काम में झगड़ा डाला और नाफ़रमानी की बाद उसके कि तुमको दिखा चुका तुम्हारी ख़ुशी की चीज़, कोई तुम में से चाहता था दुनिया और कोई तुम में से चाहता था आख़िरत, फिर तुमको उलट दिया उन पर से ताकि तुमको आज़माये और वह तो तुमको माफ़ कर चुका, और अल्लाह का फ़ज़्ल है ईमान वालों पर। (152)

इन आयतों का पीछे के मज़मून से जोड़

पहले गुज़री आयतों में अल्लाह तआ़ला का नासिर व मददगार होना ज़िक्र हुआ था, इन आयतों में अल्लाह की मदद के कुछ वाक़िआत का ज़िक्र है।

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

हम अभी डाले देते हैं रौब (डर और घबराहट) काफ़िरों के दिलों में, इसके सबब कि उन्होंने अल्लाह तआ़ला का शरीक एक ऐसी चीज़ को ठहराया है जिस (के क़ाबिले शिर्कत होने) पर

कोई दलील अल्लाह तआ़ला ने नाज़िल नहीं फ़रमाई (न लफ़्ज़ों में, न स्पष्ट तौर पर और न मायनों में, यानी ऐसी दलील जिसका शरई तौर पर एतिबार हो। इसमें तमाम अ़क़्ली क़तई दलीलें दाख़िल हो गये। मतलब यह है कि यूँ तो हर जाहिल अपनी कोई दलील पेश किया ही करता है मगर कोई क़ाबिले एतिबार दलील उनके पास नहीं) और उनकी जगह जहन्नम है, और वह बुरी जगह है ज़ालिमों की।

(इस आयत में काफ़िरों पर रौब तारी करने का जो वादा है उसका ज़हूर इस तरह हुआ कि अव्वल तो बावजूद इसके कि शिकस्त मुसलमानों को रही थी, अ़रब के मुश्रिक बिना किसी ज़ाहिरी सबब के मक्का की तरफ़ लौट गये। फिर जब कुछ रास्ता तय कर चुके तो अपनी बेवक़ूफ़ी पर अफ़सोस करने लगे कि जब मुसलमान दम तोड़ चुके थे तो इस वक़्त वहाँ से वापस आना कोई अ़क़्लमन्दी नहीं थी, और फिर मदीना की तरफ़ वापसी का कुछ इरादा किया तो अल्लाह ने उनके दिलों पर ऐसा रौब डाला कि मदीना की तरफ़ बढ़ने की हिम्मत न हुई। किसी राह चलते गाँव वाले से कह दिया कि हम तुझे इतना माल देंगे, तू मदीना जाकर मुसलमानों को डरा दो कि वे फिर लौटकर आ रहे हैं। यहाँ यह सारा वाक़िआ़ आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को वही के ज़रिये मालूम हो गया तो रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम उनका पीछा करने के लिये 'हमराउल-असद' के मक़ाम तक पहुँचे, मगर वे भाग चुके थे। यह आयत इसी वाक़िए के मुताल्लिक़ नाज़िल हुई। अगली आयतों में जंगे-उहुद के अन्दर मुसलमानों की वक़्ती शिकस्त और मग़लूब हो जाने के असबाब का बयान है। इरशाद है)

और यक़ीनन अल्लाह तआ़ला ने तुम से अपने (मदद के) वायदे को सच्चा कर दिखाया, जिस वक़्त कि तुम (जंग की शुरूआ़त में) उन काफ़िरों को अल्लाह के हुक्म से क़त्ल कर रहे थे (और यह तुम्हारा ग़लबा आहिस्ता-आहिस्ता बढ़ाता गया) यहाँ तक कि तुम ख़ुद ही (राय में) कमज़ोर हो गये (इस तरह कि जो तजवीज़ रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने पीछे के मोर्चे पर पचास सिपाही और एक अफ़सर को बैठाकर फ़रमाई थी, उनमें से कुछ को ग़लत-फ़हमी हो गई कि मुसलमान फ़तह पा चुके हैं, अब यहाँ बैठे रहने की ज़रूरत ख़त्म हो गई, इसलिए हमें भी दुश्मन के मुक़ाबले में शरीक हो जाना चाहिए और आपस में (रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के) हुक्म में मतभेद करने लगे (कि कुछ तो उसी जगह जमे रहने की हिदायत पर क़ायम रहे मगर कुछ दूसरों ने दूसरी तजवीज़ पेश कर दी, इनकार व मलामत इसी दूसरी तजवीज़ पर है कि) और तुम (रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के) कहने पर न चले इसके बाद कि तुमको तुम्हारी दिल-पसन्द बात (आँखों से) दिखला दी थी (यानी मुसलमानों का ग़लबा दिखलाया था और उस वक़्त तुम्हारी यह हालत थी कि) तुममें से बाज़े तो वे शख़्स थे जो दुनिया (को लेना) चाहते थे (यानी काफ़िरों का पीछा करके माले ग़नीमत जमा करना चाहते थे) और बाज़े तुम में से वे थे जो (सिर्फ़) आख़िरत के तलबगार थे।

(अब चूँकि कुछ हज़रात से राय की कमज़ोरी और रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के हुक्म के ख़िलाफ़ दूसरी तजवीज़ पेश करना और आपके कहने पर न चलना और तलबे

दुनिया जैसे कुछ उमूर सर्ज़द हो गये तो अल्लाह तआ़ला ने आईन्दा के लिये अपनी मदद को बन्द कर लिया) फिर तुमको उन (काफ़िरों) (पर ग़ालिब आने) से हटा दिया (इसके बावजूद कि यह वक़्ती शिकस्त तुम्हारे अ़मल का नतीजा थी मगर फिर भी अल्लाह की तरफ़ से यह अ़मल बतौर सज़ा के नहीं बल्कि इस मस्लेहत से हुआ) ताकि (ख़ुदा तआ़ला) तुम्हारी आज़माईश (ईमान की) फ़रमाये (चुनाँचे उस वक़्त मुनाफ़िक़ों का निफ़ाक़ खुल गया और सच्चों की क़द्र बढ़ गई) और यक़ीन समझो कि (अल्लाह तआ़ला ने) तुमको माफ़ कर दिया (अब आख़िरत में पकड़ न होगी) और अल्लाह तआ़ला बड़े फ़ज़्ल वाले हैं मुसलमानों (के हाल) पर।

मआ़रिफ़ व मसाईल

अल्लाह तआ़ला के नज़दीक सहाबा किराम का बुलन्द मक़ाम और उसकी रियायतें

यह ज़ाहिर है कि जंगे-उहुद में कुछ सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम की राय की ग़लती हुई थी जिस पर पहले बयान हुई अनेक आयतों में तंबीह और आईन्दा के लिये हालात के सुधार की हिदायतों का सिलसिला चला आता है मगर इस नाराज़गी और तंबीहात (चेतावनियों) के अन्दर भी सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम के साथ हक़ तआ़ला शानुहू की इनायतें देखने के क़ाबिल हैं। अव्वल तो 'लियब्तलियकुम' (ताकि तुम्हारी आज़माईश करे) फ़रमाकर यह ज़ाहिर फ़रमा दिया कि वक़्ती और अस्थायी शिकस्त की जो सूरत पेश आई यह सज़ा के तौर पर नहीं बल्कि आज़माईश के लिये है। फिर साफ़ लफ़्ज़ों में ख़ता की माफ़ी का ऐलान फ़रमा दिया 'व लक़द् अ़फ़ा अ़न्कुम' (यानी अल्लाह तआ़ला तुमको माफ़ कर चुका)।

कुछ सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम के दुनिया के इरादे का मतलब

मज़कूरा आयतों में इरशाद हुआ है कि उस वक़्त सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम के दो गिरोह हो गये थे- कुछ दुनिया चाहते थे, कुछ सिर्फ़ आख़िरत के तलबगार थे।

यहाँ यह बात क़ाबिले ग़ौर है कि जिन हज़रात के बारे में तालिबे दुनिया होने का ज़िक्र है यह उनके किस अ़मल की बिना पर है। ज़ाहिर है माले ग़नीमत जमा करने के इरादे को तलबे दुनिया से ताबीर किया गया है। अब ग़ौर करो कि अगर ये हज़रात अपने मोर्चे पर जमे रहते और माले ग़नीमत जमा करने में शरीक न होते तो क्या उनके ग़नीमत के हिस्से में कोई कमी आ जाती? और शरीक हो गये तो क्या कोई ज़्यादा हिस्सा मिल गया। क़ुरआन व हदीस से साबित हुए ग़नीमत के क़ानून को जो शख़्स जानता है उसको इसमें कोई शुब्हा नहीं हो सकता कि माले ग़नीमत में से जो हिस्सा उनको मिलेगा उसमें किसी हाल में कमी-बेशी का कोई फ़र्क़

न था। माले ग़नीमत जमा करने की सूरत में भी उनका हिस्सा वही रहेगा जो अपनी जगह मोर्चे पर जमे रहने के वक़्त मिलता।

तो अब यह ज़ाहिर है कि उनका यह अ़मल ख़ालिस दुनिया तलब करने वाला तो हो नहीं सकता बल्कि मुजाहिदीन के काम में शिर्कत है, हाँ तबई तौर पर उस वक़्त माले ग़नीमत का ख़्याल दिल में आ जाना कोई दूर की बात नहीं, मगर हक़ तआ़ला अपने रसूल सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के साथियों के दिलों को इससे भी पाक व साफ़ देखना चाहते हैं कि माल का तसव्वुर (ख़्याल) ही क्यों आये। इसलिये इस तसव्वुर को दुनिया की तलब से ताबीर करके नापसन्दीदगी का इज़हार फ़रमा दिया। वल्लाहु आलम

إِذْ تُصْعِدُونَ وَلَا تَلْوُونَ

عَلَىٰ أَحَدٍ وَالرَّسُولُ يَدْعُوكُمْ فِي أُخْرَاكُمْ فَأَثَابَكُمْ غَمًّا بِغَمٍّ لِكَيْلَا تَحْزَنُوا عَلَىٰ مَا فَاتَكُمْ
وَلَا مَا أَصَابَكُمْ ۗ وَاللَّهُ خَبِيرٌ بِمَا تَعْمَلُونَ ۝ ثُمَّ أَنْزَلَ عَلَيْكُمْ مِنْ بَعْدِ الْغَمِّ أَمَنَةً نُعَاسًا
يَغْشَىٰ طَائِفَةً مِنْكُمْ ۖ وَطَائِفَةٌ قَدْ أَهَمَّتْهُمْ أَنْفُسُهُمْ يَظُنُّونَ بِاللَّهِ غَيْرَ الْحَقِّ ظَنَّ الْجَاهِلِيَّةِ ۖ
يَقُولُونَ هَلْ لَنَا مِنَ الْأَمْرِ مِنْ شَيْءٍ ۗ قُلْ إِنَّ الْأَمْرَ كُلَّهُ لِلَّهِ ۗ يُخْفُونَ فِي أَنْفُسِهِمْ مَا لَا
يُبْدُونَ لَكَ ۖ يَقُولُونَ لَوْ كَانَ لَنَا مِنَ الْأَمْرِ شَيْءٌ مَا قُتِلْنَا هَاهُنَا ۗ قُلْ لَوْ كُنْتُمْ فِي بُيُوتِكُمْ
لَبَرَزَ الَّذِينَ كُتِبَ عَلَيْهِمُ الْقَتْلُ إِلَىٰ مَضَاجِعِهِمْ ۖ وَلِيَبْتَلِيَ اللَّهُ مَا فِي صُدُورِكُمْ وَلِيُمَحِّصَ مَا
فِي قُلُوبِكُمْ ۗ وَاللَّهُ عَلِيمٌ بِذَاتِ الصُّدُورِ ۝ إِنَّ الَّذِينَ تَوَلَّوْا مِنْكُمْ يَوْمَ الْتَقَى الْجَمْعَانِ ۙ
إِنَّمَا اسْتَزَلَّهُمُ الشَّيْطَانُ بِبَعْضِ مَا كَسَبُوا ۖ وَلَقَدْ عَفَا اللَّهُ عَنْهُمْ ۗ إِنَّ اللَّهَ غَفُورٌ حَلِيمٌ ۝

इज़् तुस्अिदू-न व ला तल्वू-न अ़ला अ-हदिंव्-वर्रसूलु यद्अूकुम् फ़ी उख़्राकुम् फ़-असाबकुम् ग़म्मम्-बिग़म्मिल् लिकैला तह्ज़नू अ़ला मा फ़ातकुम् व ला मा असाबकुम, वल्लाहु ख़बीरुम् बिमा तअ्मलून (153) सुम्-म अन्ज़-ल अ़लैकुम् मिम्-बअ्दिल्-ग़म्मि अ-म-नतन्-	तुम चढ़े चले जाते थे और पीछे फिरकर न देखते थे किसी को, और रसूल पुकारता था तुमको तुम्हारे पीछे से, फिर पहुँचा तुमको ग़म बदले में ग़म के ताकि तुम ग़म न किया करो उस पर जो हाथ से निकल जाये और न उस पर कि जो कुछ पेश आ जाये, और अल्लाह को ख़बर है तुम्हारे काम की। (152) फिर तुम पर उतारा तंगी के बाद अमन को जो ऊँघ थी कि ढाँक लिया उस ऊँघ ने

-नुआसंय्यग्शा ता-इ-फ़तम् मिन्कुम् व ता-इ-फ़तुन् क़द् अहम्मत्हुम् अन्फ़ुसुहुम् यज़ुन्नू-न बिल्लाहि ग़ैरल्-हक़्क़ि ज़न्नल्-जाहिलिय्यति, यक़ूलू-न हल्-लना मिनल्-अम्रि मिन् शैइन्, क़ुल् इन्नल्-अम्-र कुल्लहू लिल्लाहि, युख़्फ़ू-न फ़ी अन्फ़ुसिहिम् मा ला युब्दू-न ल-क, यक़ूलू-न लौ का-न लना मिनल्-अम्रि शैउम् मा क़ुतिल्ना हाहुना, क़ुल् लौ कुन्तुम् फ़ी बुयूतिकुम् ल-ब-रज़ल्लज़ी-न कुति-ब अ़लैहिमुल्क़त्लु इला मज़ाजिअ़िहिम् व लि-यब्तलियल्लाहु मा फ़ी सुदूरिकुम् व लियु-मह्हि-स मा फ़ी क़ुलूबिकुम्, वल्लाहु अ़लीमुम् बिज़ातिस्सुदूर (154) इन्नल्लज़ी-न तवल्लौ मिन्कुम् यौमल्-तक़ल् जम्आ़नि इन्नमस्तज़ल्लहुमुश्शैतानु बि-बअ़्ज़ि मा क-सबू व ल-क़द् अ़फ़ल्लाहु अ़न्हुम्, इन्नल्ला-ह ग़फ़ूरुन् हलीम (155) ✿	बाज़ों को तुम में से और बाज़ों को फ़िक्र पड़ रहा था अपनी जान का, ख़्याल करते थे अल्लाह पर झूठे ख़्याल, जाहिलों जैसे, कहते थे- कुछ भी काम है हमारे हाथ में? तू कह सब काम है अल्लाह के हाथ, वे अपने जी में छुपाते हैं जो तुझसे ज़ाहिर नहीं करते। कहते हैं अगर कुछ भी काम होता हमारे हाथ तो हम मारे न जाते इस जगह, तू कह अगर तुम होते अपने घरों में तो लाज़िमी तौर पर बाहर निकलते जिन पर लिख दिया था मारा जाना अपने पड़ाव पर, और अल्लाह को आज़माना था जो कुछ तुम्हारे जी में है और साफ़ करना था उसका जो तुम्हारे दिल में है, और अल्लाह जानता है दिलों के भेद। (154) जो लोग तुममें से हट गये जिस दिन लड़ीं दो फ़ौजें, सो उनको बहका दिया शैतान ने उनके गुनाह की शामत (नहूसत) से, और उनको बख़्श चुका अल्लाह, अल्लाह बख़्शने वाला है बरदाश्त करने वाला। (155) ✿

इन आयतों के मज़मून का पीछे से ताल्लुक़

ये आयतें भी जंगे-उहुद के बयान हुए वाक़िए से संबन्धित हैं। पहली आयत में इस वाक़िए पर सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम के रंज व ग़म का ज़िक्र है और दूसरी बड़ी आयत में उस ग़म के दूर करने का बयान है। तीसरी आयत में दोबारा फिर इसका इज़हार है कि उसमें जो हार की सूरत पेश आई वह भी कोई सज़ा नहीं, बल्कि सच्चे मोमिनों और मुनाफ़िक़ों में फ़र्क़ व

अ़लैहदगी पैदा करने के लिये एक आज़माईश थी, और फिर दोबारा सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम की ख़ता व चूक की माफ़ी का ऐलान है।

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

(वह वक़्त याद करो) जबकि तुम (भागते हुए जंगल को) चढ़े चले जाते थे और किसी को मुड़कर भी तो न देखते थे। और रसूल (सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम) तुम्हारे पीछे की ओर से तुमको पुकार रहे थे (कि इधर आओ, मगर तुमने सुना ही नहीं) सो ख़ुदा तआ़ला ने उसके बदले में ग़म दिया (तुम्हारे) ग़म देने के सबब (रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को), ताकि (उस सज़ा और मुसीबत से तुममें पुख़्तगी पैदा हो जाये जिससे फिर) तुम ग़मज़दा न हुआ करो, न उस चीज़ पर जो तुम्हारे हाथ से निकल जाए और न उसपर जो तुम पर मुसीबत पड़े, और अल्लाह तआ़ला सब ख़बर रखते हैं तुम्हारे सब कामों की (इसलिए तुम जैसा काम करते हो उसके मुनासिब नतीजा व बदला तजवीज़ फ़रमाते हैं। आगे ग़म को दूर करने का बयान है) फिर अल्लाह तआ़ला ने उस ग़म के बाद तुम पर चैन (और राहत) भेज दी, यानी ऊँघ (जबकि काफ़िर लोग मैदान से वापस हो गये उस वक़्त ग़ैब से मुसलमानों पर ऊँघ ग़ालिब हुई जिससे सब ग़म दूर हो गया) कि तुममें से एक जमाअ़त (यानी मुसलमानों) पर तो उसका ग़लबा हो रहा था और एक जमाअ़त वह थी (यानी मुनाफ़िक़ों की) कि उनको अपनी जान ही की फ़िक्र पड़ रही थी (कि देखिये यहाँ से बचकर भी जाते हैं)। वे लोग अल्लाह तआ़ला के साथ हक़ीक़त के ख़िलाफ़ गुमान कर रहे थे जो कि ख़ालिस बेवक़ूफ़ी का ख़्याल था। (वह ख़्याल आगे उनके क़ौल से और उसका बेवक़ूफ़ी व जहालत होना उसके जवाब से मालूम होता है। उनका क़ौल यह था कि) वे यूँ कह रहे थे- क्या हमारा कुछ इख़्तियार चलता है? (मतलब यह था कि हमारी राय किसी ने न सुनी जो जंग से पहले हमने दी थी, ख़्वाह-म-ख़्वाह सब को मुसीबत में फंसा दिया) आप फ़रमा दीजिए कि इख़्तियार तो सब अल्लाह ही का (चलता) है। (मतलब यह है कि अगर तुम्हारी राय पर अ़मल भी होता तब भी अल्लाह की मर्ज़ी व तक़दीर ग़ालिब रहती और जो मुसीबत आने वाली थी आकर रहती। चुनाँचे उनके क़ौल और उसके जवाब का मतलब आगे तफ़सील के साथ आता है) वे लोग अपने दिलों में ऐसी बात छुपाकर रखते हैं जिसको आपके सामने (खोलकर) ज़ाहिर नहीं करते (क्योंकि ज़ाहिर में उनके इस क़ौल का कि हमारा क्या इख़्तियार है, यह मतलब समझा जा सकता है कि अल्लाह की तक़दीर के सामने बन्दे की तदबीर नहीं चलती, जो कि ऐन ईमान की बात है, और अल्लाह तआ़ला की तरफ़ से इसका जो बारीक जवाब दिया गया उसमें इस मायने की तस्दीक़ भी है कि वाक़ई इख़्तियार अल्लाह ही का ग़ालिब है, मगर दर हक़ीक़त उनका मतलब इस क़ौल से यह नहीं था बल्कि वे यह बात इस मायने से) कहते हैं कि अगर हमारा कुछ इख़्तियार चलता (यानी हमारी राय पर अ़मल होता) तो हम (में से जो लोग यहाँ क़त्ल हुए वे) यहाँ क़त्ल न किए जाते (जिसका हासिल यह है कि तक़दीर कोई चीज़ नहीं इसीलिए आगे उनके इस क़ौल का झूठा और ग़लत होना इस तरह बयान किया गया

कि) आप फ़रमा दीजिए कि तुम लोग घरों में भी रहते तब भी जिन लोगों के लिए क़त्ल होना तय हो चुका है वे लोग उन जगहों की तरफ़ (आने के लिये) निकल पड़ते जहाँ वे (क़त्ल हो-होकर) गिरे हैं (ग़र्ज़ यह है कि यह ज़ाहिरी नुक़सान व तकलीफ़ जिस क़द्र हुई वह तो टलने वाली न थी) और (इसके फ़ायदे व लाभ बहुत बड़े थे, क्योंकि) यह जो कुछ हुआ इसलिए हुआ ताकि अल्लाह तआला तुम्हारे बातिन की बात (यानी ईमान) की आज़माईश करे (क्योंकि इस मुसीबत के वक़्त मुनाफ़िक़ों का निफ़ाक़ खुल गया और मोमिनों का ईमान और ज़्यादा मज़बूत और गहरा हो गया) और ताकि तुम्हारे दिलों की बात (यानी इसी ईमान) को (शुब्हात व वस्वसों से) साफ़ कर दे, (क्योंकि मुसीबत से मोमिन की तवज्जोह अल्लाह के अलावा से हटकर सिर्फ़ अल्लाह तआला की तरफ़ लग जाती है जिससे ईमान को ताज़गी और क़ुव्वत पहुँचती है) और अल्लाह तआला सब बातिन की बातों को ख़ूब जानते हैं (उनको आज़माईश की ज़रूरत नहीं, मगर इसलिए कि अदालती तरीक़े से मुजरिम का जुर्म खुलकर सामने आ जाये ऐसे-ऐसे मामलात सामने लाये जाते हैं)।

यक़ीनन तुम में से जिन लोगों ने (मैदाने जंग से) पीठ फेर दी थी जिस दिन कि दोनों जमाअ़तें (मुसलमानों और काफ़िरों की) आपस में आमने-सामने हुईं (यानी जंगे-उहुद के दिन, उसकी वजह) इसके सिवा और कोई बात नहीं हुई कि उनको शैतान ने बहका दिया उनके कुछ (पहले किये हुए) आमाल के सबब, (यानी उनसे कुछ ख़ता व क़सूर ऐसे हो गये थे जिससे शैतान को उनसे और भी मासियत (गुनाह व नाफ़रमानी) करा देने की अपेक्षा हो गई, और इत्तिफ़ाक़ से वह अपेक्षा पूरी हो गई)। और यक़ीन समझो कि अल्लाह तआला ने उनको माफ़ फ़रमा दिया, वाक़ई अल्लाह तआला बड़े मग़फ़िरत करने वाले बड़े इल्म वाले हैं (कि ख़ता हो जाने के वक़्त भी कोई सज़ा नहीं दी)।

मआरिफ़ व मसाईल

ऊपर ज़िक्र हुई पहली आयत में कुछ सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम का मैदाने जंग छोड़कर चला जाना और ख़ुद रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के आवाज़ देने पर भी उनका न आना और इस पर रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को ग़म होना और उस ग़म के बदले में अन्जाम कार सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम को ग़म होना बयान हुआ है, और हदीस की रिवायतों में है कि हज़रत कअ़ब बिन मालिक रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने पुकारा तो मुसलमान जमा हो गये।

इसके मतलब और मायनों में जोड़ **रूहुल-मआनी** के मुसन्निफ़ ने इस तरह किया है कि पहले रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने पुकारा जो सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम ने सुना नहीं और दूर निकले चले गये। उस वक़्त हज़रत कअ़ब बिन मालिक रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने पुकारा वह सब ने सुन लिया तो जमा हो गये।

बयानुल-क़ुरआन में हज़रत हकीमुल-उम्मत मौलाना थानवी रह.. ने फ़रमाया कि असल

वजह घबराहट की यह ख़बर थी कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम शहीद हो गये। आपके पुकारने में इस ख़बर की कोई तरदीद (खण्डन) तो थी नहीं और आवाज़ अगर पहुँची भी हो तो पहचानी नहीं गई। फिर जब हज़रत कअ़ब बिन मालिक रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने पुकारा तो इसमें इस ख़बर की तरदीद और रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम का हयात (ज़िन्दा) होना मज़कूर था। यह सुनकर सब की तसल्ली हुई और सब जमा हो गये। बाक़ी रहा यह कि फिर इस पर हक़ तआ़ला की तरफ़ से गुस्सा व नाराज़गी और रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम को ग़म क्यों हुआ? इसकी वजह यह हो सकती है कि अगर मुस्तक़िल-मिज़ाज रहते (यानी घबराहट और अफ़रा-तफ़री का शिकार न होते) तो आवाज़ को पहचान सकते थे।

उहुद की मुसीबतें सज़ा नहीं बल्कि आज़माईश थीं और जो ख़ता कुछ सहाबा किराम से हुई वह माफ़ कर दी गई

وَلِيَبْتَلِيَ اللّٰهُ مَا فِيْ صُدُوْرِكُمْ .... الآية

(और अल्लाह को आज़माना था जो कुछ तुम्हारे जी में है) से मालूम हुआ कि जंगे-उहुद में जो मुसीबतें और तकलीफ़ें सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम को पेश आयीं वो सज़ा के तौर पर नहीं बल्कि आज़माईश और इम्तिहान के तौर पर थीं। इस इम्तिहान के ज़रिये मोमिनों, सच्चों और मुनाफ़िक़ों में फ़र्क़ का इज़हार करना था, और 'असाबकुम् ग़म्मन्' के अलफ़ाज़ से जो इसका सज़ा होना मालूम होता है इसको यूँ समझिये कि सूरत तो सज़ा ही की थी मगर यह सज़ा मुरब्बियाना इस्लाह (बातिन संवारने) के लिये थी, जैसे कोई बाप अपने बेटे को और उस्ताद अपने शागिर्द को सज़ा देता है तो आम बोलचाल में उसको सज़ा भी कह सकते हैं मगर दर हक़ीक़त यह तरबियत और इस्लाह (सुधार) की एक सूरत होती है। हाकिमाना सज़ा उससे अलग और दूसरी चीज़ है।

उहुद के वाक़िए में मुसलमानों पर मुसीबतों के असबाब क्या थे?

ज़िक्र हुए जुमलेः

لِيَبْتَلِيَ اللّٰهُ مَا فِيْ صُدُوْرِكُمْ

(और अल्लाह को आज़माना था जो कुछ तुम्हारे जी में है) से आख़िर आयत तक जो इरशाद है उससे तो यह मालूम होता है कि मुसीबतों का सबब यह रब्बानी हिक्मतें थीं, लेकिन अगली आयत मेंः

اِنَّمَا اسْتَزَلَّهُمُ الشَّيْطٰنُ بِبَعْضِ مَا كَسَبُوْا

(सो उनको बहका दिया शैतान ने उनके गुनाहों की शामत के कारण) से यह मालूम होता है

कि इन हज़रात की कोई पिछली ख़ता व चूक इस शैतानी असर का सबब है।

जवाब यह है कि ज़ाहिरी सबब तो वह चूक और ख़ता ही हुई कि उसकी वजह से शैतान को उनसे और नाफ़रमानी व ग़लती करा देने की भी अपेक्षा हो गई, और इत्तिफ़ाक़ से उसकी वह अपेक्षा पूरी भी हो गई, मगर इस ख़ता और भूल और इसके बाद आने वाले परिणामों में ये क़ुदरती हिक्मतें छुपी थीं जिनको 'लियब्तलि-यकुम्..........' में बयान फ़रमाया है। तफ़सीर **रूहुल-मआनी** में जुजाज से नक़ल किया है कि शैतान ने उनको कुछ वे गुनाह याद दिलाये जिनको लेकर हक़ तआ़ला से मिलना उनको अच्छा मालूम न हुआ, इसलिये जिहाद से हट गये ताकि वे अपनी हालत को दुरुस्त करके फिर पसन्दीदा हालत पर जिहाद करें और शहीद होकर अल्लाह से मिलें।

एक गुनाह दूसरे गुनाह का भी सबब हो जाता है

उक्त आयत से मालूम हुआ कि एक गुनाह दूसरे गुनाह को खींच लाता है, जैसे एक नेकी दूसरी नेकी को खींच लाती है। यानी अच्छे और बुरे आमाल में एक कशिश है, जब इनसान कोई एक नेक काम कर लेता है तो तजुर्बा गवाह है कि उसके लिये दूसरी नेकियाँ भी आसान हो जाती हैं, उसके दिल में नेक आमाल की चाहत व दिलचस्पी बढ़ जाती है। इसी तरह इनसान कोई गुनाह करता है तो वह उसके दूसरे गुनाहों का रास्ता हमवार कर देता है, दिल में गुनाह की चाह और दिलचस्पी बढ़ जाती है। इसी लिये कुछ बुज़ुर्गों ने फ़रमाया है:

اِنَّ مِنْ جَزَآءِ الْحَسَنَةِ الْحَسَنَةَ بَعْدَهَا وَاِنَّ مِنْ جَزَآءِ السَّيِّئَةِ السَّيِّئَةَ بَعْدَهَا.

"यानी नेक काम की एक नक़द जज़ा (बदला) वह दूसरी नेकी है जिसकी तौफ़ीक़ उसको हो जाती है, और बुरे अ़मल की एक सज़ा वह दूसरा गुनाह है जिसके लिये पहले गुनाह ने रास्ता हमवार कर दिया है।"

हज़रत हकीमुल-उम्मत मौलाना थानवी रह. ने **मसाईलुस्सुलूक** में फ़रमाया कि हदीस के बयान के मुताबिक़ गुनाह से दिल में एक अंधकार और तारीकी पैदा हो जाती है और जब दिल में अंधेरा आ जाता है तो शैतान क़ाबू पा लेता है।

अल्लाह तआ़ला के नज़दीक सहाबा किराम का ऊँचा रुतबा और उनकी ख़ताओं पर माफ़ी व दरगुज़र का बेमिसाल मामला

जंगे-उहुद के वाक़िए में जो कोताहियाँ और ख़तायें कुछ सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम से सादिर हुईं वो अपने आप में बड़ी भारी और सख़्त थीं। जिस मोर्चे पर पचास सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम को यह हुक्म देकर बैठाया था कि हम पर कुछ भी हाल गुज़रे तुम यहाँ से न हटना, उनकी बड़ी तादाद वहाँ से हट गई। अगरचे हटने का सबब उनकी यह वैचारिक ग़लती सही कि अब फ़तह हो चुकी है, इस हुक्म की तामील पूरी हो चुकी है, यहाँ से नीचे जाकर सब

मुसलमानों के साथ मिल जाना चाहिये, मगर दर हक़ीक़त नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की स्पष्ट और खुली हिदायतों के ख़िलाफ़ था। इसी ख़ता व क़सूर के नतीजे में मैदाने जंग से भागने की ग़लती सर्ज़द हुई, चाहे उसमें भी मतलब और विचार ही का सहारा लिया गया हो, जैसा कि जुजाज से ऊपर नक़ल किया जा चुका है। फिर यह मैदाने जंग से भागना ऐसी हालत में हो कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम उनके साथ हैं और पीछे से उनको आवाज़ दे रहे हैं, ये चीज़ें अगर शख़्सियात (व्यक्तियों) और उस वक़्त के हालात से अलग करके देखी जायें तो बिला शुब्हा बहुत सख़्त और ऐसे संगीन जुर्म थे कि सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम आपसी विवादों के सिलसिले में विभिन्न सहाबा पर जितने इल्ज़ामात मुख़ालिफ़ों की तरफ़ से लगाये जाते हैं ये उन सब से ज़्यादा सख़्त और बड़े अपराध की हैसियत रखते हैं।

मगर ग़ौर कीजिये कि हक़ तआ़ला ने इन तमाम ख़ताओं और क़सूरों के बाद भी उन हज़रात के साथ क्या मामला फ़रमाया, वह उक्त आयतों में बड़ी वज़ाहत से आ गया, कि अव्वल ज़ाहिरी इनाम ऊँघ (आँखों के नींद से झपकने) को भेजकर उनकी तकलीफ़ और थकान व परेशानी दूर की गई, फिर यह बतलाया गया कि जो मुसीबतें और ग़म मुसलमानों को इस वक़्त पहुँचा है वह ख़ालिस सज़ा व अन्जाम नहीं, बल्कि इसमें कुछ मुरब्बियाना हिक्मतें (नसीहत के पहलू) छुपी हैं। फिर साफ़ लफ़्ज़ों में माफ़ी का ऐलान फ़रमाया। ये सब चीज़ें एक मर्तबा इससे पहले आ चुकी हैं, इस जगह फिर इनको दोहराया गया, इस दोहराने की एक हिक्मत यह भी है कि पहली मर्तबा तो ख़ुद सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम की तसल्ली के लिये यह इरशाद फ़रमाया गया और इस जगह मुनाफ़िक़ों के उस क़ौल का रद्द भी उद्देश्य है जो वे मुसलमानों से कहते थे कि तुमने हमारी राय पर अ़मल न किया इसलिये मुसीबतों व तकलीफ़ों का सामना हुआ।

बहरहाल! इन तमाम आयतों में यह बात बड़ी वज़ाहत (विस्तार) से सामने आ गई कि हक़ तआ़ला की बारगाह में अपने रसूल मुहम्मद मुस्तफ़ा सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के साथियों को महबूबियत का वह मक़ाम हासिल है कि इतनी बड़ी ज़बरदस्त ख़ताओं और कोताहियों के बावजूद उनके साथ सिर्फ़ माफ़ी व दरगुज़र का ही मामला नहीं बल्कि लुत्फ़ व करम का मामला फ़रमाया गया। यह मामला तो ख़ुद हक़ तआ़ला का और क़ुरआनी अहकाम का बयान किया हुआ है। इसी तरह का एक मामला हज़रत हातिब इब्ने अबी बल्तआ़ रज़ियल्लाहु अ़न्हु का हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के सामने पेश हुआ। उन्होंने मक्का के मुश्रिकों को मुसलमानों के हालात के मुताल्लिक़ एक ख़त लिख दिया था, जब हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम पर वही (अल्लाह की तरफ़ से आये पैग़ाम) के ज़रिये इसकी हक़ीक़त खुली और ख़त पकड़ा गया तो सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम में हज़रत हातिब इब्ने अबी बल्तआ़ रज़ियल्लाहु अ़न्हु के ख़िलाफ़ सख़्त आक्रोश और नाराज़गी थी। फ़ारूक़े आज़म रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने अ़र्ज़ किया कि मुझे इजाज़त दीजिये कि इस मुनाफ़िक़ की गर्दन मार दूँ। मगर रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को मालूम था कि वह मुनाफ़िक़ नहीं, सच्चे मोमिन हैं, मगर यह ग़लती उनसे हो गई,

इसलिये उनको माफ़ फ़रमाया और फ़रमाया कि "यह बदर वालों में से हैं और शायद अल्लाह तआ़ला ने बदर में शरीक होने वाले तमाम हज़रात के बारे में मग़फ़िरत (बख़्शिश) और माफ़ी का हुक्म नाफ़िज़ कर दिया है।" (यह रिवायत हदीस की सब मोतबर किताबों में मौजूद है)

सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम के मुताल्लिक़ आ़म मुसलमानों के लिये एक सबक़

यहीं से अहले-सुन्नत वल-जमाअ़त के इस अ़क़ीदे और अ़मल की तस्दीक़ होती है कि सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम अगरचे गुनाहों से मासूम (सुरक्षित) नहीं, उनसे बड़े गुनाह भी हो सकते हैं और हुए भी हैं, लेकिन इसके बावजूद उम्मत के लिये यह जायज़ नहीं कि उनकी तरफ़ किसी बुराई और ऐब को मन्सूब करे। जब अल्लाह तआ़ला और उसके रसूल सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने उनकी इतनी बड़ी ग़लतियों और ख़ताओं को माफ़ करके उनके साथ लुत्फ़ व करम का मामला फ़रमाया और उनको **रज़ियल्लाहु अ़न्हु** (अल्लाह उनसे राज़ी हुआ) का मक़ाम अ़ता फ़रमाया, तो फिर किसी को क्या हक़ है कि उनमें से किसी का बुराई के साथ तज़किरा करे।

यही वजह है कि हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन उमर रज़ियल्लाहु अ़न्हु के सामने एक मर्तबा किसी ने हज़रत उस्मान ग़नी रज़ियल्लाहु अ़न्हु और कुछ सहाबा किराम पर जंगे-उहुद के इसी वाक़िए का ज़िक्र करके ताना किया कि मैदान छोड़कर भाग गये थे, इस पर हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन उमर रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने फ़रमाया कि जिस चीज़ की माफ़ी का अल्लाह तआ़ला ने ऐलान फ़रमा दिया उस पर ताना देने का किसी को क्या हक़ है। (सही बुख़ारी)

इसलिये अहले-सुन्नत वल-जमाअ़त के अ़क़ीदों की किताबें सब इस पर मुत्तफ़िक़ (सहमत) हैं कि तमाम सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम की ताज़ीम (अदब व सम्मान) और उन पर ताने व एतिराज़ से परहेज़ वाजिब है। **अ़क़ाइदे-नसफ़िया** में है:

وَيَكُفُّ عَنْ ذِكْرِ الصَّحَابَةِ إِلَّا بِخَيْرٍ.

'यानी वाजिब है कि सहाबा रज़ियल्लाहु अ़न्हुम का ज़िक्र ख़ैर और भलाई के बग़ैर न करे।'

और **शरह मुसामरा इब्ने हुमाम** में है:

اِعْتِقَادُ اَهْلِ السُّنَّةِ تَزْكِيَةُ جَمِيْعِ الصَّحَابَةِ وَالثَّنَاءُ عَلَيْهِمْ.

"यानी अहले-सुन्नत वल-जमाअ़त का अ़क़ीदा यह है कि तमाम सहाबा किराम को मोतबर व भरोसे वाला समझें, उनका ज़िक्र तारीफ़ व प्रशंसा के साथ करें।"

शरह मवाक़िफ़ में है:

يَجِبُ تَعْظِيْمُ الصَّحَابَةِ كُلِّهِمْ وَالْكَفُّ عَنِ الْقَدْحِ فِيْهِمْ.

"यानी तमाम सहाबा रज़ियल्लाहु अ़न्हुम की ताज़ीम वाजिब है, और उन पर ताने व एतिराज़ से बाज़ रहना वाजिब है।"

हाफ़िज़ इब्ने तैमिया रह. ने अक़ीदा-ए-वास्तिया में फ़रमाया है कि:

अहले-सुन्नत वल-जमाअ़त का अ़क़ीदा यह है कि सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम के बीच जो इख़्तिलाफ़ात (झगड़े, विवाद) और क़त्ल व क़िताल हुए हैं उनमें किसी पर इल्ज़ाम व एतिराज़ करने से बाज़ रहें। वजह यह है कि तारीख़ में जो रिवायतें उनकी कमियों व बुराईयों के मुताल्लिक़ हैं उनमें अधिकतर तो झूठी और ग़लत हैं, जो दुश्मनों ने उड़ाई हैं, और कुछ वो हैं जिनमें कमी-बेशी करके अपनी वास्तविकता के ख़िलाफ़ कर दी गई हैं। और जो बात सही भी है तो सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम उसमें इज्तिहादी राय (वैचारिक धारणा) की बिना पर माज़ूर हैं। और फ़र्ज़ करो जहाँ वे माज़ूर भी न हों तो अल्लाह का क़ानून यह है कि:

اِنَّ الْحَسَنٰتِ يُذْهِبْنَ السَّيِّاٰتِ

यानी नेक आमाल से बुरे आमाल का भी कफ़्फ़ारा (बदला) हो जाता है। और यह ज़ाहिर है कि सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम के नेक आमसल के बराबर किसी दूसरे के आमाल नहीं हो सकते, और अल्लाह तआ़ला के करम व माफ़ी के जितने वे मुस्तहिक़ हैं कोई दूसरा नहीं हो सकता। इसलिये किसी को यह हक़ नहीं कि उनके आमाल पर पकड़ करे और उनमें से किसी पर ताने व एतिराज़ की ज़बान खोले। (अ़क़ीदा-ए-वास्तिया संक्षिप्त में)

يٰۤاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا لَا تَكُوْنُوْا كَالَّذِيْنَ كَفَرُوْا وَقَالُوْا لِاِخْوَانِهِمْ اِذَا ضَرَبُوْا فِي الْاَرْضِ اَوْ كَانُوْا غُزًّى لَّوْ كَانُوْا عِنْدَنَا مَا مَاتُوْا وَمَا قُتِلُوْا ۚ لِيَجْعَلَ اللّٰهُ ذٰلِكَ حَسْرَةً فِيْ قُلُوْبِهِمْ ۗ وَاللّٰهُ يُحْيٖ وَيُمِيْتُ ۗ وَاللّٰهُ بِمَا تَعْمَلُوْنَ بَصِيْرٌ ۝ وَلَئِنْ قُتِلْتُمْ فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ اَوْ مُتُّمْ لَمَغْفِرَةٌ مِّنَ اللّٰهِ وَرَحْمَةٌ خَيْرٌ مِّمَّا يَجْمَعُوْنَ ۝ وَلَئِنْ مُّتُّمْ اَوْ قُتِلْتُمْ لَاِلَى اللّٰهِ تُحْشَرُوْنَ ۝

या अय्युहल्लज़ी-न आमनू ला तकूनू कल्लज़ी-न क-फ़रू व क़ालू लि-इख़्वानिहिम् इज़ा ज़-रबू फ़िल्अर्ज़ि औ कानू ग़ुज़्ज़ल्-लौ कानू अ़िन्दना मा मातू व मा क़ुतिलू लि-यज्अ़लल्लाहु ज़ालि-क हस्र-तन् फ़ी क़ुलूबिहिम्, वल्लाहु युह्यी व युमीतु, वल्लाहु बिमा तअ़्मलू-न बसीर (156) व ल-इन् क़ुतिल्तुम्	ऐ ईमान वालो! तुम न हो उनकी तरह जो काफ़िर हुए और कहते हैं अपने भाईयों को जब वे सफ़र को निकलें मुल्क में या हों जिहाद में- अगर रहते हमारे पास तो न मरते और न मारे जाते, ताकि अल्लाह डाले इस गुमान से अफ़सोस उनके दिलों में, और अल्लाह ही जिलाता है और मारता है, और अल्लाह तुम्हारे सब काम देखता है। (156) और अगर तुम मारे गये अल्लाह की राह में या मर

फ़ी सबीलिल्लाहि औ मुत्तुम् ल-मग़्फ़ि-रतुम् मिनल्लाहि व रह्मतुन् ख़ैरुम् मिम्मा यज्मअ़ून (157) व ल-इम्-मुत्तुम् औ क़ुतिल्तुम् ल-इलल्लाहि तुह्शरून (158)	गये तो बख़्शिश अल्लाह की और मेहरबानी उसकी बेहतर है उस चीज़ से जो वे जमा करते हैं। (157) और अगर तुम मर गये या मारे गये तो अलबत्ता अल्लाह ही के आगे इकट्ठे होगे तुम सब। (158)

इन आयतों के मज़मून का पीछे से संबन्ध

पिछली आयतों में मुनाफ़िक़ों का यह क़ौल बयान किया गया था कि:

لَوْ كَانَ لَنَا مِنَ الْاَمْرِ شَیْءٌ مَّا قُتِلْنَا هٰهُنَا.

यानी अगर हमारा कुछ इख़्तियार होता और हमारी राय मानी जाती तो हम यहाँ क़त्ल न होते। जिसको आगे भी नक़ल किया गया है। ऐसे अक़्वाल (बातों) के सुनने से यह शंका थी कि सच्चे मुसलमानों के दिलों में कुछ शकूक व शुब्हात न पैदा हो जायें, इसलिए ऊपर बयान हुई आयतों में मुसलमानों को ऐसी बातों और हरकतों से परहेज़ करने की और मौत व ज़िन्दगी को सिर्फ़ तक़दीर के ताबे होने की हिदायतें दी गई हैं।

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

ऐ ईमान वालो! तुम उन लोगों की तरह मत हो जाना जो (हक़ीक़त में) काफ़िर हैं (अगरचे ज़ाहिर में इस्लाम का दावा करते हों) और कहते हैं अपने (नसब वाले या विचारधारा व मस्लक वाले) भाईयों के बारे में जबकि वे लोग किसी इलाक़े में सफ़र करते हैं (और वहाँ इत्तिफ़ाक़ से मर जाते हैं), या वे लोग कहीं ग़ाज़ी (मुजाहिद) बनते हैं (और उसमें तक़दीर से क़त्ल हो जाते हैं तो वे मुनाफ़िक़ कहते हैं) कि अगर ये लोग हमारे पास रहते (सफ़र और जंग में न जाते) तो न मरते और न मारे जाते। (यह बात उनके दिल और ज़बान पर इसलिये आती है) ताकि अल्लाह तआ़ला इस बात को उनके दिलों में हसरत का सबब दें (यानी इस तरह की बातों का नतीजा हसरत के सिवा कुछ नहीं) और जिलाता-मारता तो अल्लाह ही है (चाहे सफ़र हो या वतन में रहना और जंग हो या अमन) और अल्लाह तआ़ला जो कुछ तुम करते हो सब कुछ देख रहे हैं। (तो अगर तुम भी ऐसी बातें करो या ऐसे ख़्यालात में मुब्तला हो तो वह अल्लाह तआ़ला से छुपा नहीं रहेगा) और अगर तुम लोग अल्लाह की राह में मारे जाओ या कि (अल्लाह की राह में) मर जाओ (तो यह कोई) ख़सारा नहीं, नफ़ा ही नफ़ा है, क्योंकि ज़रूर अल्लाह तआ़ला के पास की मग़फ़िरत और रहमत (दुनिया की) उन चीज़ों से (कई दर्जे) बेहतर है जिनको ये लोग जमा कर रहे हैं और (उसी के लालच में ज़िन्दगी को प्यारी रखते हैं। और) अगर तुम (वैसे भी) मर गये या मारे गये (तब भी) लाज़िमी तौर पर अल्लाह ही के पास जमा किये जाओगे (पस

अव्वल तो क़ज़ा टलती नहीं, दूसरे अल्लाह के पास जाने से किसी हाल में बच नहीं सकते और दीन की राह में मरना या मारा जाना तो मग़फ़िरत व रहमत का ज़रिया है, तो फिर वैसे मरने से दीन ही की राह में जान देना बेहतर है। इसलिये ऐसी बातें दुनिया में हसरत और आख़िरत में जहन्नम की आग का सबब है, इनसे परहेज़ लाज़िम है)।

فَبِمَا رَحْمَةٍ مِّنَ اللّٰهِ لِنْتَ لَهُمْ ۚ وَلَوْ كُنْتَ فَظًّا غَلِيْظَ الْقَلْبِ لَانْفَضُّوْا مِنْ حَوْلِكَ ۖ فَاعْفُ عَنْهُمْ وَاسْتَغْفِرْ لَهُمْ وَشَاوِرْهُمْ فِي الْاَمْرِ ۚ فَاِذَا عَزَمْتَ فَتَوَكَّلْ عَلَى اللّٰهِ ۚ اِنَّ اللّٰهَ يُحِبُّ الْمُتَوَكِّلِيْنَ ۝

फ़बिमा रह्मतिम् मिनल्लाहि लिन्-त लहुम् व लौ कुन्-त फ़ज़्ज़न् ग़लीज़ल्क़ल्बि लन्फ़ज़्ज़ू मिन् हौलि-क फ़अ़्फ़ु अ़न्हुम् वस्तग़्फ़िर् लहुम् व शाविर्हुम् फ़िल्-अम्रि फ़-इज़ा अ़ज़म्-त फ़-तवक्कल् अ़लल्लाहि, इन्नल्ला-ह युहिब्बुल् मु-तवक्किलीन (159)	**सो कुछ अल्लाह ही की रहमत है जो तू नर्म- दिल मिल गया उनको और अगर तू होता तुन्दख़ू सख़्त-दिल तो मुतफ़र्रिक़ हो जाते तेरे पास से, सो तू उनको माफ़ कर और उनके वास्ते बख़्शिश माँग और उनसे मश्विरा ले काम में, फिर जब क़स्द (पुख़्ता इरादा) कर चुका तू उसका काम का तो फिर भरोसा कर अल्लाह पर, अल्लाह को मुहब्बत है तवक्कुल करने वालों से। (159)**

इस आयत के मज़मून का पीछे से ताल्लुक़

जंगे-उहुद में कुछ मुसलमानों की ग़लती, चूक और मैदान छोड़ने से जो सदमा और ग़म रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को पहुँचा था, अगरचे आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने अपने तबई अख़्लाक़ और माफ़ व दरगुज़र करने की आ़दत की बिना पर उनको उस पर कोई मलामत नहीं की, और कोई मामला सख़्ती का भी नहीं किया, लेकिन अल्लाह तआ़ला को अपने रसूल सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के साथियों की दिलजोई और उनके दिलों में इस ग़लती पर जो सदमा और अपने क़सूर पर जो नदामत थी उन सब को धो देना मन्ज़ूर हुआ तो इस आयत में आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को और ज़्यादा मेहरबानी व करम की हिदायत और सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम से मामलात में मश्विरा लेने का हुक्म दिया।

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

उसके बाद (कि सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम से ऐसी ख़ता और चूक हुई जिस पर

आपको मलामत और पकड़ करने का हक़ था) खुदा ही की रहमत के सबब (जो कि आप पर है) आप उनके साथ नर्म रहे और अगर आप (खुदा न ख़्वास्ता) कड़वे मिज़ाज वाले सख़्त तबीयत के होते तो ये (बेचारे) आपके पास से सब इधर-उधर हो जाते (फिर इनको यह फ़ैज़ व बरकतें कहाँ नसीब होतीं) सो (जब आपने बर्ताव में ऐसी नर्मी फ़रमाई तो उनसे जो ग़लती आपके हुक्म के पालन में हो गई है उसको दिल से भी) उनको माफ़ कर दीजिए (और उनसे जो ग़लती अल्लाह तआ़ला के हुक्म में कोताही से हुई उसके लिये) आप उनके लिए इस्तिग़फ़ार कर दीजिए (अगरचे अल्लाह तआ़ला ने खुद उनकी माफ़ी और मग़फ़िरत का ऐलान पहले ही फ़रमा दिया था मगर आपका उनके लिये दुआ-ए-मग़फ़िरत करना उनके लिये और ज़्यादा मुफ़ीद और तसल्ली का सबब होगा) और उनसे ख़ास-ख़ास बातों में (बदस्तूर) मश्चिरा लेते रहा कीजिए (ताकि इस ख़ुसूसी इनायत व मेहरबानी से उनके दिलों से ग़म धुल जाये) फिर (मश्चिरा लेने के बाद) जब आप (किसी एक ओर) राय पुख़्ता कर लें (चाहे वह उनके मश्चिरे के मुवाफ़िक़ हो या मुख़ालिफ़) तो खुदा तआ़ला पर भरोसा (करके उस काम को कर डाला) कीजिए। बेशक अल्लाह तआ़ला ऐसे भरोसा करने वालों से मुहब्बत फ़रमाते हैं।

मआ़रिफ़ व मसाईल

रहनुमा व मुरब्बी की ख़ास सिफ़तें

सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम जो रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम पर फ़िदा और अपनी जान व माल से ज़्यादा आपको अज़ीज़ (प्यारा) रखने वाले थे, उनसे जब आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के हुक्म के ख़िलाफ़ एक ख़ता और ग़लती हो गई तो यहाँ एक तरफ़ तो यह ख़तरा था कि उन हज़रात को जब अपने क़सूर, ग़लती और हुक्म का उल्लंघन होने पर तंबीह हो तो उनका सदमा हद से बढ़ जाये, जो उनके दिल व दिमाग़ को बेकार कर दे, या रहमत से मायूस बना दे। इसका इलाज तो पिछली आयत में बतला दिया गया कि:

فَاَثَابَكُمْ غَمًّا بِغَمٍّ

इस ग़लती और क़सूर की सज़ा दुनिया में दी जा चुकी है, आख़िरत का खाता बेबाक़ (यानी साफ़) हो गया।

दूसरी तरफ़ रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम इस ग़लती और चूक के नतीजे में ज़ख़्मी हुए, जिससे जिस्मानी तकलीफ़ भी पहुँची और रूहानी तकलीफ़ तो पहले ही से थी, तो इस जिस्मानी व रूहानी तकलीफ़ से यह गुमान और शंका थी कि आपके दिल मुबारक में सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम की तरफ़ से मैल पैदा हो जाये, जो उनकी हिदायत व तालीम में बाधा हो जाये। इसके लिये आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को यह तालीम देनी थी कि आप उनकी ख़ता से दरगुज़र (माफ़) फ़रमायें, उनकी ग़लती और चूक दिल से माफ़ कर दें और आईन्दा के लिये भी इनायत व मेहरबानी का मामला जारी रखें।

इस मज़मून को हक़ तआला ने एक अजीब व ग़रीब अन्दाज़ से इरशाद फ़रमाया, जिसमें ज़िमनी तौर पर चन्द अहम फ़ायदे भी आ गयेः

एक यह कि आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम को इन चीज़ों का हुक्म ऐसे अन्दाज़ से दिया गया है जिसमें आपकी सना व तारीफ़ और बड़ी शान का इज़हार भी है, कि ये सिफ़तें आपके अन्दर पहले से मौजूद हैं, और दूसरे इससे पहले 'फ़-बिमा रह्मतिन्' का लफ़्ज़ बढ़ाकर यह भी बतला दिया कि इन कमाल वाली सिफ़तों का आपके अन्दर होना यह हमारी रहमत से है किसी का ज़ाती कमाल नहीं। फिर लफ़्ज़ रहमत को आम रखकर रहमत के अज़ीम और विस्तृत होने की तरफ़ इशारा करके यह भी वाज़ेह कर दिया कि यह रहमत सिर्फ़ सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अन्हुम पर ही नहीं बल्कि खुद आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम पर भी है, कि आपको इन कमाल वाली सिफ़तों वाला बना दिया।

इसके बाद एक तीसरा अहम फ़ायदा बाद के जुमलों से ज़ाहिर फ़रमा दिया कि यह नर्म मिज़ाजी, अच्छे अख़्लाक़, माफ़ी व दरगुज़र और इनायत व मेहरबानी की सिफ़तें अगर आपके अन्दर न होतीं तो मख़्लूक़ की इस्लाह (सुधार व बेहतरी) का जो काम आपके सुपुर्द है वह मंशा के मुताबिक़ अन्जाम न पाता, लोग आपके ज़रिये अपनी इस्लाह और अख़्लाक़ को पाकीज़ा करने का फ़ायदा हासिल करने के बजाय आप से भाग जाते।

और इस सब मजमूए से एक और अहम फ़ायदा यह हासिल हुआ कि इरशाद व इस्लाह और तब्लीग़ के आदाब इससे मालूम हो गये, कि जो शख़्स रुश्द व हिदायत और अल्लाह की तरफ़ दावत देने और मख़्लूक़ की इस्लाह (सुधार) का इरादा करे उसके लिये ज़रूरी है कि ये सिफ़तें अपने अन्दर पैदा करे, क्योंकि जब अल्लाह तआला के महबूब रसूल की सख़्ती बरदाश्त नहीं हो सकती तो फिर किसकी मजाल है कि वह सख़्ती और बद-अख़्लाक़ी के साथ अल्लाह की मख़्लूक़ (लोगों) को अपने गिर्द जमा कर सके, और उनकी इस्लाह का फ़र्ज़ अन्जाम दे सके।

इस आयत में हक़ तआला ने इरशाद फ़रमाया कि अगर आप कड़वे मिज़ाज वाले, सख़्त तबीयत के होते तो लोग आपके पास से अलग दूर हो जाते। इससे मालूम हुआ कि मुर्शिद व मुबल्लिग़ के लिये मिज़ाज का कड़वापन और सख़्त-कलामी ज़हर और उसके काम को ज़ाया करने वाली चीज़ है।

इसके बाद इरशाद फ़रमायाः

فَاعْفُ عَنْهُمْ

यानी उनसे जो ख़ता हो गई है उसको आप माफ़ फ़रमा दें। इससे मालूम हुआ कि मुस्लेह (सुधारक) के लिये यह भी ज़रूरी है कि अवाम की ख़ताओं का बदला न ले बल्कि माफ़ी व दरगुज़र से काम ले। बुरा कहने वालों पर आग-बगूला न हो, तकलीफ़ देने वालों से नर्मी का मामला करे।

इसके बाद इरशाद फ़रमायाः

وَاسْتَغْفِرْ لَهُمْ

यानी आप उनके लिये अल्लाह तआला से भी मग़फ़िरत तलब करें। जिसमें यह हिदायत है कि सिर्फ़ यही नहीं कि ख़ुद उनकी तकलीफ़ों पर सब्र करें, बल्कि दिल से उनकी ख़ैरख़्वाही न छोड़ें। और चूँकि सबसे बड़ी ख़ैरख़्वाही (भला चाहना) उनकी आख़िरत की दुरुस्ती है इसलिये अल्लाह तआला के अ़ज़ाब से बचाने के लिये बख़्शिश की दुआ माँगें।

इसके बाद इरशाद हैः

وَشَاوِرْهُمْ فِى الْأَمْرِ

यानी पहले की तरह अपने फ़ैसलों और कामों में उन हज़रात से मश्विरा भी लिया करें ताकि उनकी पूरी तसल्ली हो जाये। इसमें इसकी तरफ़ हिदायत फ़रमाई कि जो ख़ैरख़्वाही का जज़्बा उनके दिल में है अ़मल से भी उसका इज़हार करें, कि अपने मश्विरे में शामिल करके उनको सम्मानित फ़रमायें।

इस पूरी आयत में सुधारक व मुबल्लिग़ (धर्म प्रचारक) के लिये चन्द सिफ़तों का होना ज़रूरी क़रार दिया गया- अव्वल सख़्त-कलामी और कड़वे मिज़ाज से बचना, दूसरे उन लोगों से कोई ग़लती या तकलीफ़ देने वाली कोई बात या काम हो जाये तो इन्तिक़ाम (बदले) लेने के पीछे न लग जाये बल्कि माफ़ी का मामला करना। तीसरे यह कि उनकी ख़ताओं और ग़लतियों की वजह से उनकी ख़ैरख़्वाही (भला चाहना और भला करना) न छोड़ना, उनके लिये दुआ व इस्तिग़फ़ार भी करते रहना और ज़ाहिरी मामलात में उनके साथ अच्छे सुलूक का व्यवहार और बर्ताव न छोड़ना। इस आयत में आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम से मश्विरा लेने का हुक्म और फिर मश्विरे के बाद अ़मल के तरीक़े की हिदायत की गई है। मश्विरे के बारे में क़ुरआने करीम ने दो जगह स्पष्ट हुक्म दिया है- एक यही ज़िक्र हुई आयत, दूसरे सूरः शूरा की आयत, जिसमें सच्चे मुसलमानों की सिफ़ात बयान करते हुए एक सिफ़त यह बयान फ़रमाई हैः

وَاَمْرُهُمْ شُوْرٰى بَيْنَهُمْ ..... (۴۲:۳۸)

"यानी और उनका हर काम आपस के मश्विरे से होता है।"

और कुछ जगह ज़िमनी तौर पर मश्विरे की हिदायत फ़रमाई है, जैसे रज़ाअ़त (दूध पिलाने) के अहकाम में इरशाद फ़रमायाः

عَنْ تَرَاضٍ مِّنْهُمَا وَتَشَاوُرٍ. (۲:۲۳۳)

यानी बच्चे का दूध छुड़ाना माँ और बाप दोनों की रज़ामन्दी और मश्विरे से होना चाहिये। मश्विरे से मुताल्लिक़ चन्द अहम मसाईल क़ाबिले ग़ौर हैंः

पहला मसला लफ़्ज़ अम्र और मश्विरे के मायने। दूसरा मसला मश्विरे की शरई हैसियत। तीसरा मसला रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम से मश्विरा लेने का दर्जा। चौथा मसला इस्लामी हुकूमत में मश्विरे का दर्जा। पाँचवाँ मसला मश्विरे

में मतभेद हो तो फ़ैसले की सूरत। छठा मसला हर काम में मुकम्मल तदबीर (इन्तिज़ाम व व्यवस्था) करने के बाद अल्लाह तआ़ला पर तवक्कुल (भरोसा)।

पहला मसला- लफ़्ज़ 'अम्र' और 'शूरा' की तहक़ीक़

लफ़्ज़ अम्र अ़रबी भाषा में कई मायनों के लिये इस्तेमाल होता है- एक आ़म मायने में आता है जो हर महत्त्वपूर्ण और शानदार क़ौल व फ़ेल को शामिल है। दूसरे हुक्म और हुकूमत के मायने में है जिस पर क़ुरआने करीम में लफ़्ज़ 'उलुल्-अम्र' महमूल है। तीसरे यह हक़ तआ़ला की एक विशेष सिफ़त के लिये आता है, जिसका ज़िक्र क़ुरआने करीम की बहुत सी आयतों में है, जैसेः

اَلَا لَهُ الْخَلْقُ وَالْاَمْرُ. (٧:٥٤)

اِلَيْهِ يُرْجَعُ الْاَمْرُ كُلُّهُ. (١١:١٢٣)

اِنَّ الْاَمْرَ كُلَّهُ لِلّٰهِ. (٣:١٥٤)

اَمْرُهٗٓ اِلَى اللّٰهِ. (٢:٢٧٥)

(यानी काम, तसर्रुफ़, हुक्म और मामलात के मायनों में। हिन्दी अनुवादक)

और मुहक़्क़िक़ीन के नज़दीकः

قُلِ الرُّوْحُ مِنْ اَمْرِ رَبِّىْ. (١٧:٨٥)

में भी यही अम्र मुराद है।

अब क़ुरआन के इरशादः

وَشَاوِرْهُمْ فِى الْاَمْرِ (٣:١٥٩)

(और मामलात में उनसे मश्विरा लेते रहा कीजिये) औरः

وَاَمْرُهُمْ شُوْرٰى بَيْنَهُمْ. (٤٢:٣٨)

(उनका हर काम मश्विरे से होता है) में दोनों मायनों की गुंजाईश है। और अगर यह कहा जाये कि पहले ही मायने मुराद हैं और दूसरे मायने भी इसमें शामिल हैं तो यह भी कुछ बईद (दूर की बात) नहीं, क्योंकि हुक्म और हुकूमत के मामलात सभी ख़ास अहमियत रखते हैं, इसलिये अम्र के मायने इन आयतों में हर उस काम के हैं जो ख़ास अहमियत रखता हो, चाहे हुकूमत से संबन्धित हो या मामलात से। और लफ़्ज़ शूरा, मश्विरा, मुशावरत के मायने हैं किसी क़ाबिले ग़ौर मामले में लोगों की रायें हासिल करना। इसलिये 'व शाविरहुम् फ़िल-अम्रि' के मायने यह हुए कि आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को हुक्म दिया गया कि आप क़ाबिले ग़ौर (विचारनीय) मामलों में, जिनमें हुकूमत से संबन्धित मामलात भी शामिल हैं, सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम से मश्विरा लिया करें। यानी उन हज़रात की रायें मालूम किया करें।

इसी तरह सूरः शूरा की आयत नम्बर 38:

وَاَمْرُهُمْ شُوْرٰى بَيْنَهُمْ

के मायने यह हुए कि हर क़ाबिले ग़ौर (विचारनीय) मामले में, जिसमें कोई महत्ता हो, चाहे हुक्म व हुकूमत से मुताल्लिक़ हो या दूसरे मामलात से, उनमें सच्चे मुसलमानों की निरन्तर आदत यह है कि आपसी मश्चिरे से काम लिया करते हैं।

दूसरा मसला- मश्चिरे की शरई हैसियत

इस बारे में क़ुरआने करीम के उक्त इरशादात और नबी करीम की हदीसों से मालूम होता है कि हर ऐसे मामले में जिसमें रायें मुख़्तलिफ़ (भिन्न और अनेक) हो सकती हैं, चाहे वह हुक्म व हुकूमत से मुताल्लिक़ हो या किसी दूसरे मामले से आपसी मश्चिरा लेना रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम और सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम की सुन्नत (तरीक़ा) और दुनिया व आख़िरत में बरकतों का सबब है। क़ुरआन व हदीस में इसकी ताईद आई है। और जिन मामलात का ताल्लुक़ अ़वाम से है, जैसे हुकूमत के मामलात उनमें मश्चिरा लेना वाजिब है।

(तफ़सीर इब्ने कसीर)

इमाम बैहक़ी ने शुअ़बुल-ईमान में हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन उमर रज़ियल्लाहु अ़न्हु से रिवायत किया है कि रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया- जो शख़्स किसी काम का इरादा करे और आपस में मश्चिरा करने के बाद उसके करने या न करने का फ़ैसला करे तो अल्लाह तआ़ला की तरफ़ से उसको सही और मुफ़ीद सूरत की तरफ़ हिदायत मिल जाती है।

और एक हदीस में है कि जब तुम्हारे हाकिम (शासक) तुम में से बेहतरीन आदमी हों और तुम्हारे मालदार सख़ी हों, और तुम्हारे मामलात आपस में मश्चिरे से तय हुआ करें, तो ज़मीन के ऊपर रहना तुम्हारे लिये बेहतर है। और जब तुम्हारे हाकिम (अमीर और शासक) बदतरीन अफ़राद हों और तुम्हारे मालदार बख़ील हों, और तुम्हारे मामलात औरतों के सुपुर्द हों तो ज़मीन के अन्दर दफ़न हो जाना तुम्हारे ज़िन्दा रहने से बेहतर होगा।

मतलब यह है कि जब तुम पर इच्छा-परस्ती आ जाये कि भले बुरे और लाभदायक व नुक़सानदेह से नज़र हटाकर के महज़ औरत की ख़ुशनूदी (प्रसन्नता) हासिल करने के लिये अपने मामलात उसके सुपुर्द कर दो तो उस वक़्त की ज़िन्दगी से तुम्हारे लिये मौत बेहतर है, वरना मश्चिरे में किसी औरत की भी राय लेना कोई ममनू (वर्जित और मना) नहीं। रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम और सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम के अ़मल और तरीक़े से साबित है और क़ुरआने करीम में सूरः ब-क़रह की आयत 233 जो अभी बयान की गई है, इसमें इरशाद है:

عَنْ تَرَاضٍ مِّنْهُمَا وَتَشَاوُرٍ

यानी बच्चे का दूध छुड़ाना बाप और माँ के आपसी मश्चिरे से होना चाहिये। इसमें चूँकि मामला औरत से संबन्धित है इसलिये ख़ास तौर से औरत के मश्चिरे का पाबन्द किया गया है।

एक हदीस में नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का इरशाद है कि:

اَلْمُسْتَشَارُ مُؤْتَمَنٌ اِذَا اسْتُشِيْرَ فَلْيُشِرْهُ بِمَاهُوَ صَانِعٌ لِنَفْسِهٖ.

"यानी जिस शख़्स से मश्विरा तलब किया जाये वह अमीन है, उस पर लाज़िम है कि उस मामले में जो काम वह ख़ुद अपने लिये तजवीज़ करता है वही राय दूसरे को दे, उसके ख़िलाफ़ करना ख़ियानत (बद्दियानती) है।"

यह हदीस तबरानी ने 'मोजम औसत' में हज़रत अ़ली रज़ियल्लाहु अ़न्हु से उम्दा सनद के साथ रिवायत की है। (तफ़सीरे मज़हरी)

अलबत्ता यह समझ लेना ज़रूरी है कि मश्विरा सिर्फ़ उन्हीं चीज़ों में मस्नून है जिनके बारे में क़ुरआन व हदीस का कोई स्पष्ट और निश्चित हुक्म मौजूद न हो, वरना जहाँ कोई क़तई और स्पष्ट शरई हुक्म मौजूद हो उसमें किसी से मश्विरे की ज़रूरत नहीं, बल्कि जायज़ भी नहीं। जैसे कोई शख़्स इसमें मश्विरा करे कि नमाज़ पढ़े या नहीं, ज़कात दे या नहीं, हज करे या नहीं। ये मश्विरे की चीज़ें नहीं, शरई तौर पर लाज़िमी और अनिवार्य फ़र्ज़ हैं, अलबत्ता इसमें मश्विरा किया जा सकता है कि हज को इस साल जाये या आईन्दा, और पानी के जहाज़ से जाये या हवाई जहाज़ से, और ख़ुश्की के रास्ते से जाये या किसी दूसरे रास्ते से।

इसी तरह ज़कात के मामले में यह मश्विरा लिया जा सकता है कि उसको कहाँ और किन लोगों पर ख़र्च किया जाये, क्योंकि ये सब मामले शरई तौर पर इख़्तियारी हैं।

एक हदीस में खुद इसकी वज़ाहत रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से मन्क़ूल है, हज़रत अ़ली कर्रमल्लाहु वज्हहू फ़रमाते हैं कि मैंने रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से अ़र्ज़ किया कि आपके बाद अगर हमें कोई ऐसा मामला पेश आ जाये जिसका हुक्म स्पष्ट रूप से क़ुरआन में नाज़िल नहीं हुआ और आप से भी उसके मुताल्लिक़ कोई इरशाद हमने नहीं सुना तो हम क्या करें? आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने इरशाद फ़रमाया कि ऐसे काम के लिये अपने लोगों में से इबादत गुज़ार फ़ुक़हा (नेक और दीनी समझ रखने वालों) को जमा करो और उनके मश्विरे से उसका फ़ैसला करो, किसी की तन्हा राय से फ़ैसला न करो।

इस हदीसे शरीफ़ से एक बात तो यह मालूम हुई कि मश्विरा सिर्फ़ दुनियावी मामलात में नहीं बल्कि शरीअ़त के जिन अहकाम में क़ुरआन व हदीस का स्पष्ट हुक्म और दलील न हो उन अहकाम में भी आपसी मश्विरा मस्नून है। और दूसरे यह भी मालूम हुआ कि मश्विरा ऐसे लोगों से लेना चाहिये जो मौजूदा लोगों में दीनी समझ और इबादत-गुज़ारी में परिचित हों। (ख़तीब)

और ख़तीबे बग़दादी रह. ने हज़रत अबू हुरैरह रज़ियल्लाहु अ़न्हु की एक हदीस में आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का यह इरशाद भी नक़ल किया है:

اِسْتَرْشِدُوا الْعَاقِلَ وَلَا تَعْصُوْهُ فَتَنْدَمُوْا

"यानी अक़्लमन्द आदमी से मश्विरा लो और उसके ख़िलाफ़ न करो वरना शर्मिन्दगी उठानी पड़ेगी।"

इन दोनों हदीसों को मिलाने से मालूम हुआ कि मज्लिसे शूरा के अरकान में दो वस्फ़ (गुण) ज़रूरी हैं- एक अक़्ल व राय वाला होना, दूसरे इबादत-गुज़ार होना। जिसका हासिल यह है कि समझदार और राय वाला और मुत्तक़ी होना। और अगर मसला शरई है तो फ़क़ीह (दीनी समझ और शरई मामलात में माहिर) होना भी लाज़िम है।

तीसरा मसला- रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का सहाबा किराम से मश्विरा लेने का दर्जा

आयत में नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को इसका हुक्म दिया गया है कि सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अन्हुम से मश्विरा लें। इसमें यह इश्काल है कि आप अल्लाह तआ़ला के रसूल और वही वाले हैं, आपको किसी से मश्विरे की क्या हाजत है? आपको हर चीज़ हक़ तआ़ला की तरफ़ से वही के ज़रिये मालूम हो सकती है। इसलिये कुछ उलेमा ने मश्विरे के इस हुक्म को इस पर महमूल किया है कि आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को न मश्विरे की ज़रूरत थी न उस मश्विरे पर आपके किसी काम का मदार (निर्भरता) था, सिर्फ़ सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अन्हुम के मान और दिलजोई के लिये मश्विरे का हुक्म आपको दिया गया है। लेकिन इमाम अबू बक्र जस्साम रह. ने फ़रमाया कि यह नहीं है, क्योंकि अगर यह मालूम हो कि हमारे मश्विरे पर कोई अ़मल नहीं होगा और न मश्विरे का किसी काम पर कोई असर है तो फिर उस मश्विरे पर कोई दिलजोई और मान भी नहीं रहता, बल्कि हुक्म की हक़ीक़त यह है कि आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को आ़म मामलात में तो डायरेक्ट हक़ तआ़ला की तरफ़ से वही के ज़रिये काम का एक तरीक़ा मुतैयन कर दिया जाता है मगर हिक्मत व रहमत के तक़ाज़े के सबब कुछ चीज़ों को आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की राय और मर्ज़ी पर छोड़ दिया जाता है, ऐसे ही उमूर (मामलात) में मश्विरे की ज़रूरत होती है, और इसी क़िस्म के मामलों और बातों में मश्विरा लेने का आपको हुक्म दिया गया। रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की मश्विरे की मजलिसों की तारीख़ भी यही बतलाती है।

नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने जंगे-बदर के लिये सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अन्हुम से मश्विरा लिया तो सहाबा किराम ने अ़र्ज़ किया कि अगर आप हमें दरिया में कूद पड़ने का हुक्म दें तो हम उसमें कूद पड़ेंगे, और अगर आप हमें बरकुल-ग़िमाद जैसे दूर-दराज़ मक़ाम की तरफ़ चलने का इरशाद फ़रमायेंगे तो हम आपके साथ होंगे। हम मूसा अ़लैहिस्सलाम के साथियों की तरह यह न कहेंगे कि आप और आपका रब काफ़िरों से मुक़ाबला करें, बल्कि हम यह अ़र्ज़ करेंगे कि आप तशरीफ़ ले चलें हम आपके साथ आप से आगे और पीछे और दायें बायें दुश्मन का मुक़ाबला करेंगे।

इसी तरह जंगे-उहुद में इस बारे में मश्विरा किया कि क्या मदीना शहर के अन्दर रहकर बचाव करें या शहर से बाहर निकल कर? आ़म तौर से सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अन्हुम की

राय बाहर निकलने की हुई तो आपने उसी को क़ुबूल फ़रमाया। ग़ज़वा-ए-ख़न्दक़ में एक ख़ास समझौते पर सुलह करने का मामला दरपेश आया तो हज़रत सअ़द बिन मुआ़ज़ रज़ियल्लाहु अ़न्हु और सअ़द बिन उबादा रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने उस समझौते को मुनासिब न समझकर इख़्तिलाफ़ (मतभेद) किया। आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने उन्हीं दोनों की रायें क़ुबूल फ़रमाईं। हुदैबिया के एक मामले में मश्विरा लिया तो हज़रत सिद्दीक़े अकबर रज़ियल्लाहु अ़न्हु की राय पर फ़ैसला फ़रमा दिया। क़िस्सा-ए-इफ़्क में सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम से मश्विरा लिया। ये सब मामलात वे थे जिनमें आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के लिये वही (अल्लाह तआ़ला की तरफ़ से आने वाले पैग़ाम) के द्वारा कोई ख़ास जानिब (रुख़) मुतैयन नहीं की गई थी।

खुलासा यह है कि नुबुव्वत व रिसालत और वही वाला होना कुछ मश्विरे के मनाफ़ी (विरुद्ध) नहीं, और यह भी नहीं कि यह मश्विरा सिर्फ़ नुमाईशी, दिल रखने के लिये हो, इसका असर मामलात पर न हो, बल्कि बहुत मर्तबा मश्विरा देने वालों की राय को आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने अपनी राय के ख़िलाफ़ भी क़ुबूल फ़रमा लिया, बल्कि कई मामलों में आपके लिये वही के ज़रिये कोई ख़ास सूरत मुतैयन न फ़रमाने और मश्विरा लेकर काम करने में हिक्मत व मस्लेहत यह भी है कि आईन्दा उम्मत के लिये एक सुन्नत रसूले करीम के अ़मल से जारी हो जाये कि जब आपको भी मश्विरे से इस्तिग़ना नहीं तो फिर ऐसा कौन है जो इस्तिग़ना का दावा कर सके। इसलिये रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम और सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम में ऐसे मसाईल में मश्विरों का सिलसिला हमेशा जारी रहा जिनमें कोई स्पष्ट शरई हुक्म न था, और आपके बाद सहाबा किराम का भी यही मामूल रहा, बल्कि बाद में तो ऐसे शरई अहकाम की तलाश व तहक़ीक़ के लिये भी मश्विरे का मामूल रहा जिनमें क़ुरआन व हदीस का कोई स्पष्ट फ़ैसला न था। क्योंकि हज़रत अ़ली रज़ियल्लाहु अ़न्हु के जवाब में आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने काम का यही तरीक़ा बतलाया था।

चौथा मसला- इस्लामी हुकूमत में मश्विरे का दर्जा क्या है?

जैसा कि ऊपर ज़िक्र किया गया है कि क़ुरआने करीम ने दो जगह मश्विरे का स्पष्ट तौर पर हुक्म दिया है- एक यही ज़िक्र हुई आयत और दूसरे सूरः शूरा की आयत, जिसमें सच्चे मुसलमानों की सिफ़ात बयान करते हुए एक सिफ़त यह बयान फ़रमाई गई है:

وَاَمْرُهُمْ شُوْرٰى بَيْنَهُمْ. (٤٢:٣٨)

यानी "और उनका काम आपस के मश्विरे से होता है" इन दोनों जगह पर मश्विरे के साथ लफ़्ज़ अम्र ज़िक्र हुआ है, और लफ़्ज़ अम्र की मुफ़स्सल तहक़ीक़ ऊपर बयान हो चुकी है कि हर अहम और विशेष शान रखने वाले क़ौल व फ़ेल को भी कहा जाता है और हुक्म और हुकूमत

के लिये भी बोला जाता है। अम्र के चाहे पहले मायने मुराद लें या दूसरे मायने, हुकूमत के मामलात में मश्चिरा लेना हर हाल में इन आयतों से ज़रूरी मालूम होता है। हुक्म या हुकूमत मुराद लेने की सूरत में तो ज़ाहिर ही है, और अगर आम मायने मुराद लिये जायें तब भी हुक्म और हुकूमत के मामलात अहम और विशेष महत्व वाले होने की हैसियत से काबिले मश्चिरा ठहरेंगे। इसलिये इस्लामी हाकिम व अमीर के फ़राईज़ में से है कि हुकूमत के अहम मामलात में राय-मश्चिरे वाले, ज़िम्मेदार और तजुर्बेकार लोगों से मश्चिरा लिया करे। क़ुरआने करीम की उक्त आयतों और रसूले करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम और ख़ुलफ़ा-ए-राशिदीन रज़ियल्लाहु अन्हुम का निरन्तर मामूल और तरीक़ा इसकी रोशन सनद है।

इन दोनों आयतों में जिस तरह हुकूमत के मामलात में मश्चिरे की ज़रूरत वाज़ेह हुई इसी तरह इनसे इस्लाम के हुकूमत के अन्दाज़, ढंग और क़ानून के कुछ बुनियादी उसूल भी सामने आ गये कि इस्लामी हुकूमत एक शूराई हुकूमत है, जिसमें अमीर का चुनाव मश्चिरे से होता है ख़ानदानी विरासत से नहीं। आज तो इस्लामी तालीमात की बरकत से पूरी दुनिया में इस उसूल का लोहा माना जा चुका है, शख़्सी (व्यक्तिगत) बादशाहतें भी मर्ज़ी से या नामर्ज़ी से इसी तरफ़ आ रही हैं, लेकिन अब से चौदह सौ साल पहले के ज़माने की तरफ़ मुड़कर देखिये जबकि पूरी दुनिया पर आज के तीन बड़ों की जगह दो बड़ों की हुकूमत थी एक **किसरा**, दूसरा **क़ैसर**। और इन दोनों के क़ानून निजी हुकूमत और विरासती बादशाहत होने में संयुक्त थे, जिसमें एक तन्हा शख़्स लाखों करोड़ों इनसानों पर अपनी क़ाबलियत व सलाहियत से नहीं बल्कि विरासत के ज़ालिमाना उसूलों की बिना पर हुकूमत करता था, और इनसानों को पालतू जानवरों का दर्जा देना भी बादशाही इनाम समझा जाता था। हुकूमत का यही नज़रिया दुनिया के अधिकतर हिस्से पर मुसल्लत था, सिर्फ़ यूनान में लोकतंत्र के चन्द धुमिल और नामुकम्मल नुक़ूश पाये जाते थे लेकिन वे भी इतने नाक़िस और बेजान थे कि उन पर किसी हुकूमत की बुनियाद रखना मुश्किल था। इसी वजह से लोकतंत्र के उन यूनानी उसूलों पर कभी कोई स्थिर हुकूमत नहीं बन सकी, बल्कि वे उसूल **अरस्तू** के फ़ल्सफ़े का एक हिस्सा बनकर रह गये। इसके विपरीत इस्लाम ने हुकूमत में विरासत का ग़ैर-फ़ितरी उसूल बातिल करके हुकूमत के अमीर (बादशाह व शासक) को गद्दी पर बिठाना या उतारना जमहूर (पब्लिक और अवाम) के इख़्तियार में दे दिया। जिसको वे अपने नुमाईन्दों (प्रतिनिधियों) और ज़िम्मेदारों के ज़रिये इस्तेमाल कर सकें। बादशाह परस्ती की दलदल में फंसी हुई दुनिया इस्लामी तालीमात ही के ज़रिये इस न्यायपूर्ण और फ़ितरी सिस्टम से वाक़िफ़ हुई और यही रूह है उस तर्ज़े हुकूमत की जिसको आज जमहूरियत (लोकतंत्र) का नाम दिया जाता है।

लेकिन मौजूदा अन्दाज़ और ढंग की जमहूरियतें चूँकि बादशाही ज़ुल्म व सितम के रद्देअमल (प्रतिक्रिया) के तौर पर वजूद में आईं तो वे भी इस अनियमितता के साथ आईं कि अवाम को बेमुहार बनाकर हुकूमत के पूरे क़ानून का ऐसा आज़ाद मालिक बनाया कि उनके दिल व दिमाग़ ज़मीन व आसमान और तमाम इनसानों को पैदा करने वाले ख़ुदा और उसके असली मालिक व

हाकिम होने के तसव्वुर से भी बेगाना हो गये। अब उनकी जमहूरियतें ख़ुदा तआ़ला ही के बख़्शे हुए अ़वामी इख़्तियार पर ख़ुदा तआ़ला की लागू की हुई पाबन्दियों को भी दिल पर बोझ और इन्साफ़ के ख़िलाफ़ तसव्वुर करने लगीं।

इस्लामी क़ानून ने जिस तरह अल्लाह की मख़्लूक़ को किसरा व कैसर (प्राचीन ईरान व रोम के बादशाहों) और दूसरी शख़्सी बादशाहतों के ज़ुल्म व सितम के पंजे से निजात दिलाई इसी तरह ख़ुदा को न पहचानने वाली यूरोपीय जमहूरियतों को भी ख़ुदा को पहचानने और ख़ुदा परस्ती का रास्ता दिखलाया और बतलाया कि मुल्क के हाकिम हों या अ़वाम ख़ुदा तआ़ला के दिये हुए क़ानून के सब पाबन्द हैं। उनके अ़वाम और अ़वामी असेम्बली के इख़्तियारात, क़ानून बनाने, हाकिम को ओ़हदे पर लाने या उतारने का काम अल्लाह तआ़ला के मुक़र्रर किये हुए क़ानून और हदों के अन्दर हैं। उन पर लाज़िम है कि अमीर के चुनाव में और ओ़हदों और पदों की तक़सीम में एक तरफ़ क़ाबलियत और सलाहियत की पूरी रियायत करें तो दूसरी तरफ़ उनकी समझदारी व अमानत (सच्चाई और ईमानदारी) को परखें। अपना अमीर ऐसे शख़्स को चुनें और बनायें जो इल्म, परहेज़गारी, ईमानदारी, सच्चाई, अमानत, सलाहियत और सियासी तजुर्बे में सबसे बेहतर हो। फिर यह चुना जाने वाला अमीर (हाकिम) भी आज़ाद और बेलगाम नहीं, बल्कि राय वालों से मश्विरा लेने का पाबन्द रहे। क़ुरआने करीम की उक्त आयत और रसूले अकरम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम और ख़ुलफ़ा-ए-राशिदीन रज़ियल्लाहु अ़न्हुम का अ़मल व नमूना इस पर शाहिद (गवाह और सुबूत) है। हज़रत उमर रज़ियल्लाहु अ़न्हु का इरशाद हैः

لَاخِلَافَةَ اِلَّا عَنْ مَّشْوَرَةٍ. (كنز العمال بحواله ابن ابى شيبة)

"यानी शूराईयत (सलाह व मश्विरे) के बग़ैर ख़िलाफ़त नहीं है।"

शूराईयत और मश्विरे को इस्लामी हुकूमत के लिये बुनियादी हैसियत हासिल है यहाँ तक कि अगर हुकूमत का अमीर मश्विरे से आज़ाद हो जाये या ऐसे लोगों से मश्विरा ले जो शरई एतिबार से मश्विरे के अहल (क़ाबिल) न हों तो उसको उसके ओ़हदे से हटाना ज़रूरी है।

ذَكَرَابْنُ عَطِيَّةَ اَنَّ الشُّوْرٰى مِنْ قَوَاعِدِ الشَّرِيْعَةِ وَعَزَآئِمِ الْاَحْكَامِ وَمَنْ لَّا يَسْتَشِيْرُ اَهْلَ الْعِلْمِ وَالدِّيْنِ فَعَزْلُهٗ وَاجِبٌ، هٰذَا مَا لَا خِلَافَ لَهٗ. (البحر المحيط لابى حيان)

"इब्ने अ़तीया ने फ़रमाया कि शूराईयत (मश्विरा सिस्टम) शरीअ़त के क़ानूनों और बुनियादी उसूलों में से है, जो अमीर (हाकिम) इल्म वालों और दीनदारों से मश्विरा न ले उसको उसके पद से हटाना वाजिब है, और यह एक ऐसा मसला है जिसमें किसी का इख़्तिलाफ़ (मतभेद) नहीं।"

मश्विरे के ज़रूरी होने से इस्लामी हुकूमत और उसके बाशिन्दों (रहने वालों) पर जो परिणाम, फल और बरकतें हासिल होंगी उनका अन्दाज़ा इससे लगाईये कि रसूले अकरम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने मश्विरे को रहमत से ताबीर फ़रमाया। इब्ने अ़दी और बैहक़ी ने हज़रत इब्ने अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु से रिवायत किया है कि जब यह आयत नाज़िल हुई तो रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने इरशाद फ़रमाया कि अल्लाह और उसके रसूल को इस

मश्विरे की ज़रूरत नहीं लेकिन अल्लाह तआ़ला ने इसको मेरी उम्मत के लिये एक रहमत बनाया है। (बयानुल-क़ुरआन)

मतलब यह है कि अगर अल्लाह तआ़ला चाहता तो अपने रसूल को हर काम वही के ज़रिये बतला देता, किसी काम में भी मश्विरे की ज़रूरत न छोड़ता, लेकिन उम्मत की मस्लेहत इसमें थी कि आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के ज़रिये मश्विरे की सुन्नत जारी कराई जाये। इसलिये बहुत से मामलात ऐसे छोड़ दिये जिनमें स्पष्ट तौर पर कोई वही (अल्लाह की तरफ़ से पैग़ाम व हिदायत) नाज़िल नहीं हुई, उनमें आपको मश्विरा लेने की हिदायत फ़रमाई गई है।

पाँचवाँ मसला- मश्विरे में मतभेद हो जाये तो फ़ैसले की क्या सूरत होगी?

मश्विरे में अगर राय का इख़्तिलाफ़ (यानी मतभेद) हो जाये तो क्या आजकल के संसदीय उसूल पर अक्सरियत का फ़ैसला नाफ़िज़ (लागू) करने पर अमीर मजबूर होगा या उसको इख़्तियार होगा कि अक्सरियत हो या अक़ल्लियत जिस तरफ़ दलीलों की क़ुव्वत और हुकूमत की मस्लेहत (फ़ायदा) ज़्यादा नज़र आये उसको इख़्तियार करे? क़ुरआन व हदीस और रसूले अकरम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम और सहाबा रज़ियल्लाहु अ़न्हुम के अ़मल व नमूने से यह बात साबित नहीं होती कि मतभेद की सूरत में अमीर बहुमत के फ़ैसले का पाबन्द व मजबूर है, बल्कि क़ुरआने करीम के कुछ इशारात और हदीस और सहाबा किराम के अ़मल से यह वाज़ेह होता है कि मतभेद होने की सूरत में अमीर अपनी राय में जो बेहतर समझे उसके मुताबिक़ किसी एक सूरत को इख़्तियार कर सकता है, चाहे अक्सरियत (बहुमत) के मुताबिक़ हो या अक़ल्लियत (अल्पमत) के, अलबत्ता अमीर अपना इत्मीनान हासिल करने के लिये जिस तरह दूसरी दलीलों पर नज़र करेगा इसी तरह अक्सरियत का एक चीज़ पर मुत्तफ़िक़ होना भी कई बार उसके लिये इत्मीनान व संतोष का सबब बन सकता है।

उक्त आयत में ग़ौर फ़रमाईये, इसमें रसूले अकरम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को मश्विरे का हुक्म देने के बाद फ़रमाया गया है:

فَإِذَا عَزَمْتَ فَتَوَكَّلْ عَلَى اللّٰهِ

यानी मश्विरे के बाद आप जब किसी जानिब को तय करके पुख़्ता इरादा कर लें तो फिर अल्लाह पर भरोसा कीजिये।

इसमें "अ़ज़म्-त" के लफ़्ज़ में अ़ज़्म यानी हुक्म को नाफ़िज़ करने का पुख़्ता इरादा सिर्फ़ आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की तरफ़ मन्सूब किया गया, 'अ़ज़मतुम' नहीं फ़रमाया जिससे इरादे और लागू करने में सहाबा रज़ियल्लाहु अ़न्हुम की शिर्कत मालूम होती। इसके इशारे से साबित होता है कि मश्विरा लेने के बाद लागू करना और पुख़्ता इरादा करना मोतबर सिर्फ़ अमीर का है। हज़रत उमर बिन ख़त्ताब रज़ियल्लाहु अ़न्हु कई बार दलीलों के लिहाज़ से अगर

अ़ब्दुल्लाह बिन अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु की राय ज़्यादा मज़बूत होती थी तो उनकी राय पर फ़ैसला नाफ़िज़ फ़रमाते थे, हालाँकि मज्लिस में अक्सर ऐसे सहाबा किराम मौजूद होते थे जो हज़रत इब्ने अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु से उम्र, इल्म और तादाद में ज़्यादा होते थे। हुज़ूरे अकरम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने बहुत मर्तबा हज़राते शैख़ैन (यानी सिद्दीक़े अकबर और फ़ारूक़े आज़म रज़ियल्लाहु अ़न्हुमा) की राय को जमहूर सहाबा (यानी बड़ी और अक्सरियत) के मुक़ाबले में तरजीह दी है, यहाँ तक कि यह समझा जाने लगा कि मज़कूरा आयत सिर्फ़ इन दोनों हज़रात से मश्विरा लेने के लिये नाज़िल हुई है। इमाम हाकिम ने मुस्तद्रक में अपनी सनद के साथ हज़रत इब्ने अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु से रिवायत किया है:

عَنِ ابْنِ عَبَّاسٍ فِيْ قَوْلِهٖ تَعَالٰى (وَشَاوِرْهُمْ فِي الْاَمْرِ) قَالَ اَبُوْبَكْرٍ وَّعُمَرُ (ابن كثير)

"इब्ने अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु फ़रमाते हैं कि इस आयत में 'शाविरहुम' (उनसे मश्विरा करो) में उन से मुराद हज़राते शैख़ैन हैं।"

कल्बी की रिवायत इससे भी ज़्यादा स्पष्ट है। फ़रमाते हैं:

عَنِ ابْنِ عَبَّاسٍ قَالَ نَزَلَتْ فِيْ اَبِيْ بَكْرٍ وَّعُمَرَ وَكَانَا حَوَارِيَّيْ رَسُوْلِ اللّٰهِ صَلَّى اللّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ وَوَزِيْرَيْهِ وَاَبَوَيِ الْمُسْلِمِيْنَ. (ابن كثير)

"इब्ने अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु फ़रमाते हैं कि यह आयत हज़रत अबू बक्र और हज़रत उमर रज़ि. से मश्विरा लेने के बारे में नाज़िल हुई है। ये दोनों हज़रात जनाब रसूले अकरम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के ख़ास सहाबी और वज़ीर थे और मुसलमानों के मुरब्बी थे।"

रसूले अकरम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने एक मर्तबा हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ और हज़रत उमर रज़ियल्लाहु अ़न्हुमा को ख़िताब करते हुए फ़रमाया था:

لَوِ اجْتَمَعْتُمَا فِيْ مَشْوَرَةٍ مَا خَالَفْتُكُمَا. (ابن كثير بحواله مسند احمد)

"जब तुम दोनों किसी राय पर मुत्तफ़िक़ (सहमत) हो जाओ तो मैं तुम दोनों के ख़िलाफ़ नहीं करता।"

एक इश्काल और उसका जवाब

यहाँ यह इश्काल किया जा सकता है कि यह तो जमहूरियत (अ़वामी राय) के ख़िलाफ़ है और शख़्सी (निजी) हुकूमत का तर्ज़ है और इससे जमहूर को नुक़सान पहुँचने का अन्देशा है।

जवाब यह है कि इस्लामी क़ानून ने इसकी रियायत पहले कर ली है, क्योंकि अ़वाम को यह इख़्तियार ही नहीं दिया कि जिसको चाहें अमीर बना दें, बल्कि उन पर लाज़िम क़रार दिया है कि इल्म व अ़मल, काम की क़बलियत, ख़ुदा तरसी और ईमानदारी व सच्चाई के एतिबार से जिस शख़्स को सबसे बेहतर समझें सिर्फ़ उसको अमीर चुनें। तो जिस शख़्स को इन आला सिफ़्तों (गुणों और ख़ूबियों) के तहत चुना गया हो उस पर ऐसी पाबन्दियाँ लगाना जो बद-दियानत और बदकार व बुरे लोगों पर आयद की जाती हैं अ़क्ल व इन्साफ़ का ख़ून करना और काम करने

वालों की हिम्मत तोड़ना और मुल्क व क़ौम के काम में बाधा डालने के बराबर होगा।

छठा मसला- हर काम में मुकम्मल तदबीर करने के बाद अल्लाह पर भरोसा करना

इस जगह यह बात बहुत ही क़ाबिले ग़ौर है कि हुकूमत के निज़ाम और दूसरे अहम मामलों में तदबीर और मश्विरे के अहकाम के बाद यह हिदायत दी गई है कि सब तदबीरें करने के बाद भी जब काम करने का पुख़्ता इरादा करो तो अपनी अ़क्ल व राय और तदबीरों पर भरोसा न करो, बल्कि भरोसा सिर्फ़ अल्लाह तआ़ला पर करो। क्योंकि ये सब तदबीरें तमाम कामों की व्यवस्था करने वाले (यानी अल्लाह तआ़ला) के क़ब्ज़ा-ए-क़ुदरत में हैं, इनसान क्या और उसकी राय व तदबीर क्या। हर इनसान अपनी ज़िन्दगी के हज़ारों वाक़िआ़त में इन चीज़ों के नाकाम और बेअसर हो जाने का अनुभव करता रहता है। मौलाना रूमी रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने ख़ूब फ़रमाया है:

ख़ेश रा दीदेम व रुस्वाई-ए-ख़ेश
इम्तिहाने मा मकुन ऐ शाहे बेश

कि ऐ हर चीज़ के मालिक हम इम्तिहान और आज़माईश के क़ाबिल नहीं, तू हमें इससे महफ़ूज़ रख, इसलिये कि हम अपनी अ़क्ल व तदबीर की नाकामी को बहुत बार देख चुके हैं।

मुहम्मद इमरान क़ासमी बिज्ञानवी

इस जुमले:

فَإِذَا عَزَمْتَ فَتَوَكَّلْ عَلَى اللّٰهِ

(फिर जब आप इरादा कर चुके उस काम का तो अल्लाह पर भरोसा कीजिये) से यह भी वाज़ेह हो गया कि तवक्कुल (अल्लाह पर भरोसा करना) असबाब, साधनों और तदबीर के छोड़ देने का नाम नहीं, बल्कि उपलब्ध असबाब (साधनों) को छोड़कर तवक्कुल करना अम्बिया की सुन्नत और क़ुरआन की तालीम के ख़िलाफ़ है, हाँ दूर के असबाब और अपनी पहुँच से बाहर की फ़िक्रों में पड़े रहना या सिर्फ़ असबाब और तदबीर ही को असरदार (प्रभावी और कामयाबी दिलाने वाला) समझकर और असबाब के मालिक और पूरी व्यवस्था को चलाने वाले (यानी अल्लाह तआ़ला) से ग़ाफ़िल हो जाना बेशक तवक्कुल के ख़िलाफ़ है।

إِنْ يَّنْصُرْكُمُ اللّٰهُ فَلَا غَالِبَ لَكُمْ ۚ وَإِنْ يَّخْذُلْكُمْ فَمَنْ ذَا الَّذِيْ يَنْصُرُكُمْ مِّنْ بَعْدِهٖ ۗ وَعَلَى اللّٰهِ فَلْيَتَوَكَّلِ الْمُؤْمِنُوْنَ ۝ وَمَا كَانَ لِنَبِيٍّ أَنْ يَّغُلَّ ۚ وَمَنْ يَّغْلُلْ يَأْتِ بِمَا غَلَّ يَوْمَ الْقِيٰمَةِ ۚ ثُمَّ تُوَفّٰى كُلُّ نَفْسٍ مَّا كَسَبَتْ وَهُمْ لَا يُظْلَمُوْنَ ۝ أَفَمَنِ اتَّبَعَ رِضْوَانَ اللّٰهِ كَمَنْ بَآءَ بِسَخَطٍ مِّنَ اللّٰهِ

وَمَأْوٰىهُ جَهَنَّمُ ۚ وَبِئْسَ الْمَصِيْرُ ۝ هُمْ دَرَجٰتٌ عِنْدَ اللّٰهِ ۚ وَاللّٰهُ بَصِيْرٌ ۢ بِمَا يَعْمَلُوْنَ ۝ لَقَدْ مَنَّ اللّٰهُ
عَلَى الْمُؤْمِنِيْنَ اِذْ بَعَثَ فِيْهِمْ رَسُوْلًا مِّنْ اَنْفُسِهِمْ يَتْلُوْا عَلَيْهِمْ اٰيٰتِهٖ وَيُزَكِّيْهِمْ وَيُعَلِّمُهُمُ الْكِتٰبَ
وَالْحِكْمَةَ ۚ وَاِنْ كَانُوْا مِنْ قَبْلُ لَفِيْ ضَلٰلٍ مُّبِيْنٍ ۝ اَوَلَمَّآ اَصَابَتْكُمْ مُّصِيْبَةٌ قَدْ اَصَبْتُمْ مِّثْلَيْهَا ۙ
قُلْتُمْ اَنّٰى هٰذَا ۚ قُلْ هُوَ مِنْ عِنْدِ اَنْفُسِكُمْ ۚ اِنَّ اللّٰهَ عَلٰى كُلِّ شَيْءٍ قَدِيْرٌ ۝ وَمَآ اَصَابَكُمْ يَوْمَ
الْتَقَى الْجَمْعٰنِ فَبِاِذْنِ اللّٰهِ وَلِيَعْلَمَ الْمُؤْمِنِيْنَ ۝ وَلِيَعْلَمَ الَّذِيْنَ نَافَقُوْا ۚ وَقِيْلَ لَهُمْ تَعَالَوْا
قَاتِلُوْا فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ اَوِ ادْفَعُوْا ۚ قَالُوْا لَوْ نَعْلَمُ قِتَالًا لَّا اتَّبَعْنٰكُمْ ۚ هُمْ لِلْكُفْرِ يَوْمَئِذٍ اَقْرَبُ
مِنْهُمْ لِلْاِيْمَانِ ۚ يَقُوْلُوْنَ بِاَفْوَاهِهِمْ مَّا لَيْسَ فِيْ قُلُوْبِهِمْ ۚ وَاللّٰهُ اَعْلَمُ بِمَا يَكْتُمُوْنَ ۝ اَلَّذِيْنَ
قَالُوْا لِاِخْوَانِهِمْ وَقَعَدُوْا لَوْ اَطَاعُوْنَا مَا قُتِلُوْا ۚ قُلْ فَادْرَءُوْا عَنْ اَنْفُسِكُمُ الْمَوْتَ اِنْ كُنْتُمْ
صٰدِقِيْنَ ۝ وَلَا تَحْسَبَنَّ الَّذِيْنَ قُتِلُوْا فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ اَمْوَاتًا ۚ بَلْ اَحْيَآءٌ عِنْدَ رَبِّهِمْ يُرْزَقُوْنَ ۝
فَرِحِيْنَ بِمَآ اٰتٰىهُمُ اللّٰهُ مِنْ فَضْلِهٖ ۙ وَيَسْتَبْشِرُوْنَ بِالَّذِيْنَ لَمْ يَلْحَقُوْا بِهِمْ مِّنْ خَلْفِهِمْ ۙ اَلَّا خَوْفٌ
عَلَيْهِمْ وَلَا هُمْ يَحْزَنُوْنَ ۝ يَسْتَبْشِرُوْنَ بِنِعْمَةٍ مِّنَ اللّٰهِ وَفَضْلٍ ۙ وَّاَنَّ اللّٰهَ لَا يُضِيْعُ اَجْرَ
الْمُؤْمِنِيْنَ ۝

इंय्यन्सुर्कुमुल्लाहु फ़ला ग़ालि-ब लकुम् व इंय्यख़्ज़ुल्कुम् फ़-मन् ज़ल्लज़ी यन्सुरुकुम् मिम्-बअ्दिही, व अ़लल्लाहि फ़ल्य-तवक्कलिल् मुअ्मिनून (160) व मा का-न लि-नबिय्यिन् अंय्यग़ुल्-ल, व मंय्यग़्लुल् यअ्ति बिमा ग़ल्-ल यौमल्-क़ियामति सुम्-म तुवफ़्फ़ा कुल्लु नफ़्सिम् मा क-सबत् व हुम् ला युज़्लमून (161) अ-फ़-मनित्त-ब-अ रिज़्वानल्लाहि क-मम्बा-अ

अगर अल्लाह तुम्हारी मदद करेगा तो कोई तुम पर ग़ालिब न हो सकेगा, और अगर मदद न करे तुम्हारी तो फिर ऐसा कौन है जो मदद कर सके तुम्हारी उसके बाद, और अल्लाह ही पर भरोसा चाहिए मुसलमानों को। (160) और नबी का काम नहीं कि छुपा रखे और जो कोई छुपायेगा वह लाएगा अपनी छुपाई चीज़ क़ियामत के दिन, फिर पूरा पायेगा हर कोई जो उसने कमाया और उन पर ज़ुल्म न होगा। (161) क्या एक शख़्स जो ताबे है अल्लाह की मर्ज़ी का' बराबर हो सकता है उसके जिसने कमाया ग़ुस्सा

बि-स-ख़तिम् मिनल्लाहि व मअ्वाहु जहन्नमु, व बिअ्सल्-मसीर (162) हुम् द-रजातुन् अिन्दल्लाहि, वल्लाहु बसीरुम्-बिमा यअ्मलून (163) ल-क़द् मन्नल्लाहु अ़लल्-मुअ्मिनी-न इज़् ब-अ़-स फ़ीहिम् रसूलम्-मिन् अन्फ़ुसिहिम् यतलू अ़लैहिम् आयातिही व युज़क्कीहिम् व युअ़ल्लिमुहुमुल्-किता-ब वल्-हिक्म-त व इन् कानू मिन् क़ब्लु लफ़ी ज़लालिम्-मुबीन (164) ● अ-वलम्मा असाबत्कुम् मुसीबतुन् क़द् असब्तुम् मिस्लैहा क़ुल्तुम् अन्ना हाज़ा, क़ुल् हु-व मिन् अिन्दि अन्फ़ुसिकुम्, इन्नल्ला-ह अ़ला कुल्लि शैइन् क़दीर (165) व मा असाबकुम् यौमल्-तक़ल्-जम्आ़नि फ़बि-इज़्निल्लाहि व लि-यअ्-लमल् मुअ्मिनीन (166) व लि-यअ्-लमल्लज़ी-न नाफ़क़ू व क़ी-ल लहुम् तआ़लौ क़ातिलू फ़ी सबीलिल्लाहि अविद्फ़अू, क़ालू लौ नअ्लमु क़ितालल्-लत्त-बअ्नाकुम, हुम् लिल्कुफ़्रि यौमइज़िन् अक़्रबु मिन्हुम् लिल्-ईमानि यक़ूलू-न

अल्लाह का और उसका ठिकाना दोज़ख़ है, और क्या ही बुरी जगह पहुँचा है। (162) लोगों के मुख़्तलिफ़ (अलग-अलग और विभिन्न) दर्जे हैं अल्लाह के यहाँ! और अल्लाह देखता है जो कुछ करते हैं। (163) अल्लाह ने एहसान किया ईमान वालों पर जो भेजा उनमें रसूल उन्हीं में का, पढ़ता है उन पर आयतें उसकी और पाक करता है उनको यानी शिर्क वग़ैरह से और सिखलाता है उनको किताब और काम की बात और वे तो पहले से खुली गुमराही में थे। (164) ● क्या जिस वक़्त पहुँची तुमको एक तकलीफ़ कि तुम पहुँचा चुके हो उससे दोगुनी तो कहते हो यह कहाँ से आई? तू कह दे यह तकलीफ़ तुमको पहुँची तुम्हारी ही तरफ़ से, बेशक अल्लाह हर चीज़ पर क़ादिर है। (165) और जो कुछ तुमको पेश आया उस दिन कि मिलीं दो फ़ौजें सो अल्लाह के हुक्म से, और इस वास्ते कि मालूम करे ईमान वालों को। (166) और ताकि मालूम करे उनको जो मुनाफ़िक़ थे, और कहा गया उनको कि आओ लड़ो अल्लाह की राह में या दफ़ा करो दुश्मन को, बोले अगर हमको मालूम हो लड़ाई तो अलबत्ता तुम्हारे साथ रहें वे लोग, उस दिन कुफ़्र के क़रीब हैं ये ईमान के

बिअफ़्वाहिहिम् मा लै-स फ़ी क़ुलूबिहिम्, वल्लाहु अअ्लमु बिमा यक्तुमून (167) अल्लज़ी-न क़ालू लि-इख़्वानिहिम् व क़-अदू लौ अताअूना मा क़ुतिलू, क़ुल् फ़द्रऊ अ़न् अन्फ़ुसिकुमुल्मौ-त इन् कुन्तुम् सादिक़ीन (168) व ला तह्सबन्नल्लज़ी-न क़ुतिलू फ़ी सबीलिल्लाहि अम्वातन्, बल् अह्याउन् अ़िन्-द रब्बिहिम् युर्ज़क़ून (169) फ़रिही-न बिमा आताहुमुल्लाहु मिन् फ़ज़्लिही व यस्तब्शिरू-न बिल्लज़ी-न लम् यल्हक़ू बिहिम् मिन् ख़ल्फ़िहिम् अल्ला ख़ौफ़ुन् अ़लैहिम् व ला हुम् यह्ज़नून (170) यस्तब्शिरू-न बिनिअ्मतिम् मिनल्लाहि व फ़ज़्लिंव्-व अन्नल्ला-ह ला युज़ीअु अज्रल्-मुअ्मिनीन (171) ❁	मुक़ाबले में, कहते हैं अपने मुँह से जो नहीं उनके दिल में, और अल्लाह ख़ूब जानता है जो छुपाते हैं। (167) वे लोग हैं जो कहते हैं अपने भाईयों को और आप बैठ रहे हैं- अगर वे हमारी बात मानते तो न मारे जाते, तू कह दे अब हटा दीजियो अपने ऊपर से मौत को अगर तुम सच्चे हो। (168) और तू मुर्दे न समझ उन लोगों को जो मारे गये अल्लाह की राह में बल्कि वे ज़िन्दा हैं अपने रब के पास खाते पीते। (169) ख़ुशी करते हैं उस पर जो दिया उनको अल्लाह ने अपने फ़ज़्ल से और ख़ुश-वक़्त (अच्छी उम्मीद लगाये) होते हैं उनकी तरफ़ से जो अभी तक नहीं पहुँचे उनके पास उनके पीछे से, इस वास्ते कि न डर है उन पर और न उनको ग़म। (170) ख़ुश-वक़्त होते (लुत्फ़ उठाते) हैं अल्लाह की नेमत और फ़ज़्ल से, और इस बात से कि अल्लाह ज़ाया नहीं करता मज़दूरी (बदला और अज्र) ईमान वालों की। (171) ❁

इन आयतों के मज़मून का पीछे से ताल्लुक़

जंगे-उहुद के वाक़िए में वक़्ती और अस्थायी शिकस्त (हार) और मुसलमानों की परेशानी पर हज़राते सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम की तसल्ली के लिये हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को चन्द बातों का हुक्म हुआ था, जिससे रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की नाराज़ी का ख़तरा तो दूर हो गया लेकिन उन हज़रात को इस मग़लूब होने के वाक़िए से हसरत (अफ़सोस) भी थी इसलिये उपरोक्त बारह आयतों में से पहली आयत में उनकी हार हो जाने के अफ़सोस को दिल से दूर करते हैं, तथा बदर के दिन माले ग़नीमत में से एक चादर गुम हो गई, कुछ (कम समझ या मुनाफ़िक़) लोगों ने कहा कि शायद रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने ले

ली हो, और यह चीज़ हकीकत में या देखने में ख़ियानत (बद्-दियानती और चोरी) है। नबी सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की शान इससे पाक और बरी है (कि कोई इस तरह की घटिया सिफ़त आपकी पाक ज़ात के अन्दर एक लम्हे के लिये भी आ सके) लिहाज़ा दूसरी, तीसरी और चौथी आयतों के अन्दर जनाब रसूले मकबूल सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की अज़ीमुश्शान अमानत की सिफ़त और इस ख़्याल की ग़लती को बयान करके पाँचवीं आयत के अन्दर ख़ुद हुज़ूर सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के मुबारक वजूद का एक बहुत बड़ी नेमत होना और आपके नबी बनकर तशरीफ़ लाने का इनसानियत के लिये अज़ीम एहसान होना वाज़ेह फ़रमाया गया है।

चूँकि मोमिनों को इस शिकस्त का बहुत दुख और कुढ़न थी कि बावजूद मुसलमान होने के यह मुसीबत क्यों और किधर से आ गई, इस पर सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अन्हुम को ताज्जुब और अफ़सोस था, तथा मुनाफ़िक़ लोग कहा करते थे कि अगर ये लोग घरों में बैठे रहते तो हलाक न होते, और उन शहीदों की मौत को बदनसीबी और मेहरूमी क़रार देते थे। इसलिये छठी, सातवीं और आठवीं आयात के अन्दर दूसरे उनवान से इस वक़्ती मुसीबत व तकलीफ़ की वजह और हिक्मत वाज़ेह फ़रमाई गई और इसके तहत में मुनाफ़िक़ों की तरदीद भी।

और नवीं आयत में उनके ग़लत अक़ीदे "घरों में बैठे रहना हलाकत से निजात का सबब है" की तरदीद की गई है, और दसवीं, ग्यारहवीं और बारहवीं आयतों में शहीद होने वाले हज़रात की आला दर्जे की कामयाबी, असली ज़िन्दगी और हमेशा की नेमतों को साबित फ़रमा दिया गया है।

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

अगर हक़ तआला तुम्हारा साथ दें तब तो तुमसे कोई नहीं जीत सकता। और अगर तुम्हारा साथ न दें तो उसके बाद ऐसा कौन है जो तुम्हारा साथ दे (और तुमको ग़ालिब कर दे)। और ईमान वालों को सिर्फ़ अल्लाह तआला पर भरोसा रखना चाहिए। और नबी की यह शान नहीं कि वह (नऊज़ु बिल्लाह) ख़ियानत करे। हालाँकि (ख़ियानत करने वाले की तो क़ियामत में रुस्वाई और फ़ज़ीहत होगी, क्योंकि) जो शख़्स ख़ियानत करेगा वह शख़्स अपनी ख़ियानत की हुई चीज़ को क़ियामत के दिन (मैदाने हश्र में) हाज़िर करेगा (ताकि सारी मख़्लूक़ इस बात को जान जाये और सबके रू-ब-रू फ़ज़ीहत और रुस्वाई हो)। फिर (मैदाने क़ियामत के बाद) हर शख़्स को (उन ख़ियानत करने वालों में से) उसके किये का (दोज़ख़ में) पूरा बदला मिलेगा, और उन पर बिल्कुल ज़ुल्म न होगा (कि जुर्म से ज़ायद सज़ा होने लगे। ग़र्ज़ कि ख़ियानत करने वाले पर तो अल्लाह का ग़ज़ब होगा और वह जहन्नम का मुस्तहिक़ हुआ, और अम्बिया अलैहिमुस्सलाम अल्लाह तआला की रज़ा तलब करने की वजह से क़ियामत में इज़्ज़त वाले होंगे, पस दोनों चीज़ें जमा नहीं हो सकतीं, जैसा कि आगे इरशाद है)।

सो ऐसा शख़्स जो कि अल्लाह की रज़ा के ताबे हो (जैसे नबी) क्या वह उस शख़्स के जैसा हो जाएगा जो कि अल्लाह के ग़ज़ब का मुस्तहिक़ हो और उसका ठिकाना दोज़ख़ हो?

(जैसे ख़ियानत और चोरी करने वाला), और वह जाने की बुरी जगह है। (हरगिज़ दोनों बराबर नहीं होंगे बल्कि) ये जिनका ज़िक्र हुआ (यानी अल्लाह की रज़ा को तलब करने वाले और अल्लाह की नाराज़गी वाले) दर्जों में अलग और भिन्न होंगे अल्लाह तआ़ला के यहाँ (कि अल्लाह की रज़ा के ताबे रहने वाला महबूब व जन्नती है, और जिस पर अल्लाह का ग़ज़ब व नाराज़गी हो वह दोज़ख़ी है) और अल्लाह तआ़ला ख़ूब देखते हैं उनके आमाल को (इसलिए हर एक के मुनासिब मामले फ़रमा देंगे)। हक़ीक़त में अल्लाह तआ़ला ने मुसलमानों पर (बड़ा) एहसान किया जबकि उनमें उन्हीं की जिन्स "यानी नस्ल और जमाअ़त में" से एक ऐसे (अ़ज़ीमुश्शान) पैग़म्बर को भेजा कि वह उन लोगों को अल्लाह तआ़ला की आयतें (और अहकाम) पढ़-पढ़कर सुनाते हैं और (ज़ाहिरी और बातिनी गन्दगियों से) उन लोगों की सफ़ाई करते रहते हैं, और उनको (अल्लाह की) किताब और समझ की बातें बतलाते रहते हैं, और यक़ीनन ये लोग (आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के तशरीफ़ लाने के) पहले से खुली ग़लती (यानी शिर्क व कुफ़्र) में (मुब्तला) थे।

और जब (उहुद में) तुम्हारी ऐसी हार हुई जिससे दो हिस्से तुम (बदर में) जीत चुके थे (क्योंकि उहुद में सत्तर मुसलमान शहीद हुए और बदर में सत्तर काफ़िरों को क़ैद और सत्तर को क़त्ल किया था) तो क्या ऐसे वक़्त में तुम (एतिराज़ के तौर पर न सही बतौर ताज्जुब के) यूँ कहते हो कि (बावजूद हमारे मुसलमान होने के) यह (हार) किधर से हुई (यानी क्यों हुई)? आप फ़रमा दीजिए कि यह (हार ख़ास) तुम्हारी तरफ़ से हुई (अगर हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की राय के ख़िलाफ़ न करते तो न हारते। क्योंकि इस शर्त के साथ मदद का वादा हो चुका था) बेशक अल्लाह तआ़ला को हर चीज़ पर पूरी क़ुदरत है। (जब तुमने इताअ़त की अपनी क़ुदरत से तुमको ग़ालिब कर दिया और जब ख़िलाफ़ किया अपनी क़ुदरत से तो तुमको मग़लूब कर दिया) और जो मुसीबत तुम पर पड़ी जिस दिन कि दोनों गिरोह (मुसलमान और कुफ़्फ़ार के) आपस में (जंग के लिये) आमने-सामने हुए (यानी उहुद के दिन) सो (वह मुसीबत) अल्लाह की मर्ज़ी से हुई (क्योंकि इसमें अनेक हिक्मतें थीं जिनका बयान ऊपर भी आ चुका है) और (उनमें से एक हिक्मत यह है) ताकि अल्लाह तआ़ला मोमिनों को भी देख लें (क्योंकि मुसीबत के वक़्त इख़्लास व ग़ैर-इख़्लास ज़ाहिर हो जाता है जैसा कि गुज़र भी चुका है) और उन लोगों को भी देख लें जिन्होंने निफ़ाक़ (दोग़लेपन) का बर्ताव किया, और उनसे (शुरू जंग के वक़्त जबकि तीन सौ आदमियों ने मुसलमानों का साथ छोड़ दिया था जैसा कि पहले आ चुका है) यूँ कहा गया कि (मैदाने जंग में) आओ (फिर हिम्मत हो तो) अल्लाह की राह में लड़ना या (हिम्मत न हो तो गिनती ही बढ़ाकर) दुश्मनों के लिए रोक बन जाना (क्योंकि भारी भीड़ देखकर कुछ तो उनपर रौब होगा, और उससे शायद हट जायें) वे बोले कि अगर हम कोई ढंग की लड़ाई देखते तो ज़रूर तुम्हारे साथ हो लेते (लेकिन यह कोई लड़ाई है? कि वे लोग तुमसे तीन चार गुना ज़्यादा फिर उनके पास सामान भी ज़्यादा ऐसी हालत में लड़ना हलाकत में पड़ना है, लड़ाई इसको नहीं कहते। हक़ तआ़ला इस पर इरशाद फ़रमाते हैं कि) ये (मुनाफ़िक़ लोग) उस दिन (जबकि ऐसा

ख़ुश्क जवाब दिया था) कुफ़्र से (ज़ाहिर में भी) बहुत ज़्यादा नज़दीक हो गये, उस हालत के मुक़ाबले में कि वे (पहले से ज़ाहिर में) ईमान से (किसी क़द्र) नज़दीक थे (क्योंकि पहले से अगरचे वे दिल से मोमिन न थे मगर मुसलमानों के सामने मुवाफ़क़त की बातें बनाते रहते थे। उस रोज़ ऐसी तोता-चश्मी ग़ालिब हुई कि खुल्लम खुल्ला मुख़ालफ़त की बातें मुँह से निकलने लगीं, इसलिये पहले से ईमान के साथ जो ज़ाहिरी निकटता थी वह कुफ़्र के साथ निकटता में तब्दील हो गयी, और यह निकटता उस निकटता से ज़्यादा इसलिए है कि मुवाफ़क़त की बातें दिल से न थीं इसलिए ज़ोरदार न थीं, और ये मुख़ालफ़त की बातें दिल से थीं इसलिए इबारत भी ज़ोरदार थी)। ये लोग अपने मुँह से ऐसी बातें करते हैं जो उनके दिल में नहीं (यानी दिल में तो यह है कि इन मुसलमानों का कभी साथ न देंगे, चाहे लड़ाई ढंग ही की क्यों न हो) और अल्लाह तआ़ला ख़ूब जानते हैं जो कुछ ये अपने दिल में रखते हैं (इसलिए इनके इस क़ौल का ग़लत होना अल्लाह तआ़ला को मालूम है)।

ये ऐसे लोग हैं कि (ख़ुद तो जिहाद में शरीक न हुए और) अपने (हम-नसब) भाईयों के बारे में (जो कि जंग में क़त्ल हो गये, घरों में) बैठे हुए बातें बनाते हैं कि अगर हमारा कहना मानते (यानी हमारे मना करने पर न जाते) तो (बे-फ़ायदा) क़त्ल न किए जाते। आप फ़रमा दीजिए कि अच्छा तो अपने ऊपर से मौत को हटा दो अगर तुम (इस ख़्याल में) सच्चे हो (कि मैदान में जाने से ही हलाकत होती है। क्योंकि क़त्ल से बचना तो मौत ही से बचने के लिये मक़सूद है, जब निर्धारित वक़्त पर मौत घर बैठे भी आ जाती है तो क़त्ल भी मुक़र्ररा वक़्त पर नहीं टल सकता)।

और (ऐ मुख़ातब!) जो लोग अल्लाह की राह में (यानी दीन के वास्ते) क़त्ल किए गये उनको (दूसरे मुर्दों की तरह) मुर्दा मत ख़्याल करो, बल्कि वे लोग (एक अलग क़िस्म की ज़िन्दगी के साथ) ज़िन्दा हैं (और) अपने परवर्दिगार के क़रीबी हैं (यानी मक़बूल हैं) उनको रिज़्क़ भी मिलता है (और) वे ख़ुश हैं उस चीज़ से जो उनको अल्लाह तआ़ला ने अपने फ़ज़्ल (व करम) से अ़ता फ़रमाई (जैसे अपनी निकटता के दर्जे वग़ैरह, यानी ज़ाहिरी रिज़्क़ भी मिलता है और मानवी रिज़्क़ यानी ख़ुशी व प्रसन्नता भी)। और (जिस तरह वे अपने हाल पर ख़ुश हैं उसी तरह) जो लोग (अभी दुनिया में ज़िन्दा हैं और) और उनके पास नहीं पहुँचे (बल्कि) उनसे पीछे रह गये हैं उनकी भी इस हालत पर वे (शहीद हज़रात) ख़ुश होते हैं कि (अगर वे भी शहीद हो जायें तो हमारी तरह) उन पर भी किसी तरह का ख़ौफ़ वाक़े होने वाला नहीं, और न वे (किसी तरह) ग़मगीन होंगे। (ग़र्ज़ कि उनको दो ख़ुशियाँ हासिल होंगी- एक अपने बारे में, दूसरे अपने संबन्धियों के बारे में। आगे इन दोनों ख़ुशियों का सबब यह बताया कि) वे (अपनी हालत पर तो) ख़ुश होते हैं अल्लाह की नेमत व फ़ज़्ल की वजह से (जिसको उन्होंने देख लिया), और (दूसरों की हालत पर ख़ुश होते हैं) इस वजह से कि (वहाँ जाकर देख लिया कि) अल्लाह तआ़ला ईमान वालों (के आमाल) का अज्र ज़ाया नहीं फ़रमाते (तो जो लोग उनके मुताल्लिक़ीन पीछे रह गये हैं और नेक आमाल जिहाद वग़ैरह में लगे हैं उनको भी ऐसे ही इनाम मिलेंगे)।

मआरिफ़ व मसाईल

माले ग़नीमत में चोरी ज़बरदस्त गुनाह है, किसी नबी से ऐसे गुनाह की संभावना व गुमान भी नहीं हो सकता

आयत 'मा का-न लिन्नबिय्यि अंय्यग़ुल्-ल............' एक ख़ास वाकिए के बारे में नाज़िल हुई है। इसके तहत में **ग़लूल** यानी माले ग़नीमत की चोरी का मसला भी आ गया।

तिर्मिज़ी शरीफ़ की रिवायत के मुताबिक़ वाक़िआ यह है कि ग़ज़वा-ए-बदर (बदर की लड़ाई) में माले ग़नीमत में से एक चादर गुम हो गई। कुछ लोगों ने कहा कि शायद रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने ले ली हो। यह कहने वाले अगर मुनाफ़िक़ थे तो कोई दूर की बात नहीं और मुम्किन है कि कोई नासमझ मुसलमान ही हो तो उसने यह समझा होगा कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को इस तरह का इख़्तियार है, इस पर यह आयत नाज़िल हुई, जिसमें **ग़लूल** का बहुत बड़ा गुनाह होना और क़ियामत के दिन उसकी सख़्त सज़ा का ज़िक्र है। और यह कि किसी नबी के मुताल्लिक़ यह गुमान करना कि उसने यह गुनाह किया होगा बहुत ही बेहूदा जुर्रत है, क्योंकि अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम हर गुनाह से मासूम होते हैं।

लफ़्ज़ **ग़लूल** आ़म ख़ियानत (चोरी और बददियानती) के मामले में भी इस्तेमाल होता है और ख़ास कर माले ग़नीमत की ख़ियानत के लिये भी, और माले ग़नीमत में चोरी और ख़ियानत का जुर्म आ़म चोरियों और ख़ियानतों से ज़्यादा सख़्त और बड़ा है, क्योंकि माले ग़नीमत में पूरे इस्लामी लश्कर का हक़ होता है तो जिसने उसमें चोरी की उसने सैंकड़ों हज़ारों आदमियों की चोरी की। अगर किसी वक़्त उसको तलाफ़ी (भरपाई) का ख़्याल भी आये तो बहुत मुश्किल है कि सब को उनका हक़ पहुँचाये या माफ़ कराये, बख़िलाफ़ दूसरी चोरियों के कि अगर माल का मालिक मालूम व मुतैयन है और किसी वक़्त अल्लाह ने तौबा की तौफ़ीक़ दी तो उसका हक़ अदा करके या माफ़ कराकर बरी हो सकता है। यही वजह थी कि एक ग़ज़वे (इस्लामी जंग) में एक शख़्स ने ऊन का कुछ हिस्सा छुपाकर अपने पास रख लिया था, माले ग़नीमत तक़सीम होने के बाद उसको ख़्याल आया तो हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की ख़िदमत में लेकर हाज़िर हुआ, आपने बावजूद रहमतुल-लिल्आ़लमीन होने और उम्मत पर माँ-बाप से ज़्यादा शफ़ीक़ होने के उसको यह कहकर वापस कर दिया कि अब मैं इसको किस तरह सारे लश्कर में तक़सीम करूँ। अब तो क़ियामत के दिन ही तुम इसको लेकर हाज़िर होगे।

इसी लिये **ग़लूल** की सज़ा भी आ़म चोरियों से ज़्यादा सख़्त है कि मैदाने हश्र में जहाँ सारी मख़्लूक़ जमा होगी, सब के सामने उसको इस तरह रुस्वा किया जायेगा कि जो माल चोरी किया था वह उसकी गर्दन पर लदा हुआ होगा। बुख़ारी व मुस्लिम में हज़रत अबू हुरैरह रज़ियल्लाहु अ़न्हु की रिवायत से मज़कूर है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया- देखो ऐसा न हो कि क़ियामत में किसी को मैं इस तरह देखूँ कि उसकी गर्दन पर एक ऊँट लदा हुआ

हो (और यह ऐलान होता हो कि इसने माले ग़नीमत का ऊँट चुराया था) वह शख़्स अगर मुझसे शफ़ाअ़त का तालिब होगा तो मैं उसको साफ़ जवाब दे दूँगा कि मैंने अल्लाह का हुक्म पहुँचा दिया था, अब मैं कुछ नहीं कर सकता।

अल्लाह बचाये यह मैदाने हश्र की रुस्वाई होगी। कुछ रिवायतों में है कि जिनके साथ यह मामला होगा वे तमन्ना करेंगे कि हमें जहन्नम में भेज दिया जाये मगर इस रुस्वाई से बच जायें।

वक़्फ़ के मालों और सरकारी ख़ज़ाने में चोरी 'ग़लूल' के हुक्म में है

यही हाल मस्जिदों, मदरसों, ख़ानक़ाहों और वक़्फ़ के मालों का है, जिनमें हज़ारों लाखों मुसलमानों का चन्दा होता है। अगर माफ़ भी कराये तो किस-किस से माफ़ कराये। इसी तरह हुकूमत के सरकारी ख़ज़ाने (बैतुल-माल) का हुक्म है, क्योंकि उसमें पूरे मुल्क के बाशिन्दों का हक़ है, जो उसमें चोरी करे उसने सब की चोरी की। मगर चूँकि यही माल उमूमन ऐसे होते हैं जिनका कोई शख़्स मालिक नहीं होता, निगरानी करने वाले लापरवाई करते हैं, चोरी के मौक़े बहुत अधिक होते हैं, इसलिये आजकल दुनिया में सबसे ज़्यादा चोरी और ख़ियानत इन्हीं मालों में हो रही है और लोग इसके बुरे अन्जाम और ज़बरदस्त वबाल से ग़ाफ़िल हैं कि इस जुर्म की सज़ा अ़ज़ाबे जहन्नम के अ़लावा मैदाने हश्र की रुस्वाई भी है, और रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की शफ़ाअ़त से मेहरूमी भी। (हम इससे अल्लाह की पनाह माँगते हैं)

रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का वजूद मुबारक पूरी इनसानियत पर सबसे बड़ा एहसान है

आयत 'लक़द् मन्नल्लाहु अ़लल् मुअ्मिनी-न........'। इसी मज़मून की एक आयत नम्बर 129 तक़रीबन इन्हीं अलफ़ाज़ के साथ सूरः ब-क़रह में गुज़र चुकी है, जिसकी तफ़सीर व तशरीह तफ़सील के साथ मआ़रिफ़ुल-क़ुरआन की पहली जिल्द में आ चुकी है, उसको देखा जाये। यहाँ आयत में एक लफ़्ज़ ज़्यादा है: 'लक़द् मन्नल्लाहु अ़लल् मुअ्मिनी-न' यानी रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को दुनिया में मबऊस फ़रमाकर (नबी बनाकर भेजना) हक़ तआ़ला ने मोमिनों पर बड़ा एहसान फ़रमाया है।

इसके मुताल्लिक़ पहली बात तो यह क़ाबिले ग़ौर है कि क़ुरआने करीम की वज़ाहत के मुताबिक़ नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम रहमतुल-लिल्आ़लमीन (तमाम जहान वालों के लिये रहमत) हैं और पूरे आ़लम के लिये आपका वजूद बहुत बड़ी नेमत और ज़बरदस्त एहसान है। इस जगह इसको सिर्फ़ मोमिनों के लिये फ़रमाना ऐसा ही है जैसे क़ुरआने करीम को 'मुत्तक़ियों के लिये हिदायत' फ़रमाना, कि क़ुरआन का सारे आ़लम के लिये हिदायत होना दूसरी

आयतों से साबित है, मगर कुछ जगह इसको मुत्तक़ी हज़रात के साथ मख़्सूस करके बयान फ़रमाया। इसकी वजह दोनों जगह मुश्तरक (संयुक्त) तौर पर एक ही है, अगरचे रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का वजूद मुबारक पूरे आ़लम और हर मोमिन व काफ़िर के लिये बड़ी नेमत और एहसाने अ़ज़ीम है, इसी तरह क़ुरआने करीम पूरी इनसानी दुनिया के लिये हिदायत की किताब है मगर चूँकि इस नेमत व हिदायत का नफ़ा सिर्फ़ मोमिनों और मुत्तक़ी हज़रात ने हासिल किया इसलिये किसी जगह इसको उनके साथ मख़्सूस करके भी बयान कर दिया गया।

दूसरी बात रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को मोमिनों के लिये या पूरे आ़लम के लिये बहुत बड़ी नेमत और एहसाने अ़ज़ीम होने की तशरीह व वज़ाहत है।

यह बात ऐसी है कि अगर आजकल का इनसान रूहानियत-फ़रामोश (यानी दीन से दूर) और माद्दियत का परस्तार (भौतिकवादी) न होता तो यह मज़मून किसी व्याख्या व खुलासे का मोहताज नहीं था। अ़क़्ल से काम लेने वाला हर इनसान इस एहसाने अ़ज़ीम की हक़ीक़त से खुद वाक़िफ़ होता। मगर हो यह रहा है कि आजका इनसान दुनिया के जानवरों में ज़्यादा होशियार जानवर से ज़्यादा कुछ नहीं रहा, इसको एहसान व इनाम सिर्फ़ वह चीज़ नज़र आती है जो इसके पेट और नफ़्सानी इच्छाओं का सामान मुहैया करे। इसके वजूद की असल हक़ीक़त जो उसकी रूह है उसकी ख़ूबी और ख़राबी से वह पूरी तरह ग़ाफ़िल हो गया है। इसलिये इस तशरीह (खुलासे) की ज़रूरत हुई कि इनसान को पहले तो यह बतलाया जाये कि उसकी हक़ीक़त सिर्फ़ चन्द हड्डियों और गोश्त-पोस्त का मजमूआ़ नहीं बल्कि इनसान की हक़ीक़त वह रूह है जो उसके बदन के साथ मुताल्लिक़ (जुड़ी हुई) है। जब तक यह रूह उसके बदन में है उस वक़्त तक इनसान इनसान है, उसके इनसानी हुक़ूक़ (अधिकार) क़ायम हैं, चाहे वह कितना ही ज़ईफ़ व कमज़ोर, मरने के क़रीब क्यों न हो। किसी की मजाल नहीं कि उसकी जायदाद और संपत्ति पर क़ब्ज़ा कर सके या उसके हुक़ूक़ (अधिकार) छीन सके। लेकिन जिस वक़्त यह रूह उसके बदन से अलग हो गई तो चाहे वह कितना ही ताक़तवर और पहलवान हो और उसके बदनी अंग सब अपनी असली हालत में हों, वह इनसान नहीं रहा, उसका कोई हक़ खुद अपनी जायदाद व संपत्ति में बाक़ी नहीं रहा।

अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम दुनिया में आते हैं इसलिये कि वे इनसानी रूह की सही तरबियत करके इनसान को असली मायनों में इनसान बनायें। ताकि उसके बदन से जो आमाल व अफ़आ़ल सादिर हों वो इनसानियत के लिये मुफ़ीद साबित हों। वह दरिन्दे और ज़हरीले जानवरों की तरह दूसरे इनसानों को तकलीफ़ और पीड़ा देता न फिरे, और खुद अपने भी अन्जाम को समझकर आख़िरत की हमेशा वाली ज़िन्दगी का सामान मुहैया करे। हमारे प्यारे रसूल सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को जैसे अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम की जमाअ़त में इमामत व सरदारी का मक़ाम हासिल है, इनसान को सही इनसान बनाने में भी आपकी शान तमाम अम्बिया से बहुत अलग और विशेष है। आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने अपनी मक्की ज़िन्दगी में सिर्फ़ यही काम

अफ़राद तैयार करने का अन्जाम दिया और इनसानों का ऐसा समाज तैयार कर दिया जिसका मक़ाम फ़रिश्तों की सफ़ों से आगे है। और ज़मीन व आसमान ने उससे पहले ऐसे इनसान नहीं देखे। उनमें से एक-एक रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का ज़िन्दा मोजिज़ा नज़र आता है। उनके बाद के लिये भी आपने जो तालीमात और उनके रिवाज देने के तरीक़े छोड़े हैं उस पर पूरा अ़मल करने वाले उसी मक़ाम को पा सकते हैं जो सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम ने पाया है। (यानी अल्लाह और उसके रसूल की रज़ा व ख़ुशनूदी। **मुहम्मद इमरान क़ासमी बिज्ञानवी**) ये तालीमात सारे आ़लम के लिये हैं, इसलिये आपका वजूद मुबारक पूरी इनसानी दुनिया के लिये ज़बरदस्त एहसान है, अगरचे इससे पूरा नफ़ा मोमिनों ही ने उठाया है।

उहुद के वाकिए में मुसलमानों को वक़्ती शिकस्त और ज़ख़्म व क़त्ल की मुसीबतें पेश आने के कुछ कारण और हिक्मतें

आयत 'अ-व लम्मा असाबत्कुम..........'। पहली आयतों में कई जगह इस मज़मून का ज़िक्र आ चुका है, यहाँ फिर इसकी ताकीद अतिरिक्त वज़ाहत के साथ बयान की गई है। क्योंकि मुसलमानों को इस वाक़िए से सख़्त रंज व तकलीफ़ थी, यहाँ तक कि कुछ हज़रात की ज़बान पर यह भी आया 'अन्ना हाज़ा' कि यह मुसीबत हम पर कहाँ से आ पड़ी, जबकि हम रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के साथ जिहाद में शरीक हैं।

उक्त आयत में अव्वल तो यह बात याद दिलाई कि जितनी मुसीबत तुम पर आज पड़ी है तुम उससे दोगुनी अपने मुख़ालिफ़ पर इससे पहले ग़ज़वा-ए-बदर में डाल चुके हो। क्योंकि ग़ज़वा-ए-उहुद में सत्तर मुसलमान शहीद हुए थे और ग़ज़वा-ए-बदर में मुश्रिकों के सत्तर सरदार मारे गये थे और सत्तर गिरफ़्तार होकर मुसलमानों के क़ब्ज़े में आये थे। इस बात के याद दिलाने से एक तो यह मक़सद है कि मुसलमानों को अपनी मौजूदा तकलीफ़ व परेशानी का एहसास घट जाये, कि जिस शख़्स की दोगुनी जीत हो चुकी हो अगर एक दफ़ा आधी हार व शिकस्त हो भी जाये तो ज़्यादा ग़म और ताज्जुब नहीं होना चाहिये।

दूसरा असल मक़सद आयत के आख़िरी जुमले 'क़ुल् हु-व मिन् अिन्दि अन्फ़ुसिकुम्' में बतलाया कि यह तकलीफ़ व मुसीबत दर हक़ीक़त दुश्मन की ताक़त व अधिकता के सबब से नहीं बल्कि तुम्हारी अपनी कुछ कोताहियों (कमियों और ग़लतियों) के सबब से है, कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के हुक्म की तामील में तुम से कोताही हो गई।

इसके बाद की आयत 'फ़-बिइज़्निल्लाहि......' में इस तरफ़ इशारा किया गया कि यह जो कुछ हुआ हक़ तआ़ला के हुक्म व मर्ज़ी से हुआ, जिसमें बहुत सी हिक्मतें (मस्लेहतें) छुपी हैं।

जिनमें से कुछ का बयान पहले आ चुका है, और एक हिक्मत यह भी है कि अल्लाह तआ़ला सच्चे मोमिनों को भी देख लें और मुनाफ़िक़ों को भी। यानी मोमिनों का इख़्लास और मुनाफ़िक़ों की मुनाफ़कत (दोग़लापन और ईमान का झूठा दावा) ऐसी वाज़ेह हो जाये कि हर देखने वाला देख सके। यहाँ अल्लाह तआ़ला के देखने से मुराद यही है कि दुनिया में जो देखने की सूरत परिचित है उस सूरत में देख लें, वरना अल्लाह तआ़ला तो हर वक़्त हर चीज़ को देख रहे हैं। चुनाँचे यह हिक्मत इस तरह वाज़ेह हो गई कि इस सख़्ती व परेशानी के वक़्त मुनाफ़िक़ लोग अलग होकर खड़े हुए और मुख़्लिस (पक्के सच्चे) मोमिन मुक़ाबले में डटे रहे।

और तसल्ली की एक वजह यह भी है कि जो मुसलमान इस जंग में शहीद हो गये हैं उनको हक़ तआ़ला ने वो इनामात दिये हैं कि दूसरों को उन पर रश्क (ईर्ष्या) आना चाहिये। इस मुनासबत से इसके बाद की आयतः

وَلَا تَحْسَبَنَّ الَّذِيْنَ قُتِلُوْا فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ اَمْوَاتًا

(यानी आयत 169) में शहीदों के ख़ास फ़ज़ाईल बयान फ़रमाये गये हैं।

अल्लाह की राह में शहीद होने वालों के ख़ास फ़ज़ाईल और दर्जे

इस आयत में शहीदों के ख़ास फ़ज़ाईल का बयान है और सही हदीसों में इसकी बड़ी तफ़सील बयान हुई है। इमाम क़ुर्तुबी रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने फ़रमाया है कि शहीदों के भी दर्जे और हालात अलग-अलग होते हैं, इसलिये हदीस की रिवायतों में जो मुख़्तलिफ़ सूरतें आई हैं वो मुख़्तलिफ़ हालात के एतिबार से हैं।

यहाँ शहीदों की पहली फ़ज़ीलत तो यह बयान की गई है कि वे मरे नहीं, बल्कि हमेशा की ज़िन्दगी के मालिक हो गये हैं। यहाँ यह बात क़ाबिले ग़ौर है कि ज़ाहिर में उनका मरना और क़ब्र में दफ़न होना तो देखा जाता और महसूस है, फिर क़ुरआन की अनेक आयतों में उनको मुर्दा न कहने और न समझने की जो हिदायत आई है उसका क्या मतलब है? अगर कहा जाये कि बर्ज़ख़ी (मरने के बाद की) ज़िन्दगी मुराद है तो वह हर शख़्स मोमिन व काफ़िर को हासिल है, कि मरने के बाद उसकी रूह ज़िन्दा रहती है और क़ब्र के सवाल व जवाब के बाद नेक मोमिनों के लिये राहत का सामान और काफ़िर व बदकार लोगों के लिये क़ब्र का अ़ज़ाब क़ुरआन व सुन्नत से साबित है, तो यह बर्ज़ख़ी ज़िन्दगी जब सब के लिये आ़म है तो शहीदों की क्या ख़ुसूसियत हुई?

जवाब यह है कि क़ुरआने करीम की इसी आयत ने यह बतलाया है कि शहीदों को अल्लाह तआ़ला की तरफ़ से जन्नत का रिज़्क़ मिलता है, और रिज़्क़ ज़िन्दा आदमी को मिला करता है। इससे मालूम हुआ कि दुनिया से मुन्तक़िल होते ही शहीद के लिये जन्नत का रिज़्क़ जारी हो

जाता है, और एक ख़ास क़िस्म की ज़िन्दगी उसी वक़्त से उसको मिल जाती है जो आम मुर्दों से अलग और ख़ास हैसियत की है। (तफ़सीरे क़ुर्तुबी)

अब रहा कि वह इम्तियाज़ (खुसूसियत और विशेषता) क्या है? और वह ज़िन्दगी कैसी है? इसकी हक़ीक़त सिवाय ख़ालिक़े कायनात के न कोई जान सकता है न जानने की ज़रूरत है, अलबत्ता कभी-कभी उनकी ख़ास ज़िन्दगी का असर इस दुनिया में भी उनके बदनों पर ज़ाहिर होता है, कि ज़मीन उनको नहीं खाती, वे सही सालिम बाक़ी रहते हैं। (तफ़सीरे क़ुर्तुबी) जिसके बहुत से वाक़िआत देखे गये हैं।

शहीदों की पहली फ़ज़ीलत इस आयत में उनकी विशेष क़िस्म की हमेशा वाली ज़िन्दगी है। दूसरी यह कि उनको अल्लाह तआ़ला की तरफ़ से रिज़्क़ मिलता है। तीसरी फ़ज़ीलतः

فَرِحِيْنَ بِمَآ اٰتٰهُمُ اللّٰهُ

में यह बयान की गई कि वे हमेशा ख़ुश व प्रसन्न रहेंगे उन नेमतों में जो उनको अल्लाह तआ़ला ने अ़ता फ़रमाई हैं। चौथी फ़ज़ीलत यह हैः

وَيَسْتَبْشِرُوْنَ بِالَّذِيْنَ لَمْ يَلْحَقُوْا بِهِمْ

यानी वे अपने जिन मुताल्लिक़ीन (संबन्धियों) को दुनिया में छोड़ गये थे उनके मुताल्लिक़ भी उनको यह ख़ुशी होती है कि वे दुनिया में रहकर नेक अ़मल और जिहाद में मसरूफ़ हैं तो उनको भी यहाँ आकर यही नेमतें और बुलन्द दर्जे मिलेंगे।

और सुद्दी रह. ने बयान फ़रमाया कि शहीद का जो कोई अ़ज़ीज़ दोस्त मरने वाला होता है तो शहीद को पहले से उसकी इत्तिला कर दी जाती है कि फ़ुलाँ शख़्स अब तुम्हारे पास आ रहा है। वह उससे ऐसा ख़ुश होता है जैसे दुनिया में किसी दूर रह रहे दोस्त से मुद्दत के बाद मुलाक़ात की ख़ुशी होती है।

इस आयत के उतरने का मौक़ा और सबब जो इमाम अबू दाऊद रह. ने सही सनद से हज़रत इब्ने अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु से रिवायत किया वह यह है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम से फ़रमाया कि जब उहुद के वाक़िए में तुम्हारे भाई शहीद हुए तो अल्लाह तआ़ला ने उनकी रूहों को सब्ज़ परिन्दों के जिस्म में रखकर आज़ाद कर दिया। वे जन्नत की नहरों और बाग़ों के फलों से अपना रिज़्क़ हासिल करते हैं और फिर उन क़िन्दीलों में आ जाते हैं जो अल्लाह के अ़र्श के नीचे लटकी हुई हैं। जब उन लोगों ने अपनी राहत व ऐश की यह ज़िन्दगी देखी तो कहने लगे कि (हमारे संबन्धी दुनिया में हमारे मरने से ग़मगीन हैं) क्या कोई हमारे हालात की ख़बर उनको पहुँचा सकता है ताकि वे हम पर ग़म न करें और वे भी जिहाद में कोशिश करते रहें। अल्लाह तआ़ला ने फ़रमाया कि हम तुम्हारी यह ख़बर उनको पहुँचाये देते हैं। इस पर यह आयत नाज़िल फ़रमाई गई है। (तफ़सीरे क़ुर्तुबी)

اَلَّذِيْنَ اسْتَجَابُوْا لِلّٰهِ وَ الرَّسُوْلِ مِنْۢ بَعْدِ مَآ اَصَابَهُمُ الْقَرْحُ ۛؕ لِلَّذِيْنَ اَحْسَنُوْا مِنْهُمْ وَ اتَّقَوْا اَجْرٌ عَظِيْمٌ ۝ اَلَّذِيْنَ قَالَ لَهُمُ النَّاسُ اِنَّ النَّاسَ قَدْ جَمَعُوْا لَكُمْ فَاخْشَوْهُمْ فَزَادَهُمْ اِيْمَانًا ۖۗ وَّقَالُوْا حَسْبُنَا اللّٰهُ وَنِعْمَ الْوَكِيْلُ ۝ فَانْقَلَبُوْا بِنِعْمَةٍ مِّنَ اللّٰهِ وَفَضْلٍ لَّمْ يَمْسَسْهُمْ سُوْٓءٌ ۙ وَّاتَّبَعُوْا رِضْوَانَ اللّٰهِ ؕ وَاللّٰهُ ذُوْ فَضْلٍ عَظِيْمٍ ۝ اِنَّمَا ذٰلِكُمُ الشَّيْطٰنُ يُخَوِّفُ اَوْلِيَآءَهٗ ۪ فَلَا تَخَافُوْهُمْ وَخَافُوْنِ اِنْ كُنْتُمْ مُّؤْمِنِيْنَ ۝

अल्लज़ीनस्तजाबू लिल्लाहि वर्रसूलि मिम्-बअ्दि मा असाबहुमुल्क़र्हु, लिल्लज़ी-न अह्सनू मिन्हुम् वत्तक़ौ अज्रुन् अज़ीम (172) अल्लज़ी-न क़ा-ल लहुमुन्नासु इन्नन्ना-स क़द् ज-मअू लकुम् फ़ख़्शौहुम् फ़-ज़ादहुम् ईमानंव्-व क़ालू हस्बुनल्लाहु व निअ्मल् वकील (173) फ़न्क़-लबू बिनिअ्मतिम्-मिनल्लाहि व फ़ज़्लिल्-लम् यम्सस्हुम् सूउंव्-वत्त-बअू रिज़्वानल्लाहि, वल्लाहु ज़ू फ़ज़्लिन् अज़ीम (174) इन्नमा ज़ालिकुमुश्-शैतानु युख़व्विफ़ु औलिया-अहू फ़ला तख़ाफ़ूहुम् व ख़ाफ़ूनि इन् कुन्तुम् मुअ्मिनीन (175)	जिन लोगों ने हुक्म माना अल्लाह का और रसूल का उसके बाद कि पहुँच चुके थे उनको ज़ख़्म, जो उनमें नेक हैं और परहेज़गार उनको सवाब बड़ा है। (172) जिनको कहा लोगों ने कि मक्का वाले आदमियों ने जमा किया है सामान तुम्हारे मुक़ाबले को सो तुम उनसे डरो तो और ज़्यादा हुआ उनका ईमान और बोले काफ़ी है हमको अल्लाह और क्या ख़ूब कारसाज़ है। (173) फिर चले आये मुसलमान अल्लाह के एहसान और फ़ज़्ल के साथ, कुछ न पहुँची उनको बुराई और ताबे हुए अल्लाह की मर्ज़ी के और अल्लाह का फ़ज़्ल बड़ा है। (174) यह जो है सो शैतान है कि डराता है अपने दोस्तों से सो तुम उनसे मत डरो और मुझसे डरो अगर तुम ईमान रखते हो। (175)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

जिन लोगों ने अल्लाह और रसूल के कहने को (जबकि उनको काफ़िरों का पीछा करने के लिये बुलाया गया) क़ुबूल कर लिया इसके बाद कि उनको (अभी ताज़ा) ज़ख़्म (लड़ाई में) लगा था, उन लोगों में जो नेक और मुत्तक़ी हैं (और वास्तव में सब ही ऐसे हैं), उनके लिये (आख़िरत

में) बड़ा सवाब है। ये ऐसे (नेक) लोग हैं कि (कुछ) लोगों ने (यानी अ़ब्दुल-क़ैस वालों ने जो) उनसे (आकर) कहा कि उन लोगों (यानी मक्का वालों ने) तुम्हारे (मुक़ाबले के) लिए (बड़ा) सामान जमा किया है, सो तुमको उनसे अन्देशा करना चाहिए। सो इस (ख़बर) ने उनके ईमान (के जोश) को और ज़्यादा कर दिया और (निहायत हिम्मत व जमाव से यह) कह (कर बात को ख़त्म कर) दिया कि हमको (मुश्किलों के लिये) अल्लाह तआ़ला काफ़ी है, और वही सब काम सुपुर्द करने के लिए अच्छा है (इसी सुपुर्द करने को तवक्कुल कहते हैं)। पस ये लोग ख़ुदा की नेमत और फ़ज़्ल से (यानी सवाब और तिजारत के नफ़े से) भरे हुए वापस आए कि उनको कोई नागवारी ज़रा भी पेश नहीं आई, और वे लोग (इस वाक़िए में) अल्लाह की रज़ा के ताबे रहे, (इसकी बदौलत अपनी दुनियावी नेमतों से नवाज़े गये) और अल्लाह तआ़ला बड़े फ़ज़्ल वाला है। (मुसलमानो!) इससे ज़्यादा कोई (क़ाबिले अन्देशा) बात नहीं कि यह ख़बर देने वाला (अपनी हरकत में) शैतान है कि अपने (मज़हब वाले) दोस्तों से (तुमको डराना) चाहता है, सो तुम उनसे मत डरना और मुझ ही से डरना, अगर तुम ईमान वाले हो।

मआ़रिफ़ व मसाईल

इन आयतों का पीछे से ताल्लुक़ और शाने नुज़ूल

ऊपर ग़ज़वा-ए-उहुद के क़िस्से का ज़िक्र था। मज़कूरा आयतों में इसी जंग से मुताल्लिक़ एक दूसरी जंग का ज़िक्र है जो ग़ज़वा-ए-हमराउल-असद के नाम से मशहूर है। 'हमराउल-असद' मदीना तय्यिबा से आठ मील के फ़ासले पर एक मक़ाम (जगह) का नाम है।

वाक़िआ़ इस ग़ज़वे (लड़ाई और मुहिम) का यह है कि जब मक्का के काफ़िर उहुद के मैदान से वापस हो गये तो रास्ते में जाकर इस पर अफ़सोस हुआ कि हम ग़ालिब आ जाने के बावजूद ख़्वाह-म-ख़्वाह वापस लौट आये, हमें चाहिये था कि एक हल्ला बोल करके मुसलमानों को ख़त्म कर देते। और इस ख़्याल ने कुछ ऐसा असर किया कि फिर वापस मदीने की तरफ़ लौटने का इरादा होने लगा, मगर अल्लाह तआ़ला ने उनके दिलों पर रौब डाल दिया और सीधे मक्का मुकर्रमा को हो लिये, लेकिन कुछ मुसाफ़िरों से जो मदीना की तरफ़ जा रहे थे यह कह गये कि तुम जाकर किसी तरह मुसलमानों के दिल में हमारा रौब जमाओ कि वे फिर लौटकर आ रहे हैं। नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को वही (अल्लाह तआ़ला की तरफ़ से आये पैग़ाम) के ज़रिये यह बात मालूम हो गई, इसलिये आप उनका पीछा करते हुए 'हमराउल-असद' तक पहुँचे। (इब्ने जरीर, रूहुल-मआ़नी)

तफ़सीरे क़ुर्तुबी में है कि उहुद के दूसरे दिन रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने अपने मुजाहिदीन में ऐलान फ़रमाया कि हमें मुश्रिकों का पीछा करना है मगर इसमें सिर्फ़ वही लोग जा सकेंगे जो कल के मुक़ाबले में हमारे साथ थे। इस ऐलान पर दो सौ मुजाहिदीन खड़े हो गये।

सही बुख़ारी में है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने ऐलान फ़रमाया कि कौन है

जो मुश्रिकों का पीछा करने जाये, तो सत्तर हज़रात खड़े हो गये, जिनमें ऐसे लोग भी थे जो गुज़रे कल के मुक़ाबले (जंग) में सख़्त ज़ख़्मी हो चुके थे, दूसरों के सहारे चलते थे। ये हज़रात रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के साथ मुश्रिकों का पीछा करने को रवाना हुए। 'हमराउल-असद' के मक़ाम पर पहुँचे तो वहाँ नुऐम बिन मसऊद मिला, उसने ख़बर दी कि अबू सुफ़ियान ने अपने साथ अतिरिक्त लश्कर जमा करके यह तय किया है कि फिर मदीना पर चढ़ाई करें और मदीना वालों का ख़ात्मा करें। ज़ख़्मी और कमज़ोर सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम इस घबराहट भरी ख़बर के असर को सुनकर एक ज़बान होकर बोले कि हम उसको नहीं जानते 'हस्बुनल्लाहु व नेअ़्मल् वकील' यानी अल्लाह तआ़ला हमारे लिये काफ़ी है, और वही बेहतर मददगार है।

इस तरफ़ तो मुसलमानों को मरऊब करने के लिये यह ख़बर दी गई और मुसलमान इससे मुतास्सिर नहीं हुए। दूसरी तरफ़ माबद ख़ुज़ाई बनी ख़ुज़ाआ़ का एक आदमी मदीना से मक्का की तरफ़ जा रहा था, यह अगरचे मुसलमान न था मगर मुसलमानों का ख़ैरख़्वाह (हमदर्द) था। इसका क़बीला रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का हलीफ़ (साथी) था, इसलिये जब रास्ते में मदीना से लौटते हुए अबू सुफ़ियान को देखा कि वह अपने लौटने पर पछता रहा है और फिर वापसी की फ़िक्र में है तो इसने अबू सुफ़ियान को बताया कि तुम धोखे में हो कि मुसलमान कमज़ोर हो गये, मैं उनके बड़े लश्कर को 'हमराउल-असद' में छोड़कर आया हूँ जो पूरी तैयारी के साथ तुम्हारा पीछा करने के लिये निकला है। अबू सुफ़ियान पर इसकी ख़बर ने रौब डाल दिया।

इस वाक़िए का बयान मज़कूरा तीन आयतों में फ़रमाया गया है। पहली आयत में इरशाद है कि ग़ज़वा-ए-उहुद (उहुद की जंग) में ज़ख़्म खाये हुए होने और मशक़्क़तें बरदाश्त करने के बावजूद जब उनको दूसरे जिहाद की तरफ़ अल्लाह तआ़ला और उसके रसूल सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने बुलाया तो वे उसके लिये भी तैयार हो गये। इस जगह पर एक बात क़ाबिले ग़ौर है, वह यह कि यहाँ जिन मुसलमानों की तारीफ़ बयान की जा रही है उनके दो वस्फ़ (गुण) बयान किये गये- एक तो:

مِنْ بَعْدِ مَآ اَصَابَهُمُ الْقَرْحُ

यानी अल्लाह और उसके रसूल सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के बुलाने पर तैयार होने वाले वे लोग हैं जिनको उहुद में ज़ख़्म पहुँच चुके थे और उनके सत्तर नामवर बहादुर शहीद हो चुके थे और उनके जिस्म भी ज़ख़्मों से चूर थे। लेकिन जब उनको दूसरी दफ़ा बुलाया गया तो वे फ़ौरन जिहाद के लिये तैयार हो गये।

दूसरा वस्फ़:

لِلَّذِيْنَ اَحْسَنُوْا مِنْهُمْ وَاتَّقَوْا

में बयान किया गया है, कि अ़मली जिद्दोजहद और जान क़ुरबान करने के अ़ज़ीम कारनामों

के साथ ये हज़रात एहसान (अल्लाह से ताल्लुक़, नेकी) व तक़वे की उम्दा और कामिल सिफ़ात के मालिक थे, और यह मजमूआ ही उनके बड़े अज्र का सबब है।

इस आयत में लफ़्ज़ 'मिन्हुम' (उनमें से) से यह शुब्हा न किया जाये कि ये सब लोग नेकी व तक़वे वाले नहीं बल्कि उनमें से कुछ थे, इसलिये कि यहाँ हर्फ़ 'मिन' कुछ के लिये नहीं बल्कि बयानिया है, जिस पर ख़ुद इसी आयत के शुरू के अलफ़ाज़ 'अल्लज़ीनस्तजाबू' सुबूत हैं। क्योंकि यह अल्लाह व रसूल के कहने पर लब्बैक कहना और क़ुबूल करना बग़ैर नेकी व तक़वे के हो ही नहीं सकता। इसलिये अक्सर मुफ़स्सिरीन ने इस जगह 'मिन' को बयानिया क़रार दिया है। जिसका हासिल यह है कि ये सब लोग जो एहसान (अल्लाह के ताल्लुक़) व तक़वे की सिफ़ात के मालिक थे, इनके लिये बड़ा अज्र है।

किसी काम के लिये सिर्फ़ कोशिश और जान क़ुरबान करना काफ़ी नहीं जब तक इख़्लास न हो

अलबत्ता इस ख़ास उनवान से एक अहम फ़ायदा यह हासिल हुआ कि कोई काम कितना ही नेक हो, और उसके लिये कोई शख़्स कितनी ही जाँनिसारी (बहादुरी) दिखलाये, अल्लाह के नज़दीक वह अज्र (सवाब) की मुस्तहिक़ उसी वक़्त होगी जबकि उसके साथ एहसान व तक़वा भी हो। जिसका हासिल यह है कि वह अमल ख़ालिस अल्लाह के लिये हो, वरना ख़ाली जाँनिसारी और बहादुरी के वाक़िआत तो काफ़िरों में भी कुछ कम नहीं।

हुक्मे रसूल दर हक़ीक़त अल्लाह ही का हुक्म है

इस वाक़िए में मुश्रिकों का पीछा करने के लिये जाने का हुक्म रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने दिया था, क़ुरआने करीम की किसी आयत में मज़कूर नहीं, मगर इस आयत में जब उन लोगों की फ़रमाँबरदारी की तारीफ़ फ़रमाई तो इस हुक्म को अल्लाह और रसूल दोनों की तरफ़ मन्सूब करके:

الَّذِينَ اسْتَجَابُوا لِلَّهِ وَالرَّسُولِ

फ़रमाया गया। जिसने स्पष्ट तौर पर साबित कर दिया कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम जो हुक्म देते हैं वह अल्लाह का हुक्म भी होता है अगरचे अल्लाह की किताब में मज़कूर न हो।

जो बेदीन हदीस का इनकार करते हैं और रसूल की हैसियत सिर्फ़ एक क़ासिद (पैग़म्बर) की बतलाते हैं (अल्लाह की पनाह) उनके समझने के लिये यह जुमला भी काफ़ी है कि रसूल सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के हुक्म को अल्लाह तआ़ला ने अपना ही हुक्म क़रार दिया, जिससे यह भी वाज़ेह हो गया कि रसूल ख़ुद भी अपनी राय से मस्लेहत के मुताबिक़ कुछ अहकाम दे सकते हैं और उनका वही दर्जा होता है जो अल्लाह की तरफ़ से दिये हुए अहकाम का है।

एहसान का मतलब

एहसान की परिभाषा और मतलब हज़रत जिब्राईल अ़लैहिस्सलाम की हदीस के अन्दर रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने इस तरह बयान फ़रमाया है:

اَنْ تَعْبُدَ اللّٰهَ كَاَنَّكَ تَرَاهُ فَاِنْ لَّمْ تَكُنْ تَرَاهُ فَاِنَّهٗ يَرَاكَ.

"यानी तुम अपने परवर्दिगार की इबादत इस तरह करो कि गोया तुम अल्लाह को देख रहे हो, और अगर यह हालत पैदा न हो तो कम से कम यह हालत तो हो कि वह तुमको देख रहा है।"

तक़्वे की परिभाषा व मतलब

तक़्वे की तारीफ़ (परिभाषा) कई उनवानों से की गई है, लेकिन सबसे ज़्यादा जामे (मुकम्मल) तारीफ़ (परिभाषा) वह है जो हज़रत उबई बिन कअ़ब रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने हज़रत उमर रज़ियल्लाहु अ़न्हु के सवाल करने पर फ़रमाई। हज़रत उमर रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने पूछा था कि तक़्वा क्या है?

हज़रत उबई बिन कअ़ब रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने फ़रमाया कि अमीरुल-मोमिनीन! कभी आपका ऐसे रास्ते पर भी गुज़र हुआ होगा जो काँटों से भरा हो? हज़रत उमर रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने फ़रमाया कई बार हुआ है। हज़रत उबई बिन कअ़ब रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने फ़रमाया ऐसे मौक़े पर आपने क्या किया? हज़रत उमर रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने फ़रमाया कि दामन समेट लिये और बहुत ही एहतियात से चला। हज़रत उबई बिन कअ़ब रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने फ़रमाया कि बस तक़्वा इसी का नाम है। यह दुनिया एक काँटों का मक़ाम है, गुनाहों के काँटों से भरी पड़ी है, इसलिये दुनिया में इस तरह चलना और ज़िन्दगी गुज़ारना चाहिये कि दामन गुनाहों के काँटों से न उलझे इसी का नाम तक़्वा है जो सबसे ज़्यादा क़ीमती सरमाया है। हज़रत अबू दर्दा रज़ियल्लाहु अ़न्हु यह शे'र पढ़ा करते थे:

يَقُوْلُ الْمَرْءُ فَائِدَتِىْ وَمَالِىْ

وَتَقْوَى اللّٰهِ اَفْضَلُ مَا اسْتَفَادَا

"यानी लोग अपने दुनियावी फ़ायदे और माल के पीछे पड़े रहते हैं हालाँकि तक़्वा सबसे बेहतर सरमाया है।"

दूसरी आयत में इस जिहाद के लिये बढ़ने वाले सहाबा किराम रिज़्वानुल्लाहि तआ़ला अ़लैहिम अज्मईन की अतिरिक्त तारीफ़ व प्रशंसा इस तरह की गई:

اَلَّذِيْنَ قَالَ لَهُمُ النَّاسُ اِنَّ النَّاسَ قَدْ جَمَعُوْا لَكُمْ فَاخْشَوْهُمْ فَزَادَهُمْ اِيْمَانًا

यानी ये वे हज़रात हैं कि जब इन लोगों ने कहा कि तुम्हारे ख़िलाफ़ दुश्मनों ने बड़ा सामान इकट्ठा कर लिया है उनसे डरो, जंग का इरादा न करो, तो इस ख़बर ने इनका ईमानी जोश और

बढ़ा दिया, इस वजह से कि अल्लाह और उसके रसूल सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की इताअ़त जब इन हज़रात ने क़ुबूल की थी तो पहले ही दिन से महसूस कर लिया था कि हमने जिस रास्ते पर सफ़र शुरू किया है वह ख़तरों से भरा पड़ा है, क़दम-क़दम पर मुश्किलें और रुकावटें पेश आयेंगी, हमारा रास्ता रोका जायेगा और हमारी इन्क़िलाबी तहरीक को मिटाने के लिये सशत्र (हथियार बन्द) कोशिशें की जायेंगे। इसलिये जब ये हज़रात इस क़िस्म की मुश्किलों को देखते थे तो ईमान की ताक़त पहले से ज़्यादा हो जाती थी, और पहले से ज़्यादा बहादुरी व हिम्मत के साथ काम करने लगते थे।

ज़ाहिर है कि इन हज़रात का ईमान तो इस्लाम लाने के पहले दिन ही से कामिल था लिहाज़ा इन दोनों आयतों में ईमान की ज़्यादती से ईमान की सिफ़ात और ईमान के समरात (फलों) की ज़्यादती मुराद है, और अल्लाह तआ़ला और उसके रसूल सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की दावत पर तैयार हो जाने वाले सहाबा की इस हालत को भी इस जगह ख़ुसूसियत के साथ बयान किया कि उस जिहाद के सफ़र में रास्ते भर यह जुमला उनकी ज़बान का वज़ीफ़ा रहा "हस्बुनल्लाहु व नेअ़्मल-वकील"। इस जुमले के मायने यह हैं कि अल्लाह तआ़ला हमारे लिये काफ़ी है और वही बेहतर मददगार और काम बनाने वाला है।

यहाँ यह बात विशेष तौर पर क़ाबिले ग़ौर है कि रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम और आपके सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम से ज़्यादा तो दुनिया में किसी का तवक्कुल व एतिमाद अल्लाह तआ़ला पर नहीं हो सकता, लेकिन आपके तवक्कुल की सूरत यह न थी कि ज़ाहिरी असबाब को छोड़कर बैठे रहते और कहते कि हमें अल्लाह तआ़ला काफ़ी है, वह बैठे बिठाये हमें ग़लबा अ़ता फ़रमायेगा। नहीं बल्कि आपने सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम को जमा किया, ज़ख़्मी लोगों के दिलों में नई रूह पैदा फ़रमाई, जिहाद के लिये तैयार किया और निकल खड़े हुए। जितने असबाब व साधन अपने इख़्तियार में थे वे सब मुहैया और इस्तेमाल करने के बाद फ़रमाया कि हमें अल्लाह काफ़ी है। यही वह सही तवक्कुल है जिसकी तालीम क़ुरआन में दी गई और रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने इस पर अ़मल् किया और कराया। ज़ाहिरी व दुनियावी असबाब भी ख़ुदा तआ़ला का इनाम हैं, इनको छोड़ देना उसकी नाशुक्री है। असबाब को छोड़ करके तवक्कुल करना अल्लाह के रसूल की सुन्नत नहीं है, कोई अगर अपनी हालत से मग़लूब हो तो वह माज़ूर समझा जा सकता है, वरना सही बात यही है:

बर तवक्कुल ज़ानू-ए-उश्तुर ब-बन्द

यानी पहले ऊँट के पैरों में बेड़ी डाल और फिर ख़ुदा तआ़ला पर तवक्कुल कर। यह तवक्कुल ठीक नहीं कि ऊँट को यूँ ही खुला छोड़ दे और कहे कि मेरा तो अल्लाह पर तवक्कुल है। नहीं! बल्कि ज़ाहिरी असबाब को भी इख़्तियार करो। मुहम्मद इमरान क़ासमी बिज्ञानवी

रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने ख़ुद एक वाक़िए में इसी आयत "हस्बुनल्लाहु व नेअ़्मल-वकील" के बारे में वाज़ेह तौर पर इरशाद फ़रमाया है:

औ़फ़ बिन मालिक रज़ियल्लाहु अ़न्हु फ़रमाते हैं कि रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम

की ख़िदमत में दो शख़्सों का मुक़द्दिमा आया। आपने उनके बीच फ़ैसला फ़रमा दिया। यह फ़ैसला जिस शख़्स के ख़िलाफ़ था उसने फ़ैसला बहुत सुकून से सुना और यह कहते हुए चलने लगा कि "हस्बुनल्लाहु व नेअ़्मल-वकील" हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया- इस शख़्स को मेरे पास लाओ, और फ़रमायाः

اِنَّ اللّٰهَ يَلُوْمُ عَلَى الْعِجْزِ وَلٰكِنْ عَلَيْكَ بِالْكَيْسِ فَاِذَا غَلَبَكَ اَمْرٌ فَقُلْ حَسْبِىَ اللّٰهُ وَ نِعْمَ الْوَكِيْلُ.

"यानी अल्लाह तआ़ला हाथ-पैर तोड़कर बैठ जाने को नापसन्द करता है, बल्कि तुमको चाहिये कि तमाम साधनों और असबाब को अपनाओ फिर भी आ़जिज़ हो जाओ उस वक़्त कहो "हस्बुनल्लाहु व नेअ़्मल-वकील"।

तीसरी आयत में उन सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम के जिहाद के इक़दाम (कोशिश और पहल) और "हस्बुनल्लाहु व नेअ़्मल-वकील" कहने के फ़ायदे व फलों और बरकतों का बयान है। फ़रमायाः

فَانْقَلَبُوْا بِنِعْمَةٍ مِّنَ اللّٰهِ وَفَضْلٍ لَّمْ يَمْسَسْهُمْ سُوْٓءٌ وَّاتَّبَعُوْا رِضْوَانَ اللّٰهِ.

यानी ये लोग अल्लाह के इनाम और फ़ज़्ल के साथ वापस आये कि इन्हें कोई नागवारी ज़रा न पेश आई, और ये लोग अल्लाह की रज़ा के ताबे रहे।

अल्लाह तआ़ला ने इन हज़रात को तीन नेमतें अ़ता कीं- पहली नेमत तो यह कि काफ़िरों के दिलों में रौब व दहशत डाल दी और वे लोग भाग गये, जिसकी वजह से ये हज़रात क़त्ल व क़िताल से महफ़ूज़ रहे। इस नेमत को अल्लाह तआ़ला ने **नेमत** ही के लफ़्ज़ से ताबीर फ़रमाया। और दूसरी नेमत अल्लाह तआ़ला ने यह अ़ता फ़रमाई कि इन हज़रात को 'हमराउल-असद' के बाज़ार में तिजारत का मौक़ा मिला और उस माल से मुनाफ़े हासिल हुए। इस लफ़्ज़ को **फ़ज़्ल** से ताबीर फ़रमाया है।

तीसरी नेमत जो इन तमाम नेमतों से बढ़कर है वह अल्लाह की रज़ा का हासिल होना है जो इस जिहाद में इन हज़रात को ख़ास अन्दाज़ से हासिल हुई।

حَسْبُنَا اللّٰهُ وَنِعْمَ الْوَكِيْلُ

"हस्बुनल्लाहु व नेअ़्मल-वकील" के जो फ़ायदे व बरकतें क़ुरआने करीम ने बयान फ़रमाये वे सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम ही के साथ मख़्सूस न थे, बल्कि जो शख़्स भी ईमानी जज़्बे के साथ इसका विर्द करे (यानी इसको जपे) वह ये बरकतें हासिल करेगा।

बुज़ुर्गों व उलेमा ने "हस्बुनल्लाहु व नेअ़्मल-वकील" पढ़ने के फ़ायदों में लिखा है कि इस आयत को एक हज़ार मर्तबा ईमान व यक़ीन के जज़्बे के साथ पढ़ा जाये और दुआ़ माँगी जाये तो अल्लाह तआ़ला रद्द नहीं फ़रमाता। मुसीबतों और परेशानियों के हुजूम के वक़्त "हस्बुनल्लाहु व नेअ़्मल-वकील" का पढ़ना मुजर्रब (तजुर्बे से कारगर) है।

चौथी आयत में यह इरशाद फ़रमाया है कि मुसलमानों को मरऊब करने के लिये मुश्रिकों के दोबारा लौटने की ख़बर देने वाला असल में शैतान है, जो तुमको अपने दोस्तों यानी

हम-मज़हब काफ़िरों से डराना चाहता है। तो गोया असल इबारत के मायने ये हैं कि वह तुमको अपने दोस्तों से डराता है।

फिर इरशाद फ़रमाया कि मुसलमानों को ऐसी ख़बरों से हरगिज़ डरना नहीं चाहिये, अलबत्ता मुझसे डरते रहना ज़रूरी है। यानी मेरी इताअ़त के ख़िलाफ़ कोई क़दम उठाने से हर मोमिन को डरना ज़रूरी है, अल्लाह तआ़ला की मदद साथ हो तो कोई नुक़सान नहीं पहुँचा सकता।

ख़ौफ़े ख़ुदा से क्या मुराद है?

इस आयत में हक़ तआ़ला ने मुसलमानों पर फ़र्ज़ किया है कि वे अल्लाह तआ़ला से डरते रहें और दूसरी आयत में उन लोगों की तारीफ़ फ़रमाई है जो अल्लाह तआ़ला से डरते हैं:

يَخَافُوْنَ رَبَّهُمْ مِّنْ فَوْقِهِمْ. (١٦:٥٠)

मगर कुछ बुज़ुर्गों ने फ़रमाया कि ख़ौफ़े ख़ुदा रोने और आँसू पौंछने का नाम नहीं, बल्कि अल्लाह से डरने वाला वह है जो हर उस चीज़ को छोड़ दे जिस पर अल्लाह तआ़ला की तरफ़ से अ़ज़ाब का ख़तरा हो।

अबू अ़ली दक़्क़ाक़ रह. फ़रमाते हैं कि अबू बक्र बिन फ़वाक बीमार थे, मैं उनकी बीमारी का हाल पूछने को गया, मुझे देखकर उनकी आँखों में आँसू आ गये। मैंने कहा कि घबराईये नहीं अल्लाह तआ़ला आपको शिफ़ा व आ़फ़ियत देंगे। वह फ़रमाने लगे कि क्या तुम यह समझे कि मैं मौत के ख़ौफ़ से रोता हूँ? बात यह नहीं, मुझे मौत के बाद का ख़ौफ़ है कि वहाँ कोई अ़ज़ाब न हो। (तफ़सीरे क़ुर्तुबी)

وَلَا يَحْزُنْكَ الَّذِيْنَ يُسَارِعُوْنَ فِي الْكُفْرِ ۚ اِنَّهُمْ لَنْ يَّضُرُّوا اللّٰهَ شَيْـًٔا ۗ يُرِيْدُ اللّٰهُ اَلَّا يَجْعَلَ لَهُمْ حَظًّا فِي الْاٰخِرَةِ ۚ وَلَهُمْ عَذَابٌ عَظِيْمٌ ۝ اِنَّ الَّذِيْنَ اشْتَرَوُا الْكُفْرَ بِالْاِيْمَانِ لَنْ يَّضُرُّوا اللّٰهَ شَيْـًٔا ۚ وَلَهُمْ عَذَابٌ اَلِيْمٌ ۝ وَلَا يَحْسَبَنَّ الَّذِيْنَ كَفَرُوْٓا اَنَّمَا نُمْلِيْ لَهُمْ خَيْرٌ لِّاَنْفُسِهِمْ ۚ اِنَّمَا نُمْلِيْ لَهُمْ لِيَزْدَادُوْٓا اِثْمًا ۚ وَلَهُمْ عَذَابٌ مُّهِيْنٌ ۝

व ला यह़्ज़ुन्कल्लज़ी-न युसारिअ़ू-न फ़िल्कुफ़्रि इन्नहुम् लंय्यज़ुर्रुल्ला-ह शैअन्, युरीदुल्लाहु अल्ला यज्अ़-ल लहुम् हज़्ज़न् फ़िल्-आख़िरति व लहुम् अ़ज़ाबुन् अ़ज़ीम (176) इन्नल्लज़ीनश्-त-रवुल्-कुफ़्-र	और ग़म में न डालें तुझको वे लोग जो दौड़ते हैं कुफ़्र की तरफ़, वे न बिगाड़ेंगे अल्लाह का कुछ, अल्लाह चाहता है कि उनको फ़ायदा न दे आख़िरत में, और उनके लिये अ़ज़ाब है बड़ा। (176) जिन्होंने मोल लिया कुफ़्र को ईमान के बदले वे न बिगाड़ेंगे अल्लाह का कुछ,

बिल्-ईमानि लंय्यज़ुर्रुल्ला-ह शैअन् व लहुम् अ़ज़ाबुन् अलीम (177) व ला यह्सबन्नल्लज़ी-न क-फ़रू अन्नमा नुम्ली लहुम् ख़ैरुल् लिअन्फ़ुसिहिम्, इन्नमा नुम्ली लहुम् लि-यज़्दादू इस्मन् व लहुम् अ़ज़ाबुम्-मुहीन (178)	और उनके लिये अ़ज़ाब है दर्दनाक। (177) और यह न समझें काफ़िर कि हम जो मोहलत देते हैं उनको कुछ भला है उनके हक़ में, हम तो मोहलत देते हैं उनको ताकि तरक़्क़ी करें वे गुनाह में, और उनके लिये अ़ज़ाब है रुस्वा करने वाला। (178)

इन आयतों के मज़मून का पीछे से जोड़

पहले गुज़री आयतों में मुनाफ़िक़ों की बेवफ़ाई और बुरा चाहने का ज़िक्र था, मज़कूरा आयतों में रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के लिये तसल्ली है कि आप उन काफ़िरों की हरकतों से रंजीदा (दुखी) और मायूस न हों, वे कोई नुक़सान नहीं पहुँचा सकते। आख़िरी आयत में इस ख़्याल का जवाब है कि बज़ाहिर तो दुनिया में ये काफ़िर फलते-फूलते नज़र आते हैं, तो इनको अल्लाह के ग़ज़ब व क़हर का शिकार कैसे समझा जाये?

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

और आपके लिए वे लोग ग़म का सबब न होने चाहिएँ जो जल्दी से कुफ़्र (की बातों) में जा पड़ते हैं (जैसे मुनाफ़िक़ लोग कि ज़रा मुसलमानों का पल्ला हल्का देखा तो खुल्लम-खुल्ला कुफ़्र की बातें करने लगते हैं, जैसा कि उक्त वाक़िआ़त में मालूम हो चुका है)। यक़ीनन वे लोग अल्लाह तआ़ला (के दीन) को ज़र्रा बराबर भी नुक़सान नहीं पहुँचा सकते। (इसलिए आपको यह ग़म तो होना चाहिए कि उनकी हरकतों से अल्लाह के दीन को नुक़सान पहुँच जायेगा, और अगर आपको ख़ुद उन काफ़िरों का ग़म हो कि ये बदनसीब क्यों जहन्नम की तरफ़ जा रहे हैं तो भी आप ग़म न करें) क्योंकि अल्लाह तआ़ला को (तक़दीरी तौर पर) यह मन्ज़ूर है कि आख़िरत में उनको बिल्कुल हिस्सा न दे (इसलिए उनसे मुवाफ़क़त की उम्मीद रखना सही नहीं, और रंज वहीं होता है जहाँ उम्मीद हो), और (उनके लिये सिर्फ़ आख़िरत की नेमतों से मेहरूमी ही नहीं बल्कि) उन लोगों को बड़ी सज़ा होगी। (और जिस तरह ये लोग दीन इस्लाम को कोई नुक़सान नहीं पहुँचा सकते, इसी तरह) यक़ीनन जितने लोगों ने ईमान (को छोड़कर उस) की जगह कुफ़्र को इख़्तियार कर रखा है (चाहे मुनाफ़िक़ हों या खुले काफ़िर और चाहे पास के हों या दूर के) ये लोग (भी) अल्लाह तआ़ला (के दीन) को ज़र्रा बराबर नुक़सान नहीं पहुँचा सकते, और इनको (भी पहले लोगों की तरह) दर्दनाक सज़ा होगी। और जो लोग कुफ़्र कर रहे हैं वे यह ख़्याल हरगिज़ न करें कि हमारा उनको (अ़ज़ाब से) मोहलत देना (कुछ) उनके लिए बेहतर (और

मुफ़ीद) है, (हरगिज़ नहीं, बल्कि) हम उनको सिर्फ़ इसलिये मोहलत दे रहे हैं (जिसमें उम्र के ज़्यादा होने की वजह से) जुर्म में उनको और तरक़्क़ी हो जाये (ताकि एक बार ही में पूरी सज़ा मिले) और (दुनिया में अगर सज़ा न हुई तो क्या है आख़िरत में तो) उनको अपमानजनक सज़ा होगी।

मआरिफ़ व मसाईल

काफ़िरों का दुनियावी ऐश व आराम भी हकीकृत में उन पर अ़ज़ाब ही की एक शक्ल है

यहाँ कोई यह शुब्हा न करे कि जब अल्लाह तआ़ला ने काफ़िरों को मोहलत, लम्बी उम्र, आ़फ़ियत और राहत के सामान इसलिये दिये हैं कि वे अपने जुर्म में और बढ़ते जायें तो फिर काफ़िर बेक़सूर हुए। क्योंकि आयत का मतलब यह है कि काफ़िरों की इस चन्द दिन की मोहलत और ऐश व आराम से मुसलमान परेशान न हों, क्योंकि बावजूद कुफ़्र व नाफ़रमानी के उनको दुनियावी ताकृत, क़ुव्वत, दुनिया का सामान यह भी उनके लिये अ़ज़ाब ही की एक सूरत है, जिसका एहसास आज नहीं इस दुनिया से जाने के बाद होगा कि यह दुनिया का सामाने राहत जो उन्होंने गुनाहों में ख़र्च किया हकीकृत में जहन्नम के अंगारे थे, जैसा कि कई आयतों में ख़ुद हक़ तआ़ला ने फ़रमाया है:

إِنَّمَا يُرِيدُ اللّٰهُ لِيُعَذِّبَهُم بِهَا. (٩:٥٥)

यानी काफ़िरों के माल और ऐश व आराम उनके लिये कोई फ़ख़्र करने (इतराने या गर्व करने) की चीज़ नहीं, यह तो अल्लाह तआ़ला की तरफ़ से अ़ज़ाब ही की एक क़िस्त है, जो उनके आख़िरत के अ़ज़ाब को बढ़ाने का सबब है।

مَا كَانَ اللّٰهُ لِيَذَرَ الْمُؤْمِنِينَ عَلٰى مَا أَنْتُمْ عَلَيْهِ حَتّٰى يَمِيزَ الْخَبِيثَ مِنَ الطَّيِّبِ ۗ وَمَا كَانَ اللّٰهُ لِيُطْلِعَكُمْ عَلَى الْغَيْبِ وَلٰكِنَّ اللّٰهَ يَجْتَبِي مِنْ رُّسُلِهِ مَنْ يَّشَاءُ ۖ فَآمِنُوا بِاللّٰهِ وَرُسُلِهِ ۚ وَإِنْ تُؤْمِنُوا وَتَتَّقُوا فَلَكُمْ أَجْرٌ عَظِيمٌ ۝

मा कानल्लाहु लि-य-ज़रल् मुअ्मिनी-न अ़ला मा अन्तुम् अ़लैहि हत्ता यमीज़ल्-ख़बी-स मिनत्तय्यिबि, व मा कानल्लाहु लियुत्लि-अ़कुम् अ़लल्-	अल्लाह वह नहीं कि छोड़ दे मुसलमानों को उस हालत पर जिस पर तुम हो जब तक कि अलग न कर दे नापाक को पाक से, और अल्लाह नहीं है कि तुमको ख़बर दे ग़ैब की लेकिन अल्लाह छाँट लेता है

ग़ैबि व लाकिन्नल्ला-ह यज्तबी मिर्रुसुलिही मंय्यशा-उ फ़-आमिनू बिल्लाहि व रुसुलिही व इन् तुअ्मिनू व तत्तक़ू फ़-लकुम् अज्रुन् अज़ीम (179)	अपने रसूलों में जिसको चाहे, सो तुम यक़ीन लाओ अल्लाह पर और उसके रसूलों पर, और अगर तुम यक़ीन पर रहो और परहेज़गारी पर तो तुमको बड़ा सवाब है। (179)

इस आयत के मज़मून का पीछे से ताल्लुक़

पिछली आयत में इस शुब्हे का जवाब था कि जब काफ़िर अल्लाह तआ़ला के नज़दीक नापसन्दीदा और मरदूद हैं तो दुनिया में उनको माल व जायदाद और ऐश व आराम के सामान क्यों हासिल हैं? इस आयत में उसके मुक़ाबले में इस शुब्हे को दूर किया गया है कि मोमिन मुसलमान जो अल्लाह के मक़बूल बन्दे हैं उन पर तकलीफ़ें व मुसीबतें क्यों आती हैं? मक़बूलियत का तक़ाज़ा तो यह था कि राहतें और राहत के सामान उनको मिलते।

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

अल्लाह तआ़ला मुसलमानों को इस हालत में नहीं रखना चाहते जिस पर तुम अब हो (कि कुफ़्र व ईमान और हक़ व बातिल और मोमिन व मुनाफ़िक़ में अल्लाह तआ़ला के दिये हुए दुनियावी इनामों के एतिबार से कोई इम्तियाज़ और फ़र्क़ नहीं, बल्कि मुसलमानों पर सख़्तियों व मुसीबतों का नाज़िल होते रहना उस वक़्त तक ज़रूरी है) जब तक कि नापाक (यानी मुनाफ़िक़) को पाक (यानी सच्चे मोमिन) से अलग न फ़रमा दें। (और यह फ़र्क़ व स्पष्टता मुसीबतों व मुश्किलों ही के पेश आने पर पूरी तरह हो सकती है, और अगर किसी के दिल में यह ख़्याल पैदा हो कि मोमिन व काफ़िर और हक़ व बातिल में फ़र्क़ पैदा करने के लिये क्या ज़रूरी है कि हादसे व मुसीबतें डालकर ही फ़र्क़ हासिल किया जाये, अल्लाह तआ़ला वही के द्वारा ऐलान फ़रमा सकते हैं कि फ़ुलाँ मोमिन मुख़्लिस है और फ़ुलाँ मुनाफ़िक़, और फ़ुलाँ चीज़ हलाल है फ़ुलाँ हराम। तो इसका जवाब यह है कि) अल्लाह तआ़ला (हिक्मत के तक़ाज़े के तहत) ऐसे ग़ैबी मामलात की तुमको (बिना आज़माईश व इम्तिहान के) इत्तिला नहीं करना चाहते, लेकिन हाँ जिसको (इस तरह इत्तिला करना) ख़ुद चाहें और वे (ऐसे हज़रात) अल्लाह तआ़ला के पैग़म्बर हैं उनको (बिना हादसों के वास्ते के भी ग़ैबी ख़बरों पर इत्तिला करने के लिये अपने बन्दों में से) चुन लेते हैं (और तुम पैग़म्बर हो नहीं, इसलिए ऐसे मामलों की तुम्हें इत्तिला नहीं दी जा सकती, अलबत्ता ऐसे हालात पैदा फ़रमाते हैं कि उनसे मुख़्लिस व मुनाफ़िक़ का फ़र्क़ ख़ुद-ब-ख़ुद स्पष्ट हो जाये। और जब यह साबित हो गया कि दुनिया में काफ़िरों पर अ़ज़ाब नाज़िल न होना बल्कि ऐश व आराम मिलना और मुसलमानों पर कुछ मुसीबतें व सख़्तियाँ नाज़िल होना अल्लाह

तआ़ला की हिक्मत के ऐन मुताबिक़ है, ये बातें किसी के मक़बूल या मरदूद होने की दलील नहीं हो सकतीं) पस अब तुम (ईमान के पसन्दीदा और कुफ़्र के नापसन्दीदा होने में कोई शुब्हा न करो, बल्कि) अल्लाह पर और उसके रसूलों पर ईमान ले आओ, और (कुफ़्र व नाफ़रमानी से) अगर तुम ईमान ले आओ और परहेज़ रखो तो फिर तुमको बड़ा अज्र मिले।

मआ़रिफ़ व मसाईल

मोमिन व मुनाफ़िक़ में फ़र्क़ 'वही' के बजाय अ़मली तौर पर करने की हिक्मत

इस आयत में यह इरशाद है कि सच्चे व नेक मोमिन और मुनाफ़िक़ में इम्तियाज़ (फ़र्क़ और अन्तर) के लिये हक़ तआ़ला ऐसे हालात, हादसे व मुश्किलें पैदा फ़रमाते हैं जिनसे अ़मली तौर पर मुनाफ़िक़ों का निफ़ाक़ (झूठा इस्लाम ज़ाहिर करना) खुल जाये और यह इम्तियाज़ (फ़र्क़) अगरचे यूँ भी हो सकता था कि वही (अल्लाह की तरफ़ से आने वाले पैग़ाम) के ज़रिये मुनाफ़िक़ों के नाम मुतैयन करके बतला दिया जाये, मगर हिक्मत के तक़ाज़े के तहत ऐसा नहीं किया गया। अल्लाह तआ़ला के कामों की पूरी हिक्मतें तो उसी को मालूम हैं, यहाँ एक हिक्मत (मस्लेहत और वजह) यह भी हो सकती है कि अगर मुसलमानों को वही के ज़रिये बतला दिया जाये कि फ़ुलाँ मुनाफ़िक़ (झूठा मुसलमान) है तो मुसलमानों को उससे ताल्लुक़ और मामलात तोड़ने में एहतियात के लिये कोई ऐसी स्पष्ट हुज्जत न होती जिसको मुनाफ़िक़ भी तस्लीम कर लें। वे कहते कि तुम ग़लत कहते हो, हम तो पक्के सच्चे मुसलमान हैं।

इसके विपरीत अ़मली फ़र्क़ का मामला है कि जो मुसीबतों में मुब्तला होने के ज़रिये सामने आया कि मुनाफ़िक़ भाग खड़े हुए, अ़मली तौर पर उनका निफ़ाक़ खुल गया। अब उनका मुँह नहीं रहा कि मोमिन व मुख़्लिस होने का दावा करें।

और इस तरह निफ़ाक़ खुल जाने का एक फ़ायदा यह भी हुआ कि मुसलमानों का उनके साथ ज़ाहिरी मेलजोल और ताल्लुक़ात भी ख़त्म हों, वरना दिल में दूरी के बावजूद ज़ाहिरी मेलजोल रहता तो वह भी नुक़सानदेह ही होता।

ग़ैबी मामलात पर किसी को बाख़बर कर दिया जाये तो वह इल्मे-ग़ैब नहीं

इस आयत से मालूम हुआ कि हक़ तआ़ला ग़ैबी मामलात और बातों पर वही के ज़रिये इत्तिला हर शख़्स को नहीं देते, अलबत्ता अपने अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम का चयन करके उनको देते हैं।

इससे यह शुब्हा न किया जाये कि फिर तो अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम भी इल्मे-ग़ैब के शरीक

और आ़लिमुल-ग़ैब हो गये। क्योंकि वह इल्मे-ग़ैब जो हक़ तआ़ला की ज़ात के साथ मख़्सूस है किसी मख़्लूक़ को उसमें शरीक क़रार देना शिर्क है। वह दो चीज़ों के साथ मशरूत है- एक यह कि वह इल्म ज़ाती हो, किसी दूसरे का दिया हुआ न हो। दूसरे तमाम कायनात के अगले-पिछले तमाम मामलात व चीज़ों का पूरा इल्म हो, जिससे किसी ज़र्रे का इल्म भी छुपा न हो। हक़ तआ़ला ख़ुद वही के ज़रिये अपने अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम को जो ग़ैबी बातें बतलाते हैं वह हक़ीक़त में इल्मे-ग़ैब नहीं है, बल्कि ग़ैब की ख़बरें हैं जो नबियों को दी गई हैं, जिनको ख़ुद क़ुरआने करीम ने कई जगह "अम्बाउल-ग़ैब" के लफ़्ज़ से ताबीर फ़रमाया है। जैसे एक जगह इरशाद है:

تِلْكَ مِنْ اَنْبَآءِ الْغَيْبِ نُوْحِيْهَآ اِلَيْكَ. (١١:٤٩)

ये बातें उन ग़ैब की ख़बरों में से हैं जो कि हम भेजते हैं तेरी तरफ़।

وَلَا يَحْسَبَنَّ الَّذِيْنَ يَبْخَلُوْنَ بِمَآ اٰتٰهُمُ اللّٰهُ مِنْ فَضْلِهٖ هُوَ خَيْرًا لَّهُمْ ۚ بَلْ هُوَ شَرٌّ لَّهُمْ ۚ سَيُطَوَّقُوْنَ مَا بَخِلُوْا بِهٖ يَوْمَ الْقِيٰمَةِ ۚ وَلِلّٰهِ مِيْرَاثُ السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضِ ۚ وَاللّٰهُ بِمَا تَعْمَلُوْنَ خَبِيْرٌ ۝ لَقَدْ سَمِعَ اللّٰهُ قَوْلَ الَّذِيْنَ قَالُوْٓا اِنَّ اللّٰهَ فَقِيْرٌ وَّنَحْنُ اَغْنِيَآءُ ۘ سَنَكْتُبُ مَا قَالُوْا وَقَتْلَهُمُ الْاَنْۢبِيَآءَ بِغَيْرِ حَقٍّ ۙ وَّنَقُوْلُ ذُوْقُوْا عَذَابَ الْحَرِيْقِ ۝ ذٰلِكَ بِمَا قَدَّمَتْ اَيْدِيْكُمْ وَاَنَّ اللّٰهَ لَيْسَ بِظَلَّامٍ لِّلْعَبِيْدِ ۝ اَلَّذِيْنَ قَالُوْٓا اِنَّ اللّٰهَ عَهِدَ اِلَيْنَآ اَلَّا نُؤْمِنَ لِرَسُوْلٍ حَتّٰى يَاْتِيَنَا بِقُرْبَانٍ تَاْكُلُهُ النَّارُ ۚ قُلْ قَدْ جَآءَكُمْ رُسُلٌ مِّنْ قَبْلِيْ بِالْبَيِّنٰتِ وَبِالَّذِيْ قُلْتُمْ فَلِمَ قَتَلْتُمُوْهُمْ اِنْ كُنْتُمْ صٰدِقِيْنَ ۝ فَاِنْ كَذَّبُوْكَ فَقَدْ كُذِّبَ رُسُلٌ مِّنْ قَبْلِكَ جَآءُوْ بِالْبَيِّنٰتِ وَالزُّبُرِ وَالْكِتٰبِ الْمُنِيْرِ ۝ كُلُّ نَفْسٍ ذَآئِقَةُ الْمَوْتِ ۗ وَاِنَّمَا تُوَفَّوْنَ اُجُوْرَكُمْ يَوْمَ الْقِيٰمَةِ ۗ فَمَنْ زُحْزِحَ عَنِ النَّارِ وَاُدْخِلَ الْجَنَّةَ فَقَدْ فَازَ ۗ وَمَا الْحَيٰوةُ الدُّنْيَآ اِلَّا مَتَاعُ الْغُرُوْرِ ۝ لَتُبْلَوُنَّ فِيْٓ اَمْوَالِكُمْ وَاَنْفُسِكُمْ ۗ وَلَتَسْمَعُنَّ مِنَ الَّذِيْنَ اُوْتُوا الْكِتٰبَ مِنْ قَبْلِكُمْ وَمِنَ الَّذِيْنَ اَشْرَكُوْٓا اَذًى كَثِيْرًا ۗ وَاِنْ تَصْبِرُوْا وَتَتَّقُوْا فَاِنَّ ذٰلِكَ مِنْ عَزْمِ الْاُمُوْرِ ۝

रुकूअ़ 18

व ला यह्सबन्नल्लज़ी-न यब्ख़लू-न बिमा आताहुमुल्लाहु मिन् फ़ज़्लिही हु-व ख़ैरल्लहुम्, बल् हु-व शर्रुल्लहुम्, सयुतव्वक़ू-न मा बख़िलू बिही यौमल्-	और न ख़्याल करें वे लोग जो बुख़्ल (कन्जूसी) करते हैं उस चीज़ पर जो अल्लाह ने उनको दी है अपने फ़ज़्ल से कि यह बुख़्ल बेहतर है उनके हक़ में, बल्कि यह बहुत बुरा है उनके हक़ में,

-क़ियामति, व लिल्लाहि मीरासुस्-समावाति वल्अर्ज़ि, वल्लाहु बिमा तअ्मलू-न ख़बीर (180) ❁

ल-क़द् समिअ़ल्लाहु क़ौलल्लज़ी-न क़ालू इन्नल्ला-ह फ़क़ीरुंव्-व नह्नु अग़्निया-उ। सनक्तुबु मा क़ालू व क़त्लहुमुल्-अम्बिया-अ बिग़ैरि हक़्क़िंव्-व नक़ूलु ज़ूक़ू अ़ज़ाबल्-हरीक़ (181) ज़ालि-क बिमा क़द्द-मत् ऐदीकुम् व अन्नल्ला-ह लै-स बिज़ल्लामिल् लिल्-अ़बीद (182) अल्लज़ी-न क़ालू इन्नल्ला-ह अ़हि-द इलैना अल्ला नुअ्मि-न लि-रसूलिन् हत्ता यअ्ति-यना बिक़ुर्बानिन् तअ्कुलुहुन्नारु, क़ुल् क़द् जा-अकुम् रुसुलुम् मिन् क़ब्ली बिल्-बय्यिनाति व बिल्लज़ी क़ुल्तुम् फ़लि-म क़तल्तुमूहुम् इन् कुन्तुम् सादिक़ीन (183) फ़-इन् कज़्ज़बू-क फ़-क़द् कुज़्ज़ि-ब रुसुलुम्-मिन् क़ब्लि-क जाऊ बिल्बय्यिनाति वज़्ज़ुबुरि वल्-किताबिल् मुनीर (184) कुल्लु नफ़्सिन् ज़ा-इ-क़तुल्-मौति, व इन्नमा तुवफ़्फ़ौ-न उजू-रकुम् यौमल्-क़ियामति, फ़-मन्

तौक़ बनाकर डाला जायेगा उनके गलों में वह माल जिसमें बुख़्ल किया था क़ियामत के दिन, और अल्लाह वारिस है आसमान और ज़मीन का, और अल्लाह जो तुम करते हो सो जानता है। (180) ❁

बेशक अल्लाह ने सुनी उनकी बात जिन्होंने कहा कि अल्लाह फ़क़ीर है और हम मालदार, अब लिख रखेंगे हम उनकी बात और जो ख़ून किये हैं उन्होंने अम्बिया के नाहक़, और हम कहेंगे कि चखो अ़ज़ाब जलती आग का। (181) यह बदला उसका है जो तुमने अपने हाथों आगे भेजा, और अल्लाह ज़ुल्म नहीं करता बन्दों पर। (182) वे लोग जो कहते हैं कि अल्लाह ने हमको कह रखा है कि यक़ीन न करें किसी रसूल का जब तक न लाये हमारे पास क़ुरबानी कि खा जाये उसको आग, तू कह तुम में आ चुके कितने रसूल मुझसे पहले निशानियाँ लेकर और यह भी जो तुमने कहा फिर उनको क्यों क़त्ल किया तुमने अगर तुम सच्चे हो। (183) फिर अगर ये तुझको झुठलायें तो तुझसे पहले झुठलाये गये बहुत रसूल जो लाये निशानियाँ और सहीफ़े और रोशन किताब। (184) हर जी को चखनी है मौत, और तुमको पूरे बदले मिलेंगे क़ियामत के दिन, फिर जो कोई दूर किया

ज़ुह्ज़ि-ह अनिन्नारि व उद्ख़िलल्-जन्न-त फ़-क़द् फ़ा-ज़, व मल्हयातुद्-दुन्या इल्ला मताअुल् ग़ुरूर (185) लतुब्लवुन्-न फ़ी अम्वालिकुम् व अन्फ़ुसिकुम्, व ल-तस्मअुन्-न मिनल्लज़ी-न ऊतुल्-किता-ब मिन् क़ब्लिकुम् व मिनल्लज़ी-न अश्रकू अज़न् कसीरन्, व इन् तस्बिरू व तत्तक़ू फ़-इन्-न ज़ालि-क मिन् अ़ज़्मिल् उमूर (186)	गया दोज़ख़ से और दाख़िल किया गया जन्नत में उसका काम तो बन गया, और दुनिया की ज़िन्दगानी नहीं मगर पूँजी धोखे की। (185) अलबत्ता तुम्हारी आज़माईश होगी मालों में और जानों में और अलबत्ता सुनोगे तुम अगली किताब वालों से और मुश्रिकों से बहुत बदगोई, और अगर तुम सब्र करो और परहेज़गारी करो तो ये हिम्मत के काम हैं। (186)

इन आयतों के मज़मून का पीछे से संबन्ध

सूरः आले इमरान के शुरू में यहूदियों की बुरी ख़स्लतों और शरारतों का ज़िक्र था, यहाँ से फिर उसी मज़मून की तरफ़ वापसी है। उक्त सब आयतें उसी तरह के मज़ामीन को शामिल हैं, बीच में रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की तसल्ली और मुसलमानों के लिये कुछ नसीहतों का ज़िक्र है।

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

और हरगिज़ ख़्याल न करें ऐसे लोग जो (ज़रूरी मौक़ों में) ऐसी चीज़ (के ख़र्च करने) में कन्जूसी करते हैं जो अल्लाह तआ़ला ने उनको अपने फ़ज़्ल से दी है, कि यह बात कुछ उनके लिये अच्छी होगी (हरगिज़ नहीं), बल्कि यह बात उनके लिए बहुत ही बुरी है (क्योंकि अन्जाम इसका यह होगा कि) वे लोग क़ियामत के दिन तौक़ पहना दिये जाएँगे उस (माल) का (साँप बनाकर) जिसमें उन्होंने कन्जूसी की थी, और (कन्जूसी करना वैसे भी बेवक़ूफ़ी है कि) आख़िर में (जब सब मर जायेंगे) सब आसमान व ज़मीन (और जो कायनात उनके अन्दर हैं सब) अल्लाह तआ़ला ही का रह जायेगा (लेकिन उस वक़्त यह माल अल्लाह के लिये हो जाने से तुम्हें कोई सवाब नहीं मिलेगा, क्योंकि तुमने अपने इख़्तियार से नहीं दिये। और जब अन्जामकार सब अल्लाह ही का होना है तो अ़क़्ल की बात यह है कि अभी अपने इख़्तियार से दे दो, ताकि सवाब के हक़दार बनो), और अल्लाह तआ़ला तुम्हारे सब आमाल की पूरी ख़बर रखते हैं (इसलिये जो कुछ ख़र्च करो इख़्लास के साथ अल्लाह के लिये करो)।

बेशक अल्लाह तआ़ला ने सुन लिया है उन (गुस्ताख़) लोगों का क़ौल जिन्होंने (मज़ाक़ के

तौर पर) यूँ कहा कि (नऊज़ु बिल्लाह) अल्लाह तआ़ला मुफ़लिस (ग़रीब) है और हम मालदार हैं (और सिर्फ़ इस सुनने पर बस नहीं किया जायेगा बल्कि) हम उनके कहे हुए को (उनके नामा-ए-आमाल में) लिख रहे हैं, और (इसी तरह) उनका नबियों (अ़लैहिमुस्सलाम) को नाहक़ क़त्ल करना भी (उनके आमाल नामे में लिखा जायेगा)। और हम (उन पर सज़ा जारी करने के वक़्त जतलाने के लिये) कहेंगे कि (लो) चखो आग का अ़ज़ाब। (और उनको रूहानी रंज देने के लिये उस वक़्त यह भी कहा जायेगा कि) यह (अ़ज़ाब) उन (कुफ़्रिया) आमाल की वजह से है जो तुमने अपने हाथों समेटे हैं, और यह बात साबित ही है कि अल्लाह तआ़ला अपने बन्दों पर ज़ुल्म करने वाले नहीं।

वे (यहूदी) लोग ऐसे हैं कि (बिल्कुल झूठ गढ़कर) कहते हैं कि अल्लाह ने हमको (पिछले अम्बिया के माध्यम से) हुक्म फ़रमाया था कि हम किसी पैग़म्बरी (के दावेदार) पर (उनके पैग़म्बर होने का) एतिक़ाद न लाएँ जब तक कि हमारे सामने (ख़ास) अल्लाह तआ़ला की नियाज़ व मन्नत (का मोजिज़ा) ज़ाहिर न करे, कि उसको (आसमानी) आग खा जाए। (पहले कुछ अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम का यह मोजिज़ा हुआ है कि कोई चीज़ जानदार या बेजान अल्लाह के नाम की निकाल कर किसी मैदान या पहाड़ पर रख दी, ग़ैब से एक आग ज़ाहिर हुई और उस चीज़ को जला दिया। यह सदक़ों के क़ुबूल होने की निशानी होती थी। मतलब यह है कि आपने यह ख़ास मोजिज़ा ज़ाहिर नहीं फ़रमाया इसलिये हम आप पर ईमान नहीं लाते। हक़ तआ़ला इसका जवाब तालीम फ़रमाते हैं कि) आप फ़रमा दीजिए कि यक़ीनन बहुत-से पैग़म्बर मुझसे पहले बहुत-सी दलीलें (मोजिज़े वग़ैरह) लेकर आए और ख़ुद यह मोजिज़ा भी जिसको तुम कह रहे हो, सो तुमने उनको क्यों क़त्ल किया था अगर तुम (इस बात में) सच्चे हो? सो अगर ये (काफ़िर) लोग आपको झुठलाएँ तो (ग़म न कीजिये, क्योंकि) बहुत-से पैग़म्बर जो आप से पहले गुज़रे हैं वे भी झुठलाए जा चुके हैं, जो मोजिज़े लेकर आए थे और (छोटे-छोटे) सहीफ़े (धार्मिक ग्रंथ) और रोशन किताब लेकर (जब काफ़िरों की यह आ़दत ही है कि अम्बिया को झुठलाया करते हैं तो फिर आपको क्या ग़म है)।

(तुम में) हर जान (रखने वाले) को मौत का मज़ा चखना है और (मरने के बाद) तुमको तुम्हारा पूरा बदला (भलाई बुराई का) क़ियामत के दिन ही मिलेगा। (अगर दुनिया में काफ़िरों पर किसी सज़ा का ज़हूर न हो तो इससे झुठलाने वालों को ख़ुशी का और तस्दीक़ करने वालों को ग़म का कोई मौक़ा नहीं। आगे उस परिणाम की तफ़सील है) तो जो शख़्स दोज़ख़ से बचा लिया गया और जन्नत में दाख़िल किया गया सो वह पूरा कामयाब हुआ। (इसी तरह जो जन्नत से अलग रहा और दोज़ख़ में भेजा गया वह पूरा नाकाम हुआ) और दुनियावी ज़िन्दगी तो कुछ भी नहीं सिर्फ़ (ऐसी चीज़ है जैसे) धोखे का सौदा (होता) है (जिसकी ज़ाहिरी चमक-दमक को देखकर ख़रीदार फंस जाता है, बाद में उसकी क़लई खुल जाती है तो अफ़सोस करता है। इसी तरह दुनिया की ज़ाहिरी चमक-दमक से धोखा खाकर आख़िरत से ग़ाफ़िल न होना चाहिये)।

(अभी क्या है) अलबत्ता आगे (आगे) और आज़माये जाओगे अपने मालों (के नुक़सान) में

और अपनी जानों (के नुक़सान) में। और अलबत्ता आगे को और सुनोगे बहुत-सी बातें दिल दुखाने वाली उन लोगों से (भी) जो तुमसे पहले (आसमानी) किताब दिये गये हैं (यानी अहले किताब से) और उन लोगों से (भी) जो कि मुश्रिक हैं। और अगर (उन मौक़ों पर) सब्र करोगे और (शरीअ़त के ख़िलाफ़ बातों से) परहेज़ रखोगे तो (तुम्हारे लिये अच्छा होगा, क्योंकि) यह (सब्र व तक़वा) ताकीदी अहकाम में से है।

मआ़रिफ़ व मसाईल

ज़िक्र हुई सात आयतों में से पहली आयत में कन्जूसी की मज़म्मत (बुराई व निंदा) और उस पर वईद (धमकी व डाँट) बयान हुई है।

कन्जूसी का मतलब और उस पर सज़ा की तफ़सील

बुख़्ल (कन्जूसी) के मायने शरई तौर पर यह हैं कि जो चीज़ अल्लाह तआ़ला की राह में ख़र्च करना किसी पर वाजिब हो उसको ख़र्च न करे। इसी लिये बुख़्ल हराम है और इस पर जहन्नम की सख़्त धमकी है। और जिन मौक़ों पर ख़र्च करना वाजिब नहीं बल्कि अच्छा और पसन्दीदा है वह इस हराम वाले बुख़्ल में दाख़िल नहीं, अलबत्ता आ़म मायनों के एतिबार से उसको भी बुख़्ल (कन्जूसी) कह दिया जाता है। इस क़िस्म का बुख़्ल हराम नहीं मगर अच्छा नहीं (यानी नापसन्दीदा) है।

बुख़्ल (कन्जूसी) ही के मायने में एक दूसरा लफ़्ज़ भी हदीसों में आया है यानी शुह्ह। इसकी तारीफ़ (परिभाषा) यह है कि अपने ज़िम्मे जो ख़र्च करना वाजिब था वह अदा न करे, इस पर अतिरिक्त यह कि माल बढ़ाने की हिर्स में मुब्तला रहे, तो वह बुख़्ल से भी ज़्यादा सख़्त हराम है, इसी लिये रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमायाः

لَا يَجْتَمِعُ شُحٌّ وَّاِيْمَانٌ فِيْ قَلْبِ رَجُلٍ مُّسْلِمٍ اَبَدًا. (رواه النسائی عن ابی هريرةؓ)

"यानी शुह्ह व ईमान किसी मुसलमान के दिल में जमा नहीं हो सकते।" (तफ़सीरे क़ुर्तुबी)

बुख़्ल (कन्जूसी) की जो सज़ा इस आयत में ज़िक्र की गई है कि क़ियामत के दिन जिस चीज़ के देने में बुख़्ल किया उसका तौक़ बनाकर उसके गले में डाला जायेगा, इसकी तफ़सीर रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने यह फ़रमाई हैः

हज़रत अबू हुरैरह रज़ियल्लाहु अ़न्हु फ़रमाते हैं किः

"रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया- जिस शख़्स को अल्लाह ने कोई माल अ़ता फ़रमाया फिर उसने उसकी ज़कात अदा नहीं की तो क़ियामत के दिन यह माल एक सख़्त ज़हरीला साँप बनकर उसके गले का तौक़ बना दिया जायेगा। वह उस शख़्स की बाँछें पकड़ेगा और कहेगा- मैं तेरा माल हूँ तेरा सरमाया हूँ। फिर हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने यह आयत पढ़ी। (नसाई, तफ़सीरे क़ुर्तुबी)

दूसरी आयत में यहूदियों की एक सख़्त गुस्ताख़ी पर तंबीह (चेतावनी) और सज़ा का ज़िक्र है। जिसका वाकिआ यह है कि जब रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने ज़कात व सदक़ात के अहकाम क़ुरआन से बतलाये तो गुस्ताख़ यहूदी यह कहने लगे कि अल्लाह तआ़ला फ़क़ीर व मोहताज हो गया और हम मालदार हैं, तब ही तो हम से माँगता है (अल्लाह की पनाह)। ज़ाहिर यह है कि इस बेहूदा क़ौल के मुवाफ़िक़ उनका एतिक़ाद (ईमान व यक़ीन) तो न होगा मगर रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को झुठलाने के लिये कहा होगा, कि अगर क़ुरआन की ये आयतें सही हैं तो इनसे यह लाज़िम आता है कि अल्लाह तआ़ला फ़क़ीर व मोहताज हो। उनका यह बेहूदा इस्तिदलाल (तर्क लेना) तो सरसरी तौर पर ही बातिल होने की वजह से क़ाबिले जवाब न था, क्योंकि हक़ तआ़ला का सदक़ों का हुक्म अपने नफ़े के लिये नहीं ख़ुद माल वालों के दीनी व दुनियावी नफ़े के लिये है, मगर इसको कहीं अल्लाह तआ़ला को क़र्ज़ देने का उनवान इसलिये दे दिया गया कि जिस तरह क़र्ज़ की अदायेगी हर शरीफ़ आदमी के लिये ज़रूरी और यक़ीनी होती है इसी तरह जो सदक़ा इनसान देता है उसकी जज़ा (बदला) अल्लाह तआ़ला अपने ज़िम्मे क़रार देते हैं, जैसे किसी का क़र्ज़ देना हो। जो शख़्स अल्लाह तआ़ला को कायनात का ख़ालिक़ और मालिक जानता है उसको इन अलफ़ाज़ से कभी वह शुब्हा नहीं हो सकता जो गुस्ताख़ यहूदियों के इस क़ौल में है। इसलिये क़ुरआने करीम ने इस शुब्हे का जवाब तो दिया नहीं, सिर्फ़ उनकी इस गुस्ताख़ी और रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को झुठलाने और आपका मज़ाक़ उड़ाने के अनेक सख़्त अपराधों की सज़ा में यह फ़रमाया कि हम उनके गुस्ताख़ी भरे कलिमात को लिखकर रहेंगे, ताकि क़ियामत के दिन उन पर हुज्जत पूरी करके अ़ज़ाब दिया जाये। वरना अल्लाह तआ़ला को लिखने की ज़रूरत नहीं।

फिर यहूद की इस गुस्ताख़ी के ज़िक्र के साथ उनका एक दूसरा जुर्म यह भी ज़िक्र कर दिया कि ये वे लोग हैं जिन्होंने अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम को सिर्फ़ झुठलाया और उनका मज़ाक़ ही नहीं उड़ाया बल्कि क़त्ल कर डालने से भी बाज़ नहीं रहे, तो ऐसे लोगों से किसी नबी व रसूल के झुठलाने या मज़ाक़ उड़ाने पर क्या ताज्जुब हो सकता है।

कुफ़्र व नाफ़रमानी पर दिल से राज़ी होना भी ऐसा ही बड़ा गुनाह है

यहाँ यह बात क़ाबिले ग़ौर है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम और क़ुरआन के मुख़ातब मदीना के यहूदी हैं और अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम को क़त्ल करने का वाक़िआ उनसे बहुत पहले हज़रत यहया और हज़रत ज़करिया अ़लैहिमस्सलाम के ज़माने का है, तो इस आयत में अम्बिया (नबियों) के क़त्ल का जुर्म इन मुख़ातबों की तरफ़ कैसे मन्सूब किया गया? वजह यह है कि मदीना के यहूद अपने पहले यहूदियों के इस फ़ेल पर राज़ी और ख़ुश थे, इसलिये ये ख़ुद भी क़ातिलों के हुक्म में शुमार किये गये।

इमाम क़ुर्तुबी रह. ने अपनी तफ़सीर में फ़रमाया कि यह बड़ा अहम मसला है कि कुफ़ पर राज़ी होना भी कुफ़ और मासियत (नाफ़रमानी) में दाख़िल है। रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का एक इरशाद इसकी अधिक वज़ाहत करता है। आपने फ़रमाया कि जब ज़मीन पर कोई गुनाह किया जाता है तो जो शख़्स वहाँ मौजूद हो मगर उस गुनाह की मुख़ालफ़त करे और उसको बुरा समझे तो वह ऐसा है गोया वहाँ मौजूद ही नहीं। यानी वह उनके गुनाह का शरीक नहीं। और जो शख़्स अगरचे उस मज्लिस में मौजूद नहीं मगर उनके उस फ़ेल से राज़ी है वह बावजूद ग़ायब होने के उनके गुनाह का शरीक समझा जायेगा।

इस आयत के आख़िर और तीसरी आयत में उन गुस्ताख़ों की सज़ा यह बतलाई है कि उनको दोज़ख़ में डालकर कहा जायेगा कि अब आग में जलने का मज़ा चखो, जो तुम्हारे अपने ही अ़मल का नतीजा है, अल्लाह की तरफ़ से कोई ज़ुल्म नहीं।

चौथी आयत में उन्हीं यहूद के एक झूठ और बोहतान का ज़िक्र किया गया है। वह यह कि उन्होंने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को झुठलाने के लिये यह हीला (बहाना) पेश किया कि पिछले नबियों के ज़माने में यह तरीक़ा था कि सदक़ों के माल किसी मैदान या पहाड़ पर रख दिये जाते थे और आसमानी आग उनको आकर जला देती थी, यही निशानी सदक़ों के क़ुबूल होने की होती थी। रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम और आपकी उम्मत को हक़ तआ़ला ने यह ख़ास इम्तियाज़ (विशेष दर्जा) अ़ता फ़रमाया कि सदक़ों के माल आसमानी आग की नज़्र (भेंट) करने के बजाय मुसलमान फ़क़ीरों व मोहताजों को दिये जाते हैं। चूँकि यह तरीक़ा और अन्दाज़ पिछले नबियों के उक्त तरीक़े के ख़िलाफ़ था इसलिये इसको मुश्रिकों ने बहाना बनाया कि अगर आप नबी होते तो आपको भी यह मोजिज़ा अ़ता होता कि आसमानी आग सदक़ों के मालों को खा जाती। इस पर आगे बढ़कर यह जुर्रत की कि अल्लाह तआ़ला पर यह बोहतान बाँधा कि उसने हमसे यह अ़हद लिया है कि हम उस शख़्स पर ईमान न लायें जिस से यह आसमानी मोजिज़ा आग के आने और सदक़े के माल को जलाने का सादिर न हो।

चूँकि यहूदियों का यह दावा बिल्कुल बेदलील और बातिल था कि अल्लाह ने उनसे यह अ़हद लिया है। इसका जवाब देने की तो ज़रूरत न थी, उनको उन्हीं के माने हुए क़ौल से मग़लूब करने (लाजवाब करने और झुकाने) के लिये यह इरशाद फ़रमाया कि अगर तुम इस बात में सच्चे हो कि अल्लाह तआ़ला ने तुम से ऐसा अ़हद लिया है तो फिर जिन पहले नबियों ने तुम्हारे कहने के मुताबिक़ यह मोजिज़ा भी दिखलाया था कि आसमानी आग सदक़ों के माल को खा गई, तो तुम उन पर तो ईमान लाते, मगर हुआ यह कि तुमने उनको भी झुठलाया ही, बल्कि उनको क़त्ल तक कर डाला।

यहाँ यह शुब्हा न किया जाये कि अगरचे यहूद का यह दावा और मुतालबा क़तई ग़लत था, लेकिन अगर आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के हाथ पर यह मोजिज़ा भी ज़ाहिर हो जाता तो शायद ईमान ले आते। क्योंकि अल्लाह तआ़ला के इल्म में था कि ये लोग केवल दुश्मनी और हठधर्मी से ये बातें कह रहे हैं, अगर इनके कहने के मुताबिक़ मोजिज़ा हो भी जाता जब भी ये

ईमान न लाते।

पाँचवीं आयत में रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम को तसल्ली दी गई है कि उनके झुठलाने पर आप ग़मगीन न हों, क्योंकि यह मामला तो सभी अम्बिया अलैहिमुस्सलाम के साथ होता चला आया है।

आख़िरत की फ़िक्र सारे ग़मों का इलाज और तमाम शुब्हों का जवाब है

छठी आयत में इस हक़ीक़त को वाज़ेह किया गया है कि अगर कभी किसी जगह काफ़िरों को ग़लबा ही हो जाये और दुनिया का ऐश व आराम पूरा-पूरा मिल जाये और मुसलमानों को इसके उलट कुछ मुसीबतों व मुश्किलों और दुनिया के असबाब की तंगी भी पेश आ जाये, तो यह कोई ताज्जुब की बात नहीं, न ग़मगीन होने की। क्योंकि इस हक़ीक़त से किसी मज़हब व मशरब वाले को और किसी फ़ल्सफ़े (विचारधारा व धारणा) वाले को इनकार नहीं हो सकता कि दुनिया का रंज व राहत दोनों चन्द दिन की हैं, कोई जानदार मौत से नहीं बच सकता, और दुनिया की राहत व मुसीबत अक्सर तो दुनिया ही में हालात बदलने से ख़त्म हो जाती हैं और फ़र्ज़ करो दुनिया में न बदली तो मौत पर सब का ख़ात्मा हो जाना यक़ीनी है। अक़्लमन्द का काम इस चन्द दिन के राहत व रंज की फ़िक्र में पड़े रहना नहीं बल्कि मौत के बाद की फ़िक्र करना है कि वहाँ क्या होगाः

दौराने बक़ा चू बादे सेहरा बगुज़िश्त तल्ख़ी व ख़ुशी व ज़श्त व ज़ेबा बगुज़िश्त

ज़िन्दगी का समय जंगल की हवा की तरह गुज़र गया, ख़ुशी व नाख़ुशी, पसन्दीदा और नापसन्दीदा कुछ बाक़ी नहीं रहा। **मुहम्मद इमरान क़ासमी बिज्ञानवी**

इसी लिये इस आयत में बतलाया गया है कि हर जानदार मौत का मज़ा चखेगा और फिर आख़िरत में अपने अमल की जज़ा व सज़ा (अच्छा या बुरा बदला) पायेगा। जो सख़्त भी होगी और लम्बी भी, तो अक़्लमन्द को फ़िक्र उसकी करनी चाहिये। उसकी रू से कामयाब सिर्फ़ वह शख़्स है जिसको दोज़ख़ से छुटकारा मिल जाये और जन्नत में दाख़िल हो जाये, चाहे शुरू ही में, जैसा कि नेक बन्दों के साथ मामला होगा, या कुछ सज़ा भुगतने के बाद जैसा कि गुनाहगार मुसलमानों के साथ होगा। मगर मुसलमान सब के सब आख़िरकार जहन्नम से निजात पाकर हमेशा-हमेशा के लिये जन्नत की राहतों और नेमतों के मालिक बन जायेंगे। जबकि इसके विपरीत काफ़िरों का हाल यह होगा कि उनका हमेशा का ठिकाना जहन्नम है। वे अगर दुनिया की चन्द दिन की राहत पर घमण्ड करें तो धोखा ही धोखा है। इसी लिये आयत के आख़िर में फ़रमाया कि दुनिया की ज़िन्दगी तो धोखे का सामान है, क्योंकि उमूमन यहाँ की लज़्ज़तें आख़िरत की सख़्त मुसीबतों और दुखों का सबब होती हैं और यहाँ की तकलीफ़ें ज़्यादातर आख़िरत के लिये ज़ख़ीरा (राहत का सामान) हो जाती हैं।

हक़ वालों को बातिल वालों से तकलीफ़ें पहुँचना एक क़ुदरती चीज़ है और इसका इलाज सब्र व तक़्वा है

सातवीं आयत एक ख़ास वाक़िए के बारे में नाज़िल हुई है जिसका संक्षिप्त ज़िक्र अभी ऊपर बयान हुई दूसरी आयत में आ चुका है। तफ़सील इसकी यह है कि क़ुरआने करीम में जब आयतः

مَنْ ذَا الَّذِیْ یُقْرِضُ اللّٰہَ قَرْضًا حَسَنًا. (۲:۲۴۵)

नाज़िल हुई, जिसमें एक उम्दा और आसान उनवान में सदक़ों व ख़ैरात को अल्लाह को क़र्ज़ देने से ताबीर किया है, और इस उनवान में इस तरफ़ इशारा है कि जो कुछ यहाँ दोगे उसका बदला आख़िरत में ऐसा यक़ीनी होकर मिलेगा जैसे किसी का क़र्ज़ अदा किया जाता है।

एक जाहिल या इस्लाम के विरोधी यहूदी ने इसको सुनकर ये अलफ़ाज़ कहेः

اِنَّ اللّٰہَ فَقِیْرٌ وَّنَحْنُ اَغْنِیَآءُ

(कि अल्लाह फ़क़ीर है और हम मालदार हैं) हज़रत सिद्दीक़े अकबर रज़ियल्लाहु अन्हु को उसकी गुस्ताख़ी पर ग़ुस्सा आया और उस यहूदी को एक थप्पड़ मार दिया। यहूदी ने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम से शिकायत की, इस पर यह आयत नाज़िल हुईः

لَتُبْلَوُنَّ فِیْٓ اَمْوَالِکُمْ وَاَنْفُسِکُمْ.......... الاٰیۃ.

जिसमें मुसलमानों को बतलाया गया है कि दीन के लिये जान व माल की क़ुरबानियों से और काफ़िरों व मुश्रिकों और अहले किताब की बद-ज़ुबानी (बुरा-भला कहने) की तकलीफ़ों से घबराना नहीं चाहिये, यह सब उनकी आज़माईश है और इसमें उनके लिये बेहतर यही है कि सब्र से काम लें और अपने असल मक़सद तक़्वा की पूर्ति (यानी नेक कामों और परहेज़गारी में बुलन्द मक़ाम हासिल करने) में लगे रहें, उनका जवाब देने की फ़िक्र में न पड़ें।

وَاِذْ اَخَذَ اللّٰہُ مِیْثَاقَ الَّذِیْنَ اُوْتُوا الْکِتٰبَ لَتُبَیِّنُنَّہٗ لِلنَّاسِ وَلَا تَکْتُمُوْنَہٗ ز فَنَبَذُوْہُ وَرَآءَ ظُھُوْرِھِمْ وَاشْتَرَوْا بِہٖ ثَمَنًا قَلِیْلًا ط فَبِئْسَ مَا یَشْتَرُوْنَ ﴿۱۸۷﴾ لَا تَحْسَبَنَّ الَّذِیْنَ یَفْرَحُوْنَ بِمَآ اَتَوْا وَّیُحِبُّوْنَ اَنْ یُّحْمَدُوْا بِمَا لَمْ یَفْعَلُوْا فَلَا تَحْسَبَنَّھُمْ بِمَفَازَۃٍ مِّنَ الْعَذَابِ ج وَلَھُمْ عَذَابٌ اَلِیْمٌ ﴿۱۸۸﴾ وَلِلّٰہِ مُلْکُ السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضِ ط وَاللّٰہُ عَلٰی کُلِّ شَیْءٍ قَدِیْرٌ ﴿۱۸۹﴾

ع ١٩ ١٠

व इज़् अ-ख़ज़ल्लाहु मिसाक़ल्लज़ी-न ऊतुल्-किता-ब लतु-बय्यिनुन्नहू	और जब अल्लाह ने अ़हद लिया किताब वालों से कि उसको बयान करोगे लोगों से और न छुपाओगे, फिर फेंक दिया

लिन्नासि व ला तक्तुमूनहू फ़-न-बज़ूहु वरा-अ ज़ुहूरिहिम् वश्तरौ बिही स-मनन् क़लीलन्, फ़-बिअ्-स मा यश्तरून (187) ला तह्सबन्नल्लज़ी-न यफ़्रहू-न बिमा अतव्-व युहिब्बू-न अंय्युह्मदू बिमा लम् यफ़्अ़लू फ़ला तह्सबन्नहुम् बि-मफ़ाज़तिम् मिनल्-अ़ज़ाबि व लहुम् अ़ज़ाबुन् अलीम (188) व लिल्लाहि मुल्कुस्समावाति वल्अर्ज़ि, वल्लाहु अ़ला कुल्लि शैइन् क़दीर (189) ✿	उन्होंने वो अ़हद अपनी पीठ के पीछे और ख़रीदा उसके बदले थोड़ा मोल, सो क्या (कितना) बुरा है जो वे ख़रीदते हैं। (187) तू न समझ कि जो लोग ख़ुश होते हैं अपने किये पर और तारीफ़ चाहते हैं बिना किये पर, सो मत समझ उनको कि छूट गये अ़ज़ाब से, और उनके लिये दर्दनाक अ़ज़ाब है। (188) और अल्लाह ही के लिये है सल्तनत आसमान की और ज़मीन की और अल्लाह हर चीज़ पर क़ादिर है। (189) ✿

इन आयतों के मज़मून का पीछे से संबन्ध

जैसा कि पिछली आयतों में यहूदियों के बुरे कामों और बुरी ख़स्लतों का बयान था, यहाँ बयान हुई पहली आयत में उनके एक ऐसे ही बुरे अ़मल का ज़िक्र है, और वह है अ़हद व पैमान की ख़िलाफ़वर्ज़ी (यानी वायदा व अ़हद करके उसके ख़िलाफ़ करना)। क्योंकि अहले किताब से अल्लाह तआ़ला ने यह अ़हद लिया था कि अल्लाह तआ़ला के अहकाम जो तौरात में आये हैं वे उनका प्रचार व प्रसार आ़म करेंगे और किसी हुक्म को अपनी नफ़्सानी ग़र्ज़ से छुपायेंगे नहीं। अहले किताब ने यह अ़हद तोड़ दिया, अहकाम को छुपाया और फिर दिलेरी (दुस्साहस) यह कि इस पर ख़ुशी का इज़हार किया और अपनी इस हरकत को क़ाबिले तारीफ़ क़रार दिया।

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

(यह हालत भी क़ाबिले ज़िक्र है) जबकि अल्लाह ने (पिछली किताबों में) किताब वालों से यह अ़हद लिया (यानी उनको हुक्म फ़रमाया और उन्होंने क़ुबूल कर लिया) कि इस किताब के (सब मज़ामीन) आ़म लोगों के रू-ब-रू ज़ाहिर कर देना और इस (के किसी मज़मून) को (दुनियावी ग़र्ज़ से) मत छुपाना। सो उन लोगों ने उस (अ़हद) को अपनी पीठ पीछे फेंक दिया (यानी उस पर अ़मल न किया) और उसके मुक़ाबले में (दुनिया का) कम-हक़ीक़त मुआ़वज़ा ले लिया। सो बुरी चीज़ है जिसको वे लोग ले रहे हैं (क्योंकि उसका अन्जाम जहन्नम की सज़ा है)।

(ऐ मुख़ातब!) जो लोग ऐसे हैं कि अपने (बुरे) किरदार पर ख़ुश होते हैं और जो (नेक)

काम नहीं किया उस पर चाहते हैं कि उनकी तारीफ़ हो, सो ऐसे शख़्सों को हरगिज़-हरगिज़ मत ख़्याल करो कि वे (दुनिया में) ख़ास अन्दाज़ के अ़ज़ाब से बचाव (और हिफ़ाज़त) में रहेंगे (हरगिज़ नहीं! बल्कि दुनिया में भी कुछ सज़ा होगी) और (आख़िरत में भी) उनको दर्दनाक सज़ा होगी। और अल्लाह ही के लिए (ख़ास) है बादशाहत आसमानों की और ज़मीन की, और अल्लाह तआ़ला हर चीज़ पर पूरी क़ुदरत रखते हैं।

मआ़रिफ़ व मसाईल

इल्मे दीन को छुपाना हराम और बग़ैर अ़मल किये उस पर तारीफ़ व प्रशंसा का इन्तिज़ार व एहतिमाम बुरा और निंदनीय है

मज़कूरा तीन आयतों में अहले किताब (यहूदियों व ईसाईयों) के आ़लिमों के दो जुर्म और उनकी सज़ा का बयान है, और यह कि उनको हुक्म यह था कि अल्लाह तआ़ला की किताब में जो अहकाम आये हैं उनको सब के सामने कोई कमी-ज़्यादती किये बग़ैर बयान करेंगे और किसी हुक्म को छुपायेंगे नहीं, मगर उन्होंने अपने दुनियावी स्वार्थों और नफ़्सानी लालच व इच्छा की ख़ातिर इस अ़हद की परवाह न की, बहुत से अहकाम को लोगों से छुपा लिया।

दूसरे यह कि वे नेक अ़मल करते तो हैं नहीं और चाहते हैं कि बग़ैर अ़मल किये उनकी तारीफ़ की जाये।

तौरात के अहकाम को छुपाने का वाक़िआ़ तो सही बुख़ारी में हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु की रिवायत से मन्क़ूल है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने यहूद से एक बात पूछी कि क्या यह तौरात में है? उन लोगों ने छुपा लिया और जो तौरात में था उसके ख़िलाफ़ बयान कर दिया, और अपने इस बुरे अ़मल पर ख़ुश होते हुए वापस आये कि हमने ख़ूब धोखा दिया। इस पर यह आयत नाज़िल हुई जिसमें उन लोगों के लिये धमकी है।

और दूसरा मामला 'न किये हुए अ़मल पर तारीफ़ व प्रशंसा के इच्छुक हैं' यह है कि यहूद के मुनाफ़िक़ों का एक तर्ज़े-अ़मल (बर्ताव और तरीक़ा) यह भी था कि जब किसी जिहाद का वक़्त आता तो बहाने करके घर में बैठ जाते और इस तरह जिहाद की मशक़्क़त से बचने पर ख़ुशियाँ मनाते, और जब रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम वापस आते तो आपके सामने झूठी क़समें खाकर उज़्र (मजबूरी और बहाना) बयान कर देते और इसके इच्छुक होते थे कि उनके इस अ़मल की तारीफ़ की जाये। (बुख़ारी शरीफ़)

क़ुरआने करीम ने इन दोनों चीज़ों पर उनकी मज़म्मत (निंदा) फ़रमाई। जिससे मालूम हुआ कि दीन का इल्म, अल्लाह के अहकाम और रसूल सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के इरशादात व अहकाम को छुपाना हराम है, मगर यह हुर्मत उसी तरह के छुपाने की है जो यहूद का अ़मल था कि अपने दुनियावी स्वार्थों से अल्लाह के अहकाम को छुपाते थे और उस पर लोगों से माल वसूल करते थे। अगर किसी दीनी और शरई मस्लेहत से कोई हुक्म अ़वाम पर ज़ाहिर न किया

जाये तो वह इसमें दाख़िल नहीं जैसा कि इमाम बुख़ारी रह. ने एक मुस्तक़िल बाब में इस मसले को हदीसों के हवाले से बयान फ़रमाया है, कि कई बार किसी हुक्म के इज़हार से अवाम के ग़लत-फ़हमी और फ़ितने में मुब्तला हो जाने का ख़तरा होता है उस ख़तरे की बिना पर कोई हुक्म पोशीदा रखा जाये तो कोई हर्ज नहीं।

और कोई नेक अमल करने के बाद भी उस पर तारीफ़ व प्रशंसा का इन्तिज़ार व एहतिमाम करे तो अमल करने के बावजूद भी शरई उसूलों की रू से बुरा और नापसन्दीदा है, और न करने की सूरत में तो और भी ज़्यादा बुरा है, और तबई तौर पर यह इच्छा होना कि मैं भी फ़ुलाँ नेक काम करूँ और नेकनाम हो जाऊँ वह इसमें दाख़िल नहीं, जबकि उस नेकनामी का एहतिमाम न करे। (बयानुल-क़ुरआन)

إِنَّ فِي خَلْقِ السَّمٰوٰتِ وَالْأَرْضِ وَاخْتِلَافِ الَّيْلِ وَالنَّهَارِ لَاٰيٰتٍ لِّأُولِي الْأَلْبَابِ ۝ الَّذِيْنَ يَذْكُرُوْنَ اللّٰهَ قِيٰمًا وَّقُعُوْدًا وَّعَلٰى جُنُوْبِهِمْ وَيَتَفَكَّرُوْنَ فِي خَلْقِ السَّمٰوٰتِ وَالْأَرْضِ ۚ رَبَّنَا مَا خَلَقْتَ هٰذَا بَاطِلًا ۚ سُبْحٰنَكَ فَقِنَا عَذَابَ النَّارِ ۝ رَبَّنَآ إِنَّكَ مَنْ تُدْخِلِ النَّارَ فَقَدْ أَخْزَيْتَهٗ ۖ وَمَا لِلظّٰلِمِيْنَ مِنْ أَنْصَارٍ ۝ رَبَّنَآ إِنَّنَا سَمِعْنَا مُنَادِيًا يُّنَادِيْ لِلْإِيْمَانِ أَنْ اٰمِنُوْا بِرَبِّكُمْ فَاٰمَنَّا ۖ رَبَّنَا فَاغْفِرْ لَنَا ذُنُوْبَنَا وَكَفِّرْ عَنَّا سَيِّاٰتِنَا وَتَوَفَّنَا مَعَ الْأَبْرَارِ ۝ رَبَّنَا وَاٰتِنَا مَا وَعَدْتَّنَا عَلٰى رُسُلِكَ وَلَا تُخْزِنَا يَوْمَ الْقِيٰمَةِ ۗ إِنَّكَ لَا تُخْلِفُ الْمِيْعَادَ ۝

इन्-न फ़ी ख़ल्क़िस्समावाति वल्अर्ज़ि वख़्तिलाफ़िल्लैलि वन्नहारि ल-आयातिल्-लिउलिल् अल्बाब (190) अल्लज़ी-न यज़्कुरूनल्ला-ह क़ियामंव्-व क़ुअूदंव्-व अला जुनूबिहिम् व य-तफ़क्करू-न फ़ी ख़ल्क़िस्समावाति वल्अर्ज़ि रब्बना मा ख़लक़्-त हाज़ा बातिलन् सुब्हान-क फ़क़िना अ़ज़ाबन्नार (191) रब्बना इन्न-क मन् तुद्ख़िलिन्ना-र फ़-क़द् अख़्ज़ैतहू व मा लिज़्ज़ालिमी-न मिन्	बेशक आसमान और ज़मीन का बनाना रात दिन का आना जाना इसमें निशानियाँ हैं अक़्ल वालों को। (190) वे जो याद करते हैं अल्लाह को खड़े और बैठे और करवट पर लेटे, और फ़िक्र करते (यानी ग़ौर और विचार करते) हैं आसमान और ज़मीन की पैदाईश में, कहते हैं- ऐ हमारे रब! तूने यह बेफ़ायदा और बेकार नहीं बनाया, तू पाक है सब ऐबों से, सो हमको बचा दोज़ख़ के अ़ज़ाब से। (191) ऐ हमारे रब! जिसको तूने दोज़ख़ में डाला सो उसको रुस्वा कर दिया और नहीं कोई गुनाहगारों का मददगार। (192)

अन्सार (192) रब्बना इन्नना समिअ्ना मुनादियंय्युनादी लिल्ईमानि अन् आमिनू बि-रब्बिकुम् फ़-आमन्ना रब्बना फ़ग्फ़िर् लना ज़ुनूबना व कफ़्फ़िर् अ़न्ना सय्यिआतिना व तवफ़्फ़ना मअ़ल्-अब्रार (193) रब्बना व आतिना मा व-अ़त्तना अ़ला रुसुलि-क व ला तुख़्ज़िना यौमल्-क़ियामति, इन्न-क ला तुख़्लिफ़ुल् मीआ़द (194)	ऐ हमारे रब! हमने सुना कि एक पुकारने वाला पुकारता है ईमान लाने को कि ईमान लाओ अपने रब पर, सो हम ईमान ले आये, ऐ हमारे रब! अब बख़्श दे हमारे गुनाह और दूर कर दे हम से हमारी बुराईयाँ और मौत दे हमको नेक लोगों के साथ। (193) ऐ हमारे रब! और दे हमको जो वादा किया तूने हमसे रसूलों के वास्ते से और रुस्वा न कर हमको क़ियामत के दिन, बेशक तू वादे के ख़िलाफ़ नहीं करता। (194)

इन आयतों का पीछे से ताल्लुक़

चूँकि ऊपर ख़ास कर देने से तौहीद (अल्लाह के एक और तन्हा माबूद होने का यक़ीन करना) मालूम हुई इसलिये अगली आयत में तौहीद पर दलील लाते हैं और उसके साथ तौहीद के तक़ाज़े पर पूरा अ़मल करने वालों की फ़ज़ीलत बयान फ़रमाते हैं। जिसमें इशारे के तौर पर दूसरों को भी तरग़ीब (शौक़ और दिलचस्पी दिलाना) है इस तक़ाज़े पर अ़मल करने की। ऊपर जो काफ़िरों से तकलीफ़ें पहुँचने का मज़मून था आगे वाली आयत को उससे भी मुनासबत है, इस तरह कि मुश्रिकों ने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से दुश्मनी व बैर के तौर पर यह दरख़्वास्त की कि सफ़ा पहाड़ को सोने का बना दें। इस पर यह आयत नाज़िल हुई कि हक़ की दलीलें (निशानियाँ) तो बहुत हैं, उनमें क्यों विचार और ग़ौर व फ़िक्र नहीं करते।

और उन लोगों की यह दरख़्वास्त हक़ की तलाश व खोज के लिये न थी बल्कि दुश्मनी और बैर के तौर पर थी, जिससे दरख़्वास्त पूरा होने पर भी ईमान न लाते।

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

बेशक आसमानों के और ज़मीन के बनाने में और एक के बाद एक रात और दिन के आने-जाने में (तौहीद अर्थात् अल्लाह तआ़ला के एक माबूद होने की) दलीलें (मौजूद) हैं (सही) अ़क़्ल वालों के (तर्क लेने के) लिये। जिनकी हालत यह है (जो आगे आती है और यही हालत उनके अ़क़्लमन्द होने की निशानी भी है, क्योंकि अ़क़्ल का तक़ाज़ा नुक़सान से बचना और फ़ायदा हासिल करना है, और इस पर इस हालत का मजमूआ़ दलालत कर रहा है। वह हालत

यह है) कि वे लोग (हर हाल में दिल से भी और ज़बान से भी) अल्लाह तआ़ला की याद करते हैं खड़े भी, बैठे भी, लेटे भी। और आसमानों और ज़मीन के पैदा होने में (अपनी अ़क़्ली क़ुव्वत से) ग़ौर करते हैं (और ग़ौर का जो नतीजा होता है यानी ईमान का वजूद में आना या उसका नवीकरण या मज़बूती, उसको इस तरह ज़ाहिर करते हैं) कि ऐ हमारे परवर्दिगार! आपने इस (मख़्लूक़) को बेकार पैदा नहीं किया (बल्कि इसमें हिक्मतें रखी हैं। जिनमें एक बड़ी हिक्मत यह है कि इस मख़्लूक़ से ख़ालिक़ तआ़ला के वजूद पर दलील ली जाये)। हम आपको (बिना मक़सद पैदा करने से) पाक समझते हैं (इसलिये हमने दलील ली और तौहीद के क़ायल हुए) सो हमको (तौहीद वाला और मोमिन होने की वजह से) दोज़ख़ के अ़ज़ाब से बचा लीजिए (जैसा कि शरई तौर पर इसका यही तक़ाज़ा और परिणाम है। यह अलग बात है किसी बाधा के सबब जैसे गुनाहों के सबब कुछ अ़ज़ाब होने लगे। एक अ़र्ज़ तो उन लोगों की यह थी, और वे इसी ईमान के मज़मून के मुनासिब कुछ और दरख़्वास्तें भी करते हैं जो आगे आती हैं)। ऐ हमारे परवर्दिगार! (हम इसलिये दोज़ख़ के अ़ज़ाब से पनाह माँगते हैं कि) बेशक आप जिसको (उसकी जज़ा के तौर पर) दोज़ख़ में दाख़िल करें उसको वाक़ई रुस्वा ही कर दिया (इससे काफ़िर मुराद है) और ऐसे बेइन्साफ़ों का (जिनकी असली जज़ा दोज़ख़ तजवीज़ की जाये) कोई भी साथ देने वाला नहीं (और आपका वायदा है ईमान वालों के लिये रुस्वा न करने का भी और मदद करने का भी, बस ईमान लाकर हमारी दरख़्वास्त है कि कुफ़्र की असल जज़ा से बचाईये, ईमान के असल इनाम यानी 'दोज़ख़ से निजात' का हमारे लिये फ़ैसला फ़रमाईये)।

ऐ हमारे परवर्दिगार! हमने (जैसे निर्मित चीज़ों की दलालत से अ़क़्ली तर्क लिया उसी तरह हमने) एक (हक़ की तरफ़) पुकारने वाले को (मुराद इससे हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम हैं माध्यम से या बिना माध्यम के) सुना कि वह ईमान लाने के वास्ते ऐलान कर रहे हैं कि (ऐ लोगो!) तुम अपने परवर्दिगार (की ज़ात व सिफ़ात) पर ईमान लाओ। सो हम (इस दलीले नक़ली से इस्तिदलाल करके भी) ईमान ले आए (इस दरख़्वास्त में अल्लाह पर ईमान लाने के साथ रसूल पर ईमान लाना भी इसी के तहत में आ गया। पस ईमान के दोनों हिस्से यानी अल्लाह के एक होने और हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के अल्लाह का रसूल होने का एतिक़ाद व यक़ीन कामिल हो गये)।

ऐ हमारे परवर्दिगार! फिर (इसके बाद हमारी यह दरख़्वास्त है कि) हमारे (बड़े) गुनाहों को भी माफ़ फ़रमा दीजिए और हमारी (छोटी) बुराईयों को भी हमसे (माफ़ करके) दूर कर दीजिए और (हमारा अन्जाम भी जिस पर मदार है, दुरुस्त कीजिये इस तरह कि) हमको नेक लोगों के साथ (शामिल रखकर) मौत दीजिए (यानी नेकी पर ख़ात्मा हो)।

ऐ परवर्दिगार! और (जिस तरह हमने अपने नुक़सानात से सुरक्षित रहने के लिये दरख़्वास्त की है, जैसे दोज़ख़ व रुस्वाई और गुनाहों व बुराईयों से, इसी तरह हम अपने फ़ायदों की दुआ़ करते हैं कि) ऐ हमारे परवर्दिगार! हमको वह चीज़ (यानी सवाब व जन्नत) भी दीजिए जिसका हमसे अपने पैग़म्बरों के द्वारा आपने वायदा फ़रमाया है (कि मोमिनों व नेक लोगों को बड़ा अज्र

मिलेगा) और (यह सवाब व जन्नत हमको इस तरह दीजिये कि सवाब मिलने से पहले भी) हमको क़ियामत के दिन रुस्वा न कीजिए (जैसा कि कुछ लोगों को शुरू में सज़ा होगी फिर जन्नत में जायेंगे। मतलब यह कि पहले ही से जन्नत में दाख़िल कर दीजिये और) यक़ीनन आप (तो) वायदा ख़िलाफ़ी नहीं करते (लेकिन हमको यह ख़ौफ़ है कि जिनके लिये वायदा है यानी मोमिन व नेक लोग, कहीं ऐसा न हो कि ख़ुदा न करे हम उन सिफ़ात वाले न रहें जिन पर वायदा है। इसलिये हम आप से ये प्रार्थनायें करते हैं कि हमको अपने वायदे की चीज़ें दीजिये यानी हमको ऐसा कर दीजिये और ऐसा ही रखिये जिससे हम वायदे के मुख़ातब, पात्र और हक़दार हो जायें)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

आयत का शाने नुज़ूल

इस आयत के शाने नुज़ूल (नाज़िल होने के मौक़े और सबब) के बारे में इब्ने हब्बान रह. ने अपनी सही में और मुहद्दिस इब्ने असाकिर रह. ने अपनी तारीख़ में नक़ल किया है कि अ़ता बिन अबी रबाह रज़ियल्लाहु अ़न्हु हज़रत आ़यशा रज़ियल्लाहु अ़न्हा के पास तशरीफ़ ले गये और कहा कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के हालात में जो सबसे ज़्यादा अ़जीब चीज़ आपने देखी हो वह मुझे बतलाईये। इस पर हज़रत आ़यशा रज़ियल्लाहु अ़न्हा ने फ़रमाया- आपकी किस शान को पूछते हो? उनकी तो हर शान अ़जीब ही थी। हाँ एक वाक़िआ़ अ़जीब सुनाती हूँ वह यह कि हुज़ूरे अकरम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम एक रात मेरे पास तशरीफ़ लाये और लिहाफ़ में मेरे साथ दाख़िल हो गये। फिर फ़रमाया कि मुझे इजाज़त दो कि मैं अपने परवर्दिगार की इबादत करूँ। बिस्तर से उठे, वुज़ू फ़रमाया, फिर नमाज़ के लिये खड़े हो गये और क़ियाम में इस क़द्र रोये कि आपके आँसू सीना-ए-मुबारक पर बह गये। फिर रुकूअ़ फ़रमाया और उसमें भी रोये, फिर सज्दा किया और सज्दे में भी उसी क़द्र रोये। फिर सर उठाया और लगातार रोते रहे यहाँ तक कि सुबह हो गई। हज़रत बिलाल रज़ियल्लाहु अ़न्हु आये और हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को नमाज़ की इत्तिला दी। हज़रत आ़यशा रज़ियल्लाहु अ़न्हा फ़रमाती हैं कि मैंने अ़र्ज़ किया- हुज़ूर! इस क़द्र क्यों रोते हैं? अल्लाह तआ़ला ने तो आपके अगले पिछले गुनाह माफ़ फ़रमा दिये हैं। आपने फ़रमाया तो क्या मैं शुक्रगुज़ार बन्दा न बनूँ? और शुक्रिये में रोना व गिड़गिड़ाना क्यों न करूँ जबकि अल्लाह तआ़ला ने आज की रात मुझ पर यह मुबारक आयत नाज़िल फ़रमाई है:

اِنَّ فِیْ خَلْقِ السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضِ.................. الاٰیۃ

(यानी यही आयत जिसकी तफ़सीर बयान हो रही है) इसके बाद आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया- बड़ी तबाही है उस शख़्स के लिये जिसने इन आयतों को पढ़ा और इनमें ग़ौर नहीं किया। लिहाज़ा आयत पर ग़ौर व फ़िक्र के सिलसिले में निम्नलिखित मसाईल पर ग़ौर

करना है।

आसमान व ज़मीन के पैदा करने से क्या मुराद है

पहला यह कि आसमान व ज़मीन के पैदा करने से क्या मुराद है? ख़ल्क़ मस्दर है जिसके मायने किसी चीज़ के आविष्कार और पहले-पहल बनाने के हैं। मायने यह हुए कि आसमान और ज़मीन के पैदा करने में अल्लाह तआ़ला की बड़ी निशानियाँ हैं। इसलिये इसमें अल्लाह तआ़ला की बनाई हुई और पैदा की हुई वो तमाम चीज़ें भी दाख़िल हो जाती हैं जो आसमान और ज़मीन के अन्दर हैं। फिर उन मख़्लूक़ात में क़िस्म-क़िस्म की मख़्लूक़ात हैं, जिनमें हर एक की विशेषतायें और कैफ़ियतें अलग-अलग हैं, और हर मख़्लूक़ अपने ख़ालिक़ (पैदा करने वाले) की पूरी तरह निशानदेही कर रही है। फिर अगर ज़्यादा ग़ौर किया जाये तो समझ में आता है कि **'अस्समावात'** में तमाम रफ़अ़तें (बुलन्दियाँ व ऊँचाईयाँ) दाख़िल हैं और **'अल-अर्ज़'** में तमाम पस्तियाँ (नीचे की चीज़ें) दाख़िल हैं। सो जिस तरह अल्लाह तआ़ला बुलन्दियों का ख़ालिक़ है इसी तरह पस्तियों का भी ख़ालिक़ (बनाने वाला) है।

रात और दिन के अदलने-बदलने की विभिन्न सूरतें

दूसरा यह कि रात और दिन के अदलने-बदलने और आने-जाने से क्या मुराद है? लफ़्ज़ **इख़्तिलाफ़** इस जगह अ़रबी के इस मुहावरे से लिया गया है कि:

اِخْتَلَفَ فُلَانٌ فُلَانًا

यानी वह शख़्स फ़ुलाँ शख़्स के बाद आया। पस **इख़्तिलाफ़े** लैल व नहार के मायने यह हुए कि रात जाती है और दिन आता है, और दिन जाता है तो रात आती है।

इख़्तिलाफ़ के दूसरे मायने यह भी हो सकते हैं कि इख़्तिलाफ़ से ज़्यादती व कमी मुराद ली जाये। सर्दियों में रात लम्बी होती है और दिन छोटा होता है और गर्मियों में इसके उलट होता है। इसी तरह रात दिन में फ़र्क़ मुल्कों के फ़र्क़ से भी होता है। जैसे जो मुल्क क़ुतबे शुमाली से क़रीब हैं उनमें दिन ज़्यादा बड़ा होता है उन शहरों के मुक़ाबले में जो क़ुतबे शुमाली से दूर हैं। और इन चीज़ों में से हर एक अल्लाह पाक की कामिल क़ुदरत पर स्पष्ट और ख़ुली दलील है।

लफ़्ज़ 'आयात' की तहक़ीक़

तीसरी चीज़ यह है कि लफ़्ज़ **'आयात'** के क्या मायने हैं? आयात, आयत का बहुवचन है और यह लफ़्ज़ चन्द मायने के लिये बोला जाता है। आयात **मोजिज़ों** को भी कहा जाता है और क़ुरआन मजीद की आयतों पर भी इसका हुक्म होता है। इसके तीसरे मायने दलील और **निशानी** के भी हैं। यहाँ पर यही तीसरे मायने मुराद हैं। यानी इन चीज़ों में अल्लाह तआ़ला की बड़ी निशानियाँ और क़ुदरत की दलीलें हैं।

चौथी चीज़ उलुल्-अल्बाब के मायने से मुताल्लिक़ है। अल्बाब लुब्ब की जमा (बहुवचन) है जिसके मायने मग़्ज़ के हैं, और हर चीज़ का मग़्ज़ उसका ख़ुलासा होता है, और उसी से उसकी विशेषता व फ़ायदे मालूम होते हैं। इसी लिये इनसानी अ़क़्ल को लुब्ब कहा गया है, क्योंकि अ़क़्ल ही इनसान का असली जौहर है। उलुल-अल्बाब के मायने हैं अ़क़्ल वाले।

अ़क़्ल वाले सिर्फ़ वही लोग हैं जो अल्लाह तआ़ला पर ईमान लाते और हर हाल में उसका ज़िक्र करते हैं

अब यहाँ यह मसला ग़ौर-तलब था कि अ़क़्ल वालों से कौन लोग मुराद हैं। क्योंकि सारी दुनिया अ़क़्लमन्द होने की दावेदार है। कोई बेवक़ूफ़ भी अपने आपको बेअ़क़्ल तस्लीम करने के लिये तैयार नहीं। इसलिये क़ुरआने करीम ने अ़क़्ल वालों की चन्द ऐसी निशानियाँ बतलाई हैं जो दर हक़ीक़त अ़क़्ल का सही मेयार हैं। पहली निशानी अल्लाह तआ़ला पर ईमान है। ग़ौर कीजिये तो महसूस चीज़ों का इल्म कान, आँख, नाक, ज़बान वग़ैरह से हासिल होता है, जो बेअ़क़्ल जानवरों में भी पाया जाता है, और अ़क़्ल का काम यह है कि अ़लामत व अन्दाज़े और दलीलों के ज़रिये किसी ऐसे नतीजे तक पहुँच जाये जो महसूस नहीं है और जिसके ज़रिये असबाब के सिलसिले की आख़िरी कड़ी को पाया जा सके।

इस उसूल को सामने रखते हुए इस दुनिया की कायनात पर ग़ौर कीजिये। आसमान व ज़मीन और इनमें समाई हुई तमाम मख़्लूक़ात और इनकी छोटी बड़ी चीज़ों का स्थिर और हैरत अंगेज़ निज़ाम अ़क़्ल को किसी ऐसी हस्ती का पता देता है जो इल्म व हिक्मत और क़ुव्वत व क़ुदरत के एतिबार से सबसे ज़्यादा ऊँची और बड़ी हो, और जिसने इन तमाम चीज़ों को ख़ास हिक्मत से बनाया हो, और जिसके इरादे और मर्ज़ी से यह सारा निज़ाम चल रहा हो। और वह हस्ती ज़ाहिर है कि अल्लाह जल्ल शानुहू ही की हो सकती है। किसी अल्लाह वाले का क़ौल है:

हर गयाहे कि अज़ ज़मीं रूयद
वह्दहू ला शरी-क लहू गोयद

यानी ज़मीन से अगर एक घास का तिनका भी उगता है तो वह भी इस बात का पता देता है कि इस कायनात की मालिक एक अकेली और तन्हा हस्ती है, कोई उसका शरीक नहीं। **मुहम्मद इमरान क़ासमी बिज्ञानवी**

इनसानी इरादों और तदबीरों के फ़ेल होने को हर जगह और हर वक़्त देखा जाता है, इसको इस निज़ाम का चलाने वाला नहीं कहा जा सकता। इसलिये आसमान और ज़मीन की पैदाईश और इनमें पैदा होने वाली मख़्लूक़ात की पैदाईश में ग़ौर व फ़िक्र करने का नतीजा अ़क़्ल के नज़दीक अल्लाह तआ़ला की पहचान और उसकी फ़रमाँबरदारी व ज़िक्र है। जो इससे ग़ाफ़िल है वह अ़क़्लमन्द कहलाने का मुस्तहिक़ नहीं। इसलिये क़ुरआने करीम ने अ़क़्ल वालों की यह पहचान और निशानी बतलाई:

الَّذِيْنَ يَذْكُرُوْنَ اللّٰهَ قِيٰمًا وَّقُعُوْدًا وَّعَلٰى جُنُوْبِهِمْ

यानी अक़्ल वाले वे लोग हैं जो अल्लाह तआ़ला को याद करें खड़े और बैठे और लेटे हुए। मुराद यह है कि हर हालत और हर वक़्त अल्लाह तआ़ला की याद में मशग़ूल हों।

इससे मालूम हुआ कि आजकी दुनिया ने जिस चीज़ को अक़्ल और अक़्लमन्दी का मेयार समझ लिया है वह महज़ एक धोखा है। किसी ने माल व दौलत समेट लेने को अक़्लमन्दी क़रार दे दिया, किसी ने मशीनों के कल-पुर्ज़े बनाने या बिजली और भाप को असली पॉवर समझ लेने का नाम अक़्लमन्दी रख दिया, लेकिन अक़्ले सलीम की बात वह है जो अल्लाह तआ़ला के अम्बिया व रसूल लेकर आये, कि इल्म व हिक्मत के ज़रिये असबाब और साधनों में अदना से आला की तरफ़ तरक़्क़ी करते हुए दरमियानी मरहलों को नज़र-अन्दाज़ किया। कच्चे माल से मशीनों तक और मशीनों से बिजली और भाप की क़ुव्वत तक तुम्हें विज्ञान ने पहुँचाया। अक़्ल का काम यह है कि एक क़दम और आगे बढ़ो ताकि तुम्हें यह मालूम हो कि असल काम न पानी मिट्टी या लोहे ताँबे का है न मशीन का, न इसके ज़रिये पैदा हुई स्टीम का, बल्कि काम उसका है जिसने आग और पानी और हवा पैदा की, जिसके ज़रिये यह बिजली व भाप तुम्हारे हाथ आई:

कारे ज़ुल्फ़े तुस्त मुश्क अफ़्शानी अम्मा आ़शिक़ाँ
मस्लेहत रा तोमहते बर आहू-ए-चीन बस्ता अन्द

मुश्क से ख़ुशबू बिखेरना यह तेरी क़ुदरत की कारीगरी है मगर कुछ कम-नज़र और हक़ीक़त से नावाक़िफ़ लोग चीन के हिरण की तरफ़ इसकी निस्बत करते हैं।

मुहम्मद इमरान क़ासमी बिज्ञानवी

इसको एक आसान सी मिसाल से यूँ समझिये कि एक जंगल का रहने वाला जाहिल इनसान जब किसी रेलवे स्टेशन पर पहुँचे और यह देखे कि रेल जैसी विशाल सवारी एक सुर्ख़ झंडी के दिखाने से रुक जाती है और हरी झंडी के दिखाने से चलने लगती है तो अगर वह यह कहे कि यह सुर्ख़ और हरी झंडी बड़ी पॉवर और ताक़त की मालिक है कि इतनी ताक़त वाले इंजन को रोक देती और चला देती है, तो जानकार और अक़्ल वाले उसको अहमक़ कहेंगे और बतलायेंगे कि ताक़त इन झण्डियों में नहीं बल्कि उस शख़्स के पास है जो इन्जन में बैठा हुआ इन झण्डियों को देखकर रोकने और चलाने का काम करता है। लेकिन जिसकी अक़्ल कुछ इससे ज़्यादा है वह कहेगा कि इन्जन ड्राईवर को पॉवर ताक़त का मालिक समझना भी ग़लती है क्योंकि दर हक़ीक़त उसकी ताक़त को इसमें कोई दख़ल नहीं। वह एक क़दम और बढ़कर उस ताक़त को इन्जन के कल-पुर्ज़ों की तरफ़ मन्सूब करेगा। लेकिन एक फ़लॉस्फ़र या वैज्ञानिक उसको भी यह कहकर बेवक़ूफ़ बतलायेगा कि बेजान कल-पुर्ज़ों में क्या रखा है, असल ताक़त उस भाप और स्टीम की है जो इन्जन के अन्दर आग और पानी के ज़रिये पैदा की गई है। लेकिन हिक्मत व फ़ल्सफ़ा यहाँ आकर थक जाता है, अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम फ़रमाते हैं कि ज़ालिम! जिस तरह झण्डियों को या ड्राईवर को या इन्जन के कल-पुर्ज़ों को ताक़त और पॉवर का मालिक समझ

बैठना उस जाहिल की ग़लती थी इसी तरह भाप और स्टीम को ताक़त का मालिक समझ लेना भी तेरी फ़ल्सफ़ियाना ग़लती है। एक क़दम और आगे बढ़ ताकि तुझे इस उलझी हुई डोर का सिरा हाथ आये, और असबाब के सिलसिले की आख़िरी कड़ी तक तेरी पहुँच हो जाये, कि दर असल इन सारी ताक़तों और पॉवरों का मालिक वह है जिसने आग और पानी पैदा किये, और यह स्टीम तैयार हुई।

इस तफ़सील से आपने मालूम कर लिया कि अक़्ल वाले कहलाने के हक़दार सिर्फ़ वही लोग हैं जो अल्लाह तआ़ला को पहचानें और हर वक़्त हर हालत में उसको याद करें। इसी लिये उलिल-अल्बाब की सिफ़त क़ुरआने करीम ने यह बतलाई:

الَّذِيْنَ يَذْكُرُوْنَ اللّٰهَ قِيَامًا وَّ قُعُوْدًا وَّعَلٰى جُنُوْبِهِمْ

यानी अक़्ल वाले वे लोग हैं जो अल्लाह तआ़ला को याद करें खड़े और बैठे और लेटे हुए। मुराद यह है कि हर हालत और हर वक़्त अल्लाह तआ़ला की याद में मशग़ूल हों।

इसलिये हज़राते फ़ुक़हा किराम ने लिखा है कि अगर कोई इन्तिक़ाल से पहले यह वसीयत कर जाये कि मेरा माल अक़्लमन्दों को दे दिया जाये तो किसको दिया जायेगा? इसके जवाब में हज़राते फ़ुक़हा किराम ने तहरीर फ़रमाया कि ऐसे अल्लाह वाले नेक आ़लिम उस माल के हक़दार होंगे जो दुनिया की इच्छा और ग़ैर-ज़रूरी माद्दी असबाब से दूर हैं। क्योंकि सही मायनों में वही अक़्लमन्द हैं। (दुर्रे मुख़्तार, किताबुल-वसीयत)

इस जगह यह बात भी क़ाबिले ग़ौर है कि शरीअ़त में ज़िक्र के अ़लावा किसी और इबादत की अधिकता का हुक्म नहीं दिया गया, लेकिन ज़िक्र के मुताल्लिक़ इरशाद है कि:

اُذْكُرُوا اللّٰهَ ذِكْرًا كَثِيْرًا. (٣٣: ٤١)

कि अल्लाह तआ़ला का ज़िक्र ख़ूब ज़्यादा करो। वजह इसकी यह है कि ज़िक्र के सिवा तमाम इबादतों के लिये कुछ शर्तें और क़ायदे हैं जिनके बग़ैर वो इबादतें अदा नहीं होतीं, जबकि ज़िक्र को इनसान खड़े, बैठे, लेटे हुए, वुज़ू के साथ हो या बेवुज़ू हर हालत में और हर वक़्त अन्जाम दे सकता है। इस आयत में शायद इसी हिक्मत की तरफ़ इशारा है।

उक्त आयत में अ़क़्ल वालों की दूसरी निशानी यह बतलाई गई है कि वे आसमान व ज़मीन की तख़्लीक़ व पैदाईश पर ग़ौर व फ़िक्र (यानी अल्लाह की निशानियों में विचार) करते हैं।

يَتَفَكَّرُوْنَ فِىْ خَلْقِ السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضِ......... الاية

यहाँ सोचने के लायक़ यह बात है कि इस सोच-विचार से क्या मुराद है और इसका क्या दर्जा है?

फ़िक्र और **तफ़क्कुर** के लफ़्ज़ी मायने ग़ौर करने और किसी चीज़ की हक़ीक़त तक पहुँचने की कोशिश करने के हैं। इस आयत से मालूम हुआ कि जिस तरह अल्लाह तआ़ला का ज़िक्र इबादत है इसी तरह फ़िक्र भी एक इबादत है। फ़र्क़ यह है कि ज़िक्र तो अल्लाह तआ़ला की ज़ात व सिफ़ात का मतलूब है और फ़िक्र व तफ़क्कुर उसकी मख़्लूक़ात में मक़सूद है। क्योंकि

अल्लाह की ज़ात व सिफ़ात की हक़ीक़त को पाना इनसान की अ़क्ल से ऊपर की चीज़ है, उसमें ग़ौर व फ़िक्र और सोच-विचार सिवाय हैरानी के कोई नतीजा नहीं रखता। मौलाना रूमी रह. ने फ़रमाया है:

दूर बीनाने बारगाहे अलस्त
ग़ैर अज़ीं पै नबुर्दा अन्द कि हस्त

यानी बड़ी-बड़ी अ़क्ल वालों ने जब भी तेरे बारे में अ़क्ली दौड़-धूप की तो वे तेरी हस्ती में खोकर रह गये और आगे उनकी अ़क्लें जवाब दे गयीं। **मुहम्मद इमरान क़ासमी बिज्ञानवी**

बल्कि कई बार हक़ तआ़ला की ज़ात व सिफ़ात में ज़्यादा ग़ौर व फ़िक्र इनसान की नाक़िस अ़क्ल के लिये गुमराही का सबब बन जाता है। इसलिये बुज़ुर्गों और बड़े उलेमा की वसीयत है कि:

تَفَكَّرُوْا فِىْ اٰيٰتِ اللّٰهِ وَلَا تَتَفَكَّرُوْا فِى اللّٰهِ

"यानी अल्लाह तआ़ला की पैदा की हुई निशानियों में ग़ौर व फ़िक्र करो मगर ख़ुद अल्लाह तआ़ला की ज़ात व सिफ़ात में ग़ौर व फ़िक्र न करो" कि वह तुम्हारी पहुँच से बाहर है। सूरज की रोशनी में हर चीज़ को देखा जा सकता है मगर ख़ुद सूरज को कोई देखना चाहे तो आँखें अंधी हो जाती हैं। ज़ात व सिफ़ात के मसले में तो बड़े-बड़े माहिर फ़लॉस्फ़र और जहानों की सैर करने वाले अल्लाह वालों ने आख़िरकार यही नसीहत की है कि:

न हर जा-ए-मर्कब तवाँ ताख़्तन
कि जाहा सिपर बायद अन्दाख़्तन

कि हर मैदान में सवारी और दौड़ मुम्किन नहीं, बहुत सी जगह हथियार डाल देना ही अ़क्लमन्दी है। **मुहम्मद इमरान क़ासमी बिज्ञानवी**

अलबत्ता ग़ौर व फ़िक्र और अ़क्ल की दौड़-धूप का मैदान अल्लाह की मख़्लूक़ात हैं जिनमें सही ग़ौर व फ़िक्र का लाज़िमी नतीजा उनके ख़ालिक़ यानी अल्लाह जल्ल शानुहू की पहचान है। इतना अ़ज़ीमुश्शान बड़ा और फैला हुआ आसमान और उसमें सूरज व चाँद और दूसरे सितारे जिनमें कुछ **सवाबित** हैं जो देखने वालों को अपनी जगह ठहरे हुए दिखाई देते हैं। कोई बहुत आहिस्ता हरकत हो तो उसका इल्म पैदा करने वाले ही को है। और उन्हीं सितारों में कुछ **सय्यारे** ऐसे हैं जिनके दौरे सूरज व चाँद वग़ैरह के निज़ाम के अन्दाज़ में बहुत ही मज़बूत और स्थिर क़ानून के तहत मुक़र्रर और मुतैयन हैं। न एक सैकिंड इधर-उधर होते हैं न उनकी मशीनरी का कोई पुर्ज़ा घिसता है न टूटता है। न कभी उनको किसी वर्कशॉप में (यानी मरम्मत के लिये) भेजने की ज़रूरत होती है न उनकी मशीनरी कभी रंग व रोग़न चाहती है। हज़ारों साल से उनके निरन्तर दौरे इसी स्थिर निज़ाम और निर्धारित समय के साथ चल रहे हैं। इसी तरह ज़मीन का पूरा कुर्रा, इसके दरिया और पहाड़ और दोनों में तरह-तरह की मख़्लूक़ात पेड़-पौधे और जानवर और ज़मीन की तह में छुपी हुए खनिज पदार्थ, और ज़मीन व आसमान के बीच

चलने वाली हवा और उसमें पैदा होने और बरसने वाली बिजली व बारिश और उसके मख़्सूस निज़ाम ये सब के सब सोचने समझने वाले के लिये किसी ऐसी हस्ती का पता देते हैं जो इल्म व हिक्मत और क़ुव्वत व क़ुदरत में सबसे ऊपर है, और इसी का नाम मारिफ़त (पहचान) है। तो यह ग़ौर व फ़िक्र अल्लाह की मारिफ़त (पहचान) का सबब होने की वजह से बहुत बड़ी इबादत है, इसी लिये हज़रत हसन बसरी रहमतुल्लाहि अलैहि ने फ़रमाया:

تَفَكُّرُ سَاعَةٍ خَيْرٌ مِّنْ قِيَامِ لَيْلَةٍ. (ابن كثير)

"यानी एक घड़ी क़ुदरत की निशानियों में ग़ौर करना पूरी रात की इबादत से बेहतर और ज़्यादा मुफ़ीद है।"

और हज़रत उमर बिन अ़ब्दुल-अ़ज़ीज़ रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने इस ग़ौर व फ़िक्र को अफ़ज़ल इबादत फ़रमाया है। (इब्ने कसीर)

हसन बिन आ़मिर रह. ने फ़रमाया कि मैंने बहुत से सहाबा किराम रज़ि. से सुना है, सब यह फ़रमाते थे कि ईमान का नूर और रोशनी तफ़क्कुर (सोचने और ग़ौर करने में) है।

हज़रत अबू सुलैमान दारानी रह. ने फ़रमाया कि मैं घर से निकलता हूँ तो जिस चीज़ पर मेरी निगाह पड़ती है मैं खुली आँखों देखता हूँ कि उसमें मेरे लिये अल्लाह तआ़ला की एक नेमत है और उसके वजूद में मेरे लिये इबरत (नसीहत और सीख) हासिल करने का सामान मौजूद है। (तफ़सीर इब्ने कसीर)

इसी को कुछ अल्लाह वाले बुज़ुर्गों ने फ़रमाया कि:

हर गयाहे कि अज़ ज़मीं रूयद
वह्दहू ला शरी-क लहू गोयद

यानी ज़मीन से अगर एक घास का तिनका भी उगता है तो वह भी इस बात का पता देता है कि इस कायनात की मालिक एक अकेली और तन्हा हस्ती है, कोई उसका शरीक नहीं। **मुहम्मद इमरान क़ासमी बिज्ञानवी**

हज़रत सुफ़ियान बिन उयैना रह. का इरशाद है कि ग़ौर व फ़िक्र एक नूर है जो तेरे दिल में दाख़िल हो रहा है।

हज़रत वहब बिन मुनब्बेह रह. ने फ़रमाया कि जब कोई शख़्स कसरत से ग़ौर व फ़िक्र करेगा तो हक़ीक़त समझ लेगा, और जो समझ लेगा उसको इल्म हासिल हो जायेगा, और जिसको सही इल्म हासिल हो गया वह ज़रूर अ़मल भी करेगा। (इब्ने कसीर)

हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन उमर रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने फ़रमाया कि एक बुज़ुर्ग का गुज़र एक नेक आ़बिद के पास हुआ जो ऐसी जगह बैठे हुए थे कि उनके एक तरफ़ क़ब्रिस्तान था और दूसरी तरफ़ घरों का कूड़ा कबाड़ वग़ैरह था। गुज़रने वाले बुज़ुर्ग ने कहा कि दुनिया के दो ख़ज़ाने तुम्हारे सामने हैं एक इनसानों का ख़ज़ाना जिसको क़ब्रिस्तान कहते हैं, दूसरा माल व दौलत का ख़ज़ाना जो कूड़े-कबाड़ और गन्दगी की सूरत में है, ये दोनों ख़ज़ाने इबरत (सीख लेने) के लिये

काफ़ी हैं। (इब्ने कसीर)

हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन उमर रज़ियल्लाहु अ़न्हु अपने दिल की इस्लाह व निगरानी के लिये शहर से बाहर किसी वीराने की तरफ़ निकल जाते थे और वहाँ पहुँचकर कहते 'ऐ-न अहलु-क' यानी तेरे बसने वाले कहाँ गये? फिर ख़ुद ही जवाब देतेः

كُلُّ شَيْءٍ هَالِكٌ اِلَّا وَجْهَهٗ. (٢٨:٨٨)

यानी अल्लाह तआ़ला की ज़ात के सिवा हर चीज़ हलाक होने वाली है। (इब्ने कसीर) इस तरह तफ़क्कुर (सोचने व ग़ौर करने) के ज़रिये आख़िरत की याद अपने दिल में ताज़ा करते थे।

हज़रत बिश्र हाफ़ी रह. ने फ़रमाया कि अगर लोग अल्लाह तआ़ला की बड़ाई में तफ़क्कुर (ग़ौर) करते तो उसकी मासियत व नाफ़रमानी न कर सकते।

और हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम ने फ़रमाया ऐ वह आदमी जो कमज़ोरी अपनी पैदाईश में रखता है! तू जहाँ भी हो ख़ुदा से डर, और दुनिया में एक मेहमान की तरह बसर कर, और मस्जिदों को अपना घर बना ले, और अपनी आँखों को ख़ौफ़े ख़ुदा से रोने का और जिस्म को सब्र का और दिल को तफ़क्कुर का आ़दी बना दे, और कल के रिज़्क़ की फ़िक्र न कर।

उक्त आयत में इसी फ़िक्र व तफ़क्कुर (सोचने और ग़ौर करने) को अ़क़्लमन्द इनसान का आला वस्फ़ (उच्च गुण) करके बयान फ़रमाया है। और जिस तरह अल्लाह तआ़ला की मख़्लूक़ात में ग़ौर व फ़िक्र करके हक़ तआ़ला की मारिफ़त (पहचान) और दुनिया की नापायेदारी का इल्मे हज़ूरी हासिल कर लेना अफ़ज़ल इबादत और नूरे ईमान है इसी तरह अल्लाह की निशानियों को देखने और बरतने के बावजूद ख़ुद उन मख़्लूक़ात की ज़ाहिरी चमक-दमक में उलझकर रह जाना और उनके ज़रिये असली मालिक की मारिफ़त हासिल न करना सख़्त नादानी और नासमझ बच्चों की सी हरकत है।

कुछ विद्वानों और अ़क़्लमन्दों ने फ़रमाया है कि जो शख़्स दुनिया की कायनात को इबरत (सबक़ लेने) की निगाह से नहीं देखता तो उसकी ग़फ़लत के हिसाब से उसके दिल की बसीरत (समझ और रोशनी) मिट जाती है। आजकी वैज्ञानिक और हैरत-अंगेज़ ईजादात और उनमें उलझकर रह जाने वाले मूजिद लोगों (आविष्कारकों) की ख़ुदा तआ़ला और अपने अन्जाम से ग़फ़लत अ़क़्लमन्दों के इस मक़ूले की खुली गवाही है कि विज्ञान की तरक़्क़ियाँ जैसे-जैसे ख़ुदा तआ़ला की कारीगरी (क़ुदरत) के कमाल के राज़ों को खोलती जाती हैं उतना ही वे ख़ुदा तआ़ला को पहचानने और हक़ीक़त से आगाह होने से अंधे होते जाते हैं। बक़ौल अकबर मरहूमः

भूलकर बैठा है यूरोप आसमानी बाप को
बस ख़ुदा समझा है उसने बर्क़ को और भाप को

क़ुरआने करीम ने ऐसे ही नासमझ लिखे पढ़े जाहिलों के मुताल्लिक़ इरशाद फ़रमाया हैः

وَكَاَيِّنْ مِّنْ اٰيَةٍ فِى السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضِ يَمُرُّوْنَ عَلَيْهَا وَهُمْ عَنْهَا مُعْرِضُوْنَ○

यानी आसमान और ज़मीन में कितनी ही निशानियाँ हैं जिनसे ये लोग मुँह मोड़कर गुज़र

जाते हैं, उनकी हक़ीक़त व कारीगरी और उनके बनाने वाले की तरफ़ तवज्जोह नहीं देते।

कलाम का ख़ुलासा यह है कि अल्लाह तआ़ला की मख़्लूक़ात व मस्नूआ़त (पैदा की हुई और बनाई हुई चीज़ों) में ग़ौर व फ़िक्र करके उसकी बड़ाई व क़ुदरत का ध्यान एक आला इबादत है। उनसे कोई इबरत (सबक़ और नसीहत) हासिल न करना सख़्त नादानी है। उक्त आयत के आख़िरी जुमले ने अल्लाह की निशानियों में ग़ौर व फ़िक्र का नतीजा बतलाया है:

رَبَّنَا مَا خَلَقْتَ هٰذَا بَاطِلًا

यानी हक़ तआ़ला की अ़ज़ीम और बेहिसाब व अनगिनत मख़्लूक़ात में ग़ौर व फ़िक्र करने वाला इस नतीजे पर पहुँचे बग़ैर नहीं रह सकता कि इन तमाम चीज़ों को अल्लाह तआ़ला ने फ़ुज़ूल व बेकार पैदा नहीं किया है, बल्कि इनकी पैदाईश और बनाने में हज़ारों हिक्मतें छुपी हैं। इन सब को इनसान का ख़ादिम (सेवक) और इनसान को कायनात का मख़दूम (सेवा योग्य) बनाकर इनसान को इस ग़ौर व फ़िक्र की दावत दी है कि सारी कायनात तो उसके फ़ायदे के लिये बनी है और इनसान ख़ुदा तआ़ला की फ़रमाँबरदारी व इबादत के लिये पैदा हुआ है। यही उसकी ज़िन्दगी का मक़सद है। इसके बाद ग़ौर व फ़िक्र और तफ़क्कुर व तदब्बुर के नतीजे में वे लोग इस हक़ीक़त पर पहुँचे कि दुनियावी कायनात फ़ुज़ूल व बेकार पैदा नहीं की गई बल्कि ये सब ख़ालिक़े कायनात की अ़ज़ीम क़ुदरत व हिक्मत की रोशन दलीलें और निशानियाँ हैं।

आगे उन लोगों की चन्द दरख़्वास्तों और दुआ़ओं का ज़िक्र है जो उन्होंने अपने रब को पहचान कर उसकी बारगाह में पेश कीं।

पहली दरख़्वास्त यह है कि:

فَقِنَا عَذَابَ النَّارِ

यानी हमें जहन्नम के अ़ज़ाब से बचाईये।

दूसरी दरख़्वास्त यह है कि हमें आख़िरत की रुस्वाई से बचाईये। क्योंकि जिसको आपने जहन्नम में दाख़िल कर दिया उसको सारे जहान के सामने रुस्वा कर दिया। बाज़ उलेमा ने लिखा है कि मैदाने हश्र के अन्दर रुस्वाई एक ऐसा अ़ज़ाब होगा कि आदमी यह तमन्ना करेगा कि काश! उसे जहन्नम में डाल दिया जाये और उसकी बदकारियों का चर्चा मेहशर वालों के सामने न हो।

तीसरी दरख़्वास्त यह है कि हमने आपकी तरफ़ से आने वाले मुनादी यानी रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की आवाज़ को सुना और उस पर ईमान लाये, तो आप हमारे बड़े गुनाहों को माफ़ फ़रमा दें और हमारे ऐबों और बुराईयों का कफ़्फ़ारा फ़रमा दें, और हमें नेक लोगों के साथ मौत दें यानी उनके गिरोह और जमाअ़त में शामिल फ़रमा लें।

ये तीन दरख़्वास्तें तो अ़ज़ाब, तकलीफ़ और नुक़सान से बचने के लिये थीं, आगे चौथी दरख़्वास्त फ़ायदे और लाभ हासिल करने के मुताल्लिक़ है कि अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम के ज़रिये जो वायदा आपने जन्नत की नेमतों का फ़रमाया है वह हमें इस तरह अ़ता फ़रमाईये कि

क़ियामत में रुस्वाई भी न हो, यानी शुरू की पकड़ और बदनामी, बाद में माफ़ी की सूरत के बजाय शुरू ही से माफ़ी फ़रमा दीजिये। आप तो वायदा-ख़िलाफ़ी नहीं किया करते। मगर इस अ़र्ज़ व प्रार्थना का मक़सद यह है कि हमें इस क़ाबिल बना दीजिये कि हम यह वायदा हासिल करने के हक़दार हो जायें और फिर उस पर क़ायम रहें, यानी ख़ात्मा ईमान और नेक अ़मल पर हो।

فَاسْتَجَابَ لَهُمْ رَبُّهُمْ اَنِّيْ لَآ اُضِيْعُ عَمَلَ عَامِلٍ مِّنْكُمْ مِّنْ ذَكَرٍ اَوْ اُنْثٰى، بَعْضُكُمْ مِّنْ بَعْضٍ، فَالَّذِيْنَ هَاجَرُوْا وَاُخْرِجُوْا مِنْ دِيَارِهِمْ وَاُوْذُوْا فِيْ سَبِيْلِيْ وَقٰتَلُوْا وَقُتِلُوْا لَاُكَفِّرَنَّ عَنْهُمْ سَيِّاٰتِهِمْ وَلَاُدْخِلَنَّهُمْ جَنّٰتٍ تَجْرِيْ مِنْ تَحْتِهَا الْاَنْهٰرُ ثَوَابًا مِّنْ عِنْدِ اللّٰهِ، وَاللّٰهُ عِنْدَهٗ حُسْنُ الثَّوَابِ ۝ لَا يَغُرَّنَّكَ تَقَلُّبُ الَّذِيْنَ كَفَرُوْا فِي الْبِلَادِ ۝ مَتَاعٌ قَلِيْلٌ ثُمَّ مَاْوٰىهُمْ جَهَنَّمُ، وَبِئْسَ الْمِهَادُ ۝ لٰكِنِ الَّذِيْنَ اتَّقَوْا رَبَّهُمْ لَهُمْ جَنّٰتٌ تَجْرِيْ مِنْ تَحْتِهَا الْاَنْهٰرُ خٰلِدِيْنَ فِيْهَا نُزُلًا مِّنْ عِنْدِ اللّٰهِ، وَمَا عِنْدَ اللّٰهِ خَيْرٌ لِّلْاَبْرَارِ ۝ وَاِنَّ مِنْ اَهْلِ الْكِتٰبِ لَمَنْ يُّؤْمِنُ بِاللّٰهِ وَمَآ اُنْزِلَ اِلَيْكُمْ وَمَآ اُنْزِلَ اِلَيْهِمْ خٰشِعِيْنَ لِلّٰهِ، لَا يَشْتَرُوْنَ بِاٰيٰتِ اللّٰهِ ثَمَنًا قَلِيْلًا، اُولٰٓئِكَ لَهُمْ اَجْرُهُمْ عِنْدَ رَبِّهِمْ، اِنَّ اللّٰهَ سَرِيْعُ الْحِسَابِ ۝

फ़स्तजा-ब लहुम् रब्बुहुम् अन्नी ला उज़ीअु अ़-म-ल आ़मिलिम् मिन्कुम् मिन् ज़-करिन् औ उन्सा बअ़्ज़ुकुम् मिम्-बअ़्ज़िन् फ़ल्लज़ी-न हाजरू व उख़्रिजू मिन् दियारिहिम् व ऊज़ू फ़ी सबीली व क़ातलू व क़ुतिलू ल-उकफ्फ़िरन्-न अ़न्हुम् सय्यिआतिहिम् व ल-उद्ख़िलन्नहुम् जन्नातिन् तज्री मिन् तह़्तिहल् अन्हारु सवाबम् मिन् अ़िन्दिल्लाहि, वल्लाहु अ़िन्दहू हुस्नुस्सवाब (195) ला यग़ुर्रन्न-क त-क़ल्लुबुल्लज़ी-न क-फ़रू

फिर क़ुबूल की उनकी दुआ़ उनके रब ने कि मैं ज़ाया नहीं करता मेहनत किसी मेहनत करने वाले की तुम में से, मर्द हो या औरत, तुम आपस में एक हो, फिर वे लोग कि हिजरत की उन्होंने और निकाले गये अपने घरों से और सताये गये मेरी राह में, और लड़े और मारे गये अलबत्ता दूर करूँगा मैं उनसे बुराईयाँ उनकी और दाख़िल करूँगा उनको बाग़ों में जिनके नीचे बहती हैं नहरें, यह बदला है अल्लाह के यहाँ से, और अल्लाह के यहाँ है अच्छा बदला। (195) तुझको धोखा न दे चलना फिरना काफ़िरों का शहरों में। (196) यह फ़ायदा है थोड़ा सा फिर

फ़िल्बिलाद (196) मताअुन् क़लीलुन्, सुम्-म मअ्वाहुम् जहन्न-मु, व बिअ्सल् मिहाद (197) लाकिनिल्-लज़ीनत्तक़ौ रब्बहुम् लहुम् जन्नातुन् तज्री मिन् तह्तिहल् अन्हारु ख़ालिदी-न फ़ीहा नुज़ुलम् मिन् अिन्दिल्लाहि, व मा अिन्दल्लाहि ख़ैरुल्-लिल्-अब्रार (198) ▲ व इन्-न मिन् अह्लिल्-किताबि ल-मंय्- -युअ्मिनु बिल्लाहि व मा उन्ज़ि-ल इलैकुम् व मा उन्ज़ि-ल इलैहिम् ख़ाशिअ़ी-न लिल्लाहि ला यश्तरू-न बिआयातिल्लाहि स-मनन् क़लीलन्, उलाइ-क लहुम् अज्रुहुम् अिन्-द रब्बिहिम्, इन्नल्ला-ह सरीअ़ुल्-हिसाब (199)	उनका ठिकाना दोज़ख़ है और वह बहुत बुरा ठिकाना है। (197) लेकिन जो लोग डरते रहे अपने रब से उनके लिये बाग़ हैं जिनके नीचे बहती हैं नहरें, हमेशा रहेंगे उनमें मेहमानी है अल्लाह के यहाँ से, और जो अल्लाह के यहाँ है सो बेहतर है नेकबख़्तों के वास्ते। (198) ▲ और किताब वालों में बाज़े वे हैं जो ईमान लाते हैं अल्लाह पर और जो उतरा तुम्हारी तरफ़ और जो उतरा उनकी तरफ़, आजिज़ी करते हैं अल्लाह के आगे, नहीं ख़रीदते अल्लाह की आयतों पर थोड़ा मोल, यही हैं जिनके लिये मज़दूरी है उनके रब के यहाँ, बेशक अल्लाह जल्द लेता है हिसाब। (199)

इन आयतों के मज़मून का पीछे से ताल्लुक़

पहले गुज़री आयतों में नेक मोमिनों की चन्द दुआ़ओं का ज़िक्र था। ज़िक्र हुई पहली आयत में उन दुआ़ओं के क़ुबूल होने और उनके नेक आमाल के बड़े अज्र का बयान है। दूसरी और तीसरी आयत में यह हिदायत है कि काफ़िरों के ज़ाहिरी ऐश व आराम, माल व दौलत और दुनिया में चलने-फिरने (धूम-धाम) से मुसलमानों को कोई धोखा न होना चाहिये, इसलिये कि वह चन्द दिन की है और फिर हमेशा का अ़ज़ाब है।

चौथी आयत में फिर परहेज़गार मुसलमानों के लिये जन्नत की कभी फ़ना न होने वाली नेमतों का वायदा है। पाँचवीं आयत में ख़ुसूसियत से उन मुसलमानों के बड़े अज्र का ज़िक्र है जो पहले अहले किताब में से थे फिर मुसलमान हो गये।

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

सो उनके रब ने मन्ज़ूर कर लिया उनकी दरख़्वास्त को इस वजह से (कि मेरी हमेशा की

आदत है कि) मैं किसी शख़्स के (नेक) काम को जो कि तुममें से काम करने वाला हो अकारत नहीं करता (कि उसका बदला न दिया जाये) चाहे वह (काम करने वाला) मर्द हो या औरत (दोनों के लिये एक ही क़ानून है। क्योंकि) तुम (दोनों) आपस में एक-दूसरे के जुज़ "यानी अंग और हिस्सा" हो (इसलिये हुक्म भी दोनों का एक सा ही है। बस जब उन्होंने ईमान क़ुबूल करके एक बड़ा नेक अ़मल किया और उस पर ज़ाहिर होने वाले असरात की दरख़्वास्त की तो मैंने उनकी दुआ़ व दरख़्वास्त को अपनी मुस्तक़िल आ़दत के मुताबिक़ मन्ज़ूर कर लिया, और जब हम ईमान पर ऐसे फल अ़ता फ़रमाते हैं) सो जिन लोगों ने (ईमान के साथ और भारी आमाल भी किये जैसे हिजरत यानी) वतन छोड़ा और (वह भी हंसी-ख़ुशी, सैर व तफ़रीह के लिये नहीं बल्कि इस तरह कि) अपने घरों से (तंग करके) निकाले गए और (इसके अ़लावा तरह-तरह की) तकलीफ़ें (भी) दिए गये (और ये बातें यानी हिजरत और वतन से निकालना और विभिन्न प्रकार की तकलीफ़ें सब) मेरी राह में (यानी मेरे दीन के सबब उनको पेश आईं और उन सब को उन्होंने बरदाश्त किया) और (इससे बढ़कर उन्होंने यह काम किया कि) जिहाद (भी) किया और (बहुत से उनमें से) शहीद (भी) हो गये (और आख़िर तक जिहाद से न हटे, तो ऐसे मेहनत के आमाल पर फल और नेमतें क्यों न मिलेंगी) ज़रूर उन लोगों की तमाम ख़ताएँ (जो मेरे हुक़ूक़ के मुताल्लिक़ हो गई हों) माफ़ कर दूँगा, और ज़रूर उनको (जन्नत के) ऐसे बाग़ों में दाख़िल करूँगा जिनके (महलों के) नीचे नहरें जारी होंगी। (उनको) यह बदला मिलेगा अल्लाह तआ़ला के पास से, और अल्लाह ही के पास (यानी उसकी क़ुदरत के क़ब्ज़े में) अच्छा बदला है। (मज़कूरा आयतों में मुसलमानों की तकलीफ़ों और परेशानियों का बयान और उसका नेक अन्जाम बयान हुआ था, आगे काफ़िरों के ऐश व आराम और उसके बुरे अन्जाम का ज़िक्र है, ताकि मुसलमानों की तसल्ली हो और बुरे अ़मल वाले लोगों को इस्लाह और तौबा की तौफ़ीक़ हो)।

"ला यग़ुर्रन्न-क......" (ऐ हक़ के इच्छुक!) तुझको उन काफ़िरों का (रोज़गार या तफ़रीहात के लिये) शहरों में चलना-फिरना मुग़ालते में न डाल दे (कि उस हालत की कुछ वक़अ़त करने लगे) यह कुछ दिन की बहार है (क्योंकि मरते ही इसका नाम व निशान भी न रहेगा और) फिर (अन्जाम यह होगा कि) उनका ठिकाना (हमेशा के लिये) दोज़ख़ होगा और वह बहुत ही बुरी आरामगाह है। लेकिन (उनमें से भी) जो लोग ख़ुदा से डरें (और मुसलमान व फ़रमाँबरदार हो जायें) उनके लिए जन्नती बाग़ात हैं जिनके (महलों के) नीचे नहरें जारी होंगी, वे उन (बाग़ों) में हमेशा-हमेशा रहेंगे, यह (उनकी) मेहमानी होगी अल्लाह तआ़ला की तरफ़ से। और जो चीज़ें ख़ुदा तआ़ला के पास हैं (जिनका अभी ज़िक्र हुआ यानी जन्नती बाग़ और नहरें वग़ैरह) वे नेक बन्दों के लिए बहुत ही बेहतर हैं (काफ़िरों की चन्द दिन की ऐश व ख़ुशी से)।

(दुआ़ की उक्त आयतों से पहले अहले किताब की बुरी ख़स्लतों और उनके अ़ज़ाब व बुरे अन्जाम का निरन्तर ज़िक्र आया है, आगे उन लोगों का ज़िक्र है जो अहले किताब में से सच्चे नेक मुसलमान हो गये, इसलिये क़ुरआन की आ़म आ़दत के मुताबिक़ बुरे किरदार वालों की

बुराईयों के बाद नेकोकारों की तारीफ़ों का ज़िक्र है)।

"व इन्-न मिन् अह्लिल् किताबि......" और यक़ीनन बाज़े लोग किताब वालों में से ऐसे भी ज़रूर हैं जो अल्लाह तआ़ला के साथ एतिक़ाद रखते हैं और इस किताब के साथ भी (एतिक़ाद रखते हैं) जो तुम्हारे पास भेजी गई (यानी क़ुरआन), और उस किताब के साथ भी (एतिक़ाद रखते हैं) जो उनके पास भेजी गई (यानी तौरात और इन्जील और ख़ुदा के साथ जो एतिक़ाद रखते हैं तो) इस तौर पर कि अल्लाह तआ़ला से डरते (भी) हैं (इसलिये इस एतिक़ाद में हदों से नहीं गुज़रते कि अल्लाह तआ़ला पर औलाद की तोहमत लगायें या अहकाम में बोहतान बाँधें, और तौरात व इन्जील के साथ जो एतिक़ाद (यक़ीन व ईमान) रखते हैं तो इस तौर पर कि) अल्लाह तआ़ला की आयतों के मुक़ाबले में (दुनिया का) कम-हक़ीक़त मुआ़वज़ा नहीं लेते। ऐसे लोगों को उनका नेक बदला मिलेगा उनके परवर्दिगार के पास (और इसमें कुछ देर भी नहीं लगेगी क्योंकि) इसमें शुब्हा नहीं कि अल्लाह तआ़ला जल्द ही हिसाब (किताब) कर देंगे (और हिसाब किताब करते ही सब का देना-लेना बेबाक़ कर देंगे)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

हिजरत और शहादत से सब गुनाह माफ़ हो जाते हैं, मगर क़र्ज़ वग़ैरह बन्दों के हुक़ूक़ की माफ़ी का वायदा नहीं

لَاُكَفِّرَنَّ عَنْهُمْ سَيِّاٰتِهِمْ

(यानी आयत 195) के तहत ख़ुलासा-ए-तफ़सीर में यह क़ैद लगाई गई है कि अल्लाह के हक़ों में जो कोताहियाँ और गुनाह हुए वे माफ़ होंगे। इसकी वजह यह है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने हदीस में क़र्ज़ और दैन का इससे अलग होना बयान फ़रमाया है, इसकी माफ़ी का उसूल व नियम यही है कि ख़ुद या उसके वारिस उन हुक़ूक़ को अदा कर दें या माफ़ करायें और किसी शख़्स पर हक़ तआ़ला ख़ास फ़ज़्ल फ़रमा दें और हक़ वालों को उसकी तरफ़ से राज़ी करके माफ़ करा दें यह और बात है, और कुछ के साथ ऐसा भी होगा।

या अय्युहल्लज़ी-न आमनुस्बिरू व साबिरू व राबितू, वत्तक़ुल्ला-ह लअ़ल्लकुम् तुफ़्लिहून (200) ❁	ऐ ईमान वालो! सब्र करो और मुक़ाबले में मज़बूत रहो और लगे रहो, और डरते रहो अल्लाह से ताकि तुम अपनी मुराद को पहुँचो। (200) ❁

इस आयत के मज़मून का पीछे से संबन्ध

यह सूरः आले इमरान की आख़िरी आयत है। मुसलमानों के लिये चन्द अहम वसीयतों पर आधारित है, गोया पूरी सूरत का ख़ुलासा है:

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

ऐ ईमान वालो! (तकलीफ़ों पर) ख़ुद सब्र करो और (जब काफ़िरों से जंग व क़िताल हो तो) मुक़ाबले में सब्र करो और (जब जंग की संभावना हो तो उस वक़्त) मुक़ाबले के लिए तैयार रहो। और (हर हाल में) अल्लाह तआ़ला से डरते रहो (कि शरीअ़त की सीमाओं से बाहर न निकलो) ताकि तुम पूरे कामयाब हो (आख़िरत में लाज़िमी और ज़रूरी तौर पर, और कई बार दुनिया में भी)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

इस आयत में तीन चीज़ों की वसीयत मुसलमानों को की गई है- **सब्र, मुसाबरा** (मुक़ाबले में मज़बूती), **मुराबता** (लगे रहना) और चौथी चीज़ **तक़्वा** है जो इन तीनों के साथ लाज़िम है।

सब्र के लफ़्ज़ी मायने रोकने और बाँधने के हैं और क़ुरआन व सुन्नत की इस्तिलाह (परिभाषा) में नफ़्स को तबीयत के ख़िलाफ़ चीज़ों पर जमाये रखने को सब्र कहा जाता है, जिसकी तीन क़िस्में हैं:

अव्वल नेकी पर सब्र। यानी जिन कामों का अल्लाह तआ़ला ने और उसके रसूल सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने हुक्म दिया है उनकी पाबन्दी तबीयत पर कितनी भी शाक़ (भारी) हो उस पर नफ़्स को जमाये रखना।

दूसरे गुनाहों से रुकने पर सब्र। यानी जिन चीज़ों से अल्लाह तआ़ला और उसके रसूल सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने मना फ़रमाया है वो नफ़्स के लिये कितनी ही पसन्दीदा और लज़ीज़ हों, नफ़्स को उनसे रोकना।

तीसरे मुसीबतों पर सब्र। यानी मुसीबत व तकलीफ़ पर सब्र करना, हद से ज़्यादा परेशान न होना और सब तकलीफ़ व राहत को हक़ तआ़ला की तरफ़ से समझकर नफ़्स को बेक़ाबू न होने देना।

मुसाबरा इसी लफ़्ज़ सब्र से लिया गया है, इसके मायने हैं दुश्मन के मुक़ाबले में साबित क़दम रहना। **मुराबता** यह लफ़्ज़ रब्त से बना है जिसके असली मायने बाँधने के हैं और इसी वजह से रिबात़ और मुराबता के मायने घोड़े बाँधने और जंग की तैयारी के लिये जाते हैं। क़ुरआने करीम में इसी मायने में आया है:

وَمِنْ رِّبَاطِ الْخَيْلِ (٨: ٦٠)

क़ुरआन व हदीस की इस्तिलाह में यह लफ़्ज़ दो मायने के लिये इस्तेमाल किया गया है:

अव्वल इस्लामी सरहदों की हिफ़ाज़त, जिसके लिये जंगी घोड़े और जंगी सामान के साथ हथियारबन्द रहना लाज़िमी है ताकि दुश्मन इस्लामी सरहद की तरफ़ रुख़ करने की जुर्रत न करे।

दूसरे जमाअ़त के साथ नमाज़ की ऐसी पाबन्दी कि एक नमाज़ के बाद ही से दूसरी नमाज़ के इन्तिज़ार में रहे। ये दोनों चीज़ें इस्लाम में बड़ी मक़बूल इबादत हैं जिनके फ़ज़ाईल बेशुमार हैं, उनमें से चन्द यहाँ लिखे जाते हैं।

रिबात यानी इस्लामी सरहद की हिफ़ाज़त का इन्तिज़ाम

इस्लामी सरहदों की हिफ़ाज़त के लिये जंग की तैयारी के साथ वहाँ क़ियाम करने को रिबात और मुराबता कहा जाता है। इसकी दो सूरतें हैं- एक तो यह कि किसी जंग का ख़तरा सामने नहीं, सरहद सुरक्षित व महफ़ूज़ है, केवल पेशगी एहतियात के तौर पर उसकी निगरानी करनी है। ऐसी हालत में तो यह भी जायज़ है कि आदमी वहाँ अपने अहल व अ़याल (बाल-बच्चों और घर वालों) के साथ रहने बसने लगे और ज़मीन की काश्त वग़ैरह से अपनी रोज़ी पैदा करता रहे। इस हालत में अगर उसकी असल नीयत सरहद की हिफ़ाज़त है, रहना बसना और रोज़ी कमाना उसके ताबे है तो उस शख़्स को भी अल्लाह के रास्ते में रिबात (सरहद की हिफ़ाज़त) का सवाब मिलेगा, चाहे कभी जंग न करनी पड़े। लेकिन जिसकी असल नीयत सरहद की हिफ़ाज़त न हो बल्कि अपना गुज़ारा ही मक़सद हो, चाहे इत्तिफ़ाक़ी तौर पर सरहद की हिफ़ाज़त की नौबत भी आ जाये, वह शख़्स अल्लाह के रास्ते में सरहद का मुहाफ़िज़ नहीं होगा।

दूसरी सूरत यह है कि सरहद पर दुश्मन के हमले का ख़तरा है। ऐसी हालत में औरतों बच्चों को वहाँ रखना दुरुस्त नहीं, सिर्फ़ वे लोग रहें जो दुश्मन का मुक़ाबला कर सकते हैं।

(तफ़सीरे क़ुर्तुबी)

इन दोनों सूरतों में रिबात के फ़ज़ाईल बेशुमार हैं। सही बुख़ारी में हज़रत सहल बिन सअ़द साअ़िदी रज़ियल्लाहु अ़न्हु से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि "अल्लाह के रास्ते में एक दिन का रिबात दुनिया और जो कुछ दुनिया में है उससे बेहतर है।" और सही मुस्लिम में हज़रत सलमान रज़ियल्लाहु अ़न्हु की रिवायत से मज़कूर है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया- "एक दिन रात का रिबात एक महीने के लगातार रोज़े और तमाम रात इबादत में गुज़ारने से बेहतर है। और अगर वह उसी हाल में मर गया तो उसके रिबात के अ़मल का रोज़ाना सवाब हमेशा के लिये जारी रहेगा और अल्लाह तआ़ला की तरफ़ से उसका रिज़्क़ जारी रहेगा और वह शैतान से सुरक्षित व महफ़ूज़ रहेगा।

और अबू दाऊद ने हज़रत फ़ज़ाला बिन उबैद की रिवायत से नक़ल किया है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया- हर एक मरने वाले का अ़मल उसकी मौत के साथ ख़त्म हो जाता है सिवाय मुराबित (अल्लाह के रास्ते में सरहदों की हिफ़ाज़त करने वाले) के, कि उसका अ़मल क़ियामत तक बढ़ता ही रहता है और क़ब्र में हिसाब किताब लेने वालों से सुरक्षित व महफ़ूज़ रहता है।

इन रिवायतों से मालूम हुआ कि रिबात का अ़मल हर सदक़ा-ए-जारिया से भी ज़्यादा अफ़ज़ल है। क्योंकि सदक़ा-ए-जारिया का सवाब तो उसी वक़्त तक जारी रहता है जब तक उसके सदक़ा किये हुए मकान, ज़मीन या लिखी हुई किताबों या वक़्फ़ की हुई किताबों वग़ैरह से लोग फ़ायदा उठाते रहें, जब यह फ़ायदा ख़त्म हो जाये तो सवाब भी बन्द हो जाता है। मगर मुराबित फ़ी सबीलिल्लाह (अल्लाह के रास्ते में सरहदों की हिफ़ाज़त करने वाले) का सवाब क़ियामत तक ख़त्म होने वाला नहीं। वजह यह है कि सब मुसलमानों का नेक आमाल पर क़ायम रहना तब ही मुम्किन है जबकि वे दुश्मन के हमलों से महफ़ूज़ रहें, तो एक मुराबित का अ़मल तमाम मुसलमानों के नेक आमाल का सबब बनता है। इसी लिये क़ियामत तक उसके अ़मले रिबात का सवाब भी जारी रहेगा और इसके अ़लावा वह जितने नेक काम दुनिया में किया करता था उनका सवाब भी बग़ैर अ़मल किये हमेशा जारी रहेगा, जैसा कि इब्ने माजा में सही सनद के साथ हज़रत अबू हुरैरह रज़ियल्लाहु अ़न्हु से मन्क़ूल है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमायाः

مَنْ مَاتَ مُرَابِطًا فِىْ سَبِيْلِ اللّٰهِ اُجْرِىَ عَلَيْهِ اَجْرُ عَمَلِهِ الصَّالِحِ الَّذِىْ كَانَ يَعْمَلُهٗ وَاُجْرِىَ عَلَيْهِ رِزْقُهٗ وَاَمِنَ مِنَ الْفَتَّانِ وَبَعَثَهُ اللّٰهُ يَوْمَ الْقِيٰمَةِ اٰمِنًا مِّنَ الْفَزَعِ. (از تفسیرقرطبی)

"जो शख़्स हालते रिबात में मर जाये तो वह जो कुछ नेक अ़मल दुनिया में किया करता था उन सब आमाल का सवाब बराबर जारी रहेगा और उसका रिज़्क़ भी जारी रहेगा और शैतान से (या क़ब्र के सवाल से) महफ़ूज़ रहेगा और क़ियामत के दिन अल्लाह तआ़ला उसको ऐसा मुत्मईन उठायेंगे कि मेहशर का कोई ख़ौफ़ उस पर न होगा।"

इस रिवायत में जो फ़ज़ाईल मज़कूर हैं उनमें शर्त यह है कि रिबात की हालत ही में उसकी मौत आ जाये। मगर कुछ दूसरी रिवायतों से मालूम होता है कि अगर वह ज़िन्दा भी अपने अहल व अ़याल (घर वालों) की तरफ़ लौट गया तो यह सवाब फिर भी जारी रहेगा।

हज़रत उबई बिन कअ़ब रज़ियल्लाहु अ़न्हु की रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया- मुसलमानों की कमज़ोर सरहद की हिफ़ाज़त इख़्लास के साथ एक दिन' रमज़ान के अ़लावा दूसरे दिनों में करने का सवाब सौ साल के लगातार रोज़ों और रात को (इबादत में) जागने से अफ़ज़ल है। और रमज़ान में एक दिन का रिबात अफ़ज़ल व आला है एक हज़ार साल के रोज़े और रातों की नमाज़ से (इस लफ़्ज़ में रावी ने कुछ शंका का इज़हार किया है)। फिर फ़रमाया और अगर अल्लाह तआ़ला ने उसको सही सालिम अपने अहल व अ़याल (बाल-बच्चों, घर वालों) की तरफ़ लौटा दिया तो एक हज़ार साल तक उस पर कोई गुनाह न लिखा जायेगा और नेकियाँ भी लिखी जाती रहेंगी, और उसके रिबात (इस्लामी सरहद की हिफ़ाज़त) के अ़मल का अज्र क़ियामत तक जारी रहेगा। (तफ़सीरे क़ुर्तुबी)

जमाअ़त की नमाज़ की पाबन्दी एक नमाज़ के बाद दूसरी नमाज़ के इन्तिज़ार में रहना भी अल्लाह के रास्ते में रिबात है

हज़रत अबू सलमा बिन अ़ब्दुर्रहमान रज़ियल्लाहु अ़न्हु की रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया- मैं तुम्हें वह चीज़ बताता हूँ जिससे अल्लाह तआ़ला गुनाहों को माफ़ फ़रमा दें और तुम्हारे दर्जों को बुलन्द करें। वो चीज़ें ये हैं- वुज़ू को मुकम्मल तौर पर करना इसके बावजूद कि सर्दी या किसी ज़ख़्म व दर्द वग़ैरह के सबब वुज़ू के हिस्सों का धोना मुश्किल नज़र आ रहा हो, और मस्जिद की तरफ़ कसरत से जाना और एक नमाज़ के बाद दूसरी नमाज़ का इन्तिज़ार। फिर फ़रमाया 'ज़ालिकुमुर्रिबातु' यानी यही अल्लाह के रास्ते में रिबात है।

इमाम क़ुर्तुबी रह. ने इसको नक़ल करने के बाद फ़रमाया कि इस हदीस के बयान के मुताबिक़ उम्मीद है कि जो शख़्स एक नमाज़ के बाद दूसरी नमाज़ के इन्तिज़ार की पाबन्दी करे उसको भी अल्लाह तआ़ला वह बड़ा सवाब अ़ता फ़रमायेंगे जो अल्लाह के रास्ते में रिबात के लिये हदीसों में बयान हुआ है।

फ़ायदाः इस आयत में पहले तो मुसलमानों को सब्र का हुक्म दिया गया है जो हर वक़्त हर हाल में हर जगह हो सकता है, और इसकी तफ़सील ऊपर बयान हो चुकी है। दूसरा हुक्म मुसाबरा का जो काफ़िरों से मुक़ाबले और जंग के वक़्त होता है। तीसरा हुक्म मुराबते का जो काफ़िरों से मुक़ाबले का अन्देशा और ख़तरा लाहिक़ होने के वक़्त होता है। और सबसे आख़िर में तक़्वे (अल्लाह से डरने और परहेज़गारी) का हुक्म है जो इन सब कामों की रूह और आमाल की क़ुबूलियत का मदार है। यह मजमूआ़ शरीअ़त के तक़रीबन तमाम अहकाम पर हावी है, हक़ तआ़ला हम सब को इन अहकाम पर अ़मल करने की तौफ़ीक़ अ़ता फ़रमायें। और अल्लाह ही के लिये हैं तमाम तारीफ़ें शुरू व आख़िर यानी हर हाल में।

अल्लाह तआ़ला का शुक्र है कि सूरः आले इमरान की तफ़सीर पूरी हुई।

* सूरः निसा *

यह सूरत मदनी है। इसमें 176 आयतें और 24 रुकूअ़ हैं।
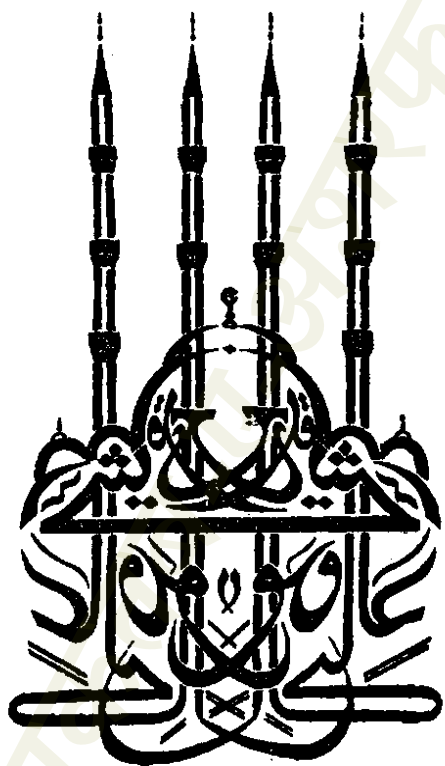
सूरः निसा
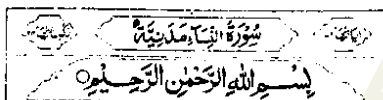
يَاَيُّهَا النَّاسُ اتَّقُوْا رَبَّكُمُ الَّذِيْ خَلَقَكُمْ مِّنْ نَّفْسٍ وَّاحِدَةٍ وَّخَلَقَ مِنْهَا زَوْجَهَا وَبَثَّ مِنْهُمَا رِجَالًا كَثِيْرًا وَّنِسَآءً ۚ وَاتَّقُوا اللّٰهَ الَّذِيْ تَسَآءَلُوْنَ بِهٖ وَالْاَرْحَامَ ۭ اِنَّ اللّٰهَ كَانَ عَلَيْكُمْ رَقِيْبًا ۝ وَاٰتُوا الْيَتٰمٰٓى اَمْوَالَھُمْ وَلَا تَتَبَدَّلُوا الْخَبِيْثَ بِالطَّيِّبِ ۠ وَلَا تَاْكُلُوْٓا اَمْوَالَھُمْ اِلٰٓى اَمْوَالِكُمْ ۭ اِنَّهٗ كَانَ حُوْبًا كَبِيْرًا ۝

सूरः निसा मदीना में नाज़िल हुई। इसमें 176 आयतें और 24 रुकूअ़ हैं।

बिस्मिल्लाहिर्रह्मानिर्रहीम

शुरू करता हूँ अल्लाह के नाम से जो बेहद मेहरबान, निहायत रहम वाला है।

या अय्युहन्नासुत्तक़ू रब्बकुमुल्लज़ी ख़-ल-ककुम् मिन् नफ़्सिंव्वाहि-दतिंव्-व ख़ा-ल-क़ मिन्हा ज़ौजहा व बस्-स मिन्हुमा रिजालन् कसीरंव्-व निसाअन्, वत्तक़ुल्लाहल्लज़ी तसाअलू-न बिही वल्अर्हा-म, इन्नल्ला-ह का-न अ़लैकुम् रक़ीबा (1) व आतुल्-यतामा अम्वालहुम् व ला त-तबद्दलुल्ख़बी-स बित्तय्यिबि व ला तअ्कुलू अम्वालहुम् इला अम्वालिकुम्, इन्नहू का-न हूबन् कबीरा (2)

ऐ लोगो! डरते रहो अपने रब से जिसने पैदा किया तुमको एक जान से और उसी ने पैदा किया उसका जोड़ा, और फैलाये उन दोनों से बहुत मर्द और औरतें, और डरते रहो अल्लाह से जिसके वास्ते से सवाल करते हो आपस में, और ख़बरदार रहो क़राबत वालों से (यानी क़रीबी रिश्तों के हुक़ूक़ का लिहाज़ रखो), बेशक अल्लाह तुम पर निगाहबान है। (1) और दे डालो यतीमों को उनका माल और न बदल लो बुरे माल को अच्छे माल से, और न खाओ उनके माल अपने मालों के साथ, यह है बड़ा वबाल। (2)

इन आयतों के मज़मून का पीछे से ताल्लुक़

सूरः आले इमरान की आख़िरी आयत तक़वे पर ख़त्म हुई है और यह सूरत भी तक़वे (नेक काम करने और परहेज़गारी) के हुक्म से शुरू हो रही है। पहली सूरत में कुछ जंगों, मुहिमों और मुख़ालिफ़ों के साथ बर्ताव करने और जंगों के सिलसिले में माले ग़नीमत हासिल होने पर ख़ियानत की बुराई और कुछ अन्य बातों का ज़िक्र था, इस सूरत के शुरू में अपनों से मेलजोल यानी बन्दों के हुक़ूक़ से मुताल्लिक़ अहकाम हैं। जैसे यतीमों के हुक़ूक़, रिश्तेदारों और बीवियों के हुक़ूक़ वग़ैरह। लेकिन हुक़ूक़ कुछ तो ऐसे हैं जो क़ानूनी शक्ल और ज़ाबते में आ सकते हैं और उनकी अदायेगी क़ानून के बल पर कराई जा सकती है, जैसे ख़रीद व बेच के आ़म मामलात, उजरत व मज़दूरी के ज़रिये पैदा होने वाले हुक़ूक़ जो आपसी मुआ़हदों और सुलह के ज़रिये तय हो सकते हैं। अगर कोई फ़रीक़ मुक़र्ररा हुक़ूक़ की अदायेगी में कोताही करे तो हुकूमत के ज़ोर पर भी दिलवाये जा सकते हैं, लेकिन औलाद, माँ-बाप, शौहर और बीवी व यतीम बच्चे जो अपनी निगरानी में हों और दूसरे रिश्तेदार उनके आपसी हुक़ूक़ जो एक दूसरे पर आ़यद होते हैं उनकी अदायेगी का मदार, अदब, एहतिराम, दिलदारी, हमदर्दी और दिली ख़ैरख़्वाही पर है, और ये ऐसी चीज़ें हैं जो किसी तराज़ू में तौली नहीं जा सकतीं, और मुआ़हदों के ज़रिये भी इनकी पूरी निशानदेही और निर्धारण मुश्किल है। लिहाज़ा इनकी अदायेगी के लिये सिवाय अल्लाह के ख़ौफ़ और ख़ौफ़े आख़िरत के कोई दूसरा ज़रिया नहीं, जिसको तक़वे से ताबीर किया जाता है। और हक़ीक़त में यह तक़वे की ताक़त हुकूमत और क़ानून की ताक़त से कहीं ज़्यादा है। इसलिये इस सूरत को तक़वे के हुक्म से शुरू फ़रमाया और इरशाद हुआः

يٰۤاَيُّهَا النَّاسُ اتَّقُوْا رَبَّكُمُ

यानी "ऐ लोगो! अपने रब की मुख़ालफ़त से डरो।" और शायद यही वजह है कि नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम इस आयत को निकाह के ख़ुतबे में पढ़ा करते थे, और निकाह के ख़ुतबे में इसका पढ़ना मस्नून है। इसमें यह बात भी क़ाबिले ग़ौर है कि सम्बोधन "या अय्युहन्नासु" के ज़रिये फ़रमाया गया है, जिसमें तमाम इनसान शामिल हैं, मर्द हों या औरतें, क़ुरआन नाज़िल होने के वक़्त मौजूद हों या आईन्दा क़ियामत तक पैदा हों। फिर "इत्तक़ू" (तक़वा इख़्तियार करने) के हुक्म के साथ अल्लाह तआ़ला के पाक नामों में से लफ़्ज़ रब को इख़्तियार किया गया जिसमें तक़वे (परहेज़गारी) के हुक्म की इल्लत (वजह) और हिक्मत की तरफ़ इशारा फ़रमा दिया कि जो ज़ात तुम्हारी परवरिश की कफ़ील (ज़िम्मेदार) है और जिसकी शाने रबूबियत के मुज़ाहरे इनसान अपनी ज़िन्दगी के हर लम्हे में देखता रहता है उसकी मुख़ालफ़त और उससे सरकशी किस क़द्र ख़तरनाक होगी।

इसके साथ ही रब तआ़ला की एक ख़ास शान का ज़िक्र फ़रमाया कि उसने अपनी हिक्मत व रहमत से तुम सब को पैदा किया, फिर पैदा करने और मौजूद करने की अनेक और विभिन्न सूरतें हो सकती थीं, उनमें से एक ख़ास सूरत को इख़्तियार फ़रमाया कि सब इनसानों को एक

ही इनसान यानी हज़रत आदम अलैहिस्सलाम से पैदा करके सब को भाईचारे व बिरादरी के एक मज़बूत रिश्ते में बाँध दिया। ख़ुदा तआ़ला व आख़िरत के ख़ौफ़ के अलावा इस बिरादराना रिश्ते का भी यही तक़ाज़ा है कि आपसी हमदर्दी व ख़ैरख़्वाही के हुक़ूक़ पूरे अदा किये जायें और इनसान इनसान में ज़ात-पात की ऊँच-नीच, नस्ल, रंग और भाषा के फ़र्क़ को भेदभाव और शराफ़त व घटियापन का मेयार न बनाया जाये। इसलिये फ़रमायाः

الَّذِیْ خَلَقَكُمْ مِّنْ نَّفْسٍ وَّاحِدَةٍ وَّخَلَقَ مِنْهَا زَوْجَهَا وَبَثَّ مِنْهُمَا رِجَالًا كَثِیْرًا وَّنِسَآءً،

यानी "अपने परवर्दिगार से डरो जिसने तुम सब को एक ही ज़ात (यानी आदम अलैहिस्सलाम) से इस तरह पैदा फ़रमाया कि पहले उनकी बीवी हज़रत हव्वा अलैहस्सलाम को पैदा किया फिर उस जोड़े के ज़रिये बहुत से मर्द और औरतें पैदा फ़रमाईं।"

ग़र्ज़ कि पूरी आयत उन अहकाम की तमहीद (प्रस्तावना और भूमिका) है जो आगे इस सूरत में आने वाले हैं। इस तमहीद में एक तरफ़ तो परवर्दिगारे आलम के हुक़ूक़ सामने रखकर उसकी मुख़ालफ़त से रोका गया, दूसरी तरफ़ तमाम इनसानी अफ़राद को एक बाप की औलाद बतलाकर उनमें मुहब्बत और आपसी हमदर्दी व ख़ैरख़्वाही के जज़्बात को उभारा गया, ताकि रिश्तेदारों व यतीमों और मियाँ-बीवी के बीच आपसी हुक़ूक़ की अदायेगी दिल से हो सके।

इसके बाद फिर 'इत्तक़ुल्लाह' का दोबारा ऐलान किया, एक ख़ास उनवान से फ़रमायाः

وَاتَّقُوا اللّٰهَ الَّذِیْ تَسَآءَلُوْنَ بِهٖ وَالْاَرْحَامَ.

यानी "अल्लाह तआ़ला से डरो जिसके नाम पर तुम दूसरों से अपने हुक़ूक़ तलब करते हो, और जिसकी क़समें देकर दूसरों से अपना मतलब निकालते हो।" आख़िर में फ़रमाया 'वल्-अरहा-म' यानी क़राबत (रिश्तेदारी) के ताल्लुक़ात चाहे बाप की तरफ़ से हों चाहे माँ की तरफ़ से उनकी हिफ़ाज़त और अदायेगी में कोताही करने से बचो।

दूसरी आयत में यतीम बच्चों के हुक़ूक़ की ताकीद और उनके मालों की हिफ़ाज़त के अहकाम हैं। मुख़्तसर तफ़सीर इन दोनों आयतों की यह है।

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

ऐ लोगो! अपने परवर्दिगार (की मुख़ालफ़त) से डरो जिसने तुमको एक जानदार (यानी आदम अलैहिस्सलाम) से पैदा किया (क्योंकि सब आदमियों की असल वही हैं) और उस (ही) जानदार से उसका जोड़ा (यानी उनकी बीवी हव्वा को) पैदा किया, और (फिर) उन दोनों से बहुत-से मर्द और औरतें (दुनिया में) फैलाईं। और (तुम से एक बार फिर ताकीद के लिये कहा जाता है कि) तुम ख़ुदा तआ़ला से डरो जिसके नाम से एक-दूसरे से (अपने हक़ों का) मुतालबा किया करते हो (जिस मुतालबे का हासिल यह होता है कि ख़ुदा से डरकर मेरा हक़ दे दे, सो जब दूसरों को ख़ुदा की मुख़ालफ़त से डरने को कहते हो तो मालूम हुआ कि तुम उस डरने को ज़रूरी समझते हो, तो तुम भी डरो)। और (पहले तो अल्लाह के तमाम अहकाम में मुख़ालफ़त से

बचना और डरना ज़रूरी है, लेकिन इस जगह पर एक हुक्म ख़ुसूसियत के साथ ज़िक्र किया जाता है कि) क़राबत "यानी रिश्तेदारी और नातेदारी" (के हुक़ूक़ ज़ाया करने) से भी डरो, यक़ीनन अल्लाह तआला तुम सब (के हालात) की इत्तिला रखते हैं (अगर मुख़ालफ़त करोगे तो सज़ा के मुस्तहिक़ होगे)। और जिन बच्चों का बाप मर जाये उनके माल (यानी जिनके वे मालिक हों) उन्हीं को पहुँचाते रहो (यानी उन्हीं के ख़र्च में लगाते रहो) और (जब तक तुम्हारे क़ब्ज़े में हो) तुम (उनके माल में शामिल करने के लिये उनकी) अच्छी चीज़ से बुरी चीज़ को मत बदलो (यानी ऐसा मत करो कि उनकी अच्छी चीज़ तो निकाल ली जाये और बुरी चीज़ उनके माल में मिला दी जाये) और उनके माल मत खाओ अपने मालों (के रहने) तक (अलबत्ता जब तुम्हारे पास कुछ न रहे तो ख़िदमत करने के सबब मामूल के मुताबिक़ अपने गुज़ारे के लिये उनके माल से लेना दुरुस्त है जैसा कि आगे आयेगा इसी सूरत की आयत नम्बर 6 में)।

ऐसी कार्यवाही करना (कि बुरी चीज़ उनके माल में शामिल कर दी या बिना ज़रूरत उनके माल से फ़ायदा उठाया) बड़ा गुनाह है (जिसकी धमकी आगे आयेगी, यानी इसी सूरत की आयत नम्बर 10 में)।

मआरिफ़ व मसाईल

यह पहला हुक्म है जो तमहीद के बाद इरशाद फ़रमाया गया और रिश्तेदारी व अज़ीज़दारी के तमाम ताल्लुक़ात की हिफ़ाज़त व रियायत पर हावी और शामिल है।

'सिला-रहमी' के मायने और इसके फ़ज़ाईल

लफ़्ज़ अरहाम रहम की जमा (बहुवचन) है। रहम बच्चेदानी को कहते हैं, जिसमें पैदाईश से पहले माँ के पेट में बच्चा रहता है। चूँकि रिश्तेदारी का ज़रिया यह रहम ही है इसलिये इस सिलसिले के ताल्लुक़ात जोड़े रखने को सिला-रहमी और रिश्तेदारी की बुनियाद पर जो फ़ितरी तौर पर ताल्लुक़ात पैदा होंगे उनकी तरफ़ से बेतवज्जोही व लापरवाई बरतने को क़ता-रहमी से ताबीर किया जाता है।

हदीसों में सिला-रहमी पर बहुत ज़ोर दिया गया है। चुनाँचे इरशादे नबवी है:

مَنْ اَحَبَّ اَنْ يُّبْسَطَ لَهٗ فِيْ رِزْقِهٖ وَيُنْسَاَلَهٗ فِيْ اَثَرِهٖ فَلْيَصِلْ رَحِمَهٗ. (مشكوٰة ص ٤١٩)

"यानी जिसको यह बात पसन्द हो कि उसके रिज़्क़ में कुशादगी पैदा (यानी इज़ाफ़ा) हो और उसकी उम्र लम्बी हो तो उसे चाहिये कि सिला-रहमी करे।"

इस हदीस से सिला-रहमी के दो बड़े अहम फ़ायदे मालूम हो गये कि आख़िरत का सवाब तो है ही, दुनिया में भी सिला-रहमी का फ़ायदा यह है कि रिज़्क़ की तंगी दूर होती है और उम्र में बरकत होती है।

हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन सलाम रज़ियल्लाहु अ़न्हु फ़रमाते हैं कि रसूले करीम सल्लल्लाहु

अलैहि व सल्लम जब मदीना तशरीफ़ लाये और मैं हाज़िर हुआ तो आपके वो मुबारक कलिमात जो सबसे पहले मेरे कानों में पड़े, ये थे। आपने फ़रमायाः

يَآاَيُّهَا النَّاسُ اَفْشُوا السَّلَامَ وَاَطْعِمُوا الطَّعَامَ وَصِلُوا الْاَرْحَامَ وَصَلُّوْا بِاللَّيْلِ وَالنَّاسُ نِيَامٌ تَدْخُلُوا الْجَنَّةَ بِسَلَامٍ. (مشكوٰة ص ١٠٨)

"लोगो! एक दूसरे को कसरत से सलाम किया करो, अल्लाह की रज़ा हासिल करने के लिये लोगों को खाना खिलाया करो, सिला-रहमी किया करो, और ऐसे वक़्त में नमाज़ की तरफ़ बढ़ा करो जबकि आम लोग नींद के मज़े में हों। याद रखो! इन बातों पर अमल करके तुम हिफ़ाज़त और सलामती के साथ बग़ैर किसी रुकावट के जन्नत में पहुँच जाओगे।"

एक और हदीस में ज़िक्र है कि उम्मुल-मोमिनीन हज़रत मैमूना रज़ियल्लाहु अन्हा ने अपनी एक बाँदी को आज़ाद कर दिया था, जब नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम से इसका ज़िक्र किया तो आपने फ़रमायाः

لَوْاَعْطَيْتِهَا اَخْوَالَكِ كَانَ اَعْظَمُ لِاَجْرِكِ. (مشكوٰة ص ١٧١)

"अगर तुम अपने मामूँ को दे देतीं तो ज़्यादा सवाब होता।"

इस्लाम में ग़ुलाम बाँदी को आज़ाद करने की बहुत तरग़ीब है (यानी इसकी तरफ़ तवज्जोह दिलायी गयी है) और इसे सवाब का बेहतरीन काम क़रार दिया गया है, लेकिन इसके बावजूद सिला-रहमी का मर्तबा इससे बहरहाल ऊँचा है।

इसी मज़मून की एक और रिवायत है। आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमायाः

اَلصَّدَقَةُ عَلَى الْمِسْكِيْنِ صَدَقَةٌ وَهِيَ عَلٰى ذِى الرَّحْمِ ثِنْتَانِ: صَدَقَةٌ وَصِلَةٌ. (مشكوٰة ص ١٧١)

"यानी किसी मोहताज की मदद करना सिर्फ़ सदका ही है और अपने किसी क़रीबी रिश्तेदार की मदद करना दो चीज़ों पर मुश्तमिल है- एक सदका और दूसरा सिला-रहमी।"

सिर्फ़ मस्रफ़ (ख़र्च करने की जगह) के तब्दील करने से दो तरह का सवाब मिल जाता है।

इसके मुक़ाबले में क़ता-रहमी (रिश्ते को तोड़ने) के हक़ में जो निहायत सख़्त वईदें (सज़ा की धमकियाँ) हदीस की रिवायतों में मज़कूर हैं उनका अन्दाज़ा दो हदीसों से बख़ूबी हो सकता है। आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम का इरशाद हैः

(١) لَا يَدْخُلُ الْجَنَّةَ قَاطِعٌ. (مشكوٰة ص ٤١٩)

(٢) لَا تَنْزِلُ الرَّحْمَةُ عَلٰى قَوْمٍ فِيْهِ قَاطِعُ رَحِمٍ. (مشكوٰة ص ٤٢٠)

"जो आदमी रिश्ते के हुक़ूक़ की रियायत नहीं करता वह जन्नत में नहीं जायेगा।"

"उस क़ौम पर अल्लाह तआ़ला की रहमत नहीं उतरेगी जिसमें कोई क़ता-रहमी करने वाला मौजूद हो।"

आख़िर में फिर दिलों में हुक़ूक़ अदा करने का जज़्बा पैदा करने के लिये फ़रमायाः

اِنَّ اللّٰهَ كَانَ عَلَيْكُمْ رَقِيْبًا.

यानी "अल्लाह तआला तुम पर निगराँ है, जो तुम्हारे दिलों और इरादों से बाख़बर है।" अगर रस्मी तौर पर शर्मा-शर्मी बेदिली से कोई काम भी कर दिया मगर दिल में क़ुरबानी व ख़िदमत का जज़्बा न हुआ तो क़ाबिले क़ुबूल नहीं है। इससे अल्लाह तआला से डरने की वजह भी मालूम हो गई कि वह सब पर हमेशा निगराँ है। क़ुरआने करीम का यह आम अन्दाज़ है कि क़ानून को दुनिया की हुकूमतों के क़ानून की तरह सिर्फ़ बयान नहीं करता बल्कि तरबियत व शफ़क़त के अन्दाज़ में बयान करता है। क़ानून के बयान के साथ-साथ ज़ेहनों और दिलों की तरबियत भी करता है।

यतीमों के हुक़ूक़ और उनके मालों की हिफ़ाज़त

पहली आयत में मुतलक़ तौर पर क़राबत (रिश्ते) की हिफ़ाज़त और उसके हुक़ूक़ अदा करने की ताकीद आम अन्दाज़ में बयान फ़रमाने के बाद दूसरी आयत में यतीमों के मालों की हिफ़ाज़त का हुक्म और उनमें किसी क़िस्म की ख़ुर्द-बुर्द करने की मनाही है। क्योंकि यतीम बच्चे का निगराँ और वली (अभिभावक) उमूमन उसका कोई रिश्तेदार होता है इसलिये इसका ताल्लुक़ भी रिश्तेदारी के हक़ की अदायेगी से है।

पहले जुमले में इरशाद है:

وَاٰتُوا الْيَتٰمٰٓى اَمْوَالَهُمْ

जिसका तर्जुमा यह है कि "यतीमों के माल उन्हीं को पहुँचाओ।" यतीम के लफ़्ज़ी मायने अकेले और तन्हा के हैं। इसी लिये जो मोती सीप में तन्हा एक हो उसको दुर्रे-यतीम कहा जाता है। शरीअ़त की इस्तिलाह में उस बच्चे को **यतीम** कहा जाता है जिसका बाप मर गया हो, और जानवरों में उसको यतीम कहा जाता है जिसकी माँ मर गई हो। (क़ामूस) बालिग़ होने के बाद शरई इस्तिलाह में उसको यतीम नहीं कहा जायेगा जैसा कि हदीस शरीफ़ में इसकी वज़ाहत है:

لَا يُتْمَ بعد احتلام

यानी "बालिग़ होने के बाद यतीमी बाक़ी नहीं रहती।" (मिश्कात शरीफ़ पेज 284)

यतीम बच्चों की मिल्कियत में अगर कुछ माल है जो उनको किसी ने हिबा किया हो या किसी की मीरास में उनको पहुँच गया हो तो यतीम के साथ उसके माल की हिफ़ाज़त भी उस शख़्स के ज़िम्मे है जो यतीम का वली है। चाहे उस वली का तक़र्रुर (नियुक्ति) उसके मरने वाले बाप ने ख़ुद कर दिया हो या हुकूमत की जानिब से कोई वली मुक़र्रर किया गया हो, साथ ही वली के लिये यह भी लाज़िम है कि यतीम के ज़रूरी ख़र्चे तो उसके माल से पूरे करे लेकिन उसका माल बालिग़ होने से पहले उसके क़ब्ज़े में न दे। क्योंकि वह नासमझ बच्चा है, कहीं ज़ाया कर देगा। तो आयत के इस जुमले में जो इरशाद फ़रमाया गया कि यतीमों के माल उनको पहुँचा दो इसकी वज़ाहत आगे पाँचवीं आयत में आती है, जिसमें बतलाया गया है कि उनके माल उनको उस वक़्त पहुँचाओ जब देख लो कि वे बालिग़ हो गये और उनको अपने नफ़े व

नुक़सान और भले बुरे की तमीज़ पैदा हो गई है।

इसलिये इस आयत में यतीमों के माल उनको पहुँचाने का मतलब यह हुआ कि उन मालों की हिफ़ाज़त करो ताकि अपने वक़्त पर वे माल उनको पहुँचाये जा सकें। इसके अलावा इस जुमले में इस तरफ़ भी इशारा है कि यतीम के वली की ज़िम्मेदारी सिर्फ़ इतनी ही नहीं है कि यतीम के माल को ख़ुद न खाये या ख़ुद ज़ाया न करे बल्कि उसके फ़राईज़ (ड्यूटी) में यह भी है कि उसकी हिफ़ाज़त करके इस क़ाबिल बनाये कि बालिग़ होने के बाद उसको मिल सके।

दूसरे जुमले में इरशाद है:

وَلَا تَتَبَدَّلُوا الْخَبِيْثَ بِالطَّيِّبِ

यानी "अच्छी चीज़ का बुरी चीज़ से तबादला मत करो।"

कुछ लोग ऐसा करते थे कि यतीम के माल की तादाद तो महफ़ूज़ रखते थे मगर उसमें जो अच्छी चीज़ नज़र आती वह ख़ुद ले ली और उसकी जगह अपनी ख़राब चीज़ रख दी। उम्दा बकरी के बदले कमज़ोर बकरी उसके माल में लगा दी, या खरे नक़द के बदले में खोटा रख दिया, यह भी चूँकि यतीम के माल में ख़ियानत (चोरी और बददियानती) है और मुम्किन था कि किसी शख़्स का नफ़्स यह बहाना बनाये कि हमने तो यतीम का माल लिया नहीं बल्कि बदला है, इसलिये क़ुरआने करीम ने स्पष्ट तौर पर इसकी मनाही फ़रमा दी। इस मनाही में जिस तरह यह दाख़िल है कि ख़ुद अपनी ख़राब चीज़ देकर अच्छी चीज़ ले लें, इसी तरह यह भी दाख़िल है कि किसी दूसरे शख़्स से तबादले का ऐसा मामला कर लें जिसमें यतीम बच्चे का नुक़सान हो।

तीसरे जुमले में इरशाद फ़रमायाः

وَلَا تَأْكُلُوْٓا اَمْوَالَهُمْ اِلٰٓى اَمْوَالِكُمْ

यानी "यतीमों के माल को अपने माल में मिलाकर न खा जाओ।"

ज़ाहिर है कि इसका मक़सद तो यतीम के माल को नाजायज़ तौर पर खा जाने की मनाही है, चाहे अपने माल में मिलाकर खा जाये या अलग रखकर खाये, लेकिन आ़म तौर पर होता यह है कि यतीमों का माल अपने माल में शामिल रखा, उसमें से ख़ुद भी खाया यतीम को भी खिला दिया, इस सूरत में अलग से हिसाब न होने की वजह से एक दीनदार और शरीअ़त पर चलने वाले को भी यह धोखा हो सकता है कि इसमें कोई गुनाह नहीं, इसलिये ख़ास तौर से अपने मालों के साथ मिलाकर खाने की हुर्मत (हराम होने) का ज़िक्र और उस पर तंबीह फ़रमा दी, कि या तो यतीम के माल को बिल्कुल अलग रखो और अलग ख़र्च करो, जिसमें किसी गड़बड़ी का का ख़तरा ही न रहे, या फिर मिलाकर रखो तो ऐसा हिसाब रखो जिसमें यह यक़ीन हो कि यतीम का माल तुम्हारे ज़ाती ख़र्च में नहीं आया। इसकी तशरीह (वज़ाहत) सूरः ब-क़रह के रुकूअ़ 27 में गुज़र चुकी है इस आयत में:

وَاللّٰهُ يَعْلَمُ الْمُفْسِدَ مِنَ الْمُصْلِحِ.

इस अन्दाज़े-बयान में इस तरफ़ भी इशारा फ़रमा दिया कि यतीमों के माल में ख़ुर्द-बुर्द

नुक़सान और भले बुरे की तमीज़ पैदा हो गई है।

इसलिये इस आयत में यतीमों के माल उनको पहुँचाने का मतलब यह हुआ कि उन मालों की हिफ़ाज़त करो ताकि अपने वक़्त पर वे माल उनको पहुँचाये जा सकें। इसके अ़लावा इस जुमले में इस तरफ़ भी इशारा है कि यतीम के वली की ज़िम्मेदारी सिर्फ़ इतनी ही नहीं है कि यतीम के माल को ख़ुद न खाये या ख़ुद ज़ाया न करे बल्कि उसके फ़राईज़ (ड्यूटी) में यह भी है कि उसकी हिफ़ाज़त करके इस क़ाबिल बनाये कि बालिग़ होने के बाद उसको मिल सके।

दूसरे जुमले में इरशाद है:

وَلَا تَتَبَدَّلُوا الْخَبِيْثَ بِالطَّيِّبِ

यानी "अच्छी चीज़ का बुरी चीज़ से तबादला मत करो।"

कुछ लोग ऐसा करते थे कि यतीम के माल की तादाद तो महफ़ूज़ रखते थे मगर उसमें जो अच्छी चीज़ नज़र आती वह ख़ुद ले ली और उसकी जगह अपनी ख़राब चीज़ रख दी। उम्दा बकरी के बदले कमज़ोर बकरी उसके माल में लगा दी, या खरे नक़द के बदले में खोटा रख दिया, यह भी चूँकि यतीम के माल में ख़ियानत (चोरी और बददियानती) है और मुम्किन था कि किसी शख़्स का नफ़्स यह बहाना बनाये कि हमने तो यतीम का माल लिया नहीं बल्कि बदला है, इसलिये क़ुरआने करीम ने स्पष्ट तौर पर इसकी मनाही फ़रमा दी। इस मनाही में जिस तरह यह दाख़िल है कि ख़ुद अपनी ख़राब चीज़ देकर अच्छी चीज़ ले लें, इसी तरह यह भी दाख़िल है कि किसी दूसरे शख़्स से तबादले का ऐसा मामला कर लें जिसमें यतीम बच्चे का नुक़सान हो।

तीसरे जुमले में इरशाद फ़रमाया:

وَلَا تَأْكُلُوْٓا اَمْوَالَهُمْ اِلٰٓى اَمْوَالِكُمْ

यानी "यतीमों के माल को अपने माल में मिलाकर न खा जाओ।"

ज़ाहिर है कि इसका मक़सद तो यतीम के माल को नाजायज़ तौर पर खा जाने की मनाही है, चाहे अपने माल में मिलाकर खा जाये या अलग रखकर खाये, लेकिन आ़म तौर पर होता यह है कि यतीमों का माल अपने माल में शामिल रखा, उसमें से ख़ुद भी खाया यतीम को भी खिला दिया, इस सूरत में अलग से हिसाब न होने की वजह से एक दीनदार और शरीअ़त पर चलने वाले को भी यह धोखा हो सकता है कि इसमें कोई गुनाह नहीं, इसलिये ख़ास तौर से अपने मालों के साथ मिलाकर खाने की हुर्मत (हराम होने) का ज़िक्र और उस पर तंबीह फ़रमा दी, कि या तो यतीम के माल को बिल्कुल अलग रखो और अलग ख़र्च करो, जिसमें किसी गड़बड़ी का का ख़तरा ही न रहे, या फिर मिलाकर रखो तो ऐसा हिसाब रखो जिसमें यह यक़ीन हो कि यतीम का माल तुम्हारे ज़ाती ख़र्च में नहीं आया। इसकी तशरीह (वज़ाहत) सूरः ब-क़रह के रुकूअ़ 27 में गुज़र चुकी है इस आयत में:

وَاللّٰهُ يَعْلَمُ الْمُفْسِدَ مِنَ الْمُصْلِحِ

इस अन्दाज़े-बयान में इस तरफ़ भी इशारा फ़रमा दिया कि यतीमों के माल में ख़ुर्द-बुर्द

सरपरस्तों को उनके मालों को ख़ुर्द-बुर्द करना (बरबाद करना और नुक़सान पहुँचाना) हराम है। इस आयत में भी एक दूसरे उनवान से इस हुक्म को दोहराया गया है कि जिन लोगों की निगरानी व सरपरस्ती में यतीम लड़कियाँ हैं उनसे इस ख़्याल से निकाह न करें कि अपने हाथ के नीचे की लड़की है, जितना चाहेंगे मेहर मुक़र्रर कर देंगे और जो माल उनकी मिल्क में हैं वो भी अपने क़ब्ज़े में आ जायेंगे।

ग़र्ज़ कि क़ुरआने करीम की इस आयत ने स्पष्ट रूप से बतला दिया कि यतीम के माल पर क़ब्ज़ा करने का हर हीला और बहाना नाजायज़ है। और वली व निगराँ हज़रात का फ़र्ज़ है कि वे सच्चाई और ईमानदारी से उनके हुक़ूक़ की हिफ़ाज़त करें। चुनाँचे इस आयत में फ़रमाया।

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

और अगर तुमको इस बात का अन्देशा (भी) हो (और यक़ीन हो तो बदर्जा औला) कि तुम यतीम लड़कियों के बारे में (उनके मेहर के मामले में) इन्साफ़ (की रियायत) न कर सकोगे तो (उनसे निकाह मत करो, बल्कि) और (हलाल) औ़रतों से जो तुमको (अपनी किसी मस्लेहत के एतिबार से) पसन्द हों निकाह कर लो (क्योंकि वे मजबूर नहीं, आज़ादी से अपनी मर्ज़ी ज़ाहिर कर सकती हैं। और यह निकाह इस क़ैद के साथ हो कि जो एक औ़रत से ज़्यादा करना चाहे तो इन सूरतों में से कोई सूरत हो। एक सूरत यह कि एक एक मर्द) दो-दो औ़रतों से (निकाह कर ले) और (दूसरी सूरत यह कि एक एक मर्द) तीन-तीन औ़रतों से (निकाह कर ले) और (तीसरी सूरत यह कि एक एक मर्द) चार-चार औ़रतों से (निकाह कर ले), पस अगर तुमको इसका अन्देशा (ज़्यादा) हो कि (कई बीवियाँ करके) अ़दल "यानी इन्साफ़ और बराबरी" न रखोगे (बल्कि किसी बीवी के वाजिब हुक़ूक़ ज़ाया होंगे) तो फिर एक ही बीवी पर बस करो, या (अगर देखो कि एक के हुक़ूक़ भी अदा न होंगे तो) जो बाँदी (शरीअ़त के नियमानुसार) तुम्हारी मिल्क में हो वही सही। इस ज़िक्र हुए मामले में (यानी एक बीवी के रखने या सिर्फ़ एक बाँदी पर बस करने में) ज़्यादती (व बेइन्साफ़ी) न होने की ज़्यादा उम्मीद है (क्योंकि एक सूरत में तो कोई तादाद नहीं जिसमें बराबरी करनी पड़े, दूसरी सूरत में बीवी के हुक़ूक़ से भी कम हुक़ूक़ हैं जैसे मेहर नहीं, सोहबत का हक़ नहीं, तो आशंका और कम है)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

यतीम लड़कियों की हक़-तल्फ़ी पर रोक

जाहिलीयत (इस्लाम से पहले) के ज़माने में जिन लोगों की विलायत (सरपरस्ती और निगरानी) में यतीम लड़कियाँ होती थीं, जो शक्ल व सूरत से अच्छी समझी जातीं या उनकी मिल्कियत में कोई माल जायदाद होती तो उनके वली ऐसा करते थे कि ख़ुद उनसे निकाह करते या अपनी औलाद से उनका निकाह कर देते थे, जो चाहा कम से कम मेहर मुक़र्रर कर दिया

और जिस तरह चाहा उनको रखा। क्योंकि वही उनके वली और निगराँ होते थे, उनका बाप मौजूद न होता था जो उनके हुक़ूक़ की पूरी निगरानी कर सकता और उनकी शादीशुदा ज़िन्दगी के हर पहलू पर नज़र और बेहतरी का मुकम्मल इन्तिज़ाम करके उनका निकाह कर देता।

सही बुख़ारी में हज़रत आयशा रज़ियल्लाहु अन्हा से रिवायत है कि ज़माना-ए-रिसालत में एक ऐसा ही वाक़िआ पेश आया कि एक शख़्स की विलायत (ज़िम्मेदारी) में एक यतीम लड़की थी और उसका एक बाग़ था जिसमें यह लड़की भी शरीक थी, उस शख़्स ने उस यतीम लड़की से ख़ुद अपना निकाह कर लिया और बजाय इसके कि अपने पास से मेहर वग़ैरह देता उसके बाग़ का हिस्सा भी अपने क़ब्ज़े में कर लिया। इस पर यह आयत नाज़िल हुईः

وَاِنْ خِفْتُمْ اَلَّا تُقْسِطُوْا فِی الْیَتٰمٰی فَانْکِحُوْا مَا طَابَ لَکُمْ مِّنَ النِّسَآءِ

यानी "अगर तुम्हें यह ख़तरा हो कि यतीम लड़कियों से ख़ुद अपना निकाह करने में तुम इन्साफ़ पर क़ायम न रहोगे बल्कि उनकी हक़-तल्फ़ी हो जायेगी तो तुम्हारे लिये दूसरी औरतें बहुत हैं, उनमें जो तुम्हारे लिये हलाल और पसन्द हैं उनसे निकाह कर लो।"

नाबालिग़ के निकाह का मसला

इस आयत में यतामा से मुराद यतीम लड़कियाँ हैं और शरीअ़त की इस्तिलाह में यतीम उसी लड़की या लड़के को कहा जाता है जो अभी बालिग़ न हो, इसलिये इस आयत से यह भी साबित हो गया कि यतीम लड़की के वली को यह भी इख़्तियार है कि बालिग़ होने से पहले छोटी उम्र में ही उसका निकाह कर दे, अलबत्ता लड़की की मस्लेहत और आईन्दा की बेहतरी व फ़लाह पेशे-नज़र रहे, ऐसा न हो जैसे बहुत सी बिरादरियों में रिवाज है कि बड़ी लड़की का निकाह छोटे बच्चे से कर दिया, उम्रों का तनासुब (अनुपात) न देखा, या लड़के के हालात व आ़दतों का जायज़ा न लिया, वैसे ही निकाह कर दिया।

और वे बालिग़ लड़कियाँ जिनके बाप मर चुके हैं अगरचे बालिग़ हो जाने की बिना पर ख़ुद मुख़्तार हैं लेकिन लड़कियाँ शर्म व हया की बिना पर आ़दतन् बालिग़ होने के बाद भी निकाह के मामले में ख़ुद कुछ नहीं बोलतीं, वली और वारिस जो कुछ कर दें उसी को क़ुबूल कर लेती हैं, इसलिये उनके वली (सरपरस्त) और अभिभावकों पर भी लाज़िम है कि उनकी हक़-तल्फ़ी से परहेज़ करें।

बहरहाल इस आयत में यतीम लड़कियों के दाम्पत्य हुक़ूक़ की पूरी निगरानी का हुक्म मज़कूर है, मगर आ़म हुकूमतों के क़ानून की तरह इसके नाफ़िज़ करने की ज़िम्मेदारी डायरेक्ट हुकूमत पर डालने के बजाय ख़ुद अ़वाम को ख़ुदा तआ़ला के ख़ौफ़ का हवाला देकर हुक्म दिया गया कि अगर तुम्हें इसमें बेइन्साफ़ी का ख़तरा हो तो फिर यतीम लड़कियों से शादी के ख़्याल को छोड़ो, दूसरी औ़रतें तुम्हारे लिये बहुत हैं उनसे निकाह करो।

साथ ही हुकूमत के ज़िम्मेदारों का भी यह फ़रीज़ा है कि इसकी निगरानी करें, किसी जगह

हक़-तल्फ़ी होती नज़र आये तो क़ानून के बल पर हुक़ूक़ अदा करायें।

क़ुरआन में कई बीवियाँ रखना और इस्लाम से पहले दुनिया की क़ौमों में इसका रिवाज

एक मर्द के लिये एक वक़्त में कई बीवियाँ रखना इस्लाम से पहले भी तक़रीबन दुनिया के तमाम मज़हबों में जायज़ समझा जाता था। अ़रब, हिन्दुस्तान, ईरान, मिस्र, बाबिल वग़ैरह मुल्कों की हर क़ौम में एक से ज़्यादा बीवियाँ रखने की रस्म जारी थी और इसकी फ़ितरी ज़रूरतों से आज भी कोई इनकार नहीं कर सकता। मौजूदा ज़माने में यूरोप ने अपने पूर्वजों के ख़िलाफ़ एक से ज़्यादा निकाह करने (कई बीवियाँ रखने) को नाजायज़ करने की कोशिश की तो इसका नतीजा बिना निकाह की रखैलों की सूरत में बरामद हुआ, आख़िरकार फ़ितरी क़ानून ग़ालिब आया और अब वहाँ के समझदार और अ़क़्लमन्द लोग ख़ुद इसको रिवाज देने के हक़ में हैं। मिस्टर डयून पोर्ट जो एक मशहूर ईसाई विद्वान है, एक से ज़्यादा बीवियाँ रखने की हिमायत में इन्जील की बहुत सी आयतें नक़ल करने के बाद लिखता है:

"इन आयतों से यह पाया जाता है कि एक से ज़्यादा बीवियाँ रखना सिर्फ़ पसन्दीदा ही नहीं बल्कि ख़ुदा ने इसमें ख़ास बरकत दी है।"

इसी तरह पादरी नेक्सन और जॉन मिल्टन और अपज़क टेलर ने ज़ोरदार अलफ़ाज़ में इसकी ताईद की है। इसी तरह वैदिक तालीम ग़ैर-महदूद (असीमित) बीवियाँ रखने को जायज़ रखती है और उससे दस-दस, तेरह-तेरह, सत्ताईस-सत्ताईस बीवियों को एक वक़्त में जमा रखने की इजाज़त मालूम होती है।

कृष्ण जो हिन्दुओं में आदरनीय अवतार माने जाते हैं, उनकी सैंकडों बीवियाँ थीं। जो मज़हब व क़ानून और पाकदामनी व आबरू को क़ायम रखना चाहता हो और ज़िनाकारी का ख़ात्मा ज़रूरी जानता हो उसके लिये कोई चारा नहीं कि एक से ज़्यादा बीवियाँ रखने की इजाज़त दे। इसमें ज़िनाकारी पर भी बन्दिश है और मर्दों की तुलना में औ़रतों की जो कसरत बहुत से इलाक़ों में पाई जाती है उसका भी इलाज है। अगर इसकी इजाज़त न दी जाये तो रखैल और पेशेवर तवायफ़ औ़रतों की अधिकता होगी। यही वजह है कि जिन क़ौमों में एक से ज़्यादा बीवियाँ रखने की इजाज़त नहीं उनमें ज़िना की कसरत (अधिकता) है। यूरोपियन क़ौमों को देख लीजिये, उनके यहाँ एक से ज़्यादा बीवियाँ रखने पर तो पाबन्दी है मगर बतौर दोस्ताना जितनी भी औ़रतों से मर्द ज़िना करता है इसकी पूरी इजाज़त है। क्या तमाशा है कि निकाह ममनू और ज़िना (बदकारी) जायज़।

ग़र्ज़ इस्लाम से पहले एक से ज़्यादा बीवियाँ रखने की रस्म बग़ैर किसी हदबन्दी के राईज थी। मुल्कों और धर्मों की तारीख़ से जहाँ तक मालूम होता है किसी मज़हब और किसी क़ानून ने इस पर कोई हद न लगाई थी, न यहूदियों व ईसाईयों ने, न हिन्दुओं और आर्यों ने, और न

पारसियों ने।

इस्लाम के शुरूआती ज़माने में भी यह रस्म बग़ैर हदबन्दी के जारी रही, लेकिन इस ग़ैर-महदूद (असीमित) एक से ज़्यादा बीवियाँ रखने का नतीजा यह था कि लोग पहले-पहले तो हिर्स में बहुत से निकाह कर लेते थे मगर फिर उनके हुक़ूक़ अदा न कर सकते थे और ये औरतें उनके निकाह में एक क़ैदी की हैसियत से ज़िन्दगी गुज़ारती थीं।

फिर जो औरतें एक शख़्स के निकाह में होंती उनमें इन्साफ़ व बराबरी का कहीं नाम व निशान न था, जिसकी तरफ़ दिल का झुकाव हुआ उसको नवाज़ा गया, जिससे रुख़ फिर गया उसके किसी हक़ की परवाह नहीं।

इस्लाम ने ज़्यादा बीवियाँ रखने पर ज़रूरी पाबन्दी लगाई और इन्साफ़ व बराबरी का क़ानून जारी किया

क़ुरआन ने आम मुआशरे के इस भारी ज़ुल्म को रोका, ज़्यादा शादियों पर पाबन्दी लगाई और चार से ज़्यादा औरतों को निकाह में जमा करना हराम क़रार दिया। और जो औरतें एक ही वक़्त में निकाह के अन्दर हैं उनमें हुक़ूक़ की बराबरी का बहुत ही ताकीद के साथ हुक्म दिया और उसकी ख़िलाफ़वर्ज़ी (उल्लंघन करने) पर सख़्त सज़ा की धमकी सुनाई। ज़िक्र हुई इस आयत में इरशाद हुआः

فَانْكِحُوْا مَا طَابَ لَكُمْ مِّنَ النِّسَآءِ مَثْنٰى وَثُلٰثَ وَرُبٰعَ.

यानी "जो हलाल औरतें तुम्हें पसन्द हों उनसे निकाह कर सकते हो- दो दो, तीन तीन, चार चार।"

आयत में "मा ता-ब' (जो तुम्हें पसन्द हों) का लफ़्ज़ आया है। इमाम हसन बसरी रह., इब्ने जुबैर रह. और इब्ने मालिक रह. ने मा ता-ब की तफ़सीर "मा हलू-ल" से फ़रमाई है यानी जो औरतें तुम्हारे लिये हलाल हैं।

और कुछ हज़रात ने "मा ता-ब" के लफ़्ज़ी मायने के एतिबार से "पसन्दीदा" का तर्जुमा किया है मगर इन दोनों में कोई टकराव नहीं, यह मुराद हो सकती है कि जो औरतें तबई तौर पर तुम्हें पसन्द हों और तुम्हारे लिये शरई तौर पर हलाल भी हों।

इस आयत में एक तरफ़ तो इसकी इजाज़त दी गई कि एक से ज़्यादा दो, तीन, चार औरतें निकाह में जमा कर सकते हैं, दूसरी तरफ़ चार के अ़दद तक पहुँचाकर यह पाबन्दी भी आयद कर दी कि चार से ज़्यादा औरतें एक साथ निकाह में जमा नहीं की जा सकतीं।

रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के बयान ने इस क़ुरआनी हदबन्दी और पाबन्दी को और ज़्यादा स्पष्ट कर दिया। इस आयत के उतरने के बाद एक शख़्स ग़ीलान बिन असलमा सक़फ़ी मुसलमान हुए। उस वक़्त उनके निकाह में दस औरतें थीं और ये भी मुसलमान हो गईं, रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने क़ुरआनी हुक्म के मुताबिक़ उनको हुक्म दिया कि

उन दस में से चार को चुन लें बाक़ी को तलाक़ देकर आज़ाद कर दें। ग़ीलान बिन असलमा रज़ियल्लाहु अन्हु ने हुक्म के मुताबिक़ चार औरतें रखकर बाक़ी से अलैहदगी इख़्तियार कर ली।

(मिश्कात शरीफ़ पेज 274, तिर्मिज़ी व इब्ने माजा के हवाले से)

मुस्नद अहमद में इसी रिवायत के बारे में एक और वाक़िआ भी मज़कूर है। उसका ज़िक्र करना भी फ़ायदे से ख़ाली नहीं, क्योंकि उसका ताल्लुक़ भी औरतों के हुक़ूक़ से है वह यह है।

ग़ीलान बिन असलमा ने शरई हुक्म के मुताबिक़ चार औरतें रख ली थीं मगर फ़ारूक़े आज़म रज़ियल्लाहु अन्हु के ज़माना-ए-ख़िलाफ़त में उन्होंने उनको भी तलाक़ दे दी और अपना तमाम माल व सामान अपने बेटों में तक़सीम कर दिया। हज़रत फ़ारूक़े आज़म रज़ियल्लाहु अन्हु को इसकी इत्तिला मिली तो उनको बुलाकर फ़रमाया कि तुमने उन औरतों को अपनी मीरास से मेहरूम करने के लिये यह हरकत की है, जो सरासर ज़ुल्म है। इसलिये फ़ौरन उनकी तलाक़ से रजअ़त करो और अपना माल बेटों से वापस ले लो, और अगर तुमने ऐसा न किया तो याद रखो कि तुम्हें सख़्त सज़ा दी जायेगी।

क़ैस बिन हारिस असदी रज़ियल्लाहु अन्हु फ़रमाते हैं कि मैं जब मुसलमान हुआ तो मेरे निकाह में आठ औरतें थीं। मैंने रसूले करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम से ज़िक्र किया तो आपने फ़रमाया कि उनमें से चार रख लो बाक़ी को तलाक़ दे दो। (अबू दाऊद पेज 304)

और मुस्नद इमाम शाफ़ई रह. में नोफ़ल बिन मुआविया रज़ियल्लाहु अन्हु का वाक़िआ नक़ल किया है कि वह जब मुसलमान हुए तो उनके निकाह में पाँच औरतें थीं। आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने उनको भी एक औरत को तलाक़ देने का हुक्म दिया। यह वाक़िआ मिश्कात शरीफ़ (पेज 274) में भी शरहुस्सुन्ना से नक़ल किया है। रसूले करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम और सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अन्हुम के इस अमल व नमूने से क़ुरआनी आयत की मुराद (मायने व मतलब) बिल्कुल वाज़ेह हो गई, कि चार से ज़्यादा औरतों को निकाह में जमा करना हराम है।

हुज़ूरे पाक सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के लिये एक से ज़ायद बीवियाँ

हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की ख़ूबियों वाली ज़ात पूरी तरह रहमत व बरकत है। अहकाम की तब्लीग़, अफ़राद की बातिनी सफ़ाई और क़ुरआन को पहुँचाना आपके सबसे बड़े नुबुव्वती मक़सदों में था। आपने इस्लाम की तालीमात को अपने क़ौल व अमल से दुनिया में फैला दिया, यानी आप बताते भी थे और करते भी थे। फिर चूँकि इनसानी ज़िन्दगी का कोई शोबा (हिस्सा और क्षेत्र) ऐसा नहीं है जिसमें नबी सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की रहबरी की ज़रूरत न हो। जमाअ़त की नमाज़ से लेकर बीवियों के ताल्लुक़ात, आल व औलाद की परवरिश और पाख़ाना पेशाब और पाकी तक के बारे में आपकी क़ौली व फ़ेली हिदायतों से हदीस की किताबें भरी हुई हैं। घर के अन्दर क्या-क्या काम किया, बीवियों से कैसे मेलजोल रखा और घर

में आकर मसाईल पूछने वाली औरतों को क्या-क्या जवाब दिया, इस तरह के सैंकड़ों मसाईल हैं जिनसे आपकी पाक बीवियों के ज़रिये ही उम्मत को रहनुमाई मिली है। तालीम व तब्लीग़ की दीनी ज़रूरत को देखते हुए हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के लिये एक वक़्त में कई बीवियों को अपने निकाह में रखना एक ज़रूरी चीज़ थी। सिर्फ़ हज़रत आयशा रज़ियल्लाहु अ़न्हा से अहकाम व मसाईल, अख़्लाक़ व आदाब और सीरते नबवी से मुताल्लिक़ दो हज़ार दो सौ दस (2210) रिवायतें नक़ल की गयी हैं जो हदीस की किताबों में पाई जाती हैं। हज़रत उम्मे सलमा रज़ियल्लाहु अ़न्हा से जो हदीसें नक़ल की गयी हैं उनकी तादाद तीन सौ इकहत्तर (371) तक पहुँची हुई है। हाफ़िज़ इब्ने क़य्यिम रह. ने 'आलामुल-मुवक़्क़िईन' (पेज 9 जिल्द 1) में लिखा है कि अगर हज़रत उम्मे सलमा रज़ियल्लाहु अ़न्हा के फ़तवे जमा किये जायें जो उन्होंने हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की वफ़ात के बाद दिये हैं तो एक रिसाला (किताब) तैयार हो सकता है।

हज़रत आयशा रज़ियल्लाहु अ़न्हा का दीनी अ़क़्ल व नक़ल और फ़िक़्ह व फ़तावा में जो मर्तबा है वह किसी परिचय का मोहताज नहीं, उनके शागिर्दों की तादाद दो सौ के लगभग थी। हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की वफ़ात के बाद लगातार अड़तालीस साल तक इल्मे दीन फैलाया।

मिसाल के लिये दो पवित्र बीवियों का संक्षिप्त हाल लिख दिया है, दूसरी पाक बीवियों रज़ियल्लाहु अ़न्हुन्-न की रिवायतें भी मजमूई हैसियत से काफ़ी तादाद में मौजूद हैं। ज़ाहिर है कि इस तालीम व तब्लीग़ का नफ़ा सिर्फ़ नबी करीम की पाक बीवियों से पहुँचा।

अम्बिया-ए-किराम (नबी और रसूलों) के बुलन्द मक़ासिद और पूरे आ़लम की व्यक्तिगत और सामूहिक, घरेलू और मुल्की इस्लाहात (सुधारों) की फ़िक्रों को दुनिया के शहवत-परस्त (माल व नफ़्स की इच्छापूर्तियों में फंसे) इनसान क्या जानें। वे तो सब को अपने ऊपर क़ियास कर सकते हैं। इसी के नतीजे में कई सदी से यूरोप के बेदीन और इस्लाम की तारीख़ व तालीमात से वाक़िफ़ लोगों ने अपनी हठधर्मी से सरकारे दो आ़लम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के ई निकाह करने और कई बीवियाँ रखने को एक ख़ास जिन्सी और नफ़्सानी इच्छा की पैदावार क़रार दिया है। अगर हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की सीरत पर एक सरसरी नज़र भी डाली जाये तो एक अ़क़्लमन्द जिसके अन्दर इन्साफ़ हो वह कभी भी आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के अनेक बीवियाँ रखने को इस पर महमूल नहीं कर सकता।

आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की मासूम ज़िन्दगी मक्का के क़ुरैश के सामने इस तरह गुज़री कि पच्चीस साल की उम्र में एक बड़ी उम्र की औलाद वाली बेवा (जिसके दो शौहर इन्तिक़ाल कर चुके थे) से निकाह करके उम्र के पच्चीस साल (यानी अपनी उम्र के पचास साल तक) उन्हीं के साथ गुज़ारा किया, वह भी इस तरह कि महीना महीना घर छोड़कर ग़ारे हिरा में इबादत में मशग़ूल रहते थे। दूसरे निकाह जितने हुए पचास साल की उम्र शरीफ़ के बाद हुए। यह पचास साल की ज़िन्दगी और जवानी का सारा वक़्त मक्का वालों की नज़रों के सामने था,

कभी किसी दुश्मन को भी आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की तरफ़ कोई ऐसी चीज़ मन्सूब करने का मौक़ा नहीं मिला जो तक़वे व तहारत को मशकूक (संदिग्ध) कर सके। आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के दुश्मनों ने आप पर जादूगर, शायर, मजनूँ, झूठा, अपनी तरफ़ से गढ़ने वाला जैसे इल्ज़ामात में कोई कसर उठा नहीं रखी लेकिन आपकी मासूम ज़िन्दगी पर कोई ऐसा हर्फ़ कहने की जुर्रत नहीं हुई जिसका ताल्लुक़ जिन्सी और नफ़्सानी जज़्बात में बहकर ग़लत राह पर चलने से हो।

इन हालात में क्या यह बात ग़ौर-तलब (सोचने के लायक़) नहीं है कि जवानी के पचास साल इस ज़ोहद व तक़वे और दुनिया की लज़्ज़तों से यक्सूई में गुज़ारने के बाद वह क्या जज़्बा और तक़ाज़ा था जिसने आख़िर उम्र में आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को कई निकाहों पर मजबूर किया। अगर दिल में ज़रा सा भी इन्साफ़ हो तो इन कई निकाहों की वजह उसके सिवा नहीं बतलाई जा सकती जिसका ऊपर ज़िक्र किया गया है। और कई बीवियाँ करने की हक़ीक़त को भी सुन लीजिये कि किस तरह वजूद में आई।

पच्चीस साल की उम्र से लेकर पचास साल की उम्र शरीफ़ होने तक तन्हा हज़रत ख़दीजा रज़ियल्लाहु अ़न्हा आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की बीवी रहीं। उनकी वफ़ात के बाद हज़रत सौदा रज़ियल्लाहु अ़न्हा और हज़रत आयशा रज़ियल्लाहु अ़न्हा से निकाह हुआ, मगर हज़रत सौदा रज़ियल्लाहु अ़न्हा तो आपके घर तशरीफ़ ले आईं और हज़रत आयशा रज़ियल्लाहु अ़न्हा कम-उम्र होने की वजह से अपने वालिद के घर ही रहीं। फिर चन्द साल के बाद सन् 2 हिजरी में मदीना मुनव्वरा में हज़रत आयशा रज़ियल्लाहु अ़न्हा की रुख़्सती अमल में आई, उस वक़्त आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की उम्र चव्वन साल हो चुकी थी और दो बीवियाँ इस उम्र में आकर जमा हुई हैं। यहाँ से कई बीवियाँ रखने का मामला शुरू हुआ। इसके एक साल के बाद हज़रत हफ़्सा रज़ियल्लाहु अ़न्हा से निकाह हुआ। फिर कुछ माह बाद हज़रत ज़ैनब बिन्ते ख़ुज़ैमा रज़ियल्लाहु अ़न्हा से निकाह हुआ और सिर्फ़ अट्ठारह महीने आपके निकाह में रहकर वफ़ात पा गईं। एक क़ौल के मुताबिक़ तीन माह आपके निकाह में ज़िन्दा रहीं। फिर सन् 4 हिजरी में हज़रत उम्मे सलमा रज़ियल्लाहु अ़न्हा से निकाह हुआ। फिर सन् 5 हिजरी में हज़रत ज़ैनब बिन्ते जहश रज़ियल्लाहु अ़न्हा से निकाह हुआ, उस वक़्त आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की उम्र शरीफ़ अट्ठावन साल (1) हो चुकी थी और इतनी बड़ी उम्र में आकर चार बीवियाँ जमा हुईं (2) हालाँकि उम्मत को जिस वक़्त चार बीवियों की इजाज़त मिली थी उस वक़्त ही आप कम से कम चार निकाह कर सकते थे, लेकिन आपने ऐसा नहीं किया। उनके बाद सन् 6 हिजरी में

(1) बल्कि 57 साल। (**मुहम्मद तक़ी उस्मानी** 14. 4. 1426 हिजरी)

(2) अभी पीछे गुज़रे मज़मून पर ग़ौर करने से मालूम होता है कि आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के निकाह में सन् 3 हिजरी में चार बीवियाँ आ चुकी थीं- हज़रत सौदा, हज़रत आयशा, हज़रत हफ़्सा और हज़रत ज़ैनब बिन्ते **ख़ुज़ैमा** रज़ियल्लाहु अ़न्हुन्-न। उस वक़्त आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की उम्र मुबारक पचपन साल थी। **मुहम्मद तक़ी उस्मानी** (14. 4. 1426 हिजरी)।

हज़रत जुवैरिया रज़ियल्लाहु अन्हा से, सन् 7 हिजरी में हज़रत उम्मे हबीबा रज़ियल्लाहु अन्हा से, सन् 7 हिजरी ही में हज़रत सफ़िया रज़ियल्लाहु अन्हा से और फिर उसी साल हज़रत मैमूना रज़ियल्लाहु अन्हा से निकाह हुआ।

ख़ुलासाः यह कि 54 साल की उम्र तक आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने सिर्फ़ एक बीवी के साथ गुज़ारा किया, यानी पच्चीस साल हज़रत ख़दीजा रज़ियल्लाहु अन्हा के साथ और चार पाँच साल हज़रत सौदा रज़ियल्लाहु अन्हा के साथ गुज़ारे। फिर 58 साल की उम्र में चार बीवियाँ जमा हुईं और बाक़ी बीवियाँ दो तीन साल के अन्दर आपके निकाह में आईं।

और यह बात ख़ास तौर से क़ाबिले ज़िक्र है कि इन सब बीवियों में सिर्फ़ एक ही औरत ऐसी थीं जिनसे कुंवारेपन में निकाह हुआ यानी उम्मुल-मोमिनीन हज़रत आयशा रज़ियल्लाहु अन्हा, इनके अलावा बाक़ी सब बीवियाँ बेवा थीं, जिनमें से कुछ के दो-दो शौहर पहले गुज़र चुके थे, और यह तादाद भी आख़िर उम्र में आकर जमा हुई है।

हज़राते सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अन्हुम मर्द और औरत सब आप पर जाँनिसार थे, अगर आप चाहते तो सब बीवियाँ कुंवारीं जमा कर लेते, बल्कि हर एक-एक दो-दो महीने के बाद बदलने का भी मौक़ा था, लेकिन आपने ऐसा नहीं किया।

और यह बात भी क़ाबिले ज़िक्र है कि सरकारे दो आलम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम अल्लाह तआला के बरहक़ नबी थे। नबी हवस और नफ़्स परस्ती वाला नहीं होता, जो कुछ करता है अल्लाह के हुक्म से करता है। नबी मानने के बाद हर एतिराज़ ख़त्म हो जाता है। और अगर कोई शख़्स आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम को नबी ही न माने और यह इल्ज़ाम लगाये कि आपने महज़ जिन्सी इच्छापूर्ति के लिये अपने लिये कई बीवियों को जायज़ रखा था तो उस शख़्स से कहा जायेगा कि अगर ऐसा होता तो आप अपने हक़ में ज़्यादा बीवियाँ रखने के मामले में उस पाबन्दी का ऐलान क्यों फ़रमाते जिसका ज़िक्र क़ुरआने करीम की इस आयत में आया है:

لَا يَحِلُّ لَكَ النِّسَآءُ مِنْ بَعْدُ

अपने हक़ में इस पाबन्दी का ऐलान इस बात की खुली दलील है कि आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने जो कुछ किया अपने रब के हुक्म व इजाज़त से किया।

एक से ज़्यादा निकाह करने की वजह से तालीमी और तब्लीग़ी फ़ायदे जो उम्मत को हासिल हुए और जो अहकाम उम्मत तक पहुँचे उसकी तफ़सीलात इस क़द्र ज़्यादा हैं कि उनको समेटना दुश्वार है, हदीस की किताबें इस पर शाहिद (गवाह और सुबूत) हैं, अलबत्ता कुछ अन्य फ़ायदों की तरफ़ यहाँ हम इशारा करते हैं।

हज़रत उम्मे सलमा रज़ियल्लाहु अन्हा के शौहर हज़रत अबू सलमा रज़ियल्लाहु अन्हु की वफ़ात के बाद आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने उनसे निकाह कर लिया था। वह अपने पहले शौहर के बच्चों के साथ आपके घर तशरीफ़ लाईं, उनके बच्चों की आपने परवरिश की और अपने अमल से बता दिया कि किस प्यार व मुहब्बत से सौतेली औलाद की परवरिश करनी चाहिये। आपकी बीवियों में सिर्फ़ यही एक बीवी हैं जो बच्चों के साथ आईं, अगर कोई भी

बीवी इस तरह की न होती तो अ़मली तौर पर सौतेली औलाद की परवरिश का ख़ाना ख़ाली रह जाता और उम्मत को इस सिलसिले में कोई हिदायत न मिलती। इनके बेटे हज़रत उमर बिन अबी सलमा रज़ियल्लाहु अ़न्हु फ़रमाते हैं कि मैं रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की गोद में परवरिश पाता था। एक बार आपके साथ खाना खाते हुए प्याले में हर जगह हाथ डालता था आपने फ़रमायाः

سَمِّ اللّٰهَ وَكُلْ بِيَمِيْنِكَ وَكُلْ مِمَّا يَلِيْكَ

अल्लाह का नाम लेकर खा, दाहिने हाथ से खा और सामने से खा। (बुख़ारी, मुस्लिम)

हज़रत जुवैरिया रज़ियल्लाहु अ़न्हा एक जिहाद में क़ैद होकर आई थीं। दूसरे क़ैदियों की तरह यह भी तक़सीम में आ गईं और साबित बिन क़ैस रज़ियल्लाहु अ़न्हु या उनके चचाज़ाद भाई के हिस्से में इनको लगा दिया गया, लेकिन इन्होंने अपने आक़ा से इस तरह मामला किया कि इतना-इतना माल तुमको दे दूँगी मुझको आज़ाद कर दो। यह मामला करके हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के सामने आईं और माली इमदाद चाही। आपने फ़रमाया मैं तुम्हें इससे बेहतर बात न बता दूँ? वह यह कि मैं तुम्हारी तरफ़ से माल अदा कर दूँ और तुम से निकाह कर लूँ। इन्होंने ख़ुशी से मन्ज़ूर कर लिया तब आपने इनकी तरफ़ से माल अदा करके निकाह फ़रमा लिया। इनकी क़ौम के सैंकड़ों अफ़राद हज़राते सहाबा की मिल्कियत में आ चुके थे, क्योंकि वे सब लोग क़ैदी होकर आये थे। जब सहाबा किराम को पता चला कि हज़रत जुवैरिया आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के निकाह में आ गई हैं तो आपके एहतिराम के पेशे नज़र सब ने अपने अपने ग़ुलाम बाँदी आज़ाद कर दिये। सुब्हानल्लाह! हज़राते सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम के अदब की क्या शान थी। इस जज़्बे के पेशे नज़र कि ये लोग सरकारे दो आ़लम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के ससुराल वाले हो गये इनको ग़ुलाम कैसे बनाकर रखें, सब को आज़ाद कर दिया। हज़रत आ़यशा रज़ियल्लाहु अ़न्हा इस वाक़िए के संबन्ध में फ़रमाती हैं:

فَلَقَدْ اُعْتِقَ بِتَزْوِيْجِهٖ اِيَّاهَا مِائَةُ اَهْلِ بَيْتٍ مِّنْ بَنِى الْمُصْطَلِقِ فَمَآ اَعْلَمُ امْرَاَةً اَعْظَمَ بَرَكَةً عَلٰى قَوْمِهَا مِنْهَا.

"आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के हज़रत जुवैरिया से निकाह कर लेने से बनू मुस्तलक़ के सौ घराने आज़ाद हुए। मैंने कोई औ़रत ऐसी नहीं देखी जो जुवैरिया से बढ़कर अपनी क़ौम के लिये बड़ी बरकत वाली साबित हुई हो।"

हज़रत उम्मे हबीबा रज़ियल्लाहु अ़न्हा ने अपने शौहर के साथ इस्लाम के शुरू ज़माने ही में मक्का में इस्लाम क़ुबूल किया था और फिर दोनों मियाँ-बीवी हिजरत करके क़ाफ़िले के दूसरे अफ़राद के साथ हब्शा चले गये थे। वहाँ उनका शौहर ईसाई हो गया और चन्द दिन के बाद मर गया। आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने नजाशी के माध्यम से उनके पास निकाह का पैग़ाम भेजा जिसे उन्होंने क़ुबूल कर लिया और वहीं हब्शा में नजाशी बादशाह ही ने आपके साथ उनका निकाह कर दिया। दिलचस्प बात यह है कि हज़रत उम्मे हबीबा रज़ियल्लाहु अ़न्हा अबू सुफ़ियान रज़ियल्लाहु अ़न्हु की बेटी थीं और हज़रत अबू सुफ़ियान उस वक़्त उस गिरोह के प्रमुख

थे जिसने इस्लाम की दुश्मनी को अपना सबसे बड़ा मकसद करार दिया था और वह मुसलमानों और पैग़म्बरे ख़ुदा सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम को तकलीफ़ देने और उन्हें फ़ना के घाट उतार देने का कोई मौक़ा हाथ से नहीं जाने देते थे। जब उनको इस निकाह की इत्तिला हुई तो एक दम उनकी ज़बान से ये अलफ़ाज़ निकलेः

هُوَ الْفَحْلُ لَا يُجْدَعُ اَنْفُهٗ

"यानी मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम बहादुर हैं उनकी नाक नहीं काटी जा सकती।"

मतलब यह कि वह बुलन्द रुतबे वाले इज़्ज़तदार आदमी हैं उनको ज़लील करना आसान नहीं। इधर तो हम उनको ज़लील करने की तैयारियों में लगे हुए हैं और उधर हमारी लड़की उनके निकाह में चली गई।

ग़र्ज़ कि इस निकाह ने एक मनोवैज्ञानिक जंग का असर किया और इस्लाम के मुक़ाबले में कुफ़्र के सरदार के हौसले पस्त हो गये। इस निकाह की वजह से जो सियासी फ़ायदा इस्लाम और मुसलमानों को पहुँचा उसकी अहमियत और ज़रूरत से इनकार नहीं किया जा सकता, और यक़ीन से कहा जा सकता है कि ख़ुदा के मुदब्बिर और हकीम (तदबीर से काम लेने वाले और अक़्लमन्द) रसूल ने इस फ़ायदे को ज़रूर पेशे नज़र रखा होगा।

ये चन्द बातें लिखी गई हैं, इनके अलावा सीरत पर निगाह रखने वाले हज़रात को बहुत कुछ हिक्मतें आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के कई निकाह करने में मिल सकती हैं। इस सिलसिले में सय्यिदी हकीमुल-उम्मत हज़रत मौलाना अशरफ़ अली थानवी रह. के रिसाले "कसरते अज़्वाज लिसाहिबिल् मेराज" का देखना भी मुफ़ीद होगा।

यह तफ़सील हमने मुल्हिदीन व मुस्तशरिक़ीन (बेदीन और इस्लाम का अध्ययन रखने वाले ग़ैर-मुस्लिमों) के फैलाये हुए फ़रेब से भरे जाल को काटने के लिये लिखी है, क्योंकि उनके इस धोखे के जाल में बहुत से वे तालीम याफ़्ता और नावाक़िफ़ मुसलमान भी फंस जाते हैं जो सीरते नबवी और तारीख़े इस्लाम से बेख़बर हैं, और इस्लामियात का इल्म मुस्तशरिक़ीन (ग़ैर-मुस्लिम इस्लाम का अध्ययन करने वालों) ही की किताबों से हासिल करते हैं।

अगर कई बीवियों में बराबरी और इन्साफ़ पर ताक़त न हो तो सिर्फ़ एक बीवी पर सब्र किया जाये

चार बीवियों तक की इजाज़त देकर फ़रमायाः

فَاِنْ خِفْتُمْ اَلَّا تَعْدِلُوْا فَوَاحِدَةً اَوْ مَا مَلَكَتْ اَيْمَانُكُمْ

"यानी अगर तुमको इसका ख़ौफ़ हो कि इन्साफ़ न कर सकोगे तो एक ही बीवी पर बस करो, या जो बाँदी शरई उसूल के मुताबिक़ मिल्क में हो उससे गुज़ारा करो।"

इससे मालूम हुआ कि एक से ज़्यादा निकाह करना उसी सूरत में जायज़ और मुनासिब है

जबकि शरीअ़त के मुताबिक़ सब बीवियों में बराबरी कर सके और सब के हक़ों का लिहाज़ रख सके। अगर इस पर क़ुदरत न हो तो एक ही बीवी रखी जाये। ज़माना-ए-जाहिलीयत में यह ज़ुल्म आ़म था कि एक-एक शख़्स कई-कई बीवियाँ रख लेता था जिसका ज़िक्र कुछ हदीसों के हवाले से इस आयत के तहत पहले गुज़रा है, और बीवियों के हुक़ूक़ में बराबरी और इन्साफ़ का बिल्कुल ख़्याल न था, जिसकी तरफ़ ज़्यादा मैलान हो गया उसको हर हैसियत से नवाज़ने और ख़ुश रखने की फ़िक्र में लग गये, और दूसरी बीवियों के हक़ों को नज़र-अन्दाज़ (अनदेखा) कर डालते। क़ुरआने करीम ने साफ़-साफ़ फ़रमा दिया कि अगर इन्साफ़ न कर सको तो एक ही बीवी रखो या बाँदी से गुज़ारा कर लो। यहाँ यह बात क़ाबिले ज़िक्र है कि मम्लूक बाँदी जिसका ज़िक्र आयत में है उसकी ख़ास शर्तें हैं जो उमूमन आजकल नापैद हैं, इसलिये इस ज़माने में किसी को मम्लूक शरई बाँदी कहकर बिना निकाह के रख लेना हराम है, इसकी तफ़सील का यहाँ मौक़ा नहीं।

हासिल यह कि अगरचे क़ुरआने करीम ने चार औ़रतें तक निकाह में रखने की इजाज़त दे दी और इस हद के अन्दर जो निकाह किये जायेंगे वो सही और जायज़ होंगे, लेकिन कई बीवियाँ होने की सूरत में उनमें इन्साफ़ व बराबरी क़ायम रखना वाजिब है और इसके ख़िलाफ़ करना ज़बरदस्त गुनाह है। इसलिये जब एक से ज़्यादा निकाह का इरादा करो तो पहले अपने हालात का जायज़ा लो कि सब के हुक़ूक़ इन्साफ़ व बराबरी के साथ पूरे करने की ताक़त भी है या नहीं, अगर यह अन्देशा ग़ालिब हो कि इन्साफ़ व बराबरी क़ायम न रख सकोगे तो एक से ज़्यादा निकाह करना अपने आपको एक बड़े गुनाह में मुब्तला करने पर क़दम बढ़ाना है, इससे बाज़ रहना चाहिये और इस हालत में सिर्फ़ एक ही बीवी पर इक्तिफ़ा (सब्र) करना चाहिये।

ख़ुलासा यह है कि चार से ज़्यादा औ़रतों से किसी ने एक साथ यानी एक ही ईजाब व क़ुबूल में निकाह कर लिया तो वह निकाह सिरे से बातिल है, क्योंकि चार से ज़्यादा निकाह का किसी को हक़ नहीं, और चार के अन्दर जो निकाह किये जायें वो निकाह तो बहरहाल हो जायेंगे लेकिन बीवियों में इन्साफ़ और बराबरी क़ायम न रखी तो सख़्त गुनाह होगा और जिसकी हक़ तल्फ़ी हो रही हो वह क़ाज़ी की अ़दालत में दावा करके अपना हक़ वसूल कर सकेगी।

रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने सब बीवियों के दरमियान पूरी बराबरी व इन्साफ़ की सख़्त ताकीद फ़रमाई है और इसके ख़िलाफ़ करने पर सख़्त धमकियाँ सुनाई हैं, और ख़ुद अपने अ़मल के ज़रिये भी इसको पेश फ़रमाया है, बल्कि रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम तो उन मामलात में भी बराबरी फ़रमाते थे जिनमें बराबरी लाज़िम नहीं।

एक हदीस में आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने इरशाद फ़रमाया कि जिस शख़्स के निकाह में दो औ़रतें हों और वह उनके हुक़ूक़ में बराबरी और इन्साफ़ न कर सके तो वह क़ियामत में इस तरह उठाया जायेगा कि उसका एक पहलू गिरा हुआ होगा। (मिश्कात पेज 278)

अलबत्ता यह बराबरी उन बातों में ज़रूरी है जो इनसान के इख़्तियार में हैं जैसे नफ़क़े (ख़र्चे) में बराबरी, रात गुज़ारने में बराबरी। रहा वह मामला जो इनसान के इख़्तियार में नहीं जैसे

दिल का रुझान किसी की तरफ़ ज़्यादा हो जाये तो इस ग़ैर-इख़्तियारी मामले में उस पर कोई पकड़ नहीं, बशर्तेकि उस मैलान का असर इख़्तियारी मामलात पर न पड़े। रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने ख़ुद भी इख़्तियारी मामलात में पूरी बराबरी क़ायम फ़रमाने के साथ हक़ तआ़ला की बारगाह में अ़र्ज़ किया:

اَللّٰھُمَّ ھٰذَا قَسْمِیْ فِیْمَآ اَمْلِكُ فَلَا تَلُمْنِیْ فِیْمَا تَمْلِكُ وَلَآ اَمْلِكُ.

"या अल्लाह! यह मेरी बराबर वाली तक़सीम है उन चीज़ों में जो मेरे इख़्तियार में हैं। अब वह चीज़ जो आपके क़ब्ज़े में है मेरे इख़्तियार में नहीं है उस पर मुझसे पूछगछ न करना।"

ज़ाहिर है कि जिस काम पर एक मासूम रसूल भी क़ादिर नहीं उस पर कोई दूसरा कैसे क़ादिर हो सकता है। इसलिये क़ुरआने करीम की दूसरी आयत में इस ग़ैर-इख़्तियारी मामले का ज़िक्र इस तरह फ़रमाया:

وَلَنْ تَسْتَطِیْعُوْٓا اَنْ تَعْدِلُوْا بَیْنَ النِّسَآءِ. (۱۲۹:٤)

"औरतों के दरमियान तुम पूरी बराबरी हरगिज़ न कर सकोगे।"

जिसमें बतला दिया कि दिल का रुझान और मुहब्बत एक ग़ैर-इख़्तियारी मामला है, इसमें बराबरी करना इनसान के बस में नहीं। लेकिन आगे इस ग़ैर-इख़्तियारी मामले की इस्लाह के लिये भी इरशाद फ़रमाया:

فَلَا تَمِیْلُوْا كُلَّ الْمَیْلِ

यानी "अगर किसी एक बीवी से ज़्यादा मुहब्बत हो तो इसमें तो तुम माज़ूर हो लेकिन दूसरी बीवी से बिल्कुल ही बेरुख़ी और बेतवज्जोही उस हालत में भी जायज़ नहीं।" इस आयत के जुमले:

فَاِنْ خِفْتُمْ اَلَّا تَعْدِلُوْا فَوَاحِدَةً

(कि अगर तुमको यह आशंका हो कि तुम कई बीवियों में इन्साफ़ न कर सकोगे तो एक ही पर बस करो) में जिस इन्साफ़ व बराबरी का बयान है यह वही इख़्तियारी मामले का इन्साफ़ है, कि उसमें बेइन्साफ़ी सख़्त गुनाह है, और जिस शख़्स को इस गुनाह में मुब्तला हो जाने का ख़तरा हो उसको यह हिदायत की गई कि एक से ज़्यादा निकाह न करे।

एक शुब्हा और उसका जवाब

उपरोक्त तफ़सील व वज़ाहत को नज़र-अन्दाज़ कर देने की वजह से कुछ लोग सूरः निसा की उक्त आयत और इस आयत (129) को मिलाने से एक अ़जीब मुग़ालते में मुब्तला हो गये। वह यह कि सूरः निसा की आयत में तो यह हुक्म दिया गया कि इन्साफ़ व बराबरी क़ायम न रखने का ख़तरा हो तो फिर एक ही निकाह पर बस करो, और इस दूसरी आयत में क़तई तौर पर यह वाज़ेह कर दिया कि इन्साफ़ व बराबरी हो ही नहीं सकता, तो इसका नतीजा यह हुआ कि एक से ज़्यादा निकाह बिल्कुल ही जायज़ न रहे। लेकिन उनको सोचना चाहिये कि अगर

अल्लाह तआला का मक्सूद इन तमाम आयतों में एक से ज़्यादा निकाह को रोकना ही होता तो इस तफ़सील में जाने की ज़रूरत ही क्या थी, कि "निकाह करो जो पसन्द आयें तुमको औरतें दो-दो, तीन-तीन, चार-चार" और फिर इस इरशाद के क्या मायने कि "अगर तुम्हें बेइन्साफ़ी का ख़तरा हो" क्योंकि इस सूरत में तो बेइन्साफ़ी यक़ीनी है, फिर ख़तरा होने के कोई मायने ही बाक़ी नहीं रहते।

इसके अलावा रसूले करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम और सहाबा किराम रज़ि. का अमली व क़ौली बयान लगातार मामूल इस पर सुबूत है कि एक से ज़्यादा निकाह को किसी वक़्त इस्लाम में नहीं रोका गया। बात वही है जो ऊपर बयान हो चुकी कि सूरः निसा की पहली आयत में इख़्तियारी मामलात में इन्साफ़ व बराबरी का ज़िक्र है और दूसरी आयत में मुहब्बत और दिली झुकाव में इन्साफ़ व बराबरी पर क़ुदरत न होने का बयान है। इसलिये दोनों आयतों में न कोई टकराव है और न इन आयतों में बिल्कुल ही एक से ज़्यादा निकाह करने की मनाही की कोई दलील है।

आयत के ख़त्म पर इरशाद फ़रमाया:

ذٰلِكَ اَدْنٰۤى اَلَّا تَعُوْلُوْا

इस आयत में दो कलिमे हैं- एक कलिमा **अदना** यह लफ़्ज़ **दनुव्वुन्** से निकला है जो क़रीब के मायने में है, और दूसरा लफ़्ज़ **ला तऊलू** है जिसके मायने मैलान और रुझान के हैं और यहाँ नाजायज़ मैलान और ज़ुल्म व ज़्यादती के मायने में इस्तेमाल हुआ है।

मतलब यह है कि इस आयत में जो कुछ तुमको बतलाया गया है (यानी इन्साफ़ न कर सकने की सूरत में एक बीवी पर बस करना, या बाँदी के साथ गुज़ारा कर लेना) यह ऐसी चीज़ है कि इसको इख़्तियार करने और इस पर अमल करने वाला होने में तुम ज़ुल्म करने से बच सकोगे, और ज़्यादती व ज़ुल्म के मौक़े ख़त्म हो सकेंगे।

यहाँ एक शुब्हा यह है कि जब एक बीवी होगी तो ज़ुल्म का बिल्कुल कोई मौक़ा न होगा फिर लफ़्ज़ **अदना** बढ़ाकर यह क्यों फ़रमाया कि इस पर अमल करने वाला होना इस बात के क़रीब है कि तुम ज़ुल्म न करो, बल्कि यह फ़रमाना चाहिये कि तुम बिल्कुल इस ज़ुल्म से बच जाओगे।

इसका जवाब यह है कि यह लफ़्ज़ **अदना** बढ़ाकर इस तरफ़ इशारा फ़रमाया है कि चूँकि बहुत से लोग एक बीवी को भी ज़ुल्म व सितम का तख़्ता बनाये रखते हैं इसलिये ज़ुल्म का रास्ता बन्द करने के लिये सिर्फ़ यह काफ़ी नहीं कि एक से ज़्यादा निकाह न करो, हाँ यह ज़रूर है कि इस सूरत में ज़ुल्म का ख़तरा कम हो जायेगा और तुम इन्साफ़ के क़रीब पहुँच जाओगे और ज़ुल्म व ज़्यादती से मुकम्मल बचाव उस वक़्त होगा जबकि एक बीवी के हुक़ूक़ पूरे अदा किये जायें, उसके साथ अच्छे सुलूक का मामला रहे, उसकी ख़ामियों से दरगुज़र और उसकी तरफ़ से पेश आने वाली नागवार बातों पर सब्र किया जाये।

وَاٰتُوا النِّسَآءَ صَدُقٰتِهِنَّ نِحْلَةً ؕ فَاِنْ طِبْنَ لَكُمْ عَنْ شَیْءٍ مِّنْهُ نَفْسًا فَكُلُوْهُ هَنِيْٓـًٔا مَّرِيْٓـًٔا ۝

व आतुन्निसा-अ सदुक़ातिहिन्-न निह्ल-तन्, फ़-इन् तिब्-न लकुम् अन् शैइम् मिन्हु नफ़्सन् फ़कुलूहु हनीअम्-मरीआ (4)	दे डालो औरतों को उनके मेहर ख़ुशी से, फिर अगर वे उसमें से कुछ अपनी ख़ुशी से छोड़ दें तुमको तो उसको खाओ रचता पचता। (4)

इस आयत के मज़मून का पीछे से जोड़

पिछली आयत में एक से ज़्यादा बीवियाँ रखने की वजह से जो औरतों पर ज़ुल्म होता था उसको दूर किया गया था, इस आयत में औरतों के एक ख़ास हक़ का ज़िक्र है और उसमें जो ज़ुल्म व सितम होता था उसको दूर करने का बयान है, और यह हक़ मेहर का हक़ है।

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

और तुम लोग बीवियों को उनके मेहर ख़ुशदिली से दे दिया करो। हाँ! अगर वे बीवियाँ ख़ुशदिली से छोड़ दें तुमको उस मेहर में का कोई हिस्सा (और यही हुक्म पूरे का भी है) तो (उस हालत में) तुम उसको खाओ (बरतो) मज़ेदार और अच्छी चीज़ समझ कर।

मआरिफ़ व मसाईल

मेहर के मुताल्लिक़ अरब में कई क़िस्म के ज़ुल्म होते थेः

एक यह कि मेहर जो लड़की का हक़ है उसको न दिया जाता था बल्कि लड़की के सरपरस्त शौहर से वसूल कर लेते थे जो सरासर ज़ुल्म था। इसको दफ़ा करने के लिये क़ुरआने करीम ने फ़रमायाः

وَاٰتُوا النِّسَآءَ صَدُقٰتِهِنَّ

यानी "औरतों को उनके मेहर दो" इसके मुख़ातब शौहर भी हैं कि वे अपनी बीवी का मेहर ख़ुद बीवी को दें और दूसरों को न दें, और लड़कियों के वली और सरपरस्त भी कि अगर लड़कियों के मेहर उनको वसूल हो जायें तो वे लड़कियों ही को दे दें। उनकी इजाज़त के बग़ैर अपने क़ब्ज़े और इस्तेमाल में न लायें।

दूसरा ज़ुल्म यह भी था कि अगर कभी किसी को मेहर देना भी पड़ गया तो बहुत तल्ख़ी (कड़वाहट) के साथ, दिल के न चाहते हुए एक जुर्माना समझकर देते थे। इस ज़ुल्म का ख़ात्मा उक्त आयत के इस लफ़्ज़ निहला से फ़रमाया गया। क्योंकि निहला लुग़त में उस देने को कहते हैं जो ख़ुशदिली के साथ दिया जाये।

ग़र्ज़ कि इस आयत में यह तालीम फ़रमाई गई कि औरतों का मेहर एक वाजिब हक़ है उसकी अदायेगी ज़रूरी है और जिस तरह तमाम वाजिब हुक़ूक़ खुशदिली (दिल की खुशी) के साथ अदा करने ज़रूरी हैं इसी तरह मेहर को भी समझना चाहिये।

तीसरा ज़ुल्म मेहर के बारे में यह भी होता था कि बहुत से शौहर यह समझकर कि बीवी उनसे मजबूर है मुख़ालफ़त नहीं कर सकती, दबाव डालकर उनसे मेहर माफ़ करा लेते थे, जिससे दर हक़ीक़त माफ़ी न होती थी मगर वे यह समझकर बेफ़िक्र हो जाते थे कि मेहर माफ़ हो गया।

इस ज़ुल्म को रोकने के लिये मज़कूरा आयत में इरशाद फ़रमायाः

فَاِنْ طِبْنَ لَكُمْ عَنْ شَیْءٍ مِّنْهُ نَفْسًا فَكُلُوْهُ هَنِیْٓـًٔا مَّرِیْٓـًٔا.

यानी "अगर वे औरतें खुशदिली के साथ अपने मेहर का कोई हिस्सा तुम्हें दे दें तो तुम उसको खा सकते हो, तुम्हारे लिये मुबारक होगा।"

मतलब यह है कि ज़बरदस्ती, मजबूर करके और दबाव के ज़रिये माफ़ी हासिल करना तो कोई चीज़ नहीं, इससे कुछ माफ़ नहीं होता, लेकिन अगर वे बिल्कुल अपने इख़्तियार और रज़ामन्दी से कोई हिस्सा मेहर का माफ़ कर दें या लेने के बाद तुम्हें वापस कर दें तो वह तुम्हारे लिये जायज़ और दुरुस्त है।

ये ज़िक्र हुए अत्याचार ज़माना-ए-जाहिलीयत (इस्लाम से पहले ज़माने) में बहुत ज़्यादा थे जिन पर क़ुरआने करीम ने इस आयत में बन्दिश लगायी है। अफ़सोस कि जाहिलीयत के ज़माने की ये बातें मुसलमानों में अब भी मौजूद हैं, मुख़्तलिफ़ क़बीलों और इलाक़ों में इन ज़ुल्मों व अत्याचारों में से कोई न कोई ज़ुल्म ज़रूर पाया जाता है, इन सब मज़ालिम से बचना लाज़िम है।

आयते शरीफ़ा में जो यह क़ैद लगाई **तीबे-नफ़्स** की कि ख़ुशी से तुम्हारी बीवियाँ अगर मेहर का कुछ हिस्सा तुमको दें या तुम से वसूल ही न करें तो तुम उसको खा सकते हो, इसमें एक बहुत बड़ा राज़ है। बात यह है कि शरीअत का यह उसूल है कि किसी का ज़रा सा माल भी किसी दूसरे के लिये हलाल नहीं है जब तक कि दिली रज़ामन्दी से इजाज़त न हो। बतौर एक मुस्तक़िल क़ायदे के हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमायाः

اَلَا لَا تَظْلِمُوْا اَلَا لَا يَحِلُّ مَالُ امْرِءٍ اِلَّا بِطِيْبِ نَفْسٍ مِّنْهُ. (مشکوٰۃ شریف ص ٢٥٥)

"ख़बरदार ज़ुल्म न करो और अच्छी तरह से समझ लो कि किसी शख़्स का माल (दूसरे शख़्स के लिये) हलाल नहीं है जब तक कि उसके नफ़्स की ख़ुशी से हासिल न हो।"

यह एक अहम और शानदार उसूल है और इसके मातहत बहुत से अहकाम और तफ़सीलात आती हैं।

मौजूदा दौर में चूँकि औरतें यह समझती हैं कि मेहर मिलने वाला नहीं है, अगर सवाल करूँ या माफ़ न करूँ तो मनमुटाव और ताल्लुक़ात में ख़राबी पैदा होगी, इसलिये दिल न चाहते हुए भी माफ़ कर देती हैं, इस माफ़ी का कोई एतिबार नहीं। सय्यिदी हज़रत हकीमुल-उम्मत मौलाना थानवी क़ुद्दि-स सिर्रुहू फ़रमाते थे कि सही मायने में नफ़्स की रज़ामन्दी और ख़ुशी से माफ़ करने

का पता इस सूरत में चल सकता है कि मेहर की रक़म बीवी के हवाले कर दी जाये, उसके बाद वह अपनी ख़ुशी से बग़ैर किसी दबाव के दे दे। यही नफ़्स की ख़ुशी व रज़ामन्दी बहनों और बीवियों की मीरास में भी समझ लेनी चाहिये। अक्सर यह होता है कि माँ या बाप के मर जाने पर लड़के ही पूरे माल पर क़ाबिज़ हो जाते हैं और लड़कियों को हिस्सा नहीं देते, अगर किसी को बहुत दीनदारी का ख़्याल हुआ तो बहनों से माफ़ी माँग लेता है। वे चूँकि यह समझती हैं कि हिस्सा किसी हाल में मिलने वाला नहीं, इसलिये अपनी मर्ज़ी के ख़िलाफ़ माफ़ करने को कह देती हैं। फिर बाप की वफ़ात पर उसकी बीवी का हिस्सा भी नहीं दिया जाता, ख़ुसूसन सौतेली माँ को तो देते ही नहीं। यह सब हुक़ूक़ दबा लेना है। अगर कोई दिल की ख़ुशी और रज़ामन्दी से माफ़ कर दे तो माफ़ हो सकता है, जिसकी पहचान ऊपर गुज़र चुकी।

सय्यिदी हज़रत हकीमुल-उम्मत मौलाना थानवी क़ुद्दि-स सिर्रुहू ने यह भी फ़रमाया कि इस सिलसिले में नफ़्स की ख़ुशी का ज़िक्र है, दिल की ख़ुशी नहीं। फ़रमाते- इसलिये कि किसी का माल हलाल होने के लिये उसके दिल की ख़ुशी काफ़ी नहीं, जो लोग रिश्वत या सूद देते हैं बहुत से ज़ाहिरी फ़ायदे सोचकर और अ़क्ली तौर पर आमदनी का हिसाब लगाकर ख़र्च कर देते हैं मगर यह ख़ुशी मोतबर नहीं, अगर नफ़्स से पूछा जाये तो वह इस ख़र्चे पर क़तई राज़ी न होगा, इसी वजह से नफ़्स की रज़ामन्दी को फ़ैसला करने वाला क़रार दिया गया।

मस्जिदों व मदरसों या और किसी ज़रूरत के लिये अगर चन्दा किया जाये उसमें भी देने वाले के नफ़्स की रज़ामन्दी व ख़ुशी का ख़्याल रखना लाज़िम है। पंचायत, चौधरी, सरदार, वफ़्द के दबाव से अगर कोई शख़्स चन्दा दे और नफ़्स की ख़ुशी व रज़ामन्दी न हो तो उस चन्दे को काम में लगाना हलाल नहीं, बल्कि उसको वापस किया जायेगा।

इस आयत में जो लफ़्ज़ 'सदुक़ात' आया है, सदक़ा की जमा (बहुवचन) है। "सदुक़तु" और "सुदाक़" औरतों के मेहर को कहा जाता है। मुल्ला अ़ली क़ारी रह. शरह मिश्कात में लिखते हैं:

وَسُمِّیَ بِہٖ لِاَنَّہٗ یظھر بہ صدق میل الرجل الی المرأۃ.

यानी मेहर को सुदाक़ और सदुक़ा इसलिये कहते हैं कि "सदुक़" के इस माद्दे में सच के मायने हैं और मेहर से भी चूँकि शौहर का अपनी बीवी की तरफ़ सच्चा मैलान (लगाव) ज़ाहिर होता है इसलिये इस मुनासबत से मेहर को सुदाक़ कहने लगे।

और 'हनीअन्' और 'मरीअन्' सिफ़त के अलफ़ाज़ हैं। हनीअन् लुग़त में उस चीज़ को कहते हैं जो किसी मशक़्क़त और तकलीफ़ों के बग़ैर हासिल हो जाये। जब यह खाने की सिफ़त के तौर पर इस्तेमाल हो तो इसके मायने ख़ुशगवार खाने के होते हैं, यानी ऐसा खाना जो किसी मशक़्क़त के बग़ैर हलक़ से उतर जाये और आसानी से हज़म होकर बदन का हिस्सा बन जाये।

'मरीअन्' का लफ़्ज़ भी मज़कूरा मायने में इस्तेमाल किया जाता है। (क़ामूस) ग़र्ज़ कि दोनों लफ़्ज़ मायने के एतिबार से क़रीब हैं, इसी वजह से हज़रत थानवी रह. ने इन दोनों लफ़्ज़ों का तर्जुमा "ख़ुशगवार" के अलफ़ाज़ से किया है, और हज़रत शाह अ़ब्दुल-क़ादिर रह. ने "रचता

पचता" के अलफ़ाज़ इस्तेमाल किये हैं।

وَلَا تُؤْتُوا السُّفَهَاءَ أَمْوَالَكُمُ الَّتِي جَعَلَ اللَّهُ لَكُمْ قِيَامًا
وَارْزُقُوهُمْ فِيهَا وَاكْسُوهُمْ وَقُولُوا لَهُمْ قَوْلًا مَّعْرُوفًا ۞ وَابْتَلُوا الْيَتَامَىٰ حَتَّىٰ إِذَا بَلَغُوا النِّكَاحَ فَإِنْ آنَسْتُم مِّنْهُمْ رُشْدًا فَادْفَعُوا إِلَيْهِمْ أَمْوَالَهُمْ ۖ وَلَا تَأْكُلُوهَا إِسْرَافًا وَبِدَارًا أَن يَكْبَرُوا ۚ وَمَن كَانَ غَنِيًّا فَلْيَسْتَعْفِفْ ۖ وَمَن كَانَ فَقِيرًا فَلْيَأْكُلْ بِالْمَعْرُوفِ ۚ فَإِذَا دَفَعْتُمْ إِلَيْهِمْ أَمْوَالَهُمْ فَأَشْهِدُوا عَلَيْهِمْ ۚ وَكَفَىٰ بِاللَّهِ حَسِيبًا ۞

व ला तुअ्तुस्सु-फ़हा-अ अम्वालकुमुल्लती ज-अ़लल्लाहु लकुम् क़ियामंव्-वरज़ुक़ूहुम् फ़ीहा वक्सूहुम् व क़ूलू लहुम् क़ौलम् मअ्रूफ़ा (5) वब्तलुल्-यतामा हत्ता इज़ा ब-लग़ुन्निका-ह फ़-इन् आनस्तुम् मिन्हुम् रुश्दन् फ़द्फ़अू इलैहिम् अम्वालहुम् व ला तअ्कुलूहा इस्राफ़ंव्-व बिदारन् अंय्यक्बरू, व मन् का-न ग़निय्यन् फ़ल्यस्तअ्फ़िफ़् व मन् का-न फ़क़ीरन् फ़ल्यअ्कुल् बिल्मअ्रूफ़ि, फ़-इज़ा द-फ़अ्तुम् इलैहिम् अम्वालहुम् फ़-अश्हिदू अ़लैहिम्, व कफ़ा बिल्लाहि हसीबा (6)	और मत पकड़ा दो बेअ़क़्लों को अपने वे माल जिनको बनाया है अल्लाह ने तुम्हारे गुज़ारे का सबब और उनको उसमें से खिलाते और पहनाते-रहो और कहो उनसे बात माक़ूल। (5) और सुधारते रहो यतीमों को जब तक पहुँचें वे निकाह की उम्र को, फिर अगर देखो उनमें होशियारी तो उनके हवाले करो उनका माल, और खा न जाओ यतीमों का माल ज़रूरत से ज़्यादा और हाजत से पहले कि ये बड़े न हो जायें, और जिसको हाजत न हो तो यतीम के माल से बचता रहे और जो कोई मोहताज हो तो वह खा ले दस्तूर (और रिवाज) के मुवाफ़िक़, फिर जब उनको हवाले करो उनके माल तो गवाह कर लो उस पर, और अल्लाह काफ़ी है हिसाब लेने को। (6)

इन आयतों के मज़मून का पीछे से ताल्लुक़

पहले बयान हुई आयतों में यतीमों के माल उनके सुपुर्द कर देने और औरतों के मेहर उनको अदा करने का हुक्म गुज़र चुका है, जिससे बज़ाहिर यह समझ में आ सकता है कि यतीमों और

औरतों का माल हर हाल में उनके हवाले कर देना चाहिये, चाहे उनको मामलात का सलीक़ा भी न हो और वे मालों की हिफ़ाज़त पर भी क़ादिर न हों। इस ग़लत-फ़हमी को दूर करने के लिये इन आयतों में फ़रमाया कि कम-अक़्लों को माल सुपुर्द न करो और उनकी जाँच करते रहो, जब मालों की हिफ़ाज़त और उनके ख़र्च करने के मौक़ों की सूझ-बूझ उनके अन्दर महसूस होने लगे तो माल उनके सुपुर्द कर दो।

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

(और अगर यतीम बालिग़ हो जायें जिसका तक़ाज़ा है कि माल को उनके सुपुर्द कर दिया जाये जैसा कि आगे आता है। लेकिन कम-अक़्ल हों तो) तुम (उन) कम-अक़्लों को अपने (यानी उनके) वे माल मत दो जिनको अल्लाह तआला ने (ऐसे काम का पैदा किया है कि उनको) तुम्हारे (सब के) लिये ज़िन्दगी का सरमाया बनाया है (मतलब यह कि माल क़द्र की चीज़ है उनको अभी मत दो कि बेक़द्री करके उड़ा देंगे) और उन मालों में (से) उनको खिलाते रहो पहनाते रहो और उनसे माक़ूल बात कहते रहो (यानी उनको तसल्ली देते रहो कि माल तुम्हारा है, तुम्हारी भलाई की वजह से अभी तुम्हारे हाथ में नहीं दिया, ज़रा समझदार हो जाओगे तो तुम ही को दे दिया जायेगा)।

और (जब माल सुपुर्द करने के लिये होशियारी देखना ज़रूरी है तो) तुम यतीमों को (बालिग़ होने से पहले होशियारी व तमीज़दारी की बातों में) आज़मा लिया करो (क्योंकि बालिग़ होने का वक़्त तो माल सौंप देने का वक़्त है तो आज़माईश पहले से चाहिये जैसे कुछ-कुछ सौदा-सुलफ़ उससे मंगा लिया और देखा कि कैसे सलीक़े से ख़रीद कर लाये या कोई चीज़ बेचने के लिये दी और देखा कि उसको किस तरह फ़रोख़्त किया) यहाँ तक कि (उनको आज़माया जाये) कि जब वे निकाह (की उम्र) को पहुँच जाएँ (यानी बालिग़ हो जायें क्योंकि निकाह की पूरी क़ाबलियत बालिग़ होने से होती है) फिर (बालिग़ होने और उनकी परख के बाद) अगर उनमें किसी क़द्र तमीज़ देखो (यानी माल को रखने, संभालने और अच्छे-बुरे काम का सलीक़ा और इन्तिज़ाम उनमें पाओ) तो उनके माल उनके हवाले कर दो (और अगर अभी तक सलीक़ा या इन्तिज़ाम न मालूम हो तो कुछ वक़्त तक और उनके हवाले न किया जाये) और (यतीमों के) उन मालों को ज़रूरत से ज़ायद ख़र्च करके और इस ख़्याल से कि ये बालिग़ हो जाएँगे (फिर उनके हवाले करना पड़ेगा) जल्दी-जल्दी उड़ाकर मत खा डालो, और (अगर इस तरह न उड़ा दें बल्कि थोड़ा खाना चाहें तो इसका यह हुक्म है कि) जो शख़्स (उस माल में से लेने का) ज़रूरतमन्द न हो (यानी उसके पास भी ज़रूरत के मुताबिक़ अपना माल मौजूद है चाहे वह इतना न हो कि शरई तौर पर मालदारी की हद तक पहुँचे) सो वह तो अपने को बिल्कुल (थोड़ा खाने से भी) बचाये, और जो शख़्स ज़रूरतमन्द हो तो वह मुनासिब मिक़्दार से (यानी जिसमें अनिवार्य ज़रूरतें पूरी हो जायें) खा ले (बरत ले)। फिर जब (माल सौंपने की शर्तें यानी बालिग़ होना और समझ व अक़्ल उनके अन्दर आ जाये तो) उनके माल उनके हवाले करने लगो तो (बेहतर है कि) उन (के माल

उनको दे देने) पर गवाह भी कर लिया करो (शायद किसी वक़्त कुछ विवाद हो तो गवाह काम आयें) और (यूँ तो) अल्लाह तआ़ला ही हिसाब लेने वाले काफ़ी हैं (अगर बददियानती न की हो तो गवाहों का न होना भी मुज़िर नहीं, क्योंकि असल हिसाब जिनके मुताल्लिक़ है वे तो उसकी सफ़ाई जानते हैं और अगर बददियानती की है तो गवाहों का होना कोई फ़ायदेमन्द नहीं, क्योंकि जिनसे हिसाब का साबक़ा है वे उसका ग़लत हरकत में लिप्त होना जानते हैं, सिर्फ़ ज़ाहिरी इन्तिज़ाम के लिये गवाहों का होना मस्लेहत की बात है)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

माल ज़िन्दगी का सरमाया है और इसकी हिफ़ाज़त लाज़िमी है

इन आयतों में एक तरफ़ तो माल की अहमियत और इनसानी गुज़ारे में इसका बड़ा दख़ल होना बयान फ़रमाकर इसकी हिफ़ाज़त का तक़ाज़ा व जज़्बा दिलों में पैदा किया गया, दूसरी तरफ़ मालों की हिफ़ाज़त से संबन्धित एक आम कोताही की इस्लाह (सुधार) फ़रमाई गई, वह यह कि बहुत से आदमी तबई मुहब्बत से मग़लूब होकर नातजुर्बेकार नाबालिग़ बच्चों और नावाक़िफ़ औ़रतों को अपने माल हवाले कर देते हैं, जिसका लाज़िमी नतीजा माल की बरबादी और बहुत जल्द ग़ुर्बत व तंगदस्ती होती है।

औ़रतों, बच्चों और कम-अ़क़्लों को माल सुपुर्द न किये जायें

मुफ़स्सिरे क़ुरआन हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु बयान फ़रमाते हैं कि क़ुरआन मजीद की इस आयत में यह हिदायत फ़रमाई कि अपना पूरा माल कम-अ़क़्ल बच्चों और औ़रतों के सुपुर्द करके ख़ुद उनके मोहताज न बनो, बल्कि अल्लाह तआ़ला ने तुमको हाकिम और मुन्तज़िम बनाया है, तुम माल को ख़ुद अपनी हिफ़ाज़त में रखकर ज़रूरत के अनुसार उनके खिलाने पहनाने में ख़र्च करते रहो, और अगर वे माल को अपने क़ब्ज़े में लेने का मुतालबा भी करें तो उनको माक़ूल बात कहकर समझा दो जिसमें उनका दिल भी न टूटे और माल भी ज़ाया न होने पाये, जैसे यह कह दो कि यह सब तुम्हारे ही लिये रखा है, ज़रा तुम होशियार हो जाओगे तो तुम्हें दे दिया जायेगा।

हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु की इस तफ़सीर पर आयत का मफ़्हूम (मतलब) उन सब औ़रतों, बच्चों और कम-अ़क़्ल नातजुर्बेकार लोगों को शामिल है जिनको माल सुपुर्द कर देने पर माल में नुक़सान का ख़तरा है, चाहे वे अपने बच्चे हों या यतीम बच्चे, और चाहे वह माल उन बच्चों और यतीमों का अपना हो या वलियों और सरपरस्तों का हो। यही तफ़सीर हज़रत अबू मूसा अश्अ़री रज़ियल्लाहु अ़न्हु से भी मन्क़ूल है और इमामे तफ़सीर हाफ़िज़ तबरी रह. ने भी इसी को इख़्तियार किया है।

पिछली और अगली आयतों का मज़मून अगरचे इस हुक्म को भी यतीम बच्चों के साथ

ख़ास करने का रुझान पैदा कर सकता है लेकिन अलफ़ाज़ का आ़म होना अपनी जगह है, जिसमें यतीम और ग़ैर-यतीम सब बच्चे दाख़िल हैं और शायद इस जगह 'अमवालकुम' (तुम्हारे माल) फ़रमाने में यही हिक्मत हो कि वह अपने माल को भी शामिल है और यतीमों के मालों को भी, जब तक उनमें होशियारी न आये इनकी ज़िम्मेदारी में होने की वजह से गोया इन्हीं के माल हैं। और इससे पहली आयत में:

وَاٰتُوا الْيَتٰمٰى اَمْوَالَهُمْ

(दे डालो यतीमों को उनके माल) फ़रमाकर असल हक़ीक़त को वाज़ेह भी कर दिया गया है कि यतीमों के माल उन्हीं को देने हैं, जिसके बाद कोई मुग़ालता बाक़ी नहीं रह सकता।

माल की हिफ़ाज़त ज़रूरी चीज़ है और उसको ज़ाया करना गुनाह है। अपने माल की हिफ़ाज़त करते हुए कोई शख़्स जान से मारा जाये तो शहीद है जैसा कि जान की हिफ़ाज़त करते हुए क़त्ल होने पर शहादत के अज्र का वायदा है। नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमायाः

مَنْ قُتِلَ دُوْنَ مَالِهٖ فَهُوَ شَهِيْدٌ. (بخاری ص ۲۳۷ جلد ۱، مسلم ص ۸۱ جلد ۱)

"अपने माल की हिफ़ाज़त करते हुए जो शख़्स मारा जाये वह शहीद है (यानी सवाब के एतिबार से शहीदों में शुमार है)।"

और इरशाद फ़रमायाः

نِعِمَّا بِالْمَالِ الصَّالِحِ لِلرَّجُلِ الصَّالِحِ. (مشکوٰۃ ص ۳۲۶)

"नेक आदमी के लिये उसका अच्छा और पाकीज़ा माल ज़िन्दगी का बेहतरीन सरमाया है।"

एक जगह इरशाद फ़रमायाः

لَا بَاسَ بِالْغِنٰى لِمَنِ اتَّقَى اللّٰهَ عَزَّوَجَلَّ. (مشکوٰۃ ص ۴۵۱)

"जो शख़्स अल्लाह तआ़ला से डरता हो उसकी मालदारी में दीन का कोई हर्ज नहीं।"

आख़िर की इन दोनों हदीसों में यह बात बताई है कि नेक और मुत्तक़ी आदमी का अपने पास माल रखना उसके हक़ में नुक़सानदेह नहीं है, क्योंकि ऐसा शख़्स अल्लाह से ख़ौफ़ खाते हुए अपने माल को गुनाहों में ख़र्च करने से बचेगा। बहुत से औलिया-अल्लाह और सूफ़िया व बुज़ुर्गों से जो माल की बुराई मन्क़ूल है वह उन्हीं लोगों के हक़ में है जो गुनाहों में ख़र्च करके अपने कमाये हुए माल को आख़िरत के अ़ज़ाब का ज़रिया बनाते हैं। और चूँकि इनसान तबई तौर पर मालदार होने के बाद फ़ुज़ूलख़र्ची और दूसरे गुनाहों से महफ़ूज़ रहने की फ़िक्र छोड़ देता है इसलिये माल से दूर रहने को अच्छा समझा गया है, ज़रूरत के मुताबिक़ थोड़ा बहुत कमाया और अल्लाह का नाम लिया और माल के हिसाब से अपनी जान बचाई, यह पुराने बुज़ुर्गों का तर्ज़ था, मौजूदा दौर में लोगों में दीन व ईमान की अहमियत ज़्यादा नहीं है, दुनियावी साज़ व सामान की तरफ़ ज़्यादा मुतवज्जह होते हैं और मामूली सी तकलीफ़ ही नहीं बल्कि ज़ाहिरी फ़ैशन की ख़िलाफ़वर्ज़ी हो जाने पर दीन छोड़ने को तैयार हो जाते हैं, इसलिये ऐसे लोगों के लिये हलाल

माल कमाने और उसको महफ़ूज़ रखने की ज़्यादा अहमियत है। इसी तरह के लोगों के लिये हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमायाः

كَادَالْفَقْرُ اَنْ يَّكُوْنَ كُفْرًا. (مشكوٰة ص ٤٢٩)

"यानी तंगदस्ती इनसान को कई बार काफ़िर बना सकती है।"

हज़रत सुफ़ियान सौरी रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने इसका ख़ुलासा करते हुए फ़रमायाः

كان المال فيما مضٰى يكره فاما اليوم فهو تُرس المؤمن.

यानी "पहले ज़माने में माल को पास रखना अच्छा नहीं समझा जाता था लेकिन आज यह माल मोमिन की ढाल है।"

साथ ही उन्होंने फ़रमायाः

مَنْ كَانَ فِيْ يَدِهٖ مِنْ هٰذِهٖ شَيْئًا فَلْيُصْلِحْهُ فَاِنَّهٗ زَمَانٌ اِنِ احْتَاجَ كَانَ اَوَّلَ مَنْ يَّبْذِلُ دِيْنَهٗ.

"यानी जिसके पास दराहिम व दीनार (सोने चाँदी के सिक्के अर्थात् माल) में से कुछ मौजूद हो उसे चाहिये कि उस माल को मुनासिब तरीक़े पर काम में लाये, क्योंकि यह वह ज़माना है कि अगर कुछ ज़रूरत पेश आ गई तो इनसान उस ज़रूरत को पूरी करने के लिये सबसे पहले अपने दीन ही को ख़र्च करेगा।" मतलब यह है कि ज़रूरत पूरे करने की अहमियत दीन पर चलने से ज़्यादा हो गई है। (मिश्कात पेज 491)

नाबालिग़ों की समझ और क़ाबलियत जाँचने का हुक्म

पहली आयत में जब यह मालूम हो गया कि जब तक मामलात में नाबालिग़ों की होशियारी साबित न हो जाये उस वक़्त तक उनको माल न सौंपे जायें, इसलिये दूसरी आयत में बच्चों की तालीम व तरबियत का इन्तिज़ाम और फिर इम्तिहान लेकर उनकी सलाहियत मालूम करने के अहकाम दिये गये। इरशाद हुआः

وَابْتَلُوا الْيَتٰمٰى حَتّٰٓى اِذَا بَلَغُوا النِّكَاحَ.

यानी "बालिग़ होने से पहले ही छोटे-छोटे मामूली मामलात ख़रीद व बेच के उनके सुपुर्द करके उनकी सलाहियत का इम्तिहान लेते रहो, यहाँ तक कि जब वे निकाह के क़ाबिल यानी बालिग़ हो जायें" तो अब ख़ास तौर से इसका अन्दाज़ा लगाओ कि वे अपने मामलात में होशियार हो गये या नहीं, जब होशियारी महसूस कर लो तब उनके माल उनके सुपुर्द कर दो।

ख़ुलासा यह कि बच्चों की मख़्सूस तबीयत और उनमें अ़क़्ल व होश के परवान चढ़ने के एतिबार से उनके तीन दर्जे कर दिये गये- एक बालिग़ होने से पहले, दूसरा बालिग़ होने के बाद, तीसरा होशियारी (समझ व अ़क़्ल आने) के बाद। बालिग़ होने से पहले बच्चों के सरपरस्तों को यह हुक्म है कि उनकी तालीम व तरबियत की कोशिश करें, मामलात में उनको होशियार करने के लिये छोटे-छोटे मामलात ख़रीद व बेच के उनके हाथ से करायें। आयत में 'वब्तलुल-यतामा' (आज़माते रहो सुधारते रहो) का यही मतलब है। इससे इमामे आज़म अबू हनीफ़ा रह. ने यह

मसला निकाला है कि नाबालिग़ बच्चे जो ख़रीद व बेच के मामलात अपने वली की इजाज़त से करें वो सही और नाफ़िज़ (लागू) हैं।

दूसरा हुक्म यह है कि जब वे बालिग़ और निकाह के क़ाबिल हो जायें तो अब मामलात और तजुर्बे के एतिबार से उनके हालात की जाँच करो, अगर देखो कि वे अपने नफ़े-नुक़सान को समझने लगे हैं और मामलात सलीक़े से करते हैं तो उनके माल उनके हवाले कर दो।

बालिग़ होने की उम्र

इस आयत में जहाँ बालिग़ होने का हुक्म बयान फ़रमाया गया वहाँ क़ुरआने करीम ने इस बारे में कि बच्चे का बालिग़ होना किस उम्र में समझा जायेगा 'फ़-इज़ा ब-लग़ुन्निका-ह' फ़रमाकर इसकी तरफ़ इशारा कर दिया कि बालिग़ होना असल में किसी उम्र के साथ मुक़ैयद नहीं बल्कि उसका मदार उन आसार (निशानियों) पर है जो बालिग़ों को पेश आते हैं। उन निशानियों से जिस वक़्त भी वे निकाह के क़ाबिल हो जायें तो बालिग़ समझे जायेंगे चाहे उम्र तेरह चौदह साल ही की हो, अलबत्ता अगर किसी बच्चे में बालिग़ होने की निशानियाँ ज़ाहिर ही न हों तो उम्र के एतिबार से उसको बालिग़ क़रार दिया जायेगा जिसमें फ़ुक़हा का इख़्तिलाफ़ (मतभेद) है। कुछ हज़रात ने लड़के के लिये अट्ठारह साल और लड़की के लिये सत्रह साल मुक़र्रर किये हैं, और कुछ ने दोनों के लिये पन्द्रह साल क़रार दिये। इमामे आज़म अबू हनीफ़ा रह. के मज़हब में फ़तवा इस क़ौल पर है कि लड़का और लड़की दोनों पन्द्रह साल की उम्र पूरी होने पर शरई तौर पर बालिग़ क़रार दिये जायेंगे, चाहे बालिग़ होने के निशानात पाये जायें या नहीं।

समझदार होना किस तरह मालूम होगा? इस संबन्ध में 'तुम उनमें होशियारी देखो' की वज़ाहत

क़ुरआन का हुक्म यह है कि जब तुम उनमें होशियारी महसूस करो उस वक़्त उनके माल उनको सुपुर्द कर दो। इस होशियारी की क्या मियाद है? क़ुरआन मजीद ने उस आख़िरी मियाद का कोई ख़ुलासा नहीं फ़रमाया, इसलिये कुछ फ़ुक़हा (मसाईल के माहिर उलेमा) इस तरफ़ गये कि जब तक पूरी होशियारी महसूस न की जाये उस वक़्त तक उनके माल उनके सुपुर्द न किये जायेंगे, बल्कि पहले ही की तरह वली की हिफ़ाज़त व अमानत में रहेंगे, चाहे सारी उम्र इसी हालत में गुज़र जाये।

और इमामे आज़म अबू हनीफ़ा रहमतुल्लाहि अ़लैहि की तहक़ीक़ यह है कि इस जगह होशियारी न होने से वह मुराद है जो बचपन के असर से हो और बालिग़ होने के दस साल बाद तक बचपन का असर ख़त्म हो जाता है, इसलिये पन्द्रह साल बालिग़ होने की उम्र और दस साल होशियारी व समझ के यही कुल पच्चीस साल की उम्र हो जाने पर वह होशियारी व समझदारी ज़रूर हासिल होगी जिसके हासिल होने में बचपन और कम-उम्री बाधा थी। और क़ुरआने करीम

ने लफ़्ज़ 'रुश्द' नकिरा (बिना ख़ास किये) लाकर इस तरफ़ इशारा भी कर दिया है कि मुकम्मल होशियारी और अ़क़्लमन्दी शर्त नहीं, किसी क़द्र होशियारी भी इसके लिये काफ़ी है कि उनके माल उनको दे दिये जायें, इसलिये पच्चीस साल तक इन्तिज़ार करके अगर मुकम्मल होशियारी न भी आये तब भी उनके माल उनको दे दिये जायेंगे। रही मुकम्मल समझदारी और होशियारी सो यह कुछ लोगों में उम्र भर नहीं आती, वे हमेशा सीधे भोले रहते हैं। इसकी वजह से उनको अपने मालों से मेहरूम न किया जायेगा। हाँ अगर कोई बिल्कुल पागल और मजनूँ ही हो तो उसका हुक्म अलग है कि वह हमेशा नाबालिग़ बच्चों के हुक्म में रहता है और उसके माल कभी उसके हवाले न किये जायेंगे, जब तक उसका जुनून ख़त्म न हो जाये, अगरचे सारी उम्र उस जुनून में गुज़र जाये।

यतीमों के माल बेजा ख़र्च करने की मनाही

जैसा कि मालूम हो चुका है, इस आयत में इस बात की हिदायत दी गई है कि यतीमों के माल उनको उस वक़्त तक हवाले न करो जब तक उनमें किसी क़द्र होशियारी और तजुर्बा न आ जाये, और इसके लिये ज़ाहिर है कि मज़ीद कुछ समय तक इन्तिज़ार करना होगा।

इस हालत में यह संभावना थी कि यतीम के वलियों की तरफ़ से कोई ऐसी ज़्यादती हो जिससे यतीम का नुक़सान हो, इसलिये आगे इस आयत में इरशाद फ़रमाया:

وَلَا تَأْكُلُوْهَآ اِسْرَافًا وَّبِدَارًا اَنْ يَّكْبَرُوْا

यानी "उन मालों को ज़रूरत से ज़्यादा उठाकर और इस ख़्याल से कि ये बालिग़ हो जायेंगे तो इनको देना पड़ेगा जल्दी-जल्दी उड़ाकर मत खा डालो।" इसमें यतीम के वलियों (सरपरस्तों) को दो चीज़ों से रोका गया है- एक उनके माल में इस्राफ़ यानी ज़रूरत से ज़्यादा ख़र्च करने से दूसरे इस बात से कि उनका माल ज़रूरत पेश आने से पहले जल्द-जल्द ख़र्च करने लगें, इस ख़्याल से कि जल्दी ही ये बड़े हो जायेंगे तो इनका माल इनको देना पड़ेगा, हमारा इख़्तियार ख़त्म हो जायेगा।

यतीम का वली उसके माल में से ज़रूरत के हिसाब से कुछ ले सकता है

आयत के आख़िर में इसका उसूल व क़ानून बयान फ़रमाया कि जो शख़्स किसी यतीम बच्चे की तरबियत और उसके माल की हिफ़ाज़त में अपना वक़्त और मेहनत ख़र्च करता है, क्या उसको यह हक़ है कि यतीम के माल में से अपना मेहनताना (सेवा करने का हक़) कुछ ले ले? चुनाँचे फ़रमाया:

وَمَنْ كَانَ غَنِيًّا فَلْيَسْتَعْفِفْ

यानी जो शख़्स ज़रूरतमन्द न हो, अपनी ज़रूरत की पूर्ति किसी दूसरे ज़रिये से कर सकता हो उसको चाहिये कि यतीम के माल में से अपना ख़िदमत का हक़ न लिया करे, क्योंकि यह ख़िदमत उसके ज़िम्मे फ़र्ज़ है, इसका बदला लेना जायज़ नहीं। फिर फ़रमायाः

وَمَنْ كَانَ فَقِيْرًا فَلْيَأْكُلْ بِالْمَعْرُوْفِ

यानी यतीम का जो वली फ़क़ीर और ज़रूरतमन्द हो और दूसरा कोई ज़रिया (माध्यम और साधन) गुज़ारे और रोज़ी कमाने का न रखता हो, वह यतीम के माल में से एक मुनासिब मात्रा खा सकता है जिससे आवश्यक ज़रूरतें पूरी हो जायें।

माल सुपुर्द करते वक़्त गवाह बनाना

आख़िर में इरशाद फ़रमायाः

فَاِذَا دَفَعْتُمْ اِلَيْهِمْ اَمْوَالَهُمْ فَاَشْهِدُوْا عَلَيْهِمْ وَكَفٰى بِاللّٰهِ حَسِيْبًاo

यानी "जब आज़माईश के बाद यतीमों के माल उनके सुपुर्द करने लगो तो चन्द मोतबर और नेक लोगों को गवाह बना लिया करो, ताकि आईन्दा किसी विवाद और झगड़े की सूरत पैदा न हो, और याद रखो कि अल्लाह तआ़ला के हिसाब में हर चीज़ है।"

औक़ाफ़ और दूसरी मुल्की व मिल्ली सेवाओं का मुआवज़ा

आयत के मज़मून से एक फ़िक़्ही ज़ाब्ता और उसूल मालूम हो गया कि जो लोग औक़ाफ़ (वक़्फ़ की सम्पत्ति) के निगराँ हैं या मस्जिदों व मदरसों के प्रबन्धक हैं या मुस्लिम हुकूमतों के इदारों के ज़िम्मेदार हैं, या ऐसी ही दूसरी मुल्की और मिल्ली सेवायें जिनका अन्जाम देना फ़र्ज़े किफ़ाया है उन पर कार्यरत हैं, उन हज़रात के लिये भी अच्छा और बेहतर यह है कि अगर अपने पास इतना सरमाया हो और वे अपने बच्चों के ज़रूरी ख़र्चे पूरे कर सकते हों तो उन इदारों और हुकूमत के बैतुल-माल (सरकारी ख़ज़ाने) से कुछ न लें, लेकिन अगर अपने पास गुज़ारे के लिये माल मौजूद न हो और कमाने का समय इन कामों में लग जाता हो तो ज़रूरत के मुताबिक़ इन इदारों (संस्थाओं) से माल ले लेने का इख़्तियार है, मगर ज़रूरत के मुताबिक़ का लफ़्ज़ ध्यान में रहे। बहुत से लोग ज़ाब्ते के तौर पर काग़ज़ी ख़ानापुरी के लिये अपनी तन्ख़्वाह के तौर पर कुछ मुक़र्रर कर लेते हैं, लेकिन विभिन्न तरीक़ों से उससे कहीं ज़्यादा बेएहतियाती के साथ अपनी ज़ात पर और बाल-बच्चों पर ख़र्च करते चले जाते हैं, इस बेएहतियाती को रोकने के लिये सिवाय ख़ौफ़े इलाही के कुछ नहीं, जिसकी तरफ़ आयत के आख़िरी टुकड़े में 'व कफ़ा बिल्लाहि हसीबा' फ़रमाकर तमाम अ़वाम व ख़्वास को तवज्जोह दिलाई गई है। जिसे अल्लाह तआ़ला के मुहासबे (पूछगछ) का ख़्याल हो वही नाजायज़ माल से बच सकता है। और अल्लाह ही है तौफ़ीक़ से नवाज़ने वाला।

لِلرِّجَالِ نَصِيبٌ مِّمَّا تَرَكَ الْوَالِدٰنِ وَالْاَقْرَبُوْنَ ۠ وَ
لِلنِّسَآءِ نَصِيبٌ مِّمَّا تَرَكَ الْوَالِدٰنِ وَالْاَقْرَبُوْنَ مِمَّا قَلَّ مِنْهُ اَوْ كَثُرَ ۭ نَصِيبًا مَّفْرُوْضًا ۝ وَاِذَا
حَضَرَ الْقِسْمَةَ اُولُوا الْقُرْبٰى وَالْيَتٰمٰى وَالْمَسٰكِيْنُ فَارْزُقُوْهُمْ مِّنْهُ وَقُوْلُوْا لَهُمْ قَوْلًا مَّعْرُوْفًا ۝
وَلْيَخْشَ الَّذِيْنَ لَوْ تَرَكُوْا مِنْ خَلْفِهِمْ ذُرِّيَّةً ضِعٰفًا خَافُوْا عَلَيْهِمْ ۠ فَلْيَتَّقُوا اللّٰهَ وَلْيَقُوْلُوْا قَوْلًا سَدِيْدًا ۝
اِنَّ الَّذِيْنَ يَاْكُلُوْنَ اَمْوَالَ الْيَتٰمٰى ظُلْمًا اِنَّمَا يَاْكُلُوْنَ فِيْ بُطُوْنِهِمْ نَارًا ۭ وَسَيَصْلَوْنَ سَعِيْرًا ۝

लिर्रिजालि नसीबुम्-मिम्मा त-रकल्-वालिदानि वल्-अक्रबू-न व लिन्निसा-इ नसीबुम्-मिम्मा त-रकल्-वालिदानि वल्-अक्रबू-न मिम्मा कल्-ल मिन्हु औ कसु-र, नसीबम् मफ्रूजा (7) व इजा ह-ज़रल् क़िस्म-त उलुल्क़ुर्बा वल्-यतामा वल्मसाकीनु फ़र्ज़ुक़ूहुम् मिन्हु व क़ूलू लहुम् कौलम् मअ्रूफ़ा (8) वल्यख़्शल्लज़ी-न लौ त-रकू मिन् ख़ल्फ़िहिम् ज़ुर्रिय्यतन् ज़िआफ़न् ख़ाफ़ू अ़लैहिम् फ़ल्यत्तक़ुल्ला-ह वल्-यक़ूलू क़ौलन् सदीदा (9) इन्नल्लज़ी-न यअ्कुलू-न अम्वालल्-यतामा ज़ुल्मन् इन्नमा यअ्कुलू-न फ़ी बुतूनिहिम् नारन्, व स-यस्लौ-न सअ़ीरा (10) ❁	मर्दों का भी हिस्सा है उसमें जो छोड़ मरें माँ-बाप और क़राबत वाले और औरतों का भी हिस्सा है उसमें जो छोड़ मरें माँ-बाप और क़राबत वाले, थोड़ा हो या बहुत हो हिस्सा मुक़र्रर किया हुआ है। (7) और जब हाज़िर हों तक़सीम के वक़्त रिश्तेदार और यतीम और मोहताज तो उनको कुछ दो उसमें से और कह दो उनसे बात माक़ूल। (8) और चाहिए कि डरें वे लोग कि अगर छोड़ी है अपने पीछे ज़ईफ़ (छोटी और कमज़ोर) औलाद तो उन पर अन्देशा करें (यानी हमारे बाद ऐसा ही हाल उनका होगा) तो चाहिए कि डरें अल्लाह से और कहें सीधी बात। (9) जो लोग कि खाते हैं यतीमों का माल नाहक़ वे लोग अपने पेटों में आग ही भर रहे हैं, और जल्द ही वे दाख़िल होंगे आग में। (10) ❁

इन आयतों का पीछे के मज़मून से ताल्लुक़

सूरः निसा में पहले ही आम इनसानी हुक़ूक़, ख़ासकर घरेलू और समाजी ज़िन्दगी से

मुताल्लिक़ हुक़ूक़ का बयान चल रहा है। इससे पहली आयत में यतीमों के हुक़ूक़ का बयान था, मज़कूरा चार आयतों में भी औरतों और यतीमों के ख़ास हुक़ूक़ जो विरासत से संबन्धित हैं, का बयान है।

पहली आयत में जाहिलीयत (इस्लाम से पहले ज़माने) की इस रस्म को बातिल कहा गया है कि उस ज़माने में औरतों को मीरास का हक़दार ही नहीं माना जाता था। इस आयत ने उनको अपने शरई हिस्से का मुस्तहिक़ क़रार देकर उनके हक़ में कमी करने और उनको नुक़सान पहुँचाने की सख़्त मनाही की। फिर चूँकि मीरास के हक़दारों का ज़िक्र आया था और ऐसे मौक़े पर तक़सीम के वक़्त ग़ैर-मुस्तहिक़ फ़क़ीर और यतीम बच्चे (यानी जिनका मीरास में हिस्सा न हो) भी हाज़िर हो जाया करते हैं तो दूसरी आयत में उनके साथ अच्छे सुलूक और इनायत व मेहरबानी करने का हुक्म इरशाद फ़रमाया, लेकिन यह हुक्म वजूबी नहीं बल्कि इस्तेहबाबी है (यानी हिस्सा न रखने वाले ग़रीबों यतीमों के साथ रियायत और उनकी ख़िदमत का मामला लाज़िमी नहीं बल्कि अच्छा है, अगर ऐसा कर लें तो बड़े सवाब का काम है)।

इसके बाद तीसरी और चौथी आयत में भी यतीमों के अहकाम के सिलसिले में इसी मज़मून की ताकीद है।

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

मर्दों के लिए भी (चाहे वे छोटे हों या बड़े) हिस्सा (मुक़र्रर) है उस चीज़ में से जिसको (उन मर्दों के) माँ-बाप और (या दूसरे) बहुत नज़दीक के रिश्तेदार (अपने मरने के वक़्त) छोड़ जाएँ और (इसी तरह) औरतों के लिए भी (चाहे छोटी हों या बड़ी) हिस्सा (मुक़र्रर) है उस चीज़ में से जिसको (उन औरतों के) माँ-बाप और (या दूसरे) बहुत नज़दीक के रिश्तेदार (अपने मरने के वक़्त) छोड़ जाएँ। चाहे वह (छोड़ी हुई) चीज़ थोड़ी हो या ज़्यादा हो (सब में से मिलेगा और) हिस्सा (भी ऐसा जो) निश्चित तौर पर मुक़र्रर हो। और जब (वारिसों में छोड़े हुए माल के) तक़सीम होने के वक़्त (ये लोग) मौजूद हों (यानी दूर के) रिश्तेदार (जिनका मीरास में हक़ नहीं) और यतीम और ग़रीब लोग (इस उम्मीद से कि शायद हमको भी कुछ मिल जाये, रिश्तेदार तो मुम्किन है कि हक़दार बन जाने के गुमान से और दूसरे लोग ख़ैर-ख़ैरात के तौर पर मिल जाने के) तो उनको भी उस (छोड़े हुए माल) में (जिस क़द्र बालिग़ों का है उसमें) से कुछ दे दो और उनके साथ अच्छे अन्दाज़ (और नर्मी) से बात करो (वह बात रिश्तेदारों से तो यह है कि समझा दो कि शरीअ़त के क़ानून से तुम्हारा हिस्सा इसमें नहीं है, हम माज़ूर हैं, और दूसरों से यह कि देकर एहसान न जतलाओ)।

और (यतीमों के मामले में) ऐसे लोगों को डरना चाहिए कि अगर अपने बाद छोटे-छोटे बच्चे छोड़कर (मर) जायें तो उन (बच्चों) की उन (लोगों) को फ़िक्र हो (कि देखिये इनको कोई तकलीफ़ व नुक़सान न दे तो ऐसा ही दूसरे के बच्चों के लिये भी ख़्याल रखना चाहिये कि हम उनको तकलीफ़ व नुक़सान न दें) सो (इस बात को सोचकर) उन लोगों को चाहिए कि (यतीमों

के मामले में) अल्लाह (के हुक्म की मुख़ालफ़त) से डरें (यानी अपने फ़ेल से तकलीफ़ व नुक़सान न पहुँचायें) और (क़ौल से भी उनसे) मौक़े की बात कहें (इसमें तसल्ली और दिलजोई की बात भी आ गई और तालीम व अदब सिखाने की बात भी आ गई। ग़र्ज़ कि उनके माल और जान दोनों की इस्लाह करें) बेशक जो लोग यतीमों का माल बिना हक़दार होते हुए खाते (बरतते) हैं, और कुछ नहीं वे अपने पेट में (दोज़ख़ की) आग (के अंगारे) भर रहे हैं (यानी अन्जाम उस खाने का यह होने वाला है) और (इस अन्जाम के सामने आने में कुछ ज़्यादा देर नहीं क्योंकि) जल्द ही (दोज़ख़ की) जलती हुई (आग) में दाख़िल होंगे (वहाँ यह अन्जाम नज़र आयेगा)।

मआरिफ़ व मसाईल

माँ-बाप और दूसरे क़रीबी रिश्तेदारों के माल में मीरास का हक़

इस्लाम से पहले अ़रब और अ़जम (अ़रब से बाहर) की क़ौमों में इनसान के कमज़ोर वर्ग यानी यतीम बच्चे और नाज़ुक वर्ग यानी औरतें हमेशा तरह-तरह के ज़ुल्म व सितम का शिकार रहे हैं। पहले तो इनका कोई हक़ ही तस्लीम नहीं किया जाता था और अगर कोई हक़ मान भी लिया गया तो मर्दों से उसका वसूल करना और उसकी सुरक्षा किसी की क़ुदरत में न थी।

इस्लाम ने सबसे पहले इनको हुक़ूक़ दिलाये, फिर उन हुक़ूक़ की हिफ़ाज़त का मुकम्मल इन्तिज़ाम किया। विरासत के क़ानून में भी दुनिया की आ़म क़ौमों ने समाज के इन दोनों कमज़ोर वर्गों को इनके फ़ितरी और वाजिबी (अनिवार्य) हुक़ूक़ से मेहरूम किया हुआ था।

अ़रब वालों ने तो उसूल ही यह बना लिया था कि विरासत का हक़दार सिर्फ़ वह है जो घोड़े पर सवार हो और दुश्मनों का मुक़ाबला करके उनका माले ग़नीमत जमा करे।

(तफ़सीर रूहुल-मआ़नी पेज 210 जिल्द 4)

ज़ाहिर है कि ये दोनों वर्ग कमज़ोर बच्चे और औ़रतें इस उसूल पर नहीं आ सकतीं, इसलिये उनके विरासती उसूल की रू से सिर्फ़ जवान बालिग़ लड़का ही वारिस हो सकता था, लड़की बिल्कुल ही वारिस न समझी जाती थी चाहे बालिग़ हो या नाबालिग़, और लड़का भी अगर नाबालिग़ होता तो वह भी मीरास का हक़दार न था।

रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के मुबारक दौर में एक वाक़िआ़ पेश आया कि औस बिन साबित रज़ियल्लाहु अ़न्हु का इन्तिक़ाल हुआ और दो लड़कियाँ एक लड़का नाबालिग़ और एक बीवी वारिस छोड़े, मगर अ़रब के पुराने दस्तूर के मुताबिक़ उनके चचाज़ाद भाईयों ने आकर मरहूम के पूरे माल पर क़ब्ज़ा कर लिया और औलाद और बीवी में से किसी को कुछ न दिया, क्योंकि उनके नज़दीक औ़रतें (यानी स्त्री वर्ग) तो बिल्कुल ही मीरास की हक़दार (पात्र) न समझी जाती थीं चाहे बालिग़ हो या नाबालिग़, इसलिये बीवी और दोनों लड़कियाँ तो यूँ भी मेहरूम हो गईं और लड़का नाबालिग़ होने की वजह से मेहरूम कर दिया गया, लिहाज़ा पूरे माल के वारिस दो चचाज़ाद भाई हो गये।

औस बिन साबित रज़ियल्लाहु अ़न्हु की बेवा ने चाहा कि ये चचाज़ाद भाई जो कि पूरे तर्के (छोड़े हुए माल) पर क़ब्ज़ा कर रहे हैं तो उन दोनों लड़कियों से शादी भी कर लें ताकि उनकी फ़िक्र से फ़ारिग़ हो, मगर उन्होंने यह भी क़ुबूल न किया। तब औस बिन साबित रज़ियल्लाहु अ़न्हु की बेवा ने रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से हाल बयान किया और अपनी और अपने बच्चों की बेकसी व मेहरूमी की शिकायत की। उस वक़्त तक चूँकि क़ुरआने हकीम में मीरास की आयत नाज़िल न हुई थी इसलिये आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़ौरन ही जवाब न दिया, रुक गये। आपको इत्मीनान था कि अल्लाह की वही के ज़रिये इस ज़ालिमाना क़ानून को ज़रूर बदला जायेगा। चुनाँचे उसी वक़्त यह आयत नाज़िल हुई:

لِلرِّجَالِ نَصِيبٌ مِّمَّا تَرَكَ الْوَالِدَانِ وَالْأَقْرَبُونَ وَلِلنِّسَاءِ نَصِيبٌ مِّمَّا تَرَكَ الْوَالِدَانِ وَالْأَقْرَبُونَ مِمَّا قَلَّ مِنْهُ أَوْ كَثُرَ نَصِيبًا مَّفْرُوضًا

(यानी यही आयत नम्बर 7 जिसकी तफ़सीर बयान हो रही है) और इसके बाद विरासत की दूसरी आयत नाज़िल हुई जिसमें हिस्सों की तफ़सीलात हैं और इस सूरत का दूसरा रुकूअ़ उन तफ़सीलात पर मुश्तमिल है। हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने क़ुरआनी अहकाम के मुताबिक़ छोड़े हुए तमाम माल का आठवाँ हिस्सा बीवी को देकर बाक़ी माल मरहूम के लड़के और लड़कियों को इस तरह तक़सीम कर दिया कि उसका आधा लड़के को और आधे में दोनों लड़कियाँ बराबर की शरीक रहीं और चचाज़ाद भाई औलाद के मुक़ाबले में चूँकि दूर के रिश्तेदार थे इसलिये उनको मेहरूम किया गया। (तफ़सीर रूहुल-मआ़नी)

मीरास का हक़दार होने का ज़ाब्ता

इस आयत ने विरासत के चन्द अहकाम के तहत क़ानूने विरासत का ज़ाब्ता (उसूल व नियम) बयान फ़रमा दिया है:

مِمَّا تَرَكَ الْوَالِدَانِ وَالْأَقْرَبُونَ

इन दो लफ़्ज़ों ने विरासत के दो बुनियादी उसूल बतला दिये- एक पैदाईश का रिश्ता जो औलाद और माँ-बाप के बीच है और जिसको लफ़्ज़ **वालिदानि** से बयान किया गया है। दूसरे आ़म रिश्तेदार जो लफ़्ज़ **'अक़्रबून'** का मफ़्हूम है। और सही यह है कि लफ़्ज़ 'अक़्रबून' हर क़िस्म की क़राबत और रिश्तेदारी को शामिल है, चाहे वह रिश्ता आपसी विलादत का हो जैसे औलाद और माँ-बाप में, या दूसरी तरह का जैसे आ़म ख़ानदानी रिश्तों में, या वे रिश्ते जो मियाँ-बीवी के ताल्लुक़ से पैदा हुए हैं, लफ़्ज़ "अक़्रबून" सब पर हावी है। लेकिन माँ-बाप को उनकी अहमियत की वजह से विशेष तौर पर अलग कर दिया गया। फिर इस लफ़्ज़ ने यह भी बतला दिया कि सिर्फ़ रिश्तेदारी विरासत के लिये काफ़ी नहीं बल्कि रिश्ते में अक़्रब (क़रीबी) होना शर्त है। क्योंकि अगर ज़्यादा क़रीबी होने को मेयारी शर्त न बनाया जाये तो हर मरने वाले की विरासत पूरी दुनिया की तमाम इनसानी आबादी पर तक़सीम करना ज़रूरी हो जायेगा,

क्योंकि सब एक माँ-बाप आदम व हव्वा अलैहिमस्सलाम की औलाद हैं, दूर क़रीब का कुछ न कुछ रिश्ता सब में मौजूद है। और यह अव्वल तो ताक़त से बाहर है, दूसरे अगर किसी तरह कोशिश करके इसका इन्तिज़ाम कर भी लिया जाये तो छोड़ा हुआ माल इतने छोटे ज़र्रे की शक्ल में तक़सीम हो सकेगा जो किसी के काम न आयेगा। इसलिये ज़रूरी हुआ कि जब विरासत का मदार रिश्तेदारी पर हो तो उसूल यह बनाया जाये कि अगर नज़दीक व दूर के बहुत से रिश्तेदार जमा हों तो क़रीबी रिश्तेदार को दूर वाले पर तरजीह देकर क़रीब के होते हुए दूर वाले को हिस्सा न दिया जाये, हाँ अगर कुछ रिश्तेदार ऐसे हों जो एक ही वक़्त में सब के सब क़रीबी क़रार दिये जायें अगरचे क़रीबी होने के कारण उनमें अलग-अलग हों तो फिर ये सब विरासत के हक़दार होंगे, जैसे औलाद के साथ माँ-बाप या बीवी वग़ैरह, कि ये सब ज़्यादा क़रीबी हैं अगरचे क़रीबी होने की वुजूहात (सबब और कारण) भिन्न हैं।

साथ ही एक और बात इसी लफ़्ज़ "अक़रबून" ने यह बतलाई कि जिस तरह मर्दों को विरासत का हक़दार समझा जाता है इसी तरह औरतों और बच्चों को भी इस हक़ से मेहरूम नहीं किया जा सकता, क्योंकि रिश्ता औलाद का या माँ-बाप का हो, या दूसरी क़िस्म के रिश्ते हर एक में रिश्तेदारी की हैसियत लड़के और लड़की में बराबर है। जिस तरह लड़का माँ-बाप से पैदा हुआ है इसी तरह लड़की भी उन्हीं से पैदा हुई है। जब विरासत के हक़ का मदार रिश्ते पर हुआ तो छोटे बच्चे या लड़की को मेहरूम करने के कोई मायने नहीं रहते।

फिर क़ुरआने करीम के अन्दाज़े बयान को देखिये कि 'लिर्रिजालि वन्निसा-इ' को जमा करके मुख़्तसर लफ़्ज़ों में उनके हक़ का बयान हो सकता था, इसको इख़्तियार नहीं किया बल्कि मर्दों के हक़ को जिस तफ़सील से बयान किया है उसी तफ़सील व विस्तार के साथ औरतों का हक़ अलग से बयान फ़रमाया ताकि दोनों के हुक़ूक़ का मुस्तक़िल और अहम होना स्पष्ट हो जाये।

और इसी लफ़्ज़ "अक़रबून" से एक बात यह भी मालूम हुई कि विरासत के माल की तक़सीम ज़रूरत के मेयार से नहीं बल्कि क़राबत (रिश्ते) के मेयार से है। इसलिये यह ज़रूरी नहीं कि रिश्तेदारों में जो ज़्यादा ग़रीब और ज़रूरतमन्द हो उसको ज़्यादा विरासत का हक़दार समझा जाये, बल्कि जो मरने वाले के साथ रिश्ते में ज़्यादा क़रीब होगा वह दूर वाले के मुक़ाबले में ज़्यादा मुस्तहिक़ होगा, अगरचे ज़रूरत और आवश्यकता दूर वाले को ज़्यादा हो। अगर क़रीबी होने के ज़ाब्ते को छोड़कर कुछ रिश्तेदारों के मोहताज या फ़ायदा पहुँचाने वाले को मेयार बना लिया जाये तो न इसका ज़ाब्ता (उसूल व क़ानून) बन सकता है और न यह एक तयशुदा स्थिर क़ानून की शक्ल इख़्तियार कर सकता है। क्योंकि क़रीब होने के अलावा दूसरा मेयार लाज़िमी तौर पर वक़्ती इज्तिहादी होगा, क्योंकि ग़रीबी और ज़रूरत कोई हमेशा रहने वाली चीज़ नहीं इसलिये कि हालात भी बदलते रहते हैं, दर्जे भी। ऐसी सूरत में हक़दार होने के बहुत से दावेदार निकल आया करेंगे और फ़ैसला करने वालों को उनका फ़ैसला मुश्किल होगा।

यतीम पोते की विरासत का मसला

अगर इस क़ुरआनी उसूल को समझ लिया जाये तो यतीम पोते की विरासत का मसला जो

आजकल बिना वजह एक विवादित मसला बना दिया गया है वह खुद-ब-खुद एक निश्चित फ़ैसले के साथ हो जाता है, अगरचे यतीम पोता बेटे की तुलना में ज़रूरतमन्द ज़्यादा हो लेकिन अक़रबून के क़ानून के एतिबार से वह मीरास का हक़दार नहीं हो सकता, क्योंकि वह बेटे की मौजूदगी में ज़्यादा क़रीबी नहीं, अलबत्ता उसकी ज़रूरत पूरी करने के लिये दूसरे इन्तिज़ामात किये गये हैं, जिसमें से एक ऐसा ही इन्तिज़ाम अगली आयत में आ रहा है।

इस मसले में मौजूदा दौर के पाश्चात्य सभ्यता के मारे हुए दीन में नई-नई बातें निकालने वालों के अलावा किसी ने भी इख़्तिलाफ़ (मतभेद) नहीं किया। सारी उम्मत आज तक क़ुरआन व हदीस की वज़ाहतों से यही समझती आई है कि बेटे के होते हुए पोते को मीरास न मिलेगी चाहे उसका बाप मौजूद हो या मर गया हो।

मरने वाले की मिल्कियत में जो कुछ हो सब में विरासत का हक़ है

इस आयत में 'मिम्मा क़ल्-ल मिन्हु औ कसु-र' फ़रमाकर एक दूसरी जाहिलाना रस्म की इस्लाह फ़रमाई गई है वह यह कि कुछ क़ौमों में माल की कुछ क़िस्मों को कुछ ख़ास वारिसों के लिये मख़्सूस कर लिया जाता था, जैसे घोड़ा और तलवार वग़ैरह असलेहा, यह सब सिर्फ़ नौजवान मर्दों का हक़ था, दूसरे वारिसों को इनसे मेहरूम कर दिया जाता था। क़ुरआने करीम की इस हिदायत ने बतला दिया कि मय्यित (मरने वाले) की मिल्कियत में जो चीज़ थी चाहे बड़ी हो या छोटी हर चीज़ में हर वारिस का हक़ है, किसी वारिस को कोई ख़ास चीज़ बग़ैर तक़सीम के खुद रख लेना जायज़ नहीं।

मीरास के निर्धारित हिस्से अल्लाह तआ़ला की ओर से तयशुदा हैं

आयत के आख़िर में जो यह इरशाद फ़रमाया 'नसीबम् मफ़्रूज़ा' इससे यह भी बतला दिया कि विभिन्न वारिसों के जो विभिन्न हिस्से क़ुरआन ने मुक़र्रर फ़रमाये हैं ये खुदा की तरफ़ से मुक़र्रर किये हुए हिस्से हैं, इनमें किसी को अपनी राय और अन्दाज़े से कमी-बेशी या तब्दीली करने का कोई हक़ नहीं।

विरासत एक जबरी मिल्क है इसमें मालिक होने वाले की रज़ामन्दी शर्त नहीं

और इसी लफ़्ज़ 'मफ़रूज़न्' से एक और मसला यह भी मालूम हुआ कि विरासत के ज़रिये

जो मिल्कियत वारिसों की तरफ़ मुन्तकिल होती है वह मिल्कियते जबरी है, न उसमें वारिस का क़ुबूल करना शर्त है न उसका उस पर राज़ी होना ज़रूरी है, बल्कि अगर वह ज़बान से खुले लफ़्ज़ों में यूँ भी कहे कि मैं अपना हिस्सा नहीं लेता तब भी वह शरई तौर पर अपने हिस्से का मालिक हो चुका, यह दूसरी बात है कि वह मालिक बनकर शरई क़ायदे के मुताबिक़ किसी दूसरे को हिबा कर दे, या बेच डाले, या तक़सीम कर दे।

मीरास से मेहरूम रिश्तेदारों की दिलदारी ज़रूरी है

मय्यित के रिश्तेदारों में कुछ ऐसे लोग भी होंगे जिनको शरई क़ानून के एतिबार से उसकी मीरास में से हिस्सा नहीं मिलेगा, लेकिन यह ज़ाहिर है कि फ़राईज़ (मीरास के हिस्सों) की तफ़सीलात का इल्म हर शख़्स को नहीं होता, आ़म तौर पर हर रिश्तेदार चाहता है कि उसको भी मीरास में से हिस्सा मिले, इसलिये वह रिश्तेदार जो मीरास के शरई क़ानून के तहत मेहरूम क़रार दिये गये हैं, मीरास की तक़सीम के वक़्त उनका दिल मायूस और रंजीदा हो सकता है, ख़ास कर जबकि मीरास की तक़सीम के वक़्त वे मौजूद भी हों और ख़ास कर जबकि उनमें कुछ यतीम और मिस्कीन ज़रूरतमन्द भी हों, ऐसी हालत में जबकि दूसरे रिश्तेदार अपना-अपना हिस्सा लेजा रहे हों और ये खड़े देख रहे हों इनकी हसरत व मायूसी और दिल टूटने का अन्दाज़ा कुछ वही लोग कर सकते हैं जिन पर कभी यह कैफ़ियत गुज़री हो।

अब क़ुरआनी निज़ाम की ख़ूबी और उम्दा अन्दाज़ को देखिये कि एक तरफ़ तो खुद क़ुरआन ही का बताया हुआ न्यायपूर्ण उसूल यह है कि क़रीबी रिश्तेदार के मुक़ाबले में दूर के रिश्तेदार को मेहरूम किया जाये, दूसरी तरफ़ मेहरूम होने वाले दूर के रिश्तेदार की मायूसी और दिल टूटना भी गवारा नहीं किया जाता, उसके लिये एक मुस्तक़िल आयत में यह हिदायत की गईः

وَإِذَا حَضَرَ الْقِسْمَةَ أُولُوا الْقُرْبٰى وَالْيَتٰمٰى وَالْمَسٰكِيْنُ فَارْزُقُوْهُمْ مِّنْهُ وَقُوْلُوْا لَهُمْ قَوْلًا مَّعْرُوْفًا٥

"यानी जो दूर के रिश्तेदार और यतीम मिस्कीन मीरास में हिस्सा पाने से मेहरूम हो रहे हों अगर वे मीरास के बंटवारे के वक़्त आ मौजूद हों तो मीरास पाने वालों का अख़्लाक़ी फ़र्ज़ है कि उस माल में से अपने इख़्तियार से कुछ हिस्सा उनको भी दे दें जो उनके लिये एक क़िस्म का सदक़ा और सवाब का ज़रिया है, और ऐसे वक़्त में जबकि एक माल बग़ैर किसी कोशिश व मेहनत के महज़ खुदा तआ़ला के देने से उन्हें मिल रहा हो तो अल्लाह के रास्ते में सदक़ा व ख़ैरात करने का खुद भी जज़्बा दिल में होना चाहिये।" जैसा कि इसकी एक नज़ीर दूसरी आयत में बयान हुई हैः

كُلُوْا مِنْ ثَمَرِهٖٓ إِذَآ أَثْمَرَ وَاٰتُوْا حَقَّهٗ يَوْمَ حَصَادِهٖ

"यानी अपने बाग़ का फल खाओ जबकि वह फल देने लगे और जिस रोज़ फल काटो तो उसका हक़ निकाल कर फ़क़ीरों और मिस्कीनों को दे दो।" (यह आयत सूरः अन्आ़म 142 में

आ रही है)

खुलासा यह है कि मीरास की तक़सीम के वक़्त अगर कुछ दूर के रिश्तेदार यतीम, मिस्कीन वग़ैरह जमा हो जायें जिनका शरई एतिबार से कोई हिस्सा उस मीरास में नहीं है तो उनके जमा हो जाने से तुम तंगदिल न होओ बल्कि जो माल ख़ुदा तआ़ला ने तुम्हें बिना मेहनत के अ़ता फ़रमाया है उसमें से शुक्राने के तौर पर कुछ अ़ता कर दो, और ग़नीमत जानो कि ख़र्च का एक अच्छा मौक़ा मिल रहा है उस मौक़े पर उन लोगों को कुछ न कुछ दे देने से उन दूर के रिश्तेदारों के दिल टूटने और मायूसी व हसरत का ख़ात्मा हो जायेगा। इसमें मरने वाले का मीरास से मेहरूम पोता भी आ गया। उसके चचाओं और फूफियों को चाहिये कि उसको अपने-अपने हिस्से में से खुशी से कुछ दे दें।

आयत के आख़िर में फ़रमायाः

وَقُوْلُوْا لَهُمْ قَوْلًا مَّعْرُوْفًا○

अगर ये लोग इस तरह थोड़ा सा देने पर भी राज़ी न हों बल्कि दूसरों के बराबर हिस्से का मुतालबा करने लगें तो चूँकि इनका यह मुतालबा शरई क़ानून के ख़िलाफ़ और इन्साफ़ के ख़िलाफ़ है इसलिये उनका मुतालबा पूरा करने की तो गुंजाईश नहीं, लेकिन इस पर भी उनको कोई ऐसी बात न कही जाये जिससे उनका दिल दुखे, बल्कि माक़ूल तौर पर उनको समझा दिया जाये कि शरई क़ायदे से मीरास में तुम्हारा कोई हिस्सा नहीं है, हमने जो कुछ दिया है वह महज़ अपनी तरफ़ से तुम्हारा दिल रखने के लिये दिया है। और एक बात यह मालूम कर लेना ज़रूरी है कि उन लोगों को एहसान के तौर पर जो दिया जायेगा कुल माल में से नहीं बल्कि बालिग़ वारिसों में से जो हाज़िर हों वे अपने हिस्से में से दे दें, नाबालिग़ और ग़ायब के हिस्से में से देना दुरुस्त नहीं।

अल्लाह से डरते हुए मीरास तक़सीम करें

तीसरी आयत में आ़म मुसलमानों को ख़िताबे आ़म है कि इसका पूरा एहतिमाम करें कि मरने वाले का तर्का (छोड़ा हुआ माल) उसकी औलाद को पूरा-पूरा पहुँच जाये और हर ऐसे तरीक़े से परहेज़ करें जिसमें औलाद के हिस्से पर कोई बुरा असर पड़ता हो। इसके आ़म होने में यह भी दाख़िल है कि आप किसी मुसलमान को कोई ऐसी वसीयत या तसर्रुफ़ करते हुए देखें जिससे उसकी औलाद और दूसरे वारिसों को नुक़सान पहुँच जाने का ख़तरा है तो आप पर लाज़िम है कि उसको ऐसी वसीयत या ऐसे तसर्रुफ़ से रोकें जैसा कि रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने हज़रत सअ़द बिन अबी वक़्क़ास रज़ियल्लाहु अ़न्हु को अपना पूरा माल या आधा माल सदक़ा करने से रोक दिया और सिर्फ़ एक तिहाई माल को सदक़ा करने की इजाज़त दे दी। (मिश्कात शरीफ़ बाबुल-वसाया पेज 265) क्योंकि पूरा माल या आधा माल सदक़ा कर दिया जाता तो वारिसों का हिस्सा ख़त्म या कम हो जाता।

और इसके आम ख़िताब होने में यह भी दाख़िल है कि यतीम बच्चों के वली (सरपरस्त) उनके माल की हिफ़ाज़त और फिर बालिग़ होने के बाद उनको पूरा-पूरा देने का बड़ा एहतिमाम करें, इसमें मामूली सी कोताही को रास्ता न दें और दूसरों के यतीम बच्चों के हालात को अपने बच्चों और अपनी मुहब्बत के साथ तुलना करके देखें, और अगर वे चाहते हैं कि उनके बाद उनकी औलाद के साथ लोग अच्छा मामला करें और वे परेशान न हों, कोई उन पर ज़ुल्म न करे तो उनको चाहिये कि दूसरे की यतीम औलाद के साथ यही मामला करें।

ज़ुल्म करके यतीम का माल खाना अपने पेट में अंगारे भरना है

चौथी आयत में यतीमों के माल में नाजायज़ तसर्रुफ़ करने वालों के लिये सख़्त धमकी का बयान है कि जो शख़्स नाजायज़ तौर पर यतीम का माल खाता है वह अपने पेट में जहन्नम की आग भर रहा है।

इस आयत ने यतीम के माल को जहन्नम की आग क़रार दिया है। बहुत से मुफ़स्सिरीन ने इसको मिसाल और इशारे पर महमूल किया है। यानी यतीमों का माल नाहक़ खाना ऐसा है जैसे कोई पेट में आग भरे, क्योंकि इसका अन्जाम आख़िरकार क़ियामत में ऐसा ही होने वाला है। मगर मुहक़्क़िक़ उलेमा का क़ौल यह है कि आयत में मिसाल और इशारे वाली कोई बात नहीं है बल्कि जो माल यतीम का नाजायज़ तरीक़े से खाया है वह हक़ीक़त में आग ही है, अगरचे इस वक़्त उसकी सूरत आग की मालूम न होती हो। जैसे कोई शख़्स दिया सिलाई (माचिस) को कहे कि यह आग है, या संखिया को कहे कि यह क़ातिल (मार डालने वाली) है तो ज़ाहिर है कि दिया सिलाई को हाथ में लेने से हाथ नहीं जलता और संखिया के हाथ में लेने से बल्कि मुँह में रखने से भी कोई आदमी नहीं मरता, अलबत्ता ज़रा सी रगड़ खाने के बाद मालूम होता है कि जिसने दिया सलाई को आग कहा था वह सही कहा था, इसी तरह हलक़ के नीचे उतरने के बाद मालूम होता है कि संखिया को क़ातिल (मार डालने वाली) कहने वाला सच्चा था। क़ुरआने करीम के आम इरशादात से भी इसकी ताईद होती है कि इनसान जो अच्छा या बुरा अमल कर रहा है यही अमल जन्नत के दरख़्त और फल-फूल हैं, या जहन्नम के अंगारे हैं अगरचे इनकी सूरत यहाँ दूसरी है मगर क़ियामत के दिन अपनी शक्लों में बदल और ज़ाहिर होकर सामने आयेंगे। क़ुरआने करीम का इरशाद है:

وَوَجَدُوْا مَا عَمِلُوْا حَاضِرًا

यानी क़ियामत के दिन वे अपने किये हुए को मौजूद पायेंगे। यानी जो अज़ाब व सवाब उनको नज़र आयेगा वह हक़ीक़त में उनका अपना अमल होगा।

कुछ रिवायतों में है कि यतीम का माल नाहक़ खाने वाला क़ियामत के दिन इस हालत में उठाया जायेगा कि पेट के अन्दर से आग की लपटें उसके मुँह, नाक और कानों आँखों से निकल

रही होंगी।

और रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि एक क़ौम क़ियामत के दिन इस तरह उठाई जायेगी कि उनके मुँह से आग भड़क रही होगी। सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम ने अ़र्ज़ किया या रसूलल्लाह! ये कौन लोग होंगे? आपने फ़रमाया- क्या तुमने क़ुरआन में नहीं पढ़ाः

إِنَّ الَّذِينَ يَأْكُلُونَ أَمْوَالَ الْيَتَٰمَىٰ ظُلْمًا. (ابن کثیر ٤٥٦ ج ١)

(यानी यही आयत नम्बर 10) आयत के मज़मून का ख़ुलासा यह है कि यतीम का माल नाहक़ खाया जाये वह दर हक़ीक़त जहन्नम की आग होगी अगरचे इस वक़्त उसका आग होना महसूस न हो। इसी लिये रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने इस मामले में बहुत ज़्यादा एहतियात के लिये स्पष्ट हिदायतें दी हैं। हज़रत अबू हुरैरह रज़ियल्लाहु अ़न्हु फ़रमाते हैं कि आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का इरशाद हैः

أُحَرِّجُ مَالَ الضَّعِيفَيْنِ الْمَرْأَةِ وَالْيَتِيمِ. (ابن کثیر ص ٤٥٦ ج ١)

"मैं तुमको ख़ास तौर पर दो कमज़ोरों के माल से बचने की तंबीह करता हूँ- एक औरत और दूसरे यतीम।"

सूरः निसा के पहले रुकूअ़ में शुरू से आख़िर तक आ़म तौर पर यतीमों ही के अहकाम हैं। यतीमों के माल की हिफ़ाज़त व निगरानी रखने, उनके माल को अपना माल न बना लेने, उनके विरासत में मिले हुए मालों से उनको हिस्सा देने का हुक्म फ़रमाया, और बड़ा हो जाने के डर से उनका माल उड़ा देने में जल्दी करना, यतीम लड़कियों से निकाह करके मेहर कम कर देना या उनके माल पर क़ब्ज़ा कर लेना वग़ैरह, इन सब बातों की मनाही फ़रमाई।

आख़िर में फ़रमाया कि नाहक़ यतीम का माल खाना पेट में आग के अंगारे भरना है। क्योंकि इसकी सज़ा में मौत के बाद इस तरह के लोगों के पेटों में आग भर दी जायेगी। लफ़्ज़ 'यअ्कुलू-न' (खाते हैं) इस्तेमाल फ़रमाया है और यतीम का माल खाने पर सख़्त सज़ा की धमकी सुनाई गई है, लेकिन यतीम के माल का हर इस्तेमाल खाने पीने में हो या बरतने में सब हराम और सज़ा व अ़ज़ाब का सबब है, क्योंकि मुहावरे में किसी का माल नाहक़ खा लेना हर इस्तेमाल को शामिल होता है।

जब कोई शख़्स वफ़ात पा जाता (यानी मर जाता) है तो उसके माल के हर-हर हिस्से और हर छोटी-बड़ी चीज़ के साथ हर वारिस का हक़ जुड़ जाता है। उसके नाबालिग़ बच्चे यतीम होते हैं, उन बच्चों के साथ उमूमन हर घर में ज़ुल्म व ज़्यादती का बर्ताव होता है और हर वह शख़्स जो उन बच्चों के बाप की वफ़ात के बाद माल पर क़ाबिज़ होता है चाहे उन बच्चों का चचा हो या बड़ा भाई हो या माँ हो या और कोई वली या वसी हो, अक्सर उन कामों के करने वाले (मुजरिम) हो जाते हैं जिनकी मनाही इस रुकूअ़ में की गई है। अव्वल तो सालों साल माल को तक़सीम करते ही नहीं, उन बच्चों की रोटी कपड़े पर थोड़ा बहुत ख़र्च करते रहते हैं, फिर

बिदअतों, रस्मों और फ़ुज़ूल चीज़ों में उसी साझे के माल से ख़र्चे किये जाते हैं, अपनी ज़ात पर भी ख़र्च करते हैं और सरकारी कागज़ों में नाम बदलवाकर अपने बच्चों का नाम लिखवाते हैं, ये वे बातें हैं जिनसे कोई ही घर ख़ाली रहता होगा।

मदरसों और यतीम ख़ानों में जो चन्दा यतीमों के लिये आता है उसको यतीमों पर ख़र्च न करना भी एक सूरत यतीम का माल हज़म करने की है।

मसलाः मय्यित के बदन के कपड़े भी तर्के (छोड़े हुए माल) में शामिल होते हैं, उनको हिसाब में लगाये बग़ैर यूँ ही सदक़ा कर देते हैं। कुछ इलाक़ों में ताँबे पीतल के बर्तन माल को तक़सीम किये बग़ैर फ़क़ीरों को दे देते हैं हालाँकि उन सब में नाबालिग़ों और ग़ैर-हाज़िर वारिसों का भी हक़ होता है। पहले माल बाँट लें जिसमें से मरने वाले की औलाद, बीवी, माँ-बाप, बहनें जिस जिसको शरई हिस्सा पहुँचता हो उसको दे दें, उसके बाद अपनी ख़ुशी से जो शख़्स चाहे मरने वाले की तरफ़ से ख़ैरात करे, या मिलकर करें तो सिर्फ़ बालिग़ हज़रात करें, नाबालिग़ की इजाज़त का भी एतिबार नहीं। और जो वारिस ग़ैर-हाज़िर हो उसके हिस्से में उसकी इजाज़त के बग़ैर भी तसर्रुफ़ दुरुस्त नहीं।

मसलाः मय्यित को क़ब्रिस्तान ले जाते वक़्त जो चादर जनाज़े के ऊपर डाली जाती है वह कफ़न में शामिल नहीं है, उसको मय्यित के माल से ख़रीदना जायज़ नहीं क्योंकि वह माल साझा है, कोई शख़्स अपनी तरफ़ से ख़र्च कर दे तो जायज़ है। कुछ इलाक़ों में नमाज़े जनाज़ा पढ़ाने वाले इमाम के लिये कफ़न ही के कपड़े में से मुसल्ला तैयार किया जाता है और फिर यह मुसल्ला इमाम को दे दिया जाता है, यह ख़र्च भी कफ़न की ज़रूरत से फ़ालतू है, वारिसों के साझा माल में से उसका ख़रीदना जायज़ नहीं।

मसलाः कुछ जगह यह दस्तूर है कि मय्यित के ग़ुस्ल के लिये नये बर्तन ख़रीदे जाते हैं फिर उनको तोड़ दिया जाता है। अव्वल तो नये ख़रीदने की ज़रूरत नहीं, क्योंकि घर के मौजूदा बर्तनों से ग़ुस्ल दिया जा सकता है, और अगर ख़रीदने की ज़रूरत पड़ जाये तो तोड़ना जायज़ नहीं। अव्वल तो इसमें माल बरबाद करना है और फिर उनसे यतीमों का और ग़ायब वारिसों का हक़ जुड़ा हुआ है।

मसलाः तर्के (छोड़े हुए माल) की तक़सीम से पहले उसमें से मेहमानों की ख़ातिर-तवाज़ो और सदक़ा व ख़ैरात कुछ जायज़ नहीं। इस तरह के सदक़े ख़ैरात करने से मुर्दे को कोई सवाब नहीं पहुँचता, बल्कि सवाब समझकर देना और भी ज़्यादा सख़्त गुनाह है। इसलिये कि मूरिस के मरने के बाद अब ये सब माल तमाम वारिसों का हक़ है और उनमें यतीम भी होते हैं, इस साझे के माल में से देना ऐसा ही है जैसा कि किसी का माल चुराकर मय्यित के हक़ में सदक़ा कर दिया जाये। पहले माल तक़सीम कर दिया जाये उसके बाद अगर वे वारिस अपने माल में से अपनी मर्ज़ी से मय्यित के हक़ में सदक़ा ख़ैरात करें तो उनको इख़्तियार है।

तक़सीम से पहले भी वारिसों से इजाज़त लेकर साझा तर्के में से सदक़ा ख़ैरात न करें, इसलिये कि जो उनमें यतीम हैं उनकी इजाज़त तो मोतबर ही नहीं, और जो बालिग़ हैं वे भी

ज़रूरी नहीं कि दिल की ख़ुशी से इजाज़त दें, हो सकता है कि वे लिहाज़ की वजह से इजाज़त देने पर मजबूर हों और लोगों के तानों के डर से कि अपने मुर्दे के हक़ में दो पैसे तक ख़र्च न किये, इस शर्म से बचने के लिये दिल न चाहते हुए हामी भर ले, हालाँकि शरीअ़त में सिर्फ़ वह माल हलाल है जबकि देने वाला अपने दिल की ख़ुशी से दे रहा हो, जिसकी तफ़सील पहले गुज़र चुकी है।

यहाँ हम एक बुज़ुर्ग का वाक़िआ़ नक़ल करते हैं जिससे मसला और ज़्यादा स्पष्ट हो जायेगा। यह बुज़ुर्ग एक मुसलमान की अ़यादत (बीमारी का हाल पूछने) के लिये तशरीफ़ ले गये। थोड़ी देर मरीज़ के पास बैठे थे कि उसकी रूह परवाज़ कर गई, उस मौक़े पर जो चिराग़ जल रहा था उन्होंने फ़ौरन उसे बुझा दिया और अपने पास से पैसे देकर तेल मंगाया और रोशनी की। लोगों ने इसका सबब पूछा तो फ़रमाया जब तक यह शख़्स ज़िन्दा था यह चिराग़ इसकी मिल्कियत थी और इसकी रोशनी इस्तेमाल करना दुरुस्त था, अब यह इस दुनिया से रुख़्सत हो गया तो इसकी हर चीज़ में वारिसों का हक़ हो गया, लिहाज़ा सब वारिसों की इजाज़त ही से हम यह चिराग़ इस्तेमाल कर सकते हैं और वे सब यहाँ मौजूद नहीं हैं, लिहाज़ा अपने पैसों से तेल मंगाकर रोशनी की।

يُوْصِيْكُمُ اللّٰهُ فِيْٓ اَوْلَادِكُمْ ۖ لِلذَّكَرِ مِثْلُ حَظِّ الْاُنْثَيَيْنِ ۚ فَاِنْ كُنَّ نِسَآءً فَوْقَ اثْنَتَيْنِ فَلَهُنَّ ثُلُثَا مَا تَرَكَ ۚ وَاِنْ كَانَتْ وَاحِدَةً فَلَهَا النِّصْفُ ۗ وَلِاَبَوَيْهِ لِكُلِّ وَاحِدٍ مِّنْهُمَا السُّدُسُ مِمَّا تَرَكَ اِنْ كَانَ لَهٗ وَلَدٌ ۚ فَاِنْ لَّمْ يَكُنْ لَّهٗ وَلَدٌ وَّوَرِثَهٗٓ اَبَوٰهُ فَلِاُمِّهِ الثُّلُثُ ۚ فَاِنْ كَانَ لَهٗٓ اِخْوَةٌ فَلِاُمِّهِ السُّدُسُ مِنْۢ بَعْدِ وَصِيَّةٍ يُّوْصِيْ بِهَآ اَوْ دَيْنٍ ۗ اٰبَآؤُكُمْ وَاَبْنَآؤُكُمْ لَا تَدْرُوْنَ اَيُّهُمْ اَقْرَبُ لَكُمْ نَفْعًا ۚ فَرِيْضَةً مِّنَ اللّٰهِ ۗ اِنَّ اللّٰهَ كَانَ عَلِيْمًا حَكِيْمًا ۝

यूसीकुमुल्लाहु फ़ी औलादिकुम्, लिज़्ज़-करि मिस्लु हज़्ज़िल्-उन्सयैनि फ़-इन् कुन्-न निसाअन् फ़ौक़स्नतैनि फ़-लहुन्-न सुलुसा मा त-र-क व इन् कानत् वाहि-दतन् फ़-लहन्निस्फ़ु, व लि-अ-बवैहि लिकुल्लि वाहिदिम्-मिन्हुमस्सुदुसु मिम्मा त-र-क इन् का-न लहू व-लदुन् फ़-इल्लम्	हुक्म करता है तुमको अल्लाह तुम्हारी औलाद के हक़ में कि एक मर्द का हिस्सा है बराबर दो औरतों के, फिर अगर सिर्फ़ औरतें ही हों दो से ज़्यादा तो उनके लिये दो तिहाई उस माल से जो छोड़ मरा, और अगर एक ही हो तो उसके लिये आधा है। और मय्यित के माँ-बाप को हर एक के लिये दोनों में से छठा हिस्सा है उस माल से जो कि छोड़ मरा, अगर मय्यित के औलाद है। और अगर उसके

यक़ुल्लहू व-लदुंव्-व वरि-सहू अ-बवाहु फ़-लिउम्मिहिस्सुलुसु फ़-इन् का-न लहू इख़्वतुन् फ़-लिउम्मिहिस्-सुदुसु मिम्-बअ़्दि वसिय्यतिंय्-यूसी बिहा औ दैनिन्, आबाउकुम् व अब्नाउकुम् ला तद्रू-न अय्युहुम् अक़्रबु लकुम् नफ़्अ़न्, फ़री-ज़तम् मिनल्लाहि, इन्नल्ला-ह का-न अ़लीमन् हकीमा (11)	औलाद नहीं और वारिस हैं उसके माँ-बाप तो उसकी माँ का है तिहाई, फिर अगर मय्यित के कई भाई हैं तो उसकी माँ का है छठा हिस्सा बाद वसीयत के जो वह करके मरा, या क़र्ज़ अदा करने के बाद। तुम्हारे बाप और बेटे तुमको मालूम नहीं कौन नफ़ा पहुँचाये तुमको ज़्यादा। हिस्सा मुक़र्रर किया हुआ अल्लाह का है, बेशक अल्लाह ख़बरदार है हिक्मत वाला। (11)

इस आयत के मज़मून का पीछे से ताल्लुक़

पिछले रुकूअ़ में:

لِلرِّجَالِ نَصِيبٌ مِّمَّا تَرَكَ الْوَالِدَانِ.................. الخ

(यानी आयत नम्बर 7) में मीरास का हक़ रखने वाले लोगों का संक्षिप्त में ज़िक्र था, इस रुकूअ़ में उन्हीं मीरास के हक़दारों की कुछ क़िस्मों की तफ़सील बयान हुई है, और उनके विभिन्न हालात के एतिबार से उनके हिस्से बयान किये गये हैं। इस सिलसिले की कुछ तफ़सील सूरत के आख़िर में आ रही है और बाक़ी बचे हिस्सों को हदीसों के अन्दर बयान किया गया है। फ़ुक़हा (मसाईल के माहिर उलेमा) ने शरीअ़त के स्रोतों से इसकी तमाम तफ़सीलात निकालकर एक मुस्तक़िल फ़न "फ़राईज़" के नाम से तैयार कर दिया है।

ऊपर दर्ज हुई आयत में औलाद और माँ-बाप के हिस्से बयान किये गये हैं और इसके साथ मीरास के कुछ और मसाईल भी मज़कूर हैं।

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

अल्लाह तआ़ला तुमको हुक्म देता है तुम्हारी औलाद के (मीरास पाने के) बारे में, (वह यह कि) लड़के का हिस्सा दो लड़कियों के हिस्से के बराबर (यानी लड़का लड़की एक-एक या कई-कई मिली जुली हों तो उनके हिस्सों में आपस में यह निस्बत होगी कि हर लड़के को दोहरा और हर लड़की को इकेहरा) और अगर (औलाद में) सिर्फ़ लड़कियाँ ही हों चाहे दो से ज़्यादा हों तो उन लड़कियों को दो तिहाई मिलेगा उस माल का जो कि मूरिस छोड़कर मरा है। (और अगर दो लड़कियाँ हों तब दो तिहाई मिलना बहुत ही ज़ाहिर है, क्योंकि अगर उनमें एक लड़की की जगह लड़का होता तो उस लड़की का हिस्सा इसके बावजूद कि भाई से कम है एक तिहाई से न

घटता, पस जब दूसरी भी लड़की है तब तो तिहाई से किसी तरह घट नहीं सकता और दोनों लड़कियाँ बराबर हालत में हैं, पस उसका भी एक तिहाई होगा, दोनों का मिलकर दो तिहाई हुआ, अलबत्ता तीन लड़कियों में शुब्हा था कि शायद उनको तीन तिहाई यानी सारा मिल जाये, इसलिये फ़रमाया कि चाहे लड़कियाँ दो से ज़्यादा हों मगर दो तिहाई से न बढ़ेगा) और अगर एक ही लड़की हो तो उसको (कुल तर्के का) आधा मिलेगा (और पहली सूरत में एक तिहाई बचा हुआ, और दूसरी सूरत का एक निस्फ़ (आधा) बचा हुआ, दूसरे ख़ास-ख़ास क़रीबी रिश्तेदारों का हक़ है, या अगर कोई न हो तो फिर उसी को दे दे दिया जायेगा जैसा कि फ़राईज़ की किताबों में मज़कूर है)।

और माँ-बाप (को मीरास मिलने में तीन सूरतें हैं- एक सूरत तो उन) के लिये यानी दोनों में से हर एक के लिए मय्यित के तर्के "यानी छोड़े हुए माल व जायदाद" में से छठा हिस्सा (मुक़र्रर) है अगर मय्यित के कुछ औलाद हो (चाहे पुरुष लिंग हो या स्त्री लिंग, चाहे एक या ज़्यादा और बाक़ी मीरास औलाद और दूसरे ख़ास-ख़ास वारिसों को मिलेगी, और फिर भी बच जाये तो फिर सब को दी जायेगी) और अगर उस मय्यित के कुछ औलाद न हो और (सिर्फ़) उसके माँ-बाप ही उसके वारिस हों (यह दूसरी सूरत है, और "सिर्फ़" इसलिये कहा कि भाई बहन भी न हों जैसा कि आगे आता है) तो (इस सूरत में) उसकी माँ का एक तिहाई है (और बाक़ी दो तिहाई बाप का। और चूँकि ऐसा मान लेने की सूरत में यह ज़ाहिर था इसलिये इसकी वज़ाहत की ज़रूरत नहीं हुई)। और अगर मय्यित के एक से ज़्यादा भाई या बहन (किसी क़िस्म के) हों (चाहे माँ-बाप दोनों में शरीक जिसको ऐनी कहते हैं, चाहे सिर्फ़ बाप एक माँ अलग-अलग जिसको अल्लाती कहते हैं, चाहे सिर्फ़ एक माँ और बाप अलग-अलग जिसको अख़्याफ़ी कहते हैं, ग़र्ज़ कि किसी तरह के भाई-बहन एक से ज़्यादा हों और औलाद न हो और माँ-बाप हों और यह तीसरी सूरत है) तो (इस सूरत में) उसकी माँ को (तर्के का) छठा हिस्सा मिलेगा (और बाक़ी बाप को मिलेगा। ये सब हिस्से) वसीयत (के माल के मुताबिक़) निकाल लेने के बाद कि मय्यित उसकी वसीयत कर जाये या क़र्ज़ (अगर हो तो उसको भी निकाल लेने) के बाद (तक़सीम होंगे), तुम्हारे उसूल व फ़ुरू "यानी बाप-दादा और औलाद व औलाद की औलाद" जो हैं तुम (उनके मुताल्लिक़) पूरे तौर पर यह नहीं जान सकते हो कि उनमें का कौन-सा शख़्स तुमको (दुनिया व आख़िरत का) नफ़ा पहुँचाने में (अपेक्षा के अनुसार) ज़्यादा नज़दीक है (यानी अगर तुम्हारी राय पर यह क़िस्सा रखा जाता तो हालात के एतिबार से तुम लोग तक़सीम में वरीयता का मदार उस शख़्स के फ़ायदा पहुँचाने पर रखते, और उस मदार की निश्चितता का ख़ुद कोई तरीक़ा किसी के पास नहीं है, तो उसको तय करने का मदार ठहराना ही सही न था। पस जब नफ़े में मदार बनने की क़ाबलियत न थी इसलिये दूसरी मस्लेहतों और भेदों को चाहे वो तुम्हारे ज़ेहन में न आयें, इस हुक्म का आधार और मदार ठहराकर) यह हुक्म अल्लाह की तरफ़ से मुक़र्रर कर दिया गया (और यह बात) यक़ीनन (मानी हुई है कि) अल्लाह तआ़ला बड़े इल्म और हिक्मत वाले हैं (पस जिन हिक्मतों की उन्होंने अपने इल्म से इसमें रियायत रखी है वही

क़ाबिले एतिबार हैं, इसलिये तुम्हारी राय पर नहीं रखा)।

मआरिफ़ व मसाईल

मीरास के बंटवारे से पहले के हुक़ूक़

शरीअ़त का उसूल यह है कि मरने वाले के माल से पहले शरीअ़त के मुताबिक़ उसके कफ़न-दफ़न के ख़र्चे पूरे किये जायें, जिनमें न फ़ुज़ूलख़र्ची हो न कंजूसी हो। उसके बाद उसके क़र्ज़े अदा किये जायें अगर क़र्ज़े इतने ही हों जितना उसका माल है, या उससे भी ज़्यादा तो न किसी को मीरास मिलेगी न कोई वसीयत नाफ़िज़ होगी। और अगर क़र्ज़ों के बाद माल बच जाये या क़र्ज़ बिल्कुल ही न हों तो अगर उसने कोई वसीयत की हो और वह किसी गुनाह की वसीयत न हो तो अब जो माल मौजूद है उसके एक तिहाई में से उसकी वसीयत नाफ़िज़ हो जायेगी। अगर कोई शख़्स पूरे माल की वसीयत कर दे तब भी तिहाई माल ही में वसीयत मोतबर होगी, तिहाई माल से ज़्यादा की वसीयत करना मुनासिब भी नहीं है और वारिसों को मेहरूम करने की नीयत से वसीयत करना गुनाह भी है।

क़र्ज़ देने के बाद एक तिहाई में वसीयत नाफ़िज़ (जारी) करके माल शरई वारिसों में तक़सीम कर दिया जाये, जिसकी तफ़सीलात फ़राईज़ (मीरास) की किताबों में मौजूद हैं। अगर वसीयत न की हो तो क़र्ज़ देने के बाद पूरा माल मीरास में तक़सीम होगा।

औलाद का हिस्सा

जैसा कि पिछले रुकूअ़ में गुज़र चुका है कि मीरास की तक़सीम सब से क़रीब फिर उसके बाद उससे क़रीब के उसूल पर होगी। मरने वाले की औलाद और उसके माँ-बाप चूँकि सब से क़रीब हैं इसलिये उनको हर हाल में मीरास मिलती है। ये दोनों रिश्ते इनसान के सब से क़रीब और बिना वास्ते के (यानी डायरेक्ट वाले) रिश्ते हैं, दूसरे रिश्ते वास्ते के साथ होते हैं, क़ुरआन शरीफ़ में पहले इन्हीं के हिस्से बयान फ़रमाये और औलाद के हिस्से से शुरू फ़रमाया। चुनाँचे इरशाद है:

يُوْصِيْكُمُ اللّٰهُ فِيْٓ اَوْلَادِكُمْ لِلذَّكَرِ مِثْلُ حَظِّ الْاُنْثَيَيْنِ.

यह एक ऐसा कुल्ली क़ायदा है जिसने लड़कों और लड़कियों दोनों को मीरास का हक़दार भी बना दिया और हर एक का हिस्सा भी मुक़र्रर कर दिया। और यह उसूल मालूम हो गया कि जब मरने वाले की औलाद में लड़के और लड़कियाँ दोनों हों तो उनके हिस्से में जो माल आयेगा इस तरह तक़सीम होगा कि हर लड़के को लड़की के मुक़ाबले में दोगुना मिल जाये। जैसे किसी ने एक लड़का दो लड़कियाँ छोड़े तो माल के चार हिस्से कर करके दो हिस्से (यानी आधा माल) लड़के को और एक-एक हिस्सा (यानी एक-एक चौथाई) हर लड़की को दे दिया जायेगा।

लड़कियों को हिस्सा देने की अहमियत

क़ुरआन मजीद ने लड़कियों को हिस्सा दिलाने का इस क़द्र एहतिमाम किया है कि लड़कियों के हिस्से को असल क़रार देकर उसके एतिबार से लड़कों का हिस्सा बतलाया, और बजायः

لِلْاُنْثَيَيْنِ مِثْلُ حَظِّ الذَّكَرِ

(दो लड़कियों को एक लड़के के हिस्से के बराबर) फ़रमाने केः

لِلذَّكَرِ مِثْلُ حَظِّ الْاُنْثَيَيْنِ

(लड़के को दो लड़कियों के हिस्से के बराबर) के अलफ़ाज़ से ताबीर फ़रमाया। जो लोग बहनों को हिस्सा नहीं देते और वे यह समझकर दिल न चाहते हुए भी शर्मा शर्मी माफ़ कर देती हैं कि मिलने वाला तो है ही नहीं, तो क्यों भाईयों से बुराई लें, ऐसी माफ़ी शरई एतिबार से माफ़ी नहीं होती, उनका हक़ भाईयों के ज़िम्मे वाजिब रहता है। ये मीरास दबाने वाले सख़्त गुनाहगार हैं, उनमें कुछ बच्चियाँ नाबालिग़ भी होती हैं उनको हिस्सा न देना दोहरा गुनाह है- एक गुनाह शरई वारिस के हिस्से को दबाने का और दूसरा यतीम के माल को खाने का।

इसके बाद अधिक वज़ाहत करते हुए लड़कियों का हिस्सा यूँ बयान फ़रमायाः

فَاِنْ كُنَّ نِسَآءً فَوْقَ اثْنَتَيْنِ فَلَهُنَّ ثُلُثَا مَا تَرَكَ

यानी अगर पुरुष औलाद न हो, सिर्फ़ लड़कियाँ हों और एक से ज़्यादा हों तो मूरिस के माल में से उनको दो तिहाई मिलेगा, जिसमें सब लड़कियाँ बराबर की शरीक होंगी। और बाक़ी एक तिहाई दूसरे वारिसों जैसे मय्यित के माँ-बाप, बीवी या शौहर वग़ैरह मीरास के हक़दारों को मिलेगा। दो लड़कियाँ और दो से ज़्यादा सब दो तिहाई में शरीक होंगी।

दो लड़कियों से ज़्यादा का हुक्म तो क़ुरआने करीम की आयत में स्पष्ट तौर पर मज़कूर है जैसा कि 'फ़ौक़स्नतैनि' के अलफ़ाज़ इस पर दलालत कर रहे हैं, और लड़कियाँ दो हों तो इसका हुक्म भी वही है जो दो से ज़्यादा का हुक्म है। इसका सुबूत हदीस शरीफ़ का बयान है:

عَنْ جَابِرِبْنِ عَبْدِ اللّٰهِ قَالَ خَرَجْنَا مَعَ رَسُوْلِ اللّٰهِ صَلَّى اللّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ حَتّٰى جِئْنَا اِمْرَءَةً مِّنَ الْاَنْصَارِ فِی الْاَسْوَافِ فَجَآءَتِ الْمَرْءَةُ بِابْنَتَيْنِ لَهَا. فَقَالَتْ يَا رَسُوْلَ اللّٰهِ هَاتَانِ بِنْتَا ثَابِتِ بْنِ قَيْسٍ قُتِلَ مَعَكَ يَوْمَ اُحُدٍ وَقَدِ اسْتَفَآءَ عَمُّهُمَا مَالَهُمَا وَمِيْرَاثَهُمَا كُلَّهٗ وَلَمْ يَدَعْ مَالًا اِلَّا اَخَذَهٗ فَمَا تَرٰى يَا رَسُوْلَ اللّٰهِ فَوَاللّٰهِ لَا تُنْكَحَانِ اَبَدًا اِلَّا وَلَهُمَا مَالٌ، فَقَالَ رَسُوْلُ اللّٰهِ صَلَّى اللّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ يَقْضِى اللّٰهُ فِیْ ذٰلِكَ وَقَالَ نَزَلَتْ سُوْرَةُ النِّسَآءِ "يُوْصِيْكُمُ اللّٰهُ فِیْٓ اَوْلَادِكُمْ" الاية، فَقَالَ رَسُوْلُ اللّٰهِ صَلَّى اللّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ اُدْعُوْا لِیَ الْمَرْءَةَ وَصَاحِبَهَا، فَقَالَ لِعَمِّهِمَا اَعْطِهِمَا الثُّلُثَيْنِ وَاَعْطِ اُمَّهُمَا الثُّمُنَ وَمَا بَقِیَ فَلَكَ. (ابو داؤد كتاب الفرائض، وبمعناه فى الترمذى ابواب الفرائض)

तर्जुमाः हज़रत जाबिर रज़ियल्लाहु अ़न्हु से रिवायत है, फ़रमाते हैं कि एक दफ़ा हम आप सल्लल्लाहु अ़लैहि के साथ बाहर निकले, इतने में हमारा गुज़र सवाफ़ में एक अन्सारी औरत पर

हुआ वह औरत अपनी दो लड़कियों को लेकर आई और कहने लगी कि ऐ अल्लाह के रसूल! ये दोनों लड़कियाँ साबित बिन कैस (मेरे शौहर) की हैं (1) जो आपके साथ जंगे उहुद में शहीद हो गये हैं। इन लड़कियों का चचा इनके पूरे माल और इनकी पूरी मीरास पर खुद क़ाबिज़ हो गया है और इनके वास्ते कुछ बाक़ी नहीं रखा। इस मामले में आप क्या फ़रमाते हैं? खुदा की क़सम अगर इन लड़कियों के पास माल न होगा तो कोई शख़्स इनको निकाह में रखने के लिये तैयार न होगा। रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने यह सुनकर फ़रमाया कि अल्लाह तआ़ला तेरे हक़ में फ़ैसला फ़रमा देगा। हज़रत जाबिर रज़ियल्लाहु अ़न्हु फ़रमाते हैं कि फिर जब सूरः निसा की आयतः

يُوْصِيْكُمُ اللّٰهُ فِيْٓ اَوْلَادِكُمْ.................

नाज़िल हुई तो रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि उस औरत और उसके देवर को (लड़कियों का वह चचा जिसने सारे माल पर क़ब्ज़ा कर लिया था) बुलाओ। आपने लड़कियों के चचा से फ़रमाया कि लड़कियों को कुल माल का दो तिहाई हिस्सा दो, इनकी माँ को आठवाँ हिस्सा और जो बचे वह तुम खुद रख लो।"

(1) इमाम अबू दाऊद फ़रमाते हैं कि ये सअ़द बिन रबी की बेटियाँ थीं, साबित बिन कैस तो जंगे यमामा में शहीद हुए हैं।

इस हदीस में जिस मसले का ज़िक्र है उसमें आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने दो लड़कियों को भी दो तिहाई हिस्सा दे दिया जिस तरह दो से ज़्यादा का यही हुक्म खुद क़ुरआने करीम की उक्त आयत में बयान हुआ है।

इसके बाद इरशाद फ़रमायाः

وَاِنْ كَانَتْ وَاحِدَةً فَلَهَا النِّصْفُ

"यानी अगर मरने वाले ने अपनी औलाद में सिर्फ़ एक लड़की छोड़ी और पुरुष औलाद बिल्कुल न हो तो उसको उसके बाप या माँ के छोड़े हुए मीरास के माल का आधा हिस्सा मिलेगा, बाक़ी दूसरे वारिस ले लेंगे।"

माँ-बाप का हिस्सा

इसके बाद अल्लाह तआ़ला ने मरने वाले के माँ-बाप का हिस्सा बताया और तीन हालतें ज़िक्र फ़रमाईं।

अव्वल यह कि माँ-बाप दोनों ज़िन्दा छोड़े हों और औलाद भी छोड़ी हो, चाहे एक ही लड़का या लड़की हो, इस सूरत में माँ-बाप को छठा-छठा हिस्सा मिलेगा बाक़ी माल औलाद और बीवी या शौहर ले लेंगे, और कुछ हालात में कुछ बचा हुआ फिर वालिद को पहुँच जाता है जो उसके

लिये निर्धारित छठे हिस्से के अ़लावा होता है। इल्मे फ़राईज़ की इस्तिलाह में इस तरह के इस्तिहक़ाक़ (हक़दार होने) को **इस्तिहक़ाक़े तअ़्सीब** कहते हैं।

दूसरी हालत यह बतलाई कि मरने वाले की औलाद और भाई बहन न हों और माँ-बाप मौजूद हों। इस सूरत में मरने वाले का माल तिहाई माँ को और बाक़ी दो तिहाई वालिद को मिल जायेंगे। यह उस सूरत का हुक्म है जबकि मरने वाले के वारिसों में उसका शौहर या उसकी बीवी भी मौजूद न हों, अगर शौहर या बीवी मौजूद है तो सब से पहले उनका हिस्सा अलग किया जायेगा और बाक़ी में $1/3$ वालिदा को और $2/3$ वालिद को मिल जायेगा।

तीसरी हालत यह है कि मरने वाले की औलाद तो न हो लेकिन भाई बहन हों, जिनकी तादाद दो हो। चाहे दो भाई हों चाहे दो बहनें हों, या दो से ज़्यादा हों। इस सूरत में माँ को छठा हिस्सा मिलेगा और अगर और कोई वारिस नहीं तो बाक़ी के $5/6$ हिस्से बाप को मिल जायेंगे, भाईयों और बहनों की मौजूदगी से माँ का हिस्सा कम हो गया, लेकिन भाई बहन को कुछ भी न मिलेगा क्योंकि बाप भाई-बहन की तुलना में ज़्यादा क़रीब है, जो बचेगा बाप को मिल जायेगा। इस सूरत में माँ का हिस्सा $1/3$ के बजाय $1/6$ हो गया। "फ़राईज़" की इस्तिलाह में इसको **हजबे-नुक़सान** कहते हैं। और ये भाई बहन जिनकी वजह से माँ-बाप का हिस्सा कट रहा है चाहे हक़ीक़ी हों, चाहे बाप-शरीक हों, चाहे माँ-शरीक हों हर सूरत में इनके वजूद (होने) से माँ का हिस्सा घट जायेगा बशर्तेकि एक से ज़्यादा हों।

निर्धारित हिस्से बयान करने के बाद फ़रमायाः

اٰبَآؤُكُمْ وَاَبْنَآؤُكُمْ لَا تَدْرُوْنَ اَيُّهُمْ اَقْرَبُ لَكُمْ نَفْعًا. فَرِيْضَةً مِّنَ اللّٰهِ. اِنَّ اللّٰهَ كَانَ عَلِيْمًا حَكِيْمًا ۝

"यानी औलाद और माँ-बाप के ये हिस्से अल्लाह तआ़ला ने अपने तौर पर मुक़र्रर कर दिये हैं और अल्लाह को सब कुछ मालूम है और वह हकीम है। जो हिस्से मुक़र्रर किये गये हैं उनमें बड़ी हिक्मतें (बेहतरी) हैं, अगर तुम्हारी राय पर मीरास की तक़सीम का मामला रखा जाता तो तुम लोग तक़सीम का मदार और आधार फ़ायदा पहुँचाने को बनाते, लेकिन नफ़ा पहुँचाने वाला कौन होगा और सबसे ज़्यादा नफ़ा किससे पहुँच सकता है, इसका यक़ीनी इल्म हासिल करना तुम्हारे लिये मुश्किल था। इसलिये बजाय नाफ़े (फ़ायदा पहुँचाने वाला) होने के क़रीब होने को हुक्म का मदार और आधार बनाया।"

क़ुरआने करीम की इस आयत ने बतला दिया कि मीरास के जो हिस्से अल्लाह तआ़ला ने मुक़र्रर फ़रमाये हैं वो उसका तयशुदा हुक्म है। उसमें किसी को राय चलाने या कमी-बेशी का कोई हक़ नहीं और तुम्हें दिल के पूरे इत्मीनान के साथ इसे क़ुबूल करना चाहिये। तुम्हारे ख़ालिक़ व मालिक का यह हुक्म बेहतरीन हिक्मत व मस्लेहत पर आधारित है, तुम्हारे नफ़े (फ़ायदे) का कोई पहलू उसके इल्मी घेरे से बाहर नहीं है और जो कुछ हुक्म वह करता है किसी हिक्मत से ख़ाली नहीं होता। तुम्हें ख़ुद अपने नफ़े व नुक़सान की असली पहचान नहीं हो सकती, अगर मीरास की तक़सीम का मामला ख़ुद तुम्हारी राय पर छोड़ दिया जाता तो तुम ज़रूर अपनी

कम-फ़हमी की वजह से सही फ़ैसला न कर पाते और मीरास की तक़सीम में बेएतिदाली (अनियमितता) हो जाती, अल्लाह जल्ल शानुहू ने यह फ़रीज़ा अपने ज़िम्मे ले लिया ताकि माल की तक़सीम में अ़दल व इन्साफ़ की पूरी-पूरी रियायत हो और मय्यित का सरमाया न्यायपूर्ण तरीक़े से मुख़्तलिफ़ हक़दारों के हाथों में घूम जाये।

وَلَكُمْ نِصْفُ مَا تَرَكَ أَزْوَاجُكُمْ إِنْ لَّمْ يَكُنْ لَّهُنَّ وَلَدٌ، فَإِنْ كَانَ لَهُنَّ وَلَدٌ فَلَكُمُ الرُّبُعُ مِمَّا تَرَكْنَ مِنْ بَعْدِ وَصِيَّةٍ يُّوْصِيْنَ بِهَا أَوْ دَيْنٍ، وَلَهُنَّ الرُّبُعُ مِمَّا تَرَكْتُمْ إِنْ لَّمْ يَكُنْ لَّكُمْ وَلَدٌ، فَإِنْ كَانَ لَكُمْ وَلَدٌ فَلَهُنَّ الثُّمُنُ مِمَّا تَرَكْتُمْ مِّنْ بَعْدِ وَصِيَّةٍ تُوْصُوْنَ بِهَا أَوْ دَيْنٍ،

व लकुम् निस्फ़ु मा त-र-क अज़्वाजुकुम् इल्लम् युकुल्लहुन्-न व-लदुन्, फ़-इन् का-न लहुन्-न व-लदुन् फ़-लकुमुर्रुबुअ़ु मिम्मा तरक्-न मिम्-बअ़्दि वसिय्यतिंय्-यूसी-न बिहा औ दैनिन्, व लहुन्नर्रुबुअ़ु मिम्मा तरक्तुम् इल्लम् यकुल्लकुम् व-लदुन् फ़-इन् का-न लकुम् व-लदुन् फ़-लहुन्नस्सुमुनु मिम्मा तरक्तुम् मिम्-बअ़्दि वसिय्यतिन् तूसू-न बिहा औ दैनिन्,	और तुम्हारा है आधा माल जो कि छोड़ मरें तुम्हारी औरतें अगर न हो उनके औलाद, और अगर उनके औलाद है तो तुम्हारे वास्ते चौथाई है उसमें से जो छोड़ गयीं, उस वसीयत के बाद जो कर गयीं या क़र्ज़ के। और औरतों के लिये चौथाई माल है उसमें से जो तुम छोड़ मरो अगर न हो तुम्हारे औलाद, और अगर तुम्हारे औलाद है तो उनके लिये आठवाँ हिस्सा है उसमें से जो कुछ तुमने छोड़ा उस वसीयत के बाद जो तुम कर मरो या क़र्ज़ के बाद।

आयत के इस टुकड़े का पीछे के मज़मून से ताल्लुक़

यहाँ तक मीरास के उन हक़दारों के हिस्सों का बयान था जिनका मय्यित के साथ नसब और विलादत का रिश्ता था। उक्त आयत में कुछ दूसरे हक़दारों का ज़िक्र है, और मय्यित से उनका रिश्ता नसब (नस्ल व ख़ानदान) का नहीं बल्कि निकाह का है, जिसका यह बयान है।

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

और तुमको आधा मिलेगा उस तर्के (छोड़े हुए माल) का जो तुम्हारी बीवियाँ छोड़ जाएँ अगर उनके कुछ औलाद न हो (न पुरुष न स्त्री, न एक न एक से ज़्यादा)। और अगर उनके

कुछ औलाद हो (चाहे तुमसे हो या पहले शौहर से) तो (इस सूरत में) तुमको उनके तर्के से एक चौथाई मिलेगा (यह कुल दो सूरतें हुईं और दोनों सूरतों में बाक़ी के दूसरे वारिसों को मिलेगा लेकिन हर सूरत में यह मीरास) वसीयत (की पूर्ति के लिये माल) निकालने के बाद कि वे उसकी वसीयत कर जाएँ या क़र्ज़ (अगर हो तो उसके निकालने) के बाद (मिलेगी)। और उन बीवियों को चौथाई मिलेगा उस तर्के का जिसको तुम छोड़ जाओ (चाहे वह एक हो या कई हों तो वह चौथाई सब में बराबर बंट जायेगा) अगर तुम्हारे कुछ औलाद न हो (न पुरुष न स्त्री, न एक न एक से ज़्यादा)। और अगर तुम्हारे कुछ औलाद हो (चाहे उन बीवियों से या दूसरी औरत से) तो (इस सूरत में) उनको (चाहे एक हो या कई) तुम्हारे तर्के से आठवाँ हिस्सा मिलेगा (यह भी दो सूरतें हुईं और दोनों सूरतों में बाक़ी का माल दूसरे वारिसों को मिलेगा, लेकिन यह मीरास) वसीयत (की पूर्ति के लिये माल) निकालने के बाद कि तुम उसकी वसीयत कर जाओ या क़र्ज़ (अगर हो तो उसके भी निकालने) के बाद (मिलेगी)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

शौहर और बीवी का हिस्सा

उपरोक्त पंक्तियों में शौहर और बीवी के हिस्सों को निर्धारित किया गया और पहले शौहर का हिस्सा बताया, शायद उसको पहले लाने की वजह यह हो कि उसकी अहमियत ज़ाहिर करना मक़सूद है, क्योंकि औरत की वफ़ात के बाद शौहर दूसरे घर का आदमी हो जाता है, अगर अपने मायके में औरत का इन्तिक़ाल हुआ हो और उसका माल वहीं हो तो शौहर का हिस्सा देने से गुरेज़ किया जाता है, गोया इस ज़्यादती को रोकने के लिये शौहर का हिस्सा पहले बयान फ़रमाया और तफ़सील इसकी यह है कि मरने वाली औरत ने अगर कोई भी औलाद न छोड़ी हो तो शौहर को क़र्ज़ अदा करने और वसीयत को जारी करने के बाद मरहूमा के कुल माल का आधा मिलेगा और बाक़ी आधे में दूसरे वारिस जैसे मरहूमा के माँ-बाप, भाई-बहन क़ायदे के अनुसार हिस्सा पायेंगे।

और अगर मरने वाली ने औलाद छोड़ी हो एक हो या दो हों या इससे ज़्यादा हों, लड़का हो या लड़की हो, उस शौहर से हो जिसको छोड़कर वफ़ात पाई है या उससे पहले किसी दूसरे शौहर से हो, तो इस सूरत में मौजूदा शौहर को मरहूमा के माल में से क़र्ज़ देने और वसीयत जारी करने के बाद कुल माल का चौथाई हिस्सा मिलेगा, और बाक़ी के तीन हिस्से दूसरे वारिसों को मिलेंगे। यह शौहर के हिस्से की तफ़सील थी।

और अगर मियाँ-बीवी में से मरने वाला शौहर है और उसने कोई औलाद नहीं छोड़ी तो क़र्ज़ अदा करने और वसीयत नाफ़िज़ करने के बाद बीवी को मरने वाले के कुल माल का चौथाई मिलेगा, और अगर उसने कोई औलाद छोड़ी है चाहे उस बीवी से हो या किसी दूसरी बीवी से तो इस सूरत में क़र्ज़ देने और वसीयत पूरा करने के बाद आठवाँ हिस्सा मिलेगा। अगर बीवी एक से ज़्यादा है तो भी मज़कूरा तफ़सील के मुताबिक़ एक बीवी के हिस्से में जितनी

मीरास आयेगी वह उन सब बीवियों में तक़सीम की जायेगी, यानी हर औरत को चौथाई और आठवाँ हिस्सा नहीं मिलेगा बल्कि सब बीवियाँ चौथाई और आठवें हिस्से में शरीक होंगी, और इन दोनों हालतों में शौहर बीवी को मिलने के बाद जो कुछ तर्का (छोड़ा हुआ माल) बचेगा वह उनके दूसरे वारिसों में तक़सीम कर दिया जायेगा।

मसलाः यह देखना चाहिये कि बीवी का मेहर अदा हो गया है या नहीं? अगर बीवी का मेहर अदा न किया हो तो दूसरे क़र्ज़ों की तरह सबसे पहले कुल माल में से मेहर का क़र्ज़ अदा होगा उसके बाद तर्का तक़सीम होगा। और मेहर लेने के बाद औरत अपनी मीरास का हिस्सा भी मीरास में हिस्सेदार होने की वजह से वसूल कर लेगी। और अगर मय्यित का माल इतना है कि मेहर अदा करने के बाद कुछ नहीं बचता तो भी दूसरे क़र्ज़ों की तरह पूरा माल मेहर के क़र्ज़ में औरत को दे दिया जायेगा और किसी वारिस को कुछ हिस्सा न मिलेगा।

وَاِنْ كَانَ رَجُلٌ يُّوْرَثُ كَلٰلَةً اَوِ امْرَاَةٌ وَّلَهٗٓ اَخٌ اَوْ اُخْتٌ فَلِكُلِّ وَاحِدٍ مِّنْهُمَا السُّدُسُ ۚ فَاِنْ كَانُوْٓا اَكْثَرَ مِنْ ذٰلِكَ فَهُمْ شُرَكَاۗءُ فِي الثُّلُثِ مِنْۢ بَعْدِ وَصِيَّةٍ يُّوْصٰى بِهَآ اَوْ دَيْنٍ ۙ غَيْرَ مُضَاۗرٍّ ۚ وَصِيَّةً مِّنَ اللّٰهِ ۭ وَاللّٰهُ عَلِيْمٌ حَلِيْمٌ ۝

व इन् का-न रजुलुंय्यू-रसु कलाल-तन् अविम्र-अतुंव्-व लहू अख़ुन् औ उख़्तुन् फ़-लिकुल्लि वाहिदिम् मिन्हुमस्सुदुसु फ़-इन् कानू अक्स-र मिन् ज़ालि-क फ़हुम् शु-रका-उ फ़िस्सुलुसि मिम्-बअ्दि वसिय्यतिंय्-यूसा बिहा औ दैनिन् ग़ै-र मुज़ार्रिन् वसिय्यतम् मिनल्लाहि, वल्लाहु अ़लीमुन् हलीम (12)	और अगर वह मर्द कि जिसकी मीरास है बाप बेटा कुछ नहीं रखता या औरत हो ऐसी ही और उस मय्यित के एक भाई है या बहन है तो दोनों में से हर एक का छठा हिस्सा है, और अगर ज़्यादा हों इससे तो सब शरीक हैं एक तिहाई में उस वसीयत के बाद जो हो चुकी है या क़र्ज़ के बाद, जब औरों का नुक़सान न किया हो। यह हुक्म है अल्लाह का, और अल्लाह है सब कुछ जानने वाला, सयंम करने वाला। (12)

आयत के मज़मून का पीछे से जोड़

नसब और निकाह से जो रिश्ते पैदा होते हैं उनके मुख़्तसर हुक़ूक़ बयान करने के बाद अब ऐसे मय्यित (मरने वाले) के तर्के का हुक्म बयान किया जा रहा है जिसने औलाद या माँ-बाप न छोड़े हों।

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

और अगर कोई मय्यित जिसकी मीरास दूसरों को मिलेगी, चाहे वह मय्यित मर्द हो या औरत, ऐसी हो जिसके न उसूल हों (यानी बाप-दादा) और न फ़ुरू (यानी औलाद और बेटे की औलाद) "यानी न बाप-दादा की जानिब से कोई हो और न औलाद की जानिब से कोई हो" और उस (मरने वाले) के एक भाई या एक बहन (माँ-शरीक) हो तो उन दोनों में से हर एक को छठा हिस्सा मिलेगा। फिर अगर ये लोग इससे (यानी एक से) ज़्यादा हों (जैसे दो हों या और ज़्यादा) तो वे सब तिहाई में (बराबर के) शरीक होंगे (और इनमें पुरुष व स्त्री का बराबर हिस्सा है, और बाक़ी मीरास दूसरे वारिसों को और अगर कोई और न हो तो फिर इन्हीं को दी जायेगी। ये दो सूरतें हुई और दोनों सूरतों में यह मीरास) वसीयत (के हिसाब से माल) निकालने के बाद जिसकी वसीयत कर दी जाए या (अगर) कर्ज़ (हो तो उसके भी निकालने) के बाद (मिलेगी) शर्त यह है कि (वसीयत करने वाला) किसी (वारिस) को नुक़सान न पहुँचाए (न ज़ाहिर में न इरादे में। ज़ाहिर में यह कि जैसे तिहाई से ज़्यादा वसीयत करे तो वह वसीयत मीरास पर मुक़द्दम न होगी और इरादे से यह कि रहे तिहाई के अन्दर लेकिन नीयत यह हो कि वारिस को कम मिले। यह ज़ाहिर में नाफ़िज़ हो जायेगी लेकिन गुनाह होगा)।

यह (जिस क़द्र यहाँ तक बयान हुआ) हुक्म किया गया है ख़ुदा तआ़ला की तरफ़ से और अल्लाह तआ़ला ख़ूब जानने वाले हैं (कि कौन मानता है कौन नहीं मानता, और न मानने वालों को जो फ़ौरन सज़ा नहीं देते तो वजह यह है कि अल्लाह तआ़ला) हलीम (भी) हैं।

मआ़रिफ़ व मसाईल

'कलाला' की मीरास

आयत के इस हिस्से में कलाला की मीरास बयान की गई है। कलाला की बहुत सी तारीफ़ें (परिभाषायें) की गई हैं जो अ़ल्लामा क़ुर्तुबी रह. ने अपनी तफ़सीर में भी नक़ल की हैं। मशहूर तारीफ़ यही है जो कि ख़ुलासा-ए-तफ़सीर में बयान हुई है कि जिस मरने वाले के उसूल और फ़ुरू न हों (यानी न ऊपर की नस्ल के और न नीचे की नस्ल के) वह कलाला है।

तफ़सीर रूहुल-मआ़नी के लेखक लिखते हैं कि कलाला असल में मस्दर है जो कलाल के मायने में हैं, और कलाल के मायने हैं थक जाना, जो कमज़ोरी पर दलालत करता है। बाप बेटे वाली क़राबत (रिश्ते) के अ़लावा क़राबत को कलाला कहा गया है इसलिये कि वह क़राबत (रिश्ता) बाप बेटे की क़राबत के मुक़ाबले में कमज़ोर है।

फिर कलाला का हुक्म उस मरने वाले पर भी किया गया जिसने न बेटा छोड़ा और न बाप, और उस वारिस पर भी इतलाक़ (हुक्म) किया गया जो मरने वाले का बेटा और बाप न हो। लुग़त के एतिबार से जो इसके मायने होंगे कमज़ोर रिश्ते वाला। फिर कलाला मीरास के उस

माल को भी कहा जाने लगा जो ऐसे मय्यित (मरने वाले) ने छोड़ा हो जिसका कोई लड़का और बाप न हो।

कलाम का हासिल यह कि अगर कोई शख़्स मर्द या औरत वफ़ात पा जाये और उसके न बाप हो न दादा, और न औलाद हो और उसने एक भाई या बहन माँ-शरीक छोड़े हों तो उनमें से अगर भाई है तो उसको छठा हिस्सा मिलेगा और नहीं है तो बहन को छठा हिस्सा मिलेगा। और अगर एक से ज़्यादा हों जैसे एक भाई एक बहन हो, या दो भाई या दो बहनें हों तो ये सब मरने वाले के कुल माल के तिहाई हिस्से में शरीक होंगे, और इसमें पुरुष को स्त्री से दोहरा नहीं मिलेगा। अ़ल्लामा क़ुर्तुबी फ़रमाते हैं:

وَلَيْسَ فِي الْفَرَآئِضِ مَوْضِعٌ يَكُوْنُ فِيْهِ الذَّكَرُ وَالْاُنْثٰى سَوَآءً اِلَّا فِيْ مِيْرَاثِ الْاِخْوَةِ لِلْاُمِّ.

भाई-बहन का हिस्सा

वाज़ेह रहे कि इस आयत में अख़्याफ़ी (माँ-शरीक) बहन भाई का हिस्सा बतलाया गया है। अगरचे क़ुरआने करीम की इस आयत में यह क़ैद मज़कूर नहीं है लेकिन यह क़ैद सर्वसम्मति से मोतबर है। हज़रत सअ़द बिन अबी वक़्क़ास रज़ियल्लाहु अ़न्हु की क़िराअत भी इस आयत में इस तरह है:

وَلَهٗٓ اَخٌ اَوْ اُخْتٌ مِّنْ اُمِّهٖ

(और उसका भाई या बहन हो माँ-शरीक) जैसा कि अ़ल्लामा क़ुर्तुबी, अ़ल्लामा महमूद आलूसी, इमाम अबू बक्र जस्सास और दूसरे हज़रात ने नक़ल किया है। अगरचे यह क़िराअत मुतवातिर नहीं है लेकिन उम्मत के इजमा (एक राय) होने की वजह से अ़मल इसी पर रहा है, और इसकी एक स्पष्ट दलील यह है कि अल्लाह तबारक व तआ़ला ने सूरः निसा के ख़त्म पर भी कलाला की मीरास का ज़िक्र किया है, वहाँ बताया है कि अगर एक बहन हो तो उसको आधा मिलेगा और अगर एक भाई हो तो अपनी बहन के पूरे माल का वारिस बनेगा, और अगर दो बहनें हों तो दो तिहाई माल पायेंगी, और अगर कई भाई-बहन हों तो पुरुषों को औरतों से डबल दिया जायेगा। सूरत के ख़त्म पर जो यह हुक्म इरशाद फ़रमाया है, ऐनी यानी हक़ीक़ी बहन भाई और अ़ल्लाती यानी बाप-शरीक भाई-बहन का ज़िक्र है, अगर यहाँ अ़ल्लाती और ऐनी भाई-बहन को शामिल कर लिया जाये तो अहकाम में टकराव लाज़िम आ जायेगा।

वसीयत के मसाईल

इस रुकूअ़ में तीन मर्तबा मीरास के हिस्से बयान करके यह फ़रमाया कि हिस्सों की यह तक़सीम वसीयत और क़र्ज़ अदा करने के बाद है। जैसा कि पहले अ़र्ज़ किया जा चुका है कि मय्यित के कफ़न-दफ़न् के ख़र्चों के बाद कुल माल से क़र्ज़ अदा करने के बाद जो बचे उसमें से एक तिहाई माल में वसीयत नाफ़िज़ (लागू) होगी, अगर इससे ज़्यादा वसीयत हो तो उसका शरई

तौर पर एतिबार नहीं। ज़ाब्ते में क़र्ज़ अदा करना वसीयत नाफ़िज़ करने से पहले है। अगर तमाम माल क़र्ज़ देने में लग जाये तो न वसीयत नाफ़िज़ होगी न मीरास चलेगी। इस रुकूअ़ में तीनों जगह जहाँ-जहाँ वसीयत का ज़िक्र आया है वहाँ वसीयत का ज़िक्र क़र्ज़ से पहले किया गया है, इससे बज़ाहिर मालूम होता है कि वसीयत का हक़ क़र्ज़ से पहले है। हज़रत अ़ली रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने इस ग़लत-फ़हमी को दूर करते हुए फ़रमायाः

اِنَّكُمْ تَقْرَءُوْنَ هٰذِهِ الْاٰيَةَ مِنْ بَعْدِ وَصِيَّةٍ تُوْصُوْنَ بِهَآ اَوْ دَيْنٍ وَاِنَّ رَسُوْلَ اللّٰهِ صَلَّى اللّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ قَضٰى بِالدَّيْنِ قَبْلَ الْوَصِيَّةِ. (مشكوٰة بحواله ترمذى ص ٢٦٣)

"यानी आप हज़रात यह आयत तिलावत करते हैं:

مِنْ بَعْدِ وَصِيَّةٍ تُوْصُوْنَ بِهَآ اَوْ دَيْنٍ.

इसमें अगरचे लफ़्ज़ **वसीयत** पहले है लेकिन अ़मली तौर पर हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने इसको दैन (क़र्ज़) के बाद रखा है।"

लेकिन यह नुक्ता मालूम होना ज़रूरी है कि अगर अ़मली तौर पर वसीयत बाद में है तो लफ़्ज़ी तौर पर इसको क़र्ज़ से पहले क्यों बयान किया गया। रूहुल-मआ़नी के मुसन्निफ़ इस बारे में लिखते हैं:

وَتَقْدِيْمُ الْوَصِيَّةِ عَلَى الدَّيْنِ ذِكْرًا مَعَ اَنَّ الدَّيْنَ مُقَدَّمٌ عَلَيْهَا حُكْمًا لِاِظْهَارِ كَمَالِ الْعِنَايَةِ بِتَنْفِيْذِهَا لِكَوْنِهَا مَظَنَّةً لِلتَّفْرِيْطِ فِىْ اَدَآئِهَا......... الخ.

"यानी आयत में क़र्ज़ से पहले वसीयत को रखने की वजह यह है कि चूँकि वह मीरास की तरह बग़ैर किसी बदले के मिलती है और इसमें रिश्तेदार होना भी ज़रूरी नहीं, इसलिये वारिसों की जानिब से उसको नाफ़िज़ (लागू और जारी) करने में कोताही होने या देर हो जाने का प्रबल अन्देशा था, अपने मूरिस का माल किसी के पास जाता हुआ देखना उसको नागवार हो सकता था इसलिये वसीयत की शान का एहतिमाम फ़रमाते हुए दैन (क़र्ज़) पर इसको मुक़द्दम किया (पहले बयान किया) गया। फिर यह भी बात है कि क़र्ज़ का हर मय्यित पर होना ज़रूरी नहीं और अगर ज़िन्दगी में रहा हो तो मौत तक उसका बाक़ी रहना भी ज़रूरी नहीं, और अगर मौत के वक़्त मौजूद भी हो तब भी चूँकि उसका मुतालबा हक़दार की तरफ़ से होता है इसलिये वारिस भी इनकार नहीं कर सकते, इस वजह से उसमें कोताही का गुमान व आशंका बहुत कम है, बख़िलाफ़ वसीयत के, कि जब मय्यित माल छोड़ता है तो उसका यह भी दिल चाहता है कि सदक़ा-ए-जारिया के तौर पर अपने माल का हिस्सा किसी ख़ैर के काम में लगाकर जाये, यहाँ चूँकि उस माल में किसी की तरफ़ से मुतालबा नहीं होता इसलिये वारिसों की तरफ़ से कोताही की संभावना थी जिसका दरवाज़ा बन्द करने के लिये ख़ास तौर पर हर जगह वसीयत को मुक़द्दम (पहले बयान) किया गया।

मसलाः अगर क़र्ज़ और वसीयत न हो तो कफ़न-दफ़न के ख़र्चों के बाद बचा हुआ कुल

माल वारिसों में तक़सीम हो जायेगा।

मसला: वारिस के हक़ में वसीयत करना बातिल है, अगर किसी ने अपने लड़के लड़की, शौहर या बीवी के लिये या और किसी ऐसे शख़्स के लिये वसीयत की जिसको मीरास में हिस्सा मिलने वाला है तो उस वसीयत का कुछ एतिबार नहीं, वारिसों को सिर्फ़ मीरास का हिस्सा मिलेगा उससे ज़्यादा के वे मुस्तहिक़ नहीं। हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने हज्जतुल-विदा के ख़ुतबे में इरशाद फ़रमाया:

اِنَّ اللّٰہَ قَدْ اَعْطٰی کُلَّ ذِیْ حَقٍّ حَقَّهٗ فَلَا وَصِيَّةَ لِوَارِثٍ. (مشکوٰۃ بحوالہ ابو داؤد ص ۲۶۵)

"अल्लाह तआ़ला ने हर हक़दार को उसका हक़ दे दिया है, पस किसी वारिस के हक़ में कोई वसीयत मोतबर नहीं।"

हाँ अगर दूसरे वारिस इजाज़त दे दें तो जिस वारिस के लिये वसीयत की है उसके हक़ में वसीयत नाफ़िज़ करके बाक़ी माल शरई तौर पर तक़सीम किया जाये, जिसमें उस वारिस को भी अपने हिस्से की मीरास मिलेगी। हदीस की बाज़ रिवायतों में 'इल्ला अंय्यशाअल्-वरसतु' (हाँ अगर वारिस चाहें और राज़ी हों) फ़रमाकर यह सूरत हुक्म से अलग रखी है (जैसा कि हिदाया में बयान किया गया है)।

'ग़ै-र मुज़ार्रिन' की तफ़सीर

कलाला की मीरास के ख़ात्मे पर यह बताने के बाद कि यह मीरास वसीयत और क़र्ज़ के बाद नाफ़िज़ होगी लफ़्ज़ 'ग़ै-र मुज़ार्रिन' फ़रमाया (यानी उससे किसी का नुक़सान न हो रहा हो)। यह क़ैद अगरचे सिर्फ़ इसी जगह ज़िक्र हुई है लेकिन इससे पहले जो दो जगह वसीयत और क़र्ज़ का ज़िक्र है वहाँ पर भी मोतबर और इसी पर अ़मल है। मतलब इसका यह है कि मरने वाले के लिये वसीयत या क़र्ज़ के ज़रिये वारिसों को नुक़सान पहुँचाना जायज़ नहीं है, वसीयत करने या अपने ऊपर क़र्ज़ का झूठा इक़रार करने में वारिसों को मेहरूम करने का इरादा होना और उस इरादे पर अ़मल करना सख़्त ममनू है, और बड़ा भारी गुनाह है।

क़र्ज़ या वसीयत के ज़रिये नुक़सान पहुँचाने की कई सूरतें मुम्किन हैं। जैसे यह कि क़र्ज़ का झूठा इक़रार कर ले, किसी दोस्त वग़ैरह को दिलाने के लिये। या अपने मख़्सूस माल को जो उसका अपना ज़ाती है यह ज़ाहिर कर दे कि फ़ुलाँ शख़्स की अमानत है ताकि उसमें मीरास न चले, या एक तिहाई से ज़्यादा माल की वसीयत करे, या किसी शख़्स पर अपना क़र्ज़ हो और वह वसूल न हुआ हो लेकिन झूठ यह कह दे कि उससे क़र्ज़ वसूल हो गया ताकि वारिसों को न मिल सके, या मौत की बीमारी में एक तिहाई से ज़्यादा माल किसी को हिबा कर दे।

ये सूरतें नुक़सान पहुँचाने की हैं। हर मूरिस जो दुनिया से जा रहा है उसे ज़िन्दगी के आख़िरी लम्हों में इस तरह के नुक़सान पहुँचाने से बचने का एहतिमाम करना चाहिये।

निर्धारित हिस्सों के मुताबिक़ तक़सीम करने की ताकीद

मीरास के हिस्से बयान करने के बाद अल्लाह तआ़ला ने इरशाद फ़रमायाः

وَصِيَّةً مِّنَ اللّٰهِ

यानी जो कुछ हिस्से मुक़र्रर किये गये और क़र्ज़ और वसीयत के बारे में जो ताकीद की गई इस सब पर अ़मल करना निहायत ज़रूरी है। अल्लाह पाक की तरफ़ से एक अ़ज़ीम वसीयत और अहम व लाज़िमी हुक्म है, इसकी ख़िलाफ़वर्ज़ी न करना। फिर अतिरिक्त तंबीह करते हुए इरशाद फ़रमायाः

وَاللّٰهُ عَلِيْمٌ حَلِيْمٌ

कि अल्लाह तआ़ला सब जानता है और उसने अपने इल्म से हर एक का हाल जानते हुए हिस्से मुक़र्रर फ़रमाये। जो उक्त अहकाम पर अ़मल करेगा अल्लाह के इल्म से उसकी यह नेकी बाहर न होगी, और जो ख़िलाफ़वर्ज़ी (उल्लंघन) करेगा उसकी यह बद-किरदारी (बुरी हरकत) भी अल्लाह के इल्म में आयेगी, जिसके परिणाम स्वरूप उससे पूछगछ की जायेगी।

साथ ही यह कि जो कोई मरने वाला क़र्ज़ या वसीयत के ज़रिये नुक़सान पहुँचायेगा अल्लाह तआ़ला को उसका भी इल्म है, उसकी पकड़ से बेख़ौफ़ न रहे, हाँ यह हो सकता है कि अल्लाह तआ़ला ख़िलाफ़वर्ज़ी करने पर इस दुनिया में सज़ा न दे, इसलिये कि वह हलीम (बरदाश्त करने वाला) है ख़िलाफ़वर्ज़ी करने वाले को यह धोखा न लगना चाहिये कि वह बच गया।

تِلْكَ حُدُوْدُ اللّٰهِ ۚ وَمَنْ يُّطِعِ اللّٰهَ وَرَسُوْلَهٗ يُدْخِلْهُ جَنّٰتٍ تَجْرِيْ مِنْ
تَحْتِهَا الْاَنْهٰرُ خٰلِدِيْنَ فِيْهَا ۭ وَذٰلِكَ الْفَوْزُ الْعَظِيْمُ ۝ وَمَنْ يَّعْصِ اللّٰهَ وَرَسُوْلَهٗ وَيَتَعَدَّ حُدُوْدَهٗ
يُدْخِلْهُ نَارًا خَالِدًا فِيْهَا ۠ وَلَهٗ عَذَابٌ مُّهِيْنٌ ۝

ع ٢ ١٣

तिल्-क हुदूदुल्लाहि, व मंय्युतिअ़िल्ला-ह व रसूलहू युद्ख़िल्हु जन्नातिन् तज्री मिन् तह्तिहल्-अन्हारु ख़ालिदी-न फ़ीहा, व ज़ालिकल् फ़ौज़ुल् अ़ज़ीम (13) व मंय्यअ़्सिल्ला-ह व रसूलहू व य-तअ़द्-द हुदू-दहू युद्ख़िल्हु नारन्	ये हदें (सीमायें) बाँधी हुई अल्लाह की हैं और जो कोई हुक्म पर चले अल्लाह के और रसूल के उसको वह दाख़िल करेगा जन्नतों में जिनके नीचे बहती हैं नहरें, हमेशा रहेंगे उनमें, और यही है बड़ी मुराद मिलनी। (13) और जो कोई नाफ़रमानी करे अल्लाह की और उसके रसूल की और निकल जाये उसकी हदों से, डालेगा उसको आग में, हमेशा रहेगा

ख़ालिदन् फ़ीहा व लहू अज़ाबुम् मुहीन (14) ✿	उसमें और उसके लिये ज़िल्लत का अज़ाब है। (14) ✿

इन आयतों के मज़मून का पीछे से ताल्लुक़

मीरास के ज़िक्र हुए अहकाम बयान करने के बाद इन दो आयतों में उन अहकाम को मानने और उन पर अ़मल करने की फ़ज़ीलत और नाफ़रमानी करने के बुरे अन्जाम का बयान है जिससे उक्त अहकाम की अहमियत ज़ाहिर करना मक़सूद है।

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

ये सब अहकाम जो ज़िक्र हुए (मीरास से संबन्धित या यतीमों के अहकाम समेत) अल्लाह तआ़ला के ज़ाब्ते (क़ानून) हैं। और जो शख़्स अल्लाह और रसूल की पूरी इताअ़त करेगा (यानी इन ज़ाब्तों की पाबन्दी करेगा) अल्लाह तआ़ला उसको ऐसी जन्नतों में (फ़ौरन) दाख़िल कर देंगे जिनके (महलों के) नीचे नहरें जारी होंगी। हमेशा-हमेशा उनमें रहेंगे, और यह बड़ी कामयाबी है। और जो शख़्स अल्लाह तआ़ला और रसूल का कहना न मानेगा और बिल्कुल ही उसके ज़ाब्तों से निकल जाएगा (यानी पाबन्दी को ज़रूरी भी न समझेगा और यह हालत कुफ़्र की है) उसको (दोज़ख़ की) आग में दाख़िल कर देंगे, इस तरह से कि वह उसमें हमेशा-हमेशा रहेगा, और उसको ऐसी सज़ा होगी जिसमें ज़िल्लत भी है।

मआ़रिफ़ व मसाईल

क़ुरआने करीम का यह अन्दाज़ और तरीक़ा है कि अहकाम और अ़क़ीदों के बयान के बाद पूरक के तौर पर मानने वालों के लिये तरग़ीब (शौक़ दिलाने) और उनकी फ़ज़ीलत का ज़िक्र होता है, और न मानने वालों के लिये डराने, सज़ा और उनकी बुराई मज़कूर होती है।

यहाँ भी चूँकि अहकाम का ज़िक्र था इसलिये आख़िर की इन दो आयतों में इताअ़त करने वालों और नाफ़रमानों के परिणामों का ज़िक्र कर दिया गया।

मीरास के अहकाम का बाक़ी बयान

मुसलमान काफ़िर का वारिस नहीं बन सकता

अगरचे मीरास की तक़सीम नसबी रिश्ते पर रखी गई है लेकिन इसमें भी कुछ चीज़ें अलग और हुक्म से बाहर हैं- अव्वल यह कि मूरिस (जो मीरास छोड़कर मरा है) और वारिस (मीरास पाने वाला) दो अलग-अलग दीन वाले न हों, लिहाज़ा मुसलमान किसी काफ़िर का और काफ़िर किसी मुसलमान का वारिस नहीं होगा, चाहे उनमें आपस में कोई भी नसबी रिश्ता हो। हुज़ूरे

अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमायाः

لَا يَرِثُ الْمُسْلِمُ الْكَافِرَ وَلَا الْكَافِرُ الْمُسْلِمَ. (مشکوٰۃ ص ۲۶۳)

"यानी मुसलमान काफ़िर का और काफ़िर मुसलमान का वारिस नहीं बन सकता।"

यह हुक्म उस सूरत से मुताल्लिक़ है जबकि पैदाईश के बाद ही से कोई शख़्स मुस्लिम या काफ़िर हो, लेकिन अगर कोई शख़्स पहले मुसलमान था फिर (अल्लाह की पनाह) इस्लाम से फिर गया और मुर्तद हो गया, अगर ऐसा शख़्स मर जाये या मक़्तूल हो जाये तो उसका वह माल जो इस्लाम के ज़माने में कमाया था उसके मुसलमान वारिसों को मिलेगा और जो इस्लाम से फिर जाने के बाद कमाया हो वह बैतुल-माल (सरकारी ख़ज़ाने) में जमा कर दिया जायेगा।

लेकिन अगर औरत मुर्तद हो गई (यानी इस्लाम मज़हब छोड़कर बेदीन हो गयी) तो उसका सारा माल चाहे इस्लाम के ज़माने में हासिल हुआ हो या इस्लाम से फिर जाने के बाद के ज़माने में उसके मुसलमान वारिसों को मिलेगा, लेकिन ख़ुद मुर्तद मर्द हो या औरत उसको न किसी मुसलमान से मीरास मिलेगी न किसी मुर्तद से।

क़ातिल की मीरास

अगर कोई शख़्स ऐसे आदमी को क़त्ल कर दे जिसके माल में उसको मीरास पहुँचती हो तो यह क़ातिल उस शख़्स की मीरास से मेहरूम होगा। हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम का इरशाद हैः

اَلْقَاتِلُ لَا يَرِثُ (مشکوٰۃ ص ۲۶۳)

"यानी क़ातिल वारिस नहीं होगा।" अलबत्ता ग़लती और चूक से क़त्ल की बाज़ सूरतें इससे अलग हैं। (तफ़सील मसाईल की किताबों में है)

पेट में जो बच्चा है उसकी मीरास

अगर किसी शख़्स ने अपनी कुछ औलाद छोड़ी और बीवी के पेट में भी बच्चा है तो यह बच्चा भी वारिसों की सूची में आयेगा, लेकिन चूँकि यह पता चलाना दुश्वार है कि पेट में लड़का है या लड़की, या एक से ज़्यादा बच्चे हैं, इसलिये बच्चा पैदा होने तक मीरास की तक़सीम स्थगित रखना मुनासिब होगा। और अगर तक़सीम करना ज़रूरी ही हो तो फ़िलहाल एक लड़का या एक लड़की फ़र्ज़ करके दोनों के एतिबार से दो सूरतें फ़र्ज़ की जायें, उन दोनों सूरतों में से जिस सूरत में वारिसों को कम मिलता हो वह उनमें तक़सीम कर दिया जाये और बाक़ी उस हमल (गर्भ) के लिये रखा जाये।

इद्दत वाली औरत की मीरास

जिस शख़्स ने अपनी बीवी को तलाक़ दे दी और तलाक़ रजई है फिर तलाक़ से रुजू और

इद्दत ख़त्म होने से पहले वफ़ात पा गया तो यह औरत मीरास में हिस्सा पायेगी। इसलिये कि निकाह बाक़ी है।

और अगर किसी शख़्स ने मौत की बीमारी में बीवी को तलाक़ दी अगरचे **तलाक़े बायना** या **तलाक़े मुग़ल्लज़ा** ही हो, और इद्दत ख़त्म होने से पहले-पहले मर गया तब भी वह औरत उसकी वारिस होगी और औरत को वारिस बनाने की वजह से दो इद्दतों में से जो सबसे ज़्यादा लम्बी हो उसी को इख़्तियार किया जायेगा, जिसकी मुख़्तसर वज़ाहत यह है किः

तलाक़ की इद्दत तीन हैज़ (माहवारी) है और मौत की इद्दत चार महीने दस दिन है, इन दोनों में जो इद्दत ज़्यादा दिनों की हो उसी को इद्दत क़रार दिया जायेगा ताकि जहाँ तक मुम्किन हो औरत को हिस्सा मिल सके।

और अगर किसी शख़्स ने मौत की बीमारी से पहले **बायना** या **मुग़ल्लज़ा** तलाक़ दी और उसके चन्द दिन बाद औरत की इद्दत में वह मर गया तो इस सूरत में उसको मीरास में से हिस्सा नहीं मिलेगा, अलबत्ता अगर **तलाक़े रजई** दी है तो वह वारिस होगी।

मसलाः अगर किसी औरत ने शौहर की मौत वाली बीमारी में ख़ुद से **ख़ुला** कर लिया (यानी कुछ ले-देकर तलाक़ ले ली) तो वारिस नहीं होगी अगरचे उसका शौहर उसकी इद्दत के दौरान मर जाये।

अ़सबात की मीरास

फ़राईज़ (मीरास) के निर्धारित हिस्से बारह वारिसों के लिये तयशुदा हैं और उन वारिसों को **असहाबे-फ़ुरूज़** कहा जाता है जिनकी तफ़सील किसी क़द्र ऊपर गुज़र चुकी। अगर **असहाबे फ़ुरूज़** में से कोई न हो या असहाबे फ़ुरूज़ के हिस्से दे देने के बाद कुछ माल बच जाये तो वह **अ़सबा** को दे दिया जाता है, और बाज़ मर्तबा एक ही शख़्स को दोनों हैसियतों से माल मिल जाता है। कुछ सूरतों में मय्यित की औलाद और मय्यित का वालिद भी **अ़सबा** हो जाते हैं, दादा की औलाद यानी चचा और बाप की औलाद यानी भाई भी **अ़सबा** हो जाते हैं।

अ़सबात की कई क़िस्में हैं जिनकी तफ़सील फ़राईज़ (इल्मे मीरास) की किताबों में मौजूद है। यहाँ एक मिसाल लिखी जाती है। जैसे ज़ैद मर गया और उसने अपने पीछे चार वारिस छोड़े बीवी, लड़की, माँ और चचा। तो उसके माल के कुल चौबीस हिस्से किये जायेंगे जिनमें से आधा यानी बारह हिस्से लड़की को $1/8$ के हिसाब से तीन हिस्से बीवी को $1/6$ के हिसाब से चार हिस्से माँ को और बाक़ी के पाँच हिस्से जो बचे वे अ़सबा होने की हैसियत से चचा को मिलेंगे।

मसलाः अ़सबात अगर न हों तो **असहाबे फ़ुरूज़** से जो माल बचे वह उनके हिस्सों के हिसाब से उनको दे दिया जाता है और इसको इल्मे फ़राईज़ की इस्तिलाह में **रद्द** कहते हैं।

मसलाः अगर असहाबे फ़ुरूज़ में से कोई न हो और अ़सबात में भी कोई न हो तो **ज़विल्-अरहाम** को मीरास पहुँच जाती है। ज़विल्-अरहाम की सूची लम्बी है- नवासे, नवासियाँ, बहनों की औलाद, फूफियाँ, मामूँ, ख़ाला ये लोग ज़विल्-अरहाम की सूची में आते हैं, और इस

मसले में तफ़सील है जिसका यह मौक़ा नहीं, यहाँ इसी पर इक्तिफ़ा (बस) किया जाता है।

وَالّٰتِیْ یَاْتِیْنَ الْفَاحِشَةَ مِنْ نِّسَآئِكُمْ فَاسْتَشْهِدُوْا عَلَیْهِنَّ اَرْبَعَةً مِّنْكُمْ فَاِنْ شَهِدُوْا فَاَمْسِكُوْهُنَّ فِی الْبُیُوْتِ حَتّٰی یَتَوَفّٰهُنَّ الْمَوْتُ اَوْ یَجْعَلَ اللّٰهُ لَهُنَّ سَبِیْلًا ۝ وَالَّذٰنِ یَاْتِیٰنِهَا مِنْكُمْ فَاٰذُوْهُمَا فَاِنْ تَابَا وَاَصْلَحَا فَاَعْرِضُوْا عَنْهُمَا اِنَّ اللّٰهَ كَانَ تَوَّابًا رَّحِیْمًا ۝

वल्लाती यअ्तीनल्-फ़ाहि-श-त मिन्निसा-इकुम् फ़स्तश्हिदू अ़लैहिन्-न अर्ब-अ़तम् मिन्कुम् फ़-इन् शहिदू फ़-अम्सिकूहुन्-न फ़िल्बुयूति हत्ता य-तवफ़्फ़ाहुन्नल्मौतु औ यज्अ़लल्लाहु लहुन्-न सबीला (15) वल्लज़ानि यअ्तियानिहा मिन्कुम् फ़-आज़ूहुमा फ़-इन् ताबा व अस्लहा फ़-अअ्रिज़ू अ़न्हुमा, इन्नल्ला-ह का-न तव्वाबर्रहीमा (16)	और जो कोई बदकारी करे तुम्हारी औरतों में से तो गवाह लाओ उन पर चार मर्द अपनों में से, फिर अगर वे गवाही दें तो बन्द रखो उन औरतों को घरों में यहाँ तक कि उठा ले उनको मौत या मुक़र्रर कर दे अल्लाह उनके लिये कोई राह (15) और जो दो मर्द करें तुम से वही बदकारी तो उनको ईज़ा (तकलीफ़ और सज़ा) दो, फिर अगर वे दोनों तौबा करें और अपनी इस्लाह (सुधार) कर लें तो उनका ख़्याल छोड़ दो, बेशक अल्लाह तौबा क़ुबूल करने वाला मेहरबान है। (16)

इन आयतों के मज़मून का पीछे से संबन्ध

पहले गुज़री आयतों में उन बेएतिदालियों (अनियमितताओं) की इस्लाह की गई है जो जाहिलीयत (इस्लाम से पहले के) ज़माने में यतीमों के हक़ और मीरास पाने वालों के सिलसिले में होती थीं। ये लोग औरतों पर भी ज़ुल्म व सितम ढाते थे और उनके मामले में बुरी रस्मों (कुरीतियों) में मुब्तला थे, जिन औरतों से निकाह जायज़ नहीं है उनसे निकाह कर लेते थे।

अब इन आयतों में इन मामलात की इस्लाह फ़रमाते हैं और अगर किसी औरत से कोई ऐसा क़सूर हो जाये जो शरई क़सूर हो तो मुनासिब सज़ा की इजाज़त देते हैं और इस्लाह व तादीब का यह मज़मून भी अगले दो तीन रुकूअ़ तक चला गया है।

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

और जो औरतें बेहयाई का काम (यानी ज़िना) करें तुम्हारी (मन्कूहा) बीवियों में से सो तुम लोग उन औरतों (के इस फ़ेल) पर चार आदमी अपनों में से (यानी मुसलमान आज़ाद, आ़क़िल,

बालिग़ पुरुष) गवाह कर लो (ताकि उनकी गवाही पर हाकिम आगे की सज़ा जारी करें)। सो अगर वे गवाही दे दें तो (उनकी सज़ा यह है कि) तुम उनको (हाकिम के हुक्म से) घरों के अन्दर (सज़ा के तौर पर) रोक कर रखो, यहाँ तक कि (या तो) मौत उनका ख़ात्मा कर दे (और) या अल्लाह तआ़ला उनके लिए कोई और राह (यानी दूसरा हुक्म) तजवीज़ फ़रमा दें। (बाद में जो दूसरा हुक्म इस सिलसिले में तजवीज़ हुआ उसका ज़िक्र **मआ़रिफ़ व मसाईल** में आ रहा है) और (ज़िना की सज़ा में निकाह वाली औरत की तख़्सीस नहीं बल्कि) जो दो शख़्स भी बेहयाई का काम (यानी ज़िना) करें तुम में से (यानी बालिग़ आ़क़िल मुसलमानों में से), तो उन दोनों को तकलीफ़ पहुँचाओ, फिर (बाद तकलीफ़ व सज़ा देने के) अगर वे दोनों (पिछली हरकत से) तौबा कर लें और (आईन्दा के लिये अपनी) इस्लाह कर लें (यानी फिर ऐसा फ़ेल उनसे सर्ज़द न हो) तो उन दोनों से कुछ तअ़र्रुज़ "यानी रोक-टोक" न करो (क्योंकि) बिला शुब्हा अल्लाह तआ़ला तौबा क़ुबूल करने वाले हैं, रहमत करने वाले हैं (इसलिये अपनी रहमत से अल्लाह तआ़ला ने उनकी ख़ता माफ़ कर दी, फिर तुमको भी उनके सताने के पीछे न पड़ना चाहिये)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

इन आयतों में ऐसे मर्दों और औरतों के बारे में सज़ा तजवीज़ की गई है जिनसे बेहयाई यानी ज़िना का सुदूर हो जाये। पहली आयत में फ़रमाया कि जिन औरतों से ऐसी हरकत हो जाये तो उसके सुबूत के लिये चार गवाह मर्द तलब किये जायें, यानी जिन हाकिमों के पास यह मामला पेश किया जाये तो वे ज़िना के सुबूत के लिये वे चार गवाह तलब करें जो गवाही की अहलियत रखते हों, और गवाही भी मर्दों की ज़रूरी है, इस सिलसिले में औरतों की गवाही मोतबर नहीं।

ज़िना के गवाहों में शरीअ़त ने दो तरह से सख़्ती की है। चूँकि यह मामला बहुत अहम है जिससे इ़ज़्ज़त और पाकदामनी पर दाग़ लगता है और ख़ानदानों की आबरू व साख का मसला सामने आ जाता है। पहले तो यह शर्त लगाई कि मर्द ही गवाह हों, औरतों की गवाही का एतिबार नहीं किया गया। दूसरे यह कि चार मर्दों का होना ज़रूरी क़रार दिया, ज़ाहिर है कि यह शर्त बहुत सख़्त है जिसका वजूद में आना बहुत ही कम हो सकता है। यह सख़्ती इसलिये इख़्तियार की गई कि औरत का शौहर या उसकी माँ या बीवी बहन ज़ाती दुश्मनी और बैर की वजह से ख़्वाह-म-ख़्वाह इल्ज़ाम न लगा दें। या दूसरे बुरा चाहने वाले लोग दुश्मनी की वजह से इल्ज़ाम और तोहमत लगाने की जुर्रत न कर सकें। क्योंकि अगर चार अफ़राद से कम लोग ज़िना की गवाही दें तो उनकी गवाही ग़ैर मोतबर है, ऐसी सूरत में दावेदार और गवाह सब झूठे क़रार दिये जाते हैं और एक मुसलमान पर इल्ज़ाम लगाने की वजह से उन पर "तोहमत की सज़ा" जारी कर दी जाती है।

सूरः नूर में स्पष्ट तौर पर इरशाद फ़रमायाः

لَوْلَا جَآءُوْ عَلَيْهِ بِاَرْبَعَةِ شُهَدَآءَ فَاِذْ لَمْ يَاْتُوْا بِالشُّهَدَآءِ فَاُولٰٓئِكَ عِنْدَ اللّٰهِ هُمُ الْكٰذِبُوْنَ۝ (٢٤ : ١٣)

जिसका हासिल यह है कि जो लोग चार गवाह न ला सकें वे झूठे हैं।

कुछ उलेमा और अकाबिर ने चार गवाहों की ज़रूरत की हिक्मत बयान करते हुए फ़रमाया कि इस मामले में चूँकि दो अफ़राद मुलव्वस (लिप्त) होते हैं मर्द और औरत, तो गोया कि यह एक ही मामला गहराई से देखें तो दो मामलों के हुक्म में है, और हर एक मामला दो गवाहों का तक़ाज़ा करता है, लिहाज़ा इसके लिये चार गवाह ज़रूरी होंगे।

आयत के आख़िर में फ़रमाया कि अगर वे दोनों तौबा कर लें और अपनी इस्लाह (सुधार) कर लें तो उनसे तअर्रुज़ मत करो। इसका मतलब यह है कि सज़ा देने के बाद अगर उन्होंने तौबा कर ली तो फिर उन्हें मलामत मत करो और फिर सज़ा मत दो। यह मतलब नहीं कि तौबा से सज़ा भी माफ़ हो गई। इसलिये कि यह तौबा सज़ा के बाद बयान हुई है जैसा कि लफ़्ज़ फ़ा से भी इस तरफ़ इशारा ज़ाहिर है। हाँ अगर तौबा न की हो तो सज़ा के बाद भी मलामत कर (यानी बुरा-भला कह) सकते हैं।

क़ुरआने करीम की इन दो आयतों में ज़िना के लिये कोई निर्धारित सज़ा बयान नहीं की गई बल्कि सिर्फ़ इतना कहा गया है कि उनको तकलीफ़ पहुँचाओ और ज़िनाकार औरतों को घरों में बन्द कर दो।

तकलीफ़ पहुँचाने का भी कोई ख़ास तरीक़ा नहीं बतलाया गया और हाकिमों की मर्ज़ी पर इसको छोड़ दिया गया। हज़रत इब्ने अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु फ़रमाते हैं कि यहाँ तकलीफ़ देने के मायने यह हैं कि उनको ज़बान से शर्म दिलाई जाये और शर्मिन्दा किया जाये, और हाथ से भी जूते वग़ैरह के ज़रिये उनकी मरम्मत की जाये। हज़रत इब्ने अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु का यह क़ौल भी बतौर मिसाल के मालूम होता है, असल बात वही है कि यह मामला हाकिमों (मुस्लिम जज और अमीर) की राय पर छोड़ दिया गया है।

नाज़िल होने के एतिबार से क़ुरआने करीम की इन दो आयतों की तरतीब यह है कि शुरू में तो उनको तकलीफ़ देने का हुक्म नाज़िल हुआ और उसके बाद ख़ास तौर से औरतों के लिये यह हुक्म बयान किया गया कि उनको घरों में क़ैद रखा जाये यहाँ तक कि वह औरत मर जाये। उसकी ज़िन्दगी ही में आने वाला हुक्म आ जायेगा तो बतौर सज़ा के उसी को नाफ़िज़ कर दिया जायेगा।

चुनाँचे बाद में "वह सबील" बयान कर दी गई जिसका अल्लाह जल्ल शानुहू ने इस आयत में वायदा फ़रमाया था। हज़रत इब्ने अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु "सबील" की तफ़सीर फ़रमाते हैं:

يَعْنِى الرَّجْمُ لِلثَّيِّبِ وَالْجَلْدُ لِلْبِكْرِ.

कि शादीशुदा के हक़ में ज़िना की हद (सज़ा) उसको संगसार कर देना है और ग़ैर-शादीशुदा के लिये उसको कोड़े मारना। (बुख़ारी, किताबुत्तफ़सीर पेज 657)

मरफ़ूअ़ हदीस में भी इस 'सबील' का बयान रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से वज़ाहत के साथ साबित है और शादीशुदा ग़ैर-शादीशुदा हर एक के लिये अलग-अलग हुक्म

बयान किया गया है। रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने हज़रत माइज़ बिन मालिक रज़ियल्लाहु अ़न्हु और क़बीला अज़्द की एक औरत पर ज़िना की हद (सज़ा) जारी फ़रमाई थी और ये दोनों चूँकि शादीशुदा थे इसलिये इनको संगसार कर दिया (यानी पत्थरों से मार-मारकर हलाक किया) गया था, तथा एक यहूदी को भी ज़िना की वजह से संगसार किया गया था और उसके हक़ में यह फ़ैसला तौरात के हुक्म पर किया गया था।

ग़ैर-शादीशुदा (अविवाहित) का हुक्म ख़ुद क़ुरआने करीम की सूरः नूर में मज़कूर है:

اَلزَّانِيَةُ وَالزَّانِىْ فَاجْلِدُوْا كُلَّ وَاحِدٍ مِّنْهُمَا مِائَةَ جَلْدَةٍ.

"ज़िनाकार औरत और ज़िनाकार मर्द में से हर एक को सौ कोड़े मारो।" (24:13)

शुरू में **रजम** (संगसार) के हुक्म के लिये क़ुरआने करीम की आयत भी नाज़िल की गई थी लेकिन बाद में उसकी तिलावत मन्सूख़ कर दी गई, अलबत्ता हुक्म बाक़ी रखा गया।

हज़रत उमर रज़ियल्लाहु अ़न्हु का इरशाद है:

اِنَّ اللّٰهَ بَعَثَ مُحَمَّدًا بِالْحَقِّ وَاَنْزَلَ عَلَيْهِ الْكِتٰبَ فَكَانَ مِمَّآ اَنْزَلَ اللّٰهُ تَعَالٰى اٰيَةَ الرَّجْمِ رَجَمَ رَسُوْلُ اللّٰهِ صَلَّى اللّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ وَرَجَمْنَا بَعْدَهٗ وَالرَّجْمُ فِىْ كِتَابِ اللّٰهِ حَقٌّ عَلٰى مَنْ زَنٰى اِذَآ اَحْصَنَ مِنَ الرِّجَالِ وَالنِّسَآءِ... الخ

(بخاری مسلم، بحواله مشکوٰة ص ۳۰۹)

"अल्लाह तआ़ला ने मुहम्मद सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को सच्चा नबी बनाकर भेजा और उनपर किताब भी नाज़िल कर दी। जो कुछ वही अल्लाह तआ़ला ने नाज़िल फ़रमाई उसमें रजम (संगसार करने) की आयत भी थी, रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने रजम किया और हमने भी उनके बाद रजम किया। रजम का हुक्म उस शख़्स के लिये साबित है जो ज़िना करे और वह शादीशुदा हो, चाहे मर्द हो या औरत।"

ख़ुलासा यह कि इन आयतों में जो घरों में क़ैद करने और तकलीफ़ देने का हुक्म है वह शरई हद (सज़ा) नाज़िल होने पर मन्सूख़ (निरस्त) हो गया, और अब ज़िना की सज़ा सौ कोड़े या रजम पर अ़मल करना लाज़िम होगा। अधिक तफ़सील इन्शा-अल्लाह तआ़ला सूरः नूर में बयान होगी।

ग़ैर-फ़ितरी तरीक़े से जिन्सी इच्छा पूरी करने का हुक्म

क़ाज़ी सनाउल्लाह साहिब पानीपती रहमतुल्लाहि अ़लैहि **तफ़सीरे-मज़हरी** में लिखते हैं कि "मेरे नज़दीक 'अल्लज़ानि यअ्तियानिहा' का मिस्दाक़ (मुराद) वे लोग हैं जो ग़ैर-फ़ितरी तरीक़े पर शहवत (जिन्सी इच्छा) पूरी करते हैं यानी मर्द मर्द से इच्छा पूरी (अर्थात् कुकर्म) करते हैं।"

क़ाज़ी साहिब रह. के अ़लावा दूसरे हज़रात ने भी इसी क़ौल को लिया है। क़ुरआन मजीद के अलफ़ाज़ में लफ़्ज़ 'अल्लज़ानि यअ्तियानिहा' मौसूल और सिला दोनों मुज़क्कर (पुरुष लिंग) के अलफ़ाज़ हैं इसलिये इन हज़रात का यह क़ौल बईद नहीं है, अगरचे जिन हज़रात ने ज़ानी और ज़ानिया मुराद लिया है उन्होंने बतौर ग़लबे के मुज़क्कर का यह कलिमा ज़ानिया के लिये

भी शामिल रखा है लेकिन मौक़े की मुनासबत से समलैंगिकता की हुर्मत व शिद्दत और उसकी जज़ा व सज़ा का ज़िक्र इस जगह बेजा न होगा।

हदीसों और सहाबा व बुज़ुर्गों के क़ौल व अ़मल से इस सिलसिले में जो कुछ साबित होता है उसमें से बतौर नमूना कुछ नक़ल किया जाता है:

عَنْ اَبِیْ هُرَیْرَةَ رَضِیَ اللّٰهُ عَنْهُ اَنَّ رَسُوْلَ اللّٰهِ صَلَّى اللّٰهُ عَلَیْهِ وَسَلَّمَ قَالَ لَعَنَ اللّٰهُ سَبْعَةً مِّنْ خَلْقِهٖ مِنْ فَوْقِ سَبْعِ سَمٰوٰتِهٖ وَرَدَّدَ اللَّعْنَةَ عَلٰی وَاحِدٍ مِّنْهُمْ ثَلَاثًا وَلَعَنَ كُلَّ وَاحِدٍ مِّنْهُمْ لَعْنَةً تَكْفِیْهِ قَالَ مَلْعُوْنٌ مَنْ عَمِلَ عَمَلَ قَوْمِ لُوْطٍ، مَلْعُوْنٌ مَنْ عَمِلَ عَمَلَ قَوْمِ لُوْطٍ. مَلْعُوْنٌ مَنْ عَمِلَ عَمَلَ قَوْمِ لُوْطٍ. (الترغیب والترهیب)

"हज़रत अबू हुरैरह रज़ियल्लाहु अ़न्हु से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया- अल्लाह तआ़ला ने अपनी मख़्लूक़ में से सात क़िस्म के लोगों पर सात आसमानों के ऊपर से लानत भेजी है और उन सात में से एक पर तीन-तीन दफ़ा लानत भेजी है और बाक़ी पर एक दफ़ा। फ़रमाया- मलऊन है वह शख़्स जो क़ौमे लूत वाला अ़मल करता है, मलऊन है वह शख़्स जो क़ौमे लूत वाला अ़मल करता है, मलऊन है वह शख़्स जो क़ौमे लूत वाला अ़मल करता है।" (यानी मर्द या औ़रत के साथ ग़ैर-फ़ितरी तरीक़े से अपनी हवस पूरी करता है। **हिन्दी अनुवादक**)

وَعَنْ اَبِیْ هُرَیْرَةَ رَضِیَ اللّٰهُ عَنْهُ عَنِ النَّبِیِّ صَلَّى اللّٰهُ عَلَیْهِ وَسَلَّمَ قَالَ اَرْبَعَةٌ یُصْبِحُوْنَ فِیْ غَضَبِ اللّٰهِ وَیُمْسُوْنَ فِیْ سَخَطِ اللّٰهِ قُلْتُ مَنْ هُمْ یَا رَسُوْلَ اللّٰهِ قَالَ الْمُتَشَبِّهُوْنَ مِنَ الرِّجَالِ بِالنِّسَآءِ وَالْمُتَشَبِّهَاتُ مِنَ النِّسَآءِ بِالرِّجَالِ وَالَّذِیْ یَاْتِی الْبَهِیْمَةَ وَالَّذِیْ یَاْتِی الرِّجَالَ. (الترغیب والترهیب)

"हज़रत अबू हुरैरह रज़ियल्लाहु अ़न्हु से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि चार आदमी सुबह के वक़्त अल्लाह जल्ल शानुहू के ग़ज़ब में होते हैं और शाम को भी अल्लाह जल्ल शानुहू उनसे नाराज़ होते हैं। मैंने पूछा वे कौन लोग हैं? आपने फ़रमाया वे मर्द जो औ़रतों की तरह बनते हैं और वे औ़रतें जो मर्दों की तरह बनती हैं, और वह शख़्स जो चौपाये (जानवर) के साथ ग़ैर-फ़ितरी हरकत करता है और वह मर्द जो मर्द से अपनी जिन्सी इच्छा पूरी करता है।"

وَعَنِ ابْنِ عَبَّاسٍ رَضِیَ اللّٰهُ عَنْهُمَا قَالَ قَالَ رَسُوْلُ اللّٰهِ صَلَّى اللّٰهُ عَلَیْهِ وَسَلَّمَ مَنْ وَجَدْتُّمُوْهُ یَعْمَلُ عَمَلَ قَوْمِ لُوْطٍ فَاقْتُلُوا الْفَاعِلَ وَ الْمَفْعُوْلَ بِهٖ. (الترغیب والترهیب)

"हज़रत इब्ने अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने इरशाद फ़रमाया- जिसको तुम क़ौमे लूत की तरह ग़ैर-फ़ितरी हरकत करता हुआ देख लो तो फ़ाइ़ल और मफ़ऊल (यानी करने और कराने वाला) दोनों को मार डालो।"

हाफ़िज़ ज़कीयुद्दीन रह. ने **तरग़ीब व तरहीब** में लिखा है कि चार ख़ुलफ़ा- हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़, हज़रत अ़ली, हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर और हिशाम बिन अ़ब्दुल-मलिक ने अपने

ज़मानों में ग़ैर-फ़ितरी हरकत (यानी कुकर्म) करने वालों को आग में जला डाला था।

इस सिलसिले में उन्होंने मुहम्मद बिन मुन्कदिर की रिवायत से एक वाक़िआ भी लिखा है कि ख़ालिद बिन वलीद रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ रज़ियल्लाहु अ़न्हु को ख़त लिखा कि यहाँ अ़रब के एक इलाक़े में एक मर्द है जिसके साथ औरत वाला काम (यानी उससे जिन्सी इच्छा पूरी) किया जाता है।

हज़रत अबू बक्र रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने इस सिलसिले में सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम को जमा किया और उनमें हज़रत अ़ली रज़ियल्लाहु अ़न्हु भी तशरीफ़ लाये और हज़रत अ़ली रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने फ़रमाया कि ये एक ऐसा गुनाह है जिसके करने का अपराध सिवाय एक क़ौम के किसी ने नहीं किया और अल्लाह जल्ल शानुहू ने उस क़ौम के साथ जो मामला किया वह आप सब को मालूम है। मेरी राय है कि उसे आग में जला दिया जाये। दूसरे सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम ने भी इस पर इत्तिफ़ाक़ कर लिया और हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने उसे आग में जला देने का हुक्म दे दिया।

ज़िक्र की गयी रिवायतों में क़ौमे लूत के अ़मल का हवाला बार-बार आया है। हज़रत लूत अ़लैहिस्सलाम जिस क़ौम की तरफ़ नुबुव्वत देकर भेजे किये गये थे वह क़ौम कुफ़्र व शिर्क के अ़लावा इस बदतरीन और ग़ैर-फ़ितरी हरकत की भी आ़दी थी। और जब हज़रत लूत अ़लैहिस्सलाम की दावत व तब्लीग़ का उन पर असर न हुआ तो अल्लाह तआ़ला के हुक्म से फ़रिश्तों ने उस क़ौम की बस्तियों को ज़मीन से उठा लिया और औंधा करके ज़मीन पर फेंक दिया, जिसका ज़िक्र सूरः आराफ़ में आयेगा इन्शा-अल्लाह तआ़ला।

उपरोक्त रिवायतें समलैंगिकता से मुताल्लिक़ थीं, रिवायतों में औरतों के साथ ग़ैर-फ़ितरी फ़ेल करने पर भी बहुत सख़्त वईदें (सज़ा की धमकियाँ) आई हैं:

عَنِ ابْنِ عَبَّاسٍ رَضِیَ اللّٰهُ عَنْهُمَا اَنَّ رَسُوْلَ اللّٰهِ صَلَّی اللّٰهُ عَلَیْهِ وَسَلَّمَ قَالَ لَا یَنْظُرُ اللّٰهُ عَزَّوَجَلَّ اِلٰی رَجُلٍ اَتٰی رَجُلًا اَوِامْرَاَةً فِیْ دُبُرِهَا. (الترغیب والترهیب)

"हज़रत इब्ने अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया- अल्लाह जल्ल शानुहू उस मर्द की तरफ़ रहमत की निगाह से नहीं देखते जो मर्द या औ़रत के साथ ग़ैर-फ़ितरी फ़ेल करे।"

عَنْ خُزَیْمَةَ بْنِ ثَابِتٍ قَالَ قَالَ رَسُوْلُ اللّٰهِ صَلَّی اللّٰهُ عَلَیْهِ وَسَلَّمَ اِنَّ اللّٰهَ لَا یَسْتَحْیِیْ مِنَ الْحَقِّ ثَلَاثَ مَرَّاتٍ لَاتَاْتُوا النِّسَآءَ فِیْ اَدْبَارِهِنَّ. (الترغیب والترهیب)

"हज़रत ख़ुज़ैमा बिन साबित रज़ियल्लाहु अ़न्हु फ़रमाते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने इरशाद फ़रमाया- अल्लाह जल्ल शानुहू हक़ बयान करने में शर्म नहीं करते, ये अलफ़ाज़ आपने तीन मर्तबा इरशाद फ़रमाये (फिर फ़रमाया) औ़रतों के पास ग़ैर-फ़ितरी तरीक़े से मत आया करो।"

وَعَنْ اَبِیْ هُرَیْرَةَ رَضِیَ اللّٰهُ عَنْهُ اَنَّ رَسُوْلَ اللّٰهِ صَلَّی اللّٰهُ عَلَیْهِ وَسَلَّمَ قَالَ مَلْعُوْنٌ مَنْ اَتٰی امْرَاَةً فِیْ دُبُرِهَا.

(الترغیب و الترهیب)

"हज़रत अबू हुरैरह रज़ियल्लाहु अ़न्हु से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का इरशाद है- वह शख़्स मलऊन है जो ग़ैर-फ़ितरी तरीक़े से बीवी के साथ जिमा (सोहबत) करता है।"

وَعَنْهُ اَنَّ رَسُوْلَ اللّٰهِ صَلَّی اللّٰهُ عَلَیْهِ وَسَلَّمَ قَالَ مَنْ اَتٰی حَائِضًا اَوِامْرَاَةً فِیْ دُبُرِهَا اَوْ كَاهِنًا فَصَدَّقَهٗ فَقَدْ كَفَرَ بِمَآ اُنْزِلَ عَلٰی مُحَمَّدٍ صَلَّی اللّٰهُ عَلَیْهِ وَسَلَّمَ.

"हज़रत अबू हुरैरह रज़ियल्लाहु अ़न्हु ही से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया- जो मर्द हैज़ (माहवारी) की हालत में बीवी के साथ सोहबत करता है या ग़ैर-फ़ितरी तरीक़े से उसके साथ सोहबत करता है या किसी काहिन (ग़ैब की बात बताने वाले) के पास जाता है और ग़ैब से मुताल्लिक़ उसकी ख़बर की तस्दीक़ करता है तो ऐसे लोग उस दीन से मुन्किर हो गये जो मुहम्मद सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम पर नाज़िल हुआ।"

इस बुरे और ख़बीस फ़ेल के लिये किसी निर्धारित सज़ा के मुक़र्रर करने में तो फ़ुक़हा (मसाईल के माहिर उलेमा) का मतभेद है जिसकी तफ़सील मसाईल की किताबों में मौजूद है लेकिन इसके लिये सख़्त से सख़्त सज़ायें मन्क़ूल हैं, जैसे आग में जला देना, दीवार गिरा कर कुचल देना, ऊँची जगह से फेंक कर संगसार कर देना, तलवार से क़त्ल कर देना वग़ैरह।

اِنَّمَا التَّوْبَةُ عَلَی اللّٰهِ لِلَّذِیْنَ یَعْمَلُوْنَ السُّوْٓءَ بِجَهَالَةٍ ثُمَّ یَتُوْبُوْنَ مِنْ قَرِیْبٍ فَاُولٰٓئِكَ یَتُوْبُ اللّٰهُ عَلَیْهِمْ ؕ وَكَانَ اللّٰهُ عَلِیْمًا حَكِیْمًا ۝ وَلَیْسَتِ التَّوْبَةُ لِلَّذِیْنَ یَعْمَلُوْنَ السَّیِّاٰتِ ۚ حَتّٰٓی اِذَا حَضَرَ اَحَدَهُمُ الْمَوْتُ قَالَ اِنِّیْ تُبْتُ الْـٰٔنَ وَلَا الَّذِیْنَ یَمُوْتُوْنَ وَهُمْ كُفَّارٌ ؕ اُولٰٓئِكَ اَعْتَدْنَا لَهُمْ عَذَابًا اَلِیْمًا ۝

इन्नमत्तौबतु अ़लल्लाहि लिल्लज़ी-न यअ्मलूनस्सू-अ बि-जहालतिन् सुम्-म यतूबू-न मिन् क़रीबिन् फ़-उलाइ-क यतूबुल्लाहु अ़लैहिम्, व कानल्लाहु अ़लीमन् हकीमा (17) व लैसतित्तौबतु लिल्लज़ी-न यअ्मलूनस्-सय्यिआति हत्ता इज़ा ह-ज़-र	तौबा क़ुबूल करनी अल्लाह को ज़रूर तो उनकी है जो करते हैं बुरा काम जहालत (नादानी) से, फिर तौबा करते हैं जल्दी से, तो अल्लाह उनको माफ़ कर देता है और अल्लाह सब कुछ जानने वाला है हिक्मत वाला। (17) और ऐसों की तौबा नहीं जो किये जाते हैं बुरे काम यहाँ तक कि जब सामने आ जाये उनमें से किसी

अ-ह-दहुमुल्-मौतु क़ा-ल इन्नी तुब्तुल्-आ-न व लल्लज़ी-न यमूतू-न व हुम् कुफ़्फ़ारुन्, उलाइ-क अअ्तद्ना लहुम् अ़ज़ाबन् अलीमा (18)	के मौत तो कहने लगा मैं तौबा करता हूँ अब, और न ऐसों की तौबा जो कि मरते हैं कुफ़्र की हालत में, उनके लिये तो हम ने तैयार किया है दर्दनाक अ़ज़ाब। (18)

इन आयतों के मज़मून का पीछे से ताल्लुक़

इनसे पहले की आयत में तौबा का ज़िक्र आया था, अब इन दो आयतों में तौबा के क़ुबूल होने की शर्तें और उसके क़ुबूल होने और न होने की सूरतें बतलाते हैं।

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

तौबा जिसका क़ुबूल करना (वायदे के अनुसार) अल्लाह के ज़िम्मे है, वह तो उन्हीं की है जो हिमाक़त से कोई गुनाह (छोटा हो या बड़ा हो) कर बैठते हैं, फिर क़रीब ही वक़्त में (यानी मौत के आने से पहले) तौबा कर लेते हैं, सो ऐसों पर तो ख़ुदा तआ़ला (तौबा क़ुबूल करने के साथ) तवज्जोह फ़रमाते हैं (यानी तौबा क़ुबूल कर लेते हैं) और अल्लाह तआ़ला ख़ूब जानने वाले हैं (कि किसने दिल से तौबा की) हिक्मत वाले हैं (कि दिल से तौबा न करने वाले को फ़ज़ीहत नहीं करते)। और ऐसे लोगों की तौबा (क़ुबूल) नहीं जो (बराबर) गुनाह करते रहते हैं यहाँ तक कि जब उनमें से किसी के सामने मौत ही आ खड़ी हुई (मौत के आ खड़ा होने का मतलब यह है कि उसको दूसरे जहान की चीज़ें नज़र आने लगीं) तो कहने लगा कि मैं अब तौबा करता हूँ (पस न तो ऐसों की तौबा क़ुबूल) और न उन लोगों की (तौबा यानी ईमान लाना ऐसे वक़्त का मक़बूल है) जिनको कुफ़्र की हालत पर मौत आ जाती है। उन (काफ़िर) लोगों के लिए हमने एक दर्दनाक सज़ा (यानी दोज़ख़ की सज़ा) तैयार कर रखी है।

मआ़रिफ़ व मसाईल

क्या इरादे व इख़्तियार से किया हुआ गुनाह माफ़ नहीं होता?

यहाँ यह बात क़ाबिले ज़िक्र है कि क़ुरआन मजीद में लफ़्ज़ "बि-जहालतिन" आया है। इससे बज़ाहिर यह समझ में आता है कि अन्जानी और नादानी से गुनाह करे तो उसकी तौबा क़ुबूल होगी, जान-बूझकर करे तो तौबा क़ुबूल नहीं होगी। लेकिन सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम ने जो तफ़सीर इस आयत की बयान फ़रमाई है वह यह है कि "जहालत" से इस जगह यह मुराद नहीं है कि उसको गुनाह के गुनाह होने की ख़बर न हो, या गुनाह का इरादा न हो, बल्कि मुराद यह है कि उसको गुनाह के बुरे अन्जाम और आख़िरत के अ़ज़ाब से ग़फ़लत उस

गुनाह के करने का सबब बनती है, अगरचे गुनाह को गुनाह जानता हो और उसका इरादा भी किया हो।

दूसरे अलफ़ाज़ में जहालत का लफ़्ज़ इस जगह हिमाक़त व बेवक़ूफ़ी के मायने में है, जैसा कि ख़ुलासा-ए-तफ़सीर में बयान हुआ है। इसकी नज़ीर सूरः यूसुफ़ में है। हज़रत यूसुफ़ अ़लैहिस्सलाम ने अपने भाईयों से फ़रमाया थाः

هَلْ عَلِمْتُمْ مَّا فَعَلْتُمْ بِيُوْسُفَ وَاَخِيْهِ اِذْ اَنْتُمْ جٰهِلُوْنَ٥ (١٢:٨٩)

इसमें भाईयों को जाहिल कहा गया है हालाँकि उन्होंने जो काम किया वह किसी ख़ता या भूल से नहीं बल्कि इरादे से जान-बूझकर किया था, मगर इस फ़ेल के अन्जाम से ग़फ़लत के सबब उनको जाहिल कहा गया है।

अबुल-आ़लिया और क़तादा रह. ने नक़ल किया है कि सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम इस पर मुत्तफ़िक़ (सहमत) थे किः

كُلُّ ذَنْبٍ اَصَابَهٗ عَبْدٌ فَهُوَ جَهَالَةٌ عَمْدًا كَانَ اَوْغَيْرَهٗ

यानी "बन्दा जो गुनाह करता है चाहे बिना इरादे के हो या इरादे के साथ बहरहाल वह जहालत है।"

इमामे तफ़सीर मुजाहिद रह. ने फ़रमायाः

كُلُّ عَامِلٍ بِمَعْصِيَةِ اللّٰهِ فَهُوَ جَاهِلٌ حِيْنَ عَمِلَهَا

यानी "जो शख़्स किसी काम में अल्लाह तआ़ला की नाफ़रमानी कर रहा है वह उस काम को करते हुए जाहिल ही है।" अगरचे देखने में बड़ा आ़लिम और बाख़बर हो। (इब्ने कसीर)

और अबू हय्यान रह. ने तफ़सीर बहरे मुहीत में फ़रमाया कि यह ऐसा ही है जैसे हदीस में इरशाद हैः

لَا يَزْنِى الزَّانِىْ وَهُوَ مُؤْمِنٌ

यानी "ज़िना करने वाला मोमिन होने की हालत में ज़िना नहीं करता।"

मुराद यह है कि जिस वक़्त वह इस बुरे फ़ेल में मुब्तला हुआ है उस वक़्त वह ईमानी तक़ाज़े से दूर जा पड़ा।

इसी लिये हज़रत इक्रिमा रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने फ़रमाया किः

اُمُوْرُ الدُّنْيَا كُلُّهَا جَهَالَةٌ

"यानी दुनिया के वे सारे काम जो अल्लाह तआ़ला की फ़रमाँबरदारी और इताअ़त से ख़ारिज हों सब के सब जहालत हैं।"

और वजह ज़ाहिर है कि अल्लाह तआ़ला की नाफ़रमानी करने वाला थोड़ी देर की लज़्ज़त को हमेशा बाक़ी रहने वाली लज़्ज़त पर तरजीह दे रहा है, और जो इस थोड़ी देर की लज़्ज़त के बदले में हमेशा-हमेशा का सख़्त अ़ज़ाब ख़रीदे वह अ़क़्लमन्द नहीं कहा जा सकता, उसको हर

शख़्स जाहिल ही कहेगा अगरचे वह अपने बुरे फ़ेल को जानता हो और उसका इरादा भी कर रहा हो।

ख़ुलासा यह है कि इनसान कोई गुनाह जान-बूझकर और इरादे से करे या ख़ता और भूल से दोनों हालत में गुनाह जहालत ही से होता है। इसी लिये सहाबा रज़ियल्लाहु अ़न्हुम, ताबिईन हज़रात और तमाम उम्मत का इस पर इजमा (एक राय) है कि जो शख़्स जान-बूझकर किसी गुनाह का अपराध करे उसकी भी तौबा क़ुबूल हो सकती है। (बहरे मुहीत)

उक्त आयत में एक बात क़ाबिले ग़ौर यह है कि इसमें तौबा के क़ुबूल होने के लिये यह शर्त बतलाई है कि जल्दी ही तौबा कर ले, तौबा करने में देर न करे। इसमें क़रीब (जल्दी करने) का क्या मतलब है और कितना ज़माना क़रीब में दाख़िल है? रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने इसकी तफ़सीर एक हदीस में ख़ुद इस तरह बयान फ़रमाई है:

اِنَّ اللّٰهَ يَقْبَلُ تَوْبَةَ الْعَبْدِ مَالَمْ يُغَرْغِرْ.

हदीस के मायने यह हैं कि "अल्लाह तआ़ला अपने बन्दे की तौबा उस वक़्त तक क़ुबूल फ़रमाते हैं जब तक उस पर मौत और रूह निकलने के वक़्त का ग़रग़रा (हलक़ से निकलने वाली आवाज़) तारी न हो जाये।"

और मुहद्दिस इब्ने मरदूया रह. ने हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन उमर रज़ियल्लाहु अ़न्हु से रिवायत किया है कि उन्होंने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को यह फ़रमाते हुए सुना है कि जो मोमिन बन्दा मौत से एक महीने-पहले अपने गुनाह से तौबा करे या एक दिन या एक घड़ी पहले तौबा करे तो अल्लाह तआ़ला उसकी तौबा क़ुबूल फ़रमायेंगे बशर्तेकि इख़्लास (सच्चे दिल) के साथ सच्ची तौबा की गई हो। (इब्ने कसीर)

ख़ुलासा यह कि 'जल्द ही' की तफ़सीर जो ख़ुद रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाई उससे मालूम हुआ कि इनसान की पूरी उम्र का ज़माना क़रीब ही में दाख़िल है। मौत से पहले-पहले जो तौबा कर ली जाये क़ुबूल होगी, अलबत्ता ग़रग़रा-ए-मौत के वक़्त की तौबा मक़बूल नहीं।

इसका ख़ुलासा जो हज़रत हकीमुल-उम्मत मौलाना थानवी रह. ने तफ़सीर बयानुल-क़ुरआन में बयान फ़रमाया है कि मौत के क़रीब दो हालतें पेश आती हैं, एक तो मायूसी व नाउम्मीदी की जबकि इनसान हर दवा व तदबीर से आ़जिज़ होकर यह समझ ले कि अब मौत आने वाली है, उसको **यास की हालत** कहा गया है, दूसरी हालत उसके बाद की है जबकि रूह निकलने का अ़मल शुरू हो जाये और ग़रग़रे का वक़्त आ जाये, उस हालत को **बअ्स की हालत** कहा जाता है। पहली हालत यानी मायूसी की हालत तक तो 'मिन क़रीबिन्' (जल्द ही) के मफ़्हूम में दाख़िल है, और तौबा उस वक़्त की क़ुबूल होती है। मगर दूसरी हालत यानी बअ्स की हालत की तौबा मक़बूल नहीं, जबकि फ़रिश्ते और आख़िरत के जहान की चीज़ें इनसान के सामने आ जायें। क्योंकि वह 'मिन क़रीबिन्' (जल्दी और क़रीबी वक़्त) के मफ़्हूम में दाख़िल नहीं।

इस आयत में 'मिन क़रीबिन्' (जल्दी ही) का लफ़्ज़ बढ़ाकर इसकी तरफ़ इशारा कर दिया

गया कि इनसान की सारी उम्र ही एक थोड़ा समय है और मौत जिसको वह दूर समझ रहा है वह इसके बिल्कुल क़रीब है।

क़रीब की यह तफ़सील जो रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से नक़ल की गई है एक दूसरी आयत में ख़ुद क़ुरआन ने भी इसकी तरफ़ इशारा फ़रमा दिया है, जिसमें यह बतलाया है कि मौत के वक़्त की तौबा मक़बूल नहीं।

आयत के मज़मून का ख़ुलासा यह हो गया कि जो शख़्स किसी गुनाह को करता है चाहे जान-बूझकर इरादे से करे या ख़ता व नावाक़फ़ियत (अज्ञानता) की बिना पर करे, वह बहरहाल जहालत ही होता है। हर ऐसे गुनाह से इनसान की तौबा क़ुबूल करना अल्लाह तआ़ला ने अपने ज़िम्मे ले लिया है बशर्तेकि मौत से पहले-पहले सच्ची तौबा कर ले।

अपने ज़िम्मे लेने का मतलब यह है कि अल्लाह तआ़ला ने इसका वायदा फ़रमा लिया है जिसका पूरा होना यक़ीनी है, वरना अल्लाह तआ़ला के ज़िम्मे कोई फ़र्ज़ वाजिब या किसी का हक़ लाज़िम नहीं होता। पहली आयत में तो उस तौबा का ज़िक्र था जो अल्लाह तआ़ला के नज़दीक क़ाबिले क़ुबूल है, दूसरी आयत में उस तौबा का बयान है जो क़ाबिले क़ुबूल नहीं।

इसमें बयान फ़रमाया है कि उन लोगों की तौबा क़ाबिले क़ुबूल नहीं जो उम्र भर जुर्रत के साथ गुनाह करते रहे और जब मौत सर पर आ पहुँची और रूह निकलनी शुरू हो गयी, मौत के फ़रिश्ते सामने आ गये, उस वक़्त कहने लगे कि अब हम तौबा करते हैं। उन्होंने उम्र की फ़ुर्सत गंवाकर तौबा का वक़्त खो दिया इसलिये उनकी तौबा मक़बूल नहीं होगी। जैसे फ़िरऔ़न और फ़िरऔ़न की आल ने ग़र्क़ होने के वक़्त पुकारा कि हम मूसा व हारून के रब पर ईमान लाते हैं, तो उनको जवाब मिला कि क्या अब ईमान लाते हो जब ईमान लाने का वक़्त गुज़र चुका?

और यही मज़मून आयत के आख़िरी जुमले में इरशाद फ़रमाया कि उन लोगों की तौबा क़ाबिले क़ुबूल नहीं जिनको कुफ़्र की हालत पर मौत आ गई और बिल्कुल रूह निकलने के वक़्त ईमान का इक़रार किया, यह इक़रार व ईमान बेवक़्त और बेफ़ायदा है, उनके लिये अ़ज़ाब तैयार कर लिया गया है।

तौबा का मतलब और हक़ीक़त

दोनों आयतों की लफ़्ज़ी तफ़सीर के बाद ज़रूरी बात यह बाक़ी रहती है कि तौबा की तारीफ़ (मतलब और परिभाषा) क्या है? और इसकी क्या हक़ीक़त और क्या दर्जा है? इमाम ग़ज़ाली रह. ने एहया-उल-उलूम में फ़रमाया कि गुनाह करने के तीन दर्जे हैं:

पहला यह कि कभी कोई गुनाह हो ही नहीं, यह तो फ़रिश्तों की ख़ुसूसियत है या अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम की। दूसरा दर्जा यह है कि गुनाह करे और फिर उन पर इसरार जारी रहे (यानी एक-आध बार नहीं बल्कि लगातार करता रहे), कभी उन पर शर्मिन्दगी और उनके छोड़ने का ख़्याल न आये, यह दर्जा शैतानों का है। तीसरा मक़ाम इनसानों का है कि गुनाह हो जाये तो फ़ौरन उस पर शर्मिन्दगी हो और आईन्दा उसके छोड़ने का पुख़्ता इरादा हो।

इससे मालूम हुआ कि गुनाह हो जाने के बाद तौबा न करना यह ख़ालिस शैतानों का काम है, इसलिये पूरी उम्मत की सहमति से तौबा फ़र्ज़ है। क़ुरआन मजीद का इरशाद है:

يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا تُوْبُوْٓا اِلَى اللّٰهِ تَوْبَةً نَّصُوْحًا، عَسٰى رَبُّكُمْ اَنْ يُّكَفِّرَ عَنْكُمْ سَيِّاٰتِكُمْ وَيُدْخِلَكُمْ جَنّٰتٍ تَجْرِىْ مِنْ تَحْتِهَا الْاَنْهٰرُ.

यानी "ऐ ईमान वालो! अल्लाह तआला से तौबा करो सच्ची तौबा, तो कुछ अजब नहीं कि अल्लाह तआला तुम्हारे गुनाहों का कफ़्फ़ारा कर दें और तुम्हें ऐसी जन्नतों में दाख़िल कर दें जिनके नीचे नहरें बहती हैं।"

सब करम करने वालों से ज़्यादा करम करने वाले और सब रहम करने वालों से ज़्यादा रहम करने वाले की बारगाहे रहमत की शान देखिये कि इनसान सारी उम्र उसी की नाफ़रमानी में मुब्तला रहे मगर मौत से पहले सच्चे दिल से तौबा कर ले तो सिर्फ़ यही नहीं कि उसका क़सूर माफ़ कर दिया जाये, बल्कि उसको अपने महबूब बन्दों में दाख़िल करके जन्नत का वारिस बना दिया जाता है।

हदीस में रसूले करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम का इरशाद है:

اَلتَّآئِبُ حَبِيْبُ اللّٰهِ وَالتَّآئِبُ مِنَ الذَّنْبِ كَمَنْ لَّا ذَنْبَ لَهٗ. (ابن ماجه)

"यानी गुनाह से तौबा करने वाला अल्लाह का महबूब है और जिसने गुनाह से तौबा कर ली वह ऐसा हो गया कि गोया उसने गुनाह किया ही नहीं था।"

कुछ रिवायतों में है कि जब बन्दा किसी गुनाह से तौबा करे और वह अल्लाह के नज़दीक मक़बूल हो जाये तो सिर्फ़ यही नहीं कि उस पर पकड़ न हो बल्कि उसको फ़रिश्तों के लिखे हुए नामा-ए-आमाल से मिटा दिया जाता है, ताकि उसकी रुस्वाई भी न हो।

अलबत्ता यह ज़रूरी है कि तौबा सच्ची और ख़ालिस तौबा हो, जिसके तीन हिस्से हैं- अव्वल यह कि अपने किये पर नदामत और शर्मसारी। हदीस में इरशाद है:

اِنَّمَا التَّوْبَةُ النَّدَمُ

"यानी तौबा नाम ही शर्मिन्दगी का है।" दूसरा हिस्सा तौबा का यह है कि जिस गुनाह को किया है उसको फ़ौरन छोड़ दे और आईन्दा को भी उससे बाज़ रहने का पुख़्ता अज़्म व इरादा करे।

तीसरा हिस्सा यह है कि जो पहले गुज़र चुका उसकी भरपाई और तलाफ़ी की फ़िक्र करे। यानी जो गुनाह हो चुका है उसकी जितनी तलाफ़ी उसके क़ब्ज़े में है उसको पूरा करे। जैसे नमाज़ रोज़ा छूटा हुआ है तो उसको क़ज़ा करे, रह जाने वाली नमाज़ों और रोज़ों की सही गिनती याद न हो तो ग़ौर व फ़िक्र से काम लेकर अन्दाज़े से मुतैयन करके फिर उनकी क़ज़ा करने की पूरी पाबन्दी करे, एक ही बार में नहीं कर सकता तो हर नमाज़ के साथ एक-एक क़ज़ा-ए-उम्री की नमाज़ पढ़ लिया करे। ऐसे ही कभी-कभी करके रोज़ों की क़ज़ा का एहतिमाम करे। फ़र्ज़ ज़कात अदा नहीं की तो गुज़रे वक़्त की ज़कात भी एक मुश्त या थोड़ी-थोड़ी करके अदा करे।

किसी इनसान का हक़ ले लिया है तो उसको वापस करे। किसी को तकलीफ़ पहुँचाई है तो उससे माफ़ी तलब करे। लेकिन अगर अपने किये पर शर्मिन्दगी न हो या शर्मिन्दगी तो हो मगर आईन्दा के लिये उस गुनाह को न छोड़े तो यह तौबा नहीं है, चाहे हज़ार मर्तबा ज़बान से तौबा तौबा कहता रहे। एक शायर का क़ौल है:

तौबा बर लब सुब्हा बर कफ़ दिल पुर अज़ ज़ौक़े गुनाह
मासियत रा ख़न्दा मी आयद ज़-इस्तिग़फ़ारे मा

(ज़बान पर तौबा, हाथों में तस्बीह और दिल में फिर भी गुनाह का शौक़ और लज़्ज़त मौजूद। अगर कोई ऐसा इस्तिग़फ़ार करे तो गुनाह व नाफ़रमानी को उसकी ऐसी तौबा पर हंसी आती है। **मुहम्मद इमरान क़ासमी बिज्ञानवी**)

जब किसी इनसान ने ऊपर बयान हुई तफ़सील के मुताबिक़ तौबा कर ली तो वह हर तरह का गुनाह कर चुकने के बावजूद अल्लाह तआ़ला का महबूब बन्दा बन गया। और अगर फिर इनसान होने के तक़ाज़े से कभी उससे गुनाह हो भी गया तो फिर फ़ौरन नई तौबा करे। अल्लाह ग़फ़ूर व करीम की बारगाह से हर बार तौबा क़ुबूल करने की उम्मीद रखे:

ईं दरगहे मा दरगहे नो-उम्मीदी नेस्त
सद बार अगर तौबा शिक्नी बाज़ आ

(यह बारगाह तो वह है जहाँ से ख़ाली हाथ लौटने और ना-उम्मीदी का सवाल ही नहीं। अगर सौ बार भी तौबा टूट जाये तो फ़ौरन फिर तौबा कर ले। मुहम्मद इमरान क़ासमी बिज्ञानवी)

يَاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا لَا يَحِلُّ لَكُمْ اَنْ تَرِثُوا النِّسَآءَ

كَرْهًا ۭ وَلَا تَعْضُلُوْهُنَّ لِتَذْهَبُوْا بِبَعْضِ مَآ اٰتَيْتُمُوْهُنَّ اِلَّآ اَنْ يَّاْتِيْنَ بِفَاحِشَةٍ مُّبَيِّنَةٍ ۚ وَعَاشِرُوْهُنَّ بِالْمَعْرُوْفِ ۚ فَاِنْ كَرِهْتُمُوْهُنَّ فَعَسٰٓى اَنْ تَكْرَهُوْا شَيْـًٔـا وَّيَجْعَلَ اللّٰهُ فِيْهِ خَيْرًا كَثِيْرًا ۝ وَاِنْ اَرَدْتُّمُ اسْتِبْدَالَ زَوْجٍ مَّكَانَ زَوْجٍ ۙ وَّاٰتَيْتُمْ اِحْدٰىهُنَّ قِنْطَارًا فَلَا تَاْخُذُوْا مِنْهُ شَيْـًٔـا ۭ اَتَاْخُذُوْنَهٗ بُهْتَانًا وَّاِثْمًا مُّبِيْنًا ۝ وَكَيْفَ تَاْخُذُوْنَهٗ وَقَدْ اَفْضٰى بَعْضُكُمْ اِلٰى بَعْضٍ وَّ اَخَذْنَ مِنْكُمْ مِّيْثَاقًا غَلِيْظًا ۝

या अय्युहल्लज़ी-न आमनू ला यहिल्लु लकुम् अन् तरिसुन्निसा-अ कर्हन्, व ला तअ्ज़ुलूहुन्-न लि-तज़्हबू बि-बअ्ज़ि मा आतैतुमूहुन्-न इल्ला अंय्यअ्ती-न बिफ़ाहि-शतिम्	ऐ ईमान वालो! हलाल नहीं तुमको कि मीरास में ले लो औरतों को ज़बरदस्ती, और न रोके रखो उनको इस वास्ते कि ले लो उनसे कुछ अपना दिया हुआ मगर यह कि वे करें ख़ुली बेहयाई, और गुज़रान करो (बसर करो) औरतों के साथ

मुबय्यिनतिन् व आशिरूहुन्-न बिल्-मअ़्रूफ़ि फ़-इन् करिस्तुमूहुन्-न फ़-अ़सा अन् तक्रहू शैअंव्-व यज्अ़लल्लाहु फ़ीहि ख़ैरन् कसीरा (19) व इन् अरत्तुमुस्तिब्दा-ल ज़ौजिम् मका-न ज़ौजिंव्-व आतैतुम् इस्दाहुन्-न क़िन्तारन् फ़ला तअ्ख़ुज़ू मिन्हु शैअन्, अ-तअ्ख़ुज़ूनहू बुह्तानंव्-व इस्मम् मुबीना (20) व कै-फ़ तअ्ख़ुज़ूनहू व क़द् अफ़्ज़ा बअ्ज़ुकुम् इला बअ्ज़िंव्-व अख़ज़्-न मिन्कुम् मीसाक़न् ग़लीज़ा (21)	अच्छी तरह, फिर अगर वे तुमको न भायें (दिल पर न चढ़ें) तो शायद तुमको पसन्द न आये एक चीज़ और अल्लाह ने रखी हो उसमें बहुत ख़ूबी। (19) और अगर बदलना चाहो एक औरत की जगह दूसरी औरत को और दे चुके हो एक को बहुत सा माल तो मत फेर लो उसमें से कुछ, क्या लेना चाहते हो उसको नाहक़ और खुले गुनाह से? (20) और क्योंकर उसको ले सकते हो और पहुँच चुका है तुममें का एक दूसरे तक, और ले चुकीं वे औरतें तुमसे पक्का अ़हद। (21)

इन आयतों के मज़मून का पीछे से ताल्लुक़

उपरोक्त आयतों में तौबा का ज़िक्र एक मुनासबत से आया था। इससे पहले औरतों से मुताल्लिक़ अहकाम का ज़िक्र चल रहा था, इन आयतों में भी औरतों के बारे में अहकाम हैं। जाहिलीयत (इस्लाम से पहले दौर) में औरतों पर उनके शौहरों की तरफ़ से ज़ुल्म होता था और उनके वारिसों की तरफ़ से भी।

जब औरत का शौहर मर जाता तो शौहर के वारिस अपनी मनमानी करते थे। दिल चाहता तो उसी औरत के साथ ख़ुद निकाह कर लेते थे, या दूसरे के साथ करा देते। और अगर उसमें रुचि न हुई तो न ख़ुद निकाह करें और न दूसरे से निकाह करने दें बल्कि औरतों को क़ैदी बनाकर रखें ताकि उसको आमदनी का ज़रिया बना लें, इसलिये कि इस सूरत में अब वह या तो अपना माल-मता उनको देकर अपने आपको छुड़ा लेती और या यूँ ही उनके घर में क़ैद रहती और उसी हालत में उसको मौत आ जाती थी।

शौहर भी अपनी बीवियों पर ज़ुल्म व सितम किया करते थे। अगर उनकी तरफ़ रुचि न होती तो न बीवी वाले हुक़ूक़ अदा करते और न उसको तलाक़ देते, ताकि वह अपना माल देकर तलाक़ हासिल कर ले।

इन आयतों में इन्हीं ख़राबियों और बुराईयों का रास्ता बन्द किया गया है और 'आशिरूहुन्-न' (यानी औरतों के साथ अच्छे अन्दाज़ से गुज़ारा करो) से ख़ास शौहरों को ख़िताब

किया गया है, और आयत नम्बर 20 व 21 भी इसी मज़मून का पूरक हैं।

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

ऐ ईमान वालो! तुमको यह बात हलाल नहीं कि औरतों के (माल या जान के) जबरन मालिक हो जाओ (माल का मालिक होना तीन तरह है- एक यह कि उस औरत का जो शरई हक़ मीरास में है उसको ख़ुद ले लिया जाये उसको न दिया जाये, और दूसरे यह कि उसको निकाह न करे दिया जाये यहाँ तक कि वह यहाँ ही मर जाये, फिर उसका माल ले लें या अपने हाथ से कुछ दे, तीसरे यह कि शौहर उसको बेवजह मजबूर करे कि वह उसको कुछ माल दे तब यह उसको छोड़े।

पहली और तीसरी सूरत में जब्र की क़ैद से यह फ़ायदा है कि अगर यह बातें बिल्कुल औरत की ख़ुशी से हों तो जायज़ और हलाल हैं और दूसरी सूरत में यह जब्र वास्तव में निकाह से रोकने में है जिससे ग़र्ज़ माल लेना था, इसलिये लफ़्ज़ों में इससे मुताल्लिक़ कर दिया, इससे भी वही फ़ायदा हुआ यानी अगर वह अपनी ख़ुशी से निकाह न करे तो उन लोगों को गुनाह नहीं।

और जान का मालिक होना यह था कि मरने वाले की औरत को मय्यित के माल की तरह अपनी मीरास समझते थे, इस सूरत में जब्र की क़ैद वाक़ई यानी हक़ीक़त के बयान के लिये है कि वे ऐसा करते थे, मगर इसका यह मतलब नहीं कि अगर औरत अपनी रज़ामन्दी से अपने को माले मय्यित की तरह मरने वाले का तर्का बनाने पर राज़ी हो जाये तो वह सचमुच मीरास और मिल्क हो जायेगी) और उन औरतों को इस ग़र्ज़ से क़ैद में मत रखो कि जो कुछ तुम लोगों ने (यानी ख़ुद तुमने या तुम्हारे अ़ज़ीज़ों ने) उनको दिया है उसमें का कोई हिस्सा (भी उनसे) वसूल कर लो (इस मज़मून में भी तीन सूरतें आ गईं:

एक यह कि मय्यित का वारिस उस मय्यित की बीवी को निकाह न करने दे ताकि हमको यह कुछ दे और दूसरे यह कि शौहर उसको मजबूर करे कि मुझको कुछ दे तब छोड़ूँगा, तीसरे यह कि शौहर तलाक़ देने के बाद भी बग़ैर कुछ लिये उसको निकाह न कर दे। यहाँ की पहली सूरत ऊपर की दूसरी सूरत का एक भाग है और यहाँ की दूसरी सूरत ऊपर की तीसरी सूरत है, और वहाँ की पहली सूरत और यहाँ की तीसरी सूरत अलग-अलग है मगर कुछ सूरतों में उनसे माल लेना या उनको रोक कर रखना जायज़ है वह) यह कि वे औरतें कोई खुली नामुनासिब और ग़लत हरकत करें (इसमें भी तीन सूरतें आ गईं एक यह कि नामुनासिब हरकत नाफ़रमानी शौहर की और बद अख़्लाक़ी हो तो शौहर को जायज़ है कि बग़ैर माल लिये हुए जो मेहर से ज़्यादा न हो उसको न छोड़े। दूसरे यह कि बेहयाई और बदतमीज़ी की हरकत ज़िना हो तो इस्लाम के शुरू ज़माने में सज़ा का हुक्म नाज़िल होने से पहले शौहर को जायज़ था कि इस जुर्माने में उससे अपना दिया हुआ माल वापस ले ले और उसको निकाल दे, अब यह हुक्म मन्सूख़ (ख़त्म, और निरस्त) है, ज़िना से मेहर का वजूब साक़ित नहीं होता। इन दो सूरतों में माल लिया जायेगा। और तीसरी सूरत यह कि बुरी हरकत ज़िना हो तो शौहर को या दूसरे

वारिसों को जैसा कि रुकूअ़ के शुरू में बयान हुआ है बतौर सज़ा के हाकिम के हुक्म से औरतों को घरों के अन्दर बन्दी बनाकर रखना जायज़ था फिर यह हुक्म मन्सूख़ (ख़त्म) हो गया पस यह क़ैद (घर में रोक) कर के रखना बतौर सज़ा के होगा माल वसूल करने की ग़र्ज़ से न होगा। आगे ख़ास शौहरों को हुक्म है)।

और उन औरतों के साथ ख़ूबी के साथ गुज़रान किया करो (यानी अच्छे बर्ताव और नान व नफ़क़े की ख़बरगीरी) और अगर (तबीयत के तक़ाज़े से) वे तुमको नापसन्द हों (मगर उनकी तरफ़ से कोई बात नापसन्दीदगी की ज़ाहिर न हो) तो (तुम अ़क़्ल के तक़ाज़े से यह समझकर बरदाश्त करो कि) मुम्किन है कि तुम एक चीज़ को नापसन्द करो और अल्लाह तआ़ला उसके अन्दर कोई बड़ी ख़ैर (दुनियावी या दीनी) रख दे (जैसे वह तुम्हारी ख़िदमतगार, आराम पहुँचाने वाली और हमदर्द हो, यह दुनिया की ख़ैर है, या उससे कोई औलाद पैदा होकर बचपन में मर जाये या ज़िन्दा रहे और नेक हो जो आख़िरत का ज़ख़ीरा हो जाये या सबसे कम दर्जा यह कि नापसन्द चीज़ पर सब्र करने का सवाब व फ़ज़ीलत तो ज़रूर ही मिलेगी)। और अगर तुम (ख़ुद अपनी रग़बत की वजह से) बजाय एक बीवी के (यानी पहली के) दूसरी बीवी करना चाहो (और पहली बीवी का कोई क़ुसूर न हो) और तुम उस एक को (मेहर में या वैसे ही बतौर हिबा व तोहफ़े के) ढेर का ढेर माल दे चुके हो (चाहे हाथ में सौंप दिया या ख़ास मेहर के लिये सिर्फ़ समझौते में देना किया हो) तो तुम उस (दिये हुए या मुआ़हदा किये हुए) में से (औरत को तंग करके) कुछ भी (वापस) मत लो (और माफ़ कराना भी वापस लेने के हुक्म में है)। क्या तुम उसको (वापस) लेते हो (उसकी ज़ात पर नाफ़रमानी या बदकारी का) बोहतान रखकर और (उसके माल में) खुले गुनाह (यानी ज़ुल्म) के करने वाले होकर (चाहे बोहतान स्पष्ट तौर पर हो या कि इस तौर पर इशारतन हो कि ऊपर सिर्फ़ नाफ़रमानी व बदकारी की सूरत में उससे माल लेने की इजाज़त थी, पस जब उससे माल लिया तो गोया उसको नाफ़रमान व बदकिरदार दूसरों के ज़ेहन में तसव्वुर कराया, और माली ज़ुल्म की वजह ज़ाहिर है कि बग़ैर ख़ुशदिली के औरत ने दिया और हिबा की सूरत में यह ज़ुल्म इसलिये कि मियाँ-बीवी के आपस में से कोई किसी को हदिया दे दे तो अब उससे वापस लेने का शरई एतिबार से कोई हक़ नहीं, और वापस लेगा तो वह एक क़िस्म का ग़सब (हक़ छीनना) होगा, और बोहतान भी इसी से लाज़िम आता है, क्योंकि वापस लेना गोया यह कहना है कि यह मेरी बीवी न थी, इसका बोहतान होना ज़ाहिर है कि उस को बीवी होने में झूठी और चाल-चलन में बुरी ठहराता है)।

और तुम उस (दिये हुए) को (वास्तव में या हुक्म में) कैसे लेते हो हालाँकि (अ़लावा बोहतान व ज़ुल्म के उसके लेने से दो बातें और भी रोक हैं, एक यह कि) तुम आपस में एक-दूसरे से बेहिजाबी के साथ मिल चुके हो (यानी सोहबत हो चुकी है या मुकम्मल तन्हाई कि वह भी सोहबत के हुक्म में है, बहरहाल उन्होंने अपनी ज़ात तुम्हारे फ़ायदा उठाने और मज़ा लेने के लिये तुम्हारे सुपुर्द कर दी है और मेहर इसी सुपुर्दगी का मुआवज़ा है। पस जब उनकी तरफ़ से हक़ अदा हो गया तो फिर तुम्हारी तरफ़ से अदा किये हुए हक़ का वापस लेना या कि न देना

अक़्ले सलीम के बिल्कुल ख़िलाफ़ है। और अगर वह मेहर का माल नहीं बल्कि अ़तीया था, तो यह बेहिजाबाना (यानी सोहबत या तन्हाई की) मुलाक़ात बीवी होने के असर की वजह से रोक है और असल रुकावट माल वापस लेने की ज़ौजियत यानी बीवी होना है) और (दूसरी रुकावट यह कि) वे औरतें तुमसे एक गाढ़ा इक़रार (यानी मज़बूत वायदा) ले चुकी हैं (वह अ़हद वह है कि निकाह के वक़्त तुमने मेहर अपने ज़िम्मे रखा था और अ़हद करके ख़िलाफ़ करना यह भी अ़क़्ल के नज़दीक बुरा और नापसन्दीदा है, और अगर वह हिबा और अ़तीया है तो तन्हाई की खुली मुलाक़ात यानी सोहबत से पहले यह अ़हद भी बीवी होने के असर की वजह से दी हुई चीज़ की वापसी से रोक है, ग़र्ज़ कि चार रुकावटों और बाधाओं के होते हुए वापसी बहुत ही बुरी और नापसन्दीदा है)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

इस्लाम से पहले औरतों पर होने वाले अत्याचारों पर बन्दिश

इन तीन आयतों में उन ज़ुल्मों और ज़्यादतियों की रोक-थाम है जो इस्लाम से पहले औरत ज़ात पर रवा रखे जाते थे। उनमें एक बहुत बड़ा ज़ुल्म यह था कि मर्द औरतों की जान व माल का अपने आपको मालिक समझते थे, औरत जिसके निकाह में आ गई वह उसकी जान को भी अपनी मिल्क समझता था और उसके मरने के बाद उसके वारिस जिस तरह उसके छोड़े हुए माल के वारिस और मालिक होते थे इसी तरह उसकी बीवी के भी वारिस और मालिक माने जाते थे, चाहें तो वे ख़ुद उससे निकाह कर लें या दूसरे किसी से माल लेकर उसका निकाह कर दें, शौहर का लड़का जो दूसरी बीवी से होता वह ख़ुद भी बाप के बाद उसको अपने निकाह में ले सकता था। और जब औरत की जान ही अपनी मिल्क समझ ली गई तो माल का मामला ज़ाहिर है, और इस एक बुनियादी ग़लती के नतीजे में औरतों पर तरह-तरह के सैंकड़ों ज़ुल्म व अत्याचार हुआ करते थे जैसेः

एक यह ज़ुल्म था कि जो माल औरत को कहीं से विरासत में मिला या उसके मायके वालों की तरफ़ से बतौर हदिया तोहफ़ा मिला, बेचारी औरत उस सबसे मेहरूम व बेताल्लुक़ रहती, और यह सब माल ससुराल के मर्द हज़म कर लेते थे।

दूसरा ज़ुल्म यह होता था कि अगर औरत ने अपने हिस्से के माल पर कहीं क़ब्ज़ा कर ही लिया तो मर्द उसको निकाह करने से इसलिये रोकते थे कि यह अपना माल बाहर न ले जा सके बल्कि यहीं मर जाये और माल छोड़ जाये तो हमारे क़ब्ज़े में आ जाये।

तीसरा ज़ुल्म कहीं-कहीं यह भी होता था कि कई बार बीवी का कोई क़सूर न होने के बावजूद महज़ तबई तौर पर वह शौहर को पसन्द न होती तो शौहर उसके दाम्पत्य हुक़ूक़ अदा न करता मगर तलाक़ देकर उसको आज़ाद भी इसलिये नहीं करता कि यह तंग आकर ज़ेवर और मेहर का माल जो वह उसे दे चुका है वापस कर दे, या अगर अभी नहीं दिया तो माफ़ कर दे तब उसे आज़ादी मिलेगी। और कभी-कभी शौहर बीवी को तलाक़ भी दे देता लेकिन फिर भी

अपनी उस मुतल्लक़ा को किसी दूसरे से निकाह न करने देता ताकि वह मजबूर होकर उसका दिया हुआ मेहर वापस कर दे या वाजिबुल-अदा मेहर को माफ़ कर दे।

चौथा ज़ुल्म कई बार यूँ होता था कि शौहर मर गया, उसके वारिस उसकी बेवा को निकाह नहीं करने देते या जाहिलाना आ़र (इज़्ज़त) की वजह से या इस लालच में कि उसके ज़रिये कुछ माल वसूल करें।

ये सब अत्याचार इस बुनियाद पर होते थे कि औ़रत के माल बल्कि उसकी जान का भी अपने आपको मालिक समझा जाता था। क़ुरआने करीम ने इस फ़साद की उस जड़ को उखाड़ डाला और उसके तहत होने वाले तमाम ज़ुल्मों और अत्याचारों के ख़ात्मे और रोकने के लिये इरशाद फ़रमायाः

يٰاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا لَا يَحِلُّ لَكُمْ اَنْ تَرِثُوا النِّسَآءَ كَرْهًا.

"ऐ ईमान वालो! तुम्हारे लिये यह हलाल नहीं कि तुम जबरन औ़रतों के मालिक बन बैठो।"

जबरन की क़ैद इस जगह बतौर शर्त के नहीं कि औ़रतों की रज़ामन्दी से उनका मालिक बन जाना सही क़रार दिया जाये, बल्कि वास्तविकता के बयान के तौर पर है कि औ़रतों की जान व माल का बिना शरई व अ़क़्ली वजह के मालिक बन बैठना ज़ाहिर है कि जबरन ही हो सकता है, इस पर कोई होश व अ़क़्ल वाली औ़रत राज़ी कहाँ हो सकती है। (बहरे मुहीत)

इसी लिये शरीअ़त ने इस मामले में उसकी रज़ामन्दी को कारगर नहीं क़रार दिया, कोई औ़रत बेवक़ूफ़ी से किसी की मम्लूक बनने पर राज़ी भी हो जाये तो इस्लामी क़ानून इस पर राज़ी नहीं कि कोई आज़ाद इनसान किसी का मम्लूक हो जाये।

ज़ुल्म व फ़साद की मनाही का आ़म तरीक़ा यह है कि मना करने के लफ़्ज़ से उससे मना कर दिया जाये लेकिन इस जगह क़ुरआने करीम ने इस आ़म तरीक़े को छोड़कर लफ़्ज़ 'ला यहिल्लु' से इसको बयान फ़रमाया है। इसमें इस मामले के सख़्त गुनाह होने के अ़लावा इस तरफ़ भी इशारा हो सकता है कि अगर किसी ने किसी बालिग़ औ़रत से बग़ैर उसकी रज़ा व इजाज़त के निकाह कर भी लिया तो वह निकाह शरई तौर पर हलाल नहीं, बल्कि न होने के बराबर है, ऐसे निकाह से न उन दोनों के दरमियान मियाँ-बीवी का रिश्ता क़ायम होता है और न विरासत या नसब के अहकाम इससे मुताल्लिक़ होते हैं।

इसी तरह अगर किसी ने किसी औ़रत को मजबूर करके उससे अपना दिया हुआ मेहर वापस ले लिया या वाजिबुल-अदा (जिसका देना वाजिब था) मेहर को जबरन माफ़ करा लिया तो यह ज़बरदस्ती की वापसी या माफ़ी शरई तौर पर मोतबर नहीं, न उससे लिया हुआ माल मर्द के लिये हलाल होता है न कोई वाजिब हक़ माफ़ होता है, और इसी मज़मून की अधिक वज़ाहत के लिये इरशाद फ़रमायाः

وَلَا تَعْضُلُوْهُنَّ لِتَذْهَبُوْا بِبَعْضِ مَآ اٰتَيْتُمُوْهُنَّ.

"यानी औरतों को अपनी मर्ज़ी का निकाह करने से न रोको इस ख़्याल से कि जो माल तुमने या तुम्हारे अज़ीज़ (रिश्तेदार) ने उनको बतौर मेहर के या बतौर हदिये-तोहफ़े के दे दिया है वह उससे वापस ले लो।"

मेहर देने और वापस लेने में यह भी दाख़िल है कि जो मेहर देना मुक़र्रर कर चुके हैं उसको माफ़ कराया जाये। ग़र्ज़ कि दिया हुआ मेहर जबरन वापस लें या वाजिबुल-अदा मेहर को जबरन माफ़ करायें ये सब नाजायज़ और हराम है। इसी तरह जो माल बतौर हदिये-तोहफ़े के मालिकाना तौर पर बीवी को दिया जा चुका है उसका वापस लेना न ख़ुद शौहर के लिये हलाल है न उसके वारिसों के लिये। मालिकाना तौर पर कहने का मतलब यह है कि अगर शौहर ने कोई ज़ेवर दिया और कोई इस्तेमाली चीज़ बीवी को सिर्फ़ इस्तेमाल के लिये दी है, मालिक बनाकर न दी हो तो वह बीवी की मिल्कियत में दाख़िल ही नहीं होती, इसलिये उसकी वापसी भी ममनू नहीं।

इसके बादः

إِلَّآ أَن يَأْتِينَ بِفَـٰحِشَةٍ مُّبَيِّنَةٍ

फ़रमाकर बाज़ ऐसी सूरतों को इस हुक्म से अलग फ़रमा दिया गया है जिनमें शौहर के लिये अपना दिया हुआ मेहर का माल वग़ैरह वापस लेना जायज़ हो जाता है।

मायने यह हैं कि अगर औरत की तरफ़ से कोई ख़ुली हुई बेहूदा हरकत ऐसी सादिर हो जाये जिसकी वजह से तलाक़ देने के लिये आदमी तबई तौर पर मजबूर हो जाये तो ऐसी सूरत में हर्ज नहीं कि शौहर उस वक़्त तक तलाक़ न दे जब तक यह उसका दिया हुआ मेहर वग़ैरह वापस न करे, या वाजिबुल-अदा मेहर को माफ़ न करे।

और इस जगह लफ़्ज़ **फ़ाहिशा** यानी बेहूदा और ग़लत हरकत से मुराद हज़रत इब्ने अ़ब्बास और हज़रत आ़यशा रज़ियल्लाहु अ़न्हुमा और इमाम ज़ह्हाक रह. वग़ैरह के नज़दीक तो शौहर की नाफ़रमानी और बदज़ुबानी है। और अबू क़िलाबा, हसन बसरी रह. ने फ़ाहिशा से मुराद इस जगह बेहयाई और ज़िना लिया है। तो मायने यह हुए कि अगर उन औ़रतों से कोई बेहयाई का काम सर्ज़द हो गया या वह नाफ़रमानी और बदज़ुबानी से पेश आई हैं जिससे मजबूर होकर मर्द तलाक़ पर तैयार हो रहा है तो चूँकि क़सूर औ़रत का है इसलिये शौहर को यह हक़ हासिल है कि उसको उस वक़्त तक अपने निकाह में रोके रखे जब तक उससे अपना दिया हुआ माल वापस वसूल न करे, या तय किया हुआ मेहर माफ़ न करा ले।

अगली दो आयतों में भी इसी मज़मून का तफ़सीली बयान है। इरशाद है कि जब औ़रत की तरफ़ से कोई नाफ़रमानी या बेहयाई का काम सर्ज़द न हो मगर शौहर महज़ अपनी तबई इच्छा और ख़ुशी के लिये मौजूदा बीवी को छोड़कर दूसरी शादी करना चाहता है तो इस सूरत में अगर वह ढेरों माल भी उसको दे चुका है तो उसके लिये यह जायज़ नहीं कि उससे दिये हुए माल का कोई हिस्सा तलाक़ के मुआ़वज़े में वापस ले, या वाजिबुल-अदा मेहर को माफ़ कराये। क्योंकि औ़रत का कोई क़सूर नहीं और जिस सबब से मेहर वाजिब होता है वह सबब भी पूरा हो चुका

है यानी निकाह का बंध जाना भी हो गया और दोनों आपस में बेहिजाबाना (बिना पर्दे के) मिल भी चुके हैं तो अब दिया हुआ माल वापस लेने या वाजिबुल-अदा मेहर के माफ़ कराने का उसको कोई हक़ नहीं है।

इसके बाद इस रक़म की वापसी के ज़ुल्म व गुनाह होने को तीन दर्जों में बयान फ़रमाया गया। अव्वल फ़रमायाः

اَتَاْخُذُوْنَهٗ بُهْتَانًا وَّاِثْمًا مُّبِيْنًا○

"यानी क्या तुम यह चाहते हो कि बीवी पर ज़िना वग़ैरह के बोहतान लगाने का खुला गुनाह करके अपना माल वापस लेने का रास्ता निकालो।"

यानी जब यह मालूम हो चुका कि दिया हुआ माल वापस लेना सिर्फ़ उस वक़्त जायज़ है जबकि बीवी किसी गंदी और बेहयाई की हरकत की करने वाली हो तो अब उससे माल वापस लेना दर हक़ीक़त इसका ऐलान करना है कि उसने कोई बुरी और बेहूदा हरकत बेहयाई वग़ैरह की है, चाहे ज़बान से उस पर तोहमत ज़िना की लगाये या न लगाये, बहरहाल यह एक सूरत तोहमत और बोहतान की है जिसका 'इस्मे मुबीन' यानी खुला बड़ा गुनाह होना ज़ाहिर है।

दूसरा जुमला यह इरशाद फ़रमाया गयाः

وَكَيْفَ تَاْخُذُوْنَهٗ وَقَدْ اَفْضٰى بَعْضُكُمْ اِلٰى بَعْضٍ.

"यानी अब तुम अपना माल उनसे कैसे वापस ले सकते हो जबकि सिर्फ़ निकाह का बंधन ही नहीं बल्कि पूरी तन्हाई और एक दूसरे से बेपर्दा मिलना भी हो चुका है। क्योंकि इस सूरत में दिया हुआ माल अगर मेहर का है तो औरत उसकी पूरी हक़दार और मालिक बन चुकी है क्योंकि उसने अपने नफ़्स को शौहर के सुपुर्द कर दिया अब उसकी वापसी के कोई मायने नहीं। और अगर दिया हुआ माल हदिये-तोहफ़े का है तो अब उसकी वापसी मुम्किन नहीं, क्योंकि मियाँ बीवी जो आपस में एक दूसरे को हिबा करें उसकी वापसी न शरई तौर पर जायज़ है और न क़ानूनी तौर पर नाफ़िज़ की जाती है। ग़र्ज़ कि दाम्पत्य ताल्लुक़ हिबा की वापसी से रुकावट है।

और इसी मज़मून को तीसरे जुमले में इरशाद फ़रमायाः

وَاَخَذْنَ مِنْكُمْ مِّيْثَاقًا غَلِيْظًا.

"यानी उन औरतों ने तुमसे पुख़्ता और मज़बूत अ़हद ले लिया है।"

इससे मुराद निकाह में बंध जाने का अ़हद है, जो अल्लाह के नाम और ख़ुतबे के साथ मजमे के सामने किया जाता है।

ख़ुलासा यह है कि इस निकाह के अ़हद व वायदे और आपस में खुले तौर पर (बेपर्दा) मिलने के बाद दिया हुआ माल वापस करने के लिये औरत को मजबूर करना खुला हुआ ज़ुल्म व ज़्यादती है, मुसलमानों को इससे बचना लाज़िम है।

وَلَا تَنْكِحُوْا مَا نَكَحَ اٰبَآؤُكُمْ مِّنَ النِّسَآءِ اِلَّا مَا قَدْ سَلَفَ ۭ
اِنَّهٗ كَانَ فَاحِشَةً وَّمَقْتًا ۭ وَسَآءَ سَبِيْلًا ۝ حُرِّمَتْ عَلَيْكُمْ اُمَّهٰتُكُمْ وَبَنٰتُكُمْ وَاَخَوٰتُكُمْ وَ
عَمّٰتُكُمْ وَخٰلٰتُكُمْ وَبَنٰتُ الْاَخِ وَبَنٰتُ الْاُخْتِ وَاُمَّهٰتُكُمُ الّٰتِيْٓ اَرْضَعْنَكُمْ وَاَخَوٰتُكُمْ مِّنَ الرَّضَاعَةِ
وَاُمَّهٰتُ نِسَآىِٕكُمْ وَرَبَاۗىِٕبُكُمُ الّٰتِيْ فِيْ حُجُوْرِكُمْ مِّنْ نِّسَآىِٕكُمُ الّٰتِيْ دَخَلْتُمْ بِهِنَّ ۡ فَاِنْ لَّمْ تَكُوْنُوْا
دَخَلْتُمْ بِهِنَّ فَلَا جُنَاحَ عَلَيْكُمْ ۡ وَحَلَاۗىِٕلُ اَبْنَاۗىِٕكُمُ الَّذِيْنَ مِنْ اَصْلَابِكُمْ ۙ وَاَنْ تَجْمَعُوْا بَيْنَ الْاُخْتَيْنِ
اِلَّا مَا قَدْ سَلَفَ ۭ اِنَّ اللّٰهَ كَانَ غَفُوْرًا رَّحِيْمًا ۝
وَّالْمُحْصَنٰتُ مِنَ النِّسَآءِ اِلَّا مَا مَلَكَتْ اَيْمَانُكُمْ ۚ كِتٰبَ اللّٰهِ عَلَيْكُمْ ۚ وَاُحِلَّ لَكُمْ مَّا وَرَاۗءَ ذٰلِكُمْ
اَنْ تَبْتَغُوْا بِاَمْوَالِكُمْ مُّحْصِنِيْنَ غَيْرَ مُسٰفِحِيْنَ ۭ فَمَا اسْتَمْتَعْتُمْ بِهٖ مِنْهُنَّ فَاٰتُوْهُنَّ اُجُوْرَهُنَّ
فَرِيْضَةً ۭ وَلَا جُنَاحَ عَلَيْكُمْ فِيْمَا تَرٰضَيْتُمْ بِهٖ مِنْۢ بَعْدِ الْفَرِيْضَةِ ۭ اِنَّ اللّٰهَ كَانَ عَلِيْمًا حَكِيْمًا ۝

ع ٨

الجزء الخامس

व ला तन्किहू मा न-क-ह आबाउकुम् मिनन्निसा-इ इल्ला मा क़द् स-ल-फ़, इन्नहू का-न फ़ाहि-शतंव्-व मक़्तन्, व सा-अ सबीला (22) ❁

हुर्रिमत् अलैकुम् उम्महातुकुम् व बनातुकुम् व अ-ख़वातुकुम् व अम्मातुकुम् व ख़ालातुकुम् व बनातुल्-अख़ि व बनातुल्-उख़्ति व उम्महातुकुमुल्लाती अर्ज़अ्नकुम् व अ-ख़वातुकुम् मिनर्रज़ा-अति व उम्महातु निसा-इकुम् व रबा-इबुकुमुल्लाती फ़ी हुजूरिकुम् मिन्निसा-इकुमुल्लाती दख़ल्तुम् बिहिन्-न फ़-इल्लम् तकूनू दख़ल्तुम्

और निकाह में न लाओ (उन औरतों को) जिन औरतों को निकाह में लाये तुम्हारे बाप मगर जो पहले हो चुका, यह बेहयाई है और काम है ग़ज़ब का, और बुरा चलन है। (22) ❁

हराम हुई हैं तुम पर तुम्हारी माँयें और बेटियाँ और बहनें और फूफियाँ और ख़ालायें और बेटियाँ भाई की (यानी भतीजियाँ) और बहन की (यानी भानजियाँ) और जिन माँओं ने तुमको दूध पिलाया और दूध की बहनें और तुम्हारी औरतों की माँये (यानी सास) और उनकी बेटियाँ जो तुम्हारी परवरिश में हैं जिनको जन्म दिया है तुम्हारी औरतों ने जिनसे तुमने सोहबत की (यानी सौतेली बेटियाँ), और अगर तुमने उनसे सोहबत नहीं की तो तुम पर कुछ गुनाह

बिहिन्-न फ़ला जुना-ह अ़लैकुम् व हला-इलु अब्ना-इकुमुल्लज़ी-न मिन् अस्लाबिकुम् व अन् तज्मअ़ू बैनल्-उख़्तैनि इल्ला मा क़द् स-ल-फ़, इन्नल्ला-ह का-न ग़फ़ूर्रहीमा (23) वल्-मुह्सनातु मिनन्निसा-इ इल्ला मा म-लकत् ऐमानुकुम् किताबल्लाहि अ़लैकुम् व उहिल्-ल लकुम् मा वरा-अ ज़ालिकुम् अन् तब्तग़ू बिअम्वालिकुम् मुह्सिनी-न ग़ै-र मुसाफ़िही-न, फ़मस्तम्तअ़्तुम् बिही मिन्हुन्-न फ़आतूहुन्-न उजूरहुन्-न फ़री-ज़तन्, व ला जुना-ह अ़लैकुम् फ़ीमा तराज़ैतुम् बिही मिम्बअ़्दिल् फ़री-ज़ति, इन्नल्ला-ह का-न अ़लीमन् हकीमा (24)	नहीं इस निकाह में, और औरतें तुम्हारे बेटों की जो तुम्हारी पुश्त से हैं, और यह कि इकट्ठा करो दो बहनों को मगर जो पहले हो चुका। बेशक अल्लाह बख़्शने वाला मेहरबान है। (23) और शौहर वाली औरतें मगर जिनके मालिक हो जायें तुम्हारे हाथ, हुक्म हुआ अल्लाह का तुम पर, और हलाल हैं तुमको सब औरतें इनके सिवा शर्त यह है कि तलब करो उनको अपने माल के बदले क़ैद (निकाह के बंधन) में लाने को न कि मस्ती निकलने को। फिर जिसको काम में लाये तुम उन औरतों में से तो उनको दो उनके हक़ जो मुक़र्रर हुए। और गुनाह नहीं तुमको इस बात में कि ठहरा लो तुम दोनों आपस की सहमति से मुक़र्रर करने के बाद, बेशक अल्लाह है ख़बरदार हिक्मत वाला। (24)

इन आयतों के मज़मून का पीछे से ताल्लुक़

ऊपर से जाहिलीयत (इस्लाम से पहले ज़माने) की बुरी रस्मों व रिवाजों का ज़िक्र चला आ रहा है। उनमें से एक रस्म यह थी कि बाज़ हराम औरतों से निकाह कर लिया करते थे, जैसे अपनी सौतेली माँ से, एक बहन के निकाह में होते हुए दूसरी बहन से। इसी के ताल्लुक़ से दूसरी हराम औरतों का भी ज़िक्र आ गया, तथा वे लोग गोद लिये हुए बेटे की बीवी से निकाह करने को हराम समझते थे इसका ग़लत होना भी बयान फ़रमा दिया। इस सिलसिले में कुछ उन औरतों का हलाल होना भी बयान किया गया जिनमें मुसलमानों को शुब्हा हुआ था, जैसे बाँदी जो मुसलमानों के क़ब्ज़े में आ गई हो और उसका पहला शौहर दारुल-हरब में हो। इसी के साथ निकाह की शर्तों और उससे संबन्धित चीज़ों मेहर वग़ैरह का भी ज़िक्र आ गया।

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

और तुम उन औरतों से निकाह मत करो जिनसे तुम्हारे बाप (या दादा या नाना) ने निकाह किया हो, मगर (ख़ैर) जो बात गुज़र गई गुज़र गई (आईन्दा कभी ऐसा न हो)। बेशक यह (बात अक़्ल के एतिबार से भी) बड़ी बेहयाई है और (शरीफ़ लोगों और अक़्ल रखने वालों के उर्फ़ में भी) बहुत ही नफ़रत की बात है, और (शरअ़न भी) बुरा तरीक़ा है।

तुम पर (ये औरतें) हराम की गई हैं (यानी इनसे निकाह करना हराम और बातिल है और इनकी कई क़िस्में हैं- अव्वल वे नसब की वजह से हराम हैं यानी) तुम्हारी माँयें और तुम्हारी बेटियाँ (और इनमें सब ऊपर नीचे का सिलसिले की प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से आने वाली दाख़िल हैं) और तुम्हारी बहनें (चाहे सगी हों या माँ-शरीक या बाप-शरीक) और तुम्हारी फूफियाँ (इसमें बाप की और दादा व नाना जड़ों की तीनों क़िस्मों की बहनें आ गई) और तुम्हारी ख़ालाएँ (इसमें माँ की और दादी नानी वग़ैरह जड़ों की तीनों क़िस्मों की बहनें आ गई) और भतीजियाँ (इसमें तीनों क़िस्मों के भाईयों की औलाद प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से शामिल आ गई) और भानजियाँ (इसमें तीनों क़िस्मों की बहनों की औलाद प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से आने वाली सब आ गई)। और (दूसरी क़िस्म दूध की वजह से हराम होने वाली औरतें आ गयीं यानी) तुम्हारी वे माँयें जिन्होंने तुम्हें दूध पिलाया है (यानी अन्ना) और तुम्हारी वे बहनें जो दूध पीने की वजह से बहन हैं (यानी तुमने उनकी सगी या दूध पिलाने वाली माँ का दूध पिया है, या उसने तुम्हारी सगी या दूध पिलाने वाली माँ का दूध पिया है, चाहे अलग-अलग समय में पिया हो)। और (तीसरी क़िस्म हराम होने वाली उन औरतों की है जो ससुराली रिश्ते की वजह से हराम हुई हों यानी) तुम्हारी बीवियों की माएँ (इसमें बीवी की दादी नानी वग़ैरह तमाम जड़ें आ गयीं) और तुम्हारी बीवियों की बेटियाँ (इसमें बीवी से संबन्धित इस सिलसिले के वे तमाम रिश्ते आ गये जो उससे निकल कर चलते हैं यानी उसकी सौतेली बेटियाँ वग़ैरह) जो कि (आ़दतन) तुम्हारी परवरिश में रहती हैं (मगर इसमें एक क़ैद भी है वह यह कि वे लड़कियाँ) उन बीवियों से (हों) कि जिनके साथ तुमने सोहबत की हो (यानी किसी औ़रत के साथ सिर्फ़ निकाह करने से उसकी लड़की हराम नहीं होती बल्कि जब उस औ़रत से सोहबत भी हो जाये तब लड़की हराम होती है)। और अगर (अभी तक) तुमने उन बीवियों से सोहबत न की हो (चाहे निकाह हो चुका हो) तो (ऐसी बीवी की लड़की के साथ निकाह करने में) तुमको कोई गुनाह नहीं। और तुम्हारे उन बेटों की बीवियाँ (भी हराम हैं) जो कि तुम्हारी नस्ल से हों (इसमें हर क़िस्म के बेटे पोते वग़ैरह ऊपर के रिश्तों की बीवियाँ आ गईं। और नस्ल की क़ैद का मतलब यह है कि मुँह बोले यानी लेपालक जिसको मुतबन्ना कहते हैं उसकी बीवी हराम नहीं)। और यह (बात भी हराम है) कि तुम दो बहनों को (दूध शरीक हों या नसबी, अपने निकाह में) एक साथ रखो, लेकिन जो (इस हुक्म से) पहले हो चुका (वह माफ़ है) बेशक अल्लाह तआ़ला बड़े बख़्शने वाले, बड़े रहमत वाले हैं (कि रहमत से गुनाह माफ़ कर देते हैं)।

पाँचवाँ पारः वल्-मुह्सनातु

और (चौथी क़िस्म) वे औरतें जो कि शौहर वालियाँ हैं, मगर (उस हालत में वे इस हुक्म से अलग हैं) जो कि (शरई तौर पर) तुम्हारी मिल्क में आ जाएँ (और उनके हरबी शौहर दारुल-हरब में मौजूद हों, और एक हैज़ (माहवारी आने) के बाद या गर्भ की पैदाईश के बाद हलाल हैं, जैसा कि हिदाया में इसकी तफ़सील है)। अल्लाह तआ़ला ने इन अहकाम को तुम पर फ़र्ज़ कर दिया है। और इन औरतों के अ़लावा और (बाक़ी) औरतें तुम्हारे लिए हलाल की गई हैं, यानी यह कि तुम उनको अपने मालों के ज़रिये से (निकाह में लाना) चाहो (यानी मेहर होना निकाह में ज़रूरी है और) इस तरह से कि तुम (उनको) बीवी बनाओ (जिसकी शर्तें शरई कानून में बयान हुई हैं जैसे गवाह भी हों, वह निकाह किसी ख़ास निर्धारित मुद्दत के लिये भी न हो, वग़ैरह) सिर्फ़ मस्ती ही निकालना न हो (इसके आ़म ज़िक्र होने में ज़िना और मुता सब दाख़िल हो गया अगरचे उसमें भी माल ख़र्च किया जाता है) फिर (निकाह हो जाने के बाद शरीअ़त के बताये हुए) जिस तरीक़े से तुमने उन औ़रतों से फ़ायदा उठाया है सो उनको (उनके बदले) उनके मेहर दो जो कुछ मुक़र्रर हो चुके हैं। और (यह न समझो कि उस मुक़र्रर किये हुए में किसी तरह की कमी-बेशी नमाज़-रोज़े की तरह मुम्किन ही नहीं, बल्कि) मुक़र्रर होने के बाद भी जिस (मात्रा व तादाद) पर तुम (मियाँ-बीवी) आपस में रज़ामन्द हो जाओ उसमें तुम पर कोई गुनाह नहीं (जैसे शौहर ने और मेहर बढ़ा दिया या औ़रत ने कम कर दिया, या माफ़ ही कर दिया, हर तरह दुरुस्त है) बेशक अल्लाह तआ़ला बड़े जानने वाले हैं (तुम्हारी मस्लेहतों को ख़ूब जानते हैं) बड़े हिक्मत वाले हैं (उन मस्लेहतों की रियायत से अहकाम मुक़र्रर फ़रमाये हैं, चाहे कहीं तुम्हारी समझ में न आये)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

इन आयतों में मुहर्रमात यानी उन औ़रतों की तफ़सील बयान की गई है जिनसे निकाह हराम है। फिर कुछ मुहर्रमात तो वे हैं जो किसी हाल में हलाल नहीं होतीं, जिन्हें **मुहर्रमाते अबदिया** (हमेशा के लिये हराम होने वाली) कहा जाता है, और कुछ **मुहर्रमाते अबदिया** नहीं हैं वे कुछ हालतों में हलाल भी हो जाती हैं।

शुरू की तीन क़िस्में **मुहर्रमाते नसबिया** (नसब की वजह से हराम होने वाली), **मुहर्रमाते रज़ाईया** (दूध के रिश्ते की वजह से हराम होने वाली) और **मुहर्रमाते बिल्-मुसाहरत** (निकाह व ससुराल के रिश्ते की वजह से हराम होने वाली) **मुहर्रमाते अबदिया** (हमेशा के लिये हराम होने वाली) हैं, और आख़िर की एक क़िस्म **निकाह वाली औ़रतें** उस वक़्त तक के लिये हराम हैं जब तक वे दूसरे के निकाह में हैं:

وَلَا تَنْكِحُوْا مَا نَكَحَ اٰبَآؤُكُمْ

जाहिलीयत (इस्लाम से पहले) के ज़माने में इसमें कोई बुरा नहीं माना जाता था कि बाप के मरने के बाद उसकी बीवी से निकाह कर लेते थे। इस आयत में अल्लाह पाक ने इस बेशर्मी और बेहयाई के काम से मना फ़रमाया और इसको ख़ुदा तआ़ला की नाराज़गी का सबब बताया। ज़ाहिर है कि यह कैसी अख़्लाक़ की मौत और किरदार की ख़राबी है कि जिसको एक मुद्दत तक माँ कहते रहे उसको बाप की मौत के बाद बीवी बनाकर रख लिया।

मसलाः आयते शरीफ़ा में बाप की मन्कूहा (यानी बीवी) से निकाह करना हराम क़रार दिया गया है। इसमें इस बात की क़ैद नहीं लगाई है कि बाप ने उनसे सोहबत भी की हो, लिहाज़ा किसी भी औरत से अगर बाप का निकाह भी हो जाये तो उस औरत से बेटे के लिये निकाह कभी भी हलाल नहीं।

इसी तरह से बेटे की बीवी से बाप को निकाह करना दुरुस्त नहीं अगरचे बेटे का सिर्फ़ निकाह ही हुआ हो। शामी में इस हुक्म को स्पष्ट तौर पर बयान किया हैः

قَالَ الشَّامِيُّ وَتَحْرُمُ زَوْجَةُ الْاَصْلِ وَالْفَرْعِ بِمُجَرَّدِ الْعَقْدِ دَخَلَ بِهَا اَوْلَا.

मसलाः अगर बाप ने किसी औरत से ज़िना कर लिया हो तो भी बेटे को उस औरत से निकाह करना हलाल नहीं है।

حُرِّمَتْ عَلَيْكُمْ اُمَّهٰتُكُمْ

यानी अपनी वालिदा से निकाह करना हराम है और लफ़्ज़ 'उम्महातुकुम' (तुम्हारी माँयें) के आ़म होने में दादियाँ और नानियाँ सब दाख़िल हैं।

'व बनातुकुम' अपनी सुलबी (नसबी) लड़की से निकाह करना हराम है और लड़की की लड़की से भी, और बेटे की लड़की से भी।

ख़ुलासा यह है कि बेटी, पोती, पड़पोती, नवासी, पड़नवासी इन सबसे निकाह करना हराम है और सौतेली लड़की जो दूसरे शौहर की हो और बीवी साथ लाई हो उससे निकाह क़रने न करने में तफ़सील है जो आगे आ रही है। और जो लड़का लड़की सुल्बी (यानी अपनी पीठ से) न हो बल्कि गोद लेकर पाल लिया हो उनसे और उनकी औलाद से निकाह जायज़ है, बशर्तेकि किसी दूसरे तरीक़े से हुर्मत न आई हो। इसी तरह अगर किसी शख़्स ने किसी औ़रत से ज़िना किया तो उस नुत्फ़े से जो लड़की पैदा हो वह भी बेटी के हुक्म में है, उससे भी निकाह दुरुस्त नहीं।

'व अ-ख़वातुकुम' अपनी हक़ीक़ी बहन से निकाह करना हराम है और उस बहन से भी जो अ़ल्लाती (बाप-शरीक) और उस बहन से भी जो अख़्याफ़ी (माँ-शरीक) हो।

'व अ़म्मातुकुम' अपने बाप की हक़ीक़ी बहन, अ़ल्लाती, अख़्याफ़ी बहन, इन तीनों से निकाह हराम है। ग़र्ज़ कि तीनों तरह की फूफियों से निकाह नहीं हो सकता।

'व ख़ालातुकुम' अपनी माँ की बहन सगी हो या अ़ल्लाती (बाप-शरीक) हो या अख़्याफ़ी (माँ-शरीक) हर एक से निकाह हराम है।

'व बनातुल्-अख़ि' भाई की लड़कियों यानी भतीजियों से भी निकाह हराम है, सगी हो

अ़ल्लाती हो या अख़्याफ़ी हो, तीनों तरह के भाईयों की लड़कियों से निकाह हलाल नहीं है।

'व बनातुल-उख़्ति' बहन की लड़कियों यानी भांजियों से भी निकाह हराम है, और यहाँ भी वही आ़म हुक्म है कि बहनें चाहे हक़ीक़ी (सगी) हों अ़ल्लाती हों या अख़्याफ़ी, उनकी लड़कियाँ शरई तौर पर निकाह में नहीं आ सकतीं।

'व उम्महातुकुमुल्लाती अर्ज़अ़्नकुम' जिन औ़रतों का दूध पिया है अगरचे वे हक़ीक़ी (सगी) माँयें न हों वे भी निकाह के हराम होने के बारे में माँ के हुक्म में हैं और उनसे भी निकाह हराम है, थोड़ा सा दूध पिया हो या ज़्यादा, एक मर्तबा पिया हो या कई दफ़ा पिया हो, हर सूरत में यह हुर्मत साबित हो जाती है। फ़ुक़हा (मसाईल के माहिर उलेमा) की इस्तिलाह में इसको हुर्मते रज़ाअ़त (दूध की वजह से हराम होने) से ताबीर करते हैं। अलबत्ता इतनी बात याद रखना ज़रूरी है कि हुर्मते रज़ाअ़त उसी ज़माने में दूध पीने से साबित होती है जो बचपन में दूध पीने का ज़माना होता है, हुज़ूरे अकरम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का इरशाद है:

اِنَّمَا الرَّضَاعَةُ مِنَ الْمَجَاعَةِ

यानी रज़ाअ़त (दूध पीने) से जो हुर्मत साबित होगी वह उसी ज़माने के दूध पीने से होगी जिस ज़माने में दूध पीने ही से बच्चे की ज़िन्दगी चलती और वह परवान चढ़ता है।

(बुख़ारी व मुस्लिम)

और यह मुद्दत इमाम अबू हनीफ़ा रहमतुल्लाहि अ़लैहि के नज़दीक बच्चे की पैदाईश से लेकर ढाई साल तक है और दूसरे उलेमा के नज़दीक जिनमें इमाम अबू हनीफ़ा रह. के ख़ास शागिर्द इमाम अबू यूसुफ़ और इमाम मुहम्मद रह. भी हैं सिर्फ़ दो साल की मुद्दत तक रज़ाअ़त साबित हो सकती है, और इसी पर इमाम मुहम्मद रह. का फ़तवा भी है। अगर किसी लड़के लड़की ने इस उम्र के बाद किसी औ़रत का दूध पिया तो उससे हुर्मते रज़ाअ़त (दूध पीने की वजह से हराम होना) साबित न होगी।

'व अ-ख़वातुकुम मिनर्रज़ाअ़ति' यानी रज़ाअ़त (दूध पीने) के रिश्ते से जो बहनें हैं उनसे भी निकाह करना हराम है। तफ़सील इसकी यह है कि जब किसी लड़की या लड़के ने दूध पीने के ज़माने में किसी औ़रत का दूध पी लिया तो वह औ़रत उनकी रज़ाई (दूध पिलाने के रिश्ते से) माँ बन गई, और उस औ़रत का शौहर उनका बाप बन गया, और उस औ़रत की नसबी औलाद उनके बहन-भाई बन गये, और उस औ़रत की बहनें उनकी ख़ालायें बन गईं, और उस औ़रत का जेठ देवर उन बच्चों के रज़ाई चचा बन गये, और उस औ़रत के शौहर की बहनें उन बच्चों की फूफियाँ बन गईं, और आपस में उन सब में हुर्मते रज़ाअ़त साबित हो गई। नसब के रिश्ते से जो निकाह आपस में हराम है दूध के रिश्ते से भी हराम हो जाता है। हुज़ूरे अक़्दस सल्ल. का इरशाद है:

يَحْرُمُ مِنَ الرَّضَاعَةِ مَا يَحْرُمُ مِنَ الْوِلَادَةِ (بخاری)

और मुस्लिम शरीफ़ की एक रिवायत में है:

اِنَّ اللّٰہَ حَرَّمَ مِنَ الرَّضَاعَۃِ مَا حَرَّمَ مِنَ النَّسَبِ (بحوالہ مشکوٰۃ ص ۲۷۳)

मसलाः अगर एक लड़के और एक लड़की ने किसी औरत का दूध पिया तो उन दोनों का आपस में निकाह नहीं हो सकता, इसी तरह रज़ाई (दूध-शरीक) भाई और रज़ाई बहन की लड़की से भी निकाह नहीं हो सकता।

मसलाः रज़ाई भाई या रज़ाई बहन की नसबी माँ से निकाह जायज़ है, और नसबी बहन की रज़ाई माँ से भी हलाल है, और रज़ाई बहन की नसबी बहन से भी और नसबी बहन की रज़ाई बहन से भी निकाह जायज़ है।

मसलाः मुँह या नाक के ज़रिये दूध पीने के ज़माने में दूध अन्दर जाने से हुर्मत साबित होती है, और अगर किसी और रास्ते से दूध अन्दर पहुँचा दिया जाये, या दूध का इंजेक्शन दे दिया जाये तो हुर्मते रज़ाअ़त साबित न होगी।

मसलाः औरत के दूध के अ़लावा किसी और दूध (मसलन चौपाये का दूध या किसी मर्द के दूध) से रज़ाअ़त साबित नहीं होती।

मसलाः दूध अगर दवा में, या बकरी, गाय, भैंस के दूध में मिला हुआ हो तो उससे हुर्मते रज़ाअ़त उस वक़्त साबित होगी जबकि औरत का दूध ग़ालिब हो, और अगर दोनों बराबर हों तब भी हुर्मते रज़ाअ़त साबित होती है, लेकिन अगर औरत का दूध कम है तो यह हुर्मत साबित न होगी।

मसलाः अगर मर्द के दूध निकल आये तो उससे हुर्मते रज़ाअ़त साबित नहीं होती।

मसलाः अगर दूध पीने का शक हो तो इससे हुर्मते रज़ाअ़त साबित नहीं होती। अगर किसी औरत ने किसी बच्चे के मुँह में पिस्तान दिया, लेकिन दूध जाने का यक़ीन न हो तो इससे हुर्मते रज़ाअ़त साबित न होगी और निकाह के हलाल होने पर इसका असर न पड़ेगा।

मसलाः अगर किसी शख़्स ने किसी औरत से निकाह कर लिया और किसी दूसरी औरत ने कहा कि मैंने तुम दोनों को दूध पिलाया है तो अगर दोनों उसकी तस्दीक़ करें तो निकाह के फ़ासिद होने का फ़ैसला कर लिया जायेगा, और अगर ये दोनों उसको झुठलायें और औरत दीनदार ख़ुदा-तरस हो तो निकाह के फ़ासिद होने का फ़ैसला न होगा, लेकिन तलाक़ देकर जुदाई कर लेना फिर भी अफ़ज़ल है।

मसलाः हुर्मते रज़ाअ़त (दूध की वजह से हराम होने) के सुबूत के लिये दो दीनदार मर्दों की गवाही ज़रूरी है, एक मर्द या एक औरत की गवाही से रज़ाअ़त साबित न होगी, लेकिन चूँकि मामला हराम व हलाल से संबन्धित है इसलिये एहतियात करना अफ़ज़ल है, यहाँ तक कि कुछ फ़ुक़हा हज़रात ने यह तफ़सील लिखी है कि अगर किसी औरत से निकाह करना हो और एक दीनदार मर्द गवाही दे कि यह दोनों रज़ाई बहन-भाई हैं तो निकाह करना जायज़ नहीं, और अगर निकाह के बाद हो तो एहतियात अलग होने में है, बल्कि अगर एक औरत भी कह दे तब भी एहतियात इसी में है कि अ़लैहदगी इख़्तियार कर लें।

मसलाः जिस तरह दो दीनदार मर्दों की गवाही से हुर्मते रज़ाअ़त साबित हो जाती है इसी

तरह एक दीनदार मर्द और दो दीनदार औरतों की गवाही से भी इसका सुबूत हो जाता है। अलबत्ता एहतियात इसी में है कि अगर गवाही का निसाब पूरा न हो तब भी शक से बचने के लिये हुर्मत (हराम होने) को तरजीह दी जाये।

'व उम्महातु निसाइकुम' बीवियों की माँयें भी शौहरों पर हराम हैं, यहाँ भी उम्महात में तफ़सील है।

इसमें बीवियों की नानियाँ, दादियाँ नसबी (सगी) हों या रज़ाई (दूध के रिश्ते से) सब दाख़िल हैं।

मसलाः जिस तरह निकाह में आयी बीवी की माँ हराम है इसी तरह उस औरत की माँ भी हराम है जिसके साथ शुब्हे में (ग़लती से) हमबिस्तरी की हो, या जिसके साथ ज़िना किया हो, या उसको शहवत (जिन्सी इच्छा) के साथ छुआ हो।

मसलाः सिर्फ़ निकाह ही से बीवी की माँ हराम हो जाती है, हुर्मत के लिये सोहबत वग़ैरह ज़रूरी नहीं।

وَرَبَآ ئِبُكُمُ الّٰتِىْ فِىْ حُجُوْرِكُمْ مِّنْ نِّسَآئِكُمُ الّٰتِىْ دَخَلْتُمْ بِهِنَّ.

जिस औरत के साथ निकाह किया और निकाह के बाद हमबिस्तरी भी की तो उस औरत की लड़की जो दूसरे शौहर से है, इसी तरह उसकी पोती, नवासी हराम हो गईं, उनसे निकाह करना जायज़ नहीं। लेकिन अगर हमबिस्तरी नहीं की सिर्फ़ निकाह हुआ तो सिर्फ़ निकाह से मज़कूरा किस्में हराम नहीं हो जातीं, लेकिन निकाह के बाद अगर उसको शहवत के साथ छुआ, या उसकी शर्मगाह की तरफ़ शहवत (जिन्सी इच्छा) की निगाह से देखा तो यह भी हमबिस्तरी के हुक्म में है, इससे भी उस औरत की लड़की वग़ैरह हराम हो जाती है।

मसलाः यहाँ भी **निसाउकुम** (तुम्हारी औरतों) में आम हुक्म है लिहाज़ा उस औरत की लड़की पोती और नवासी भी हराम हो गईं जिसके साथ शुब्हे (ग़लती से और धोखे) में हमबिस्तरी की हो, या उसके साथ ज़िना किया हो।

وَحَلَآئِلُ اَبْنَآئِكُمُ الَّذِيْنَ مِنْ اَصْلَابِكُمْ.

बेटे की बीवी हराम है और बेटे के आम ज़िक्र होने में पोता, नवासा भी दाख़िल हैं, लिहाज़ा उनकी बीवियों से निकाह जायज़ न होगा।

'मिन् अस्लाबिकुम' की क़ैद से **मुतबन्ना** (गोद लिये हुए और पाले हुए) को निकालना मक़सूद है, उसकी बीवी से निकाह हलाल है, और रज़ाई बेटा भी नसबी (सगे) बेटे के हुक्म में है, लिहाज़ा उसकी बीवी से भी निकाह करना हराम है।

وَاَنْ تَجْمَعُوْا بَيْنَ الْاُخْتَيْنِ.

दो बहनों को निकाह में जमा करना भी हराम है, हक़ीक़ी (सगी) बहनें हों या अ़ल्लाती (बाप-शरीक) हों या अख़्याफ़ी (माँ-शरीक), नसब के एतिबार से हों या रज़ाई (दूध के रिश्ते की) बहनें हों, यह हुक्म सब को शामिल है, अलबत्ता तलाक़ हो जाने के बाद दूसरी बहन से निकाह

जायज़ है, लेकिन यह जवाज़ इद्दत गुज़रने के बाद है, इद्दत के दौरान निकाह जायज़ नहीं है।

मसलाः जिस तरह एक साथ दो बहनों को एक शख़्स के निकाह में जमा करना हराम है इसी तरह फूफी, भतीजी, ख़ाला और भांजी को भी किसी एक शख़्स के निकाह में जाम करना हराम है।

قَالَ النَّبِيُّ صَلَّى اللّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ لَا يُجْمَعُ بَيْنَ الْمَرْءَةِ وَعَمَّتِهَا وَلَا بَيْنَ الْمَرْءَةِ وَخَالَتِهَا (بخاری و مسلم)

मसलाः फ़ुक़हा-ए-किराम ने बतौर क़ायदा कुल्लिया यह लिखा है कि हर ऐसी दो औरतें जिनमें से अगर किसी एक को मर्द फ़र्ज़ किया जाये तो शरअन उन दोनों का आपस में निकाह दुरुस्त न हो, इस तरह की दो औरतें एक मर्द के निकाह में जमा नहीं हो सकतीं।

'इल्ला मा क़द् सलफ़्' यानी जाहिलीयत के ज़माने में जो कुछ होता रहा उसकी पकड़ नहीं होगी। ये अलफ़ाज़ 'व ला तन्किहू मा न-क-ह आबाउकुम' की आयत में भी ज़िक्र हुए हैं और वहाँ पर भी यही मायने हैं कि जाहिलीयत में जो कुछ तुमसे सादिर हुआ सो हुआ, अब इस्लाम लाने के बाद उसकी पकड़ और पूछगछ नहीं होगी, और आईन्दा के लिये बचना लाज़िम है।

इसी तरह अगर हराम होने का हुक्म नाज़िल होने के इस वक़्त में बाप की निकाह वाली या दो बहनें निकाह में हों तो अलग करना ज़रूरी है, और दो बहनों की सूरत में एक बहन को अलग कर देना लाज़िम है।

हज़रत बरा बिन आज़िब रज़ियल्लाहु अन्हु की रिवायत है कि नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने हज़रत अबू बरदा बिन नय्यार रज़ियल्लाहु अन्हु को एक आदमी के क़त्ल करने के लिये भेजा था इसलिए कि उस शख़्स ने बाप की बीवी से निकाह कर लिया था।

(मिश्कात शरीफ़ पेज 284)

इब्ने फ़ीरोज़ दैलमी रहमतुल्लाहि अलैहि की रिवायत है, वह अपने वालिद से नक़ल करते हैं कि जब मैं इस्लाम ले आया तो दो बहनें मेरे निकाह में थीं, मैं नबी करीम सल्ल. की ख़िदमत में हाज़िर हुआ, आपने फ़रमाया उनमें से एक को तलाक़ देकर अलग कर दो और एक को बाक़ी रख लो। (मिश्कात शरीफ़ पेज 284)

इन रिवायतों से मालूम हुआ कि जिस तरह इस्लाम की हालत में शुरू में बाप की मन्कूहा और दो बहनों को एक साथ निकाह में जमा रखना जायज़ नहीं, इसी तरह अगर कुफ़्र की हालत में निकाह की यह सूरत पेश आई हो तो इस्लाम लाने के बाद उसको बाक़ी रखना भी जायज़ न होगा।

إِنَّ اللّٰهَ كَانَ غَفُوْرًا رَّحِيْمًا.

इस्लाम से पहले जो कुछ उन्होंने हिमाक़त (बेवक़ूफ़ी और अज्ञानता) में किया अब इस्लाम लाने के बाद अल्लाह जल्ल शानुहू उनसे दरगुज़र (माफ़) करेगा, और उनकी तरफ़ अपनी रहमत के साथ मुतवज्जह होगा।

(पारा नम्बर पाँच)

وَالْمُحْصَنٰتُ مِنَ النِّسَآءِ............

यानी शौहरों वाली औरतें भी हराम की गईं। जब तक कोई औरत किसी शख़्स के निकाह में हो तो दूसरा शख़्स उससे निकाह नहीं कर सकता। इससे स्पष्ट तौर पर मालूम हुआ कि एक औरत एक वक़्त में एक से ज़्यादा शौहर वाली नहीं हो सकती है। इस दौर के बाज़ जाहिल बेदीन कहने लगे हैं कि मर्दों को जब एक से ज़्यादा बीवियों की इजाज़त है तो औरतों को भी एक से ज़्यादा शौहरों से फ़ायदा उठाने की इजाज़त मिलनी चाहिये। यह मुतालबा इस आयते शरीफ़ा के बिल्कुल ख़िलाफ़ है। ऐसी जाहिलाना बातें करने वाले लोग यह नहीं समझते कि मर्द के लिये एक से ज़्यादा बीवियाँ रखना एक नेमत है जिसे हर मज़हब व मिल्लत में जायज़ क़रार दिया गया है, जिस पर इनसानी इतिहास गवाह है, लेकिन औरत के लिये एक वक़्त में एक से ज़्यादा शौहर होना उस औरत के लिये भी मुसीबत का सबब है और जो दो मर्द एक औरत के शौहर बन जायें उनके लिये भी रुस्वाई का सबब और सरासर बेशर्मी है। साथ ही इसमें किसी बच्चे के असल बाप का पता लगने का भी कोई रास्ता बाक़ी नहीं रहता। जब कई मर्द किसी औरत से फ़ायदा उठायेंगे (यानी सोहबत करेंगे) तो पैदा होने वाली औलाद को उनमें से किसी एक का बेटा तजवीज़ करने का कोई तरीक़ा बाक़ी न रहेगा। इस तरह का बदतरीन मुतालबा वही लोग कर सकते हैं जो इनसानियत के पूरी तरह दुश्मन हों और जिनकी ग़ैरत व हया का जनाज़ा निकल चुका हो, ऐसे लोग औलाद और माँ-बाप के हक़ों की लाईन से वजूद में आने वाली रहमतों से पूरी इनसानियत को मेहरूम करने की हिमायत में लगे हुए हैं। जब नसब साबित नहीं होगा तो आपसी हुक़ूक़ व फ़राईज़ की ज़िम्मेदारी किस पर लागू की जायेगी?

ख़ालिस तबई और अक़्ली एतिबार से भी अगर देखा जाये तो एक औरत के लिये कई शौहर होने का कोई जवाज़ (सही और जायज़ होना) नज़र नहीं आताः

1. निकाह का बुनियादी मक़सद नस्ल का चलाना है, इस एतिबार से कई औरतें तो एक मर्द से हामिला (गर्भवती) हो सकती हैं लेकिन एक औरत कई मर्दों से हामिला नहीं हो सकती, वह एक ही से हामिला होगी, इसलिये कई शौहरों की सूरत में एक के अ़लावा बाक़ी शौहरों की क़ुव्वत ज़ाया गई। जिन्सी इच्छा और हवस पूरी करने के सिवा उनको कोई फ़ायदा हासिल न हो सका।

2. तजुर्बे और अनुभव से साबित है कि औरत मर्द के मुक़ाबले में नाज़ुक सिन्फ़ है, वह साल के अक्सर हिस्से में फ़ायदा उठाने के भी क़ाबिल नहीं रहती। कुछ हालात में उसके लिये एक ही शौहर के हुक़ूक़ पूरे करना मुम्किन नहीं होता कहाँ यह कि एक से ज़्यादा शौहर हों।

3. चूँकि मर्द जिस्मानी क़ुव्वत के एतिबार से औरत के मुक़ाबले में ज़्यादा सेहतमन्द है इसलिये अगर किसी मर्द की जिन्सी ताक़त मामूल से ज़्यादा हो और एक औरत से उसकी पूर्ती न हो सकती हो तो उसे जायज़ तरीक़े से दूसरे और तीसरे निकाह का मौक़ा मिलना चाहिये

वरना वह दूसरे नाजायज़ तरीक़े इख़्तियार करेगा और पूरे समाज को बिगाड़ देगा, लेकिन औरत से ऐसे बिगाड़ का अन्देशा (शंका) नहीं है।

इस्लामी शरीअ़त में इस मसले की अहमियत इतनी ज़्यादा है कि न सिर्फ़ किसी शख़्स के निकाह में होते हुए औरत के दूसरे निकाह को हराम क़रार दिया है बल्कि किसी औरत का कोई शौहर तलाक़ दे दे या मर जाये तो उसकी इद्दत गुज़रने तक भी किसी दूसरे शख़्स से उस औरत का निकाह नहीं हो सकता।

اِلَّا مَا مَلَكَتْ اَيْمَانُكُمْ

यह जुमलाः

وَالْمُحْصَنٰتُ مِنَ النِّسَآءِ

के हुक्म से बाहर है। इसका मतलब यह है कि शौहर वाली बीवी से किसी दूसरे शख़्स को निकाह करना जायज़ नहीं है, हाँ अगर कोई औरत मम्लूका बाँदी होकर आ जाये जिसकी सूरत यह है कि मुसलमानों ने दारुल-हरब के क़ाफ़िरों से जिहाद किया और वहाँ से कुछ औरतें क़ैद करके ले आये, उन औरतों में जो औरत दारुल-इस्लाम में लाई गई और उसका शौहर दारुल-हरब में रह गया तो उस औरत का निकाह दारुल-इस्लाम में आने से अपने पहले शौहर से ख़त्म हो गया अब यह औरत अगर किताबिया या मुस्लिमा हो तो इससे दारुल-इस्लाम का कोई भी मुसलमान निकाह कर सकता है, और अगर अमीरुल-मोमिनीन उसको बाँदी बनाकर किसी फ़ौजी सिपाही को माले ग़नीमत की तक़सीम में दे दे तब भी उससे फ़ायदा उठाना (यानी सोहबत करना) जायज़ है, लेकिन यह निकाह और फ़ायदा उठाना एक हैज़ (माहवारी) आने के बाद ही जायज़ है, और अगर हमल (गर्भ) है तो हमल की पैदाईश ज़रूरी है।

मसलाः अगर कोई काफ़िर औरत दारुल-हरब में मुसलमान हो जाये और उसका शौहर काफ़िर है तो तीन हैज़ गुज़रने के बाद वह उसके निकाह से बाहर हो जायेगी।

मसलाः और अगर दारुल-इस्लाम में कोई काफ़िर औरत मुसलमान हो जाये और उसका शौहर काफ़िर हो तो शरई हाकिम उसके शौहर पर इस्लाम पेश करे, अगर वह मुसलमान होने से इनकार करे तो क़ाज़ी उन दोनों में जुदाई करा दे और यह जुदाई तलाक़ शुमार होगी, उसके बाद इद्दत गुज़ारकर वह औरत किसी मुसलमान से निकाह कर सकती है।

كِتٰبَ اللّٰهِ عَلَيْكُمْ

यानी जिन मुहर्रमात का ज़िक्र हुआ उनकी हुर्मत अल्लाह तआ़ला की तरफ़ से तयशुदा है। जैसा कि इमाम क़ुर्तुबी रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने इसे खुले लफ़्ज़ों में बयान किया है।

وَاُحِلَّ لَكُمْ مَّا وَرَآءَ ذٰلِكُمْ

यानी जो मुहर्रमात (हराम होने वाली औरतें) अब तक बयान हुई उनके अ़लावा दूसरी औरतें तुम्हारे लिये हलाल हैं, जैसे चचा की लड़की, ख़ाला की लड़की, मामूँज़ाद बहन, मामूँ चचा की बीवी उनकी वफ़ात या तलाक़ देने के बाद बशर्तेकि ये ज़िक्र हुई क़िस्में और किसी रिश्ते से

मेहरम न हों, और अपने मुँह बोले बेटे की बीवी जब वह तलाक़ दे दे या वफ़ात पा जाये, बीवी मर जाये तो उसकी बहन के साथ, वग़ैरह बेशुमार सूरतें बनती हैं इन सब को 'मा वरा-अ ज़ालिकुम' (इन औरतों के सिवा) के आ़म होने में दाख़िल फ़रमा दिया।

मसलाः एक वक़्त में चार औ़रतों से ज़्यादा को निकाह में रखना जायज़ नहीं, इसका तफ़सीली बयान सूरः निसा के शुरू में गुज़र चुका है, क़रीब की आयतों में इसका ज़िक्र न देखकर किसी को यह मुग़ालता न हो जाये कि 'मा वरा-अ ज़ालिकुम' (इन औ़रतों के सिवा) के आ़म होने में बग़ैर किसी पाबन्दी के औ़रतों से निकाह जायज़ है, तथा बहुत सी मुहर्रमात (हराम होने वाली औ़रतें) वे हैं जिनका ज़िक्र हदीसों में है और उनकी तरफ़ आयतों में इशारे भी हैं जिनको हम तफ़सीर के अन्तर्गत ज़िक्र करते चले आये हैं।

اَنْ تَبْتَغُوْا بِاَمْوَالِكُمْ

यानी **मुहर्रमात** (निकाह के लिये हराम होने वाली औ़रतों) का यह बयान तुम्हारे लिये इसलिये किया गया है कि अपने मालों के ज़रिये हलाल औ़रतें तलाश करो, और उनको अपने निकाह में लाओ।

इमाम अबू बक्र जस्सास रहमतुल्लाहि अ़लैहि **अहकामुल-क़ुरआन** में लिखते हैं कि इससे दो बातें मालूम हुईं एक यह कि निकाह मेहर से ख़ाली नहीं हो सकता (यहाँ तक कि अगर मियाँ-बीवी आपस में यह तय कर लें कि निकाह बग़ैर मेहर के होगा तब भी मेहर लाज़िम होगा, जिसकी तफ़सील मसाईल की किताबों में मज़कूर है) दूसरे यह बात मालूम हुई कि मेहर वह चीज़ होनी चाहिये जिसको माल कहा जा सके।

हनफ़िया का मज़हब यह है कि दस दिरहम से कम मेहर नहीं होना चाहिये, एक दिरहम साढ़े तीन माशे चाँदी का होता है।

مُحْصِنِيْنَ غَيْرَ مُسَافِحِيْنَ

यानी अपने मालों के ज़रिये हलाल औ़रतें तलब करो और यह समझ लो कि औ़रतों की तलाश पाकदामनी व आबरू के लिये है जो निकाह का अहम मक़सद है, और निकाह के ज़रिये इस चीज़ को हासिल करो। माल ख़र्च करके ज़िना के लिये औ़रतें तलाश न करो।

इससे मालूम हो गया कि अगरचे ज़िनाकार भी माल ख़र्च करते हैं लेकिन वह माल ख़र्च करना भी हराम है और उस माल के ज़रिये जो औ़रत हासिल की जाये उससे फ़ायदा उठाना हलाल नहीं होता।

लफ़्ज़ 'ग़ै-र मुसाफ़िही-न' (न कि मस्ती निकालने को) बढ़ाकर ज़िना की मनाही फ़रमाते हुए इस तरफ़ भी इशारा फ़रमाया कि ज़िना में सिर्फ़ शहवत पूरी करना, पानी बहाना मक़सूद होता है, क्योंकि उससे बच्चे की तलब और नस्ल की बक़ा का इरादा नहीं होता। मुसलमानों को पाकदामन रहने और इनसानी नस्ल को बढ़ाने के लिये अपनी क़ुव्वत को सही जगह पर ख़र्च करना चाहिये, जिसका तरीक़ा निकाह का मामला और शरई बाँदी से फ़ायदा उठाना ही है।

فَمَا اسْتَمْتَعْتُم بِهِ مِنْهُنَّ فَاٰتُوْهُنَّ اُجُوْرَهُنَّ فَرِيْضَةً

यानी निकाह के बाद जिन औरतों से फ़ायदा उठा लो तो उनके मेहर दे दो, यह देना तुम्हारे ऊपर फ़र्ज़ किया गया है।

इस आयत में फ़ायदा उठाने से बीवियों से हमबिस्तर होना और सोहबत करना मुराद है। अगर सिर्फ़ निकाह हो जाये और रुख़सती न हो और शौहर को फ़ायदा उठाने का मौक़ा न मिले बल्कि वह उससे पहले ही तलाक़ दे दे तो आधा मेहर वाजिब होता है, और अगर फ़ायदा उठाने का मौक़ा मिल जाये तो पूरा मेहर वाजिब हो जाता है। इस आयत में ख़ुसूसी तवज्जोह दिलाई है कि जब किसी औरत से फ़ायदा उठा लिया तो उसका मेहर देना हर तरह से वाजिब हो गया इसमें कोताही करना शरीअ़ते इस्लामिया के ख़िलाफ़ है और इनसानी ग़ैरत का भी यह तक़ाज़ा है कि जब निकाह का मक़सद हासिल हो जाये तो बीवी के हक़ में कोताही और टाल-मटोल न हो, अलबत्ता शरीअ़त औरत को यह हक़ भी देती है कि मेहर अगर फ़ौरी अदायेगी वाला है तो मेहर की वसूली तक वह शौहर के पास जाने से इनकार कर सकती है।

मुता की हुर्मत

लफ़्ज़ 'इस्तिमता' का माद्दा **मीम, ता, ऐन** है, जिसके मायने किसी फ़ायदे के हासिल होने के हैं। किसी शख़्स से या माल से कोई फ़ायदा हासिल किया तो उसको 'इस्तिमता' कहते हैं। अ़रबी ग्रामर के एतिबार से किसी कलिमे के माद्दे में **सीन** और **ता** का इज़ाफ़ा कर देने से तलब व हुसूल के मायने पैदा हो जाते हैं। इस लुग़वी तहक़ीक़ की बुनियाद पर 'फ़मस्तअ़्तुम' का सीधा मतलब पूरी उम्मत के नज़दीक पहले बुज़ुर्गों व उलेमा से लेकर बाद के हज़रात तक वही है जो हमने अभी ऊपर बयान किया है। लेकिन एक फ़िर्क़े का कहना है कि इससे इस्तिलाही (परिचित) **मुता** मुराद है और उन लोगों के नज़दीक यह आयत मुता हलाल होने की दलील है, हालाँकि मुता जिसको कहते हैं उसकी साफ़ तरदीद क़ुरआने करीम की उपरोक्त आयत में लफ़्ज़ 'मुहसिनी-न ग़ै-र मुसाफ़िही-न' से हो रही है, जिसकी तशरीह (वज़ाहत) आगे आ रही है।

इस्तिलाही मुता जिसके जायज़ होने का एक फ़िर्क़ा दावेदार है, यह है कि एक मर्द किसी औरत से यूँ कहे कि इतने दिन के लिये इतने पैसे या फ़ुलाँ जिन्स (चीज़) के बदले में तुम से मुता करता हूँ। इस्तिलाही मुता का इस आयत से कोई ताल्लुक़ नहीं है, सिर्फ़ लफ़्ज़ी माद्दे को देखकर यह फ़िर्क़ा दावेदार है कि आयत से मुता के हलाल होने का सुबूत हो रहा है।

पहली बात यह है कि जब दूसरे मायने की भी कम से कम गुंजाईश है (चाहे हमारे नज़दीक मुतैयन है) तो सुबूत का क्या रास्ता है?

दूसरी बात यह है कि क़ुरआन मजीद ने मुहर्रमात (हराम होने वाली औरतों) का ज़िक्र फ़रमाकर यूँ फ़रमाया है कि इनके अ़लावा अपने उसूल के ज़रिये हलाल औरतें तलाश करो, इस हाल में कि पानी बहाने वाले न हों, यानी केवल जिन्सी इच्छा पूरी करना मक़सूद न हो, और

साथ ही साथ **मुहसिनीन** की भी क़ैद लगाई है यानी यह कि पाकदामनी व आबरू का ध्यान रखने वाले हों। **मुता** चूँकि एक निर्धारित वक़्त के लिये किया जाता है इसलिये इसमें न औलाद हासिल करना मक़सूद होता है न घर-बार बसाना और न पाकदामनी व आबरू की हिफ़ाज़त, और इसी लिये जिस औरत से मुता किया जाये उसको मुख़ालिफ़ पक्ष वारिस बनने वाली बीवी भी क़रार नहीं देता और उसको परिचित बीवियों की गिनती में भी शुमार नहीं करता। और चूँकि मक़सद सिर्फ़ जिन्सी इच्छा को पूरी करना होता है इसलिये मर्द व औरत वक़्ती और अस्थायी तौर पर नये-नये जोड़े तलाश करते रहते हैं। जब यह सूरत है तो मुता पाकदामनी व आबरू का ज़मानती नहीं बल्कि दुश्मन है।

किताब **हिदाया** के लेखक ने हज़रत इमाम मालिक रहमतुल्लाहि अ़लैहि की तरफ़ यह मन्सूब किया है कि उनके नज़दीक मुता जायज़ है, लेकिन यह निस्बत बिल्कुल ग़लत है जैसा कि हिदाया के व्याख्यापकों और दूसरे उलेमा हज़रात ने इसको स्पष्ट किया है कि हिदाया के लेखक से यह चूक हुई है।

अलबत्ता कुछ लोग यह दावा करते हैं कि हज़रत इब्ने अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु अख़ीर तक मुता के हलाल होने के क़ायल थे, हालाँकि ऐसा नहीं है। इमाम तिर्मिज़ी रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने 'बाबु मा जा-अ फ़ी निकाहिल-मुत्अ़ति' का बाब क़ायम करके दो हदीसें नक़ल की हैं। पहली हदीस यह है:

عَنْ عَلِيِّ بْنِ اَبِيْ طَالِبٍ اَنَّ النَّبِيَّ صَلَّى اللّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ نَهٰى عَنْ مُتْعَةِ النِّسَآءِ وَعَنْ لُحُوْمِ الْحُمُرِ الْاَهْلِيَّةِ زَمَنَ خَيْبَرَ.

"हज़रत अ़ली रज़ियल्लाहु अ़न्हु से रिवायत है कि रसूले ख़ुदा सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने ग़ज़वा-ए-ख़ैबर के मौक़े पर औरतों से मुता करने और पालतू गधों का गोश्त खाने से मना फ़रमाया।"

हज़रत अ़ली रज़ियल्लाहु अ़न्हु की यह हदीस बुख़ारी व मुस्लिम में भी है।

दूसरी हदीस जो इमाम तिर्मिज़ी रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने नक़ल की है वह यह है:

عَنِ ابْنِ عَبَّاسٍ قَالَ اِنَّمَا كَانَتِ الْمُتْعَةُ فِيْ اَوَّلِ الْاِسْلَامِ حَتّٰى اِذَا نَزَلَتِ الْاٰيَةُ "اِلَّا عَلٰٓى اَزْوَاجِهِمْ اَوْمَا مَلَكَتْ اَيْمَانُهُمْ" قَالَ ابْنُ عَبَّاسٍ فَكُلُّ فَرْجٍ سِوَاهُمَا فَهُوَحَرَامٌ.

"हज़रत इब्ने अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु से रिवायत है, फ़रमाते हैं कि **मुता** इस्लाम के शुरू ज़माने में जायज़ था यहाँ तक कि यह आयते करीमाः

اِلَّا عَلٰٓى اَزْوَاجِهِمْ اَوْمَا مَلَكَتْ اَيْمَانُهُمْ

नाज़िल हुई तो वह मन्सूख़ (निरस्त) हो गया। इसके बाद हज़रत इब्ने अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने फ़रमाया कि शरई बीवी और शरई बाँदी के अ़लावा हर तरह की शर्मगाह से लाभान्वित होना हराम है।"

अलबत्ता इतनी बात ज़रूर है कि हज़रत इब्ने अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु कुछ अ़रसे तक **मुता** को जायज़ समझते थे, फिर हज़रत अ़ली रज़ियल्लाहु अ़न्हु के समझाने से (जैसा कि सही

मुस्लिम जिल्द 1 पेज 452 पर है) और आयते शरीफ़ाः

اِلَّا عَلٰٓى اَزْوَاجِهِمْ اَوْمَا مَلَكَتْ اَيْمَانُهُمْ

से मुतनब्बेह होकर रुजू फ़रमा लिया जैसा कि तिर्मिज़ी की रिवायत से मालूम हुआ।

यह अ़जीब बात है कि जो फ़िर्क़ा मुता के हलाल होने का क़ायल है इसके बावजूद कि उसे हज़रत अ़ली रज़ियल्लाहु अ़न्हु के मुहिब (मुहब्बत करने वाले) और फ़रमाँबरदार होने का दावा है, लेकिन इस मसले में वह उनका भी मुख़ालिफ़ है। और ज़ुल्म करने वालों को जल्द ही पता चल जायेगा कि वे किस अन्जाम की तरफ़ पलट रहे हैं।

तफ़सीर **रूहुल-मआ़नी** के लेखक क़ाज़ी अ़याज़ रहमतुल्लाहि अ़लैहि से नक़ल करते हैं कि ग़ज़वा-ए-ख़ैबर से पहले मुता हलाल था, फिर ग़ज़वा-ए-ख़ैबर में हराम कर दिया गया। इसके बाद फ़त्हे-मक्का के दिन हलाल कर दिया गया लेकिन फिर तीन दिन के बाद हमेशा के लिये हराम कर दिया गया।

साथ ही यह बात भी क़ाबिले ग़ौर है कि अल्लाह तआ़ला के फ़रमानः

وَالَّذِيْنَ هُمْ لِفُرُوْجِهِمْ حٰفِظُوْنَ٥ اِلَّا عَلٰٓى اَزْوَاجِهِمْ اَوْمَامَلَكَتْ اَيْمَانُهُمْ فَاِنَّهُمْ غَيْرُمَلُوْمِيْنَ٥

(यानी सूरः मोमिनून की आयत 5, 6) यह ऐसा स्पष्ट इरशाद है जिसमें किसी तावील की गुन्जाईश नहीं। इससे मुता का हराम होना साफ़ ज़ाहिर है। इसके मुक़ाबले में कुछ ग़ैर-मशहूर क़िराअतों का सहारा लेना क़तई ग़लत है।

जैसा कि पहले अ़र्ज़ किया गया लफ़्ज़ 'इस्तमतअ़्तुम' से परिचित मुता मुराद होने की कोई मज़बूत और निश्चित दलील नहीं है, महज़ एक शक और गुमान है, यह गुमानः

اِلَّا عَلٰٓى اَزْوَاجِهِمْ اَوْمَا مَلَكَتْ اَيْمَانُهُمْ

के स्पष्ट और क़तई मज़मून के मुक़ाबले और टक्कर का हरगिज़ नहीं हो सकता। और फ़र्ज़ करो अगर दोनों दलीलें क़ुव्वत में बराबर हों तो कहा जायेगा कि दोनों दलीलें हलाल व हराम होने में एक-दूसरे से टकरा रही हैं, फ़र्ज़ करो अगर टकराव मान लिया जाये तब भी सही व सलीम अ़क्ल का तक़ाज़ा है कि हराम करने वाले हुक्म को गुंजाईश होने का इशारा करने वाले हुक्म पर तरजीह (वरीयता) होनी चाहिये।

मसलाः निकाहे मुता की तरह निकाहे मुवक़्क़त (निर्धारित वक़्त के लिये किया गया निकाह) भी हराम और बातिल है। निकाहे मुवक़्क़त यह है कि एक निर्धारित मुद्दत के लिये निकाह किया जाये, और इन दोनों में फ़र्क़ यह है कि मुता में लफ़्ज़ मुता बोला जाता है और निकाहे मुवक़्क़त निकाह के लफ़्ज़ से होता है।

وَلَاجُنَاحَ عَلَيْكُمْ فِيْمَا تَرَاضَيْتُمْ بِهٖ مِنْۢ بَعْدِ الْفَرِيْضَةِ

आयत के इस जुमले का मतलब यह है कि आपस में मेहर मुक़र्रर करने के बाद निर्धारित मेहर कोई निश्चित चीज़ नहीं हो जाती कि उसमें कमी-बेशी दुरुस्त न हो, बल्कि शौहर मुक़र्ररा मेहर पर अपनी तरफ़ से इज़ाफ़ा भी कर सकता है और बीवी अगर चाहे तो अपनी ख़ुशदिली से

थोड़ा या पूरा मेहर माफ़ कर सकती है। अलफ़ाज़ के आ़म होने से मालूम हुआ कि औ़रत अगर फ़ौरी अदायेगी वाला मेहर तय करके बाद में ले लेने को मन्ज़ूर कर ले तो यह भी दुरुस्त है और इसमें कोई गुनाह नहीं।

اِنَّ اللّٰهَ كَانَ عَلِيْمًا حَكِيْمًا

आयत के ख़त्म पर यह जुमला बढ़ाकर एक तो यह बताया कि अल्लाह तआ़ला को सब कुछ ख़बर है। उक्त अहकाम की अगर कोई शख़्स ख़िलाफ़वर्ज़ी करे तो अगरचे उसकी ख़बर क़ाज़ी, हाकिम और किसी इनसान को न हो लेकिन अल्लाह जल्ल शानुहू को तो सब ख़बर है, उससे हर हाल में डरते रहना चाहिये। और यह भी बतलाया कि जो अहकाम इरशाद फ़रमाये हैं ये सब कुछ हिक्मत पर मब्नी (आधारित) हैं। हिक्मत उस गहरी और बारीक बात को कहते हैं जो हर शख़्स की समझ में नहीं आती। हराम व हलाल होने के अहकाम जो आयतों में मज़कूर हैं उनकी इल्लत (सबब और कारण) किसी की समझ में आये या न आये उनको हर हाल में मानना लाज़िम है, क्योंकि अगर हमें इल्लत मालूम नहीं तो हुक्म देने वाले यानी अल्लाह तआ़ला शानुहू को तो मालूम है, जो अ़लीम और हकीम है।

इस दौर के बहुत से पढ़े-लिखे जाहिल अल्लाह के अहकाम की इल्लतें (वजहें और सबब) तलाश करते हैं, अगर कोई इल्लत मालूम नहीं होती तो (अल्लाह की पनाह) अल्लाह के हुक्म को नामुनासिब या मौजूदा दौर के तक़ाज़ों के ख़िलाफ़ कहकर टाल देते हैं। इन अलफ़ाज़ में ऐसे लोगों का मुँह बन्द कर दिया गया है और बतला दिया गया है कि तुम नादान हो, अल्लाह जल्ल शानुहू दाना है, तुम नासमझ हो अल्लाह हकीम है, अपनी समझ को हक़ होने का मेयार न बनाओ। वास्तविकता यह है कि अल्लाह तआ़ला ही सब कुछ जानता है, उसी का इल्म कामिल और हिक्मतों वाला है।

وَمَنْ لَّمْ يَسْتَطِعْ مِنْكُمْ طَوْلًا اَنْ يَّنْكِحَ الْمُحْصَنٰتِ الْمُؤْمِنٰتِ فَمِنْ مَّا مَلَكَتْ اَيْمَانُكُمْ مِّنْ فَتَيٰتِكُمُ الْمُؤْمِنٰتِ، وَاللّٰهُ اَعْلَمُ بِاِيْمَانِكُمْ، بَعْضُكُمْ مِّنْ بَعْضٍ، فَانْكِحُوْهُنَّ بِاِذْنِ اَهْلِهِنَّ وَاٰتُوْهُنَّ اُجُوْرَهُنَّ بِالْمَعْرُوْفِ مُحْصَنٰتٍ غَيْرَ مُسٰفِحٰتٍ وَّلَا مُتَّخِذٰتِ اَخْدَانٍ، فَاِذَآ اُحْصِنَّ فَاِنْ اَتَيْنَ بِفَاحِشَةٍ فَعَلَيْهِنَّ نِصْفُ مَا عَلَى الْمُحْصَنٰتِ مِنَ الْعَذَابِ، ذٰلِكَ لِمَنْ خَشِيَ الْعَنَتَ مِنْكُمْ، وَاَنْ تَصْبِرُوْا خَيْرٌ لَّكُمْ، وَاللّٰهُ غَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ ۝

व मल्लम् यस्ततिअ़् मिन्कुम् तौलन् अंय्यन्किहल् मुह्सनातिल्-मुअ्मिनाति फ़मिम्मा म-लकत् ऐमानुकुम् मिन्	और जो कोई न रखे तुम में ताक़त व गुंजाईश इसकी कि निकाह में लाये मुसलमान बीबियाँ (यानी आज़ाद मुसलमान औ़रतें) तो निकाह कर ले उनसे

फ़-तयातिकुमुल्-मुअ्मिनाति, वल्लाहु अअ्लमु बिईमानिकुम्, बअ्ज़ुकुम् मिम्-बअ्ज़िन् फ़न्किहूहुन्-न बि-इज़्नि अह्लिहिन्-न व आतूहुन्-न उजूरहुन्-न बिल्मअ्रूफ़ि मुह्सनातिन् ग़ै-र मुसाफ़िहातिंव्-व ला मुत्तख़िज़ाति अख़्दानिन् फ़-इज़ा उह्सिन्-न फ़-इन् अतै-न बिफ़ाहि-शतिन् फ़-अ़लैहिन्-न निस्फ़ु मा अ़लल्-मुह्सनाति मिनल्-अ़ज़ाबि, ज़ालि-क लिमन् ख़शियल् अ़-न-त मिन्कुम्, व अन् तस्बिरू ख़ैरुल्लकुम्, वल्लाहु ग़फ़ूरुर्रहीम (25) ❁	जो तुम्हारे हाथ का माल हैं, जो कि तुम्हारे आपस की मुसलमान बाँदियाँ हैं, और अल्लाह को ख़ूब मालूम है तुम्हारी मुसलमानी, तुम आपस में एक हो, सो उनसे निकाह करो उनके मालिकों की इजाज़त से और दो उनके मेहर दस्तूर के मुवाफ़िक़, क़ैद में आने वालियाँ हों, न मस्ती निकलने वालियाँ और न छुपी यारी (आशनाई) करने वालियाँ। फिर जब वे क़ैद (निकाह के बंधन) में आ चुकें तो अगर करें बेहयाई का काम तो उन पर आधी सज़ा है बीबियों (आज़ाद मुसलमान बीवियों) की सज़ा से, यह उसके वास्ते है जो कोई तुम में डरे तकलीफ़ में पड़ने से, और सब्र करो तो बेहतर है तुम्हारे हक़ में, और अल्लाह बख़्शने वाला मेहरबान है। (25) ❁

इन आयतों के मज़मून का पीछे से ताल्लुक़

ऊपर से चूँकि निकाह के अहकाम चले आ रहे हैं इसलिये इसी के तहत में अब शरई बाँदियों के साथ निकाह करने का ज़िक्र शुरू हुआ, और फिर उन्हीं के बारे में सज़ा का हुक्म भी बयान कर दिया गया कि बाँदी और ग़ुलाम की हद (सज़ा) आज़ाद औरत व मर्द से अलग और भिन्न होती है।

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

और जो शख़्स तुम में पूरी ताक़त और गुंजाईश न रखता हो आज़ाद मुसलमान औरतों से निकाह करने की तो वह अपने आपस (वालों) की मुसलमान बाँदियों से जो कि तुम लोगों की (शरई तौर पर) मिल्क में हैं, निकाह कर ले (क्योंकि अक्सर बाँदियों का मेहर वग़ैरह कम होता है और उनको ग़रीब के साथ ब्याह देने में शर्म भी नहीं करते), और (बाँदी से निकाह करने में शर्म न करे क्योंकि दीन की रू से तो मुम्किन है कि वह तुम से भी अफ़ज़ल हो। वजह यह है कि दीन में अफ़ज़ल होने का मदार ईमान है और) तुम्हारे ईमान की पूरी हालत अल्लाह ही को मालूम है (कि उसमें कौन आला है कौन अदना है, क्योंकि वह दिल से संबन्धित है जिसकी पूरी

इत्तिला अल्लाह तआला ही को है। और दुनिया की रू से ज़्यादा वजह शर्म की नसब और ख़ानदान का फ़र्क़ है, इसमें जो नसबों का असल स्रोत है यानी हज़रत आदम व हव्वा अ़लैहिमस्सलाम उसमें शरीक होने के एतिबार से) तुम सब आपस में एक-दूसरे के बराबर हो (फिर शर्म की क्या वजह)। सो (जब शर्म व ग़ैरत न होने की वजह मालूम हो गई तो उक्त ज़रूरत के वक़्त) उनसे निकाह कर लिया करो (मगर शर्त यह भी है कि) उनके मालिकों की इजाज़त से (हो), और उन (के मालिकों) को उनके मेहर (शरीअ़त के) क़ायदे के मुवाफ़िक़ दे दिया करो (और यह मेहर देना) इस तौर पर (हो) कि वे निकाह में लाई जाएँ, न तो खुलेआ़म बदकारी करने वाली हों और न छुपे ताल्लुक़ात रखने वाली हों (यानी वह मेहर निकाह की वजह से हो, इससे मालूम हुआ कि ज़िना की उजरत के तौर पर देने से वह हलाल न होगी)।

फिर जब वे बाँदियाँ निकाह में लाई जाएँ, फिर अगर वे बड़ी बेहयाई का काम (यानी ज़िना) करें तो (साबित होने के बाद बशर्तेकि मुसलमान हों) उनपर उस सज़ा से आधी सज़ा (जारी) होगी जो कि (ग़ैर-मन्कूहा) आज़ाद औरतों पर होती है (जैसा कि निकाह से पहले भी बाँदियों की यही सज़ा थी और इसी तरह ग़ुलामों की भी)। यह (बाँदियों से निकाह करना) उस शख़्स के लिए (मुनासिब) है जो तुम में (जिन्सी इच्छा के सबब और आज़ाद मन्कूहा मयस्सर न होने के) ज़िना (में मुब्तला हो जाने) का अन्देशा रखता हो, (और जिसको यह अन्देशा न हो उसके लिये मुनासिब नहीं) और (अगर इस अन्देशे की हालत में भी अपने नफ़्स पर क़ादिर हो तो) तुम्हारा ज़ब्त (बरदाश्त) करना ज़्यादा बेहतर है (बाँदी से निकाह के मुक़ाबले में) और (यूँ) अल्लाह तआला बड़े बख़्शने वाले हैं (अगर मक्रूह होने की सूरत में भी निकाह कर लिया तो हम पकड़ नहीं करेंगे और) बड़ी रहमत वाले हैं (कि हराम होने का हुक्म नहीं फ़रमाया)।

मआरिफ़ व मसाईल

'तौल' क़ुदरत और ग़िना (ताक़त व मालदारी) को कहते हैं। आयत का मतलब यह है कि जिसको आज़ाद औरतों से निकाह करने की ताक़त न हो या इसका सामान मयस्सर न हो तो मोमिन बाँदियों से निकाह कर सकता है। इससे पता चला कि जहाँ तक मुम्किन हो आज़ाद औरत ही से निकाह करना चाहिये, बाँदी से निकाह न करे। और अगर बाँदी से निकाह करना ही पड़ जाये तो मोमिन बाँदी तलाश करे।

हज़रत इमाम अबू हनीफ़ा रहमतुल्लाहि अ़लैहि का यही मज़हब है कि आज़ाद औरत से निकाह की ताक़त होते हुए बाँदी से निकाह कर लेना या किताबिया बाँदी से निकाह कर लेना मक्रूह है।

और हज़रत इमाम शाफ़ई रहमतुल्लाहि अ़लैहि और दूसरे इमामों के नज़दीक आज़ाद औरत से निकाह की ताक़त होते हुए बाँदी से निकाह करना हराम है, और किताबिया बाँदी से निकाह करना बिल्कुल ही जायज़ नहीं है।

बहरहाल बाँदी के निकाह से बचना आज़ाद मर्द के लिये हर हाल में बेहतर है, और अगर

मजबूर होकर करना हो तो मोमिन बाँदी से निकाह करें। वजह इसकी यह है कि बाँदी से जो औलाद पैदा हो वह उस शख़्स की गुलाम होती है जो बाँदी का मालिक है, और ग़ैर-मोमिन बाँदी से जो औलाद होगी अन्देशा है कि वह माँ के ढंग पर ग़ैर-दीन इख़्तियार करें, औलाद को गुलामी से बचाने और मोमिन बनाने के लिये यह ज़रूरी है कि बच्चों की माँ आज़ाद हो, और अगर बाँदी हो तो कम से कम ईमान वाली ज़रूर हो ताकि बच्चे का ईमान महफ़ूज़ रहे। इसी लिये उलेमा-ए-किराम ने फ़रमाया है कि किताबी औरत जो आज़ाद हो उससे अगरचे निकाह करना दुरुस्त है लेकिन बचना बेहतर है, और इस दौर में तो इसकी अहमियत बहुत ज़्यादा है, क्योंकि यहूदियों व ईसाईयों की औरतें उमूमन मुसलमानों से इसलिये निकाह करती हैं कि खुद शौहर को और शौहर की औलाद को अपने दीन पर ला सकें।

फिर फ़रमायाः

وَاللّٰهُ اَعْلَمُ بِاِيْمَانِكُمْ بَعْضُكُمْ مِّنْ ، بَعْضٍ

यानी अल्लाह तआला को तुम्हारे ईमान का ख़ूब इल्म है। ईमान फ़ज़ीलत का सबब है। बाज़ मर्तबा गुलाम और बाँदी ईमानी मर्तबे में आज़ाद मर्द व औरत से बढ़े हुए होते हैं इसलिये मोमिन बाँदी के निकाह करने को क़ाबिले नफ़रत न जानें बल्कि उसके ईमान की क़द्र करें।

आख़िर में फ़रमायाः

بَعْضُكُمْ مِّنْ ، بَعْضٍ

यानी आज़ाद और गुलाम सब एक ही जिन्स बनी आदम (आदम की औलाद) से ताल्लुक़ रखते हैं और सब एक ही नफ़्स से पैदा हुए हैं, फ़ज़ीलत का मदार ईमान और तक़वे पर हैः

قَالَ فِى الْمَظْهَرِىْ فَهَاتَانِ الْجُمْلَتَانِ لِتَانِيْسِ النَّاسِ بِنِكَاحِ الْاِمَآءِ وَمَنْعِهِمْ عَنِ الْاِسْتِنْكَافِ مِنْهُنَّ

"यानी इन दोनों जुमलों का मतलब यह है कि लोग बाँदियों के निकाह से मानूस (यानी उसकी तरफ़ रुचि रखने वाले) हों और इस निकाह को क़ाबिले नफ़रत न जानें।"

فَانْكِحُوْهُنَّ بِاِذْنِ اَهْلِهِنَّ وَاٰتُوْهُنَّ اُجُوْرَهُنَّ بِالْمَعْرُوْفِ

"यानी बाँदियों से निकाह उनके मालिकों की इजाज़त से करो, अगर वे इजाज़त न दें तो बाँदियों का निकाह सही न होगा।" इसलिये कि बाँदी को खुद अपने नफ़्स पर विलायत (इख़्तियार) हासिल नहीं होती, यही हुक्म गुलाम का भी है कि वह अपने आक़ा की इजाज़त के बग़ैर निकाह नहीं कर सकता।

फिर फ़रमाया कि बाँदियों से निकाह करो तो उनके मेहर ख़ूबी के साथ अदा कर दो, यानी टाल-मटोल न करो। और पूरा अदा कर दो, बाँदी समझकर इस बारे में तकलीफ़ न दो।

इस सिलसिले में इमाम मालिक रहमतुल्लाहि अलैहि का मज़हब यह है कि मेहर बाँदी का हक़ है और दूसरे इमाम हज़रात फ़रमाते हैं कि बाँदी के मेहर में जो माल मिले उसका मालिक भी बाँदी का आक़ा है।

مُحْصَنٰتٍ غَيْرَ مُسٰفِحٰتٍ وَّلَا مُتَّخِذٰتِ اَخْدَانٍ

यानी मोमिन बाँदियों से निकाह करो इस हाल में कि वे पाकदामन हों, न वे मुसाफ़िहात हों (यानी ऐलानिया ज़िना करने वाली) और न ख़ुफ़िया तरीक़े पर आशना रखने वाली हो। अगरचे इस जगह पर बाँदियों के बारे में फ़रमाया है कि निकाह के लिये पाकदामन बाँदियों को तलाश करो लेकिन आज़ाद औरत जो ज़ानिया हो उससे निकाह से बचना भी अफ़ज़ल और बेहतर है।

जैसा कि आयत से मालूम हुआ कि अगर आज़ाद औरत के साथ निकाह की क़ुदरत न हो तो बाँदी के साथ निकाह करो। इससे यह भी साबित हुआ कि मुता जायज़ नहीं, इसलिये कि अगर मुता जायज़ होता तो आज़ाद औरत के साथ निकाह की गुंजाईश न होने की सूरत में किसी शख़्स के लिये सबसे आसान सूरत मुता करने की थी, कि इसमें जिन्सी इच्छा भी पूरी हो जाती और माली बोझ भी निकाह के मुक़ाबले में बहुत कम होता।

साथ ही आयत में 'मुहसनातिन् ग़ै-र मुसाफ़िहातिन्' के साथ बाँदियों की सिफ़त बयान की गई है और मुता की सूरत में मस्ती निकालना और जिन्सी इच्छा पूरी करना ही होता है, कि एक औरत थोड़ी सी मुद्दत में कई शख़्सों के इस्तेमाल में आती है, और चूँकि बच्चा किसी की तरफ़ मन्सूब नहीं किया जा सकता इसलिये नस्ल चलाने का भी फ़ायदा हासिल नहीं होता, और सब की ताक़त सिर्फ़ जिन्सी इच्छा पूरी करने और मस्ती करने में ज़ाया चली जाती है।

फिर फ़रमायाः

فَإِذَآ أُحْصِنَّ فَإِنْ أَتَيْنَ بِفَاحِشَةٍ فَعَلَيْهِنَّ نِصْفُ مَا عَلَى الْمُحْصَنٰتِ مِنَ الْعَذَابِ

यानी जब बाँदियाँ निकाह में आ गईं और उनके पाकदामन रहने का इन्तिज़ाम हो गया तो अब अगर ज़िना कर बैठें तो उनको उस सज़ा से आधी सज़ा मिलेगी जो आज़ाद औरतों के लिये मुक़र्रर है। इससे ग़ैर-शादीशुदा आज़ाद औरतें मुराद हैं, ग़ैर-शादीशुदा आज़ाद मर्द व औरत से अगर ज़िना का काम हो जाये तो उसको सौ कोड़े लगाये जायेंगे जिसका ज़िक्र सूरः नूर की दूसरी आयत में है। और जो कोई शादीशुदा मर्द व औरत ज़िना कर ले तो उसकी सज़ा रजम है, यानी पत्थरों से मार-मारकर क़त्ल कर दिया जायेगा। चूँकि इसमें आधा बटवारा नहीं हो सकता इसलिये चारों इमामों का मज़हब यही है कि ग़ुलाम या बाँदी चाहे शादीशुदा हों चाहे कुंवारे हों अगर उनसे ज़िना सर्ज़द हो जाये तो उनकी सज़ा पचास कोड़े हैं, बाँदियों का हुक्म तो आयते शरीफ़ा में मज़कूर है और शरई दलील के तौर पर ग़ुलाम का मसला भी इसी से समझ में आ रहा है।

ذٰلِكَ لِمَنْ خَشِيَ الْعَنَتَ مِنْكُمْ

यानी बाँदियों से निकाह करने की इजाज़त उस शख़्स के लिये है जिसको ज़िना में पड़ जाने का अन्देशा हो।

وَأَنْ تَصْبِرُوْا خَيْرٌ لَّكُمْ

यानी बावजूद ज़िना की आशंका के भी अगर सब्र कर लो और अपने नफ़्सों को पाकदामन रख सको तो यह तुम्हारे लिये इस बात से बेहतर है कि बाँदियों से निकाह करो।

आयत के ख़त्म पर फ़रमायाः

وَاللّٰهُ غَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ

यानी बाँदियों से निकाह करना मक्रूह है। अगर इस कराहत पर अ़मल कर लोगे तब भी अल्लाह तआ़ला माफ़ फ़रमा देंगे, और वह रहम वाला भी है क्योंकि उसने बाँदियों से निकाह की इजाज़त दे दी और इसको ममनू (वर्जित) क़रार नहीं दिया।

फ़ायदाः ऊपर वाली आयत की तफ़सीर में जो ग़ुलाम व बाँदी का ज़िक्र आया है इनसे शरई ग़ुलाम व बाँदी मुराद हैं। जो काफ़िर मर्द व औ़रत जिहाद के मौक़े पर क़ैद कर लिये जाते थे और अमीरुल-मोमिनीन उनको मुजाहिदीन में तक़सीम कर देता था ये क़ैदी ग़ुलाम बाँदी बन जाते थे, फिर उनकी नस्ल भी ग़ुलाम रहती थी (कुछ हालतों को छोड़कर) जिनका तफ़सीली ज़िक्र मसाईल की किताबों में है। जब से मुसलमानों ने शरई तौर पर जिहाद करना छोड़ दिया है और अपने जिहाद और सुलह व जंग का मदार दीन के दुश्मनों के इशारों पर रख दिया है और ग़ैर-शरई उसूलों के पाबन्द हो गये हैं उस वक़्त से ग़ुलाम बाँदी से भी मेहरूम हो गये। मौजूदा नौकर चाकर और घरों में काम करने वाली नौकरानियाँ ग़ुलाम बाँदियाँ नहीं हैं, इसलिये कि ये आज़ाद हैं।

कुछ इलाक़ों में बच्चों को बेच देते हैं और ग़ुलाम बना लेते हैं, यह सरासर हराम है और ऐसा करने से ये ग़ुलाम बाँदी नहीं बन जाते।

يُرِيْدُ اللّٰهُ لِيُبَيِّنَ لَكُمْ وَيَهْدِيَكُمْ سُنَنَ الَّذِيْنَ مِنْ قَبْلِكُمْ وَيَتُوْبَ عَلَيْكُمْ ۭ وَاللّٰهُ عَلِيْمٌ حَكِيْمٌ ۝ وَاللّٰهُ يُرِيْدُ اَنْ يَّتُوْبَ عَلَيْكُمْ ۣ وَيُرِيْدُ الَّذِيْنَ يَتَّبِعُوْنَ الشَّهَوٰتِ اَنْ تَمِيْلُوْا مَيْلًا عَظِيْمًا ۝ يُرِيْدُ اللّٰهُ اَنْ يُّخَفِّفَ عَنْكُمْ ۚ وَخُلِقَ الْاِنْسَانُ ضَعِيْفًا ۝

युरीदुल्लाहु लि-युबय्यि-न लकुम् व यह्दि-यकुम् सु-ननल्लज़ी-न मिन् क़ब्लिकुम् व यतू-ब अ़लैकुम्, वल्लाहु अ़लीमुन् हकीम (26) वल्लाहु युरीदु अंय्यतू-ब अ़लैकुम्, व युरीदुल्लज़ी-न यत्तबिअ़ूनश्श-हवाति अन् तमीलू मैलन् अ़ज़ीमा (27) युरीदुल्लाहु अंय्युख़फ़्फ़ि-फ़ अ़न्कुम् व ख़ुलिक़ल्-इन्सानु ज़अ़ीफ़ा (28)	अल्लाह चाहता है कि बयान करे तुम्हारे वास्ते और चलाये तुमको पहलों की राह (पर) और माफ़ करे तुमको, और अल्लाह जानने वाला है हिक्मत वाला। (26) और अल्लाह चाहता है कि तुम पर मुतवज्जह हो, और चाहते हैं वे लोग जो लगे हुए हैं अपने मज़ों के पीछे कि तुम फिर जाओ राह से बहुत दूर। (27) अल्लाह चाहता है कि तुमसे बोझ हल्का करे, और इन्सान बना है कमज़ोर। (28)

इन आयतों के मज़मून का पीछे से ताल्लुक़

ऊपर गुज़री आयतों में अहकाम की तफ़सील मज़्कूर हुई। इन आयतों में अल्लाह जल्ल शानुहू अपना इनाम व एहसान बतलाते हैं और यह कि इन अहकाम को शरई क़ानून बनाने में तुम्हारे ही फ़ायदों और मस्लेहतों की रियायत रखी गई है अगरचे तुम उसकी तफ़सील को न समझो। फिर इसके साथ ही उन अहकाम पर अ़मल करने की तरग़ीब है और गुमराहों के नापाक इरादों पर भी सचेत किया गया कि ये लोग तुम्हारे बदख़्वाह (बुरा चाहने वाले) हैं, जो तुम्हें सीधे और सही रास्ते से भटकाना चाहते हैं।

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

अल्लाह तआ़ला को (इन मज़कूरा मज़ामीन के इरशाद फ़रमाने से इसी तरह दूसरे मज़ामीन से अपना कोई नफ़ा मक़सूद नहीं, इसलिये कि यह अ़क़्ली तौर पर असंभव है, बल्कि तुमको नफ़ा पहुँचाने के लिये) यह मन्ज़ूर है कि (अहकाम की आयतों में तो) तुमसे (तुम्हारी मस्लेहत के अहकाम) बयान कर दे और (क़िस्सों की आयतों में) तुमसे पहले लोगों के हालात तुम्हें बता दे (ताकि तुमको इत्तिबा की रुचि और मुख़ालफ़त से ख़ौफ़ हो) और (कुल मिलाकर मक़सद का ख़ुलासा यह है कि) तुम पर (रहमत के साथ) तवज्जोह फ़रमाए (और वह तवज्जोह यही बयान फ़रमाना और बतलाना है जिसमें पूरी तरह बन्दों ही का नफ़ा है जैसा कि इससे पहले बयान हुआ) और अल्लाह तआ़ला बड़े इल्म वाले हैं (कि बन्दों की मस्लेहत जानते हैं) बड़े हिक्मत वाले हैं (कि बिना वजूब के उन मस्लेहतों की रियायत फ़रमाते हैं)। और अल्लाह तआ़ला को तो (अहकाम व वाक़िआ़त के बयान से जैसा अभी ज़िक्र हुआ) तुम्हारे हाल पर (रहमत के साथ) तवज्जोह फ़रमाना मन्ज़ूर है। और जो लोग (काफ़िरों व बदकारों में से) शहवत परस्त हैं वे यूँ चाहते हैं कि तुम (सही रास्ते से) बड़ी भारी कजी "यानी ग़लत राह" में पड़ जाओ (और उन्हीं जैसे हो जाओ। चुनाँचे वे अपने बुरे ख़्यालात मुसलमानों के कानों में डालते रहते थे और अल्लाह तआ़ला को अहकाम में जिस तरह तुम्हारी मस्लेहत पर नज़र है इसी तरह तुम्हारी आसानी पर भी नज़र है जैसा कि इरशाद है कि) अल्लाह को (अहकाम में) तुम्हारे साथ तख़्फ़ीफ़ (यानी आसानी और सहूलत भी) मन्ज़ूर है और (वजह इसकी यह है कि) आदमी (दूसरी मुकल्लफ़ व पाबन्द मख़्लूक़ के मुक़ाबले में बदन और हिम्मत दोनों में) कमज़ोर पैदा किया गया है (इसलिये इसकी कमज़ोरी के मुनासिब अहकाम मुक़र्रर फ़रमाये हैं, वरना मस्लेहतों की रियायत के एतिबार से मशक़्क़त वाले आमाल को तजवीज़ किये जाने में भी मुज़ायक़ा न था, मगर हमने मजमूई तौर पर दोनों चीज़ों का लिहाज़ फ़रमाया और यह बड़े इल्म व हिक्मत और साथ ही रहमत व शफ़क़त पर मौक़ूफ़ है)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

निकाह के बहुत से अहकाम बयान फ़रमाने के बाद इन आयतों में यह बताया कि अल्लाह

पाक वाज़ेह तौर पर खोलकर तुम्हें अहकाम बतलाते हैं, और अम्बिया-ए-किराम अ़लैहिमुस्सलाम और पहले गुज़रे हुए नेक लोगों के तरीक़े कार की रहबरी फ़रमाते हैं। तुम यह न समझो कि यह हराम व हलाल की तफ़सीलात सिर्फ़ हमारे ही लिये हैं बल्कि तुमसे पहले जो उम्मतें गुज़री हैं उनको भी इस तरह के अहकाम बताये गये थे, जिन्होंने अ़मल किया और अल्लाह तआ़ला की बारगाह के मुक़र्रब बने।

जो लोग शहवतों के पुजारी (यानी ज़िनाकार) हैं और वे क़ौमें और बातिल मज़हब वाले जिनके नज़दीक हराम हलाल कोई चीज़ नहीं, वे तुमको भी हक़ रास्ते से हटाकर अपने बातिल इरादों की तरफ़ मुतवज्जह करना चाहते हैं, तुम उनसे होशियार रहना। कुछ धर्मों में अपनी मेहरम औ़रतों से भी निकाह कर लेना दुरुस्त है, और बहुत से बेदीन इस दौर में निकाह को ख़त्म करने ही के हक़ में हैं, और कुछ मुल्कों में औ़रत को साझे का सामान क़रार दिये जाने की बातें हो रही हैं, ये बातें वे लोग करते हैं जो पूरी तरह नफ़्स के बन्दे और इच्छा के ग़ुलाम हैं, इस्लाम का कलिमा पढ़ने वाले कुछ कमज़ोर ईमान के लोग जो उन बेदीनों के साथ उठते बैठते हैं उनकी बातों में आकर अपने दीन को फ़रसूदा (घिसा-पिटा) ख़्याल करने लगते हैं और दुश्मनों की बातों को इनसानियत की तरक़्क़ी समझते हैं और अनजाने में इस ग़लत ख़्याल में मुब्तला हो जाते हैं कि जैसे ये लोग मॉडर्न सोच के हामी हैं काश! हमारा दीन भी इसकी इजाज़त देता अल्लाह की पनाह! अल्लाह पाक ने तंबीह फ़रमाई है कि तुम लोग ऐसे बुरी फ़ितरत वाले इनसानों के नज़रियों को अपनाने से दूर रहना।

फिर फ़रमायाः

يُرِيْدُ اللّٰهُ اَنْ يُّخَفِّفَ عَنْكُمْ

यानी अल्लाह पाक तुम पर तख़्फ़ीफ़ (कमी, आसानी) और हल्के अहकाम का इरादा फ़रमाते हैं। तुम्हारी दिक़्क़तें दूर करने के लिये निकाह के बारे में ऐसे नर्म अहकाम दिये जिन पर सब अ़मल कर सकते हैं, और अगर आज़ाद औ़रतों से निकाह की ताक़त न हो तो बाँदियों से निकाह की इजाज़त दे दी है। मेहर के बारे में दोनों पक्षों को आपसी रज़ामन्दी से तय करने का इख़्तियार दिया और ज़रूरत के वक़्त एक से ज़्यादा औ़रतों से भी निकाह की इजाज़त दी गई, बशर्तेकि इन्साफ़ व बराबरी हाथ से न छूटे।

फिर फ़रमायाः

وَخُلِقَ الْاِنْسَانُ ضَعِيْفًا٥

"यानी इनसान पैदाईशी तौर पर कमज़ोर है और उसके अन्दर शहवानी (इच्छा भड़काने वाला) माद्दा रखा गया है, अगर बिल्कुल ही औ़रतों से दूर रहने का हुक्म दिया जाता तो इताअ़त और फ़रमाँबरदारी करने से आ़जिज़ रह जाता। इसकी कमज़ोरी को देखते हुए औ़रतों से निकाह करने की इजाज़त ही नहीं बल्कि तरग़ीब दी (शौक़ दिलाया) और निकाह के बाद आपस में जो एक दूसरे को नफ़्स और नज़र की पाकीज़गी का नफ़ा और दूसरे फ़ायदे हासिल होते हैं उनसे दोनों फ़रीक़ों को मज़बूती पहुँचती है। पस निकाह कमज़ोरी के दूर करने का आपसी समझौता

और एक बेमिसाल तरीक़ा है।

يَاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا لَا تَاْكُلُوْٓا اَمْوَالَكُمْ بَيْنَكُمْ بِالْبَاطِلِ اِلَّآ اَنْ تَكُوْنَ تِجَارَةً عَنْ تَرَاضٍ مِّنْكُمْ ۟ وَلَا تَقْتُلُوْٓا اَنْفُسَكُمْ ؕ اِنَّ اللّٰهَ كَانَ بِكُمْ رَحِيْمًا ۝ وَمَنْ يَّفْعَلْ ذٰلِكَ عُدْوَانًا وَّظُلْمًا فَسَوْفَ نُصْلِيْهِ نَارًا ؕ وَكَانَ ذٰلِكَ عَلَى اللّٰهِ يَسِيْرًا ۝

या अय्युहल्लज़ी-न आमनू ला तअ्कुलू अम्वालकुम् बैनकुम् बिल्बातिलि इल्ला अन् तकू-न तिजा-रतन् अ़न् तराज़िम् मिन्कुम्, व ला तक़्तुलू अन्फ़ु-सकुम्, इन्नल्ला-ह का-न बिकुम् रहीमा (29) व मंय्यफ़्अ़ल् ज़ालि-क अ़ुद्वानंव्-व ज़ुल्मन् फ़सौ-फ़ नुस्लीहि नारन्, व का-न ज़ालि-क अ़लल्लाहि यसीरा (30)	ऐ ईमान वालो! न खाओ माल एक दूसरे के आपस में नाहक़ मगर यह कि तिजारत हो आपस की ख़ुशी से, और न ख़ून करो आपस में, बेशक अल्लाह तुमपर मेहरबान है। (29) और जो कोई यह काम करे ज़्यादती से और ज़ुल्म से तो हम उसको डालेंगे आग में, और यह अल्लाह पर आसान है। (30)

इन आयतों के मज़मून का पीछे से ताल्लुक़

सूरः निसा के शुरू में तमाम इनसानों का एक माँ-बाप से पैदा होना और सब का एक भाईचारे के रिश्ते में जकड़े रहना बयान फ़रमाकर आ़म इनसानों के हुक़ूक़ की हिफ़ाज़त और उनकी अदायेगी की तरफ़ संक्षिप्त इशारा फ़रमाया, फिर यतीमों और औ़रतों का तफ़सीली बयान आया, फिर मीरास के अहकाम बयान हुए जिसमें यतीमों, औ़रतों के अ़लावा दूसरे रिश्तेदारों के हुक़ूक़ की अदायेगी की भी ताकीद हुई। उसके बाद निकाह के अहकाम आये कि किस औ़रत से निकाह हलाल है किससे हराम, क्योंकि निकाह एक ऐसा मामला और बंधन है जिससे औ़रत की जान और माल में तसर्रुफ़ करने (दख़ल देने) का किसी को हक़ मिलता है।

मज़कूरा आयतों में आ़म इनसानों के जान व माल की हिफ़ाज़त और उनमें हर नाजायज़ तसर्रुफ़ करने की मनाही का बयान है, चाहे वे इनसान मर्द हों या औ़रतें और अ़ज़ीज़ रिश्तेदार हों या ग़ैर, यहाँ तक कि मुस्लिम हों या वे ग़ैर-मुस्लिम जिनसे युद्ध विराम का कोई समझौता हो चुका हो। (जैसा कि तफ़सीरे मज़हरी में तफ़सील मौजूद है)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

ऐ ईमान वालो! आपस में एक-दूसरे के माल नाहक़ (यानी नाजायज़) तौर पर मत खाओ (बरतो), लेकिन (जायज़ तौर पर हो जैसे) कोई तिजारत हो जो आपसी रज़ामन्दी से (वाक़े) हो

(बशर्तेकि उसमें शरीअ़त की और भी सब शर्तें हों) तो हर्ज नहीं। (यह तो माली तसर्रुफ़ था आगे नफ़्सी और जानी तसर्रुफ़ को फ़रमाते हैं) और तुम एक-दूसरे को क़त्ल भी मत करो, बिला शुब्हा अल्लाह तआ़ला तुम पर बड़े मेहरबान हैं (इसलिये नुक़सान पहुँचाने की सूरतों को मना फ़रमा दिया, ख़ास कर जबकि उसमें यह असर हो कि दूसरा शख़्स फिर तुमको नुक़सान पहुँचायेगा, तो यह अल्लाह तआ़ला की मेहरबानी है कि तुमको भी नुक़सान से बचा लिया)। और (चूँकि क़त्ल इन दोनों चीज़ों में ज़्यादा सख़्त है इसलिये इस पर ख़ास तौर से वईद सुनाते हैं कि) जो शख़्स ऐसा फ़ेल (यानी क़त्ल) करेगा इस तौर पर कि (शरई) हद से गुज़र जाए और (वह गुज़रना भी फ़ेल या राय की ख़ता व ग़लती से न हो बल्कि) इस तौर पर कि (इरादा करके) ज़ुल्म करे, तो हम जल्द ही (यानी मौत के बाद) उसको (दोज़ख़ की) आग में दाख़िल करेंगे, और यह काम (यानी ऐसी सज़ा देना) ख़ुदा तआ़ला को (बिल्कुल) आसान है (कुछ एहतिमाम की हाजत नहीं जिसमें इस शुब्हे की गुन्जाईश हो कि शायद किसी वक़्त एहतिमाम व सामान जमा न हो तो सज़ा टल जायेगी)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

जिस तरह बातिल तरीक़े से ग़ैर का माल खाना जायज़ नहीं, ख़ुद अपना माल भी बातिल तरीक़े से ख़र्च करना जायज़ नहीं

आयत के अलफ़ाज़ में 'अमवालकुम् बैनकुम' का लफ़्ज़ आया है जिसके मायने हैं "अपने माल आपस में" इसमें यह बात तो तमाम मुफ़स्सिरीन की सहमति से दाख़िल है ही कि कोई शख़्स दूसरे का माल नाजायज़ तरीक़े पर न खाये। अबू हय्यान रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने तफ़सीर **बहरे मुहीत** में फ़रमाया कि इसके मफ़्हूम (मायने) में यह भी दाख़िल है कि कोई अपना ही माल नाजायज़ तौर पर खाये। जैसे ऐसे कामों में ख़र्च करे जो शरई तौर पर गुनाह या बेजा ख़र्च करना हैं, वह भी आयत की रू से ममनू व नाजायज़ है।

आयत में 'ला तअ्कुलू' का लफ़्ज़ आया है जिसके मायने हैं "मत खाओ" मगर आ़म मुहावरे के एतिबार से इसके मायने यह हैं कि दूसरे के माल में नाहक़ तौर पर किसी क़िस्म का तसर्रुफ़ न करो, चाहे खाने पीने का हो या उसे इस्तेमाल करने का। आ़म बोलचाल में किसी के माल में तसर्रुफ़ करने को उसका खाना ही बोला जाता है चाहे वह चीज़ खाने की न हो। लफ़्ज़ "बातिल" जिसका तर्जुमा "नाहक़" से किया गया है अ़ब्दुल्लाह बिन मसऊद रज़ियल्लाहु अ़न्हु और जमहूर (ज़्यादातर) सहाबा रज़ियल्लाहु अ़न्हुम के नज़दीक तमाम उन सूरतों को शामिल है जो शरई तौर पर ममनू (वर्जित) और नाजायज़ हैं, जिसमें चोरी, डाका, ग़सब, ख़ियानत, रिश्वत, सूद व जुआ और तमाम बुरे मामलात दाख़िल हैं। (बहरे मुहीत)

बातिल तरीक़े से कोई माल खाने का मतलब व तफ़सील

क़ुरआने करीम ने एक लफ़्ज़ 'बिल्बातिलि' फ़रमाकर तमाम नाजायज़ तरीक़ों से हासिल किये

हुए माल को हराम क़रार दे दिया। फिर उन नाजायज़ तरीक़ों की तफ़सीलात रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के हवाले फ़रमाई। आपने हर नाजायज़ मामले की तफ़सील बयान फ़रमा दी।

इससे यह भी मालूम हो गया कि जो तफ़सीलात नाजायज़ ख़रीद व फ़रोख़्त या नाजायज़ इजारा (नौकरी, मेहनत व उजरत) वग़ैरह की रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की हदीसों में मज़कूर हैं वो दर हक़ीक़त इस क़ुरआनी हुक्म की तशरीह (वज़ाहत व व्याख्या) है, इसलिये वो सब अहकाम एक हैसियत से क़ुरआन ही के अहकाम हैं। रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की हदीसों में जितने अहकामे शरीअ़त मज़कूर हुए हैं, सब का आ़म तौर पर यही हाल है कि वो किसी न किसी क़ुरआनी इशारे की तशरीह होती है, चाहे हमें मालूम हो या न हो कि यह फ़ुलाँ आयत की तशरीह (वज़ाहत व व्याख्या) है।

आयत के पहले जुमले में नाहक़ और नाजायज़ तरीक़ों से किसी के माल में तसर्रुफ़ करने को हराम क़रार दिया गया है। दूसरे जुमले में जायज़ तरीक़ों को हुर्मत (हराम होने के हुक्म) से अलग करने के लिये इरशाद फ़रमायाः

اِلَّآ اَنْ تَكُوْنَ تِجَارَةً عَنْ تَرَاضٍ مِّنْكُمْ

यानी दूसरों का वह माल हराम नहीं जो तिजारत और आपसी रज़ामन्दी के द्वारा हासिल किया गया हो।

जायज़ तरीक़े अगरचे तिजारत के अ़लावा और भी हैं, जैसे इस्तेमाल के लिये देना, हिबा, सदक़ा, मीरास लेकिन आ़म तौर पर एक शख़्स का माल दूसरे के तसर्रुफ़ में आने की परिचित व प्रचलित सूरत तिजारत (कारोबार व व्यापार) ही है।

फिर तिजारत के मायने आ़म तौर पर सिर्फ़ ख़रीद व बेच के लिये जाते हैं, मगर तफ़सीरे मज़हरी में इजारा यानी नौकरी व मज़दूरी और किराये के मामलात को भी तिजारत में दाख़िल क़रार दिया गया है, क्योंकि बै में तो माल के बदले में माल हासिल किया जाता है और इजारे में मेहनत व ख़िदमत के बदले में माल हासिल होता है, लफ़्ज़ तिजारत इन दोनों को शामिल है।

आयत के मज़मून का ख़ुलासा यह हुआ कि किसी का माल नाहक़ खाना हराम है, लेकिन अगर रज़ामन्दी के साथ यानी ख़रीद व बेच या नौकरी व मज़दूरी का मामला हो जाये तो इस तरह दूसरे का माल हासिल करना और उसमें मालिकाना तसर्रुफ़ात करना जायज़ है।

रोज़ी कमाने के माध्यमों में तिजारत और मेहनत सब से बेहतर है

दूसरे का माल हासिल करने की जायज़ सूरतों में से इस आयत में सिर्फ़ तिजारत के ज़िक्र करने की एक वजह यह भी है कि रोज़ी कमाने के माध्यमों में से तिजारत और मेहनत सबसे अफ़ज़ल और अच्छा रोज़गार का ज़रिया है।

हज़रत राफ़े बिन ख़दीज रज़ियल्लाहु अ़न्हु फ़रमाते हैं कि रसूले अकरम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से मालूम किया गया कि कौनसी कमाई हलाल व तय्यिब (पाक और अच्छी) है? आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने इरशाद फ़रमायाः

عَمَلُ الرَّجُلِ بِيَدِهٖ وَكُلُّ مَبِيْعٍ مَبْرُوْرٍ. رواہ احمد والحاکم. (مظهری و ترغیب وترهیب)

"यानी इनसान के हाथ की मज़दूरी और हर सच्ची ख़रीद व बेच (जिसमें झूठ फ़रेब न हो)।"

हज़रत अबू सईद ख़ुदरी रज़ियल्लाहु अ़न्हु फ़रमाते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमायाः

اَلتَّاجِرُ الصَّدُوْقُ الْاَمِيْنُ مَعَ النَّبِيّٖنَ وَالصِّدِّيْقِيْنَ وَ الشُّهَدَآءِ. (ترمذی)

"सच्चा ताजिर जो अमानतदार हो वह अम्बिया और सिद्दीक़ीन और शहीदों के साथ होगा।"

और हज़रत अनस रज़ियल्लाहु अ़न्हु फ़रमाते हैं कि रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमायाः

اَلتَّاجِرُ الصَّدُوْقُ تَحْتَ ظِلِّ الْعَرْشِ يَوْمَ الْقِيَامَةِ. رواہ الاصبهانی (ترغیب)

"सच्चा ताजिर क़ियामत के दिन अ़र्श के साये में होगा।"

पाकीज़ा कमाई की ख़ास शर्तें

और हज़रत मुआ़ज़ रज़ियल्लाहु अ़न्हु से रिवायत है कि रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमायाः

"सबसे ज़्यादा पाक कमाई ताजिरों की कमाई है बशर्तेकि वे जब बात करें तो झूठ न बोलें, और जब वादा करें तो वादे के ख़िलाफ़ न करें, और जब उनके पास कोई अमानत रखी जाये तो उसमें ख़ियानत न करें, और जब कोई सामान (किसी से) ख़रीदें तो (ताजिरों की आ़दत के मुताबिक़) उस सामान को बुरा और ख़राब न बतायें, और जब अपना सामान फ़रोख़्त करें तो (वास्तविकता के ख़िलाफ़) उसकी तारीफ़ न करें। और जब उनके ज़िम्मे किसी का क़र्ज़ हो तो टलायें नहीं, और जब उनका क़र्ज़ किसी के ज़िम्मे हो तो उसको तंग न करें।"

(अस्बहानी, अज़ हाशिया तफ़सीरे मज़हरी)

इसी लिये एक हदीस में इरशाद हैः

اِنَّ التُّجَّارَ يُبْعَثُوْنَ يَوْمَ الْقِيَامَةِ فُجَّارًا اِلَّا مَنِ اتَّقَى اللّٰهَ وَبَرَّ وَصَدَقَ. (اَخْرَجَهُ الْحَاكِمُ عَنْ رِفَاعَةَ بْنِ رَافِعٍ)

"क़ियामत के दिन ताजिर लोग फ़ाजिरों, गुनाहगारों की सफ़ में होंगे सिवाय उस शख़्स के जो अल्लाह से डरे और नेकी का मामला करे और सच बोले।"

दूसरे का माल हलाल होने के लिये तिजारत और दोनों की रज़ामन्दी की दो शर्तें

आयत के इस जुमले में तिजारत के साथः

عَنْ تَرَاضٍ مِّنْكُمْ

(आपस की रज़ामन्दी व ख़ुशी) फ़रमाकर यह बतला दिया कि जहाँ तिजारत ही न हो बल्कि तिजारत के नाम पर जुआ, सट्टा या सूद का मामला हो, या माल अभी मौजूद नहीं महज़ ज़ेहनी क़रारदाद पर उसका सौदा किया गया हो वह बै बातिल और हराम है।

इसी तरह अगर तिजारत यानी मालों का लेन-देन तो हो लेकिन उसमें दोनों फ़रीक़ों की रज़ामन्दी न हो वह भी फ़ासिद और नाजायज़ बै (सौदा) है, और ये दोनों सूरतें 'नाजायज़ तरीक़े पर माल खाने' में दाख़िल हैं। पहली सूरत को फ़ुक़हा (मसाईल के माहिर उलेमा) 'बातिल बै' के नाम से नामित करते हैं और दूसरी सूरत को 'फ़ासिद बै' के नाम से।

वज़ाहत इसकी यह है कि एक माल का दूसरे माल से तबादला करने का नाम तिजारत है, अगर उनमें किसी एक जानिब माल हो और उसके मुक़ाबिल माल ही न हो तो वह तिजारत नहीं बल्कि फ़रेब है। सूद के मामलात का यही हाल है कि सूद की रक़म उधार की मियाद का मुआ़वज़ा होता है और यह मियाद कोई माल नहीं, इसी तरह सट्टा, जुआ कि इसमें एक तरफ़ तो मुतैयन माल मौजूद है दूसरी तरफ़ माल का होना या न होना मशकूक (संदिग्ध) है, इसी तरह वो वायदे के सौदे जिनमें माल अभी तक वजूद में नहीं आया और उसका सौदा कर लिया गया तो एक तरफ़ माल और दूसरी तरफ़ ख़्याली वायदा है, इसलिये हक़ीक़त के एतिबार से यह तिजारत ही नहीं बल्कि एक क़िस्म का धोखा और फ़रेब है, इसी लिये फ़ुक़हा ने इसको 'बातिल बै' क़रार दिया है।

दूसरी सूरत यह है कि दोनों तरफ़ से माल और माल का लेनदेन तो हो लेकिन किसी एक जानिब से रज़ामन्दी न हो, यह तिजारत तो हुई मगर फ़ासिद और ग़लत क़िस्म की तिजारत है इसलिये इसको 'फ़ासिद बै' कहा जाता है और यह नाजायज़ है।

इस वज़ाहत से ख़रीद व बेच और तिजारत (व्यापार) की जितनी नाजायज़ सूरतें हैं सब निकल जाती हैं।

दोनों तरफ़ की रज़ामन्दी वाली शर्त की हक़ीक़त

अलबत्ता एक तीसरी क़िस्म और है जिसमें दोनों तरफ़ से माल का लेनदेन भी है और देखने में दोनों फ़रीक़ों की रज़ामन्दी भी, मगर वह रज़ामन्दी दर हक़ीक़त मजबूरी की रज़ामन्दी होती है, वास्तविक रज़ामन्दी नहीं, इसलिये शरई तौर पर इस तीसरी क़िस्म को भी दूसरी ही क़िस्म में दाख़िल क़रार दिया गया है। जैसे आ़म ज़रूरत की चीज़ों को सब तरफ़ से समेट कर कोई एक

शख़्स या एक कम्पनी स्टॉक करे और फिर उसकी क़ीमत में अपनी मर्ज़ी से इज़ाफ़ा करके फ़रोख़्त करने लगे, चूँकि बाज़ार में दूसरी जगह मिलती नहीं इसलिये ग्राहक मजबूर है कि महंगी सस्ती जैसी भी यह फ़रोख़्त करे वह उसको ख़रीदे, इस सूरत में अगरचे ग्राहक ख़ुद चलकर आता है और बज़ाहिर रज़ामन्दी के साथ ख़रीदता है लेकिन उसकी यह रज़ामन्दी दर हक़ीक़त एक मजबूरी के तहत है इसलिये यह रज़ामन्दी नहीं मानी जायेगी।

इसी तरह कोई शौहर अपनी बीवी के साथ रहन-सहन की ऐसी सूरतें पैदा करे कि वह अपना मेहर माफ़ करने पर मजबूर हो जाये तो अगरचे माफ़ी के वक़्त वह अपनी रज़ामन्दी का इज़्हार करती है मगर दर हक़ीक़त रज़ामन्द नहीं होती।

या कोई आदमी जब यह देखे कि मेरा जायज़ काम बग़ैर रिश्वत दिये नहीं होगा वह रज़ामन्दी के साथ रिश्वत देने के लिये आमादा हो तो चूँकि यह रज़ामन्दी भी दर हक़ीक़त रज़ामन्दी नहीं इसलिये शरई तौर पर इसका एतिबार नहीं।

इससे मालूम हो गया कि:

إِلَّآ أَن تَكُونَ تِجَارَةً عَن تَرَاضٍ مِّنكُمْ

(मगर यह कि तिजारत हो आपस की ख़ुशी से) से ख़रीद व बेच और तिजारत की सिर्फ़ उन्हीं सूरतों का जायज़ होना साबित हुआ जिनका जायज़ होना रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की हदीसों से साबित है, और फ़ुक़हा (क़ुरआन व हदीस से मसाईल निकालने वाले उलेमा) ने उनको मुरत्तब कर दिया है, और जितनी सूरतें बचने ख़रीदने और तिजारत की शरई तौर पर ममनू व नाजायज़ हैं वे सब इससे ख़ारिज (बाहर और अलग) हैं। क़ुरआने करीम के इस लफ़्ज़ ने **फ़िक़ा** (मसाईल) की पूरी **किताबुल-बुयूअ़** और **किताबुल-इजारा** का मुकम्मल बयान कर दिया।

आयत का तीसरा जुमला यह है:

وَلَا تَقْتُلُوٓا أَنفُسَكُمْ

जिसके लफ़्ज़ी मायने यह हैं कि तुम अपने आपको क़त्ल न करो। इसमें तमाम मुफ़स्सिरीन के नज़दीक ख़ुदकुशी भी दाख़िल है और यह भी कि एक दूसरे को नाहक़ क़त्ल करे।

आयत के पहले जुमले में आम इनसानों के माली हुक़ूक़ और उनकी हिफ़ाज़त का बयान था इस जुमले में उनके जानी हुक़ूक़ की हिफ़ाज़त का बयान आ गया और इस जगह माल को मुक़द्दम (पहले) और जान को बाद में शायद इसलिये बयान फ़रमाया गया कि माली हुक़ूक़ में ज़ुल्म व ज़्यादती और कोताही व लापरवाही बहुत आम है, नाहक़ क़त्ल व रक्तपात अगरचे इससे ज़्यादा सख़्त है मगर आ़दतन इसमें लिप्तता कम है इसलिये इसको बाद में बयान फ़रमाया।

आयत के आख़िर में इरशाद है:

إِنَّ اللَّهَ كَانَ بِكُمْ رَحِيمًا

यानी जो अहकाम इस आयत में दिये गये हैं कि लोगों का माल नाहक़ न खाओ या किसी

को नाहक़ क़त्ल न करो। ये सब अहकाम तुम्हारे हक़ में रहमते ख़ुदावन्दी हैं ताकि तुम इन कामों के आख़िरत के वबाल से भी महफ़ूज़ रहो और दुनियावी सज़ाओं से भी।

इसके बाद दूसरी आयत में इरशाद फ़रमायाः

وَمَنْ يَّفْعَلْ ذٰلِكَ عُدْوَانًا وَّظُلْمًا فَسَوْفَ نُصْلِيْهِ نَارًا

यानी क़ुरआनी हिदायतों के बावजूद अगर कोई शख़्स इसकी ख़िलाफ़वर्ज़ी और जान-बूझकर ज़ुल्म व ज़्यादती की राह से किसी का माल नाहक़ ले ले या किसी को नाहक़ क़त्ल कर दे तो हम जल्द ही उसको जहन्नम में दाख़िल करेंगे। ज़ुल्म और ज़्यादती की क़ैद से मालूम हुआ कि अगर भूल-चूक या ग़लती से ऐसा हो गया तो वह इस वईद (धमकी) में दाख़िल नहीं।

اِنْ تَجْتَنِبُوْا كَبَآئِرَ مَا تُنْهَوْنَ عَنْهُ نُكَفِّرْ عَنْكُمْ سَيِّاٰتِكُمْ وَنُدْخِلْكُمْ مُّدْخَلًا كَرِيْمًا۝

इन् तज्तनिबू कबा-इ-र मा तुन्हौ-न अन्हु नुकफ़्फ़िर् अन्कुम् सय्यिआतिकुम् व नुद्ख़िल्कुम् मुद्-ख़लन् करीमा (31)	अगर तुम बचते रहोगे उन चीज़ों से जो गुनाहों में बड़ी हैं तो हम माफ़ कर देंगे तुमसे तुम्हारे छोटे गुनाह, और दाख़िल करेंगे तुमको इज़्ज़त के मक़ाम (यानी जन्नत) में। (31)

इस आयत के मज़मून का पीछे से ताल्लुक़

इस आयत से पहली आयतों में चन्द बड़े-बड़े गुनाहों का ज़िक्र और उनमें मुब्तला होने वालों पर सख़्त अ़ज़ाब का बयान है। क़ुरआने करीम का मख़्सूस अन्दाज़े बयान यह है कि जब किसी जुर्म पर सज़ा से डराया जाता है जिसे **तरहीब** कहते हैं तो उसके साथ **तरग़ीब** का पहलू भी ज़िक्र किया जाता है कि जो शख़्स इस जुर्म से बाज़ आयेगा उसके लिये ये इनामात व दर्जे हैं।

इस आयत में भी एक ख़ास इनामे ख़ुदावन्दी ज़िक्र करके तरग़ीब दी गई है, वह यह कि अगर तुम बड़े-बड़े गुनाहों से बच गये तो तुम्हारे छोटे गुनाहों को हम ख़ुद माफ़ कर देंगे और इस तरह तुम हर तरह के बड़े-छोटे सग़ीरा व कबीरा गुनाहों से पाक व साफ़ होकर इज़्ज़त व राहत के उस मक़ाम में दाख़िल हो सकोगे जिसका नाम जन्नत है।

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

जिन कामों से तुमको (शरीअ़त में) मना किया जाता है (यानी गुनाह के काम) उनमें जो भारी-भारी काम हैं (यानी बड़े-बड़े गुनाह हैं) अगर तुम उनसे बचते रहो तो (इस बचने पर हम वायदा करते हैं कि तुम्हारे अच्छे आमाल के करने से जबकि वो मक़बूल हो जायें) हम तुम्हारी हल्की और छोटी बुराईयाँ (यानी छोटे-छोटे गुनाह जो कि दोज़ख़ में ले जा सकते हैं) तुमसे दूर (यानी माफ़) फ़रमा देंगे (पस दोज़ख़ से महफ़ूज़ रहोगे) और हम तुमको एक इज़्ज़त वाली जगह

(यानी जन्नत) में दाख़िल कर देंगे।

मआ़रिफ़ व मसाईल

गुनाहों की दो क़िस्में

उक्त आयत से मालूम हुआ कि गुनाहों की दो क़िस्में हैं- कुछ कबीरा यानी बड़े गुनाह और कुछ सग़ीरा यानी छोटे गुनाह। और यह भी मालूम हो गया कि अगर कोई शख़्स हिम्मत करके कबीरा गुनाहों से बच जाये तो अल्लाह तआ़ला का वायदा है कि उसके सग़ीरा गुनाहों को वह ख़ुद माफ़ फ़रमा देंगे।

कबीरा (बड़े) गुनाहों से बचने में यह भी दाख़िल है कि तमाम फ़राईज़ व वाजिबात को अदा करे, क्योंकि फ़र्ज़ व वाजिब का छोड़ना ख़ुद एक कबीरा गुनाह है। तो हासिल यह हुआ कि जो शख़्स इसका एहतिमाम पूरा करे कि तमाम फ़राईज़ व वाजिबात अदा करे और तमाम कबीरा गुनाहों से अपने आपको बचा ले तो हक़ तआ़ला उसके सग़ीरा गुनाहों को माफ़ कर देंगे।

नेक आमाल छोटे गुनाहों का कफ़्फ़ारा हो जाते हैं

कफ़्फ़ारा होने का मतलब यह है कि उसके नेक आमाल को सग़ीरा (छोटे) गुनाहों का कफ़्फ़ारा बनाकर उसका हिसाब बेबाक़ कर देंगे और बजाय अ़ज़ाब के सवाब और बजाय जहन्नम के जन्नत नसीब होगी। जैसे सही हदीसों में आया है कि जब कोई शख़्स नमाज़ के लिये वुज़ू करता है तो हर हिस्से के धोने के साथ-साथ गुनाहों का कफ़्फ़ारा हो गया। चेहरा धोया तो आँख, कान नाक वग़ैरह के गुनाहों का कफ़्फ़ारा हो गया, कुल्ली कर ली तो ज़बान के गुनाहों का कफ़्फ़ारा हो गया, पाँव धोये तो पाँव के गुनाह धुल गये। फिर जब वह मस्जिद की तरफ़ चलता है तो हर क़दम पर गुनाहों का कफ़्फ़ारा होता है।

कबीरा गुनाह सिर्फ़ तौबा से माफ़ होते हैं

आयत से मालूम हुआ कि वुज़ू नमाज़ वग़ैरह नेक आमाल के ज़रिये गुनाहों का कफ़्फ़ारा होना जो हदीस की रिवायतों में मज़कूर है इससे मुराद सग़ीरा (छोटे) गुनाह हैं, और कबीरा (बड़े) गुनाह तौबा के बग़ैर माफ़ नहीं होते, और सग़ीरा की यह शर्त है कि आदमी हिम्मत और कोशिश करके कबीरा गुनाहों से बच गया हो। मालूम हुआ कि अगर कोई शख़्स कबीरा (बड़े) गुनाहों में मुब्तला रहते हुए वुज़ू और नमाज़ अदा करता है तो महज़ वुज़ू नमाज़ या दूसरे नेक आमाल से उसके सग़ीरा गुनाहों का भी कफ़्फ़ारा नहीं होगा और कबीरा तो अपनी जगह हैं ही। इसलिये कबीरा गुनाहों का एक बहुत बड़ा नुक़सान ख़ुद उन गुनाहों का वजूद है जिस पर क़ुरआन व हदीस की सख़्त वईदें (सज़ा की धमकियाँ) आई हैं, और वो बग़ैर सच्ची तौबा के माफ़ नहीं होते। इसके अ़लावा दूसरी मेहरूमी यह भी है कि उनकी वजह से छोटे गुनाह भी माफ़

नहीं होंगे, और यह शख़्स मेहशर में छोटे और बड़े गुनाहों के बोझ से लदा हुआ हाज़िर होगा और कोई उस वक़्त इसका बोझ हल्का न कर सकेगा।

गुनाह और उसकी दो क़िस्में छोटे, बड़े

आयत में **कबाइर** का लफ़्ज़ आया है इसलिये यह समझ लेना चाहिये कि गुनाहे कबीरा (बड़ा गुनाह) किसे कहते हैं और वो कुल कितने हैं, और सग़ीरा (छोटे) गुनाह की क्या परिभाषा है और उसकी तादाद क्या है?

उलेमा-ए-उम्मत ने इस मसले पर विभिन्न अन्दाज़ में मुस्तक़िल किताबें लिखी हैं।

गुनाहे कबीरा और सग़ीरा की तक़सीम और उनकी परिभाषाओं से पहले यह ख़ूब समझ लीजिये कि मुतलक़ **गुनाह** नाम है हर ऐसे काम का जो अल्लाह तआ़ला के हुक्म और मर्ज़ी के ख़िलाफ़ हो। इसी से आपको यह अन्दाज़ा भी हो जायेगा कि इस्तिलाह में जिस गुनाह को सग़ीरा यानी छोटा कहा जाता है दर हक़ीक़त वह भी छोटा नहीं अल्लाह तआ़ला की नाफ़रमानी और उसकी मर्ज़ी की मुख़ालफ़त हर हालत में निहायत सख़्त व शदीद जुर्म है। इसी हैसियत से इमामे हरमैन और बहुत से उलेमा-ए-उम्मत ने फ़रमाया हैं कि अल्लाह तआ़ला की नाफ़रमानी और उसकी मर्ज़ी की मुख़ालफ़त कबीरा ही है, कबीरा और सग़ीरा का फ़र्क़ सिर्फ़ गुनाहों के आपसी मुक़ाबले और तुलना की वजह से किया जाता है। इसी मायने में हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु से मन्क़ूल है किः

كُلُّ مَا نُهِيَ عَنْهُ فَهُوَ كَبِيْرَةٌ

यानी जिस काम से इस्लामी शरीअ़त में मना किया गया है वो सब कबीरा गुनाह हैं।

ख़ुलासा यह है कि जिस गुनाह को इस्तिलाह में सग़ीरा या छोटा कहा जाता है उसके यह मायने किसी के नज़दीक नहीं हैं कि ऐसे गुनाहों के करने में ग़फ़लत या सुस्ती बरती जाये और उनको मामूली समझकर नज़र-अन्दाज़ किया जाये, बल्कि सग़ीरा गुनाह को बेबाकी और बेपरवाही के साथ किया जाये तो वह सग़ीरा भी कबीरा हो जाता है।

किसी बुज़ुर्ग ने फ़रमाया कि छोटे गुनाह और बड़े गुनाह की मिसाल महसूसात में ऐसी है जैसे छोटा बिच्छू और बड़ा बिच्छू, आग के बड़े अंगारे और छोटी चिंगारी, कि इनसान इन दोनों में से किसी की तकलीफ़ को भी बरदाश्त नहीं कर सकता। इसलिये मुहम्मद बिन कअ़ब क़ुर्तुबी ने फ़रमाया कि अल्लाह तआ़ला की सबसे बड़ी इबादत यह है कि गुनाहों को तर्क किया जाये जो लोग नमाज़, तस्बीह के साथ गुनाहों को नहीं छोड़ते उनकी इबादत मक़बूल नहीं, और हज़रत फ़ुज़ैल बिन अ़याज़ रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने फ़रमाया कि तुम जिस क़द्र किसी गुनाह को हल्का समझोगे उतना ही वह अल्लाह के नज़दीक बड़ा जुर्म हो जायेगा। और पहले के बुज़ुर्गों ने फ़रमाया कि हर गुनाह कुफ़्र का क़ासिद है जो इनसान को कफ़िराना आमाल व अख़्लाक़ की तरफ़ दावत देता है।

और मुस्नद अहमद में है कि हज़रत आयशा रज़ियल्लाहु अन्हा ने हज़रत मुआविया रज़ियल्लाहु अन्हु को एक ख़त में लिखा कि बन्दा जब ख़ुदा तआला की नाफ़रमानी करता है तो उसके प्रशंसक भी उसकी निंदा और बुराई करने लगते हैं और दोस्त भी दुश्मन हो जाते हैं। गुनाहों से बेपरवाही इनसान के लिये हमेशा की तबाही का सबब है। एक सही हदीस में है कि रसूले करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया- "मोमिन जब कोई गुनाह करता है तो उसके दिल पर एक सियाह धब्बा लग जाता है, फिर अगर तौबा और इस्तिग़फ़ार कर लिया तो यह नुक़्ता (बिन्दू) मिट जाता है और अगर तौबा न की तो यह नुक़्ता बढ़ता रहता है, यहाँ तक कि उसके पूरे दिल पर छा जाता है" और इसका नाम क़ुरआन में रैन है:

كَلَّا بَلْ رَانَ عَلٰى قُلُوْبِهِمْ مَّا كَانُوْا يَكْسِبُوْنَ.

यानी "उनके दिलों पर ज़ंग लगा दिया उनके बुरे आमाल ने।" (83:14)

अलबत्ता गुनाहों के मफ़ासिद (ख़राबियाँ), बुरे नतीजे और नुक़सानदेह फल के एतिबार से उनमें आपस में फ़र्क़ ज़रूरी है, इस फ़र्क़ की वजह से किसी गुनाह को कबीरा और किसी को सग़ीरा कहा जाता है।

गुनाहे कबीरा

कबीरा (यानी बड़े) गुनाह की परिभाषा क़ुरआन व हदीस और बुज़ुर्गों के अक़वाल की तशरीहात के मातहत यह है कि जिस गुनाह पर क़ुरआन में कोई शरई हद यानी सज़ा दुनिया में मुक़र्रर की गई है या जिस पर लानत के अलफ़ाज़ आये हैं या जिस पर जहन्नम वग़ैरह की वईद (सज़ा की धमकी) आई है वो सब गुनाहे कबीरा (बड़े गुनाह) हैं। इसी तरह हर वह गुनाह भी कबीरा में दाख़िल होगा जिसके मफ़ासिद (ख़राबियाँ) और बुरे नतीजे किसी कबीरा गुनाह के बराबर या उससे ज़्यादा हों। इसी तरह जो छोटा गुनाह जुर्रत व बेबाकी के साथ किया जाये या जिस पर पाबन्दी की जाये तो वह भी कबीरा गुनाह में दाख़िल हो जाता है।

हज़रत इब्ने अब्बास रज़ियल्लाहु अन्हु के सामने किसी ने कबीरा गुनाहों की तादाद सात बतलाई तो आपने फ़रमाया सात नहीं सात सौ कहा जाये तो ज़्यादा मुनासिब है।

इमाम इब्ने हजर मक्की रहमतुल्लाहि अलैहि ने अपनी किताब **अज़्ज़वाजिर** में उन तमाम गुनाहों की फ़ेहरिस्त और हर एक की मुकम्मल तशरीह बयान फ़रमाई है जो उपर्युक्त परिभाषा की रू से बड़े गुनाहों में दाख़िल हैं। उनकी इस किताब में कबीरा गुनाहों की तादाद 467 तक पहुँचती है और हक़ीक़त यह है कि कुछ हज़रात ने बड़े-बड़े नाफ़रमानी के बाबों को शुमार करने पर इक्तिफ़ा किया है तो तादाद कम लिखी है, कुछ ने उनकी तफ़सीलात और क़िस्मों को पूरा लिखा तो तादाद ज़्यादा हो गई, इसलिये यह कोई टकराव व इख़्तिलाफ़ नहीं है।

रसूले करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने विभिन्न और अनेक मक़ामात में बहुत से गुनाहों का कबीरा होना बयान फ़रमाया और हालात की मुनासबत से कहीं तीन, कहीं छह, कहीं सात, कहीं इससे भी ज़्यादा बयान फ़रमाये हैं। इसी से उलेमा-ए-उम्मत ने यह समझा कि किसी

अदद (संख्या) में सीमित करना मक़सूद नहीं है बल्कि मौक़े और हालात के मुनासिब जितना समझा गया उतना बयान कर दिया गया।

बुख़ारी व मुस्लिम की एक हदीस में है कि रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि कबीरा गुनाहों में भी जो सबसे बड़े हैं मैं तुम्हें उनसे बाख़बर करता हूँ ये तीन हैं- अल्लाह तआ़ला के साथ किसी मख़्लूक़ को शरीक साझी ठहराना, माँ बाप की नाफ़रमानी और झूठी गवाही देना या झूठ बोलना।

इसी तरह बुख़ारी व मुस्लिम की एक रिवायत में है कि आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से किसी ने मालूम किया कि सबसे बड़ा गुनाह क्या है? फ़रमाया कि तुम अल्लाह तआ़ला के साथ किसी को शरीक ठहराओ, हालाँकि उसने तुम्हें पैदा किया है। फिर पूछा कि इसके बाद कौनसा गुनाह सबसे बड़ा है? फ़रमाया कि तुम अपने बच्चे को इस ख़तरे से मार डालो कि यह तुम्हारे खाने पीने में शरीक होगा, तुम्हें इसको खिलाना पड़ेगा। फिर पूछा कि इसके बाद कौनसा गुनाह सबसे ज़्यादा बड़ा है? फ़रमाया कि अपने पड़ोसी की बीवी के साथ बदकारी करना। बदकारी ख़ुद ही बड़ा जुर्म है और पड़ोसी के अहल व अ़याल (बाल-बच्चों) की हिफ़ाज़त भी चूँकि अपने अहल व अ़याल की तरह इनसान के ज़िम्मे लाज़िम है, इसलिये यह जुर्म दोगुना हो गया।

बुख़ारी व मुस्लिम की एक हदीस में हैं कि आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया- यह बात कबीरा (बड़े) गुनाहों में से है कि कोई शख़्स अपने माँ-बाप को गालियाँ दे। सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अन्हुम ने अ़र्ज़ किया कि या रसूलल्लाह! यह कैसे हो सकता है कि कोई शख़्स अपने ही माँ-बाप को गाली देने लगे? फ़रमाया कि हाँ! जो शख़्स किसी दूसरे शख़्स के माँ बाप को गालियाँ देता है इसके नतीजे में वह इसके माँ बाप को गाली देता है तो यह भी ऐसा ही है जैसा कि इसने ख़ुद अपने माँ-बाप को गालियाँ दी हों, क्योंकि यही उन गालियों का सबब बना है।

और सही बुख़ारी की एक रिवायत में रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने शिर्क, नाहक़ क़त्ल और यतीम का माल नाजायज़ तरीक़े पर खाने और सूद की आमदनी खाने और मैदाने जिहाद से भागने और पाकदामन औ़रतों पर तोहमत लगाने और माँ-बाप की नाफ़रमानी करने और बैतुल्लाह की बेक़द्री करने को कबीरा गुनाहों में शुमार फ़रमाया है।

हदीस की कुछ रिवायतों में इसको भी कबीरा गुनाह क़रार दिया गया है कि कोई शख़्स दारुल-कुफ़्र (काफ़िरों के मुल्क) से हिजरत करने के बाद फिर दारुल-हिजरत को छोड़कर दारुल-कुफ़्र में दोबारा चला जाये।

हदीस की दूसरी रिवायतों में इन सूरतों को भी कबीरा गुनाहों की फ़ेहरिस्त में दाख़िल किया गया है जैसे झूठी क़सम खाना, अपनी ज़रूरत से ज़्यादा पानी को रोक रखना, दूसरे ज़रूरत वालों को न देना, जादू सीखना, जादू का अ़मल करना और फ़रमाया कि शराब पीना बहुत बड़ा गुनाह है, और फ़रमाया कि शराब पीना तमाम बुराईयों की जड़ है, क्योंकि शराब में मस्त होकर आदमी

हर बुरे से बुरा काम कर सकता है।

इसी तरह एक हदीस में इरशाद फ़रमाया कि सबसे बड़ा कबीरा गुनाह यह है कि इनसान अपने मुसलमान भाई पर ऐसे ऐब लगाये जिससे उसकी बेइज़्ज़ती होती हो।

एक हदीस में है जिस शख़्स ने बग़ैर किसी शरई उज़्र के दो नमाज़ों को एक वक़्त में जमा कर दिया तो वह कबीरा गुनाह का करने वाला हुआ। मतलब यह है कि किसी नमाज़ को अपने वक़्त में न पढ़ा बल्कि क़ज़ा करके दूसरी नमाज़ के साथ पढ़ा।

हदीस की कुछ रिवायतों में इरशाद है कि अल्लाह तआ़ला की रहमत से मायूस होना भी कबीरा गुनाह है और उसके अ़ज़ाब व सज़ा से बेफ़िक्र व बेख़ौफ़ हो जाना भी कबीरा गुनाह है।

एक रिवायत में है कि वारिस को नुक़सान पहुँचाने और उसका हिस्सा-ए-मीरास कम करने के लिये कोई वसीयत करना भी बड़े गुनाहों में से है।

और सही मुस्लिम की एक रिवायत में है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने एक मर्तबा फ़रमाया कि घाटा और नुक़सान उठाया और तबाह हो गये, और तीन दफ़ा इस कलिमे को दोहराया। हज़रत अबूज़र ग़िफ़ारी रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने अ़र्ज़ किया या रसूलल्लाह! ये बदनसीब और तबाह व बरबाद कौन लोग हैं? तो आपने जवाब दिया एक वह शख़्स जो तकब्बुर के साथ पाजामे या तहबन्द या कुर्ते और अ़बा (चौग़े) को टख़्नों के नीचे लटकाता है, दूसरे वह आदमी जो अल्लाह की राह में कुछ ख़र्च करके एहसान जतलाये, तीसरे वह आदमी जो बूढ़ा होने के बावजूद बदकारी में मुब्तला हो, चौथे वह आदमी जो बादशाह या अफ़सर होने के बावजूद झूठ बोले, पाँचवें वह आदमी जो अ़याल दार (बाल-बच्चों वाला यानी तंगदस्त) होने के बावजूद तकब्बुर करे, छठे वह आदमी जो किसी इमाम के हाथ पर सिर्फ़ दुनिया की ख़ातिर बैअ़त करे।

और बुख़ारी व मुस्लिम की एक हदीस में है कि चुग़ली खाने वाला जन्नत में न जायेगा। और नसाई व मुस्नद अहमद वग़ैरह की एक हदीस में है कि चन्द आदमी जन्नत में न जायेंगे शराबी, माँ-बाप का नाफ़रमान, रिश्तेदारों से बिना वजह ताल्लुक़ तोड़ने वाला, एहसान जतलाने वाला, जिन्नात व शयातीन या दूसरे माध्यमों से ग़ैब की ख़बरें बताने वाला, दय्यूस (यानी अपने अहल व अ़याल को बेहयाई से न रोकने वाला)।

मुस्लिम शरीफ़ की एक हदीस में है कि अल्लाह तआ़ला की लानत है उस शख़्स पर जो किसी जानवर को अल्लाह के सिवा किसी के लिये क़ुरबान करे।

وَلَا تَتَمَنَّوْا مَا فَضَّلَ اللّٰهُ بِهٖ بَعْضَكُمْ عَلٰى بَعْضٍ ۭ لِلرِّجَالِ نَصِيْبٌ مِّمَّا
اكْتَسَبُوْا ۭ وَلِلنِّسَاۗءِ نَصِيْبٌ مِّمَّا اكْتَسَبْنَ ۭ وَسْـَٔـلُوا اللّٰهَ مِنْ فَضْلِهٖ ۭ اِنَّ اللّٰهَ كَانَ بِكُلِّ شَيْءٍ عَلِيْمًا ۝
وَلِكُلٍّ جَعَلْنَا مَوَالِيَ مِمَّا تَرَكَ الْوَالِدٰنِ وَالْاَقْرَبُوْنَ ۭ وَالَّذِيْنَ عَقَدَتْ اَيْمَانُكُمْ فَاٰتُوْھُمْ نَصِيْبَھُمْ ۭ
اِنَّ اللّٰهَ كَانَ عَلٰي كُلِّ شَيْءٍ شَهِيْدًا ۝

व ला त-तमन्नौ मा फ़ज़्ज़लल्लाहु बिही बअ्-ज़कुम् अला बअ्-ज़िन्, लिर्रिजालि नसीबुम् मिम्-मक्त-सबू, व लिन्निसा-इ नसीबुम् मिम्-मक्त-सब्-न, वस्अलुल्ला-ह मिन् फ़ज़्लिही, इन्नल्ला-ह का-न बिकुल्लि शैइन् अलीमा (32) व लिकुल्लिन् जअ़ल्ना मवालि-य मिम्मा त-रकल्-वालिदानि वल्-अक़्रबू-न, वल्लज़ी-न अ-क़दत् ऐमानुकुम् फ़-आतूहुम् नसीबहुम्, इन्नल्ला-ह का-न अ़ला कुल्लि शैइन् शहीदा (33) ❁	और हवस मत करो (उसमें) जिस चीज़ में बड़ाई दी अल्लाह ने एक को एक पर, मर्दों को हिस्सा है अपनी कमाई से और औरतों को हिस्सा है अपनी कमाई से, और माँगो अल्लाह से उसका फ़ज़्ल, बेशक अल्लाह को हर चीज़ मालूम है। (32) और हर किसी के लिये हमने मुक़र्रर कर दियें हैं वारिस उस माल के कि छोड़ मरें माँ-बाप और क़राबत वाले, और जिनसे मुआहदा (समझौता) हुआ तुम्हारा उनको दे दो उनका हिस्सा, बेशक अल्लाह के सामने है हर चीज़। (33) ❁

इन आयतों के मज़मून का पीछे से संबन्ध

ऊपर की आयतों में मीरास के अहकाम गुज़रे हैं। उनमें यह भी बतलाया जा चुका है कि मय्यित (मरने वाले) के वारिसों में अगर मर्द और औरत हो, और मय्यित की तरफ़ रिश्ते की निस्बत एक ही तरह की हो तो मर्द को औरत की तुलना में दोगुना हिस्सा मिलेगा। इसी तरह के और फ़ज़ाईल भी मर्दों के साबित हैं। हज़रत उम्मे सलमा रज़ियल्लाहु अन्हा ने इस पर एक दफ़ा हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से अ़र्ज़ किया कि हमको (यानी औरतों को) आधी मीरास मिलती है, और भी फ़ुलाँ-फ़ुलाँ फ़र्क़ हम में और मर्दों में हैं।

मक़सद एतिराज़ करना नहीं था बल्कि उनकी तमन्ना थी कि अगर हम लोग भी मर्द होते तो मर्दों के फ़ज़ाईल हमें भी हासिल हो जाते। कुछ औरतों ने यह तमन्ना की कि काश हम मर्द होते तो मर्दों की तरह जिहाद में हिस्सा लेते और जिहाद की फ़ज़ीलत हमें हासिल हो जाती।

एक औरत ने हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से अ़र्ज़ किया कि मर्द को मीरास में दोगुना हिस्सा मिलता है और औरत की शहादत (गवाही) भी मर्द से आधी है, तो क्या इबादतों व आमाल में भी हमको आधा ही सवाब मिलेगा? इस पर यह आयत नाज़िल हुई जिसमें दोनों क़ौलों का जवाब दिया गया है। हज़रत उम्मे सलमा रज़ियल्लाहु अ़न्हा के क़ौल का जवाब 'व ला त-तमन्नौ.....' से दिया गया और उस औरत के क़ौल का जवाब 'लिर्रिजालि नसीबुन.....' से दिया गया।

खुलासा-ए-तफ़सीर

और तुम (सब मर्दों औरतों को हुक्म होता है कि अल्लाह तआ़ला की तरफ़ से मिले हुए फ़ज़ाईल में से) किसी ऐसे मामले और काम की तमन्ना मत किया करो जिसमें अल्लाह तआ़ला ने बाज़ों को (जैसे मर्दों को) बाज़ों पर (जैसे औरतों पर बिना दख़ल उनके किसी अ़मल के) बरतरी बख़्शी है (जैसे मर्द होना या मर्दों के दो हिस्से होना, या उनकी गवाही का कामिल होना वग़ैरह, क्योंकि) मर्दों के लिए उनके आमाल (के सवाब) का हिस्सा (आख़िरत में) साबित है और औरतों के लिए उनके आमाल (के सवाब) का हिस्सा (आख़िरत में) साबित है (और मदार निजात का क़ानूनन यही आमाल हैं और इनमें किसी की विशेषता नहीं। तो अगर दूसरों से बरतरी हासिल करने का शौक़ है तो आमाल में जो कि हासिल किये जाने वाले फ़ज़ाईल हैं कोशिश करके दूसरों से ज़्यादा सवाब हासिल कर लो। इस पर क़ादिर होने के बावजूद उक्त विशेष फ़ज़ाईल की तमन्ना महज़ हवस और फ़ुज़ूल है) और (अगर अल्लाह तआ़ला की तरफ़ से दिये हुए फ़ज़ाईल में ऐसे फ़ज़ाईल की चाहत है जिनमें आमाल को भी दख़ल है जैसे अन्दरूनी अहवाल व कमालात या इसी तरह की दूसरी चीज़ें तो इसमें हर्ज नहीं, लेकिन इसका तरीक़ा भी यह नहीं कि ख़ाली तमन्नायें किया करो, बल्कि यह चाहिये कि) अल्लाह तआ़ला से उसके (ख़ास) फ़ज़्ल की दरख़्वास्त (यानी दुआ़) किया करो, बेशक अल्लाह तआ़ला हर चीज़ को ख़ूब जानते हैं (इसमें सब चीज़ें आ गईं यानी क़ुदरती फ़ज़ाईल पहली क़िस्म की विशेषता का कारण भी और अपने इख़्तियार व मेहनत से हासिल किये जाने वाले फ़ज़ाईल पर सवाब देना भी, और अल्लाह तआ़ला की तरफ़ से मिलने वाले फ़ज़ाईल दूसरी क़िस्म की दरख़्वास्त भी, पस यह जुमला सब से संबन्धित है)।

और हर ऐसे माल के लिए जिसको माँ-बाप और (दूसरे) रिश्तेदार लोग (अपने मरने के बाद) छोड़ जाएँ हमने वारिस मुक़र्रर कर दिए हैं। और जिन लोगों से तुम्हारे अ़हद (पहले से) बंधे हुए हैं (इसी को मौलल्-मवालात कहते हैं) उनको (अब जबकि शरीअ़त के क़ानून से रिश्तेदार लोग वारिस मुक़र्रर हो गये, सारी मीरास मत दो बल्कि सिर्फ़) उनका हिस्सा (यानी छठा हिस्सा) दे दो, बेशक अल्लाह तआ़ला हर चीज़ पर इत्तिला रखते हैं (पस उनको सारी मीरास न देने की हिक्मत और छठा हिस्सा मुक़र्रर कर देने की मस्लेहत और यह कि यह छठा हिस्सा उनको कौन देता है कौन नहीं देता, इन सब की उनको ख़बर है)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

इख़्तियारी और ग़ैर-इख़्तियारी चीज़ों की तमन्ना करना

आयत में उन ग़ैर-इख़्तियारी फ़ज़ाईल (विशेषता और कमालात) की तमन्ना करने से मना

किया गया है जो दूसरों को हासिल हों। वजह यह है कि इनसान जब अपने आपको दूसरों से माल व दौलत, ऐश व आराम, हुस्न व ख़ूबी, इल्म व फ़ज़्ल वग़ैरह में कम पाता है तो आ़दतन उसके दिल में एक माद्दा हसरत का उभरता है जिसका तक़ाज़ा कम से कम यह होता है कि मैं भी उसके बराबर या ज़्यादा हो जाऊँ, और कई बार इस पर क़ुदरत नहीं होती, क्योंकि बहुत से कमालात ऐसे हैं जिनमें इनसान की कोशिश व अ़मल को कोई दख़ल नहीं, वे महज़ क़ुदरत के इनामात होते हैं। जैसे किसी शख़्स का मर्द होना, या किसी आला ख़ानदाने नुबुव्वत में या ख़ानदाने हुकूमत में पैदा होना, या हसीन व ख़ूबसूरत पैदा होना वग़ैरह, कि जिस शख़्स को यह इनामात हासिल नहीं वह अगर उम्र भर इसकी कोशिश करे कि मसलन मर्द हो जाये या ख़ानदानी सैयद बन जाये, उसका नाक-नक़्शा, क़द-काठी हसीन हो जाये तो यह उसकी क़ुदरत में नहीं, न किसी दवा और इलाज या तदबीर से वह इन चीज़ों को हासिल कर सकता है। और जब दूसरे की बराबरी पर क़ुदरत नहीं होती तो अब उसके नफ़्स में यह इच्छा जगह पकड़ती है कि दूसरों से भी यह नेमत छिन जाये ताकि वे भी उसके बराबर या कम हो जायें, इसी का नाम हसद (यानी दूसरों से जलना) है जो इनसानी अख़्लाक़ में इन्तिहाई शर्मनाक और नुक़सानदेह ख़स्लत है, और दुनिया के बहुत से झगड़ों और फ़सादों, क़त्ल व ग़ारतगरी का सबब है।

क़ुरआने करीम की इस आयत ने इस फ़साद का दरवाज़ा बन्द करने के लिये इरशाद फ़रमायाः

وَلَا تَتَمَنَّوْا مَا فَضَّلَ اللّٰهُ بِهٖ بَعْضَكُمْ عَلٰى بَعْضٍ

यानी अल्लाह तआ़ला ने अपनी हिक्मत व मस्लेहत के तहत जो कमालात व फ़ज़ाईल लोगों में तक़सीम फ़रमाये हैं, किसी को कोई वस्फ़ (ख़ूबी और गुण) दे दिया किसी को कोई, किसी को कम किसी को ज़्यादा, इसमें हर शख़्स को अपनी क़िस्मत पर राज़ी और ख़ुश रहना चाहिये, दूसरे के फ़ज़ाईल व कमालात की तमन्ना में न पड़ना चाहिये इसलिये कि इसका नतीजा अपने लिये रंज व ग़म और हसद के ज़बरदस्त गुनाह के सिवा कुछ नहीं होता।

जिसको हक़ तआ़ला ने मर्द बना दिया वह इस पर शुक्र अदा करे, जिसको औ़रत बना दिया वह उसी पर राज़ी रहे और समझे कि वह अगर मर्द होती तो शायद मर्दों की ज़िम्मेदारियों को पूरा न कर सकती और गुनाहगार हो जाती। जिसको अल्लाह तआ़ला ने ख़ूबसूरत पैदा किया है वह इस पर शुक्रगुज़ार हो कि उसको एक नेमत मिली और जो बदसूरत है वह भी रंजीदा न हो और समझे कि मेरे लिये इसी में कोई ख़ैर मुक़द्दर होगी, अगर मुझे हुस्न व जमाल मिलता तो शायद किसी फ़ितने और ख़राबी में मुब्तला हो जाता। जो शख़्स नसब (ख़ानदान) के एतिबार से सैयद हाशमी है वह इस पर शुक्र करे कि यह निस्बत अल्लाह तआ़ला का इनाम है, और जिसको यह निस्बत हासिल नहीं वह इस फ़िक्र में न पड़े और इसकी तमन्ना भी न करे, क्योंकि यह चीज़ किसी कोशिश से हासिल होने वाली नहीं, इसकी तमन्ना उसको गुनाह में मुब्तला कर देगी और सिवाय रंज व ग़म के कुछ हासिल न होगा, बजाय नसब पर अफ़सोस करने के नेक

आमाल की फ़िक्र में ज़्यादा पड़े, ऐसा करने से वह बड़े नसब वालों से बढ़ सकता है।

बाज़ क़ुरआनी आयतों और हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के इरशादात में नेक कामों में दूसरों से आगे बढ़ने की कोशिश का हुक्म या दूसरों के फ़ज़ाईल व कमालात को देखकर उनके हासिल करने के लिये कोशिश व अ़मल और जिद्दोजहद की तरग़ीब आई है तो वह उन आमाल और कामों से मुताल्लिक़ है जो इनसान के इख़्तियार में हैं और कोशिश व मेहनत से हासिल हो सकते हैं, जैसे किसी के इल्मी फ़ज़ाईल और अ़मली व अख़्लाक़ी कमालात देखकर उनके हासिल करने की जिद्दोजहद अच्छी और पसन्दीदा अ़मल है यह आयत उसके ख़िलाफ़ नहीं बल्कि आयत का आख़िरी हिस्सा इसकी ताईद कर रहा है जिसमें इरशाद है:

لِلرِّجَالِ نَصِيبٌ مِّمَّا اكْتَسَبُوا وَلِلنِّسَآءِ نَصِيبٌ مِّمَّا اكْتَسَبْنَ

यानी जो कोई चीज़ मर्दों ने मेहनत व अ़मल के ज़रिये हासिल की उनको उसका हिस्सा मिलेगा और जो औरतों ने कोशिश व अ़मल के ज़रिये हासिल की उनको उसका हिस्सा मिलेगा।

इसमें यह इशारा मौजूद है कि फ़ज़ाईल व कमालात के हासिल करने में मेहनत व कोशिश और जिद्दोजहद बेकार नहीं बल्कि हर मर्द व औरत को उसकी कोशिश व अ़मल का हिस्सा ज़रूर मिलेगा।

इससे यह भी मालूम हो गया कि किसी शख़्स के इल्मी, अ़मली, अख़्लाक़ी फ़ज़ाईल को देखकर उनकी तमन्ना, और फिर तमन्ना पूरी करने के लिये कोशिश व अ़मल और जिद्दोजहद करना मतलूब और अच्छा है।

यहाँ एक मुग़ालता भी दूर हो गया, जिसमें बहुत से नावाक़िफ़ मुब्तला हुआ करते हैं। कुछ लोग तो ग़ैर-इख़्तियारी फ़ज़ाईल की तमन्ना में लगकर अपने ऐश व आराम और सुकून व इत्मीनान को दुनिया ही में बरबाद कर लेते हैं, और अगर नौबत हसद तक पहुँच गई यानी दूसरे की नेमत के छिन जाने और बरबाद हो जाने की तमन्ना होने लगी तो आख़िरत भी बरबाद हुई, क्योंकि हसद के ज़बरदस्त गुनाह का जुर्म हो गया।

और कुछ वे लोग भी हैं जो अपनी सुस्ती, कम-हिम्मती बल्कि बेग़ैरती से इख़्तियारी फ़ज़ाईल हासिल करने की भी कोशिश नहीं करते और कोई कहे तो अपनी कम-हिम्मती और बेअ़मली पर पर्दा डालने के लिये क़िस्मत व तक़दीर के हवाले देने लगते हैं।

इस आयत ने एक हकीमाना और इन्साफ़ भरा उसूल बतला दिया कि जो कमालात व फ़ज़ाईल ग़ैर-इख़्तियारी हैं और उनमें इनसान की मेहनत व कोशिश कारगर नहीं, जैसे किसी का ऊँचे नसब व ख़ानदान वाला होना या हसीन व ख़ूबसूरत पैदा होना वग़ैरह, ऐसे फ़ज़ाईल को तो तक़दीर के हवाले करके जिस हालत में कोई है उसी पर उसको राज़ी रहना और अल्लाह तआ़ला का शुक्र अदा करना चाहिये, उससे ज़्यादा की तमन्ना भी बेकार, फ़ुज़ूल और फ़िलहाल ही रंज व ग़म मोल लेना है।

और जो फ़ज़ाईल व कमालात इख़्तियारी हैं, जो मेहनत व कोशिश और अ़मल से हासिल हो सकते हैं उनकी तमन्ना मुफ़ीद है बशर्तेकि तमन्ना के साथ मेहनत व अ़मल और जिद्दोजहद भी

हो, और इसमें इस आयत ने यह भी वायदा किया कि कोशिश व अ़मल करने वाले की मेहनत ज़ाया न की जायेगी, बल्कि हर एक को उसकी मेहनत के हिसाब से हिस्सा मिलेगा, मर्द हो या औरत।

तफ़सीर बहरे मुहीत में है कि इस आयत से पहलेः

لَا تَأْكُلُوٓا اَمْوَالَكُمْ بَيْنَكُمْ بِالْبَاطِلِ

औरः

لَا تَقْتُلُوٓا اَنْفُسَكُمْ

के अहकाम आये थे, जिनमें किसी का माल नाहक़ इस्तेमाल करने और किसी को नाहक़ क़त्ल करने की मनाही है। इस आयत में इन दोनों जुर्मों के स्रोत को बन्द करने के लिये यह हिदायत दी गई है कि दूसरे लोगों को जो माल व दौलत, ऐश व आराम या इज़्ज़त व रुतबा वग़ैरह तुम पर अल्लाह तआ़ला की दी हुई बरतरी के सबब हासिल है तुम उसकी तमन्ना भी न करो। इसमें ग़ौर किया जाये तो मालूम होगा कि चोरी, डाका और दूसरे नाजायज़ तरीक़ों से किसी का माल लेना या क़त्ल व ग़ारतगरी करना इन सब जुर्मों का असल मंशा यही होता है कि एक इनसान जब दूसरे इनसान को माल व दौलत वग़ैरह में अपने से बरतर और-बढ़ा हुआ पाता है तो अव्वल उसके दिल में उसकी बराबरी या उससे आगे बढ़ने की इच्छा व तमन्ना पैदा होती है, फिर यह तमन्ना ही इन सब जुर्मों तक पहुँचा देती है। क़ुरआनी हिदायतों ने इन तमाम जुर्मों के असल स्रोत को बन्द कर दिया कि दूसरों के फ़ज़ाईल व कमालात की तमन्ना करने ही से रोक दिया।

आयत में इसके बाद इरशाद हैः

وَسْـَٔلُوا اللّٰهَ مِنْ فَضْلِهٖ

इसमें यह हिदायत है कि जब तुम किसी को किसी कमाल में अपने से ज़्यादा देखो तो बजाय इसके कि उस ख़ास कमाल में उसके बराबर होने की तमन्ना करो, तुम्हें करना यह चाहिये कि अल्लाह तआ़ला से उसके फ़ज़्ल व करम की दरख़्वास्त करो, क्योंकि फ़ज़्ले ख़ुदावन्दी हर शख़्स के लिये अलग-अलग सूरतों में ज़ाहिर होता है, किसी के लिये माल व दौलत फ़ज़्ले इलाही होता है, अगर वह फ़क़ीर हो जाये तो गुनाह व कुफ़्र में मुब्तला हो जाये, और किसी के लिये तंगी और तंगदस्ती ही में फ़ज़्ल होता है, अगर वह ग़नी और मालदार हो जाये तो हज़ारों गुनाहों का शिकार हो जाये, इसी तरह किसी की इज़्ज़त व रुतबे की सूरत में फ़ज़्ले ख़ुदावन्दी होता है, किसी के लिये गुमनामी और असहाय होने ही में उसके फ़ज़्ल का ज़हूर होता है और हक़ीक़ते हाल पर नज़र करे तो मालूम हो जाये कि अगर उसको इज़्ज़त व रुतबा मिलता तो बहुत से गुनाहों में मुब्तला हो जाता।

इसलिये इस आयत ने यह हिदायत दी कि जब अल्लाह से माँगो तो किसी ख़ास विशेष वस्फ़ (ख़ूबी और गुण) को माँगने के बजाय अल्लाह तआ़ला का फ़ज़्ल माँगो ताकि वह अपनी

हिक्मत के मुताबिक़ तुम पर अपने फ़ज़्ल का दरवाज़ा खोल दे।

आयत के आख़िर में फ़रमाया:

إِنَّ اللّٰهَ كَانَ بِكُلِّ شَيْءٍ عَلِيمًا

यानी अल्लाह तआ़ला हर चीज़ को जानने वाला है। इसमें इशारा फ़रमा दिया कि हक़ तआ़ला की तक़सीम पूरी तरह हिक्मत और अ़दल व इन्साफ़ के साथ है, जिसको जिस हाल में पैदा किया और रखा है वही हिक्मत व इन्साफ़ का तक़ाज़ा था, मगर चूँकि इनसान को अपने आमाल के नतीजों का पूरा पता नहीं होता, इसको अल्लाह तआ़ला ही ख़ूब जानते हैं कि किसको किस हाल में रखना उसके लिये मुफ़ीद है।

उक्त आयत की शाने नुज़ूल में बयान किया जा चुका है कि जब मीरास में मर्दों का दोहरा हिस्सा मुक़र्रर हुआ तो कुछ औ़रतों ने यह तमन्ना की कि हम मर्द होते तो हमें भी दोहरा हिस्सा मिलता, इसके मुनासिब दूसरी आयत में मीरास के क़ानून को दोबारा फिर इस अन्दाज़ से बयान किया गया कि उसमें जो कुछ हिस्से मुक़र्रर किये गये हैं वे ऐन हिक्मत और इन्साफ़ के मुताबिक़ हैं। इनसानी अ़क्ल चूँकि तमाम आ़लम (जहान) की बेहतरियों व ख़राबियों का इहाता नहीं कर सकती इसलिये वह उन हिक्मतों को भी नहीं पहुँच सकती जो ख़ुदा तआ़ला के मुक़र्रर किये हुए क़ानून में बरती गयी हैं, इसलिये जो हिस्सा किसी के लिये मुक़र्रर कर दिया गया है उसको उसी पर राज़ी रहना और शुक्रगुज़ार होना चाहिये।

एक-दूसरे का वली बन जाने के समझौते से मीरास पहुँचने का हुक्म

इस आयत के आख़िर में जो आपसी समझौते व मुआ़हदे की बिना पर हिस्सा देना मज़कूर है यह इस्लाम के शुरू ज़माने में था, बाद में यह इस आयत:

وَاُولُوا الْاَرْحَامِ بَعْضُهُمْ اَوْلٰى بِبَعْضٍ

(यानी सूरः अनफ़ाल आयत 75) से मन्सूख़ (निरस्त) हो गया। अब अगर दूसरे वारिस मौजूद हों तो दो शख़्सों के आपसी मुआ़हदे का मीरास पर कुछ असर नहीं पड़ता।

اَلرِّجَالُ قَوّٰمُوْنَ عَلَى النِّسَآءِ بِمَا فَضَّلَ اللّٰهُ بَعْضَهُمْ عَلٰى بَعْضٍ وَّبِمَآ اَنْفَقُوْا مِنْ اَمْوَالِهِمْ ۚ فَالصّٰلِحٰتُ قٰنِتٰتٌ حٰفِظٰتٌ لِّلْغَيْبِ بِمَا حَفِظَ اللّٰهُ ۚ وَالّٰتِيْ تَخَافُوْنَ نُشُوْزَهُنَّ فَعِظُوْهُنَّ وَاهْجُرُوْهُنَّ فِي الْمَضَاجِعِ وَاضْرِبُوْهُنَّ ۚ فَاِنْ اَطَعْنَكُمْ فَلَا تَبْغُوْا عَلَيْهِنَّ سَبِيْلًا ۗ اِنَّ اللّٰهَ كَانَ عَلِيًّا كَبِيْرًا ۝ وَاِنْ خِفْتُمْ شِقَاقَ بَيْنِهِمَا فَابْعَثُوْا حَكَمًا مِّنْ اَهْلِهٖ وَحَكَمًا مِّنْ اَهْلِهَا ۚ اِنْ يُّرِيْدَآ اِصْلَاحًا يُّوَفِّقِ اللّٰهُ بَيْنَهُمَا ۗ اِنَّ اللّٰهَ كَانَ عَلِيْمًا خَبِيْرًا ۝

अर्रिजालु क़व्वामू-न अ़लन्निसा-इ बिमा फ़ज़्ज़लल्लाहु बअ़्ज़हुम् अ़ला बअ़्ज़िंव्-व बिमा अन्फ़क़ू मिन् अम्वालिहिम्, फ़स्सालिहातु क़ानितातुन् हाफ़िज़ातुल्-लिल्ग़ैबि बिमा हफ़िज़ल्लाहु, वल्लाती तख़ाफ़ू-न नुशूज़हुन्-न फ़-अिज़ूहुन्-न वह्जुरूहुन्-न फ़िल्मज़ाजिअ़ि वज़्रिबूहुन्-न फ़-इन् अ-तअ़्नकुम् फ़ला तब्ग़ू अ़लैहिन्-न सबीलन्, इन्नल्ला-ह का-न अ़लिय्यन् कबीरा (34) व इन् ख़िफ़्तुम् शिक़ा-क़ बैनिहिमा फ़ब्अ़सू ह-कमम् मिन् अह्लिही व ह-कमम् मिन् अह्लिहा इय्युरीदा इस्लाहंय्- युवफ़्फ़िक़िल्लाहु बैनहुमा, इन्नल्ला-ह का-न अ़लीमन् ख़बीरा (35)	मर्द हाकिम हैं औरतों पर इस वास्ते कि बड़ाई दी अल्लाह ने एक को एक पर और इस वास्ते कि ख़र्च किये उन्होंने अपने माल, फिर जो औरतें नेक हैं सो ताबेदार हैं, निगाहबानी करती हैं पीठ पीछे अल्लाह की हिफ़ाज़त से, और जिनकी बदख़ूई का डर हो तुमको तो उनको समझाओ और अलग करो सोने में, और मारो उनको, फिर अगर कहा मानें तुम्हारा तो मत तलाश करो उन पर राह इल्ज़ाम की, बेशक अल्लाह है सबसे ऊपर बड़ा। (34) और अगर तुम डरो कि वे दोनों आपस में ज़िद रखते हैं तो खड़ा करो एक मुन्सिफ़ (इन्साफ़ करने वाला) मर्द वालों में से और एक मुन्सिफ़ औरत वालों में से, अगर ये दोनों चाहेंगे कि सुलह करायें तो अल्लाह मुवाफ़क़त कर देगा उन दोनों में, बेशक अल्लाह सब कुछ जानने वाला ख़बरदार है। (35)

इन आयतों के मज़मून का पीछे के मज़मून से ताल्लुक़

औरतों के मुताल्लिक़ जो अहकाम गुज़र चुके हैं उनमें उनकी हक़-तल्फ़ी की मनाही भी मज़कूर हुई, आगे मर्दों के हुक़ूक़ का ज़िक्र है और उनके मुतालबे और उनमें कोताही करने की सूरत में तंबीह और डाँट-डपट की इजाज़त भी दी गई है। हुक़ूक़ में इख़्तिलाफ़ वाक़े होने की सूरत में उसके तस्फ़िये का तरीक़ा और हुक़ूक़ अदा करने वालों की फ़ज़ीलत भी मज़कूर है, इसके साथ ही इस बात की भी वज़ाहत है कि मर्दों का दर्जा औरतों से बढ़ा हुआ है। इससे यह जवाब भी निकल आया कि जब मर्द, औरत के मुक़ाबले में अफ़ज़ल हैं तो यह शुब्हा नहीं होना चाहिये कि मीरास में उनका हिस्सा औरतों की तुलना में ज़्यादा क्यों है?

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

मर्द हाकिम हैं औरतों पर (दो वजह से, एक तो) इस सबब से कि अल्लाह तआ़ला ने बाज़ों को (यानी मर्दों को) बाज़ों पर (यानी औरतों पर क़ुदरती) फ़ज़ीलत दी है (यह तो अल्लाह तआ़ला की तरफ़ से अ़ताई चीज़ है), और (दूसरे) इस सबब से कि मर्दों ने (औरतों पर) अपने माल (मेहर में और नान-नफ़क़े में) ख़र्च किए हैं (और ख़र्च करने वालों का हाथ ऊँचा और बेहतर होता है उससे कि जिस पर ख़र्च किया जाये। और यह चीज़ कोशिश से हासिल की जा सकती है) सो जो औरतें नेक हैं (वे मर्द के इन फ़ज़ाईल व हुक़ूक़ की वजह से) इताअ़त करती हैं (और) मर्द की ग़ैर-मौजूदगी में (भी) अल्लाह की हिफ़ाज़त (व तौफ़ीक़) से (उसकी आबरू व माल की) निगरानी करती हैं। और जो औरतें (इस सिफ़त की न हों बल्कि) ऐसी हों कि तुमको (अन्दाज़े और हालात से) उनकी बद-दिमाग़ी का (प्रबल) अन्देशा हो तो उनको (पहले) ज़बानी नसीहत करो और (न मानें तो) उनको उनके लेटने की जगहों में अकेला छोड़ दो (यानी उनके पास मत लेटो), और (इससे भी न मानें तो) उनको (एतिदाल के साथ) मारो। फिर अगर वे तुम्हारी इताअ़त करना शुरू कर दें तो उन पर (ज़्यादती करने के लिये) बहाना (और मौक़ा) मत ढूँढो, (क्योंकि) बेशक अल्लाह तआ़ला बड़ी बुलन्दी और बड़ाई वाले हैं (उनके हुक़ूक़ और क़ुदरत और इल्म सब बड़े हैं, अगर तुम ऐसा करोगे फिर वह भी तुम पर अपने हुक़ूक़ के मुताल्लिक़ हज़ारों इल्ज़ाम क़ायम कर सकते हैं)।

और अगर (हालात से) तुम ऊपर वालों को उन दोनों मियाँ-बीवी में (ऐसी खींचतान का) अन्देशा हो (कि उसको वे आपस में न सुलझा सकेंगे) तो तुम लोग एक आदमी जो मामलात को सुलझाने की सलाहियत रखता हो मर्द के ख़ानदान से, और एक आदमी जो (ऐसा ही) तस्फ़िया करने की सलाहियत रखता हो औरत के ख़ानदान से (तजवीज़ करके उस खींचतान को दूर करने के लिय उनके पास) भेजो (कि वे जाकर हालात का पता लगायें और जो ग़लती पर हो या दोनों का कुछ-कुछ क़सूर हो, समझा दें) अगर उन दोनों आदमियों को (सच्चे दिल से मामले का) सुधार (और बनाना) मन्ज़ूर होगा तो अल्लाह तआ़ला उन मियाँ-बीवी में (बशर्तेकि वे उन दोनों की राय पर अ़मल भी करें) इत्तिफ़ाक़ फ़रमा देंगे। बेशक अल्लाह तआ़ला बड़े इल्म वाले, बड़े ख़बर वाले हैं (जिस तरीक़े से उनमें आपस में सुलह-सफ़ाई हो सकती है उसको जानते हैं, जब दोनों फ़ैसला करने वालों की नीयत ठीक देखेंगे तो वह तरीक़ा और तरकीब उनके दिल में डाल देंगे)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

सूरः निसा के शुरू से यहाँ तक ज़्यादातर अहकाम और हिदायतें औरतों के हक़ों से मुताल्लिक़ आई हैं जिनमें उन ज़्यादतियों व अत्याचारों को मिटाया गया है जो इस्लाम से पहले पूरी दुनिया में औरत ज़ात पर किये जाते थे, इस्लाम ने औरतों को वो तमाम हुक़ूक़ दिये जो

मर्दों को हासिल हैं। अगर औरतों के ज़िम्मे मर्दों की कुछ ख़िदमात आयद कीं तो मर्दों पर भी औरतों के हुक़ूक़ फ़र्ज़ किये।

सूरः ब-क़रह की आयत में इरशाद फ़रमायाः

وَلَهُنَّ مِثْلُ الَّذِىْ عَلَيْهِنَّ بِالْمَعْرُوْفِ. (٢:٢٢٨)

यानी "औरतों के हुक़ूक़ मर्दों के ज़िम्मे ऐसे ही वाजिब हैं जैसे मर्दों के हुक़ूक़ औरतों के ज़िम्मे हैं।" इसमें दोनों के हुक़ूक़ की समानता का हुक्म देकर इसकी तफ़सीलात को उर्फ़ के हवाले से फ़रमाया। जाहिलीयत (इस्लाम से पहले ज़माने में) और तमाम दुनिया की ज़ालिमाना रस्मों का पूरी तरह ख़ात्मा कर दिया। हाँ यह ज़रूरी नहीं कि दोनों के हुक़ूक़ सूरत के एतिबार से एक जैसे हों बल्कि औरत पर एक क़िस्म के काम लाज़िम हैं तो उसके मुक़ाबिल मर्द पर दूसरी क़िस्म के काम हैं। औरत घरेलू कामकाज और बच्चों की तरबियत व हिफ़ाज़त की ज़िम्मेदार है तो मर्द उनकी ज़रूरतों को पूरा करने के लिये रोज़ी कमाने का ज़िम्मेदार है। औरत के ज़िम्मे मर्द की ख़िदमत व इताअ़त है तो मर्द के ज़िम्मे उसका मेहर और नफ़क़ा यानी तमाम ज़रूरी ख़र्चों का इन्तिज़ाम है। ग़र्ज़ कि इस आयत ने औरतों को मर्दों के जैसे और समान हुक़ूक़ दे दिये।

लेकिन एक चीज़ ऐसी भी है जिसमें मर्दों को औरतों पर बरतरी और एक ख़ालिस फ़ज़ीलत हासिल है, इसलिये इस आयत ने आख़िर में फ़रमायाः

وَلِلرِّجَالِ عَلَيْهِنَّ دَرَجَةٌ

यानी मर्दों को औरतों पर एक दर्जा फ़ज़ीलत का हासिल है।

इन आयतों में इसी दर्जे का बयान क़ुरआने करीम के हकीमाना अन्दाज़े बयान के साथ इस तरह किया गया है कि मर्दों को यह फ़ज़ीलत और बरतरी ख़ुद औरतों की मस्लेहत और फ़ायदे के लिये और पूरी तरह हिक्मत का तक़ाज़ा है। इसमें औरत की न शान घटती है न उसका कोई नुक़सान है। इरशाद फ़रमायाः

اَلرِّجَالُ قَوّٰمُوْنَ عَلَى النِّسَآءِ. (٣٤:٥)

'क़व्वाम' 'क़य्याम', 'क़य्यिम' अ़रबी भाषा में उस शख़्स को कहा जाता है जो किसी काम या निज़ाम का ज़िम्मेदार और चलाने वाला हो, इसी लिये इस आयत में क़व्वाम का तर्जुमा उमूमन हाकिम किया गया है, यानी मर्द औरतों पर हाकिम हैं। मुराद यह है कि हर सामूहिक निज़ाम के लिये अ़क़्लन और उर्फ़ में यह ज़रूरी होता है कि उसका कोई मुखिया या अमीर और हाकिम होता है कि विवाद के वक़्त उसके फ़ैसले से काम चल सके। जिस तरह मुल्क व सल्तनत और रियासत के लिये इसकी ज़रूरत सब के नज़दीक मुसल्लम (मानी हुई) है इसी तरह क़बाईली निज़ाम में भी इसकी ज़रूरत हमेशा महसूस की गई और किसी एक शख़्स को क़बीले का सरदार और हाकिम माना गया है। इसी तरह इस ख़ानदानी और घरेलू निज़ाम में जिसको ख़ानादारी कहा जाता है इसमें भी एक अमीर और मुखिया की ज़रूरत है, औरतों और बच्चों के मुक़ाबले में इस काम के लिये हक़ तआ़ला ने मर्दों को चुना कि उनकी इल्मी और अ़मली ताक़तें

औरतों और बच्चों की तुलना में ज़्यादा हैं, और यह ऐसी सरल सी बात है कि कोई समझदार औरत या मर्द इसका इनकार नहीं कर सकता।

ख़ुलासा यह है कि सूरः ब-क़रह की आयत में:

وَلِلرِّجَالِ عَلَيْهِنَّ دَرَجَةٌ. (٢:٢٢٨)

फ़रमाकर और सूरः निसा की उपर्युक्त आयत में:

اَلرِّجَالُ قَوّٰمُوْنَ عَلَى النِّسَآءِ

फ़रमाकर यह बतला दिया गया कि अगरचे औरतों के हुक़ूक़ मर्दों पर ऐसे ही लाज़िम व वाजिब हैं जैसे मर्दों के औरतों पर हैं, और दोनों के हुक़ूक़ आपस में एक-दूसरे जैसे हैं, लेकिन एक चीज़ में मर्दों को विशेषता हासिल है कि वे हाकिम हैं। और क़ुरआने करीम की दूसरी आयतों में यह भी स्पष्ट कर दिया गया कि यह हुकूमत (सरदारी) जो मर्दों की औरतों पर है यह महज़ हुक्म चलाने और ज़्यादती करने की हुकूमत नहीं, बल्कि हाकिम यानी मर्द भी शरई क़ानून और मश्विरे का पाबन्द है, सिर्फ़ अपनी तबीयत के तक़ाज़े से कोई काम नहीं कर सकता। उसको हुक्म दिया गया है कि:

عَاشِرُوْهُنَّ بِالْمَعْرُوْفِ. (٥:١٩)

यानी औरतों के साथ परिचित तरीक़े पर अच्छा सुलूक करो।

इसी तरह दूसरी आयत में:

عَنْ تَرَاضٍ مِّنْهُمَا وَتَشَاوُرٍ. (٢:٢٣٣)

की तालीम है, जिसमें इसकी हिदायत की गई है कि घरेलू मामलात में बीवी के मश्विरे से काम करें। इस तफ़सील के बाद मर्द की सरदारी व हाकिमियत औरत के लिये किसी रंज का सबब नहीं हो सकती, लेकिन चूँकि यह शंका थी कि मर्दों की इस फ़ज़ीलत और अपनी महकूमियत (मातहती) से औरतों पर कोई नागवार असर हो, इसलिये हक़ तआ़ला ने इस जगह सिर्फ़ हुक्म बतलाने और जारी करने पर बस नहीं किया बल्कि ख़ुद ही इसकी हिक्मत और वजह भी बतला दी, एक **वहबी** (यानी ख़ुदा तआ़ला की तरफ़ से दी हुई) जिसमें किसी के अ़मल का दख़ल नहीं, दूसरे **कसबी** (यानी जो चीज़ मेहनत व कोशिश से हासिल की जा सके) जो अ़मल का असर है।

पहली वजह यह इरशाद फ़रमाई:

بِمَا فَضَّلَ اللّٰهُ بَعْضَهُمْ عَلٰى بَعْضٍ

यानी अल्लाह तआ़ला ने दुनिया में ख़ास हिक्मत व मस्लेहत के तहत एक को एक पर बड़ाई दी है, किसी को बेहतर किसी को कमतर बनाया है। जैसे एक ख़ास घर को अल्लाह ने अपना बैतुल्लाह और क़िब्ला क़रार दे दिया, बैतुल-मुक़द्दस को ख़ास फ़ज़ीलत दे दी। इसी तरह मर्दों की हाकमियत भी एक ख़ुदादाद फ़ज़ीलत है जिसमें मर्दों की कोशिश व अ़मल या औरतों की कोताही व बेअ़मली का कोई दख़ल नहीं।

दूसरी वजह कसबी और इख़्तियारी है कि मर्द अपना माल औरतों पर ख़र्च करते हैं, मेहर अदा करते हैं और उनकी तमाम ज़रूरतों की ज़िम्मेदारी उठाते हैं। इन दो कारणों से मर्दों को औरतों पर हाकिम बनाया गया।

फ़ायदाः यहाँ एक बात और क़ाबिले ग़ौर है, इब्ने हय्यान रहमतुल्लाहि अ़लैहि **बहरे मुहीत** में लिखते हैं कि आयत में मर्दों की हाकमियत की दो वजहों के बयान से यह भी साबित हो गया कि किसी को विलायत व हुकूमंत की पात्रता महज़ ज़ोर और ग़ालिब होने से क़ायम नहीं होती, बल्कि काम की सलाहियत व अहलियत (क्षमता व योग्यता) ही उसको हुकूमत का हक़दार बना सकती है।

मर्दों के अफ़ज़ल होने को बयान करने के लिये क़ुरआने करीम का अ़जीब अन्दाज़

पहली वजह के बयान में मुख़्तसर तरीक़ा यह था कि मर्दों और औरतों की तरफ़ कलाम का इशारा करके 'फ़ज़्ज़-लहुम अ़लैहिन्-न' फ़रमा दिया जाता (यानी यह कह दिया जाता कि मर्दों को औरतों पर फ़ज़ीलत और बड़ाई हासिल है), मगर क़ुरआने करीम ने उनवान बदलकर 'बअ़्ज़हुम अ़ला बअ़्ज़िन्' (कुछ को कुछ पर) के अलफ़ाज़ इख़्तियार किये। इसमें यह हिक्मत है कि औरतों और मर्दों को एक दूसरे का भाग और हिस्सा क़रार देकर इस तरफ़ इशारा कर दिया कि अगर किसी चीज़ में मर्दों की बरतरी और बेहतरी साबित भी हो जाये तो उसकी ऐसी मिसाल है जैसे इनसान का सर उसके हाथ से अफ़ज़ल या इनसान का दिल उसके मेदे (पेट) से अफ़ज़ल है, तो जिस तरह सर का हाथ से अफ़ज़ल होना हाथ के मक़ाम और अहमियत को कम नहीं करता, इसी तरह मर्द का हाकिम होना औरत के दर्जे को नहीं घटाता, क्योंकि ये दोनों एक दूसरे के लिये बदनी अंगों और हिस्सों की तरह हैं, मर्द सर है तो औरत बदन।

और कुछ मुफ़स्सिरीन ने फ़रमाया कि इस उनवान से इस तरफ़ भी इशारा कर दिया गया है कि यह अफ़ज़लियत (बेहतर होना) जो मर्दों को औरतों पर हासिल है यह जिन्स और मजमूए (यानी मजमूई तौर पर औरत जाति) के एतिबार से है, जहाँ तक अफ़राद का ताल्लुक़ है तो बहुत मुम्किन है कि कोई औरत इल्म व अ़मल में किसी मर्द से बढ़ जाये और हाकमियत (सरदारी) की सिफ़त में भी मर्द से बरतर हो जाये।

मर्द और औरत के विभिन्न काम ज़िम्मेदारियों की तक़सीम के उसूल पर आधारित हैं

दूसरी इख़्तियारी वजह (सबब और कारण) जो यह बयान की गई है कि मर्द अपने माल औरतों पर ख़र्च करते हैं, इसमें भी चन्द अहम बातों की तरफ़ इशारा फ़रमाया गया है, जैसे एक

तो उस शुब्हे को दूर करना है जो मीरास की आयतों में मर्दों का हिस्सा दोहरा और औरतों का इकेहरा होने से पैदा हो सकता है। क्योंकि इस आयत ने इसकी भी एक वजह बतला दी कि माली ज़िम्मेदारियाँ सारी की सारी मर्दों पर हैं, औरतों का हाल तो यह है कि शादी से पहले उनके तमाम ख़र्चों की ज़िम्मेदारी बाप पर है और शादी के बाद शौहर पर, इसलिये अगर ग़ौर किया जाये तो मर्द को दोहरा हिस्सा देना उसको कुछ ज़्यादा देना नहीं है, वह फिर लौटकर औरतों ही को पहुँच जाता है।

दूसरा इशारा ज़िन्दगी के एक अहम उसूल के मुताल्लिक़ यह भी है कि औरत अपनी पैदाईश और फ़ितरत के एतिबार से न इसकी हिम्मत व बरदाश्त रखती है कि अपने ख़र्चे ख़ुद कमा कर पैदा करे न उसके हालात इसके लिये साज़गार हैं कि वह मेहनत, मज़दूरी और दूसरे कमाई के साधनों और माध्यमों में मर्दों की तरह दफ़्तरों और बाज़ारों में फिरा करे। इसलिये हक़ तआ़ला ने इसकी पूरी ज़िम्मेदारी मर्दों पर डाल दी, शादी से पहले बाप उसका ज़िम्मेदार है और शादी के बाद शौहर। इसके मुक़ाबिल नस्ल बढ़ाने का ज़रिया औरत को बनाया है, बच्चों और घरेलू मामलात की ज़िम्मेदारी भी उसी पर डाल दी गई है, जबकि मर्द इन चीज़ों को संभालने वाला नहीं हो सकता।

इसलिये यह नहीं समझा जा सकता कि औरत को अपने ख़र्चों और ज़रूरतों में मर्द का मोहताज करके उसका रुतबा कम कर दिया गया है, बल्कि कामों की तक़सीम (बंटवारे) के उसूल पर ड्यूटियाँ तक़सीम कर दी गई हैं। हाँ ड्यूटियों के दरमियान जो आपस में एक-दूसरे पर बड़ाई और दर्जों का फ़र्क़ हुआ करता है वह यहाँ भी है।

ख़ुलासा यह है कि इन दोनों वजहों (कारणों) के ज़रिये यह बतला दिया गया कि मर्दों की हाकमियत से न औरतों का कोई दर्जा कम होता है और न उनका इसमें कोई फ़ायदा है, बल्कि इसका फ़ायदा भी औरतों को ही पहुँचता है।

नेक बीवी

इस आयत के शुरू में बतौर क़ानून और नियम के यह बतला दिया गया कि मर्द औरत पर हाकिम है, इसके बाद नेक व बद औरतों का बयान इस तरह फ़रमायाः

فَالصّٰلِحٰتُ قٰنِتٰتٌ حٰفِظٰتٌ لِّلْغَيْبِ بِمَا حَفِظَ اللّٰهُ

यानी "नेक औरतें वे हैं जो मर्द की हाकमियत को तस्लीम करके उनकी इताअ़त (फ़रमाँबरदारी) करती हैं और मर्दों के पीठ पीछे भी अपने नफ़्स और उनके माल की हिफ़ाज़त करती हैं।" यानी अपनी आबरू और घर के माल की हिफ़ाज़त जो घरेलू मामलात में सबसे अहम हैं, उनके पूरा करने में उनके लिये मर्दों के सामने और पीछे के हालात बिल्कुल बराबर और एक जैसे हैं। यह नहीं कि उनके सामने तो इसका एहतिमाम करें और उनकी नज़रों से ग़ायब हों तो इसमें लापरवाही बरतें।

रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने इस आयत की तफ़सीर के तौर पर इरशाद

फ़रमाया किः

خَيْرُ النِّسَآءِ اِمْرَاَةٌ اِذَا نَظَرْتَ اِلَيْهَا سَرَّتْكَ وَاِذَآ اَمَرْتَهَا اَطَاعَتْكَ وَاِذَا غِبْتَ عَنْهَا حَفِظَتْكَ فِىْ مَالِهَا وَنَفْسِهَا.

"यानी बेहतरीन औरत वह है कि जब तुम उसको देखो तो ख़ुश हो और जब उसको कोई हुक्म दो तो इताअ़त करे और जब तुम ग़ायब हो तो अपने नफ़्स और माल की हिफ़ाज़त करे।"

और चूँकि औरतों की ये ज़िम्मेदारियाँ यानी अपनी आबरू और शौहर के माल की हिफ़ाज़त दोनों आसान काम नहीं, इसलिये आगे फ़रमा दियाः

بِمَاحَفِظَ اللّٰهُ

यानी इस हिफ़ाज़त में अल्लाह तआ़ला औरत की मदद फ़रमाते हैं, उन्हीं की इमदाद और तौफ़ीक़ से वे इन ज़िम्मेदारियों को पूरा करती हैं, वरना नफ़्स व शैतान के जाल हर वक़्त हर इनसान मर्द व औरत को घेरे हुए हैं। और औरतें ख़ुसूसन अपनी इल्मी और अ़मली क़ुव्वतों में मर्द के मुक़ाबले में कमज़ोर भी हैं इसके बावजूद वे इन ज़िम्मेदारियों में मर्द से ज़्यादा मज़बूत नज़र आती हैं, यह सब अल्लाह की तौफ़ीक़ और इमदाद है। यही वजह है कि बेहयाई के गुनाहों में मर्दों की तुलना में औरतें बहुत कम मुब्तला होती हैं।

आज्ञाकारी, ताबेदार औरतों की फ़ज़ीलत जहाँ इस आयत से समझ में आती है वहाँ इस सिलसिले में हदीसें भी आयी हैं।

एक हदीस में रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि जो औरत अपने शौहर की ताबेदार और फ़रमाँबरदार हो उसके लिये इस्तिग़फ़ार करते हैं परिन्दे हवा में, और मच्छलियाँ दरिया में, और फ़रिश्ते आसमानों में और दरिन्दे जंगलों में। (बहरे मुहीत)

नाफ़रमान बीवी और उसकी इस्लाह का तरीक़ा

इसके बाद उन औरतों का ज़िक्र है जो अपने शौहरों की फ़रमाँबरदार नहीं, या जिनसे इस काम में कोताही होती है। क़ुरआने करीम ने उनकी इस्लाह (सुधार) के लिये मर्दों को क्रमवार तीन तरीक़े बतलायेः

وَالّٰتِىْ تَخَافُوْنَ نُشُوْزَهُنَّ فَعِظُوْهُنَّ وَاهْجُرُوْهُنَّ فِى الْمَضَاجِعِ وَاضْرِبُوْهُنَّ

"यानी औरतों की तरफ़ से अगर नाफ़रमानी हो जाये या अन्देशा हो, तो पहला दर्जा उनकी इस्लाह (सुधारने) का यह है कि नर्मी से उनको समझाओ, और अगर वे महज़ समझाने बुझाने से बाज़ न आयें तो दूसरा दर्जा यह है कि उनका बिस्तर अपने से अलग कर दो, ताकि वे इस अ़लैहदगी से शौहर की नाराज़ी का एहसास करके अपनी हरकत पर शर्मिन्दा हो जायें। क़ुरआने करीम के अलफ़ाज़ में 'फ़िल्मज़ाजिअ़ि' का लफ़्ज़ है। इससे फ़ुक़हा हज़रात ने यह मतलब निकाला कि जुदाई (अ़लैहदगी) सिर्फ़ बिस्तरे में हो, मकान की जुदाई न करे, कि औरत को मकान में तन्हा छोड़ दे, इसमें उसको रंज भी ज़्यादा होगा और फ़साद (ख़राबी व बिगाड़) बढ़ने का अन्देशा भी इसमें ज़्यादा है।

एक सहाबी से रिवायत है:

قُلْتُ يَا رَسُوْلَ اللّٰهِ مَا حَقُّ زَوْجَةِ اَحَدِنَا عَلَيْهِ قَالَ اَنْ تُطْعِمَهَا اِذَآ اَطْعَمْتَ وَتَكْسُوْهَا اِذَا اكْتَسَيْتَ وَلَا تَضْرِبِ الْوَجْهَ وَلَا تُقَبِّحْ وَلَا تَهْجُرْ اِلَّا فِى الْبَيْتِ. (مشكوة ص ۲۸۱)

"मैंने रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से अ़र्ज़ किया कि हमारी बीवियों का हम पर क्या हक़ है? आपने फ़रमाया जब तुम खाओ तो उन्हें भी खिलाओ और तुम पहनो तो उन्हें भी पहनाओ और चेहरे पर मत मारो। अगर उससे अलग होना चाहो तो सिर्फ़ इतना करो कि (बिस्तर अलग कर दो) मकान अलग न करो।"

और जो इस शरीफ़ाना सज़ा व चेतावनी से भी असर न ले तो फिर उसको मामूली मार मारने की भी इजाज़त है जिससे उसके बदन पर असर न पड़े, और हड्डी टूटने या ज़ख़्म लगने तक की नौबत न आये, और चेहरे पर मारने को बिल्कुल मना फ़रमा दिया गया है।

शुरूआ़ती दो सज़ायें तो शरीफ़ाना सज़ायें हैं, इसलिये अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम और नेक लोगों से क़ौलन भी इनकी इजाज़त मन्क़ूल है और इस पर अ़मल भी साबित है, मगर तीसरी सज़ा यानी मार-पीट की अगरचे मजबूरी के दर्जे में एक ख़ास अन्दाज़ में मर्द को इजाज़त दी गई है मगर इसके साथ ही हदीस में यह भी इरशाद है:

وَلَنْ يَّضْرِبَ خِيَارُكُمْ

यानी "अच्छे मर्द यह मारने की सज़ा औ़रतों को न देंगे।" चुनाँचे अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम से कहीं ऐसा अ़मल मन्क़ूल नहीं।

इब्ने सअ़द और बैहक़ी ने हज़रत सिद्दीक़े अकबर रज़ियल्लाहु अ़न्हु की बेटी से यह रिवायत नक़ल की है कि पहले मर्दों को पूरी तरह औ़रतों को मारने से मना कर दिया गया था, मगर फिर औ़रतें शेर हो गईं तो दोबारा यह इजाज़त दी गई।

आयते मज़्कूरा का ताल्लुक़ भी इसी क़िस्म के एक वाक़िए से है। इसका शाने नुज़ूल यह है कि ज़ैद बिन अबी ज़ुहैर रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने अपनी लड़की हज़रत हबीबा रज़ियल्लाहु अ़न्हा का निकाह हज़रत सअ़द बिन रबीअ़ रज़ियल्लाहु अ़न्हु से कर दिया था, उनमें आपस में कुछ झगड़ा और मनमुटाव पेश आया, शौहर ने एक तमाँचा मार दिया, हबीबा रज़ियल्लाहु अ़न्हा ने अपने वालिद से शिकायत की, वालिद उनको लेकर हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की ख़िदमत में हाज़िर हुए। आपने हुक्म दे दिया कि हबीबा को हक़ हासिल है कि जितनी ज़ोर से सअ़द बिन रबीअ़ ने उनको तमाँचा मारा है वह भी उतनी ही ज़ोर से उनके तमाँचा मारें।

ये दोनों हुक्मे नबवी सुनकर चले कि उसके मुताबिक़ सअ़द बिन रबीअ़ रज़ियल्लाहु अ़न्हु से अपना बदला लें, मगर उसी वक़्त यह आयत नाज़िल हो गई, जिसमें आख़िरी दर्जे में मर्द के लिये औ़रत की मार-पीट को भी जायज़ क़रार दे दिया है और उस पर मर्द से क़िसास या इन्तिक़ाम (यानी बदला) लेने की इजाज़त नहीं है। आयत नाज़िल होने पर आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने उन दोनों को बुलवाकर हक़ तआ़ला का हुक्म सुना दिया और इन्तिक़ाम लेने

का पहला हुक्म मन्सूख़ (निरस्त और रद्द) फ़रमा दिया।

आयत के आख़िर में इरशाद फ़रमाया कि इन तीनों तदबीरों के ज़रिये अगर वे ताबेदार हो जायें तो फिर तुम भी चश्मपोशी (नज़र-अन्दाज़ करने) से काम लो, मामूली बातों पर इल्ज़ाम की राह न तलाश करो, और समझ लो कि अल्लाह की क़ुदरत सब पर हावी है।

ख़ुलासा-ए-मज़मून

आयत से बुनियादी उसूल की हैसियत से जो बात सामने आई वह यह है कि अगरचे पिछली आयतों के इरशादात के मुताबिक़ मर्दों और औरतों के हुक़ूक़ आपस में एक जैसे हैं, बल्कि औरतों के हुक़ूक़ की अदायेगी का इस वजह से ज़्यादा एहतिमाम किया गया है कि वो मर्द के मुक़ाबले में आधे हैं, अपने हुक़ूक़ अपनी ताक़त के ज़ोर पर मर्द से हासिल नहीं कर सकतीं, लेकिन इस बराबरी के यह मायने नहीं कि औरत व मर्द में कोई तफ़ाज़ुल या दर्जे का कोई फ़र्क़ ही न हो, बल्कि इन्साफ़ व हिक्मत के तक़ाज़े की बिना पर दो सबब से मर्दों को औरतों पर हाकिम बनाया गया है:

अव्वल तो मर्द जाति को अपने इल्मी और अ़मली कमालात के एतिबार से औरत की जाति पर एक ख़ुदादाद फ़ज़ीलत और बरतरी हासिल है, जिसका हासिल करना औरत जाति के लिये मुम्किन नहीं, इक्की-दुक्की मिसालें और इत्तिफ़ाक़ी वाक़िआ़त का मामला अलग है।

दूसरे यह कि औरतों की तमाम ज़रूरतों की ज़िम्मेदारी उठाना मर्द अपनी कमाई और अपने माल से करते हैं। पहला सबब ख़ुदा की तरफ़ से मिला हुआ और ग़ैर-इख़्तियारी है, और दूसरा मेहनत व कोशिश से हासिल किये जाने योग्य और इख़्तियारी है। और यह भी कहा जा सकता है कि एक ही माँ-बाप की औलाद में से बाज़ को हाकिम बाज़ को महकूम बनाने के लिये अ़क्ल व इन्साफ़ की रू से दो चीज़ें ज़रूरी थीं- एक जिसको हाकिम बनाया जाये उसमें इल्म व अ़मल के एतिबार से हाकमियत की क़ाबलियत, दूसरे उसकी हाकमियत पर महकूम की रज़ामन्दी। पहला सबब मर्द के हाकिम होने की सलाहियत को वाज़ेह कर रहा है और दूसरा सबब महकूम की रज़ामन्दी को, क्योंकि निकाह के वक़्त जब औरत अपने मेहर और नान-नफ़क़े (ख़र्चों) की ज़िम्मेदारी लेने की शर्त पर निकाह की इजाज़त देती है तो उसकी इस हाकमियत को तस्लीम और मन्ज़ूर करती है।

ग़र्ज़ कि इस आयत के पहले जुमले में घरेलू और ख़ानदानी ज़िन्दगी का एक बुनियादी उसूल बतलाया गया है कि अक्सर चीज़ों में हुक़ूक़ की बराबरी के बावजूद मर्द को औरत पर एक फ़ज़ीलत हाकिम होने की हासिल है और औरत महकूम व ताबे है।

इस बुनियादी उसूल के मातहत अ़मली दुनिया में औरतों के दो तब्क़े हो गये- एक वह जिन्होंने इस बुनियादी उसूल और अपने मुआ़हदे की पाबन्दी की और मर्द की हाकमियत को तस्लीम करके उसकी इताअ़त (फ़रमाँबरदारी) की, दूसरे वह जो इस उसूल पर पूरी तरह क़ायम न रहा। पहला तब्क़ा तो घरेलू अमन व इत्मीनान का ख़ुद ही कफ़ील है उसको किसी इस्लाह की

हाजत नहीं।

दूसरे तब्क़े की इस्लाह (सुधार) के लिये आयत के दूसरे जुमले में एक ऐसा मुरत्तब निज़ाम बतलाया गया है कि जिसके ज़रिये घर की इस्लाह घर के अन्दर ही हो जाये और मियाँ-बीवी का झगड़ा उन्हीं दोनों के बीच निपट जाये, किसी तीसरे के हस्तक्षेप की ज़रूरत न हो। इसमें मर्दों को ख़िताब करके इरशाद फ़रमाया गया कि अगर औरतों से नाफ़रमानी या इताअ़त में कुछ कमी महसूस करो तो सबसे पहला काम यह करो कि समझा-बुझाकर उनकी ज़ेहनी इस्लाह करो इससे काम चल गया तो मामला यहीं ख़त्म हो गया, औरत हमेशा के लिये गुनाह से और मर्द दिली कुढ़न से और दोनों रंज व ग़म से बच गये, और अगर तंबीह व समझाने से काम न चला तो दूसरा दर्जा यह है कि उनको तंबीह करने और अपनी नाराज़ी का इज़हार करने के लिये ख़ुद अलग बिस्तर पर सोओ। यह एक मामूली सज़ा और बेहतरीन तंबीह है, इससे औरत रास्ते पर आ गयी और सचेत हो गई तो झगड़ा यहीं ख़त्म हो गया, और अगर वह इस शरीफ़ाना सज़ा पर भी अपनी नाफ़रमानी और टेढ़ी चाल से बाज़ न आई तो तीसरे दर्जे में मामूली मार मारने की भी इजाज़त दे दी गई, जिसकी हद यह है कि बदन पर उस मार का असर व ज़ख़्म न हो। मगर इस तीसरे दर्जे की सज़ा के इस्तेमाल को रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने पसन्द नहीं फ़रमाया बल्कि इरशाद फ़रमाया कि शरीफ़ और भले लोग ऐसा नहीं करेंगे।

बहरहाल इस मामूली मार से भी अगर मामला दुरुस्त हो गया तब भी मक़सद हासिल हो गया, इसमें मर्दों को औरतों की इस्लाह के लिये जहाँ ये तीन इख़्तियारात दिये गये हैं वहीं आयत के आख़िर में यह भी इरशाद फ़रमाया कि:

فَإِنْ أَطَعْنَكُمْ فَلَا تَبْغُوا عَلَيْهِنَّ سَبِيلًا

यानी "अगर इन तीन तरह की तदबीरों से वे तुम्हारी बात मानने लगें तो अब तुम भी ज़्यादा बाल की खाल न निकालो" और इल्ज़ाम लगाने में मत लगो, बल्कि कुछ चश्मपोशी (अनदेखा करने) से काम लो और ख़ूब समझ लो कि अल्लाह तआ़ला ने औरतों पर तुम्हें कुछ बड़ाई दी है तो अल्लाह तआ़ला की बड़ाई तुम्हारे ऊपर भी मुसल्लत हैं, तुम ज़्यादती करोगे तो उसकी सज़ा तुम भुगतोगे।

झगड़ा अगर तूल पकड़ जाये तो दोनों तरफ़ से बिरादरी के पंचों से सुलह कराई जाये

यह निज़ाम तो वह था कि जिसके ज़रिये घर का झगड़ा घर ही में ख़त्म हो जाये, लेकिन कई बार ऐसा भी होता है कि झगड़ा तूल पकड़ लेता है, चाहे इस वजह से कि औरत की तबीयत में सरकशी व नाफ़रमानी हो, या इस बिना पर कि मर्द का क़ुसूर और उसकी तरफ़ से बेजा सख़्ती हो। बहरहाल इस सूरत में घर की बात का बाहर निकलना तो लाज़िमी है लेकिन आ़म आ़दत के मुताबिक़ तो यह होता है कि दोनों के हामी एक दूसरे को बुरा कहते हैं और

इल्ज़ाम लगाते फिरते हैं, जिसका नतीजा दोनों तरफ़ से उत्तेजना और फिर दो शख़्सों की लड़ाई ख़ानदानी झगड़े की सूरत इख़्तियार कर लेती है।

इस दूसरी आयत में क़ुरआने करीम ने इस बड़े फ़साद का दरवाज़ा बन्द करने के लिये हाकिमों (पंचों, फ़ैसला करने वालों), दोनों पक्षों के ज़िम्मेदारों और हामियों को और मुसलमानों की जमाअ़तों को ख़िताब करके एक ऐसा पाकीज़ा तरीक़ा बतलाया जिस से दोनों पक्षों का उत्तेजना और जोश भी ख़त्म हो जाये और इल्ज़ाम लगाने के रास्ते भी बन्द हो जायें, और उनमें आपस में मुसालहत (समझौते) की राह निकल आये, और घर का झगड़ा अगर घर में ख़त्म नहीं हुआ तो कम से कम ख़ानदान में ख़त्म हो जाये, अ़दालत में मुक़द्दमे की सूरत में कूचा व बाज़ार में यह झगड़ा न चले।

वह यह कि इख़्तियार व ताक़त वाले लोग या दोनों पक्षों के सरपरस्त या मुसलमानों की कोई असरदार जमाअ़त यह काम करे कि उनमें आपस में सुलह व समझौता कराने के लिये दो हकम (फ़ैसला करने वाले) मुक़र्रर करें, एक मर्द के ख़ानदान से दूसरा औ़रत के ख़ानदान से, और इन दोनों जगह लफ़्ज़ हकम से ताबीर करके क़ुरआने करीम ने उन दोनों शख़्सों के ज़रूरी गुणों और सिफ़तों को भी मुतैयन कर दिया कि उन दोनों में झगड़ों के फ़ैसले करने की सलाहियत मौजूद हो, और यह सलाहियत ज़ाहिर है कि उसी शख़्स में हो सकती है जो इल्म भी रखता हो और दियानतदार भी।

ख़ुलासा यह है कि एक हकम (फ़ैसला करने वाला, पंच) मर्द के ख़ानदान का और एक औ़रत के ख़ानदान का मुक़र्रर करके दोनों मियाँ-बीवी के पास भेजे जायें, अब वहाँ जाकर ये दोनों क्या काम करें और इनके इख़्तियारात क्या हैं? क़ुरआने करीम ने इसको मुतैयन नहीं फ़रमाया, अलबत्ता आख़िर में एक जुमला यह इरशाद फ़रमायाः

اِنْ يُّرِيْدَآ اِصْلَاحًا يُّوَفِّقِ اللّٰهُ بَيْنَهُمَا

यानी अगर ये दोनों हकम हालात के सुधार और आपसी समझौते का इरादा करेंगे तो अल्लाह तआ़ला इनके काम में इमदाद फ़रमा देंगे और मियाँ-बीवी में इत्तिफ़ाक़ पैदा कर देंगे।

इस जुमले से दो बातें समझ में आईः

अव्वल तो यह कि मुसालहत (समझौता और सुलह) कराने वाले हकम अगर नेक-नीयत हों और दिल से चाहें कि आपस में सुलह हो जाये तो अल्लाह तआ़ला की तरफ़ से उनकी ग़ैबी इमदाद होगी, कि ये अपने मक़सद में कामयाब हो जायेंगे और इनके ज़रिये दोनों मियाँ-बीवी के दिलों में अल्लाह तआ़ला इत्तिफ़ाक़ व मुहब्बत पैदा फ़रमा देंगे। इसके नतीजे में यह भी समझा जा सकता है कि जहाँ आपसी सुलह-सफ़ाई और समझौता नहीं हो पाता तो दोनों हकमों में से किसी जानिब इख़्लास के साथ सुलह कराने में कमी होती है।

दूसरी बात इस जुमले से यह भी समझी जाती है कि इन दोनों हकमों (पंचों) के भेजने का मक़सद मियाँ-बीवी में सुलह कराना है, इससे ज़्यादा कोई काम हकमों के भेजने के मक़सद में शामिल नहीं। यह अलग बात है कि दोनों फ़रीक़ रज़ामन्द होकर उन्हीं दोनों हकमों को अपना

वकील, मुख़्तार या मध्यस्थ बना दें और यह तस्लीम कर लें कि तुम दोनों मिलकर जो फ़ैसला भी हमारे हक़ में दोगे हमें मन्ज़ूर होगा। इस सूरत में ये दोनों हकम पूरी तरह उनके मामले के फ़ैसले में मुख़्तार हो जायेंगे, दोनों तलाक़ पर मुत्तफ़िक़ हो जायें तो तलाक़ हो जायेगी, दोनों मिलकर ख़ुला वग़ैरह की कोई सूरत तय कर दें तो वही दोनों फ़रीक़ों और मर्द की जानिब से दिये हुए इख़्तियार की बिना पर औरत को तलाक़ दे दें तो दोनों फ़रीक़ों को मानना पड़ेगी। पुराने बुज़ुर्गों में हसन बसरी और इमाम अबू हनीफ़ा रहमतुल्लाहि अलैहिमा की यही तहक़ीक़ है।

(तफ़सीर रूहुल-मआनी वग़ैरह)

हज़रत अली कर्रमल्लाहु वज्हहू के सामने एक ऐसा ही वाक़िआ पेश आया, उसमें भी इसकी शहादत (सुबूत) मौजूद है कि उन दोनों हकमों को ख़ुद से कोई इख़्तियार सिवाय सुलह कराने के नहीं है, जब तक दोनों फ़रीक़ उनको कुल्ली इख़्तियार न दे दें। यह वाक़िआ सुनने बैहक़ी में उबैदा सलमानी की रिवायत से इस तरह बयान हुआ है:

एक मर्द और एक औरत हज़रत अली रज़ियल्लाहु अन्हु की ख़िदमत में हाज़िर हुए और दोनों के साथ बहुत सी जमाअतें थीं। हज़रत अली रज़ियल्लाहु अन्हु ने हुक्म दिया कि एक हकम मर्द के ख़ानदान से और एक औरत से ख़ानदान से मुक़र्रर करें। जब ये हकम तजवीज़ कर दिये गये तो उन दोनों से ख़िताब फ़रमाया कि तुम जानते हो तुम्हारी ज़िम्मेदारी क्या है? और तुम्हें क्या करना है? सुन लो! अगर तुम दोनों इन मियाँ-बीवी को इकट्ठा रखने और आपस में समझौता करा देने पर मुत्तफ़िक़ हो जाओ तो ऐसा ही कर लो, और अगर तुम यह समझो कि उनमें समझौता नहीं हो सकता या क़ायम नहीं रह सकता और तुम दोनों का इस पर इत्तिफ़ाक़ हो जाये कि उनमें जुदाई (अलैहदगी) ही मस्लेहत (बेहतर) है तो ऐसा ही कर लो। यह सुनकर औरत बोली कि मुझे मन्ज़ूर है, ये दोनों हकम क़ानूने इलाही के मुवाफ़िक़ जो फ़ैसला कर दें, चाहे वह मेरी मर्ज़ी के मुताबिक़ हो या ख़िलाफ़ मुझे मन्ज़ूर है।

लेकिन मर्द ने कहा कि जुदाई और तलाक़ तो मैं किसी हाल में गवारा नहीं करूँगा, अलबत्ता हकम को यह इख़्तियार देता हूँ कि मुझ पर माली जुर्माना जो चाहें डालकर इसको राज़ी कर दें।

हज़रत अली रज़ियल्लाहु अन्हु ने फ़रमाया कि नहीं! तुम्हें भी इन हकमों को ऐसा ही इख़्तियार देना चाहिये जैसा औरत ने दे दिया।

इस वाक़िए से कुछ अइम्मा हज़रात ने यह मसला निकाला कि उन हकमों का इख़्तियार वाला होना ज़रूरी है जैसा कि हज़रत अली रज़ियल्लाहु अन्हु ने दोनों फ़रीक़ों से कहकर उनको इख़्तियार वाला बनवाया, और इमामे आज़म अबू हनीफ़ा रहमतुल्लाहि अलैहि और हसन बसरी रहमतुल्लाहि अलैहि ने यह क़रार दिया कि अगर उन हकमों का इख़्तियार वाला होना शरई मामला और ज़रूरी होता तो हज़रत अली रज़ियल्लाहु अन्हु के इस इरशाद और दोनों फ़रीक़ों से रज़ामन्दी हासिल करने की कोई ज़रूरत ही न होती, दोनों फ़रीक़ों को राज़ी करने की कोशिश ख़ुद इसकी दलील है कि उसूली तौर पर ये हकम इख़्तियार वाले नहीं होते, हाँ! मियाँ-बीवी

उनको मुख़्तार बना दें तो इख़्तियार वाले हो जाते हैं।

क़ुरआने करीम की इस तालीम से लोगों के आपसी झगड़ों और मुक़द्दमों का फ़ैसला करने के मुताल्लिक़ एक नये बाब (अध्याय) का निहायत मुफ़ीद इज़ाफ़ा हुआ जिसके ज़रिये अ़दालत व हुकूमत तक पहुँचने से पहले ही बहुत से मुक़द्दमों और झगड़ों का फ़ैसला बिरादरियों की पंचायत में हो सकता है।

दूसरे झगड़ों में भी हकम के ज़रिये सुलह-सफ़ाई कराई जाये

हज़राते फ़ुक़हा (दीनी मसाईल के माहिर उलेमा) ने फ़रमाया है कि आपसी सुलह कराने के लिये दो हकमों के भेजने की यह तजवीज़ सिर्फ़ मियाँ-बीवी के झगड़ों में सीमित नहीं बल्कि दूसरे झगड़ों और विवादों में भी इससे काम लिया जा सकता है और लेना चाहिये, ख़ुसूसन जबकि झगड़ने वाले आपस में अ़ज़ीज़ व रिश्तेदार हों, क्योंकि अ़दालती फ़ैसलों से वक़्ती झगड़ा तो ख़त्म हो जाता है मगर वो फ़ैसले दिलों में मैल व दुश्मनी के जरासीम छोड़ जाते हैं जो बाद में बहुत ही नागवार शक्लों में ज़ाहिर हुआ करते हैं। हज़रत फ़ारूक़े आज़म रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने अपने क़ाज़ियों के लिये यह फ़रमान जारी फ़रमा दिया था कि:

رُدُّوا الْقَضَآءَ بَيْنَ ذَوِي الْاَرْحَامِ حَتّٰى يَصْطَلِحُوْا فَاِنَّ فَصْلَ الْقَضَآءِ يُوْرِثُ الضَّغَآئِنَ. (معين الحكام، ص ٢١٤)

"रिश्तेदारों के मुक़द्दमों को उन्हीं में वापस कर दो ताकि वे ख़ुद बिरादरी के सहयोग से आपस में सुलह की सूरत निकाल लें, क्योंकि क़ाज़ी का फ़ैसला दिलों में कीना व दुश्मनी पैदा होने का सबब होता है।"

हनफ़ी फ़ुक़हा में से क़ाज़ी क़ुदुस अ़लाउद्दीन तराबुलसी ने अपनी किताब **मुईनुल-हुक्काम** में और इब्ने शहना ने **लिसानुल-हुक्काम** में इस फ़रमाने फ़ारूक़ी को ऐसे पंचायती फ़ैसलों की ख़ास बुनियाद बनाया है जिनके ज़रिये दोनों फ़रीक़ों की रज़ामन्दी से सुलह की कोई सूरत निकाली जाये, और साथ ही यह भी लिखा है कि अगरचे फ़ारूक़ी फ़रमान में यह हुक्म रिश्तेदारों के आपसी झगड़ों से मुताल्लिक़ है मगर इसकी जो इल्लत व हिक्मत इसी फ़रमान में मज़कूर है कि अ़दालती फ़ैसले दिलों में कदूरत (मैल) पैदा कर दिया करते हैं यह हिक्मत रिश्तेदार और ग़ैर-रिश्तेदारों में आ़म है, क्योंकि आपसी कदूरत और दुश्मनी से सब ही मुसलमानों को बचाना है, इसलिये हाकिमों और क़ाज़ियों के लिये मुनासिब यह है कि मुक़द्दमों की सुनवाई से पहले इसकी कोशिश कर लिया करें कि किसी सूरत से उनमें आपस में रज़ामन्दी के साथ समझौता हो जाये।

ग़र्ज़ कि इन दो आयतों में इनसान की घरेलू और ख़ानदानी ज़िन्दगी का एक ऐसा जामे और मुकम्मल निज़ाम इरशाद फ़रमाया गया है कि अगर इस पर पूरा अ़मल हो जाये तो दुनिया के अक्सर झगड़े-फ़साद और जंगें मिट जायें, मर्द और औ़रतें सब मुत्मईन होकर अपनी घरेलू ज़िन्दगी को एक जन्नत की ज़िन्दगी महसूस करने लगें और घरेलू झगड़ों से जो क़बाईली और

फिर जमाअ़ती और मुल्की झगड़े और जंगें खड़ी हो जाती हैं उन सब से अमन हो जाये।

आख़िर में फिर इस अ़जीब व ग़रीब क़ुरआनी स्थिर निज़ाम पर एक संक्षिप्त नज़र डालिये जो उसने घरेलू झगड़ों के ख़त्म करने के लिये दुनिया को दिया हैः

1. घर का झगड़ा घर ही में दर्जा-ब-दर्जा तदबीरों के साथ चुका दिया जाये।

2. यह सूरत मुम्किन न रहें तो हाकिमों या बिरादरी के लोग दो हकमों के ज़रिये उनमें समझौता करा दें ताकि घर में नहीं तो ख़ानदान ही के अन्दर सीमित रहकर झगड़ा ख़त्म हो सके।

3. जब यह भी मुम्किन न रहे तो आख़िर में मामला अ़दालत तक पहुँचे, वह दोनों के हालात व मामलात की तफ़्तीश करके न्याय के साथ फ़ैसला करे।

आयत के आख़िर में 'इन्नल्ला-ह का-न अ़लीमन् ख़बीरा' फ़रमाकर दोनों हकमों को भी सचेत फ़रमा दिया कि तुम कोई बेइन्साफ़ी या ग़लत हरकत करोगे तो तुमको भी एक अ़लीम व ख़बीर (यानी अल्लाह तआ़ला) से साबक़ा पड़ना है, इसको सामने रखो।

وَاعْبُدُوا اللّٰهَ وَلَا تُشْرِكُوْا بِهٖ شَيْـًٔا وَّبِالْوَالِدَيْنِ اِحْسَانًا وَّبِذِي الْقُرْبٰى وَالْيَتٰمٰى وَالْمَسٰكِيْنِ
وَالْجَارِ ذِي الْقُرْبٰى وَالْجَارِ الْجُنُبِ وَالصَّاحِبِ بِالْجَنْۢبِ وَابْنِ السَّبِيْلِ ۙ وَمَا مَلَكَتْ اَيْمَانُكُمْ ۗ
اِنَّ اللّٰهَ لَا يُحِبُّ مَنْ كَانَ مُخْتَالًا فَخُوْرًا ۙ الَّذِيْنَ يَبْخَلُوْنَ وَيَاْمُرُوْنَ النَّاسَ بِالْبُخْلِ
وَيَكْتُمُوْنَ مَآ اٰتٰىهُمُ اللّٰهُ مِنْ فَضْلِهٖ ۗ وَاَعْتَدْنَا لِلْكٰفِرِيْنَ عَذَابًا مُّهِيْنًا ۚ وَالَّذِيْنَ يُنْفِقُوْنَ
اَمْوَالَهُمْ رِئَاۤءَ النَّاسِ وَلَا يُؤْمِنُوْنَ بِاللّٰهِ وَلَا بِالْيَوْمِ الْاٰخِرِ ۗ وَمَنْ يَّكُنِ الشَّيْطٰنُ لَهٗ قَرِيْنًا
فَسَاۤءَ قَرِيْنًا ۝

वअ़्बुदुल्ला-ह व ला तुश्रिकू बिही शैअंव्-व बिल्-वालिदैनि इह्सानंव्-व बि-ज़िल्क़ुर्बा वल्यतामा वल्मसाकीनि वल्जारि ज़िल्-क़ुर्बा वल्जारिल्-जुनुबि वस्साहिबि बिल्-जम्बि वब्निस्सबीलि व मा म-लकत् ऐमानुकुम्, इन्नल्ला-ह ला युहिब्बु मन् का-न मुख़्तालन् फ़ख़ूरा (36)	और बन्दगी करो अल्लाह की और शरीक न करो उसका किसी को, और माँ-बाप के साथ नेकी करो और क़राबत वालों के साथ, और यतीमों और फ़क़ीरों और पड़ोसी क़रीब और पड़ोसी अजनबी, और पास बैठने वाले और मुसाफ़िर के साथ, और अपने हाथ के माल यानी ग़ुलाम बाँदियों के साथ, बेशक अल्लाह को पसन्द नहीं आता इतराने वाला बड़ाई करने वाला। (36)

अल्लज़ी-न यब्ख़लू-न व यअ्मुरूनन्ना-स बिल्-बुख़्लि व यक्तुमू-न मा आताहुमुल्लाहु मिन् फ़ज़्लिही, व अअ्तद्ना लिल्काफ़िरी-न अज़ाबम्-मुहीना (37) वल्लज़ी-न युन्फ़िक़ू-न अम्वालहुम् रिआअन्नासि व ला युअ्मिनू-न बिल्लाहि व ला बिल्-यौमिल्-आख़िरि, व मंय्यकुनिश्शैतानु लहू क़रीनन् फ़सा-अ क़रीना (38)	जो कि बुख़्ल (कन्जूसी) करते हैं और सिखाते हैं लोगों को बुख़्ल, और छुपाते हैं जो उनको दिया अल्लाह ने अपने फ़ज़्ल से, और तैयार कर रखा है हमने काफ़िरों के लिये अज़ाब ज़िल्लत का। (37) और वे लोग जो कि ख़र्च करते हैं अपने माल लोगों के दिखाने को और ईमान नहीं लाते अल्लाह पर और न क़ियामत के दिन पर, और जिसका साथी हुआ शैतान तो वह बहुत बुरा साथी है। (38)

इन आयतों का पीछे से ताल्लुक़

सूरः निसा की तफ़सीर में आप देखते आये हैं कि इस सूरत में बन्दों के हुक़ूक़ का ज़्यादा एहतिमाम किया गया है। सूरत के शुरू से यहाँ तक आम इनसानी हुक़ूक़ की अहमियत का मुख़्तसर तज़किरा फ़रमाने के बाद यतीमों और औरतों के हुक़ूक़ का एहतिमाम और उनमें कोताही पर सज़ा, वईद और इस दुनिया में जो उनके दो कमज़ोर वर्गों यानी बच्चों और औरतों के साथ ज़ुल्म रवा रखा गया और ज़ालिमाना रस्में इख़्तियार की गई उनकी इस्लाह का और फिर विरासत के हुक़ूक़ का बयान आया है। उसके बाद माँ-बाप और दूसरे रिश्तेदारों और ताल्लुक़ वालों, पड़ोसियों और आम इनसानों के हुक़ूक़ का कुछ तफ़सीली बयान आ रहा है। और चूँकि इन हुक़ूक़ को पूरी तरह वही शख़्स अदा कर सकता है जो अल्लाह तआ़ला और रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम और क़ियामत के साथ अ़क़ीदा दुरुस्त रखता हो, तथा कन्जूसी, तकब्बुर और दिखावे से भी बचता हो, इसलिये कि ये चीज़ें भी हुक़ूक़ के अदा करने में रुकावट बनती हैं, इसलिये इन आयतों में तौहीद (अल्लाह को अकेला माबूद मानने) और शौक़ दिलाने व डराने के कुछ मज़ामीन इरशाद फ़रमाये। और शिर्क, क़ियामत के इनकार, रसूल की नाफ़रमानी और कन्जूसी वग़ैरह बुरे अख़्लाक़ की बुराई भी ज़िक्र फ़रमाई।

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

और तुम अल्लाह तआ़ला की इबादत इख़्तियार करो (इसमें तौहीद भी आ गई) और उसके साथ किसी चीज़ को (चाहे वह इनसान हो या ग़ैर-इनसान इबादत में या उनकी ख़ास सिफ़ात में, एतिक़ाद में) शरीक मत करो, और (अपने) माँ-बाप के साथ अच्छा मामला करो, और (दूसरे)

रिश्तेदारों के साथ भी और यतीमों के साथ भी और ग़रीब-ग़ुरबा के साथ भी, और पास वाले पड़ोसी के साथ भी और दूर वाले पड़ोसी के साथ भी, और साथ रहने और उठने-बैठने वाले के साथ भी (चाहे वह मज्लिस हमेशा की हो जैसे लम्बे सफ़र का साथ और किसी जायज़ काम में शिर्कत, या वक़्ती और अस्थायी हो जैसे छोटे सफ़र या इत्तिफ़ाक़ी जलसे में शिर्कत) और राहगीर के साथ भी (चाहे वह तुम्हारा ख़ास मेहमान हो या न हो) और उन (ग़ुलाम-बाँदियों) के साथ भी जो (शरई तौर पर) तुम्हारे मालिकाना क़ब्ज़े में हैं (ग़र्ज़ कि इन सबसे अच्छा मामला करो, जिसकी तफ़सील शरीअ़त ने दूसरे मौक़े पर बतला दी है। और जो लोग इन हुक़ूक़ को अदा नहीं करते अक्सर इसके कई कारण हैं, या तो उनके मिज़ाज में तकब्बुर है कि किसी को ख़ातिर में नहीं लाते, और किसी की तरफ़ तवज्जोह ही नहीं करते, और या उनकी तबीयत में कन्जूसी ग़ालिब है कि किसी को देते दिलाते जान निकलती है, और या उनको रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के साथ एतिक़ाद नहीं कि आपके अहकाम को और हुक़ूक़ के अदा करने के सवाब के वायदों को और हुक़ूक़ के बरबाद करने के अ़ज़ाब की वईदों को सही नहीं समझते, और यह कुफ़्र है। और या उनकी आ़दत नुमाईश और दिखावे की है इसलिये जहाँ दिखावे और नाम का मौक़ा हो वहाँ देते दिलाते हैं चाहे हक़ न हो, और जहाँ नाम और दिखावा न हो वहाँ हिम्मत नहीं होती चाहे हक़ हो, और या उनको सिरे से ख़ुदा तआ़ला ही के साथ अ़क़ीदा नहीं, या वे क़ियामत के क़ायल नहीं, और यह भी कुफ़्र है।

इसलिये इसी तरतीब से जो इन बातों को व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से करते हैं उनका हाल भी सुन लो कि) बेशक अल्लाह तआ़ला ऐसे शख़्सों से मुहब्बत नहीं रखते जो (दिल में) अपने को बड़ा समझते हों, (ज़बान से) शेख़ी की बातें करते हों। जो कि बुख़्ल "यानी कन्जूसी" करते हों और दूसरे लोगों को भी बुख़्ल की तालीम करते हों (चाहे ज़बान से या इस तरह से कि उनको देखकर दूसरे यही तालीम पाते हैं) और वे उस चीज़ को छुपाकर रखते हों जो अल्लाह तआ़ला ने उनको अपने फ़ज़्ल से दी है (इससे मुराद या तो माल व दौलत है जबकि हिफ़ाज़त की मस्लेहत के बजाय महज़ कन्जूसी की वजह से छुपा दे कि हुक़ूक़ वाले उनसे उम्मीद और अपेक्षा ही न करें, या मुराद इल्मे दीन है कि यहूद रिसालत की ख़बरों को छुपाया करते थे। पस कन्जूसी भी आ़म हो जायेगी, तो इसमें कन्जूस और रिसालत के इनकारी दोनों आ गये) और हमने ऐसे नाशुक्रों के लिए (जो माल या रसूल के तशरीफ़ लाने की नेमत के हक़ को न पहचानें) तौहीन वाली सज़ा तैयार कर रखी है। और जो लोग कि अपने मालों को लोगों को दिखाने के लिए ख़र्च करते हैं और अल्लाह तआ़ला पर और आख़िरी दिन (यानी क़ियामत के दिन) पर एतिक़ाद नहीं रखते (उनका भी यही हाल है कि अल्लाह तआ़ला को उनसे मुहब्बत नहीं) और (बात यह है कि) शैतान जिसका साथी हो (जैसे कि इन ज़िक्र हुए लोगों का हुआ है) तो उसका वह बुरा साथी है (कि ऐसा मश्विरा देता है जिसमें परिणाम स्वरूप सख़्त नुक़सान है)।

मआरिफ़ व मसाईल

हुक़ूक़ के बयान से पहले तौहीद का ज़िक्र क्यों?

हुक़ूक़ की तफ़सील से पहले अल्लाह तआ़ला की फ़रमाँबरदारी व इबादत और तौहीद का मज़मून इस तरह इरशाद फ़रमाया गयाः

وَاعْبُدُوا اللّٰهَ وَلَا تُشْرِكُوْا بِهٖ شَيْئًا

यानी "अल्लाह की इबादत करो और उसके साथ किसी को इबादत में शरीक न ठहराओ।"

हुक़ूक़ के बयान से पहले इबादत और तौहीद के मज़मून को ज़िक्र करने में बहुत सी हिक्मतें हैं, जिनमें से एक यह है कि जिस शख़्स को ख़ुदा तआ़ला का ख़ौफ़ और उसके हुक़ूक़ का एहतिमाम न हो तो उससे दुनिया में और किसी के हुक़ूक़ के एहतिमाम (पाबन्दी और अदायेगी) की क्या उम्मीद रखी जा सकती है। बिरादरी और समाज की शर्म या हुकूमत के क़ानून से बचने के लिये हज़ारों राहें ढूँढ लेता है। वह चीज़ जो इनसान को इनसानी हुक़ूक़ के एहतिराम पर हाज़िर व ग़ायब मजबूर करने वाली है वह सिर्फ़ ख़ौफ़े ख़ुदा और तक़्वा है और यह ख़ौफ़ व तक़्वा सिर्फ़ तौहीद ही के ज़रिये हासिल होता है। इसलिये विभिन्न ताल्लुक़ात और रिश्ते वालों के हुक़ूक़ की तफ़सील से पहले अल्लाह तआ़ला की तौहीद व इबादत की याददेहानी मुनासिब थी।

तौहीद के बाद माँ-बाप के हुक़ूक़ का ज़िक्र

इसके बाद तमाम रिश्तेदारों और ताल्लुक़ वालों में सबसे पहले माँ-बाप के हुक़ूक़ का बयान फ़रमाया और अल्लाह तआ़ला ने अपनी इबादत और अपने हुक़ूक़ के साथ ही माँ-बाप के हुक़ूक़ को बयान फ़रमाकर इस तरफ़ भी इशारा कर दिया कि हक़ीक़त और असल के एतिबार से तो सारे एहसानात व इनामात अल्लाह तआ़ला की तरफ़ से हैं लेकिन ज़ाहिरी असबाब के एतिबार से देखा जाये तो अल्लाह तआ़ला के बाद सबसे ज़्यादा एहसानात इनसान पर उसके माँ-बाप के हैं, क्योंकि आ़म असबाब में वही उसके वजूद का सबब हैं, और पैदाईश से लेकर उसके जवान होने तक जितने कठिन मरहले हैं उन सब में बज़ाहिर असबाब माँ बाप ही उसके वजूद और फिर उसकी बक़ा व तरक़्क़ी के ज़ामिन हैं, इसी लिये क़ुरआने करीम में दूसरे मौक़ों पर भी माँ-बाप के हुक़ूक़ को अल्लाह तआ़ला की इबादत व इताअ़त के साथ ही बयान फ़रमाया गया है। एक जगह इरशाद हैः

اَنِ اشْكُرْ لِیْ وَلِوَالِدَيْكَ

"यानी मेरा शुक्र अदा करो और अपने माँ-बाप का शुक्र अदा करो।"

दूसरी जगह इरशाद हैः

وَاِذْاَخَذْنَا مِيْثَاقَ بَنِىْٓ اِسْرَآءِيْلَ لَا تَعْبُدُوْنَ اِلَّا اللّٰهَ وَبِالْوَالِدَيْنِ اِحْسَانًا. (٨٣:٢)

इन दोनों आयतों में माँ-बाप के मामले में यह नहीं फ़रमाया कि उनके हुक़ूक़ अदा करो, या उनकी ख़िदमत करो, बल्कि लफ़्ज़ **एहसान** लाया गया जिसके आ़म मफ़्हूम में यह भी दाख़िल है कि ज़रूरत के मुवाफ़िक़ उनके ख़र्चे में अपना माल ख़र्च करें, और यह भी दाख़िल है कि जैसी ज़रूरत हो उसके मुताबिक़ जिस्मानी ख़िदमात अन्जाम दें। यह भी दाख़िल है कि उनके साथ गुफ़्तगू में सख़्त आवाज़ से या बहुत ज़ोर से न बोलें जिससे उनकी बेअदबी हो, कोई ऐसा कलिमा न कहें जिससे उनके दिल को तकलीफ़ हो, उनके दोस्तों और ताल्लुक़ वालों से भी कोई ऐसा सुलूक न करें जिससे माँ-बाप का दिल दुखे, बल्कि उनको आराम पहुँचाने और ख़ुश रखने के लिये जो सूरतें इख़्तियार करनी पड़ें वो सब करें, यहाँ तक कि अगर माँ-बाप ने औलाद के हुक़ूक़ में कोताही भी की हो तब भी औलाद के लिये बदसुलूकी करने का कोई मौक़ा नहीं है।

हज़रत मुआ़ज़ बिन जबल रज़ियल्लाहु अ़न्हु फ़रमाते हैं कि मुझे रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने दस वसीयतें फ़रमाई थीं। एक यह कि अल्लाह तआ़ला के साथ किसी को शरीक न ठहराओ अगरचे तुम्हें क़त्ल कर दिया जाये या आग में जला दिया जाये, दूसरे यह कि अपने माँ-बाप की नाफ़रमानी या दिल दुखाने वाला काम न करो अगरचे वे यह हुक्म दें कि तुम अपने अहल (घर वालों) व माल को छोड़ दो। (मुस्नद अहमद)

रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के इरशादात में जिस तरह माँ-बाप की इताअ़त और उनके साथ अच्छे सुलूक की ताकीदें आई हैं, इसी तरह इसके बेइन्तिहा फ़ज़ाईल और सवाब के दर्जे भी बयान हुए हैं।

बुख़ारी व मुस्लिम की एक हदीस में है कि आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि जो शख़्स यह चाहे कि उसके रिज़्क़ और उम्र में बरकत हो उसको चाहिये कि सिला-रहमी करे यानी अपने रिश्तेदारों के हुक़ूक़ अदा करे।

तिर्मिज़ी की एक रिवायत में है कि अल्लाह तआ़ला की रज़ा बाप की रज़ा में और अल्लाह तआ़ला की नाराज़ी बाप की नाराज़ी में है।

शुअ़बुल-ईमान में बैहक़ी ने रिवायत किया है कि रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि जो लड़का अपने माँ-बाप का आज्ञाकारी व फ़रमाँबरदार हो जब वह अपने माँ-बाप को इ़ज़्ज़त व मुहब्बत की नज़र से देखता है तो हर नज़र में उसको मक़बूल हज का सवाब मिलता है।

बैहक़ी ही की एक रिवायत में है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि तमाम गुनाहों को अल्लाह तआ़ला माफ़ फ़रमा देते हैं लेकिन जो शख़्स माँ-बाप की नाफ़रमानी और दिल दुखाना करे उसको आख़िरत से पहले दुनिया ही में तरह-तरह की आफ़तों में मुब्तला कर दिया जाता है।

रिश्तेदारों के साथ अच्छा सुलूक

आयत में माँ-बाप के बाद आम ज़विल-क़ुरबा यानी तमाम रिश्तेदारों के साथ अच्छे सुलूक की ताकीद आई है। क़ुरआने करीम की एक जामे और मशहूर आयत में जिसको आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम अक्सर अपने ख़ुतबात (बयानों) के आख़िर में तिलावत फ़रमाया करते थे, इस मज़मून को इस तरह बयान फ़रमाया है:

إِنَّ اللّٰهَ يَأْمُرُ بِالْعَدْلِ وَالْإِحْسَانِ وَإِيتَآئِ ذِي الْقُرْبٰى

यानी "अल्लाह तआ़ला हुक्म देते हैं सब के साथ इन्साफ़ और अच्छे सुलूक का और रिश्तेदारों के हुक़ूक़ अदा करने का।" जिसमें रिश्तेदारों की गुंजाईश के अनुसार माली और जानी ख़िदमत भी दाख़िल है और उनसे मुलाक़ात व ख़बरगीरी भी।

हज़रत सलमान इब्ने आ़मिर रज़ियल्लाहु अ़न्हु फ़रमाते हैं कि रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि सदक़ा आ़म मिस्कीनों फ़क़ीरों को देने में तो सिर्फ़ सदक़े का सवाब मिलता है और अगर अपने ज़ी-रहम रिश्तेदार को दे दिया जाये तो उसमें दो सवाब हैं- एक सदक़े का, दूसरा सिला-रहमी का। यानी रिश्तेदारी के हुक़ूक़ अदा करने का।

(मुस्नद अहमद, नसाई, तिर्मिज़ी)

उक्त आयत में अव्वल माँ-बाप के हुक़ूक़ की ताकीद फ़रमाई फिर आ़म रिश्तेदारों की।

यतीम और मिस्कीन का हक़

तीसरे नम्बर में इरशाद फ़रमायाः

وَالْيَتٰمٰى وَالْمَسٰكِيْنِ

यतीमों और मिस्कीनों के हुक़ूक़ का मुफ़स्सल (विस्तृत) बयान अगरचे सूरत के शुरू में आ चुका है मगर इसकी याददेहानी रिश्तेदारों के तहत फ़रमाकर इस तरफ़ इशारा कर दिया कि लावारिस बच्चों और बेसहारा लोगों की इम्दाद व इआ़नत को भी ऐसा ही ज़रूरी समझें जैसा अपने रिश्तेदारों के लिये करते हैं।

पड़ोसी का हक़

चौथे नम्बर में इरशाद फ़रमायाः

وَالْجَارِ ذِي الْقُرْبٰى

और पाँचवें नम्बर में:

وَالْجَارِ الْجُنُبِ

जार के मायने पड़ोसी के हैं। इस आयत में इसकी दो क़िस्में बयान फ़रमाई हैं एक **जारे ज़िल्क़ुरबा** दूसरे **जारे जुनुब** इन दो क़िस्मों की तफ़सीर व तशरीह में सहाबा किराम रज़ियल्लाहु

अन्हुम के मुख़्तलिफ़ अक़वाल हैं:

आम मुफ़स्सिरीन ने फ़रमाया कि जारे ज़िल्क़ुरबा से मुराद वह पड़ोसी है जो तुम्हारे मकान के क़रीब (मिला हुआ) रहता है और जारे जुनुब से वह पड़ोसी मुराद है जो तुम्हारे मकान से कुछ फ़ासले पर रहता है।

हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने फ़रमाया कि जारे ज़िल्क़ुरबा से वह शख़्स मुराद है जो पड़ोसी भी है और रिश्तेदार भी, इस तरह इसमें दो हक़ जमा हो गये और जारे जुनुब से मुराद वह है जो सिर्फ़ पड़ोसी है रिश्तेदार नहीं, इसलिये उसका दर्जा पहले वाले से बाद में रखा गया।

कुछ मुफ़स्सिरीन हज़रात ने फ़रमाया कि जारे ज़िल्क़ुरबा वह पड़ोसी है जो इस्लामी बिरादरी में दाख़िल और मुसलमान है, और जारे जुनुब से ग़ैर-मुस्लिम पड़ोसी मुराद है।

क़ुरआन के अलफ़ाज़ में इन सब मायनों की गुंजाईश है, और हक़ीक़त के एतिबार से भी दर्जे में फ़र्क़ हो जाना एक माक़ूल और मोतबर चीज़ है। और पड़ोसी के रिश्तेदार या ग़ैर होने के एतिबार से भी और मुस्लिम और ग़ैर-मुस्लिम होने के एतिबार से भी, और इस पर सब का इत्तिफ़ाक़ है कि पड़ोसी चाहे क़रीब हो या दूर, रिश्तेदार हो या ग़ैर, मुस्लिम हो या ग़ैर-मुस्लिम, बहरहाल उसका हक़ है, गुंजाईश और हालात के मुताबिक़ उसकी इमदाद व इआ़नत और ख़बरगीरी लाज़िम है।

अलबत्ता जिसका हक़ पड़ोसी होने के अ़लावा दूसरा भी है वह दूसरे पड़ोसियों से दर्जे में मुक़द्दम (पहले) है। एक हदीस में ख़ुद रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने इसको वाज़ेह फ़रमा दिया। इरशाद फ़रमाया कि "कुछ पड़ोसी वे हैं जिनका सिर्फ़ एक हक़ है, कुछ वे हैं जिनके दो हक़ हैं और कुछ वे जिनके तीन हक़ हैं। एक हक़ वाला पड़ोसी ग़ैर-मुस्लिम है जिससे कोई रिश्तेदारी भी नहीं, दो हक़ वाला पड़ोसी वह है जो पड़ोसी होने के साथ मुसलमान भी है, तीन हक़ वाला पड़ोसी वह है जो पड़ोसी भी है मुसलमान भी और रिश्तेदार भी।" (इब्ने कसीर)

रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का इरशाद है कि हज़रत जिब्राईल हमेशा मुझे पड़ोसी की रियायत व इमदाद की ताकीद करते रहे, यहाँ तक कि मुझे यह गुमान होने लगा कि शायद पड़ोसी को भी रिश्तेदारों की तरह विरासत में शरीक कर दिया जायेगा।

(बुख़ारी व मुस्लिम)

तिर्मिज़ी और मुस्नद अहमद की एक रिवायत में है कि रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि किसी मौहल्ले के लोगों में अल्लाह तआ़ला के नज़दीक सबसे अफ़ज़ल और बेहतर वह शख़्स है जो अपने पड़ोसियों के हक़ में बेहतर हो।

मुस्नद अहमद की एक हदीस में इरशाद है कि एक पड़ोसी को पेट भरकर खाना जायज़ नहीं जबकि उसका पड़ोसी भूखा हो।

साथी और पास बैठने वाले का हक़

छठे नम्बर में इरशाद फ़रमायाः

وَالصَّاحِبِ بِالْجَنْبِ

इसके लफ़्ज़ी मायने "बराबर में बैठने वाले साथी" के हैं, जिसमें सफ़र का साथी भी दाख़िल है जो रेल में, जहाज़ में, बस में, गाड़ी में आपके बराबर में बैठा हो, और वह शख़्स भी दाख़िल है जो किसी आम मज्लिस में आपके बराबर में बैठा हो।

इस्लामी शरीअ़त ने जिस तरह नज़दीक व दूर के मुस्तक़िल के पड़ोसियों के हुक़ूक़ वाजिब फ़रमाये इसी तरह उस शख़्स का भी साथ रहने का हक़ लाज़िम कर दिया जो थोड़ी देर के लिये किसी मज्लिस या सफ़र में आपके बराबर में बैठा हो, जिसमें मुस्लिम व ग़ैर-मुस्लिम और रिश्तेदार व ग़ैर-रिश्तेदार सब बराबर हैं। उसके साथ भी अच्छे सुलूक की हिदायत फ़रमाई जिसका अदना दर्जा यह है कि आपके किसी क़ौल व फ़ेल से उसको तकलीफ़ न पहुँचे, कोई गुफ़्तगू ऐसी न करें जिससे उसका दिल दुखे, कोई काम ऐसा न करें जिससे उसको तकलीफ़ हो जैसे सिग्रेट पीकर उसका धुआँ उसके मुँह की तरफ़ न छोड़ें, पान खाकर पीक उसकी तरफ़ न डालें, इस तरह न बैठें जिससे उसकी जगह तंग हो जाये।

क़ुरआने करीम की इस हिदायत पर लोग अ़मल करने लगें तो रेलवे मुसाफ़िरों के सारे झगड़े ख़त्म हो जायें। हर शख़्स इस पर ग़ौर करे कि मुझे सिर्फ़ एक आदमी की जगह का हक़ है इससे ज़्यादा जगह घेरने का हक़ नहीं, दूसरा कोई अगर क़रीब बैठा है तो इस रेल में उसका भी उतना ही हक़ है जितना मेरा है।

कुछ मुफ़स्सिरीन हज़रात ने फ़रमाया कि बराबर में बैठने वाले में हर वह शख़्स दाख़िल है जो किसी काम और किसी पेशे में आपका शरीक है। कारीगरी, मज़दूरी में, दफ़्तर की नौकरी में, सफ़र में, वतन में। (तफ़सीर रूहुल-मआ़नी)

राहगीर का हक़

सातवें नम्बर में इरशाद फ़रमायाः

وَابْنِ السَّبِيْلِ

यानी राहगीर। इससे मुराद वह शख़्स है जो सफ़र के दौरान आपके पास आ जाये, या आपका मेहमान हो जाये। चूँकि उस अजनबी शख़्स का कोई ताल्लुक़ वाला यहाँ नहीं है तो क़ुरआन ने उसके इस्लामी, बल्कि इनसानी ताल्लुक़ की रियायत करके उसका हक़ भी आप पर लाज़िम कर दिया कि हिम्मत व गुंजाईश के मुताबिक़ उसके साथ अच्छा सुलूक करो।

गुलाम, बाँदी और मुलाज़िमों का हक़

आठवें नम्बर में इरशाद फ़रमायाः

وَمَامَلَكَتْ اَيْمَانُكُمْ

जिससे मुराद मम्लूक ग़ुलाम और बाँदियाँ हैं। उनका भी यह हक़ लाज़िम कर दिया गया कि उनके साथ अच्छे सुलूक का मामला करें, हिम्मत व गुंजाईश के मुवाफ़िक़ खिलाने पिलाने, पहनाने में कोताही न करें और न उनकी ताक़त से ज़्यादा काम उन पर डालें।

अगरचे आयत के अलफ़ाज़ का स्पष्ट मतलब मम्लूक, ग़ुलाम और बादियाँ हैं लेकिन सबब व इल्लत एक होने और नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के इरशादात की बिना पर ये अहकाम नौकरों और मुलाज़िमों को भी शामिल हैं कि उनका भी यही हक़ है कि मुक़र्ररा तन्ख़्वाह और खाना वग़ैरह देने में कन्जूसी और देर न करें और उनकी ताक़त से ज़्यादा उन पर काम न डालें।

हुक़ूक़ में कोताही वही लोग करते हैं जिनके दिलों में घमंड हो

आयत के आख़िर में इरशाद फ़रमायाः

اِنَّ اللّٰهَ لَا يُحِبُّ مَنْ كَانَ مُخْتَالًا فَخُوْرًا.

यानी "अल्लाह तआ़ला ऐसे शख़्स को पसन्द नहीं करते जो घमंडी और दूसरों पर अपनी बड़ाई जताने वाला हो।"

आयत का यह आख़िरी जुमला पिछले तमाम इरशादात का पूरक है, कि पिछले आठ नम्बरों में जिन लोगों के हुक़ूक़ की ताकीद आई है उनमें कोताही वही लोग करते हैं जिनके दिलों में घमंड और फ़ख़्र व ग़ुरूर है। अल्लाह तआ़ला सब मुसलमानों को इससे महफ़ूज़ रखे।

घमंड और जाहिली तफ़ाख़ुर (एक दूसरे पर बड़ाई जताने) की वईद में बहुत सी हदीसें भी बयान हुई हैं:

عَنِ ابْنِ مَسْعُوْدٍ رَضِىَ اللّٰهُ عَنْهُ قَالَ قَالَ رَسُوْلُ اللّٰهِ صَلَّى اللّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ لَا يَدْخُلُ النَّارَ اَحَدٌ فِىْ قَلْبِهٖ مِثْقَالَ حَبَّةٍ مِّنْ خَرْدَلٍ مِّنْ اِيْمَانٍ وَّلَا يَدْخُلُ الْجَنَّةَ اَحَدٌ فِىْ قَلْبِهٖ مِثْقَالَ حَبَّةٍ مِّنْ خَرْدَلٍ مِّنْ كِبْرٍ. (مشکوٰۃ ص ۴۳۳ بحوالہ مسلم)

"हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन मसऊद रज़ियल्लाहु अ़न्हु से रिवायत है वह शख़्स जहन्नम में (हमेशा के लिये) नहीं जायेगा जिसके दिल में राई के दाने के बराबर ईमान हो, और जन्नत में ऐसा कोई शख़्स नहीं जा सकेगा जिसके दिल में राई के दाने के बराबर तकब्बुर (घमंड) हो।"

एक और हदीस जिसमें तकब्बुर की परिभाषा भी बयान हुई यह है:

عَنِ ابْنِ مَسْعُوْدٍ رَضِىَ اللّٰهُ عَنْهُ قَالَ قَالَ رَسُوْلُ اللّٰهِ صَلَّى اللّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ لَا يَدْخُلُ الْجَنَّةَ مَنْ كَانَ فِىْ قَلْبِهٖ مِثْقَالَ ذَرَّةٍ مِّنْ كِبْرٍ فَقَالَ رَجُلٌ اِنَّ الرَّجُلَ يُحِبُّ اَنْ يَّكُوْنَ ثَوْبُهٗ حَسَنًا وَنَعْلُهٗ حَسَنًا، قَالَ اِنَّ اللّٰهَ تَعَالٰى جَمِيْلٌ يُحِبُّ الْجَمَالَ اَلْكِبْرُ بَطَرُ الْحَقِّ وَغَمْطُ النَّاسِ. (مشکوٰۃ ص ۴۳ بحوالہ مسلم)

"हज़रत इब्ने मसऊद रज़ियल्लाहु अन्हु से रिवायत है कि आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया जन्नत में वह शख़्स दाख़िल नहीं हो सकेगा जिसके दिल में ज़र्रा बराबर तकब्बुर हो। मौजूद हज़रात में से एक आदमी ने सवाल किया- लोग चाहते हैं कि उनके कपड़े अच्छे हों उनके जूते अच्छे हों (तो क्या यह भी तकब्बुर में दाख़िल है?) आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि अल्लाह तआला ख़ुद भी जमील हैं और जमाल को पसन्द भी फ़रमाते हैं। तकब्बुर नाम है हक़ (सही बात को) रद्द करने का और लोगों को ज़लील समझने का।"

इसके बाद 'अल्लज़ी-न यब्ख़लू-न........' में बयान है कि जो लोग घमण्डी होते हैं वे वाजिब हुक़ूक़ में भी कन्जूसी करते हैं, अपनी ज़िम्मेदारियों को नहीं समझते और दूसरों को भी अपने क़ौल व अमल से इस बुरी सिफ़त को इख़्तियार करने की तरग़ीब देते हैं।

आयत में बुख़्ल (कन्जूसी) का लफ़्ज़ आया है, जिसका हुक्म आम बोलचाल में माली हुक़ूक़ के अन्दर कोताही करने पर होता है, लेकिन आयत के शाने नुज़ूल से मालूम होता है कि यहाँ बुख़्ल का लफ़्ज़ आम मायने में इस्तेमाल किया गया है, जो माल और इल्म दोनों में बुख़्ल को शामिल है।

हज़रत इब्ने अब्बास रज़ियल्लाहु अन्हु की रिवायत से मालूम होता है कि यह आयत मदीना के यहूद के हक़ में नाज़िल हुई थी, ये लोग बहुत ज़्यादा घमण्डी थे, इन्तिहाई दर्जे के कन्जूस थे। माल ख़र्च करने में भी बुख़्ल (कन्जूसी) करते थे और उस इल्म को भी छुपाते थे जो उन्हें अपनी आसमानी किताबों से हासिल हुआ था। उन किताबों में हुज़ूर सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की बेसत (नबी बनकर तशरीफ़ लाने) की ख़ुशख़बरी थी और आपकी निशानियों का भी ज़िक्र था, लेकिन यहूद ने उन सब का यक़ीन कर लेने के बाद भी बुख़्ल (कन्जूसी) से काम लिया, न ख़ुद उस इल्म के तक़ाज़े पर अमल किया और न दूसरों को बतलाया कि वे अमल करते।

आगे फ़रमाया कि ऐसे लोग जो अल्लाह के दिये हुए माल व दौलत में भी बुख़्ल करते हैं और इल्म व ईमान के मामले में भी बख़ील हैं, ऐसे लोग अल्लाह की नेमत के नाशुक्रे हैं और उनके लिये तौहीन भरा अज़ाब तैयार कर लिया गया है।

इन्फ़ाक़ (ख़र्च करने) की फ़ज़ीलत और बुख़्ल (कन्जूसी) की बुराई के बारे में नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमायाः

عَنْ اَبِی هُرَیْرَةَ ؓ قَالَ: قَالَ رَسُوْلُ اللّٰهِ صَلَّی اللّٰهُ عَلَیْهِ وَسَلَّمَ مَامِنْ یَّوْمٍ یُصْبِحُ الْعِبَادُ فِیْهِ اِلَّا مَلَکَانِ یَنْزِلَانِ فَیَقُوْلُ اَحَدُهُمَا اَللّٰهُمَّ اَعْطِ مُنْفِقًا خَلَفًا وَیَقُوْلُ الْاٰخَرُ اَللّٰهُمَّ اَعْطِ مُمْسِکًا تَلَفًا. (بخاری و مسلم)

"हज़रत अबू हुरैरह रज़ियल्लाहु अन्हु से रिवायत है आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि हर सुबह के वक़्त दो फ़रिश्ते नाज़िल होते हैं, उनमें से एक यह कहता है ऐ अल्लाह! भलाई के रास्ते में ख़र्च करने वाले को अच्छा बदला अता फ़रमा, और दूसरा कहता है ऐ अल्लाह! बख़ील को (माल व दौलत की) तबाही दे।"

عَنْ اَسْمَاءَ ؓ قَالَتْ: قَالَ رَسُوْلُ اللّٰهِ صَلَّی اللّٰهُ عَلَیْهِ وَسَلَّمَ اَنْفِقِیْ وَ لَا تُحْصِیْ فَیُحْصِی اللّٰهُ عَلَیْكِ وَلَا تُوْعِیْ

فَيُوْعِى اللّٰهُ عَلَيْكِ وَارْضَخِيْ مَا اسْتَطَعْتِ. (بخاری و مسلم)

“हज़रत अस्मा रज़ियल्लाहु अन्हा से रिवायत है आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया ऐ अस्मा! ख़ैर के रास्ते में ख़र्च किया कर और गिन-गिनकर न दे वरना अल्लाह भी तुम्हारे हक़ में गिनना शुरू कर देगा, और ख़र्च करने से बचने के लिये बहुत ज़्यादा हिफ़ाज़त न बरतो वरना अल्लाह तआ़ला भी हिफ़ाज़त करना शुरू कर देगा, और कम से कम जो तुझसे हो सके उसके देने से गुरेज़ न कर।”

عَنْ اَبِیْ هُرَيْرَةَ قَالَ: قَالَ رَسُوْلُ اللّٰهِ صَلَّى اللّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ اَلسَّخِيُّ قَرِيْبٌ مِّنَ اللّٰهِ قَرِيْبٌ مِّنَ الْجَنَّةِ قَرِيْبٌ مِّنَ النَّاسِ، بَعِيْدٌ مِّنَ النَّارِ. وَالْبَخِيْلُ بَعِيْدٌ مِّنَ اللّٰهِ بَعِيْدٌ مِّنَ الْجَنَّةِ بَعِيْدٌ مِّنَ النَّاسِ قَرِيْبٌ مِّنَ النَّارِ. وَالْجَاهِلُ سَخِيٌّ اَحَبُّ اِلَى اللّٰهِ مِنْ عَابِدٍ بَخِيْلٍ. (ترمذی)

“हज़रत अबू हुरैरह रज़ियल्लाहु अन्हु से रिवायत है कि नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि सख़ी अल्लाह तआ़ला से भी क़रीब है जन्नत से भी क़रीब है और लोगों की नज़रों में भी पसन्दीदा है, और जहन्नम की आग से दूर है। और बख़ील अल्लाह से भी दूर है जन्नत से भी दूर है लोगों से भी दूर है और आग से क़रीब है। और जाहिल आदमी जो सख़ावत करता हो और फ़राईज़ को अदा करने और हराम कामों से बचने का एहतिमाम करता हो उस कन्जूस से बेहतर है जो इबादत-गुज़ार हो।”

وَعَنْ اَبِیْ سَعِيْدٍ قَالَ: قَالَ رَسُوْلُ اللّٰهِ صَلَّى اللّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ خَصْلَتَانِ لَا تَجْتَمِعَانِ فِیْ مُؤْمِنٍ، اَلْبُخْلُ وَسُوْءُ الْخُلُقِ. (ترمذی)

“हज़रत अबू सईद रज़ियल्लाहु अन्हु से रिवायत है कि नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया- दो बातें किसी मोमिन में जमा नहीं होतीं, बुख़्ल और बद-अख़्लाक़ी।”

‘वल्लज़ी-न युन्फ़िक़ू-न.......’ से घमंडी लोगों की एक दूसरी सिफ़त बतला दी कि ये लोग अल्लाह के रास्ते में ख़ुद भी ख़र्च नहीं करते और दूसरों को भी बुख़्ल (कन्जूसी) की तरग़ीब देते हैं, अलबत्ता लोगों के दिखाने को ख़र्च करते रहते हैं। और चूँकि ये लोग अल्लाह और आख़िरत के दिन पर ईमान नहीं रखते इसलिये अल्लाह की रज़ा और आख़िरत के सवाब की नीयत से ख़र्च करने का सवाल ही पैदा नहीं होता, ऐसे लोग तो शैतान के साथी हैं, लिहाज़ा इसका अन्जाम भी वही होगा जो उनके साथी शैतान का होगा।

इस आयत से मालूम हुआ कि जिस तरह वाजिब और ज़रूरी हुक़ूक़ में कोताही करना बुख़्ल (कन्जूसी) करना ऐब की बात है इसी तरह लोगों को दिखाने के लिये और बेमक़सद जगहों में ख़र्च करना भी बहुत बुरा है। वे लोग जो ख़ालिस अल्लाह तआ़ला के लिये नहीं बल्कि लोगों के दिखाने को नेकी करते हैं उनका वह अ़मल अल्लाह के नज़दीक मक़बूल नहीं होता, और हदीस में इसे शिर्क क़रार दिया गया है।

عَنْ اَبِیْ هُرَيْرَةَ قَالَ: قَالَ رَسُوْلُ اللّٰهِ صَلَّى اللّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ قَالَ اللّٰهُ تَعَالٰى اَنَا اَغْنَى الشُّرَكَآءِ عَنِ الشِّرْكِ مَنْ

عَمِلَ عَمَلًا اَشْرَكَ فِيْهِ مَعِيْ غَيْرِيْ تَرَكْتُهٗ وَشِرْكَهٗ.

"हज़रत अबू हुरैरह रज़ियल्लाहु अ़न्हु से रिवायत है आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया- अल्लाह तआ़ला फ़रमाते हैं कि मैं शिर्क से बिल्कुल बेनियाज़ हूँ जो शख़्स कोई नेक अ़मल करता है और उसमें मेरे साथ किसी दूसरे को भी शरीक ठहराता है तो मैं उस अ़मल को शरीक ही के लिये छोड़ देता हूँ और उस अ़मल करने वाले को भी छोड़ देता हूँ।"

وَعَنْ شَدَّادِ بْنِ اَوْسٍ قَالَ سَمِعْتُ رَسُوْلَ اللّٰهِ صَلَّى اللّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ مَنْ صَلّٰى يُرَائِيْ فَقَدْ اَشْرَكَ وَمَنْ صَامَ يُرَائِيْ فَقَدْ اَشْرَكَ وَمَنْ تَصَدَّقَ يُرَائِيْ فَقَدْ اَشْرَكَ. (احمد بحواله مشكوة)

"हज़रत शद्दाद बिन औस रज़ियल्लाहु अ़न्हु से रिवायत है, फ़रमाते हैं कि मैंने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को यह फ़रमाते हुए सुना- जिसने नमाज़ पढ़ी दिखाने के लिये तो उसने शिर्क किया, जिसने रोज़ा रखा दिखाने के लिये तो उसने शिर्क किया और जिसने कोई सदका दिया दिखाने के लिये तो उसने शिर्क किया।"

عَنْ مَحْمُوْدِ بْنِ لَبِيْدٍ اَنَّ النَّبِيَّ صَلَّى اللّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ قَالَ اِنَّ اَخْوَفَ مَا اَخَافُ عَلَيْكُمُ الشِّرْكُ الْاَصْغَرُ قَالُوْا يَارَسُوْلَ اللّٰهِ وَمَا الشِّرْكُ الْاَصْغَرُ، قَالَ الرِّيَآءُ. (احمد بحواله مشكوة)

"मुहम्मद बिन लबीद रज़ियल्लाहु अ़न्हु से रिवायत है कि नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया- तुम्हारे मुताल्लिक़ मुझे बहुत ज़्यादा अन्देशा शिर्के असग़र (छोटे शिर्क) का है। सहाबा रज़ियल्लाहु अ़न्हुम ने पूछा शिर्के असग़र क्या है? आपने फ़रमाया रिया (दिखावा)।"

और बैहक़ी की रिवायत में यह इज़ाफ़ा भी है कि क़ियामत के दिन जब नेक आमाल का सवाब तक़सीम होगा तो अल्लाह तआ़ला उन रिया (दिखावा) करने वालों से फ़रमायेंगेः

"उन लोगों के पास चले जाओ जिनको दिखाने के लिये तुम दुनिया में नेक अ़मल करते थे और देख लो कि क्या उनके पास तुम्हारे आमाल का सवाब और उसकी जज़ा है।"

وَمَا ذَا عَلَيْهِمْ لَوْ اٰمَنُوْا بِاللّٰهِ وَالْيَوْمِ الْاٰخِرِ وَاَنْفَقُوْا مِمَّا رَزَقَهُمُ اللّٰهُ ؕ وَكَانَ اللّٰهُ بِهِمْ عَلِيْمًا ۝ اِنَّ اللّٰهَ لَا يَظْلِمُ مِثْقَالَ ذَرَّةٍ ۚ وَاِنْ تَكُ حَسَنَةً يُّضٰعِفْهَا وَيُؤْتِ مِنْ لَّدُنْهُ اَجْرًا عَظِيْمًا ۝ فَكَيْفَ اِذَا جِئْنَا مِنْ كُلِّ اُمَّةٍ بِشَهِيْدٍ وَّجِئْنَا بِكَ عَلٰى هٰٓؤُلَآءِ شَهِيْدًا ۝ يَوْمَئِذٍ يَّوَدُّ الَّذِيْنَ كَفَرُوْا وَعَصَوُا الرَّسُوْلَ لَوْ تُسَوّٰى بِهِمُ الْاَرْضُ ؕ وَلَا يَكْتُمُوْنَ اللّٰهَ حَدِيْثًا ۝

व मा ज़ा अ़लैहिम् लौ आमनू बिल्लाहि वल्यौमिल्-आख़िरि व अन्फ़क़ू मिम्मा र-ज़-क़हुमुल्लाहु, व कानल्लाहु बिहिम् अ़लीमा (39)	और क्या नुक़सान था उनका अगर ईमान लाते अल्लाह पर और क़ियामत के दिन पर और ख़र्च करते अल्लाह के दिये हुए में से, और अल्लाह को उनकी ख़ूब ख़बर है। (39) बेशक अल्लाह हक़ नहीं रखता

इन्नल्ला-ह ला यज़्लिमु मिस्क़ा-ल ज़र्रतिन् व इन् तकु ह-स-नतंय्-युज़ाअिफ़्हा व युअ्ति मिल्लदुन्हु अज्रन् अज़ीमा (40) फ़कै-फ़ इज़ा जिअ्ना मिन् कुल्लि उम्मतिम् बि-शहीदिंव्-व जिअ्ना बि-क अ़ला हा-उला-इ शहीदा (41) यौमइज़िंय्-यवद्दुल्लज़ी-न क-फ़रू व अ़-सवुर्-रसू-ल लौ तुसव्वा बिहिमुल्-अर्ज़ु, व ला यक्तुमूनल्ला-ह हदीसा (42) ✿	किसी का एक ज़र्रा बराबर, और अगर नेकी हो तो उसको दूना (डबल) कर देता है, और देता है अपने पास से बड़ा सवाब। (40) फिर क्या हाल होगा जब बुलायेंगे हम हर उम्मत में से अहवाल कहने वाला और बुलायेंगे तुझको उन लोगों पर अहवाल बताने वाला। (41) उस दिन आरज़ू करेंगे वे लोग जो काफ़िर हुए थे और रसूल की नाफ़रमानी की थी कि बराबर हो जायें ज़मीन के, और न छुपा सकेंगे अल्लाह से कोई बात। (42) ✿

इन आयतों के मज़मून का पीछे से ताल्लुक़

पहले गुज़री आयतों में ख़ुदा के इनकार, आख़िरत के इनकार और कन्जूसी वग़ैरह की मज़म्मत (बुराई) मज़कूर थी और इन आयतों में ख़ुदा व आख़िरत पर ईमान और अल्लाह के रास्ते में ख़र्च करने की तरग़ीब मज़कूर है, और आख़िर में हश्र के दिन अल्लाह के सामने खड़े होने का बयान करके उन लोगों को बुरे अन्जाम से डराया गया है जो ईमान नहीं लाते और न नेक अ़मल करते हैं।

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

और उनपर क्या मुसीबत नाज़िल हो जाएगी अगर ये लोग अल्लाह तआ़ला पर और आख़िरी दिन (यानी क़ियामत) पर ईमान ले आएँ। और अल्लाह तआ़ला ने जो उनको दिया है उसमें से कुछ (इख़्लास के साथ) ख़र्च करते रहा करें (यानी कुछ भी नुक़सान नहीं हर तरह नफ़ा ही नफ़ा है) और अल्लाह तआ़ला उन (में के नेक व बद) को ख़ूब जानते हैं (पस ईमान और ख़र्च करने पर सवाब देंगे और कुफ़्र वग़ैरह पर अ़ज़ाब)। बिला शुब्हा अल्लाह तआ़ला एक ज़र्रा बराबर भी ज़ुल्म न करेंगे (कि किसी का सवाब मार लें या बेवजह अ़ज़ाब देने लगें जो कि ज़ाहिरी ज़ुल्म है) और (बल्कि वह तो ऐसे रहीम हैं कि) अगर एक नेकी होगी तो उसको कई गुना (करके सवाब देंगे जैसा कि दूसरी आयत में वायदा मज़कूर है) और (इस वायदा किये गये सवाब के अ़लावा) अपने पास से (अ़मल के बदले के बिना बतौर ईनाम और) और बड़ा अज्र (अलग) देंगे। सो उस वक़्त भी क्या हाल होगा जबकि हम हर-हर उम्मत में से एक-एक गवाह को हाज़िर करेंगे और आपको उन लोगों पर (जिनका आप से साबक़ा हुआ है) गवाही देने के

लिए सामने लाएँगे (यानी जिन लोगों ने ख़ुदाई अहकाम दुनिया में न माने होंगे जो-जो मामलात अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम की मौजूदगी में पेश आये थे सब ज़ाहिर कर देंगे, इस गवाही के बाद उन मुख़ालिफ़ों पर जुर्म साबित होकर सज़ा दी जायेगी। ऊपर फ़रमाया था कि उस वक़्त क्या हाल होगा, आगे उस हाल को ख़ुद बयान फ़रमाते हैं कि) उस दिन (यह हाल होगा कि) जिन लोगों ने (दुनिया में) कुफ़्र किया होगा और रसूल का कहना न माना होगा वे इस बात की तमन्ना करेंगे कि काश! (इस वक़्त) हम ज़मीन के पेवन्द हो जाएँ (ताकि इस रुस्वाई और आफ़त से महफ़ूज़ रहें) और (गवाही के अ़लावा ख़ुद वे इक़रारी मुजरिम भी होंगे क्योंकि) अल्लाह तआ़ला से किसी बात को (जो उनसे दुनिया में सादिर हुई थी) छुपा न सकेंगे, (पस दोनों तौर पर जुर्म की क़रारदाद उन पर लगा दी जायेगी)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

पहली आयत में फ़रमायाः

وَمَاذَا عَلَيْهِمْ لَوْ اٰمَنُوْا بِاللّٰهِ

यानी इनको क्या नुक़सान पहुँच जाये और क्या मुसीबत पेश आ जाये अगर ये लोग अल्लाह पर और आख़िरत पर ईमान लायें और अल्लाह के दिये हुए माल में से ख़र्च करें। ये सब आसान काम हैं, इनके इख़्तियार करने में कुछ भी तकलीफ़ नहीं, फिर क्यों नाफ़रमान बनकर आख़िरत की तबाही अपने सर ले रहे हैं।

इसके बाद फ़रमायाः

اِنَّ اللّٰهَ لَا يَظْلِمُ مِثْقَالَ ذَرَّةٍ

यानी अल्लाह तआ़ला किसी के अच्छे आमाल का सवाब और जज़ा-ए-ख़ैर में ज़र्रा बराबर कमी नहीं फ़रमाते बल्कि अपनी तरफ़ से उसमें और इज़ाफ़ा फ़रमा देते हैं और आख़िरत में कई गुना सवाब बढ़ाकर नवाज़ेंगे, और अपनी तरफ़ से बड़ा सवाब अ़ता फ़रमायेंगे।

अल्लाह तआ़ला के यहाँ सवाब का कम से कम मेयार यह है कि एक नेकी की दस नेकियाँ लिखी जाती हैं और इसके अ़लावा मुख़्तलिफ़ बहानों से इज़ाफ़ा दर इज़ाफ़ा होता रहता है। हदीस की कुछ रिवायतों से मालूम होता है कि कुछ आमाल ऐसे हैं जिनका सवाब बीस लाख गुना तक ज़्यादा हो जाता है, और अल्लाह की ज़ात तो करीम ज़ात है वह अपनी बेपायाँ रहमत से इतना बढ़ाकर दे देते हैं कि हिसाब व शुमार में भी नहीं आता। अल्लाह तआ़ला जिसके लिये चाहते हैं इज़ाफ़ा फ़रमाते हैं। उस ज़बरदस्त अज्र का क्या तसव्वुर किया जा सकता है जो बारगाहे रब्बुल-इ़ज़्ज़त से मिलता है। वह जिसको चाहे अ़ज़ीम अज्र अ़ता फ़रमाता है।

आयत में जो लफ़्ज़ 'ज़र्रतिन्' आया है उसका एक तर्जुमा तो परिचित ही है जो पहले गुज़र चुका और कुछ हज़रात ने कहा है कि ज़र्रतुन् लाल रंग की सबसे छोटी चींवटी को कहा जाता है, अ़रब के लोग कम वज़न और हक़ीर होने में इसको मिसाल के तौर पर पेश किया करते थे।

فَكَيْفَ إِذَا جِئْنَا مِنْ كُلِّ أُمَّةٍ بِشَهِيْدٍ

से मैदाने आख़िरत को ध्यान में रखने की तरफ़ तवज्जोह दिलाई गई है और क़ुरैश के काफ़िरों को डाँट-डपट भी मक़सूद है।

उन लोगों का क्या हाल होगा जब मैदाने हश्र में हर-हर उम्मत का नबी अपनी उम्मत के अच्छे-बुरे आमाल पर गवाह के तौर पर पेश होगा, और आप भी अपनी उम्मत पर गवाह बनकर हाज़िर होंगे, और विशेष तौर पर इन काफ़िरों व मुश्रिकों के मुताल्लिक़ ख़ुदाई अ़दालत में गवाही देंगे कि इन्होंने खुले-खुले मोजिज़े (ख़ुदाई निशानियाँ) देखकर भी रसूल को झुठलाया और आपकी वह्दानियत (एक माबूद होने) और मेरी रिसालत पर ईमान न लाये।

बुख़ारी शरीफ़ में रिवायत है, हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने अ़ब्दुल्लाह बिन मसऊद रज़ियल्लाहु अ़न्हु से फ़रमाया कि मुझे क़ुरआन सुनाओ, हज़रत अ़ब्दुल्लाह रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने अ़र्ज़ किया आप मुझसे सुनना चाहते हैं हालाँकि क़ुरआने करीम आप ही पर नाज़िल हुआ है। आपने फ़रमाया हाँ पढ़ो! मैंने सूरः निसा की तिलावत शुरू कर दी और जबः

فَكَيْفَ إِذَا جِئْنَا مِنْ كُلِّ أُمَّةٍ بِشَهِيْدٍ

पर पहुँचा तो आपने फ़रमाया कि अब बस करो, और जब मैंने आपकी तरफ़ नज़र उठाकर देखा तो आपकी मुबारक आँखों से आँसू बह रहे थे।

अ़ल्लामा क़ुस्तलानी लिखते हैं कि हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को इस आयत से आख़िरत का मन्ज़र सामने आ गया और अपनी उम्मत के नाक़िस अ़मल वाले और बेअ़मल लोगों के बारे में ख़्याल आया इसलिये आँसू मुबारक जारी हो गये।

फ़ायदाः कुछ हज़रात ने फ़रमाया कि 'हा-उला-इ' (ये लोग) का इशारा ज़माना-ए-रिसालत में मौजूद काफ़िरों व मुनाफ़िक़ों की तरफ़ है, और कुछ हज़रात फ़रमाते हैं कि क़ियामत तक पूरी उम्मत की तरफ़ इशारा है। इसलिये कि कुछ रिवायतों से मालूम होता है कि आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की उम्मत के आमाल आप पर पेश होते रहते हैं।

बहरहाल इससे मालूम हुआ कि पिछली उम्मतों के अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम अपनी अपनी उम्मत पर बतौर गवाह पेश होंगे और आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम भी अपनी उम्मत के आमाल की गवाही देंगे। क़ुरआने करीम के इस अन्दाज़ से मालूम होता है कि आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के बाद कोई नबी आने वाला नहीं है जो अपनी किसी उम्मत के मुताल्लिक़ गवाही दे, वरना क़ुरआने करीम में उसका और उसकी गवाही का भी ज़िक्र होता, इस एतिबार से यह आयत ख़त्मे-नुबुव्वत की दलील भी है।

يَوْمَئِذٍ يَّوَدُّ الَّذِيْنَ كَفَرُوْا

में मैदाने आख़िरत में काफ़िरों की बदहाली का ज़िक्र आया है, कि ये लोग क़ियामत के दिन तमन्ना करेंगे कि काश हम ज़मीन का पेवन्द बन गये होते, काश ज़मीन फट जाती और हम उसमें धंसकर मिट्टी बन जाते और इस वक़्त की पूछगछ और अ़ज़ाब व हिसाब से निजात पा

जाते।

मैदाने हश्र में जब काफ़िर देखेंगे कि तमाम जानवर एक दूसरे के मज़ालिम (अत्याचारों और ज़्यादतियों) का बदला लेने-देने के बाद मिट्टी बना दिये गये तो उनको हसरत होगी और तमन्ना करेंगे कि काश! हम भी मिट्टी हो जाते जैसा कि सूरः नबा में फ़रमायाः

وَيَقُوْلُ الْكٰفِرُ يٰلَيْتَنِىْ كُنْتُ تُرٰبًا

आख़िर में फ़रमायाः

وَلَا يَكْتُمُوْنَ اللّٰهَ حَدِيْثًا

यानी ये काफ़िर अपने अक़ीदों व आमाल से मुताल्लिक़ कुछ भी पोशीदा न रख सकेंगे उनके अपने हाथ-पैर इक़रार करेंगे, अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम गवाही देंगे और आमाल नामों में भी सब कुछ मौजूद होगा।

हज़रत इब्ने अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु से पूछा गया कि क़ुरआने करीम में एक जगह यह इरशाद है कि काफ़िर लोग कुछ भी न छुपायेंगे और दूसरी जगह यह है कि वे क़सम खाकर कहेंगेः

وَاللّٰهِ رَبِّنَا مَا كُنَّا مُشْرِكِيْنَ. (٦:٢٣)

कि हमने शिर्क नहीं किया। बज़ाहिर इन दो आयतों में टकराव है? तो आपने जवाब दिया कि होगा यूँ कि जब शुरू में काफ़िर ये देखेंगे कि मुसलमानों के सिवा जन्नत में कोई जाता ही नहीं तो वे ये तय कर लेंगे कि हमें अपने शिर्क और बुरे आमाल का इनकार ही कर देना चाहिये, हो सकता है कि इस तरह हम निजात पा जायें। लेकिन इस इनकार के बाद ख़ुद उनके आज़ा (बदनी अंग) उनके ख़िलाफ़ गवाही देंगे और छुपाने का जो मक़सद उन्होंने बनाया था उसमें बिल्कुल नाकाम हो जायेंगे। उस वक़्त सब इक़रार कर लेंगे, इसलिये फ़रमायाः

وَلَا يَكْتُمُوْنَ اللّٰهَ حَدِيْثًا.

कि वे कुछ भी नहीं छुपा सकेंगे।

يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا لَا تَقْرَبُوا الصَّلٰوةَ وَاَنْتُمْ سُكٰرٰى حَتّٰى تَعْلَمُوْا مَا تَقُوْلُوْنَ وَلَا جُنُبًا اِلَّا عَابِرِىْ سَبِيْلٍ حَتّٰى تَغْتَسِلُوْا، وَاِنْ كُنْتُمْ مَّرْضٰٓى اَوْ عَلٰى سَفَرٍ اَوْ جَآءَ اَحَدٌ مِّنْكُمْ مِّنَ الْغَآئِطِ اَوْ لٰمَسْتُمُ النِّسَآءَ فَلَمْ تَجِدُوْا مَآءً فَتَيَمَّمُوْا صَعِيْدًا طَيِّبًا فَامْسَحُوْا بِوُجُوْهِكُمْ وَاَيْدِيْكُمْ، اِنَّ اللّٰهَ كَانَ عَفُوًّا غَفُوْرًا ۝

या अय्युहल्लज़ी-न आमनू ला तक़्रबुस्सला-त व अन्तुम् सुकारा	ऐ ईमान वालो! नज़दीक न जाओ नमाज़ के जिस वक़्त कि तुम नशे में हो, यहाँ तक कि समझने लगो जो कहते हो, और

हत्ता तअ्लमू मा तक़ूलू-न व ला जुनुबन् इल्ला आ़बिरी सबीलिन् हत्ता तग़्तसिलू, व इन् कुन्तुम् मर्ज़ा औ अ़ला स-फ़रिन् औ जा-अ अ-हदुम् मिन्कुम् मिनल्ग़ा-इ तिऔ लामस्तुमुन्निसा-अ फ़-लम् तजिदू माअन् फ़-तयम्ममू सअ़ीदन् तय्यिबन् फ़म्सहू बिवुजूहिकुम् व ऐदीकुम्, इन्नल्ला-ह का-न अ़फ़ुव्वन् ग़फ़ूरा (43)	न उस वक़्त कि ग़ुस्ल की हाजत हो मगर राह चलते हुए यहाँ तक कि ग़ुस्ल कर लो, और अगर तुम मरीज़ हो या सफ़र में, या आया है तुम में से कोई शख़्स ज़रूरत की जगह से (यानी पेशाब-पाख़ाने की ज़रूरत से फ़ारिग़ होकर), या पास गये हों औरतों के फिर न मिला तुमको पानी तो इरादा करो पाक ज़मीन का, फिर मलो अपने मुँह को और हाथों को, बेशक अल्लाह है माफ़ करने वाला बख़्शने वाला। (43)

इस आयत के उतरने का सबब व मौक़ा

तिर्मिज़ी में हज़रत अ़ली रज़ियल्लाहु अ़न्हु का वाक़िआ़ मज़कूर है कि शराब की हुर्मत (हराम होने) से पहले एक दफ़ा हज़रत अ़ब्दुर्रहमान बिन औ़फ़ रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने कुछ सहाबा किराम की दावत कर रखी थी जिसमें शराब पीने का भी इन्तिज़ाम था। जब ये हज़रात खा पी चुके तो मग़रिब की नमाज़ का वक़्त हो गया और हज़रत अ़ली रज़ियल्लाहु अ़न्हु को इमाम बना दिया गया। उनसे नमाज़ में 'सूरः काफ़िरून' की तिलावत में नशे की वजह से सख़्त ग़लती हो गई, इस पर यह आयत नाज़िल हुई जिसमें तंबीह कर दी गई कि नशे की हालत में नमाज़ न पढ़ी जाये।

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

ऐ ईमान वालो! तुम नमाज़ के पास भी ऐसी हालत में मत जाओ (यानी ऐसी हालत में नमाज़ मत पढ़ो) कि तुम नशे में हो, यहाँ तक कि तुम समझने लगो कि मुँह से क्या कहते हो (उस वक़्त नमाज़ मत पढ़ो। मतलब यह है कि नमाज़ अदा करना तो अपने वक़्तों में फ़र्ज़ है और यह हालत नमाज़ अदा करने के मनाफ़ी (विपरीत) है, पस नमाज़ के वक़्तों में नशे का इस्तेमाल मत करो, कभी तुम्हारे मुँह से नमाज़ में कोई कलिमा ग़लत न निकल जाये) और नापाकी की हालत में भी (यानी जबकि ग़ुस्ल फ़र्ज़ हो) तुम्हारे मुसाफ़िर होने की हालत को छोड़कर (कि उसका हुक्म आगे आता है, नमाज़ के पास मत जाओ) यहाँ तक कि ग़ुस्ल कर लो (यानी पाक होने का ग़ुस्ल नमाज़ की शर्तों में से है, और यह हुक्म यानी नहाने की हाजत होने के बाद बिना ग़ुस्ल किये नमाज़ न पढ़ना उ़ज़्र न होने की हालत में है) और अगर तुम (कुछ उ़ज़्र

रखते हो जैसे) बीमार हो (और पानी का इस्तेमाल नुक़सानदेह हो जैसा कि आगे आता है) या सफ़र की हालत में हो (जो ऊपर इस हुक्म से अलग रखा गया है कि इसका हुक्म भी आगे आयेगा, यानी और पानी नहीं मिलता जैसा आगे आता है तो इन दोनों कारणों से तयम्मुम की इजाज़त आती है और तयम्मुम के जायज़ होने में कुछ इन्हीं ज़िक्र हुए उज़्रों यानी सफ़र व बीमारी के साथ ख़ास नहीं बल्कि चाहे तुमको ख़ास ये उज़्र हों) या (यह कि उज़्र ख़ास न हों यानी न तुम मरीज़ हो न मुसाफ़िर बल्कि वैसे ही किसी का वुज़ू या ग़ुस्ल टूट जाये इस तरह से कि जैसे) तुम में से कोई शख़्स (पेशाब या पाख़ाने के) इस्तिन्जे से "यानी पेशाब पाख़ाने की ज़रूरत से फ़ारिग़ होकर" आया हो (जिससे वुज़ू टूट जाता है), या तुमने बीवियों से क़ुर्बत की हो (जिससे ग़ुस्ल टूट गया हो और) फिर (इन सारी सूरतों में चाहे मर्ज़ व सफ़र के उज़्र की सूरत हो या न मर्ज़ हो न सफ़र वैसे वुज़ू और ग़ुस्ल की ज़रूरत हो) तुमको पानी (के इस्तेमाल का मौक़ा) न मिले (चाहे तो इस वजह से कि बीमारी में उससे नुक़सान होता हो चाहे इसलिये कि वहाँ पानी ही मौजूद नहीं, चाहे सफ़र हो या न हो) तो (इन सब हालतों में) तुम पाक ज़मीन (पर हाथ मारकर उस) से तयम्मुम कर लिया करो (यानी ज़मीन पर दो बार हाथ मारकर) अपने चेहरों और हाथों पर (हाथ) फेर लिया करो, बिला शुब्हा अल्लाह तआ़ला बड़े माफ़ करने वाले, बड़े बख़्शने वाले हैं (और जिसकी ऐसी आ़दत होती है वह आसान हुक्म दिया करता है इसलिये अल्लाह तआ़ला ने ऐसे-ऐसे आसान हुक्म दे दिये कि तुमको तक्लीफ़ व तंगी न हो)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

शराब के हराम होने का हुक्म धीरे-धीरे होना

इस्लामी शरीअ़त को हक़ तआ़ला ने एक ख़ास इम्तियाज़ (विशेषता) यह दिया है कि उसके अहकाम को सहल और आसान कर दिया है। इसी सिलसिले की एक कड़ी यह है कि शराब पीना अ़रब की पुरानी आ़दत थी और पूरी क़ौम इस आ़दत में मुब्तला थी सिवाय कुछ मख़्सूस हज़रात के, जिनकी तबीयत ही को अल्लाह तआ़ला ने ऐसा सलीम बना दिया था कि वे इस ख़बीस चीज़ के पास कभी नहीं गये, जैसे आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम, कि नुबुव्वत से पहले भी आपने कभी शराब को हाथ नहीं लगाया और यह भी सब जानते हैं कि आ़दत किसी चीज़ की भी हो उसका छोड़ना इनसान पर बड़ा मुश्किल होता है, ख़ुसूसन शराब और नशे की आ़दत तो इनसान की तबीयत पर ऐसा क़ब्ज़ा कर लेती है कि उससे निकलना आदमी अपने लिये मौत समझने लगता है।

अल्लाह तआ़ला के नज़दीक शराब पीना और नशा करना हराम था और इस्लाम लाने के बाद मुसलमानों को इससे बचाना मक़सूद व मतलूब था, मगर एक दम से इसको हराम कर दिया जाता तो लोगों पर इस हुक्म की तामील सख़्त मुश्किल हो जाती, इसलिये शुरू में इस पर

आंशिक पाबन्दी आयद की गई और इसके ख़राब असरात पर चेताकर ज़ेहनों को इसके छोड़ने पर आमादा किया गया। चुनाँचे शुरू में इस आयत में सिर्फ़ यह हुक्म हुआ कि नशे की हालत में नमाज़ के पास न जाओ, जिसका हासिल यह था कि नमाज़ के वक़्त नमाज़ का अदा करना तो फ़र्ज़ है, नमाज़ के वक़्तों में शराब इस्तेमाल न की जाये, जिससे मुसलमानों ने यह महसूस कर लिया कि यह ऐसी ख़राब चीज़ है जो इनसान के लिये नमाज़ से रुकावट है। बहुत से हज़रात ने तो उसी वक़्त से इसके छोड़ने का एहतिमाम कर लिया और दूसरे हज़रात भी इसकी ख़राबी और बुराई को सोचने लगे, आख़िरकार सूरः मायदा की आयत 90 में शराब के नापाक और हराम होने का क़तई हुक्म आ गया और हर हाल में शराब पीना हराम हो गया।

मसला: जिस तरह नशे की हालत में नमाज़ हराम है, कुछ मुफ़स्सिरीन ने फ़रमाया कि जब नींद का ग़लबा ऐसा हो कि आदमी अपनी ज़बान पर क़ाबू न रखे तो उस हालत में भी नमाज़ पढ़ना दुरुस्त नहीं, जैसा कि एक हदीस में इरशाद है:

إِذَا نَعَسَ أَحَدُكُمْ فِي الصَّلٰوةِ فَلْيَرْقُدْ حَتّٰى يَذْهَبَ عَنْهُ النَّوْمُ فَإِنَّهُ لَا يَدْرِي لَعَلَّهُ يَسْتَغْفِرُ فَيَسُبَّ نَفْسَهُ. (قرطبی)

"अगर तुममें से किसी को नमाज़ में ऊँघ आने लगे तो उसे कुछ देर के लिये सो जाना चाहिये ताकि नींद का असर ख़त्म हो जाये, वरना नींद की हालत में वह समझ नहीं सकेगा और बजाय दुआ व इस्तिग़फ़ार के अपने आपको गाली देने लग जायेगा।"

तयम्मुम का हुक्म एक इनाम है जो इस उम्मत की ख़ुसूसियत है

अल्लाह तआ़ला का कितना बड़ा एहसान है कि वुज़ू व तहारत के लिये ऐसी चीज़ को पानी के क़ायम-मक़ाम (जगह लेने वाली) कर दिया जिसका हासिल करना पानी से ज़्यादा आसान है और ज़ाहिर है कि ज़मीन और मिट्टी हर जगह मौजूद है। हदीस में है कि यह सहूलत सिर्फ़ उम्मते मुहम्मदिया को अ़ता की गई है। तयम्मुम के ज़रूरी मसाईल फ़िक़्ह (मसाईल) की किताबों और उर्दू के रिसालों में अधिकता के साथ छपे हुए हैं उनको देख लिया जाये।

أَلَمْ تَرَ إِلَى الَّذِينَ أُوتُوا نَصِيبًا مِّنَ الْكِتٰبِ يَشْتَرُونَ الضَّلٰلَةَ وَيُرِيدُونَ أَن تَضِلُّوا السَّبِيلَ ۝ وَاللّٰهُ أَعْلَمُ بِأَعْدَائِكُمْ ۚ وَكَفٰى بِاللّٰهِ وَلِيًّا ۙ وَكَفٰى بِاللّٰهِ نَصِيرًا ۝ مِّنَ الَّذِينَ هَادُوا يُحَرِّفُونَ الْكَلِمَ عَن مَّوَاضِعِهِ وَيَقُولُونَ سَمِعْنَا وَعَصَيْنَا وَاسْمَعْ غَيْرَ مُسْمَعٍ وَرَاعِنَا لَيًّا بِأَلْسِنَتِهِمْ وَطَعْنًا فِي الدِّينِ ۚ وَلَوْ أَنَّهُمْ قَالُوا سَمِعْنَا وَأَطَعْنَا وَاسْمَعْ وَانظُرْنَا لَكَانَ خَيْرًا لَّهُمْ وَأَقْوَمَ وَلٰكِن لَّعَنَهُمُ اللّٰهُ بِكُفْرِهِمْ فَلَا يُؤْمِنُونَ إِلَّا قَلِيلًا ۝

अलम् त-र इलल्लज़ी-न ऊतू नसीबम् मिनल् किताबि यश्तरूनज़्ज़ला-ल-त व युरीदू-न अन् तज़िल्लुस्सबील (44) वल्लाहु अअ्लमु बि-अअ्दा-इकुम्, व कफ़ा बिल्लाहि वलिय्यंव्-व कफ़ा बिल्लाहि नसीरा (45) मिनल्लज़ी-न हादू युहर्रिफ़ूनल्-कलि-म अम्मवाज़िअिही व यक़ूलू-न समिअ्ना व असैना वस्मअ् ग़ै-र मुस्मअिंव्-व राअिना लय्यम् बि-अल्सिनतिहिम् व तअ्नन् फ़िद्दीनि, व लौ अन्नहुम् क़ालू समिअ्ना व अ-तअ्ना वस्मअ् वन्ज़ुर्ना लका-न ख़ैरल्लहुम् व अक़्व-म व लाकिल्-ल-अ-नहुमुल्लाहु बिकुफ़्रिहिम् फ़ला युअ्मिनू-न इल्ला क़लीला (46)	क्या तूने न देखा उनको जिनको मिला है कुछ हिस्सा किताब से, ख़रीद करते हैं गुमराही और चाहते हैं कि तुम भी बहक जाओ राह से। (44) और अल्लाह ख़ूब जानता है तुम्हारे दुश्मनों को, और अल्लाह काफ़ी है हिमायती और अल्लाह काफ़ी है मददगार। (45) बाज़े लोग यहूदी फेरते हैं बात को उसके ठिकाने (असल स्थान) से और कहते हैं कि हमने सुना और न माना, और कहते हैं कि सुन न सुनाया जाईयो, और कहते हैं 'राअिना' मोड़कर अपनी ज़बान को, और ऐब लगाने को दीन में, और अगर वे कहते कि हमने सुना और माना और सुन और हम पर नज़र कर तो बेहतर होता उनके हक़ में और दुरुस्त, लेकिन लानत की उन पर अल्लाह ने उनके कुफ़्र के सबब, सो वे ईमान नहीं लाते मगर बहुत कम। (46)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

(ऐ मुख़ातब!) क्या तूने उन लोगों को नहीं देखा (यानी देखने के क़ाबिल हैं देखो तो ताज्जुब करो) जिनको (अल्लाह की) किताब (यानी तौरात के इल्म) का एक बड़ा हिस्सा मिला है (यानी तौरात का इल्म रखते हैं इसके बावजूद कि) वे लोग गुमराही (यानी कुफ़्र) को इख़्तियार कर रहे हैं और (ख़ुद तो गुमराह हुए ही थे मगर वे) यूँ चाहते हैं कि तुम (भी सही) रास्ते से (अलग होकर) बेराह हो जाओ (यानी तरह-तरह की तदबीरें इसकी करते हैं जैसा कि तीसरे पारे के आख़िर और चौथे के शुरू में कुछ ज़िक्र हो भी चुका है)। और (तुमको अगर उन लोगों की अब तक ख़बर न हो तो क्या हुआ) अल्लाह तआ़ला (तो) तुम्हारे (उन) दुश्मनों को ख़ूब जानते हैं (इसलिये तुमको बतला दिया, सो तुम उनसे बचते रहो) और (उनका हाल मुख़ालफ़त का

सुनकर ज़्यादा फ़िक्र में न पड़ जाना, क्योंकि) अल्लाह तआ़ला (तुम्हारा) काफ़ी साथी है (कि तुम्हारी मस्लेहतों की रियायत रखेगा) और अल्लाह तआ़ला (तुम्हारे लिये) काफ़ी हिमायती है (कि उनके नुक़सान पहुँचाने से तुम्हारी हिफ़ाज़त रखेगा। और) ये लोग (जिनका ज़िक्र हो चुका है) जो यहूदियों में से हैं (और उनका गुमराही को इख़्तियार करना जो ऊपर आ चुका है यह है कि अल्लाह के) कलाम (यानी तौरात) को उसके मौक़ों (और स्थान) से (लफ़्ज़ी तौर पर या मानवी तौर पर) दूसरी तरफ़ फेर देते हैं। और (एक गुमराही उनकी जिसमें धोखे से दूसरे सीधे-सादे शख़्स का फंस जाना भी मुम्किन है, यह है कि वे रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से बातचीत करते वक़्त) ये कलिमात कहते हैं- (जो आगे बयान होते हैं, इन कलिमात के दो मायने हैं एक अच्छे और एक बुरे, वे लोग बुरा मतलब लेते थे और दूसरों पर ज़ाहिर करते थे कि हम अच्छे मतलब से कहते हैं। और इससे किसी मुसलमान को धोखे में आकर बाज़े ऐसे ही कलिमात से हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से ख़िताब करना असंभव न था, चुनाँचे सूरः ब-क़रह के रुकूअ़ 13 आयत 104 में मोमिनों को लफ़्ज़ राअ़िना से मनाही फ़रमाई गई है। पस इस एतिबार से यहूद का इन कलिमात को कहना एक तरह से दूसरों को गुमराह करना भी है, अगरचे लफ़्ज़ी एतिबार ही से हो, पस इसमें:

يُرِيْدُوْنَ اَنْ تَضِلُّوا السَّبِيْلَ

(वे चाहते हैं कि तुम भी राह से बहक जाओ) का लफ़्ज़ जो कि ऊपर आया है, बयान भी हो गया जैसा कि:

مِنَ الَّذِيْنَ هَادُوْا

में बयान था:

اَلَّذِيْنَ اُوْتُوْا نَصِيْبًا

का, और:

يُحَرِّفُوْنَ

में बयान था:

يَشْتَرُوْنَ

का। उन कलिमात में से एक यह है:

سَمِعْنَا وَعَصَيْنَا

इसका तर्जुमा तो यह है कि "हमने सुन लिया और माना नहीं" इसका अच्छा मतलब तो यह है कि "आपका इरशाद हमने सुन लिया और किसी आपके मुख़ालिफ़ का क़ौल जो कि हमको बहकाता था नहीं माना" और बुरा मतलब ज़ाहिर है कि हमने आपकी बात को सुन तो लिया मगर अ़मल न करेंगे) और (दूसरा कलिमा यह है) इस्मअ़् ग़ै-र मुस्मअ़िन् (इसका लफ़्ज़ी तर्जुमा यह है कि तुम हमारी बात सुनो और ख़ुदा करे तुमको कोई बात सुनाई न जाये। इसका अच्छा मतलब तो यह कि तुमको कोई मुख़ालिफ़ और रंज देने वाली बात न सुनाई जाये बल्कि

आपका ऐसा रुतबा रहे कि जो बात फ़रमायें सब उसके जवाब में मुवाफ़िक़ ही बात आप सल्ल. को सुनायें, और बुरा मतलब यह है कि तुमको कोई मुवाफ़िक़ और ख़ुशी देने वाली बात न सुनाई जाये, बल्कि आप जो बात कहें उसका जवाब मुख़ालिफ़ ही आपके कान में पड़े)।

और (तीसरा कलिमा यह है) राअ़िना (इसके दोनों अच्छे और बुरे मतलब सूरः ब-क़रह में गुज़र चुके हैं। अच्छे मायने तो यह हैं कि हमारी रियायत कीजिये, और बुरे मायने यहूद की लुग़त में गाली के हैं। ग़र्ज़ कि इन कलिमात को) इस तौर पर (कहते हैं) कि अपनी ज़बानों को (सम्मान के लहजे से अपमान के लहजे की तरफ़) फेरकर और (दिल से) दीन में ताना मारने (और अपमान ही) की नीयत से, (वजह यह है कि नबी का मज़ाक़ उड़ाना और ताना मारना यह दीन का ही मज़ाक़ उड़ाना और उस पर चोट करना है) और अगर ये लोग (बजाय दो मायने देने वाले अलफ़ाज़ के) ये कलिमात कहते, (बजाय **समिअ़्ना** व **अ़सैना** के) **समिअ़्ना** व **अतअ़्ना** (जिसके मायने यह हैं कि हमने सुन लिया और मान लिया) और (बजाय **इस्मअ़् ग़ै-र मुस्मअ़िन्** के सिर्फ़) **इस्मअ़्** (जिसके मायने ख़ाली यह हैं कि आप सुन लीजिये) और (बजाय **राअ़िना** के) **उन्ज़ुरना** (जिसके मायने यह हैं कि हमारी मस्लेहत पर नज़र फ़रमाईये, और ये कलिमात शरारत के मायनों से पाक हैं, तो अगर ये कलिमात कहते) तो यह बात उनके लिए बेहतर (और फ़ायदे वाली भी) होती और (हक़ीक़त में भी) मौक़े की बात थी। मगर (उन्होंने तो ऐसे नफ़े और मौक़े की बात कही ही नहीं, बल्कि वही बेहूदा बात बकते रहे, इसलिये उनको यह तकलीफ़ पहुँची कि) उनको ख़ुदा तआ़ला ने उनके कुफ़्र के सबब (जिसमें ये कलिमात भी आ गये और उनकी दूसरी सब कुफ़्रिया बातें व हरकतें दाख़िल हो गयीं, पस इन सब कुफ़्रिया बातों के सबब अल्लाह तआ़ला ने उनको) अपनी (ख़ास) रहमत से दूर फेंक दिया, अब वे ईमान न लाएँगे मगर थोड़े-से आदमी (इस वजह से कि वे ऐसी हरकतों से दूर रहे, वे ख़ास रहमत से दूर होने के इस हुक्म से अलग हैं, और वे ईमान भी ले आये जैसे हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन सलाम वग़ैरह)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

इन आयतों के मज़मून का पीछे से ताल्लुक़

पिछली आयतों में तक़वे के मौक़ों का बयान था जिसमें ज़्यादातर ज़िक्र आपसी मामलात का था, बीच में इबादत के कुछ अहकाम नमाज़ और संबन्धित चीज़ों के ज़िक्र कर दिये गये, जो इनसान में ख़ुदा का ख़ौफ़ और आख़िरत की फ़िक्र पैदा करते और मामलात के सही होने को आसान कर देते हैं। मज़कूरा आयतों से मुख़ालिफ़ों के साथ मामलात का ज़िक्र फ़रमाया गया है, जिसमें यहूद की शरारत का इलाज और मुसलमानों को अलफ़ाज़ व उनवान में भी अदब की रियायत की हिदायत व तालीम की गई है।

يٰۤاَيُّهَا الَّذِيْنَ اُوْتُوا الْكِتٰبَ اٰمِنُوْا بِمَا نَزَّلْنَا مُصَدِّقًا لِّمَا مَعَكُمْ مِّنْ قَبْلِ اَنْ نَّطْمِسَ وُجُوْهًا فَنَرُدَّهَا عَلٰۤى اَدْبَارِهَاۤ اَوْ نَلْعَنَهُمْ كَمَا لَعَنَّاۤ اَصْحٰبَ السَّبْتِ ؕ وَكَانَ اَمْرُ اللّٰهِ مَفْعُوْلًا ۝

या अय्युहल्लज़ी-न ऊतुल्-किता-ब आमिनू बिमा नज़्ज़ल्ना मुसद्दिक़ल्लिमा म-अकुम् मिन् क़ब्लि अन्नतूमि-स वुजूहन् फ़-नरुद्दहा अला अद्बारिहा औ नल्अ-नहुम् कमा ल-अन्ना अस्हाबस्सब्ति, व का-न अम्रुल्लाहि मफ़्अूला (47)	ऐ किताब वालो! ईमान लाओ उस पर जो हमने नाज़िल किया, तस्दीक़ करता है उस किताब की जो तुम्हारे पास है इससे पहले कि हम मिटा डालें बहुत से चेहरों को, फिर उलट दें उनको पीठ की तरफ़ या लानत करें उन पर जैसे हमने लानत की हफ़्ते (शनिवार) के दिन वालों पर, और अल्लाह का हुक्म तो होकर ही रहता है। (47)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

ऐ वे लोगो! जो किताब (तौरात) दिये गये हो, तुम इस किताब (यानी क़ुरआन) पर ईमान लाओ जिसको हमने नाज़िल फ़रमाया है (और तुमको इस पर ईमान लाने से वहशत न होनी चाहिये क्योंकि हमने इसको) ऐसी हालत पर (नाज़िल फ़रमाया) कि वह सच बतलाती है उस किताब को जो तुम्हारे पास है (यानी तुम्हारी असल किताब के लिये वह पुष्टि करने वाली है, बाक़ी रद्दोबदल किया गया हिस्सा इससे अलग है, सो तुम क़ुरआन पर) इस (ग़ैर-यक़ीनी मामले के होने) से पहले-पहले (ईमान ले आओ) कि हम (तुम्हारे) चेहरों (पर के नक़्श व निगार यानी आँख-नाक वग़ैरह) को बिल्कुल मिटा डालें और उन (चेहरों) को उनकी उल्टी तरफ़ (यानी गुद्दी) की तरह (सफ़ा चट) बना दें, या उन (ईमान न लाने वालों) पर हम ऐसी (ख़ास अन्दाज़ की) लानत करें जैसी लानत उन हफ़्ते वालों पर की थी (जो यहूद में गुज़र चुके हैं, जिनका ज़िक्र सूरः ब-क़रह में आ चुका है, यानी उनकी तरह इनको भी बन्दर की शक्ल में बना दें) और अल्लाह तआला का (जो) हुक्म (सादिर हो जाता है वह) पूरा ही होकर रहता है (सो अल्लाह तआला तुम्हारे ईमान न लाने पर अगर चेहरों को बिगाड़ने का हुक्म कर देंगे फिर यह ज़रूरी हो जायेगा, लिहाज़ा तुमको डरना चाहिये और ईमान ले आना चाहिये)।

मआरिफ़ व मसाईल

फ़ायदा नम्बर 1. अल्लाह तआला के क़ौल "फ़-नरुद्दहा अला अदबारिहा" (उलट दें उनको पीठ की तरफ़), उलटने में दोनों संभावना और गुंजाईश हैं कि चेहरे के नक़्श व निगार को मिटाकर पूरे चेहरे को पीठ की तरफ़ उलट दें, और यह भी हो सकता है कि चेहरे को गुद्दी की तरह सपाट कर दें, यानी चेहरे को गुद्दी की तरफ़ न फेरें बल्कि गुद्दी के जैसा सपाट और साफ़ कर दें। (तफ़सीरे मज़हरी, रूहुल-मआनी)

फ़ायदा नम्बर 2. यहाँ यह सवाल पैदा होता है कि यह मिटाना और चेहरे बदलना कब

हुआ? बाज़ ने कहा कि यह अ़ज़ाब क़ियामत से पहले यहूद पर होगा, बाज़ ने कहा यह अ़ज़ाब इसलिये वाक़े नहीं हुआ कि उनमें से कुछ लोग ईमान ले आये थे।

हज़रत हकीमुल-उम्मत मौलाना थानवी रहमतुल्लाहि अ़लैहि फ़रमाते हैं कि मेरे नज़दीक सिरे से यह सवाल ही पैदा नहीं होता, क्योंकि क़ुरआने करीम में कोई लफ़्ज़ ऐसा नहीं है जिससे यह मालूम हो कि अगर ईमान न लाओगे तो चेहरों के बिगड़ने और मिटने का अ़ज़ाब ज़रूर वाक़े होगा, बल्कि संभावना और एहतिमाल है। यानी अगर उनके जुर्म को देखा जाये तो वे इस सज़ा के पात्र व हक़दार हैं, और अगर अ़ज़ाब न दें तो यह अल्लाह की रहमत है।

إِنَّ اللَّهَ لَا يَغْفِرُ أَنْ يُشْرَكَ بِهِ وَيَغْفِرُ مَا دُونَ ذَٰلِكَ لِمَنْ يَشَاءُ ۚ وَمَنْ يُشْرِكْ بِاللَّهِ فَقَدِ افْتَرَىٰ إِثْمًا عَظِيمًا ﴿٤٨﴾ أَلَمْ تَرَ إِلَى الَّذِينَ يُزَكُّونَ أَنْفُسَهُمْ ۚ بَلِ اللَّهُ يُزَكِّي مَنْ يَشَاءُ وَلَا يُظْلَمُونَ فَتِيلًا ﴿٤٩﴾ انْظُرْ كَيْفَ يَفْتَرُونَ عَلَى اللَّهِ الْكَذِبَ ۖ وَكَفَىٰ بِهِ إِثْمًا مُبِينًا ﴿٥٠﴾

इन्नल्ला-ह ला यग़्फ़िरु अंय्युश्र-क बिही व यग़्फ़िरु मा दू-न ज़ालि-क लिमंय्यशा-उ व मंय्युश्रिक् बिल्लाहि फ़-क़दिफ़्तरा इस्मन् अ़ज़ीमा (48) अलम् त-र इलल्लज़ी-न युज़क्कू-न अन्फ़ु सहुम, बलिल्लाहु युज़क्की मंय्यशा-उ व ला युज़्लमू-न फ़तीला (49) उन्ज़ुर् कै-फ़ यफ़्तरू-न अ़लल्लाहिल्-कज़ि-ब, व कफ़ा बिही इस्मम् मुबीना (50) ✿	बेशक अल्लाह नहीं बख़्शता उसको जो उसका शरीक करे और बख़्शता है इससे नीचे के गुनाह जिसके चाहे, और जिसने शरीक ठहराया अल्लाह का उसने बड़ा तूफ़ान बाँधा। (48) क्या तूने न देखा उनको जो अपने आपको पाकीज़ा कहते हैं बल्कि अल्लाह ही पाकीज़ा करता है जिसको चाहे, और उन पर ज़ुल्म न होगा धागे बराबर। (49) देख! कैसा बाँधते हैं अल्लाह पर झूठ और काफ़ी है यही खुला गुनाह। (50) ✿

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

बेशक अल्लाह तआ़ला इस बात को (सज़ा देकर भी) न बख़्शेंगे कि उनके साथ किसी को शरीक क़रार दिया जाये (बल्कि हमेशा हमेशा की सज़ा में मुब्तला रखेंगे) और इसके सिवा और जितने गुनाह हैं (चाहे छोटे हों या बड़े) जिसके लिए मन्ज़ूर होगा (बिना सज़ा दिये) वो गुनाह बख़्श देंगे (अलबत्ता अगर वह मुश्रिक मुसलमान हो जाये तो फिर मुश्रिक ही न रहा अब वह हमेशा की सज़ा भी न रहेगी)। और (वजह इस शिर्क के न बख़्शने की यह है कि) जो शख़्स अल्लाह तआ़ला के साथ (किसी को) शरीक ठहराता है वह बड़े जुर्म का करने वाला हुआ (जो

अपने ज़बरदस्त होने की वजह से क़ाबिले मग़फ़िरत नहीं)।

(ऐ मुख़ातब!) क्या तूने उन लोगों को नहीं देखा (यानी ताज्जुब के क़ाबिल हैं) जो अपने को मुक़द्दस "यानी पाकीज़ा और नेक" बतलाते हैं (उनके बतलाने से कुछ नहीं होता) बल्कि अल्लाह तआला जिसको चाहें मुक़द्दस बना दें (यह अलबत्ता क़ाबिले एतिबार है और अल्लाह तआला क़ुरआन में मोमिन को मुक़द्दस (पवित्र) बतला चुके हैं, जैसे सूरः अअ़्ला में 'अश्क़ा' यानी काफ़िर के मुक़ाबले में मोमिन के बारे में फ़रमाया 'क़द् अफ़्ल-ह मन् तज़क्का'। पस वही मुक़द्दस होगा न कि कुफ़्र करने वाले जैसे यहूद हैं) और (इन यहूदियों को क़ियामत में इस झूठे दावे का जिसका सबब कुफ़्र को ईमान समझना है जो सज़ा होगी उस सज़ा में) उन पर धागे के बराबर भी ज़ुल्म न होगा (यानी वह सज़ा उनके जुर्म से ज़्यादा नहीं है, बल्कि ऐसे जुर्म पर ऐसी ही सज़ा होनी चाहिये। ज़रा) तू देख (इस दावे में) ये लोग अल्लाह तआला पर कैसी झूठी तोहमत लगाते हैं (क्योंकि जब वे बावजूद कुफ़्र के अल्लाह के यहाँ मक़बूल होने के दावेदार हैं तो इससे साफ़ लाज़िम आता है कि कुफ़्र अल्लाह के यहाँ पसन्दीदा है, हालाँकि यह ख़ालिस तोहमत है, इसलिये कि तमाम शरीअ़तों में अल्लाह तआला ने इसकी वज़ाहत फ़रमा दी है कि कुफ़्र हमारे नज़दीक सख़्त नापसन्द और मरदूद है) और यही बात (कि ख़ुदा पर तोहमत लगाई जाये) खुला मुजरिम होने के लिए काफ़ी है (फिर क्या ऐसी खुली बड़ी बात पर ऐसी सज़ा कुछ ज़ुल्म व ज़्यादती है?)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

शिर्क की परिभाषा और उसकी चन्द सूरतें

अल्लाह तआ़ला का क़ौल है:

إِنَّ اللّٰهَ لَا يَغْفِرُ أَنْ يُّشْرَكَ بِهٖ.

अल्लाह तआ़ला की ज़ात और सिफ़ात के बारे में जो अ़क़ीदे हैं इस तरह का कोई अ़क़ीदा किसी मख़्लूक़ के लिये रखना यह शिर्क है। इसकी कुछ तफ़सीलात ये हैं:

इल्म में शरीक ठहराना

यानी किसी बुज़ुर्ग या पीर के साथ यह एतिक़ाद रखना कि हमारे सब हाल की उसको हर वक़्त ख़बर है। नजूमी, पण्डित से ग़ैब की ख़बरें मालूम करना या किसी बुज़ुर्ग के कलाम में फ़ाल देखकर उसको यक़ीनी समझना, या किसी को दूर से पुकारना और यह समझना कि उसको ख़बर हो गई, या किसी के नाम का रोज़ा रखना।

इख़्तियार चलाने में शरीक ठहराना

यानी किसी को नफ़े या नुक़सान का मुख़्तार समझना, किसी से मुरादें माँगना, रोज़ी और औलाद माँगना।

इबादत में शरीक ठहराना

किसी को सज्दा करना, किसी के नाम का जानवर छोड़ना, चढ़ावा चढ़ाना, किसी के नाम की मन्नत मानना, किसी की क़ब्र या मकान का तवाफ़ करना, ख़ुदा के हुक्म के मुक़ाबले में किसी दूसरे के क़ौल या रस्म को तरजीह देना, किसी के रू-ब-रू रुकूअ़ की तरह झुकना, किसी के नाम पर जानवर ज़िबह करना, दुनिया के कारोबार को सितारों की तासीर से समझना और किसी महीने को मन्हूस समझना वग़ैरह।

अपनी डींगें मारना और ऐबों से पाक होने का दावा जायज़ नहीं

अल्लाह तआ़ला का क़ौल हैः

اَلَمْ تَرَ اِلَى الَّذِيْنَ يُزَكُّوْنَ اَنْفُسَهُمْ

यहूद अपने आपको मुक़द्दस (पवित्र) बतलाते थे, जिस पर अल्लाह तआ़ला ने इस आयत में उनकी मज़म्मत (बुराई) करते हुए फ़रमाया कि ज़रा उन लोगों को देखो जो अपनी पाकी बयान कर रहे हैं, उन पर ताज्जुब करना चाहिये।

इससे मालूम हुआ कि किसी को अपनी या दूसरों की पाकी बयान करना जायज़ नहीं है, यह मनाही तीन वजह से हैः

1. अपनी तारीफ़ का सबब अक्सर तकब्बुर होता है, तो हक़ीक़त में मनाही तकब्बुर से हुई।

2. यह कि ख़ात्मे का हाल अल्लाह को मालूम है कि तक़्वे व तहारत पर होगा या नहीं इसलिये अपने आपको मुक़द्दस बतलाना अल्लाह के ख़ौफ़ के ख़िलाफ़ है। चुनाँचे एक रिवायत में हज़रत ज़ैनब बिन्ते अबी सलमा रज़ियल्लाहु अ़न्हा फ़रमाती हैं कि रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने मुझसे पूछा कि तुम्हारा नाम क्या है? उस वक़्त चूँकि मेरा नाम बर्रा था (जिसके मायने हैं गुनाहों से पाक) मैंने वही बतलाया, तो आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमायाः

لَا تُزَكُّوْا اَنْفُسَكُمْ، اَللّٰهُ اَعْلَمُ بِاَهْلِ الْبِرِّ مِنْكُمْ، سَمُّوْهَا زَيْنَبَ. (رواه مسلم بحواله مشكوٰة)

"यानी तुम अपने आपकी गुनाहों से पाकी बयान न करो क्योंकि यह इल्म सिर्फ़ अल्लाह ही को है कि तुममें से कौन पाक है, फिर बर्रा के बजाय आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने ज़ैनब नाम रखा।" (तफ़सीरे मज़हरी)

3. मनाही की तीसरी वजह यह है कि बहुत सी बार इस दावे से लोगों को यह वहम होने लगता है कि यह आदमी अल्लाह के यहाँ इसलिये मक़बूल है कि यह तमाम कमियों और ऐबों से पाक है, हालाँकि यह झूठ है, क्योंकि बहुत से ऐब बन्दे में मौजूद होते हैं। (बयानुल-क़ुरआन)

मसलाः अगर उक्त कारण और वुजूहात न हों तो अल्लाह की नेमत के इज़हार के तौर पर अपनी सिफ़त (कोई ख़ूबी या कमाल) बयान करने की इजाज़त है। (बयानुल-क़ुरआन)

أَلَمْ تَرَ إِلَى الَّذِينَ أُوتُوا نَصِيبًا مِّنَ الْكِتَابِ يُؤْمِنُونَ بِالْجِبْتِ وَالطَّاغُوتِ وَيَقُولُونَ لِلَّذِينَ كَفَرُوا هَٰؤُلَاءِ أَهْدَىٰ مِنَ الَّذِينَ آمَنُوا سَبِيلًا ۝ أُولَٰئِكَ الَّذِينَ لَعَنَهُمُ اللَّهُ ۖ وَمَن يَلْعَنِ اللَّهُ فَلَن تَجِدَ لَهُ نَصِيرًا ۝

अलम् त-र इलल्लज़ी-न ऊतू नसीबम् मिनल्-किताबि युअ्मिनू-न बिल्-जिब्ति वत्तागूति व यकूलू-न लिल्लज़ी-न क-फ़रू हाउला-इ अह्दा मिनल्लज़ी-न आमनू सबीला (51) उला-इकल्लज़ी-न ल-अ-नहुमुल्लाहु, व मंय्यल्अ़निल्लाहु फ़-लन् तजि-द लहू नसीरा (52)	**क्या तूने न देखा उनको जिनको मिला है कुछ हिस्सा किताब का, जो मानते हैं बुतों को और शैतान को और कहते हैं काफ़िरों को कि ये लोग ज़्यादा सही रास्ते पर हैं मुसलमानों से। (51) ये वही हैं जिन पर लानत की है अल्लाह ने और जिस पर लानत करे अल्लाह न पायेगा तू उसका कोई मददगार। (52)**

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

(ऐ मुख़ातब!) क्या तूने उन लोगों को नहीं देखा जिनको (अल्लाह की) किताब (यानी तौरात के इल्म) का एक हिस्सा मिला है (फिर बावजूद इसके) वे बुत और शैतान को मानते हैं (क्योंकि मुश्रिकों का दीन बुतपरस्ती और शैतान की पैरवी था, जब ऐसे दीन को अच्छा बतलाया तो बुत और शैतान की तस्दीक़ लाज़िम आई) और ये लोग (यानी अहले किताब) काफ़िरों (यानी मुश्रिकों) के बारे में कहते हैं कि ये लोग उन मुसलमानों के मुक़ाबले में ज़्यादा सही रास्ते पर हैं (यह तो उन्होंने खुलकर ही कहा था) ये लोग (जिन्होंने कुफ़्र के तरीक़े को इस्लामी तरीक़े से अफ़ज़ल बतलाया) वे हैं जिनको ख़ुदा तआ़ला ने मलऊन बना दिया है (इसी मलऊन होने का तो असर है कि ऐसे बेबाक होकर कुफ़्रिया कलिमे बक रहे हैं) और ख़ुदा तआ़ला जिसको मलऊन बना दे उसका (अ़ज़ाब के वक़्त) कोई हिमायती न पाओगे (मतलब यह है कि इस पर उनको आख़िरत में या दुनिया में भी सख़्त सज़ा होगी, चुनाँचे दुनिया में बाज़े क़त्ल, बाज़े क़ैद, बाज़े रियाया हुए और आख़िरत में जो होने वाला है वही होगा)।

इन आयतों का पीछे से संबन्ध

पिछली आयतः

أَلَمْ تَرَ إِلَى الَّذِينَ أُوتُوا نَصِيبًا مِّنَ الْكِتَابِ يَشْتَرُونَ الضَّلَالَةَ......... الخ

से यहूद की बदी और बुरी ख़स्लतों का ज़िक्र चल रहा है, इन आयतों का ताल्लुक़ भी उन्हीं की बुराईयों के ज़िक्र से है।

मआरिफ़ व मसाईल

"अल-जिब्त वत्तागूत" से क्या मुराद है?

ऊपर की आयत नम्बर 51 में दो लफ़्ज़ 'अल-जिब्त' और 'अत्तागूत' का ज़िक्र किया गया है। इनसे मुराद क्या है? मुफ़स्सिरीन के इस बारे में कई क़ौल हैं। हज़रत इब्ने अ़ब्बास, हज़रत इब्ने ज़ुबैर और हज़रत अबुल-आ़लिया रज़ियल्लाहु अ़न्हुम फ़रमाते हैं कि "जिब्त" हब्श की लुग़त में साहिर (जादूगर) को कहते हैं और "तागूत" से मुराद काहिन (जिन्नात वग़ैरह के ज़रिये हासिल करके ग़ैब की ख़बरें बताने वाला) है।

हज़रत उमर रज़ियल्लाहु अ़न्हु फ़रमाते हैं कि "जिब्त" से मुराद जादू है और "तागूत" से मुराद शैतान है। हज़रत मालिक बिन अनस रज़ियल्लाहु अ़न्हु से मन्क़ूल है कि अल्लाह के सिवा जिन चीज़ों की इबादत की जाती है उन सब को तागूत कहा जाता है।

इमाम क़ुर्तुबी रहमतुल्लाहि अ़लैहि फ़रमाते हैं कि मालिक बिन अनस रज़ियल्लाहु अ़न्हु का क़ौल ज़्यादा पसन्दीदा है, क्योंकि इसका सुबूत क़ुरआन से भी होता है। इरशाद है:

اَنِ اعْبُدُوا اللّٰهَ وَاجْتَنِبُوا الطَّاغُوْتَ

लेकिन इन अनेक अक़वाल में कोई टकराव नहीं है, इसलिये सब ही मुराद लिये जा सकते हैं। इस तरह कि असल में जिब्त तो बुत ही का नाम था लेकिन बाद में इसका इस्तेमाल अल्लाह के सिवा और दूसरी इबादत की जाने वाली (पूज्य) चीज़ों पर भी होने लगा।

(तफ़सीर रूहुल-मआ़नी)

उक्त आयतों का शाने नुज़ूल

हज़रत इब्ने अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु से रिवायत है कि यहूदियों के सरदार हुयि बिन अख़्तब और कअ़ब बिन अशरफ़ अपनी एक जमाअ़त को जंगे-उहुद के बाद लेकर मक्का में क़ुरैश के साथ मिलने आये। यहूद का सरदार कअ़ब बिन अशरफ़, अबू सुफ़ियान के पास आया और उसने हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के ख़िलाफ़ उनके साथ सहयोग करने का वायदा किया। मक्का वालों ने कअ़ब बिन अशरफ़ से कहा तुम एक धोखा देने वाली क़ौम हो अगर तुम वाक़ई अपने क़ौल में सच्चे हो तो हमारे इन दो बुतों (जिब्त और तागूत) के सामने सज्दा करो। चुनाँचे उसने क़ुरैश को मुत्मईन करने के लिये ऐसा ही किया। उसके बाद कअ़ब ने क़ुरैश से कहा कि तीस आदमी तुम में से और तीस हम में से सामने आयें ताकि रब्बे काबा के साथ इस चीज़ का अ़हद करें कि हम सब मिलकर मुहम्मद (सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम) के ख़िलाफ़ जंग करेंगे।

कअ़ब की इस तजवीज़ को क़ुरैश ने पसन्द किया और इस तरह से उन्होंने मुसलमानों के ख़िलाफ़ एक मोर्चा क़ायम कर दिया। इसके बाद अबू सुफ़ियान ने कअ़ब से कहा कि तुम अहले इल्म हो, तुम्हारे पास अल्लाह की किताब है, लेकिन हम बिल्कुल जाहिल हैं, इसलिये आप हमारे मुताल्लिक़ बतायें कि हम हक़ पर चलने वाले हैं या मुहम्मद (सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम)?

कअ़ब ने पूछा कि तुम्हारा दीन क्या है? अबू सुफ़ियान ने कहा कि हम हज के लिये अपने ऊँटों को ज़िबह करते हैं और उनका दूध पिलाते हैं, मेहमानों की मेहमान नवाज़ी करते हैं, अपने अ़ज़ीज़ों व रिश्तेदारों के ताल्लुक़ात को क़ायम रखते हैं और बैतुल्लाह का तवाफ़ और उमरा करते हैं। इसके विपरीत मुहम्मद (सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम) ने अपने बाप-दादा के दीन को छोड़ दिया है, वह अपनों से अलग हो चुका है और उसने हमारे पुराने दीन के ख़िलाफ़ अपना एक नया दीन पेश किया है।

इन बातों को सुनकर कअ़ब बिन अशरफ़ ने कहा कि तुम लोग हक़ पर हो, मुहम्मद (सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम) गुमराह हो चुका है (अल्लाह की पनाह)।

इस पर अल्लाह तआ़ला ने उपरोक्त आयतें नाज़िल फ़रमाकर उनके धोखे व फ़रेब की मज़म्मत (निंदा) की। (तफ़सीर रूहुल-मआ़नी)

नफ़्सानी इच्छायें कई बार आदमी को दीन व ईमान से मेहरूम कर देती हैं

कअ़ब बिन अशरफ़ यहूदियों का एक नुमायाँ आ़लिम था जो ख़ुदा पर भी अ़क़ीदा रखता था और उसी की इबादत करता था, लेकिन जब उसके दिल व दिमाग़ पर नफ़्सानी इच्छाओं का भूत सवार हुआ तो उसने मुसलमानों के ख़िलाफ़ क़ुरैश से गठजोड़ करना चाहा। मक्का के क़ुरैश ने उसके साथ मिलने की यह शर्त लगाई कि वह हमारे बुतों के सामने सज्दा करे, उसने इसको भी गवारा कर लिया जिसकी तफ़सील गुज़र चुकी है। उसने अपने मज़हब के ख़िलाफ़ क़ुरैश की शर्त को तो पूरा किया लेकिन अपने मज़हबी अ़क़ीदों को क़ायम रखने के लिये उनसे अलग होना गवारा नहीं किया। क़ुरआने करीम ने एक दूसरे मक़ाम पर इसी क़िस्म का वाक़िआ़ बलअ़म बाऊरा के बारे में बयान किया है। इरशाद है:

وَاتْلُ عَلَيْهِمْ نَبَاَ الَّذِیْٓ اٰتَيْنٰهُ اٰيٰتِنَا فَانْسَلَخَ مِنْهَا فَاَتْبَعَهُ الشَّيْطٰنُ فَكَانَ مِنَ الْغٰوِيْنَ.

मुफ़स्सिरीन ने लिखा है कि बलअ़म एक बहुत ऊँचे रुतबे का आ़लिम और साहिबे तसर्रुफ़ दुर्वेश था, लेकिन जब उसने अपनी नफ़्सानी इच्छाओं को पूरा करने के लिये हज़रत मूसा अ़लैहिस्सलाम के ख़िलाफ़ नापाक तदबीरें करनी शुरू कीं तो उनका तो कुछ न बिगाड़ सका लेकिन ख़ुद मरदूद और गुमराह हो गया।

इससे मालूम हुआ कि किताब का सिर्फ़ इल्म कुछ लाभदायक नहीं हो सकता जब तक कि सही मायने में उस पर अ़मल न हो, और सिर्फ़ दुनियावी लालच और घटिया इच्छाओं की पैरवी

से मुकम्मल परहेज़ न हो, वरना आदमी अपने मज़हब जैसी अ़ज़ीज़ चीज़ को भी अपनी इच्छाओं की भेंट चढ़ाने से नहीं बचता। आजकल भी कुछ लोग इस क़िस्म के हैं जो माद्दी और सियासी स्वार्थों व फ़ायदों के हासिल करने के लिये अपने हक़ मस्लक को आसानी से छोड़ देते हैं, और ग़लत अ़क़ाईद व नज़रियात को इस्लाम का लिबास पहनाने की पूरी कोशिश करते हैं, न उनको ख़ुदा के अ़हद व वायदे की कुछ परवाह होती है और न आख़िरत का ख़ौफ़, यह सब कुछ सही और हक़ मस्लक को छोड़कर शैतान के इशारों पर चलने से होता है।

अल्लाह की लानत दुनिया और आख़िरत में रुस्वाई का सबब है

लानत नाम है अल्लाह की रहमत से दूरी का, और इन्तिहाई रुस्वाई और ज़िल्लत का। जिस पर अल्लाह की लानत हो वह अल्लाह का क़ुर्ब (निकटता) हासिल नहीं कर सकता, उनके बारे में इतनी सख़्त वईद आई है कि फ़रमायाः

مَلْعُوْنِيْنَ اَيْنَمَا ثُقِفُوْٓا اُخِذُوْا وَقُتِّلُوْا تَقْتِيْلًا

"जिन पर अल्लाह की लानत है वे जहाँ कहीं भी मिलें उनकी गर्दन उड़ाई जाये।" यह तो उनकी दुनियावी रुस्वाई है और आख़िरत की रुस्वाई तो इससे भी सख़्त होगी।

अल्लाह की लानत के हक़दार कौन लोग हैं?

وَمَنْ يَّلْعَنِ اللّٰهُ فَلَنْ تَجِدَ لَهٗ نَصِيْرًا

इस आयत से मालूम होता है कि जिस पर अल्लाह की लानत हो उसका कोई मददगार नहीं होता। अब ग़ौर-तलब यह बात है कि अल्लाह की लानत के मुस्तहिक़ कौन लोग हैं?

एक हदीस में इरशाद है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने सूद देने वाले, सूद खाने वाले, उसके लिखने वाले और उसकी गवाही देने वाले सब पर लानत की है और वे सब गुनाह में बराबर हैं। (मुस्लिम शरीफ़, मिश्कात)

एक दूसरी हदीस में आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमायाः

مَلْعُوْنٌ مَنْ عَمِلَ عَمَلَ قَوْمِ لُوْطٍ. (رواہ رزین بحوالہ مشکوۃ)

"यानी जो आदमी लूत (अ़लैहिस्सलाम) की क़ौम के जैसा अ़मल करे वह लानती है" (यानी मर्द से बदफ़ेली करने वाला)।

फिर इरशाद फ़रमाया कि अल्लाह तआ़ला चोर पर लानत भेजता है, जो अण्डे और रस्सी जैसी मामूली बेवक़अ़त चीज़ की चोरी तक करने से गुरेज़ नहीं करता, जिसकी सज़ा में उसका हाथ काटा जाता है। (बुख़ारी व मुस्लिम, मिश्कात)

एक और हदीस में इरशाद हैः

لَعَنَ اللّٰهُ اٰكِلَ الرِّبٰو وَمُوْكِلَهٗ وَالْوَاشِمَةَ وَ الْمُسْتَوْشِمَةَ وَالْمُصَوِّرَ. (رواه البخاری بحواله مشکٰوة)

"अल्लाह की लानत है सूद खाने वाले और खिलाने वाले पर, और उन औरतों पर जो अपने जिस्म को गूदने वाली (यानी सूई के नाके से जिस्म में सुराख़ करके सुर्मा डालती हैं ताकि ज़ीनत हो) या गुदवाने वाली हैं, और ऐसे ही तस्वीर खींचने वालों पर लानत की है।"

एक दूसरी हदीस में आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि अल्लाह तआ़ला लानत भेजते हैं शराब पर और उसके पीने वाले पर, पिलाने वाले पर, उसके बेचने वाले पर, ख़रीदने वाले पर, उसके निचोड़ने वाले पर, उसके उठाने वाले और मंगवाने वाले सब पर।

(अबू दाऊद, इब्ने माजा, मिश्कात)

एक और हदीस में रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम इरशाद फ़रमाते हैं कि छह आदमी ऐसे हैं जिन पर मैंने लानत भेजी है और अल्लाह तआ़ला ने भी उन पर लानत की है, और हर नबी की दुआ़ क़ुबूल होती है। वे छह आदमी ये हैं:

1. अल्लाह की किताब में ज़्यादती करने वाला।

2. वह शख़्स जो ज़ुल्म व ज़्यादती और ताक़त के बल पर इक़्तिदार (सत्ता व इख़्तियार) हासिल करके उस आदमी को इज़्ज़त दे जिसको अल्लाह ने ज़लील किया हो, और जिसको अल्लाह ने इज़्ज़त अ़ता की हो उसको ज़लील करे।

3. अल्लाह की तक़दीर को झुठलाने वाला।

4. अल्लाह की हराम की हुई चीज़ों को हलाल समझने वाला।

5. मेरी औलाद में वह आदमी जो हराम की गयी चीज़ों को हलाल करने वाला हो।

6. और मेरी सुन्नत को छोड़ने वाला। (बैहक़ी फ़िल-मदख़ल, मिश्कात)

एक और हदीस में आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया:

لَعَنَ اللّٰهُ النَّاظِرَ وَالْمَنْظُوْرَ اِلَيْهِ.

"यानी जो कोई नामेहरम पर बुरी नज़र डाले और जिसके ऊपर नज़र डाले (बशर्तेकि जिस पर बुरी नज़र पड़ी है उसके इरादे और इख़्तियार को उसमें दख़ल हो) उन पर अल्लाह ने लानत की है।

हज़रत अबू हुरैरह रज़ियल्लाहु अ़न्हु से रिवायत है:

لَعَنَ رَسُوْلُ اللّٰهِ صَلَّى اللّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ الرَّجُلَ يَلْبَسُ لِبْسَةَ الْمَرْءَةِ وَالْمَرْءَةَ تَلْبَسُ لِبْسَةَ الرَّجُلِ.

"यानी रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने ऐसे मर्द पर लानत की है जो औ़रत का सा लिबास पहने और ऐसी औ़रत पर लानत की जो मर्द का सा लिबास पहने। (मिश्कात)

عَنْ عَائِشَةَ رَضِيَ اللّٰهُ تَعَالٰى عَنْهَا اَنَّ امْرَءَةً تَلْبَسُ النَّعْلَ قَالَتْ لَعَنَ رَسُوْلُ اللّٰهِ صَلَّى اللّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ الرَّجُلَةَ مِنَ النِّسَآءِ. (رواه ابو داؤد بحواله مشکوٰة ص ۳۸۳)

"हज़रत आयशा रज़ियल्लाहु अ़न्हा से किसी ने अ़र्ज़ किया कि एक औ़रत (मर्दाना) जूता

पहनती है। हज़रत आयशा रज़ियल्लाहु अन्हा ने फ़रमाया कि अल्लाह के रसूल सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने ऐसी औरत पर लानत की है जो मर्दों के तौर-तरीक़े इख़्तियार करें।"

عَنِ ابْنِ عَبَّاسٍ رَضِيَ اللّٰهُ عَنْهُمَا قَالَ لَعَنَ النَّبِيُّ صَلَّى اللّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ الْمُخَنَّثِيْنَ مِنَ الرِّجَالِ وَالْمُتَرَجِّلَاتِ مِنَ النِّسَآءِ وَقَالَ اَخْرِجُوْهُمْ مِنْ بُيُوْتِكُمْ. (رواه البخاری بحواله مشکوة)

"हज़रत इब्ने अब्बास रज़ियल्लाहु अन्हु से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने लानत की उन मर्दों पर जो औरतों की तरह शक्ल व सूरत बनाकर हिजड़े बनें, और लानत की उन औरतों पर जो शक्ल व सूरत में मर्दाना पन इख़्तियार करें, और इरशाद फ़रमाया कि उनको अपने घरों से निकाल दो।"

बुख़ारी शरीफ़ में है कि हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन मसऊद रज़ियल्लाहु अन्हु ने फ़रमाया किः

لَعَنَ اللّٰهُ الْوَاشِمَاتِ وَالْمُسْتَوْشِمَاتِ وَالْمُتَنَمِّصَاتِ وَالْمُتَفَلِّجَاتِ لِلْحُسْنِ الْمُغَيِّرَاتِ خَلْقَ اللّٰهِ.

"यानी अल्लाह तआ़ला की लानत हो गूदने वालियों पर और गुदवाने वालियों पर, और जो (भंवों के बाल) चुनती हैं (ताकि भंवें बारीक हो जायें) और ख़ुदा की लानत हो उन औरतों पर जो हुस्न के लिये दाँतों के बीच खुली जगह करती हैं, जो अल्लाह की बनावट को बदलने वाली हैं।"

लानत के अहकाम

लानत जिस क़द्र बुरी चीज़ है उसी क़द्र इसके करने पर पाबन्दियाँ भी आ़यद की गई हैं। किसी मुसलमान पर लानत करना हराम है, और काफ़िर पर भी सिर्फ़ उस सूरत में की जा सकती है जबकि उसका कुफ़्र पर मरना यक़ीनी हो। रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के इरशादात इसके बारे में ये हैं। हदीस में हैः

عَنِ ابْنِ مَسْعُوْدٍ قَالَ قَالَ رَسُوْلُ اللّٰهِ صَلَّى اللّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ لَيْسَ الْمُؤْمِنُ بِالطَّعَّانِ وَلَا بِاللَّعَّانِ وَلَا الْبَذِيِّ.

(رواه الترمذی بحواله مشکوة)

"हज़रत इब्ने मसऊद रज़ियल्लाहु अन्हु फ़रमाते हैं कि फ़रमाया रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने कि मोमिन वह नहीं है जो तानेबाज़ और लानत बाज़ हो, और न ही बदगो (बुराई करने वाला)।"

عَنْ اَبِي الدَّرْدَاءِ قَالَ سَمِعْتُ رَسُوْلَ اللّٰهِ صَلَّى اللّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ يَقُوْلُ اِنَّ الْعَبْدَ اِذَا لَعَنَ شَيْئًا صَعِدَتِ اللَّعْنَةُ اِلَى السَّمَآءِ فَتُغْلَقُ اَبْوَابُ السَّمَآءِ دُوْنَهَا ثُمَّ تَهْبِطُ اِلَى الْاَرْضِ فَتُغْلَقُ اَبْوَابُهَا دُوْنَهَا ثُمَّ تَاْخُذُ يَمِيْنًا وَشِمَالًا فَاِذَا لَمْ تَجِدْ مَسَاغًا رَجَعَتْ اِلَى الَّذِيْ لَعَنَ فَاِنْ كَانَ لِذٰلِكَ اَهْلًا وَّاِلَّا رَجَعَتْ اِلٰى قَآئِلِهَا. (رواه ابو داؤد بحواله مشکوة)

"हज़रत अबूदर्दा रज़ियल्लाहु अन्हु फ़रमाते हैं कि मैंने हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम को यह फ़रमाते सुना कि जब बन्दा किसी चीज़ पर लानत करता है तो वह लानत आसमान की तरफ़ चढ़ती है जिस पर आसमान के दरवाज़े बन्द कर दिये जाते हैं। फिर यह

ज़मीन की तरफ़ उतरती है तो ज़मीन के दरवाज़े बन्द कर दिये जाते हैं (यानी ज़मीन उस लानत को क़ुबूल नहीं करती) फिर वह दायें-बायें घूमती है, जब कहीं उसको रास्ता नहीं मिलता तो जिस पर लानत की गई है उसके पास पहुँचती है, अगर वह वाक़ई लानत का मुस्तहिक़ है तो उस पर पड़ती है, वरना फिर अपने कहने वाले पर पड़ जाती है।''

عَنِ ابْنِ عَبَّاسٍ اَنَّ رَجُلًا نَازَعَتْهُ الرِّيْحُ رِدَآءَهُ فَلَعَنَهَا فَقَالَ رَسُوْلُ اللّٰهِ صَلَّى اللّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ لَا تَلْعَنْهَا فَاِنَّهَا مَاْمُوْرَةٌ وَاِنَّهُ مَنْ لَعَنَ شَيْئًا لَيْسَ لَهُ بِاَهْلٍ رَجَعَتِ اللَّعْنَةُ عَلَيْهِ. (رواه الترمذی بحواله مشكوة ص ٤١٣)

''हज़रत इब्ने अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु से मन्क़ूल है कि हवा ने एक आदमी की चादर उड़ा ली तो उसने हवा पर लानत की, इस पर हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि तू उस पर लानत न कर, इसलिये कि वह अल्लाह तआ़ला की ओर से मामूर है और (याद रखिये) कि जो आदमी ऐसी चीज़ पर लानत करे जिसकी वह मुस्तहिक़ नहीं है तो यह लानत उसके कहने वाले ही पर लौटती है।''

मसलाः किसी ख़ास शख़्स के बारे में जब तक यह मालूम न हो कि उसकी मौत कुफ़्र पर हुई है उस पर लानत जायज़ नहीं है, अगरचे वह फ़ासिक़ (बुरे काम करने वाला) ही हो, इसी उसूल की बिना पर यज़ीद पर लानत करने से अ़ल्लामा शामी ने मना किया है। लेकिन किसी ख़ास काफ़िर पर जिसकी मौत कुफ़्र पर होने का यक़ीन हो जैसे अबू जहल, अबू लहब पर जायज़ है। (शामी जिल्द 2 पेज 836)

मसलाः लुग़त में लानत के मायने अल्लाह की रहमत से दूर होने के होते हैं, शरई तौर पर काफ़िरों के हक़ में इसके मायने अल्लाह की रहमत से दूर होने के हैं, और मोमिनों के हक़ में अबरार (नेक लोगों) के दर्जे से नीचे गिरने के हैं (जैसा कि अ़ल्लामा शामी ने जिल्द 2 पेज 836 में क़हस्तानी से नक़ल किया है)। इसलिये किसी मुसलमान के लिये उसके नेक अ़मल कम हो जाने की दुआ़ भी जायज़ नहीं।

اَمْ لَهُمْ نَصِيْبٌ مِّنَ الْمُلْكِ فَاِذًا لَّا يُؤْتُوْنَ النَّاسَ نَقِيْرًا ﴿٥٣﴾ اَمْ يَحْسُدُوْنَ النَّاسَ عَلٰى مَآ اٰتٰىهُمُ اللّٰهُ مِنْ فَضْلِهٖ ۚ فَقَدْ اٰتَيْنَآ اٰلَ اِبْرٰهِيْمَ الْكِتٰبَ وَالْحِكْمَةَ وَاٰتَيْنٰهُمْ مُّلْكًا عَظِيْمًا ﴿٥٤﴾ فَمِنْهُمْ مَّنْ اٰمَنَ بِهٖ وَمِنْهُمْ مَّنْ صَدَّ عَنْهُ ۚ وَكَفٰى بِجَهَنَّمَ سَعِيْرًا ﴿٥٥﴾

अम् लहुम् नसीबुम् मिनल्-मुल्कि फ़-इज़ल्ला युअ्तूनन्ना-स नक़ीरा (53) अम् यह्सुदूनन्ना-स अ़ला मा आताहुमुल्लाहु मिन् फ़ज़्लिही फ़-क़द्	क्या उनका कुछ हिस्सा है सल्तनत में? फिर तो यह न देंगे लोगों को एक तिल बराबर, या हसद करते हैं लोगों का उस पर जो दिया है उनको अल्लाह ने अपने फ़ज़्ल से, सो हमने तो दी है इब्राहीम के

आतैना आ-ल इब्राहीमल्-किता-ब वल्हिक्म-त व आतैनाहुम् मुल्कन् अ़ज़ीमा (54) फ़-मिन्हुम् मन् आम-न बिही व मिन्हुम् मन् सद्-द अ़न्हु, व कफ़ा बि-जहन्न-म सअ़ीरा (55)	ख़ानदान को किताब और हिक्मत, और उनको दी है हमने बड़ी सल्तनत। (54) फिर उनमें से किसी ने उसको माना और कोई उससे हटा रहा, और काफ़ी है दोज़ख़ की भड़कती आग। (55)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

हाँ क्या उनके पास कोई हिस्सा है हुकूमत का, सो ऐसी हालत में तो और लोगों को ज़रा-सी चीज़ भी न देते। या दूसरे आदमियों से (जैसे रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से) उन चीज़ों पर जलते हैं जो अल्लाह तआ़ला ने उनको अपने फ़ज़्ल से अ़ता फ़रमाई हैं, सो (आप सल्ल. को ऐसी चीज़ मिल जाना कोई नई बात नहीं, क्योंकि) हमने (पहले से) हज़रत इब्राहीम (अ़लैहिस्सलाम) के ख़ानदान (वालों) को (आसमानी) किताब भी दी है और इल्म भी दिया है, और हमने उनको बड़ी भारी हुकूमत भी दी है (चुनाँचे बनी इस्राईल में बहुत से अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम गुज़रे हैं। कुछ अम्बिया बादशाह भी हुए जैसे हज़रत यूसुफ़, हज़रत दाऊद और हज़रत सुलैमान अ़लैहिमुस्सलाम, और हज़रत दाऊद व हज़रत सुलैमान अ़लैहिमस्सलाम का बहुत सारी बीवियों वाला होना भी मालूम व मशहूर है, और ये सब हज़रत इब्राहीम की औलाद में हैं, सो जबकि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम भी हज़रत इब्राहीम की औलाद में से हैं तो आपको अगर ये नेमतें व अ़तीये मिल गये तो ताज्जुब की क्या बात है) सो (उन अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम के ज़माने में भी जो कि इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम के ख़ानदान में से गुज़र चुके हैं जो लोग मौजूद थे) उनमें से कुछ तो उस (किताब व हिक्मत) पर ईमान लाए और बाज़े ऐसे थे कि उससे मुँह फेरे ही रहे (पस अगर आपकी रिसालत व क़ुरआन पर आपके ज़माने के बाज़े लोग ईमान न लायें तो कोई रंज की बात नहीं), और (उन काफ़िरों और मुँह फेर लेने वालों को अगर दुनिया में सज़ा कम भी हो या न हो तो क्या हुआ, उनके लिये आख़िरत में) दोज़ख़ की दहकती हुई आग (की सज़ा) काफ़ी है।

मआ़रिफ़ व मसाईल

यहूदियों के जलने पर उनकी कड़ी आलोचना

अल्लाह तआ़ला ने नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को जो इल्म व फ़ज़्ल और इज़्ज़त व रुतबा अ़ता किया था उस पर यहूदी जलते थे अल्लाह तआ़ला ने आयत नम्बर 53 व 54 में उनके इसी हसद व बुग़ज़ की कड़ी आलोचना की है, और उनके हसद को नामाक़ूल क़रार

देते हुए दो वजहें बयान की हैं- एक वजह आयत नम्बर 53 में बयान की और दूसरी आयत नम्बर 54 में, लेकिन दोनों का हासिल एक है, यानी तुम्हारा हसद (जलना) किस बात पर है? अगर इस पर है कि ताक़त व हुकूमत के असल मालिक तुम हो, तुम्हारी ही सल्तनत इनको मिल गई। इसका ग़लत होना तो खुला हुआ है कि तुम सल्तनत से खुद मेहरूम हो और तुम्हें कुछ हिस्सा सल्तनत का मिल जाता तो तुम एक कौड़ी भी किसी को न देते। और अगर तुम्हारा हसद (जलना) इस पर है कि अगरचे सल्तनत हमारे पास से उनके पास नहीं गई फिर भी उनको क्यों मिली, उनको सल्तनत से क्या संबन्ध? तो इसका जवाब यह दिया कि यह भी अम्बिया अलैहिमुस्सलाम के ख़ानदान से हैं, जिनमें सल्तनत पहले से होती आई है, इसलिये किसी अजनबी जगह सल्तनत नहीं आई, लिहाज़ा तुम्हारा हसद करना नामाक़ूल (अनुचित) है।

हसद की परिभाषा, उसका हुक्म और उसके नुक़सानात का बयान

अ़ल्लामा नववी रहमतुल्लाहि अ़लैहि (शारेह मुस्लिम) हसद (जलने) की परिभाषा इस तरह करते हैं:

اَلْحَسَدُ تَمَنِّى زَوَالِ النِّعْمَةِ. (مسلم ج ٢)

यानी "दूसरे आदमी की नेमत के ख़त्म होने और छिन जाने की इच्छा करना हसद कहलाता है।" और यह हराम है।

हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का इरशाद है:

لَا تَبَاغَضُوْا وَلَا تَحَاسَدُوْا وَلَا تَدَابَرُوْا وَكُوْنُوْا عِبَادَ اللّٰهِ اِخْوَانًا وَلَا يَحِلُّ لِمُسْلِمٍ اَنْ يَّهْجُرَ اَخَاهُ فَوْقَ ثَلَاثٍ.

(مسلم ج ٢)

"तुम आपस में बुग़ज़ और हसद (एक दूसरे से जलना और कीना रखना) न करो, और न ही एक दूसरे से पीठ फेरो (यानी ताल्लुक़ ख़त्म करो), बल्कि अल्लाह के बन्दे और भाई बन जाओ। और जायज़ नहीं किसी मुसलमान के लिये कि वह अपने भाई से तीन दिन से ज़्यादा ताल्लुक़ तोड़े रखे।"

एक दूसरी हदीस में आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमायाः

اِيَّاكُمْ وَالْحَسَدَ فَاِنَّ الْحَسَدَ يَاْكُلُ الْحَسَنَاتِ كَمَا تَاْكُلُ النَّارُ الْحَطَبَ. (رواه ابو داود بحواله مشكوة)

"तुम हसद से बचो, इसलिये कि हसद नेकियों को इस तरह खा जाता है जिस तरह आग लकड़ी को खा जाती है।"

عَنِ الزُّبَيْرِ قَالَ قَالَ رَسُوْلُ اللّٰهِ صَلَّى اللّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ دَبَّ اِلَيْكُمْ دَاءُ الْاُمَمِ قَبْلَكُمُ الْحَسَدُ وَالْبَغْضَاءُ هِيَ الْحَالِقَةُ لَا اَقُوْلُ تَحْلِقُ الشَّعْرَ وَلٰكِنْ تَحْلِقُ الدِّيْنَ. (رواه احمد والترمذى، بحواله مشكوة)

"हज़रत ज़ुबैर रज़ियल्लाहु अन्हु ने फ़रमाया कि फ़रमाया रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने- तुम्हारी तरफ़ (भी) पहली क़ौमों का मर्ज़ चुपके से चल पड़ा है और वह हसद है और बुग़ज़ ऐसी ख़स्लत है जो मूँड देने वाली है, मैं यह नहीं कहता कि वह बालों को मूँडती है बल्कि दीन को मूँड देती है।"

हसद (किसी पर जलना) चाहे दुनियावी कमाल पर हो या दीनी कमाल पर दोनों हराम हैं। चुनाँचे अल्लाह तआला के क़ौलः

اَمْ لَهُمْ نَصِيْبٌ مِّنَ الْمُلْكِ

(क्या उनका कुछ हिस्सा है सल्तनत में) से पहले हुक्म की तरफ़ इशारा मालूम होता है और:

الْكِتٰبَ وَالْحِكْمَةَ

(यानी किताब व हिक्मत के देने) से दूसरे हुक्म की तरफ़।

اِنَّ الَّذِيْنَ كَفَرُوْا بِاٰيٰتِنَا سَوْفَ نُصْلِيْهِمْ نَارًا ؕ كُلَّمَا نَضِجَتْ جُلُوْدُهُمْ بَدَّلْنٰهُمْ جُلُوْدًا غَيْرَهَا لِيَذُوْقُوا الْعَذَابَ ؕ اِنَّ اللّٰهَ كَانَ عَزِيْزًا حَكِيْمًا ۝ وَالَّذِيْنَ اٰمَنُوْا وَعَمِلُوا الصّٰلِحٰتِ سَنُدْخِلُهُمْ جَنّٰتٍ تَجْرِيْ مِنْ تَحْتِهَا الْاَنْهٰرُ خٰلِدِيْنَ فِيْهَآ اَبَدًا ؕ لَهُمْ فِيْهَآ اَزْوَاجٌ مُّطَهَّرَةٌ ۡ وَّنُدْخِلُهُمْ ظِلًّا ظَلِيْلًا ۝

इन्नल्लज़ी-न क-फ़रू बिआयातिना सौ-फ़ नुस्लीहिम् नारन्, कुल्लमा नज़ि जत् जुलूदुहुम् बद्दल्नाहुम् जुलूदन् ग़ैरहा लि-यज़ूक़ुल्-अ़ज़ा-ब, इन्नल्ला-ह का-न अ़ज़ीज़न् हकीमा। (56) ❖	बेशक जो मुन्किर (इनकार करने वाले) हुए हमारी आयतों से उनको हम डालेंगे आग में, जिस वक़्त जल जायेगी खाल उनकी तो हम बदल देंगे उनको और (दूसरी) खाल ताकि चखते रहें अ़ज़ाब, बेशक अल्लाह है ज़बरदस्त हिक्मत वाला। (56) ❖
वल्लज़ी-न आमनू व अ़मिलुस्सालिहाति सनुद्ख़िलुहुम् जन्नातिन् तज्री मिन् तह्तिल्-अन्हारु ख़ालिदी-न फ़ीहा अ-बदन्, लहुम् फ़ीहा अज़्वाजुम् मुतह्ह-रतुंव्-व नुद्ख़िलुहुम् ज़िल्लन् ज़लीला (57)	और जो लोग ईमान लाये और नेक काम किये अलबत्ता उनको हम दाख़िल करेंगे बाग़ों में जिनके नीचे बहती हैं नहरें, रहा करें उनमें हमेशा, उनके लिये वहाँ औरतें हैं सुथरी (पाकीज़ा) और उनको दाख़िल करेंगे घनी छाँव में। (57)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

बेशक जो लोग हमारी आयतों (व अहकामों) के इनकारी हुए (हम उनको) जल्द ही एक सख़्त आग में दाख़िल करेंगे (और वहाँ उनकी बराबर यह हालत रहेगी कि) जब एक दफ़ा उनकी खाल (आग से) जल चुकेगी तो हम उस पहली खाल की जगह फ़ौरन दूसरी (ताज़ी) खाल पैदा कर देंगे ताकि (हमेशा) अ़ज़ाब ही भुगतते रहें (क्योंकि पहली खाल में जलने के बाद शुब्हा हो सकता था कि शायद उसमें एहसास का माद्दा न रहे, इसलिये यह शुब्हा दूर करने के लिये यह सुना दिया) बेशक अल्लाह तआ़ला ज़बरदस्त हैं (कि वह ऐसी सज़ा दे सकते हैं और) हिक्मत वाले हैं (इसलिये बावजूद क़ुदरत के जली हुई खाल को तकलीफ़ पहुँचा सकते हैं, फिर भी किसी हिक्मत से बदल दिया जैसे कि एक हिक्मत का बयान अभी हुआ है)। और जो लोग ईमान लाए और अच्छे काम किए हम उनको जल्द ही ऐसे बाग़ों में दाख़िल करेंगे कि उनके (महलों के) नीचे नहरें जारी होंगी, वे उनमें हमेशा-हमेशा रहेंगे। उनके वास्ते उन (बाग़ों) में पाक-साफ़ बीवियाँ होंगी और हम उनको बहुत ही घने साये (की जगह) में दाख़िल करेंगे।

मआ़रिफ़ व मसाईल

हज़रत मुआ़ज़ रज़ियल्लाहु अ़न्हुः

كُلَّمَا نَضِجَتْ جُلُوْدُهُمْ بَدَّلْنٰهُمْ

(जब उनकी खालें जल जायेंगी तो हम उनको बदल देंगे) की तफ़सीर करते हुए फ़रमाते हैं कि जब उनकी खाल जल चुकेगी तो उसको तब्दील किया जायेगा, और यह काम इतनी तेज़ी के साथ होगा कि एक घड़ी में सौ मर्तबा खाल तब्दील की जायेगी।

और हज़रत हसन बसरी रहमतुल्लाहि अ़लैहि फ़रमाते हैं:

تَاْكُلُ النَّارُ كُلَّ يَوْمٍ سَبْعِيْنَ اَلْفَ مَرَّةٍ كُلَّمَا اَكَلَتْهُمْ قِيْلَ لَهُمْ عُوْدُوْا فَيَعُوْدُوْنَ كَمَا كَانُوْا

(اَخْرَجَ الْبَيْهَقِي عَنِ الْحَسَنِ بحواله مظهرى ج ٢)

"आग एक दिन में सत्तर हज़ार मर्तबा उनको खायेगी, जब उनको खा चुकेगी तो उन लोगों को कहा जायेगा कि तुम फिर पहली हालत पर लौट जाओ, पस वे लौट जायेंगे।"

عَنِ النَّبِيِّ صَلَّى اللّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ قَالَ اِنَّ اَهْوَنَ اَهْلِ النَّارِ عَذَابًا رَجُلٌ فِىْ اَخْمَصِ قَدَمَيْهِ جَمْرَتَانِ يَغْلِىْ مِنْهُمَا دِمَاغُهٗ كَمَا يَغْلِى الْمِرْجَلِ بِالْقُمْقُمِ. (رواه البخارى و مسلم، بحواله الترغيب والترهيب ج ٤ ص ٢٣٩)

"नबी अ़लैहिस्सलाम ने फ़रमाया कि जहन्नम वालों में सबसे कम अ़ज़ाब के एतिबार से वह आदमी होगा जिसके तलवों में आग की दो चिंगारियाँ होंगी, जिनकी वजह से उसका दिमाग़ हाँडी की तरह खौलता होगा।"

'पाक-साफ़ बीवियों' की तफ़सीर

इमाम हाकिम ने हज़रत अबू सईद ख़ुदरी रज़ियल्लाहु अन्हु से नक़ल किया है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया- जन्नत की औरतें पाक होंगी, यानी वे माहवारी, पेशाब पाख़ाने और नाक से बहने वाली गंदगी से पाक होंगी।

हज़रत मुजाहिद रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने मज़कूरा चीज़ों पर इज़ाफ़ा करते हुए फ़रमाया कि वे बच्चे पैदा करने और नापाक नुत्फ़े से भी पाक होंगी। (तफ़सीरे मज़हरी)

'ज़िल्लन् ज़लीला' के लफ़्ज़ से इशारा इस तरफ़ कर दिया कि वह साया हमेशा रहने वाला होगा और घना साया होगा। इससे इशारा इस बात की तरफ़ है कि जन्नत की नेमतें हमेशा रहने वाली होंगी।

عَنْ اَبِیْ هُرَيْرَةَ عَنْ رَسُوْلِ اللّٰهِ صَلَّى اللّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ قَالَ: اِنَّ فِی الْجَنَّةِ لَشَجَرَةً يَسِيْرُ الرَّاكِبُ فِیْ ظِلِّهَا مِائَةَ عَامٍ مَا يَقْطَعُهَا اِقْرَءُ وْا اِنْ شِئْتُمْ وَظِلٍّ مَّمْدُوْدٍ. (متفق علیه، بحواله مظهری)

"हज़रत अबू हुरैरह रज़ियल्लाहु अ़न्हु हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से नक़ल फ़रमाते हैं कि आपने फ़रमाया कि तहक़ीक़ जन्नत में एक ऐसा पेड़ है जिसके साये को एक सवार सौ साल में भी तय न कर सकेगा, अगर आप चाहें तो क़ुरआन पाक की यह आयतः

وَظِلٍّ مَّمْدُوْدٍ

पढ़ लें (यानी इस आयत के मतलब से भी इस बात की तस्दीक़ होती है)।"

रबीअ़ बिन अनस रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने 'ज़िल्लन् ज़लीला' की तफ़सीर में फ़रमाया कि वह साया अ़र्श का साया है जो कभी ख़त्म नहीं होगा।"

اِنَّ اللّٰهَ يَاْمُرُكُمْ اَنْ تُؤَدُّوا الْاَمٰنٰتِ اِلٰٓى اَهْلِهَا ۙ وَاِذَا حَكَمْتُمْ بَيْنَ النَّاسِ اَنْ تَحْكُمُوْا بِالْعَدْلِ ۭ اِنَّ اللّٰهَ نِعِمَّا يَعِظُكُمْ بِهٖ ۭ اِنَّ اللّٰهَ كَانَ سَمِيْعًا ۢ بَصِيْرًا ۝ يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْٓا اَطِيْعُوا اللّٰهَ وَاَطِيْعُوا الرَّسُوْلَ وَاُولِي الْاَمْرِ مِنْكُمْ ۚ فَاِنْ تَنَازَعْتُمْ فِيْ شَيْءٍ فَرُدُّوْهُ اِلَى اللّٰهِ وَالرَّسُوْلِ اِنْ كُنْتُمْ تُؤْمِنُوْنَ بِاللّٰهِ وَالْيَوْمِ الْاٰخِرِ ۭ ذٰلِكَ خَيْرٌ وَّاَحْسَنُ تَاْوِيْلًا ۝

ع ٨ / ٩ / ٥

इन्नल्ला-ह यअ्मुरुकुम् अन् तु-अद्दुल् अमानाति इला अह़्लिहा व इज़ा हकम्तुम् बैनन्नासि अन्	बेशक अल्लाह तुमको फ़रमाता है कि पहुँचा दो अमानतें अमानत वालों को, और जब फ़ैसला करने लगो लोगों में तो फ़ैसला करो इन्साफ़ से, अल्लाह अच्छी

तह़्कुमू बिल्-अ़द्लि, इन्नल्ला-ह निअ़िम्मा यअ़िज़ुकुम् बिही, इन्नल्ला-ह का-न समीअ़म् बसीरा (58) या अय्युहल्लज़ी-न आमनू अतीअुल्ला-ह व अतीअुर्रसू-ल व उलिल्-अम्रि मिन्कुम् फ़-इन् तनाज़अ़्तुम् फ़ी शैइन् फ़रुद्दूहु इलल्लाहि वर्रसूलि इन् कुन्तुम् तुअ्मिनू-न बिल्लाहि वल्यौमिल्-आख़िरि, ज़ालि-क ख़ैरुंव्-व अह़्सनु तअ्वीला (59) ❁	नसीहत करता है तुमको, बेशक अल्लाह है सुनने वाला देखने वाला। (58) ऐ ईमान वालो! हुक्म मानो अल्लाह का और हुक्म मानो रसूल का और हाकिमों का जो तुम में से हों, फिर अगर झगड़ पड़ो किसी चीज़ में तो उसको रुजू करो अल्लाह और रसूल की तरफ़ अगर यक़ीन रखते हो अल्लाह पर और क़ियामत के दिन पर, यह बात अच्छी है और बहुत बेहतर है इसका अन्जाम। (59) ❁

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

(ऐ हुकूमत वालो! चाहे थोड़ों पर हुकूमत हो चाहे बहुतों पर) बेशक तुमको अल्लाह तआ़ला इस बात का हुक्म देते हैं कि हक़ वालों को उनके हुक़ूक़ (जो तुम्हारे ज़िम्मे हैं) पहुँचा दिया करो, और (तुमको) यह (भी हुक्म देते हैं) कि जब (महकूम) लोगों का तसफ़िया किया करो (ऐसे हुक़ूक़ में जो उनमें आपस में एक-दूसरे के ज़िम्मे हैं) तो अ़दल "यानी इन्साफ़" से तसफ़िया किया करो, बेशक अल्लाह तआ़ला जिस बात की तुमको नसीहत करते हैं वह बात बहुत अच्छी है (दुनिया के एतिबार से भी कि इसमें हुकूमत को मज़बूत करना है और आख़िरत के एतिबार से भी कि अल्लाह की निकटता और सवाब का ज़रिया है) बेशक अल्लाह तआ़ला (तुम्हारी बातों को जो अमानत व तसफ़िये के बारे में तुम से सादिर होती हैं) ख़ूब सुनते हैं (और तुम्हारे कामों को जो इस बारे में तुम से वाक़े होते हैं) ख़ूब देखते हैं (तो अगर कमी व कोताही करोगे जानने के बावजूद भी तो तुमको सज़ा देंगे।

यह ख़िताब तो हाकिमों को हुआ, आगे महकूम लोगों को इरशाद है कि) ऐ ईमान वालो! तुम अल्लाह तआ़ला का कहना मानो और रसूल (सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम) का कहना मानो (और यह हुक्म तो तुम्हारे और हाकिमों सब के लिये आ़म है) और तुम (मुसलमानों) में जो लोग हुकूमत वाले हैं उनका भी (कहना मानो, और यह हुक्म ख़ास है तुम महकूम लोगों के साथ) फिर (अगर उनके अहकाम का अल्लाह और रसूल के कहे हुए के ख़िलाफ़ न होना महकूम व हाकिम दोनों की मोतबर सहमति से साबित हो तो ख़ैर उसमें तो हाकिमों की इताअ़त करोगे ही

और) अगर (उनके अहकाम में से) किसी मामले में तुम आपस में इख़्तिलाफ़ करने लगो (कि यह अल्लाह व रसूल के कहे हुए के ख़िलाफ़ है या नहीं) तो (रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की ज़िन्दगी में तो आप से पूछकर और आपकी वफ़ात के बाद मुज्तहिद इमामों और दीन के उलेमा से रुजू करके) उस मामले को अल्लाह (की किताब) और उसके रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की सुन्नत) के हवाले कर दिया करो (और उन हज़रात से जैसा फ़तवा मिले उस पर सब महकूम व हाकिम अमल कर लिया करो) अगर तुम अल्लाह पर और कियामत के दिन पर ईमान रखते हो (क्योंकि इस ईमान का तक़ाज़ा यही है कि कियामत के दिन में अल्लाह तआला की पकड़ से जो कि मुख़ालफ़त करने पर होने वाली है, डरें) ये उमूर (जो बयान हुए यानी फ़रमाँबरदारी अल्लाह की, रसूल की, हाकिमों और बा-इख़्तियार लोगों की, विवादों और झगड़ों को किताब व सुन्नत के हवाले करना) सब (दुनिया में भी) बेहतर हैं और (आख़िरत में भी) इनका अन्जाम अच्छा है (क्योंकि दुनिया में अमन व राहत और आख़िरत में निजात व नेकबख़्ती है)।

मआरिफ़ व मसाईल

इन आयतों का शाने नुज़ूल

उक्त आयतों में से पहली आयत के नुज़ूल (उतरने) का एक ख़ास वाक़िआ है कि काबे की ख़िदमत इस्लाम से पहले भी बड़ी इज़्ज़त समझी जाती थी और जो लोग बैतुल्लाह की किसी ख़ास ख़िदमत के लिये चुने जाते थे वे पूरी कौम में मुअज़्ज़ज़ व मुमताज़ (सम्मानित और नुमायाँ) माने जाते थे, इसी लिये बैतुल्लाह की विभिन्न ख़िदमतें विभिन्न लोगों में तकसीम की जाती थीं। जाहिलीयत (इस्लाम से पहले) के ज़माने से हज के दिनों में हाजियों को ज़मज़म का पानी पिलाने की ख़िदमत आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के चचा मोहतरम हज़रत अब्बास रज़ियल्लाहु अन्हु के सुपुर्द थी जिसको **सकाया** कहा जाता था। इसी तरह और कुछ ख़िदमतें आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के दूसरे चचा अबू तालिब के सुपुर्द थीं। इसी तरह बैतुल्लाह की कुंजी (चाबी) रखना और मुक़र्ररा दिनों में खोलना बन्द करना उस्मान बिन तलहा रज़ियल्लाहु अन्हु से मुताल्लिक़ था।

उस्मान बिन तलहा रज़ियल्लाहु अन्हु का अपना बयान है कि जाहिलीयत के ज़माने में हम सोमवार और जुमेरात के दिन बैतुल्लाह को खोला करते थे, और लोग उसमें दाख़िल होने का सौभाग्य हासिल करते थे। हिजरत से पहले एक रोज़ रसूले करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम अपने कुछ सहाबा के साथ बैतुल्लाह में दाख़िल होने के लिये तशरीफ़ लाये (उस वक़्त तक उस्मान बिन तलहा इस्लाम में दाख़िल नहीं हुए थे) इन्होंने आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम को अन्दर जाने से रोका और बहुत ही बुरा व्यवहार किया। आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने बड़ी बुर्दबारी के साथ उनके सख़्त कलिमात को बरदाश्त किया, फिर फ़रमाया ऐ उस्मान! शायद

तुम एक रोज़ यह बैतुल्लाह की चाबी मेरे हाथ में देखोगे, जबकि मुझे इख़्तियार होगा कि जिसको चाहूँ सुपुर्द कर दूँ।

हज़रत उस्मान बिन तलहा रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने कहा कि अगर ऐसा हो गया तो क़ुरैश हलाक और ज़लील हो जायेंगे। आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि नहीं! उस वक़्त क़ुरैश आबाद और इज़्ज़त वाले हो जायेंगे। आप यह कहते हुए बैतुल्लाह के अन्दर तशरीफ़ ले गये। उसके बाद जब मैंने अपने दिल को टटोला तो मुझे यक़ीन सा हो गया कि आपने जो कुछ फ़रमाया है वह होकर रहेगा। मैंने उसी वक़्त मुसलमान होने का इरादा कर लिया लेकिन मैंने अपनी क़ौम के तेवर बदले हुए पाये, वे सब के सब मुझे सख़्त मलामत करने लगे इसलिये मैं अपने इरादे को पूरा न कर सका। जब मक्का फ़तह हुआ तो रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने मुझे बुलाकर बैतुल्लाह की चाबी तलब फ़रमाई, मैंने पेश कर दी।

कुछ रिवायतों में है कि उस्मान बिन तलहा रज़ियल्लाहु अ़न्हु चाबी लेकर बैतुल्लाह के ऊपर चढ़ गये थे। हज़रत अ़ली रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के हुक्म की तामील के लिये ज़बरदस्ती चाबी उनके हाथ से लेकर आपको दे दी थी, बैतुल्लाह में दाख़िले और वहाँ नमाज़ अदा करने के बाद जब आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम बाहर तशरीफ़ लाये तो फिर चाबी मुझको वापस करते हुए फ़रमाया कि लो अब यह चाबी हमेशा तुम्हारे ही ख़ानदान के पास क़ियामत तक रहेगी, जो शख़्स तुमसे यह चाबी लेगा वह ज़ालिम होगा। मक़सद यह था कि किसी दूसरे शख़्स को इसका हक़ नहीं कि तुम से यह चाबी ले ले, इसी के साथ यह हिदायत फ़रमाई कि बैतुल्लाह की इस ख़िदमत के सिले में तुम्हें जो माल मिल जाये उसको शरई क़ायदे के मुवाफ़िक़ इस्तेमाल करो।

उस्मान बन तलहा रज़ियल्लाहु अ़न्हु कहते हैं कि जब मैं चाबी लेकर ख़ुशी ख़ुशी चलने लगा तो आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फिर मुझे आवाज़ दी और फ़रमाया- क्यों उस्मान जो बात मैंने कही थी वह पूरी हुई या नहीं? अब मुझे वह बात याद आ गई जो आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने हिजरत से पहले फ़रमाई थी कि एक दिन तुम यह चाबी मेरे पास देखोगे। मैंने अ़र्ज़ किया कि बेशक आपका इरशाद पूरा हुआ और उस वक़्त में कलिमा पढ़कर मुसलमान हो गया। (तफ़सीरे मज़हरी, इब्ने सअ़द की रिवायत से)

हज़रत फ़ारूक़े आज़म उमर बिन ख़त्ताब रज़ियल्लाहु अ़न्हु फ़रमाते हैं कि उस दिन जब आप बैतुल्लाह से बाहर तशरीफ़ लाये तो यह आयत आपकी ज़बान पर थीः

إِنَّ اللّٰهَ يَأْمُرُكُمْ أَنْ تُؤَدُّوا الْأَمٰنٰتِ إِلٰى أَهْلِهَا.

इससे पहले मैंने यह आयत कभी आप से न सुनी थी। ज़ाहिर यह है कि यह आयत उस वक़्त काबे के बीचों बीच नाज़िल हुई थी। इसी आयत की तामील में आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने दोबारा उस्मान बिन तलहा रज़ियल्लाहु अ़न्हु को बुलाकर चाबी उनके सुपुर्द की, क्योंकि उस्मान बिन तलहा रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने जब यह चाबी आपको दी थी तो यह कहकर दी

थी कि "मैं यह अमानत आपके सुपुर्द करता हूँ" अगरचे ज़ाब्ते से उनका यह कहना सही न था बल्कि रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ही को हर तरह का इख़्तियार था कि जो चाहें करें, लेकिन क़ुरआने करीम ने अमानत की शक्ल की भी रियायत फ़रमाई और आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को इसकी हिदायत की कि चाबी उस्मान बिन तलहा को वापस कर दें, हालाँकि उस वक़्त हज़रत अ़ब्बास और हज़रत अ़ली रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने भी आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से यह दरख़्वास्त की थी कि जिस तरह बैतुल्लाह की ख़िदमत सक़ाया और सदाना हमारे पास है यह चाबी संभालने की ख़िदमत भी हमें अ़ता फ़रमा दीजिये, मगर उक्त आयत की हिदायत के मुताबिक़ आपने उनकी दरख़्वास्त रद्द करके चाबी उस्मान बिन तलहा रज़ियल्लाहु अ़न्हु को वापस फ़रमा दी। (तफ़सीरे मज़हरी)

यहाँ तक आयत के शाने नुज़ूल पर कलाम था, और इस पर सब का इत्तिफ़ाक़ है कि आयत का शाने नुज़ूल (उतरने का मौक़ा और सबब) अगरचे कोई ख़ास वाक़िआ़ हुआ करता है लेकिन हुक्म आ़म होता है, जिसकी पाबन्दी पूरी उम्मत के लिये ज़रूरी होती है।

अब इसके मायने और मतलब मुलाहिज़ा कीजिये।

इरशाद है:

اِنَّ اللّٰهَ يَاْمُرُكُمْ اَنْ تُؤَدُّوا الْاَمٰنٰتِ اِلٰٓى اَهْلِهَا

यानी "अल्लाह तआ़ला तुमको हुक्म देता है कि अमानतें उनके मुस्तहिक़ों (हक़दार लोगों) को पहुँचाया करो।" इस हुक्म का मुख़ातब यह भी हो सकता है कि आ़म मुसलमान हों और यह भी संभावना है कि ख़ास अमीर व हाकिम लोग मुख़ातब हों और ज़्यादा ज़ाहिर यह है कि हर वह शख़्स मुख़ातब है जो किसी अमानत का अमीन है, इसमें अ़वाम भी दाख़िल हैं और हाकिम व अमीर भी।

अमानत अदा करने की ताकीद

हासिल इस इरशाद का यह है कि जिसके हाथ में कोई अमानत है उस पर लाज़िम है कि यह अमानत उसके अहल व मुस्तहिक़ को पहुँचा दे। रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने अमानत अदा करने की बड़ी ताकीद फ़रमाई है। हज़रत अनस रज़ियल्लाहु अ़न्हु फ़रमाते हैं कि बहुत कम ऐसा होगा कि रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने कोई ख़ुतबा दिया हो और उसमें यह इरशाद न फ़रमाया हो:

لَا اِيْمَانَ لِمَنْ لَا اَمَانَةَ لَهٗ وَلَا دِيْنَ لِمَنْ لَا عَهْدَ لَهٗ.

"यानी जिसमें अमानतदारी नहीं उसमें ईमान नहीं, और जिस शख़्स में मुआ़हदे की पाबन्दी नहीं उसमें दीन नहीं।" (यह रिवायत बैहक़ी ने शुअ़बुल-ईमान में नक़ल की है)

ख़ियानत निफ़ाक़ की निशानी है

बुख़ारी और मुस्लिम में हज़रत अबू हुरैरह और हज़रत इब्ने उमर रज़ियल्लाहु अ़न्हुमा से

रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने एक दिन निफ़ाक़ की अलामतें बतलाते हुए एक अलामत यह बतलाई कि जब अमानत उसके पास रखी जाये तो ख़ियानत करे।

अमानत की क़िस्में

इस जगह यह बात ग़ौर-तलब है कि क़ुरआने करीम ने लफ़्ज़ अमानत बहुवचन के लफ़्ज़ में इस्तेमाल फ़रमाया है, जिसमें इशारा है कि अमानत सिर्फ़ यही नहीं कि किसी का कोई माल किसी के पास रखा हो, जिसको आम तौर पर अमानत कहा और समझा जाता है, बल्कि अमानत की कुछ और क़िस्में भी हैं, जो वाक़िआ आयत के नुज़ूल का अभी ज़िक्र किया गया ख़ुद उसमें भी कोई माली अमानत नहीं, बैतुल्लाह की चाबी कोई ख़ास माल न था बल्कि यह चाबी बैतुल्लाह की ख़िदमत के एक ओहदे की निशानी थी।

हुकूमत के ओहदे अल्लाह की अमानतें हैं

इससे मालूम हुआ कि हुकूमत के ओहदे और पद जितने हैं वो सब अल्लाह की अमानतें हैं जिनके अमीन वे हाकिम और अफ़सर हैं जिनके हाथ में मुक़र्रर व नियुक्ति करने और हटाने के अधिकार हैं, उनके लिये जायज़ नहीं कि कोई ओहदा किसी ऐसे शख़्स के सुपुर्द कर दें जो अपनी अमली या इल्मी क़ाबलियत के एतिबार से उसका अहल (पात्र) नहीं है, बल्कि उन पर लाज़िम है कि हर काम और हर ओहदे के लिये अपने दायरा-ए-हुकूमत में उसके अहल और पात्र की तलाश करें।

किसी ओहदे पर ना-अहल को बैठाने वाला मलऊन है

पूरी अहलियत वाला, तमाम शर्तों वाला कोई न मिले तो मौजूदा लोगों में क़ाबलियत और अमानतदारी के एतिबार से जो सबसे ज़्यादा बढ़ा हुआ हो उसको तरजीह दी जाये।

एक हदीस में रसूले करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम का इरशाद है कि जिस शख़्स को आम मुसलमानों की कोई ज़िम्मेदारी सुपुर्द की गई हो, फिर उसने कोई ओहदा किसी शख़्स को महज़ दोस्ती व ताल्लुक़ के लिहाज़ में, बग़ैर अहलियत मालूम किये दे दिया उस पर अल्लाह तआला की लानत है। न उसका फ़र्ज़ मक़बूल है न नफ़िल, यहाँ तक कि वह जहन्नम में दाख़िल हो जाये। (जमउल-फ़वाईद पेज 325)

कुछ रिवायतों में है कि जिस शख़्स ने कोई ओहदा किसी शख़्स के सुपुर्द किया हालाँकि उसके इल्म में था कि दूसरा आदमी उस ओहदे के लिये उससे ज़्यादा क़ाबिल और अहल है तो उसने अल्लाह की ख़ियानत की और रसूल की और सब मुसलमानों की। आज जहाँ हुकूमती निज़ाम की गिरावट नज़र आती है वह सब इस क़ुरआनी तालीम को नज़र-अन्दाज़ कर देने का नतीजा है, कि ताल्लुक़ात, सिफ़ारिशों और रिश्वतों से ओहदे तक़सीम किये जाते हैं, जिसका नतीजा यह होता है कि ना-अहल और नाक़ाबिल लोग ओहदों पर क़ाबिज़ होकर ख़ुदा की

मख़्लूक़ को परेशान करते हैं और सारा निज़ामे हुकूमत बरबाद हो जाता है।

इसी लिये आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने एक हदीस में इरशाद फ़रमायाः

إِذَا وُسِّدَ الْأَمْرُ إِلَى غَيْرِ أَهْلِهِ فَانْتَظِرِ السَّاعَةَ

यानी "जब देखो कि कामों की ज़िम्मेदारी ऐसे लोगों के सुपुर्द कर दी गई जो उस काम के अहल और काबिल नहीं तो (अब इस फ़साद का कोई इलाज नहीं) कियामत का इन्तिज़ार करो।" (यह रिवायत सही बुख़ारी किताबुल-इल्म में है)

ख़ुलासा यह है कि क़ुरआने करीम ने लफ़्ज़ 'अमानात' जमा (बहुवचन) लाकर इसकी तरफ़ इशारा कर दिया कि अमानत सिर्फ़ इसी का नाम नहीं कि एक शख़्स का माल किसी दूसरे शख़्स के पास बतौर अमानत रखा हो, बल्कि अमानत की बहुत सी किस्में हैं जिनमें हुकूमत के ओहदे भी दाख़िल हैं।

और एक हदीस में आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का इरशाद हैः

اَلْمَجَالِسُ بِالْأَمَانَةِ

"यानी मज्लिसें अमानतदारी के साथ होनी चाहियें।"

मतलब यह है कि मज्लिस में जो बात कही जाये वह उसी मज्लिस की अमानत है उनकी इजाज़त के बग़ैर उसको दूसरों से नक़ल करना और फैलाना जायज़ नहीं।

इसी तरह एक हदीस में हैः

اَلْمُسْتَشَارُ مُؤْتَمَنٌ

"यानी जिस शख़्स से कोई मश्विरा लिया जाये वह अमीन है।" उस पर लाज़िम है कि मश्विरा वही दे जो उसके नज़दीक मश्विरा लेने वाले के हक़ में मुफ़ीद और बेहतर हो। अगर जानते हुए ख़िलाफ़ मश्विरा दे दिया तो अमानत में ख़ियानत करने वाला हो गया। इसी तरह किसी ने आप से अपना राज़ कहा तो वह उसकी अमानत है, बग़ैर उसकी इजाज़त के किसी से कह देना ख़ियानत है। उक्त आयत में इन सब अमानतों का हक़ अदा करने की ताकीद है।

यहाँ तक पहली आयत के शुरू के जुमले की तफ़सीर थी, आगे पहली आयत के दूसरे जुमले की तफ़सीर हैः

وَإِذَا حَكَمْتُمْ بَيْنَ النَّاسِ أَنْ تَحْكُمُوْا بِالْعَدْلِ

यानी "जब तुम लोगों के आपसी झगड़ों का फ़ैसला करने लगो तो अ़दल व इन्साफ़ के साथ किया करो।" ज़ाहिर यह है कि इसका ख़िताब हाकिम व सरदार लोगों को है, जो झगड़ों व मुक़द्दमों का फ़ैसला किया करते हैं, और इसी लिहाज़ से कुछ हज़रात ने पहले जुमले का मुख़ातब भी हाकिमों व सरदारों को क़रार दिया है, अगरचे पहले जुमले की तरह इसमें भी गुन्जाईश इसकी मौजूद है कि हाकिम व अ़वाम दोनों इस ख़िताब में शामिल हों, क्योंकि अ़वाम में अक्सर दोनों पक्ष किसी को मध्यस्थ बनाकर फ़ैसला कर दिया करते हैं इसी तरह झगड़ों का फ़ैसला करना अ़वाम में भी पाया जाता है, मगर इसमें शुब्हा नहीं कि पहली नज़र में इन दोनों जुमलों के

मुख़ातब हाकिम व सरदार ही मालूम होते हैं, इसलिये यह कहा जा सकता है कि इनके पहले मुख़ातब हाकिम और सरदार लोग हैं और दूसरे दर्जे में यह ख़िताब हर उस शख़्स के लिये भी है जिसके पास लोगों की अमानतें हों और जिसको किसी मुक़द्दमे का मध्यस्थ बना दिया जाये।

इस जुमले में हक़ तआला ने 'बैनन्नास' (लोगों के बीच) फ़रमाया 'बैनल-मुस्लिमीन' या 'बैनल-मोमिनीन' (मुसलमानों या मोमिनों के बीच) नहीं फ़रमाया। इसमें इशारा फ़रमा दिया कि मुक़द्दमों के फ़ैसलों में सब इनसान बराबर हैं, मुस्लिम हों या ग़ैर-मुस्लिम, और दोस्त हों या दुश्मन, अपने वतन के हों, हम-रंग हों, एक भाषा के हों या ग़ैर, फ़ैसला करने वालों का फ़र्ज़ है कि इन सब संबन्धों से अलग होकर जो भी हक़ व इन्साफ़ का तक़ाज़ा हो वह फ़ैसला करें।

अ़दल व इन्साफ़ विश्व-शांति का ज़ामिन है

ग़र्ज़ कि आयत के पहले जुमले में अमानतें अदा करने का हुक्म है और दूसरे में अ़दल व इन्साफ़ का। इनमें अमानतें अदा करने को मुक़द्दम किया गया, शायद इसकी वजह यह हो कि पूरे मुल्क में अ़दल व इन्साफ़ की स्थापना इसके बग़ैर हो ही नहीं सकती कि जिनके हाथ में मुल्क का इक़्तिदार (सत्ता व हुकूमत) है वे पहले अमानतें अदा करने का फ़रीज़ा सही तौर पर अदा करें, यानी हुकूमत के ओ़हदों पर सिर्फ़ उन्हीं लोगों को नियुक्त करें जो काम करने की सलाहियत और अमानत व दियानत के एतिबार से उस ओ़हदे के लिये सबसे ज़्यादा बेहतर नज़र आयें। दोस्ती और ताल्लुक़ात या महज़ सिफ़ारिश या रिश्वत को इसमें राह न दें, वरना नतीजा यह होगा कि ना-अहल नाक़ाबिल या ख़ियानत करने वाले और ज़ालिम लोग ओ़हदों पर क़ाबिज़ हो जायेंगे, फिर अगर हुकूमत व इख़्तियार वाले दिल से भी यह चाहें कि मुल्क में अ़दल व इन्साफ़ का चलन व रिवाज हो तो उनके लिये नामुम्किन हो जायेगा, क्योंकि हुकूमत के ये ओ़हदेदार ही हुकूमत के हाथ और पैर हैं, जब ये ख़ाईन (चोर और बेईमान) या नाक़ाबिल हुए तो अ़दल व इन्साफ़ क़ायम करने का कौनसा रास्ता है?

इस आयत में यह बात ख़ास तौर पर याद रखने के क़ाबिल है कि इसमें हक़ तआ़ला ने हुकूमत के ओ़हदों को भी अमानत क़रार देकर अव्वल तो यह वाज़ेह फ़रमा दिया कि जिस तरह अमानत सिर्फ़ उसी को अदा करनी चाहिये जो उसका मालिक है, किसी फ़क़ीर मिस्कीन पर रहम खाकर किसी की अमानत उसको देना जायज़ नहीं, या किसी रिश्तेदार या दोस्त का हक़ अदा करने के लिये किसी शख़्स की अमानत उसको दे देना दुरुस्त नहीं, इसी तरह हुकूमत के ओ़हदे जिनके साथ अल्लाह की आ़म मख़्लूक़ का काम संबन्धित होता है ये भी अमानतें हैं, और इन अमानतों के मुस्तहिक़ (हक़दार व पात्र) सिर्फ़ वे लोग हैं जो अपनी काम की सलाहियत और क़ाबलियत व क्षमता के एतिबार से भी उस ओ़हदे के लिये मुनासिब और मौजूदा लोगों में सबसे बेहतर हों, और दियानत व अमानत के एतिबार से भी सब में बेहतर हों, उनके सिवा किसी दूसरे को यह ओ़हदा सुपुर्द कर दिया तो यह अमानत अदा न हुई।

क्षेत्रीय व प्रांतीय बुनियादों पर हुकूमत के ओहदे सुपुर्द करना उसूली ग़लती है

इसके साथ क़ुरआने हकीम के इस जुमले ने उस आम ग़लती को भी दूर कर दिया जो अक्सर मुल्कों के दस्तूरों में चल रही है कि हुकूमत के ओहदों को मुल्क के रहने वालों के हुक़ूक़ क़रार दे दिया है।

और इस उसूली ग़लती की बिना पर यह क़ानून बनाना पड़ा कि हुकूमत के ओहदे आबादी के अनुपात के उसूल पर तक़सीम किये जायें, हर सूबे (राज्य) के लिये कोटे मुक़र्रर हैं, एक सूबे के कोटे में दूसरे सूबे का आदमी नहीं रखा जा सकता, चाहे वह कितना ही क़ाबिल और अमीन क्यों न हो, और उस सूबे का आदमी कितना ही ग़लत काम करने वाला ना-अहल हो। क़ुरआने करीम ने साफ़ ऐलान फ़रमा दिया कि ये ओहदे किसी के हक़ नहीं बल्कि अमानतें हैं, अलबत्ता किसी ख़ास इलाक़े और सूबे पर हुकूमत के लिये उसी इलाक़े के आदमी को तरजीह दी जा सकती है कि इसमें बहुत सी मस्लेहतें हैं, मगर शर्त यह है कि काम की सलाहियत और अमानत में उस पर पूरा इत्मीनान हो।

मुल्की क़वानीन के चन्द सुनहरे उसूल

इस तरह इस मुख़्तसर आयत में मुल्की क़वानीन व दस्तूर के चन्द बुनियादी उसूल आ गये जो इस प्रकार हैं:

1. अव्वल यह कि आयत के पहले जुमले को 'इन्नल्ला-ह यअ्मुरुकुम' से शुरू फ़रमाकर इस तरफ़ इशारा कर दिया कि असल हुक्म अल्लाह तआ़ला का है, दुनिया के बादशाह व हाकिम (शासक) सब उसके मामूर (ताबे) हैं। इससे साबित हुआ कि मुल्क में असल हुकूमत व इख़्तियार सिर्फ़ अल्लाह तआ़ला का है।

2. दूसरे यह कि हुकूमत के ओहदे मुल्क के बाशिंदों के हुक़ूक़ नहीं जिनको आबादी के हिसाब वाले उसूल पर तक़सीम किया जाये, बल्कि अल्लाह तआ़ला की तरफ़ से दी हुई अमानतें हैं जो सिर्फ़ उनके अहल और क़ाबिल लोगों को दिये जा सकते हैं।

3. तीसरे यह कि ज़मीन पर इनसान की हुकुमरानी सिर्फ़ एक नायब व अमीन की हैसियत से हो सकती है, वह मुल्क के क़ानून बनाने में उन उसूलों का पाबन्द रहेगा जो हाकिमे मुतलक़ हक़ तआ़ला की तरफ़ से वही के ज़रिये बतला दिये गये हैं।

4. चौथे यह कि हाकिमों व सरदारों (शासकों) का फ़र्ज़ है कि जब कोई मुक़द्दमा उनके पास आये तो नस्ल व वतन और रंग व भाषा यहाँ तक कि मज़हब व मस्लक का भेदभाव किये बग़ैर अ़दल व इन्साफ़ वाला फ़ैसला करें।

इस आयत में मुल्की क़वानीन व दस्तूर के सुनहरे उसूल बतलाकर आख़िर में इरशाद

फ़रमाया कि अल्लाह तआ़ला ने तुमको जो नसीहत की है वह बहुत ही अच्छी है, क्योंकि अल्लाह तआ़ला हर शख़्स की सुनता है और जो बोलने और फ़रियाद करने पर भी क़ुदरत न रखता हो उसके हालात को ख़ुद देखता है, इसलिये उसके बतलाये और बनाये हुए उसूल ही ऐसे हैं जो हमेशा हर मुल्क और हर दौर में क़ाबिले अ़मल हो सकते हैं, इनसानी दिमाग़ों के बनाये उसूल व दस्तूर सिर्फ़ अपने माहौल के अन्दर सीमित हुआ करते हैं, और हालात की तब्दीली के बाद उनका बदला अनिवार्य होता है। जिस तरह पहली आयत के मुख़ातब हाकिम व सरदार लोग थे, दूसरी आयत में अ़वाम को मुख़ातब फ़रमाकर इरशाद फ़रमाया कि ऐ ईमान वालो! तुम अल्लाह की और रसूल की और अपने हाकिमों व सरदारों की इताअ़त (फ़रमाँबरदारी) करो।

'उलुल-अमृर' कौन लोग हैं?

'उलुल-अमृर' लुग़त में उन लोगों को कहा जाता है जिनके हाथ में किसी चीज़ का निज़ाम व इन्तिज़ाम हो, इसी लिये हज़रत इब्ने अ़ब्बास, मुजाहिद और हसन बसरी वग़ैरह क़ुरआन के मुफ़स्सिरीन हज़रात ने उलुल-अमृर के मिस्दाक़ उलेमा व फ़ुक़हा को क़रार दिया है कि वे रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के नायब हैं, और निज़ामे दीन उनके हाथ में है।

और मुफ़स्सिरीन की एक जमाअ़त ने जिनमें हज़रत अबू हुरैरह रज़ियल्लाहु अ़न्हु भी शामिल हैं फ़रमाया कि उलुल-अमृर से मुराद हाकिम व अमीर लोग हैं जिनके हाथ में हुकूमत का निज़ाम (कन्ट्रोल) है।

और तफ़सीर इब्ने कसीर और तफ़सीरे मज़हरी में है कि यह लफ़्ज़ दोनों तब्क़ों को शामिल है, यानी उलेमा को भी और हाकिमों व सरदारों को भी। क्योंकि मामलात का निज़ाम इन्हीं दोनों के साथ जुड़ा हुआ है।

इस आयत में ज़ाहिरी तौर पर तीन की इताअ़तों का हुक्म है- अल्लाह, रसूल, उलुल-अमृर। लेकिन क़ुरआन की दूसरी आयतों ने यह वाज़ेह फ़रमा दिया कि हुक्म व इताअ़त दर असल सिर्फ़ एक अल्लाह तआ़ला की है:

إِنِ الْحُكْمُ إِلَّا لِلّٰهِ

मगर उसके हुक्म और उसकी इताअ़त की अ़मली सूरत चार हिस्सों में बंटी हुई है।

हुक्म और इताअ़त की तीन अ़मली सूरतें

एक वह जिस चीज़ का हुक्म स्पष्ट तौर पर ख़ुद हक़ तआ़ला ने क़ुरआन में नाज़िल फ़रमा दिया और उसमें किसी तफ़सील व व्याख्या की हाजत नहीं। जैसे शिर्क व कुफ़्र का हद से बड़ा जुर्म होना, एक अल्लाह की इबादत करना, आख़िरत व क़ियामत पर यक़ीन रखना और मुहम्मद मुस्तफ़ा सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को अल्लाह का आख़िरी सच्चा रसूल मानना। नमाज़, रोज़ा, ज़कात, हज को फ़र्ज़ समझना। ये वो चीज़ें हैं जो डायरेक्ट अल्लाह के अहकाम हैं, इनकी तामील डायरेक्ट हक़ तआ़ला की इताअ़त (फ़रमाँबरदारी) है।

दूसरा हिस्सा अहकाम का वह है जिसमें तफ़सीलात व व्याख्या की ज़रूरत है। उनमें क़ुरआने करीम अक्सर एक संक्षिप्त या ग़ैर-वाज़ेह हुक्म देता है और उसकी तशरीह व तफ़सील नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के हवाले की जाती है, फिर वह तफ़सील व तशरीह जो आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम अपनी हदीसों के ज़रिये फ़रमाते हैं वह भी एक क़िस्म की वही होती है। अगर उस तफ़सील व तशरीह में कोशिश के बावजूद कोई कमी या कोताही रह जाती है तो वही के ज़रिये उसकी इस्लाह फ़रमा दी जाती है और आख़िरकार आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का कौल व अ़मल जो आख़िर में होता है वह हुक्मे इलाही का तर्जुमान होता है।

इस क़िस्म के अहकाम की इताअ़त भी अगरचे दर हक़ीक़त अल्लाह तआ़ला ही की इताअ़त है लेकिन ज़ाहिरी एतिबार से चूँकि ये अहकाम स्पष्ट तौर पर क़ुरआन में नहीं बल्कि हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की ज़बाने मुबारक से उम्मत को पहुँचे हैं, इसलिये इनकी इताअ़त ज़ाहिरी एतिबार से इताअ़ते रसूल ही कहलाती है जो हक़ीक़त में इताअ़ते इलाही के साथ संयुक्त होने के बावजूद ज़ाहिरी एतिबार से एक अलग हैसियत रखती है। इसी लिये पूरे क़ुरआन में अल्लाह तआ़ला की इताअ़त का हुक्म देने के साथ इताअ़ते रसूल का हुक्म अलग से मुस्तक़िल तौर पर ज़िक्र किया गया है।

तीसरा दर्जा अहकाम का वह है जो न क़ुरआन में स्पष्ट तौर पर मज़कूर हैं न हदीस में। या हदीस के ज़ख़ीरे में उसके बारे में एक-दूसरे के मुख़ालिफ़ रिवायतें मिलती हैं, ऐसे अहकाम में उलेमा-ए-मुज्तहिदीन क़ुरआन व सुन्नत के दलाईल व इशारात और ज़ेरे-ग़ौर मसले ही की तरह के दूसरे मसाईल में ग़ौर व फ़िक्र करके उनका हुक्म तलाश करते हैं, इन अहकाम की इताअ़त भी अगरचे हक़ीक़त के एतिबार से क़ुरआन व सुन्नत से साबित होने की वजह से इताअ़ते ख़ुदावन्दी ही की एक क़िस्म है, मगर ज़ाहिर के एतिबार से ये फ़िक़्ही फ़तावा कहलाते हैं और उलेमा की तरफ़ मन्सूब हैं।

इसी तीसरी क़िस्म में ऐसे अहकाम भी हैं जिनमें किताब व सुन्नत की रू से कोई पाबन्दी आ़यद नहीं, बल्कि उनमें अ़मल करने वालों को इख़्तियार है जिस तरह चाहें करें, जिनको इस्तिलाह में मुबाह चीज़ें कहा जाता है। ऐसे अहकाम में अ़मली इन्तिज़ाम हाकिमों व अमीरों (सरदारों) के सुपुर्द है, कि वे हालात और मस्लेहतों को सामने रखते हुए कोई क़ानून बनाकर सब को उस पर चलायें। जैसे शहर कराची में डाकख़ाने पचास हों या सौ, पुलिस स्टेशन कितने हों, रेलवे का निज़ाम किस तरह हो, आबादकारी का इन्तिज़ाम किन उसूलों पर किया जाये, ये सब मुबाहात हैं, इनकी कोई जानिब न वाजिब है न हराम, बल्कि इख़्तियारी है, लेकिन यह इख़्तियार अ़वाम को दे दिया जाये तो कोई निज़ाम नहीं चल सकता इसलिये निज़ाम की ज़िम्मेदारी हुकूमत पर है।

उक्त आयत में उलुल-अम्र की इताअ़त से उलेमा और हुक्काम दोनों की इताअ़त मुराद है इसलिये इस आयत की रू से फ़िक़्ही तहक़ीक़ात में फ़ुक़हा की इताअ़त और इन्तिज़ामी मामलात में हाकिमों व सरदारों की इताअ़त वाजिब हो गई।

यह इताअ़त भी दर हक़ीक़त अल्लाह जल्ल शानुहू के अहकाम ही की इताअ़त है, लेकिन ज़ाहिरी स्तर के एतिबार से ये अहकाम न क़ुरआन में हैं न सुन्नत में, बल्कि इनका बयान या तो उलेमा की तरफ़ से हो या हाकिमों की तरफ़ से, इसलिये इस इताअ़त को तीसरा अलग नम्बर क़रार देकर उलुल-अम्र की इताअ़त नाम रखा गया, और जिस तरह क़ुरआन के स्पष्ट अहकाम में क़ुरआन का इत्तिबा और रसूल के स्पष्ट अहकाम में रसूल का इत्तिबा लाज़िम व वाजिब है इसी तरह ग़ैर-मन्सूस फ़िक़्ही चीज़ों (यानी जो अहकाम स्पष्ट रूप से क़ुरआन व हदीस में मज़कूर न हों) में फ़ुक़हा का और इन्तिज़ामी मामलात में हाकिमों सरदारों का इत्तिबा (हुक्म का पालन) वाजिब है। यही मतलब है उलुल-अम्र की इताअ़त का।

ख़िलाफ़े शरीअ़त कामों में अमीर की इताअ़त जायज़ नहीं

وَاِذَا حَكَمْتُمْ بَيْنَ النَّاسِ اَنْ تَحْكُمُوْا بِالْعَدْلِ.

इस आयत में अल्लाह तआ़ला ने जिस काम को इरशाद फ़रमाया कि अगर तुम लोगों के दरमियान कोई फ़ैसला करो तो अ़दल व इन्साफ़ के साथ करो और इससे पहले अल्लाह तआ़ला ने लोगों को उलुल-अमूर (इख़्तियार वाले लोगों) की इताअ़त की तालीम दी इससे इशारा इस बात की तरफ़ कर दिया कि अमीर अगर अ़दल (इन्साफ़) पर क़ायम रहे तो उसकी इताअ़त वाजिब है, और अगर वह अ़दल व इन्साफ़ को छोड़कर ख़िलाफ़े शरीअ़त अहकाम जारी करे तो उनमें अमीर की इताअ़त नहीं की जायेगी (यानी उसका हुक्म नहीं माना जायेगा) चुनाँचे हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का इरशाद है:

لاطاعة لمخلوق فی معصیة الخالق.

"यानी मख़्लूक़ की ऐसी इताअ़त जायज़ नहीं जिसमें ख़ालिक़ की नाफ़रमानी लाज़िम आती हो।"

इस आयत में अल्लाह तआ़ला इरशाद फ़रमा रहे हैं कि अगर तुम लोगों के दरमियान फ़ैसला करो तो अ़दल (इन्साफ़) के साथ करो। इससे यह बात मालूम होती है कि जो आदमी अ़दल व इन्साफ़ को क़ायम रखने की ताक़त और सलाहियत न रखता हो तो उसको क़ाज़ी भी नहीं बनना चाहिये, क्योंकि इन्साफ़ के साथ फ़ैसला करना भी एक अमानत है जिसकी हिफ़ाज़त कमज़ोर और ना-अहल आदमी नहीं कर सकता। चुनाँचे जब हज़रत अबूज़र रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से दरख़्वास्त की कि आप मुझे किसी जगह का हाकिम मुक़र्रर (नियुक्त) फ़रमा दें तो आपने जवाब में इरशाद फ़रमाया कि:

يَا اَبَاذَرٍّ اِنَّكَ ضَعِيْفٌ وَاِنَّهَا اَمَانَةٌ وَاِنَّهَا يَوْمَ الْقِيٰمَةِ خِزْیٌ وَنَدَامَةٌ اِلَّا مَنْ اَخَذَ بِحَقِّهَا وَاَدّٰى الَّذِىْ عَلَيْهِ فِيْهَا.

(رواه مسلم بحواله مظهرى)

"ऐ अबूज़र! आप कमज़ोर आदमी हैं और ओहदा एक अमानत है जिसकी वजह से क़ियामत के दिन इन्तिहाई ज़िल्लत व रुस्वाई होगी सिवाय उस शख़्स के जिसने अमानत का हक़ पूरा कर दिया हो (यानी वह ज़िल्लत से बच जायेगा)।"

आदिल आदमी अल्लाह तआला का बहुत ज़्यादा प्यारा बन्दा है

एक हदीस में हुज़ूरे अकरम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने इरशाद फ़रमाया कि आदिल (इन्साफ़ करने वाला) अल्लाह का महबूब और क़रीब तरीन इनसान है, और ज़ालिम अल्लाह की रहमत और नज़रे करम से दूर होता है।

एक दूसरी हदीस में आता है कि नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने सहाबा रज़ियल्लाहु अन्हुम से फ़रमाया- तुम जानते हो कि सबसे पहले अल्लाह के साये के नीचे कौन जायेगा? उन्होंने जवाब दिया कि अल्लाह और उसके रसूल ही को इस बात का ज़्यादा इल्म है, तो फिर आपने इरशाद फ़रमाया- ये वे लोग होंगे जिनके सामने जब हक़ आ जाये तो फ़ौरन क़ुबूल कर लेते हैं, और जब उनसे सवाल किया जाता है तो माल को ख़र्च करते हैं और जब वे फ़ैसला करते हैं तो ऐसा न्यायपूर्ण करते हैं जैसा कि वे अपने लिये करते।

इज्तिहाद और क़ियास का सुबूत

अल्लाह तआला का क़ौल है:

فَإِنْ تَنَازَعْتُمْ فِي شَيْءٍ فَرُدُّوهُ إِلَى اللّٰهِ وَالرَّسُولِ

इस आयत में अल्लाह तआला ने हुक्म दिया है कि अगर तुम्हारा किसी मामले में विवाद व मतभेद हो जाये तो तुम अल्लाह और रसूल की जानिब रुजू करो।

किताब व सुन्नत की तरफ़ रुजू करने की दो सूरतें हैं- एक यह कि किताब व सुन्नत के स्पष्ट बयान किये हुए अहकाम की तरफ़ रुजू किया जाये, दूसरी सूरत यह है कि अगर स्पष्ट अहकाम मौजूद नहीं हैं तो उनके नज़ीरों (यानी उन जैसे अहकाम) पर क़ियास (अन्दाज़ा) करके रुजू किया जायेगा। 'फ़-रुद्दुहू' के अलफ़ाज़ आम हैं जो दोनों सूरतों को शामिल हैं।

أَلَمْ تَرَ إِلَى الَّذِينَ يَزْعُمُونَ أَنَّهُمْ آمَنُوا بِمَا أُنْزِلَ إِلَيْكَ وَمَا أُنْزِلَ
مِنْ قَبْلِكَ يُرِيدُونَ أَنْ يَتَحَاكَمُوا إِلَى الطَّاغُوتِ وَقَدْ أُمِرُوا أَنْ يَكْفُرُوا بِهِ ۖ وَيُرِيدُ الشَّيْطٰنُ
أَنْ يُضِلَّهُمْ ضَلٰلًا بَعِيدًا ۝ وَإِذَا قِيلَ لَهُمْ تَعَالَوْا إِلَىٰ مَا أَنْزَلَ اللّٰهُ وَإِلَى الرَّسُولِ رَأَيْتَ
الْمُنٰفِقِينَ يَصُدُّونَ عَنْكَ صُدُودًا ۝ فَكَيْفَ إِذَا أَصَابَتْهُمْ مُصِيبَةٌ بِمَا قَدَّمَتْ أَيْدِيهِمْ ثُمَّ
جَاءُوكَ يَحْلِفُونَ ۖ بِاللّٰهِ إِنْ أَرَدْنَا إِلَّا إِحْسَانًا وَتَوْفِيقًا ۝ أُولٰئِكَ الَّذِينَ يَعْلَمُ اللّٰهُ مَا فِي قُلُوبِهِمْ
فَأَعْرِضْ عَنْهُمْ وَعِظْهُمْ وَقُلْ لَهُمْ فِي أَنْفُسِهِمْ قَوْلًا بَلِيغًا ۝ وَمَا أَرْسَلْنَا مِنْ رَسُولٍ إِلَّا لِيُطَاعَ
بِإِذْنِ اللّٰهِ ۚ وَلَوْ أَنَّهُمْ إِذْ ظَلَمُوا أَنْفُسَهُمْ جَاءُوكَ فَاسْتَغْفَرُوا اللّٰهَ وَاسْتَغْفَرَ لَهُمُ الرَّسُولُ لَوَجَدُوا
اللّٰهَ تَوَّابًا رَحِيمًا ۝

<table>
<tr>
<td>अलम् त-र इलल्लज़ी-न यज़्अुमू-न अन्नहुम् आमनू बिमा उन्ज़ि-ल इलै-क व मा उन्ज़ि-ल मिन् क़ब्लि-क युरीदू-न अंय्य-तहाकमू इलत्तागूति व क़द् उमिरू अंय्यक्फ़ुरू बिही, व युरीदुश्शैतानु अंय्युज़िल्लहुम् ज़लालम् बअ़ीदा (60) व इज़ा क़ी-ल लहुम् तआ़लौ इला मा अन्ज़लल्लाहु व इलर्रसूलि रऔतल्-मुनाफ़िक़ी-न यसुद्दू-न अ़न्-क सुदूदा (61) फ़कै-फ़ इज़ा असाबत्हुम् मुसीबतुम् बिमा क़द्दमत् ऐदीहिम् सुम्-म जाऊ-क यह्लिफ़ू-न बिल्लाहि इन् अरद्ना इल्ला इह्सानंव्-व तौफ़ीक़ा (62) उलाइ-कल्लज़ी-न यअ़लमुल्लाहु मा फ़ी क़ुलूबिहिम्, फ़-अअ़्रिज़् अ़न्हुम् व अ़िज़्हुम् व क़ुल्-लहुम् फ़ी अन्फ़ुसिहिम् क़ौलम्-बलीग़ा (63) व मा अर्सल्ना मिर्रसूलिन् इल्ला लियुता-अ बि-इज़्निल्लाहि, व लौ अन्नहुम् इज़्-ज़-लमू अन्फ़ु-सहुम् जाऊ-क फ़स्तग़्फ़रुल्ला-ह वस्तग़्फ़-र लहुमुर्रसूलु ल-व-जदुल्ला-ह तव्वाबर्रहीमा (64)</td>
<td>क्या तूने न देखा उनको जो दावा करते हैं कि ईमान लाये हैं उस पर जो उतरा तेरी तरफ़ और जो उतरा तुझसे पहले, चाहते हैं कि क़ज़िया (इन्साफ़ के लिये मामला) ले जायें शैतान की तरफ़ और हुक्म हो चुका है उनको कि उसको न मानें, और चाहता है शैतान कि उनको बहकाकर दूर जा डाले। (60) और जब उनको कहे कि आओ अल्लाह के हुक्म की तरफ़ जो उसने उतारा और रसूल (सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम) की तरफ़, तो देखे तू मुनाफ़िक़ों को कि हटते हैं तुझसे रुककर। (61) फिर क्या हो जबकि उनको पहुँचे मुसीबत अपने हाथों के किये हुए से, फिर आयें तेरे पास क़समें खाते हुए अल्लाह की कि हमको ग़र्ज़ न थी मगर भलाई और मिलाप। (62) ये वे लोग हैं कि अल्लाह तआ़ला जानता है जो उनके दिल में है, सो तू उनसे बेपरवाह हो और उनको नसीहत कर और उनसे कह उनके हक़ में बात काम की। (63) और हमने कोई रसूल नहीं भेजा मगर इसी वास्ते कि उसका हुक्म मानें अल्लाह के फ़रमाने से, और अगर वे लोग जिस वक़्त उन्होंने अपना बुरा किया था आते तेरे पास फिर अल्लाह से माफ़ी चाहते और रसूल भी उनको बख़्शवाता तो अलबत्ता अल्लाह को पाते माफ़ करने वाला मेहरबान। (64)</td>
</tr>
</table>

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

(ऐ मुहम्मद सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम!) क्या आपने उन लोगों को नहीं देखा जो (ज़बान से तो) दावा करते हैं कि वे (यानी हम) इस किताब पर भी ईमान रखते हैं जो आपकी तरफ़ नाज़िल की गई (यानी क़ुरआन) और उस किताब पर भी जो आपसे पहले नाज़िल की गई (यानी तौरात, क्योंकि उसमें मुनाफ़िक़ों का बयान है और अक्सर मुनाफ़िक़ लोग यहूद में से थे। मतलब यह कि ज़बान से दावा करते हैं कि जिस तरह हम तौरात को मानते हैं उसी तरह क़ुरआन को भी मानते हैं, यानी इस्लाम के दावेदार हैं, फिर इस पर हालत यह है कि) अपने मुक़द्दमे शैतान के पास ले जाना चाहते हैं (क्योंकि शरीअ़त के अ़लावा की तरफ़ मुक़द्दमा ले जाने के लिये शैतान सिखलाता है। पस उस पर अ़मल करना ऐसा है जैसे शैतान ही के पास मुक़द्दमा ले गये) हालाँकि (इससे दो रुकावटें मौजूद हैं, एक यह कि) उनको (शरीअ़त की जानिब से) यह हुक्म हुआ है कि उस (शैतान) को न मानें (यानी एतिक़ाद से व अ़मल से उसकी मुख़ालफ़त करें) और (दूसरी रुकावट यह कि) शैतान (उनका ऐसा दुश्मन और बुरा चाहने वाला है कि) उनको (हक़ रास्ते से) बहका कर बहुत दूर ले जाना चाहता है (पस बावजूद इन दोनों बातों के जिनका तक़ाज़ा यह है कि शैतान के कहने पर अ़मल न करें फिर भी उसकी मुवाफ़क़त करते हैं)।

और जब उनसे कहा जाता है कि आओ उस हुक्म की तरफ़ जो अल्लाह तआ़ला ने नाज़िल फ़रमाया है और (आओ) रसूल (सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम) की तरफ़ (कि आप उस हुक्म के मुवाफ़िक़ फ़ैसला फ़रमा दें) तो आप (उस वक़्त) मुनाफ़िक़ों की यह हालत देखेंगे कि आप (के पास आने) से किनारा करते हैं। फिर कैसी जान को बनती है जब उन पर कोई मुसीबत पड़ती है उनकी उस हरकत की बदौलत जो (उस मुसीबत से) कुछ वे पहले कर चुके थे (मुराद इस हरकत से शरीअ़त को छोड़कर दूसरी जगह मुक़द्दमा ले जाना है और मुसीबत से मुराद जैसे क़त्ल व ख़ियानत व निफ़ाक़ का खुल जाना और पूछगछ होना, यानी उस वक़्त सोच पड़ती है कि इस हरकत की क्या बात बनायें जिसमें फिर इज़्ज़त बची रहे), फिर (मतलब सोचकर) आपके पास आते हैं ख़ुदा की क़समें खाते हुए कि (हम जो दूसरी जगह चले गये थे) हमारा और कुछ मक़सद न था सिवाय इसके कि (मामले के दोनों फ़रीक़ की) कोई भलाई (की सूरत) निकल आए और (उनमें) आपस में मुवाफ़क़त (सुलह-समझौता) हो जाए (मतलब यह कि क़ानून तो शरीअ़त ही का हक़ है हम दूसरी जगह शरीअ़त को नाहक़ समझकर नहीं गये थे लेकिन बात यह है कि क़ानूनी फ़ैसले में तो हक़ वाले को हाकिम रियायत करने के लिये नहीं कह सकता और आपसी फ़ैसले में अक्सर रियायत करा दी जाती है। यह वजह थी हमारे दूसरी जगह जाने की। और क़त्ल के क़िस्से में बात बनाना उस मक़्तूल के फ़ेल के लिये होगा जिससे मक़सद अपना बरी होना या हज़रत उमर रज़ियल्लाहु अ़न्हु पर क़त्ल का दावा करना भी होगा। अल्लाह तआ़ला उनके इस बातें बनाने और मतलब बयान करने को झुठलाते हैं कि) ये वे लोग हैं कि अल्लाह तआ़ला को मालूम है जो कुछ (निफ़ाक़ व कुफ़्र) उनके दिलों में है (कि उस कुफ़्र व निफ़ाक़ और

शरीअ़त के हुक्म पर राज़ी न होने ही की वजह से ये लोग दूसरी जगह जाते हैं, और मुक़र्ररा वक़्त पर इसकी सज़ा भी पा लेंगे) सो (मस्लेहत यही है कि) आप (अल्लाह के इल्म और उसकी पकड़ पर इक्तिफ़ा फ़रमाकर) उनसे बेतवज्जोही कर जाया कीजिए (यानी कुछ पूछगछ और पकड़ न फ़रमाईये) और (वैसे अपने रिसालत के मक़ाम व ज़िम्मेदारी के सबब) उनको नसीहत फ़रमाते रहिये (कि इन हरकतों को छोड़ो) और उनसे उनकी ख़ास ज़ात (की इस्लाह) के बारे में काफ़ी मज़मून कह दीजिए (ताकि उन पर हुज्जत क़ायम और तमाम हो जाये, फिर न मानें तो वे जानें)।

और हमने तमाम पैग़म्बरों को ख़ास इसी वास्ते भेजा है कि अल्लाह तआ़ला के हुक्म से (जो कि इताअ़ते रसूल के बारे में फ़रमाया है) उनकी इताअ़त की जाए (पस अव्वल तो उन लोगों को शुरू ही से इताअ़त करना वाजिब थी) और अगर (ख़ैर नफ़्स की बुराई से हिमाक़त हो गई थी तो) जिस वक़्त (यह गुनाह करके) अपना नुक़सान कर बैठे थे उस वक़्त (शर्मिन्दगी के साथ) आपकी ख़िदमत में हाज़िर हो जाते, फिर (हाज़िर होकर) अल्लाह तआ़ला से (अपने इस गुनाह की) माफ़ी चाहते और रसूल (सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम यानी आप भी) भी उनके लिए अल्लाह तआ़ला से माफ़ी चाहते तो ज़रूर अल्लाह तआ़ला को तौबा का क़ुबूल करने वाला और रहमत करने वाला पाते (यानी अल्लाह तआ़ला अपनी रहमत से तौबा क़ुबूल फ़रमा लेते)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

इन आयतों के मज़मून का पीछे से ताल्लुक़

पहली आयतों में तमाम मामलात में अल्लाह और रसूल के अहकाम की तरफ़ रुजू करने का हुक्म था, अगली इन आयतों से ख़िलाफ़े शरीअ़त क़वानीन की तरफ़ रुजू करने की मज़म्मत (बुराई) बयान की गई है।

इन आयतों का शाने नुज़ूल

इन आयतों के नुज़ूल (उतरने) का एक ख़ास वाक़िआ़ है जिसकी तफ़सील यह है कि बिश्र नाम का एक मुनाफ़िक़ था उसका एक यहूदी के साथ झगड़ा हो गया, यहूदी ने कहा कि चल मुहम्मद (सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम) के पास उनसे फ़ैसला करायें मगर बिश्र नाम के मुनाफ़िक़ ने इसको क़ुबूल न किया, बल्कि कअ़ब बिन अशरफ़ यहूदी के पास जाने और उससे फ़ैसला कराने की तजवीज़ पेश की। कअ़ब बिन अशरफ़ यहूदियों का एक सरदार और रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम और मुसलमानों का सख़्त दुश्मन था। यह अ़जीब बात थी कि यहूदी तो अपने सरदार को छोड़कर आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का फ़ैसला पसन्द करे और अपने आपको मुसलमान कहने वाला बिश्र आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के बजाय यहूदी सरदार का फ़ैसला इख़्तियार करे। मगर राज़ इसमें यह था कि उन दोनों को इस पर यक़ीन था कि

रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम हक़ व इन्साफ़ का फ़ैसला करेंगे, उसमें किसी की रियायत या ग़लत-फ़हमी का अन्देशा नहीं, और चूँकि झगड़े में यहूदी हक़ पर था इसलिये उसको अपने सरदार कअ़ब बिन अशरफ़ से ज़्यादा एतिमाद आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम पर था और बिश्र नाम का मुनाफ़िक़ ग़लती और नाहक़ पर था इसलिये जानता था कि आपका फ़ैसला मेरे ख़िलाफ़ होगा, अगरचे मैं मुसलमान कहलाता हूँ और यह यहूदी है।

उन दोनों में आपसी गुफ़्तगू के बाद यह तय पाया कि दोनों इसी पर राज़ी हो गये कि आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के पास हाज़िर होकर आप ही से अपने मुक़द्दमे का फ़ैसला करायें। मुक़द्दमा आपके पास पहुँचा आपने मामले की तहक़ीक़ फ़रमाई तो हक़ यहूदी का साबित हुआ उसी के हक़ में फ़ैसला दे दिया और बिश्र को जो बज़ाहिर मुसलमान था नाकाम कर दिया। इसलिये वह इस फ़ैसले पर राज़ी न हुआ और एक नई राह निकाली कि किसी तरह यहूदी को इस बात पर राज़ी कर लिया जाये कि हम हज़रत उमर बिन ख़त्ताब रज़ियल्लाहु अ़न्हु के पास फ़ैसला कराने चलें। यहूदी ने इसको क़ुबूल कर लिया। राज़ इसमें यह था कि बिश्र ने यह समझा हुआ था कि हज़रत उमर रज़ियल्लाहु अ़न्हु काफ़िरों के मामले में सख़्त हैं, वह यहूदी के हक़ में फ़ैसला देने के बजाय मेरे हक़ में फ़ैसला कर देंगे।

बहरहाल ये दोनों अब हज़रत फ़ारूक़े आज़म रज़ियल्लाहु अ़न्हु के पास पहुँचे। यहूदी ने हज़रत फ़ारूक़े आज़म रज़ियल्लाहु अ़न्हु के सामने पूरा वाक़िआ बयान कर दिया कि इस मुक़द्दमे का फ़ैसला जनाब रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम फ़रमा चुके हैं मगर यह शख़्स उस पर मुत्मईन नहीं, और आपके पास मुक़द्दमा लाया है।

हज़रत उमर रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने बिश्र से पूछा कि क्या यह बात सही है? उसने इक़रार किया। हज़रत फ़ारूक़े आज़म रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने फ़रमाया अच्छा ज़रा ठहरो! मैं आता हूँ। घर में तशरीफ़ ले गये और एक तलवार लेकर आये और उस मुनाफ़िक़ का काम तमाम कर दिया और फ़रमाया "जो शख़्स रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के फ़ैसले पर राज़ी न हो उसका यही फ़ैसला है।"

(यह वाक़िआ तफ़सीर रूहुल-मआनी में सालबी व इब्ने अबी हातिम की रिवायत से हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु से मन्क़ूल है) और आ़म मुफ़स्सिरीन ने इसमें यह भी लिखा है कि उसके बाद क़त्ल होने वाले मुनाफ़िक़ के वारिसों ने हज़रत उमर रज़ियल्लाहु अ़न्हु के ख़िलाफ़ यह दावा भी दायर कर दिया कि इन्होंने एक मुसलमान को बग़ैर दलीले शरई के मार डाला है और उसको मुसलमान साबित करने के लिये उसके क़ौली व अ़मली कुफ़्र की तावीलें (उल्टे-सीधे मतलब) पेश कीं। इस आयत में अल्लाह तआ़ला ने मामले की असल हक़ीक़त और उस क़त्ल किये जाने वाले शख़्स का मुनाफ़िक़ होना ज़ाहिर फ़रमाकर हज़रत उमर रज़ियल्लाहु अ़न्हु को बरी कर दिया।

इस सिलसिले में और भी चन्द वाक़िआ़त मन्क़ूल हैं जिनमें कुछ लोगों ने शरई फ़ैसला छोड़कर किसी काहिन या नजूमी (ज्योतिषी) का फ़ैसला क़ुबूल कर लिया था, हो सकता है कि

यह आयत उन सब के मुताल्लिक़ नाज़िल हुई हो।

अब आयतों की तफ़सीर देखिये। पहली आयत में इरशाद हुआ कि उस शख़्स को देखो जो यह दावा करता है कि मैं पिछली किताबों तौरात और इन्जील पर भी ईमान लाया था और जो किताब (यानी क़ुरआन) आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम पर नाज़िल हुई उस पर भी ईमान लाता हूँ। यानी पहले अहले किताब में दाख़िल था फिर मुसलमानों में दाख़िल हो गया, लेकिन यह मुसलमानों में दाख़िल होना महज़ ज़बानी है दिल में वही कुफ़्र भरा हुआ है, जिसका ज़हूर झगड़े के वक़्त इस तरह हो गया है कि आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को छोड़कर यहूदी सरदार कअ़ब बिन अशरफ़ की तरफ़ रुजू करने की तजवीज़ पेश की और उसके बाद जब आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने एक स्पष्ट और हक़ फ़ैसला दे दिया तो उस पर राज़ी न हुआ।

लफ़्ज़ तागूत के लुग़वी मायने सरकशी करने वाले के हैं, और उर्फ़ में शैतान को तागूत कहा जाता है। इस आयत में कअ़ब बिन अशरफ़ की तरफ़ मुक़द्दमा ले जाने को शैतान की तरफ़ ले जाना क़रार दिया है। या तो इस वजह से कि कअ़ब बिन अशरफ़ ख़ुद एक शैतान था और या इस वजह से कि शरई फ़ैसले को छोड़कर ख़िलाफ़े शरीअ़त फ़ैसले की तरफ़ रुजू करना शैतान ही की तालीम हो सकती है, उसकी पैरवी करने वाला गोया शैतान ही के पास अपना मुक़द्दमा लेकर गया है। इसी लिये आयत के आख़िर में हिदायत फ़रमा दी कि जो शख़्स शैतान की पैरवी करेगा तो शैतान उसको दूर-दराज़ की गुमराही में मुब्तला कर देगा।

दूसरी आयत में बतला दिया कि आपसी विवाद और झगड़े के वक़्त रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के शरई फ़ैसले से मुँह फेरना किसी मुसलमान का काम नहीं हो सकता, ऐसा काम करने वाला मुनाफ़िक़ ही हो सकता है, और जब उस मुनाफ़िक़ का कुफ़्र अ़मली तौर पर इस तरह खुल गया कि आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के फ़ैसले पर राज़ी न हुआ तो फ़ारूक़े आज़म रज़ियल्लाहु अ़न्हु का उसको क़त्ल करना सही हो गया, क्योंकि अब वह मुनाफ़िक़ न रहा बल्कि खुला काफ़िर हो गया। इसलिये इरशाद फ़रमाया कि ये लोग ऐसे हैं कि जब इनसे कहा जाये कि आ जाओ उस हुक्म की तरफ़ जो अल्लाह तआ़ला ने उतारा है और उसके रसूल की तरफ़ तो ये मुनाफ़िक़ लोग आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की तरफ़ आने से रुक जाते हैं।

तीसरी आयत में उन तावीलाते बातिला (बात बनाने) का ग़लत होना वाज़ेह किया है जो शरई फ़ैसले को छोड़कर ग़ैर-शरई फ़ैसले की तरफ़ रुजू करने वालों की तरफ़ से पेश की जाती थीं, जिनका खुलासा यह था कि हमने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को नाहक़ समझकर नहीं छोड़ा और दूसरों के फ़ैसलों को इसके मुक़ाबिल हक़ समझकर इख़्तियार नहीं किया बल्कि कुछ मस्लेहतों की बिना पर ऐसा किया, जैसे यह मस्लेहत थी कि आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के पास तो क़ानूनी फ़ैसला होता जिसमें आपसी सुलह-समझौते और रवादारी का कोई सवाल नहीं था, हम मुक़द्दमे को दूसरी जगह इसलिये ले गये थे कि उन दोनों फ़रीक़ के लिये कोई भलाई की सूरत निकल आये और दोनों में समझौता करा दिया जाये।

ये तावीलें (बातें बनाना और उल्टे-सीधे मतलब बयान करना) उन लोगों ने उस वक़्त पेश

कीं जबकि उनका राज़ खुल गया और गन्दगी और निफ़ाक़ ज़ाहिर हो गया, उनका आदमी हज़रत उमर रज़ियल्लाहु अन्हु के हाथ से मारा गया। ग़र्ज़ कि जब उनके बुरे आमाल के नतीजे में उन पर रुस्वाई या क़त्ल की मुसीबत पड़ गई तो क़समें खाकर तावीलें करने लगे, हक़ तआ़ला ने इस आयत में वाज़ेह फ़रमा दिया कि ये अपनी क़समों और तावीलों में झूठे हैं, इन्होंने जो कुछ किया अपने कुफ़्र व निफ़ाक़ की वजह से किया है। इरशाद फ़रमाया कि जब इन पर अपने बुरे आमाल के नतीजे में कोई मुसीबत पड़ जाती है जैसे ख़ियानत व निफ़ाक़ ज़ाहिर होकर रुस्वाई हो गई, या उसके नतीजे में क़त्ल का वाक़िआ पेश आ गया तो उस वक़्त ये लोग आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के पास क़समें खाते हुए आते हैं कि आपके सिवा किसी दूसरे के पास मुक़द्दमा ले जाने का सबब कुफ़्र या हुज़ूर को नाहक़ समझना नहीं था बल्कि हमारा मक़सद एहसान व तौफ़ीक़ था, यानी दोनों पक्षों के लिये कोई भलाई और समझौते की राह तलाश करना मक़सूद था।

चौथी आयत में इसका जवाब आया कि उनके दिलों में जो कुफ़्र व निफ़ाक़ है अल्लाह तआ़ला उससे ख़ूब वाक़िफ़ और बाख़बर हैं, उनकी तावीलें ग़लत और क़समें झूठी हैं, इसलिये आप उनके उज़्र को क़ुबूल न फ़रमायें और हज़रत उमर रज़ियल्लाहु अन्हु के ख़िलाफ़ दावा करने वालों का दावा रद्द फ़रमा दें, क्योंकि उस मुनाफ़िक़ का कुफ़्र वाज़ेह (स्पष्ट) हो चुका था।

इसके बाद फ़रमाया कि उन मुनाफ़िक़ों को भी आप ख़ैरख़्वाही के तौर पर नसीहत फ़रमायें जो उनके दिलों पर असर डाले, यानी आख़िरत का ख़ौफ़ दिलाकर उनको सच्चे इस्लाम की तरफ़ दावत दें या दुनियावी सज़ा का ज़िक्र कर दें कि अगर तुम निफ़ाक़ से बाज़ न आये तो किसी वक़्त निफ़ाक़ खुल जायेगा तो तुम्हारा भी यही अन्जाम होगा जो बिश्र मुनाफ़िक़ का हुआ।

पाँचवीं आयत में अव्वल तो एक आ़म ज़ाब्ता (उसूल) बतलाया कि हमने जो रसूल भेजा वह इसी लिये भेजा कि सब लोग फ़रमाने ख़ुदावन्दी के मुवाफ़िक़ उसके अहकाम की इताअ़त करें, तो इसका लाज़िमी नतीजा यह होगा कि जो शख़्स रसूल के अहकाम की मुख़ालफ़त करेगा उसके साथ काफ़िरों जैसा मामला किया जायेगा। इसलिये हज़रत उमर रज़ियल्लाहु अन्हु ने जो अ़मल किया वह सही हुआ। इसके बाद उनको भलाई के लिये मश्विरा दिया गया है कि ये लोग तावीलों और झूठी क़समों के बजाय अपने क़सूर को मान लेते और आपके पास हाज़िर होकर ख़ुद भी अल्लाह तआ़ला से माफ़ी माँगते, और रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम भी उनकी मग़फ़िरत की दुआ़ करते तो अल्लाह तआ़ला ज़रूर उनकी तौबा क़ुबूल फ़रमा लेते।

इस जगह तौबा के क़ुबूल होने के लिये हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की ख़िदमत में हाज़िर होने और फिर आपके दुआ़-ए-मग़फ़िरत करने की शर्त ग़ालिबन इसलिये है कि उन लोगों ने आपके मक़ामे नुबुव्वत पर हमला किया और आपके फ़ैसले को नज़र-अन्दाज़ करके आपको तकलीफ़ पहुँचाई, इसलिये उनके जुर्म की तौबा के लिये हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की ख़िदमत में हाज़िरी और हुज़ूरे पाक के इस्तिग़फ़ार को शर्त कर दिया गया।

यह आयत अगरचे मुनाफ़िक़ों के ख़ास वाक़िए के बारे में नाज़िल हुई है लेकिन इसके

अलफ़ाज़ से एक आम ज़ाब्ता (उसूल) निकल आया कि जो शख़्स रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की ख़िदमत में हाज़िर हो जाये और आप उसके लिये दुआ़-ए-मग़फ़िरत कर दें उसकी मग़फ़िरत ज़रूर हो जायेगी, और आपकी ख़िदमत में हाज़िरी जैसे आपकी दुनियावी ज़िन्दगी के ज़माने में हो सकती थी इसी तरह आज भी रोज़ा-ए-अक़्दस पर हाज़िरी उसी हुक्म में है।

हज़रत अ़ली रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने फ़रमाया कि जब हम रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को दफ़न करके फ़ारिग़ हुए तो उसके तीन दिन के बाद एक गाँव वाला आया और क़ब्र शरीफ़ के पास आकर गिर गया और ज़ार-ज़ार रोते हुए इस आयत का हवाला देकर अ़र्ज़ किया कि अल्लाह तआ़ला ने इस आयत में वायदा फ़रमाया है कि अगर गुनाहगार शख़्स रसूल की ख़िदमत में हाज़िर हो जाये और रसूल उसके लिये दुआ़-ए-मग़फ़िरत कर दें तो उसकी मग़फ़िरत हो जायेगी, इसलिये मैं आपकी ख़िदमत में हाज़िर हुआ हूँ कि आप मेरे लिये मग़फ़िरत की दुआ़ करें। उस वक़्त जो लोग हाज़िर थे उनका बयान है कि इसके जवाब में रोज़ा-ए-अक़्दस के अन्दर से आवाज़ आईः

قَدْ غُفِرَ لَكَ

यानी तेरी मग़फ़िरत कर दी गई। (तफ़सीर बहरे मुहीत)

فَلَا وَرَبِّكَ لَا يُؤْمِنُوْنَ حَتّٰى يُحَكِّمُوْكَ فِيْمَا شَجَرَ بَيْنَهُمْ ثُمَّ لَا يَجِدُوْا فِيْٓ اَنْفُسِهِمْ حَرَجًا مِّمَّا قَضَيْتَ وَيُسَلِّمُوْا تَسْلِيْمًا۝

फ़ला व रब्बि-क ला युअ्मिनू-न हत्ता युहक्किमू-क फ़ीमा श-ज-र बैनहुम् सुम्-म ला यजिदू फ़ी अन्फ़ुसिहिम् ह-रजम्-मिम्मा क़ज़ै-त व युसल्लिमू तस्लीमा (65)	सो क़सम है तेरे रब की वे मोमिन न होंगे यहाँ तक कि तुझको ही मुन्सिफ़ (मामलात का फ़ैसला करने वाला) जानें उस झगड़े में जो उनमें उठे, फिर न पायें अपने जी में तंगी तेरे फ़ैसले से और क़ुबूल करें ख़ुशी से। (65)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

फिर क़सम है आपके रब की ये लोग (जो सिर्फ़ ज़बानी ईमान ज़ाहिर करते फिरते हैं ये अल्लाह के यहाँ) ईमान वाले न होंगे जब तक यह बात न हो कि इनके आपस में जो झगड़ा उत्पन्न हो उसमें ये लोग आप से (और आप न हों तो आपकी शरीअ़त से) तसफ़िया कराएँ। फिर (जब आप तसफ़िया कर दें तो) आपके उस तसफ़िये से अपने दिलों में (इनकार की) तंगी न पाएँ और (उस फ़ैसले को) पूरे तौर पर (ज़ाहिर से बातिन से) मान लें।

मआरिफ़ व मसाईल

रसूले करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के फ़ैसले को तस्लीम न करना कुफ़्र है

इस आयत में रसूले करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की बड़ाई और बुलन्द मर्तबे के इज़हार के साथ आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की इताअत जो बेशुमार क़ुरआनी आयतों से साबित है उसकी वाज़ेह तशरीह बयान फ़रमाई है। इस आयत में क़सम खाकर हक़ तआला शानुहू ने फ़रमाया कि कोई आदमी उस वक़्त तक मोमिन या मुसलमान नहीं हो सकता जब तक कि वह आपके फ़ैसले को ठंडे दिल से पूरी तरह तस्लीम न करे कि उसके दिल में भी उस फ़ैसले से कोई तंगी न पाई जाये।

हुज़ूर सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम बहैसियते रसूल ख़ुद उम्मत के हाकिम और हर पेश आने वाले झगड़े का फ़ैसला करने वाले ज़िम्मेदार हैं। आपकी हुकूमत और आपका फ़ैसला किसी के हकम (जज) बनाने पर मौक़ूफ़ नहीं, फिर इस आयत में मुसलमानों को हकम बनाने की तल्क़ीन इसलिये फ़रमाई गई है कि हुकूमत के मुक़र्रर किये हुए हाकिम और उसके फ़ैसले पर तो बहुत से लोगों को इत्मीनान नहीं हुआ करता, जैसा कि अपने मुक़र्रर किये हुए मध्यस्थ या हकम पर होता है, मगर आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम सिर्फ़ हाकिम नहीं बल्कि रसूले मासूम भी हैं, रहमतुल् लिल्आलमीन भी हैं, उम्मत के शफ़ीक़ व मेहरबान बाप भी हैं, इसलिये तालीम यह दी गई कि जब भी किसी मामले में या किसी मसले में आपस में इख़्तिलाफ़ (झगड़े और विवाद) की नौबत आये तो दोनों फ़रीक़ों का फ़र्ज़ है कि रसूले करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम को हकम (जज) बनाकर उसका फ़ैसला करायें और फिर आपके फ़ैसले को दिल व जान से तस्लीम करके अमल करें।

झगड़ों में आपको हकम बनाना, आपके मुबारक दौर के साथ मख़्सूस नहीं

हज़राते मुफ़स्सिरीन ने फ़रमाया कि क़ुरआनी इरशाद पर अमल आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के मुबारक दौर के साथ मख़्सूस नहीं, आपके बाद आपकी पाक शरीअत का फ़ैसला ख़ुद आप ही का फ़ैसला है। इसलिये यह हुक्म क़ियामत तक इस तरह जारी है कि आपके ज़माना-ए-मुबारक में ख़ुद अप्रत्यक्ष रूप से आप से रुजू किया जाये और आपके बाद आपकी शरीअत की तरफ़ रुजू किया जाये जो दर हक़ीक़त आप ही की तरफ़ रुजू करना है।

चन्द अहम मसाईल

अव्वल यह कि वह शख़्स मुसलमान नहीं है जो अपने हर झगड़े और हर मुक़द्दमे में रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के फ़ैसले पर मुत्मईन न हो। यही वजह है कि हज़रत फ़ारूक़े आज़म रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने उस शख़्स को क़त्ल कर डाला जो आपके फ़ैसले पर राज़ी न हुआ और फिर मामले को हज़रत उमर रज़ियल्लाहु अ़न्हु के पास ले गया। उस मक़्तूल के सरपरस्तों ने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की अ़दालत में हज़रत उमर रज़ियल्लाहु अ़न्हु पर दावा कर दिया कि इन्होंने एक मुसलमान को बिना वजह क़त्ल कर दिया, जब यह फ़रियाद आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की ख़िदमत में की गयी तो बेसाख़्ता हुज़ूरे पाक की ज़बाने मुबारक से निकलाः

مَا كُنْتُ اَظُنُّ اَنَّ عُمَرَ يَجْتَرِءُ عَلٰى قَتْلِ رَجُلٍ مُّؤْمِنٍ.

(यानी मुझे यह गुमान न था कि उमर किसी मोमिन आदमी के क़त्ल की जुर्रत करेंगे) इससे साबित हुआ कि हाकिमे आला के पास अगर किसी मातहत हाकिम के फ़ैसले की अपील की जाये तो उसको अपने मातहत हाकिम का पक्ष करने के बजाय इन्साफ़ का फ़ैसला करना चाहिये जैसा कि इस वाक़िए में आयत नाज़िल होने से पहले आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने हज़रत उमर रज़ियल्लाहु अ़न्हु के फ़ैसले पर नाराज़ी का इज़हार फ़रमाया। फिर जब यह आयत नाज़िल हुई तो हक़ीक़त खुल गई कि इस आयत की रू से वह शख़्स मोमिन ही नहीं था।

दूसरा मसला इस आयत से यह निकला कि लफ़्ज़ 'फ़ी मा श-ज-र बैनहुम' सिर्फ़ मामलात और हुक़ूक़ के साथ मुताल्लिक़ नहीं, अक़ीदों व नज़रियों और दूसरे विचारनीय मसाईल को भी हावी (शामिल) है। (बहरे मुहीत)

इसलिये हर मुसलमान का फ़र्ज़ है कि जब भी किसी मसले में आपस में विवाद और झगड़े की नौबत आ जाये तो आपस में झगड़ते रहने के बजाय दोनों फ़रीक़ रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की तरफ़ और आपके बाद आपकी शरीअ़त की तरफ़ रुजू करके मसले का हल तलाश करें।

तीसरा मसला यह मालूम हुआ कि जो काम आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से क़ौली या अ़मली तौर पर साबित हो उसके करने से दिल में तंगी महसूस करना भी ईमान की कमज़ोरी की निशानी है। जैसे जहाँ शरीअ़त ने तयम्मुम करके नमाज़ पढ़ने की इजाज़त दी वहाँ तयम्मुम करने पर जिस शख़्स का दिल राज़ी न हो वह इसको तक़वा न समझे बल्कि अपने दिल का रोग समझे, रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से ज़्यादा कोई मुत्तक़ी नहीं हो सकता, जिस सूरत में आपने बैठकर नमाज़ पढ़ने की इजाज़त दी और ख़ुद बैठकर अदा फ़रमाई, अगर किसी शख़्स का दिल इस पर राज़ी न हो और नाक़ाबिले बरदाश्त मेहनत व मशक़्क़त उठाकर खड़े ही

होकर नमाज़ अदा करे तो वह समझ ले कि उसके दिल में रोग है, हाँ मामूली ज़रूरत या तकलीफ़ के वक़्त अगर छूट और रियायत को छोड़कर अ़ज़ीमत (पुख़्तगी) पर अ़मल करे तो आप ही की तालीम के मुताबिक़ दुरुस्त है, मगर मुतलक़ तौर पर शरई रियायतों से तंगदिली महसूस करना कोई तक़वा नहीं, इसलिये रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमायाः

اِنَّ اللّٰهَ تَعَالٰی یُحِبُّ اَنْ تُؤْتٰی رُخْصَةٌ کَمَا یُحِبُّ اَنْ تُؤْتٰی عَزَآئِمُهٗ.

"यानी अल्लाह तआ़ला जिस तरह अ़ज़ीमतों पर अ़मल करने से ख़ुश होते हैं उसी तरह रुख़्सतों पर अ़मल करने को भी पसन्द फ़रमाते हैं।"

आ़म इबादतों, ज़िक्रों, विर्दों, दुरूद व तस्बीह में सबसे बेहतर तरीक़ा वही है जो ख़ुद रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का अपना मामूल रहा है, और आपके बाद आपके सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम का जिस पर अ़मल रहा। मुसलमानों का फ़र्ज़ है कि हदीस की मुस्तनद (मोतबर) रिवायतों से उसको मालूम करके उसी को अपनी ज़िन्दगी का मक़सद बनायें।

एक अहम फ़ायदा

पीछे बयान हुई तफ़सील से यह बात वाज़ेह हो गई कि रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम उम्मत के सिर्फ़ सुधारक और अख़्लाक़ी रहबर ही नहीं थे बल्कि वह एक आ़दिल हाकिम भी थे। फिर हाकिम भी इस शान के कि आपके फ़ैसले को ईमान व कुफ़्र का मेयार क़रार दिया गया, जैसा कि बिश्र मुनाफ़िक़ के वाक़िए से ज़ाहिर है। इस चीज़ की वज़ाहत के लिये अल्लाह तआ़ला ने अपनी मुक़द्दस किताब में कई जगहों पर अपनी इताअ़त की तालीम के साथ-साथ रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की इताअ़त को भी लाज़िमी क़रार दिया है। इरशाद होता हैः

اَطِیْعُوا اللّٰهَ وَاَطِیْعُوا الرَّسُوْلَ.

"यानी तुम अल्लाह की इताअ़त करो और अल्लाह तआ़ला के रसूल की इताअ़त करो।"

एक दूसरी जगह इरशाद फ़रमायाः

مَنْ یُّطِعِ الرَّسُوْلَ فَقَدْ اَطَاعَ اللّٰهَ

यानी "जो रसूल की इताअ़त करे उसने दर हक़ीक़त अल्लाह की इताअ़त की।"

इन आयतों में ग़ौर करने से आपकी शाने हाकमियत भी निखरकर सामने आ जाती है जिसकी अ़मली सूरत ज़ाहिर करने के लिये अल्लाह तआ़ला ने आपके पास अपना क़ानून भेजा ताकि आप मुक़द्दमों के फ़ैसले उसी के मुताबिक़ कर सकें। चुनाँचे इरशाद होता हैः

اِنَّآ اَنْزَلْنَآ اِلَیْكَ الْكِتٰبَ بِالْحَقِّ لِتَحْكُمَ بَیْنَ النَّاسِ بِمَآ اَرٰىكَ اللّٰهُ.

यानी "हमने आप पर किताब को हक़ के साथ नाज़िल किया ताकि आप लोगों के दरमियान में इस तरह फ़ैसला करें जिस तरह अल्लाह तआ़ला आपको दिखलाये और समझाये।"

وَلَوْ أَنَّا كَتَبْنَا عَلَيْهِمْ أَنِ اقْتُلُوٓا أَنفُسَكُمْ أَوِ اخْرُجُوا
مِن دِيَٰرِكُم مَّا فَعَلُوهُ إِلَّا قَلِيلٌ مِّنْهُمْ ۖ وَلَوْ أَنَّهُمْ فَعَلُوا مَا يُوعَظُونَ بِهِۦ لَكَانَ خَيْرًا لَّهُمْ وَأَشَدَّ
تَثْبِيتًا ﴿٦٦﴾ وَإِذًا لَّءَاتَيْنَٰهُم مِّن لَّدُنَّآ أَجْرًا عَظِيمًا ﴿٦٧﴾

व लौ अन्ना कतब्ना अ़लैहिम् अनिक़्तुलू अन्फ़ु-सकुम् अविख़्रुजू मिन् दियारिकुम् मा फ़-अ़लूहु इल्ला क़लीलुम्-मिन्हुम, व लौ अन्नहुम् फ़-अ़लू मा यू-अ़ज़ू-न बिही लका-न ख़ैरल्लहुम् व अशद्-द तस्बीता (66) व इज़ल्-लआतैनाहुम् मिल्लदुन्ना अज्रन् अ़ज़ीमा (67) व ल-हदैनाहुम् सिरातम् मुस्तक़ीमा (68)	और अगर हम उन पर हुक्म करते कि हलाक करो अपनी जान या छोड़ निकलो अपने घर तो ऐसा न करते मगर थोड़े उनमें से। अगर ये लोग करें वह जो इनको नसीहत की जाती है तो अलबत्ता इनके हक़ में बेहतर हो, और ज़्यादा साबित रखने वाला हो दीन में। (66) और उस वक़्त अलबत्ता दें हम उनको अपने पास से बड़ा सवाब। (67) और चलायें उनको सीधी राह। (68)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

और हम अगर लोगों पर यह बात (ज़रूरी अहकाम के तौर पर) फ़र्ज़ कर देते कि तुम ख़ुदकुशी किया करो या अपने वतन से बे-वतन हो जाया करो तो सिवाय थोड़े से लोगों के (जो पूरे मोमिन होते) इस हुक्म को कोई भी न बजा लाता (इससे साबित हुआ कि पूरी फ़रमाँबरदारी करने वाले कम होते हैं) और अगर ये (मुनाफ़िक़) लोग जो कुछ इनको (जान व दिल से रसूल की इताअ़त की) नसीहत की जाती है उस पर अ़मल किया करते तो इनके लिए (दुनिया में तो सवाब का मुस्तहिक़ होने के सबब) बेहतर होता और (साथ ही दीन को कामिल करने के तौर पर इनके) ईमान को ज़्यादा पुख़्ता करने वाला होता (क्योंकि तजुर्बे से साबित हुआ कि दीन का काम करने से ख़ुद एतिक़ाद व यक़ीन की अन्दरूनी हालत को तरक़्क़ी होती है)। और इस हालत में (जबकि अ़मल की भलाई और दीन पर जमाव हासिल हो जाता तो आख़िरत में) हम उनको ख़ास अपने पास से बड़ा अज्रे अ़ज़ीम अ़ता फ़रमाते। और हम उनको (जन्नत का) सीधा रास्ता बतला देते (कि बेरोक-टोक जन्नत में दाख़िल हों जो कि अज्रे अ़ज़ीम मिलने का मक़ाम है)।

मआरिफ़ व मसाईल

शाने नुज़ूल

जिस वाक़िए की बिना पर यह आयत और इससे पहली आयतें नाज़िल हुईं वह बिश्र मुनाफ़िक़ का मामला था, जिसने अपने झगड़े के फ़ैसले के लिये पहले कअ़ब बिन अशरफ़ यहूदी को तजवीज़ किया फिर मजबूर होकर आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के पास गया और आपका फ़ैसला चूँकि उसके ख़िलाफ़ था इसलिये उस पर राज़ी न हुआ, दोबारा फ़ैसला कराने के लिये हज़रत उमर रज़ियल्लाहु अ़न्हु के पास पहुँचा। इस वाक़िए की जब मदीना में शोहरत हुई तो यहूदियों ने मुसलमानों को शर्म दिलाई कि तुम कैसे लोग हो कि जिसको रसूल मानते हो और उसके इत्तिबा के दावेदार हो मगर उसके फ़ैसलों को तस्लीम नहीं करते। देखो यहूदियों को उनके गुनाह की तौबा के सिलसिले में यह हुक्म मिला था कि तुम इसमें एक दूसरे को क़त्ल करो, हमने तो इस सख़्त हुक्म की तामील भी की यहाँ तक कि हमारे सत्तर हज़ार आदमी मारे गये, अगर तुम्हें कोई ऐसा हुक्म दे दिया जाता तो तुम क्या करते? इस पर यह आयत नाज़िल हुईः

وَلَوْ اَنَّا كَتَبْنَا عَلَيْهِمْ.........

यानी उन मुनाफ़िक़ों का या आ़म लोगों का जिनमें काफ़िर व मोमिन सब दाख़िल हैं यही हाल है कि अगर उनको बनी इस्राईल की तरह कोई सख़्त हुक्म ख़ुदकुशी या वतन छोड़ने का दे दिया जाता तो उनमें से बहुत कम आदमी उस हुक्म की तामील करते।

इसमें उन लोगों को सख़्त तंबीह है जो अपने झगड़ों का फ़ैसला रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम या शरीअ़ते रसूल को छोड़कर किसी दूसरी तरफ़ ले जाते हैं, और यहूद के तानों का जवाब भी है कि यह हाल मुनाफ़िक़ों का है, पक्के मुसलमानों का नहीं, और सुबूत व इशारा इसका यह है कि जब यह आयत नाज़िल हुई तो सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम में से एक साहिब ने कहा कि अल्लाह ने हमें इस आज़माईश में नहीं डाला। सहाबी का यह कलिमा रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को पहुँचा तो आपने फ़रमाया कि मेरी उम्मत में ऐसे लोग भी हैं जिनके दिलों में ईमान मज़बूत पहाड़ों से ज़्यादा जमा हुआ है। इब्ने वहब रहमतुल्लाहि अ़लैहि का बयान है कि यह कलिमा हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ रज़ियल्लाहु अ़न्हु का था।

और एक रिवायत में है कि हज़रत सिद्दीक़े अकबर रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने यह आयत सुनकर कहा कि अगर यह हुक्म नाज़िल होता तो ख़ुदा की क़सम मैं सबसे पहले अपने आपको और अपने घर वालों को इस पर क़ुरबान कर देता।

कुछ रिवायतों में है कि इस आयत के नाज़िल होने पर रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि अगर यह हुक्म ख़ुदकुशी या वतन छोड़ने का अल्लाह की तरफ़ से आ जाता तो इब्ने उम्मे अ़ब्द यानी हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन मसऊद रज़ियल्लाहु अ़न्हु ज़रूर इस पर अ़मल करते, और रहा दूसरा मामला वतन छोड़ने का तो सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम ने

इस पर तो अ़मल करके दिखला दिया कि अपने वतन मक्का और अपनी सारी की सारी जायदादों और तिजारतों को छोड़कर मदीना तय्यिबा की तरफ़ हिजरत इख़्तियार कर ली।

आयत के आख़िर में फ़रमाया कि यह काम अगरचे मुश्किल है लेकिन अगर वे हमारे फ़रमान के मुताबिक़ इसको मान लें तो अन्जाम कार यही उनके लिये बेहतर होगा, और यह अ़मल उनके ईमान को और मज़बूत कर देगा और हम इस पर उनको बड़ा सवाब अ़ता फ़रमायेंगे और उनको सीधी राह पर चलायेंगे।

इसके बाद आख़िरी आयत में अल्लाह तआ़ला और उसके रसूल सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की इताअ़त (फ़रमाँबरदारी) करने वालों के बड़े दर्जों का बयान है जिसमें उनको यह ख़ुशख़बरी दे दी गई है कि ये लोग जन्नत में अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम, सिद्दीक़ीन और शहीदों व नेक लोगों के साथ होंगे।

इस आयत के उतरने का एक ख़ास वाक़िआ़ है और उसकी तफ़सील अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम, सिद्दीक़ीन, शहीदों और नेक लोगों के चार दर्जे जिनका इस आयत में ज़िक्र है इनकी तफ़सील और जन्नत में उनके साथ होने की तफ़सीर इन्शा-अल्लाह तआ़ला आगे आयेगी।

وَمَنْ يُّطِعِ اللّٰهَ وَ الرَّسُوْلَ فَاُولٰٓئِكَ مَعَ الَّذِيْنَ اَنْعَمَ اللّٰهُ عَلَيْهِمْ
مِّنَ النَّبِيّٖنَ وَ الصِّدِّيْقِيْنَ وَالشُّهَدَآءِ وَالصّٰلِحِيْنَ ۚ وَحَسُنَ اُولٰٓئِكَ رَفِيْقًا ۞ ذٰلِكَ الْفَضْلُ مِنَ اللّٰهِ ۚ
وَكَفٰى بِاللّٰهِ عَلِيْمًا ۞

व मंय्युतिअिल्ला-ह वर्रसू-ल फ़-उलाइ-क मअ़ल्लज़ी-न अन्अ़मल्लाहु अ़लैहिम् मिनन्-नबिय्यीन वस्सिद्दीकी-न वश्शु-हदा-इ वस्सालिही-न व हसु-न उलाइ-क रफ़ीक़ा (69) ज़ालिकल्-फ़ज़्लु मिनल्लाहि, व कफ़ा बिल्लाहि अ़लीमा (70) ✿	और जो कोई हुक्म माने अल्लाह का और उसके रसूल का सो वे उनके साथ हैं जिन पर अल्लाह ने इनाम किया कि वे नबी और सिद्दीक़ और शहीद और नेकबख़्त हैं, और अच्छा है उनका साथ। (69) यह फ़ज़्ल है अल्लाह की तरफ़ से और अल्लाह काफ़ी है जानने वाला। (70) ✿

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

और जो शख़्स (ज़रूरी अहकाम में भी) अल्लाह और रसूल का कहना मान लेगा (अगरचे बहुत ज़्यादा नेकियाँ कमाकर कमाल हासिल न कर सके) तो ऐसे लोग भी (जन्नत में) उन हज़रात के साथ होंगे जिन पर अल्लाह तआ़ला ने (पूरा) इनाम (दीन और निकटता व क़ुबूलियत

का) फ़रमाया है यानी अम्बिया (अ़लैहिमुस्सलाम) और सिद्दीक़ीन (जो कि नबियों व रसूलों की उम्मत में सबसे ज़्यादा रुतबे के होते हैं, जिनमें अन्दरूनी कमाल भी होता है जिनको उर्फ़ में औलिया कहा जाता है) और शहीद लोग (जिन्होंने दीन की मुहब्बत में अपनी जान तक दे दी) और नेक लोग (जो शरीअ़त के पूरे ताबेदार होते हैं वाजिबात में भी और मुस्तहब्बात में भी जिनको नेकबख़्त दीनदार कहा जाता है) और ये हज़रात (जिसके साथी हों) बहुत अच्छे साथी हैं (और फ़रमाँबरदार व नेक का उनके साथ होना साबित है। पस हासिल यह हुआ कि इताअ़त का यह फल मिला कि उसको ऐसे साथी मिले)। यह (साथ और रफ़ाक़त उन हज़रात के साथ महज़) फ़ज़्ल है अल्लाह तआ़ला की जानिब से (यानी अ़मल का अज्र नहीं है, क्योंकि इसका तक़ाज़ा तो यह था कि जो दर्जा उस अ़मल का मुक़्तज़ा था वहाँ से आगे न जा सकता, पस यह बतौर इनाम के है) और अल्लाह तआ़ला काफ़ी जानने वाले हैं (हर एक अ़मल को और उसके मुक़्तज़ा को, और उस मुक़्तज़ा से ज़ायद मुनासिब इनाम की मिक़्दार को ख़ूब जानते हैं, क्योंकि उस इनाम में भी फ़र्क़ होगा, किसी को उन हज़रात से बार-बार निकटता हासिल होगी किसी को कभी-कभी। वल्लाहु आलम)।

इन आयतों के मज़मून का पीछे से ताल्लुक़

ऊपर अल्लाह व रसूल की इताअ़त पर ख़ास मुख़ातब लोगों से बड़े अज्र का वायदा था, अब इन आयतों में बतौर कुल्ली क़ायदे के अल्लाह और उसके रसूल की इताअ़त पर आ़म वायदे का ज़िक्र है।

मआ़रिफ़ व मसाईल

जन्नत के दर्जे आमाल के एतिबार से होंगे

जो लोग उन तमाम चीज़ों पर अ़मल करें जिनके करने का हुक्म अल्लाह तआ़ला ने और उसके रसूल सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने दिया है, और उन तमाम चीज़ों से परहेज़ करें जिनके करने से अल्लाह तआ़ला और उसके रसूल सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने मना फ़रमाया है तो अ़मल के एतिबार से उनके विभिन्न दर्जे होंगे। अव्वल दर्जे के लोगों को अल्लाह तआ़ला अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम के साथ जन्नत के बुलन्द मक़ामात में जगह अ़ता फ़रमायेंगे, और दूसरे दर्जे के लोगों को उन लोगों के साथ जगह अ़ता फ़रमायेंगे जो अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम के बाद हैं, जिनको सिद्दीक़ीन कहा जाता है। यानी वे बड़े रुतबे वाले सहाबा किराम जिन्होंने बग़ैर किसी झिझक और मुख़ालफ़त के शुरू ही में ईमान क़ुबूल कर लिया, जैसे हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ रज़ियल्लाहु अ़न्हु। फिर तीसरे दर्जे के लोग शहीद हज़रात के साथ होंगे। शहीद वे लोग हैं जिन्होंने अल्लाह की राह में अपनी जान और माल क़ुरबान कर दिया। फिर चौथे दर्जे के हज़रात नेक लोगों के साथ होंगे, और नेक लोग वे हैं जो अपने ज़ाहिर व बातिन में नेक आमाल के पाबन्द हैं।

ख़ुलासा यह है कि अल्लाह तआ़ला और उसके रसूल सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की मुकम्मल इताअ़त करने वाले उन हज़रात के साथ होंगे जो अल्लाह तआ़ला के नज़दीक सबसे ज़्यादा सम्मानित और मक़बूल हैं, जिनके चार दर्जे बतलाये गये हैं, अम्बिया, सिद्दीक़ीन, शहीद हज़रात और नेक लोग।

शाने नुज़ूल

यह आयत एक ख़ास वाक़िए की बिना पर नाज़िल हुई है जिसको इमामे तफ़सीर हाफ़िज़ इब्ने कसीर रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने कई सनदों से नक़ल किया है।

वाक़िआ यह है कि हज़रत आयशा रज़ियल्लाहु अ़न्हा फ़रमाती हैं कि एक रोज़ एक सहाबी रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की ख़िदमत में हाज़िर हुए और अ़र्ज़ किया- या रसूलल्लाह! मेरे दिल में आपकी मुहब्बत अपनी जान से भी ज़्यादा है, अपनी बीवी से भी, अपनी औलाद से भी। कई बार मैं अपने घर में बेचैन सा रहता हूँ, यहाँ तक कि आपकी ख़िदमत में हाज़िर होकर आपकी ज़ियारत कर लूँ तब सुकून होता है। अब मुझे फ़िक्र है कि जब इस दुनिया से आपकी वफ़ात हो जाये और मुझे भी मौत आ जायेगी तो मैं जानता हूँ कि आप जन्नत में अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम के साथ ऊँचे दर्जों में होंगे, और मुझे अव्वल तो यह मालूम नहीं कि मैं जन्नत में पहुँचूँगा भी या नहीं, अगर पहुँच भी गया तो मेरा दर्जा आप से बहुत नीचे होगा, मैं वहाँ आपकी ज़ियारत न कर सकूँगा तो मुझे कैसे सब्र आयेगा?

हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने उनका कलाम सुनकर कुछ जवाब न दिया यहाँ तक कि यह आयते मज़कूरा नाज़िल हो गई:

وَمَنْ يُّطِعِ اللّٰهَ وَالرَّسُوْلَ فَاُولٰٓئِكَ مَعَ الَّذِيْنَ اَنْعَمَ اللّٰهُ عَلَيْهِمْ مِّنَ النَّبِيّٖنَ وَالصِّدِّيْقِيْنَ وَالشُّهَدَآءِ وَالصّٰلِحِيْنَ.

"उस वक़्त आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने उनको ख़ुशख़बरी सुना दी कि इताअ़त गुज़ारों को जन्नत में अम्बिया, सिद्दीक़ीन, शहीदों और सालिहीन (नेक लोगों) के साथ मुलाक़ात का मौक़ा मिलता रहेगा। यानी जन्नत के दर्जों में फ़र्क़ और आला व अदना होने के बावजूद आपस में मुलाक़ात व मिल बैठने के मौक़े मिलेंगे।

जन्नत में मुलाक़ात की चन्द सूरतें

जिसकी एक सूरत यह भी होगी कि अपनी-अपनी जगह से एक दूसरे को देखेंगे जैसा कि मुवत्ता इमाम मालिक में हज़रत अबू सईद ख़ुदरी रज़ियल्लाहु अ़न्हु की रिवायत से मन्क़ूल है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया- जन्नत वाले अपनी खिड़कियों में अपने से ऊपर के तब्क़ों वालों को देखेंगे जैसे दुनिया में तुम सितारों को देखते हो।

और यह भी सूरत होगी कि दर्जों में मुलाक़ात के लिये आया करेंगे, जैसा कि इब्ने जरीर रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने हज़रत रबीअ़ रहमतुल्लाहि अ़लैहि की रिवायत से नक़ल किया है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने इस आयत की तफ़सीर में यह इरशाद फ़रमाया कि

ऊँचे दर्जे वाले नीचे दर्जे वालों की तरफ़ उतरकर आया करेंगे और उनके साथ मुलाक़ात और उठना-बैठना हुआ करेगा।

और यह भी मुम्किन है कि नीचे के दर्जे वालों को मुलाक़ात के लिये आला दर्जों में जाने की इजाज़त हो। इस आयत की बिना पर रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने बहुत से लोगों को जन्नत में अपने साथ रहने की ख़ुशख़बरी दी।

सही मुस्लिम में है कि हज़रत कअ़ब बिन असलमी रज़ियल्लाहु अ़न्हु आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के साथ रात गुज़ारते थे। एक रात तहज्जुद के वक़्त कअ़ब बिन असलमी रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने आपके लिये वुज़ू का पानी और मिस्वाक वग़ैरह ज़रूरत की चीज़ें लाकर रखीं तो आपने ख़ुश होकर फ़रमाया कि माँगो क्या माँगते हो? कअ़ब असलमी रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने अ़र्ज़ किया मैं जन्नत में आपकी सोहबत (साथ रहना) चाहता हूँ। आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया और कुछ? तो उन्होंने अ़र्ज़ किया और कुछ नहीं। इस पर हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने इरशाद फ़रमाया कि अगर तुम जन्नत में मेरे साथ रहना चाहते हो तोः

اَعِنِّی عَلٰی نَفْسِکَ بِکَثْرَۃِ السُّجُوْدِ

यानी तुम्हारा मक़सद हासिल हो जायेगा लेकिन उसमें तुम भी मेरी मदद इस तरह करो कि ख़ूब ज़्यादा सज्दे किया करो यानी नवाफ़िल की कसरत करो।

मुस्नद अहमद में है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के पास एक शख़्स आया और अ़र्ज़ किया या रसूलल्लाह! मैं इस बात की गवाही दे चुका हूँ कि अल्लाह के सिवा कोई इबादत के लायक़ नहीं, और यह कि आप अल्लाह के सच्चे रसूल हैं, और मैं पाँच वक़्त की नमाज़ का भी पाबन्द हूँ और ज़कात भी अदा करता हूँ और रमज़ान के रोज़े भी रखता हूँ। यह सुनकर रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि जो शख़्स इस हालत में मर जाये वह नबियों, सिद्दीक़ीन, और शहीदों के साथ होगा बशर्तेकि अपने माँ-बाप की नाफ़रमानी न करे।

इसी तरह तिर्मिज़ी की एक हदीस में है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमायाः

اَلتَّاجِرُ الصَّدُوْقُ الْاَمِیْنُ مَعَ النَّبِیّٖنَ وَالصِّدِّیْقِیْنَ وَ الشُّھَدَآءِ

"यानी वह व्यापारी जो सच्चा और अमानतदार हो वह अम्बिया, सिद्दीक़ीन और शहीदों के साथ होगा।"

निकटता की शर्त मुहब्बत है

रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की सोहबत और साथ आपके साथ मुहब्बत करने से हासिल होगा। चुनाँचे सही बुख़ारी में मुतवातिर सनदों के साथ सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम की एक बड़ी जमाअ़त से मन्क़ूल है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से मालूम किया गया कि उस शख़्स का क्या दर्जा होगा जो किसी जमाअ़त से मुहब्बत और ताल्लुक़ रखता है मगर अ़मल में उनके दर्जे को नहीं पहुँचा? आपने फ़रमायाः

اَلْمَرْءُ مَعَ مَنْ اَحَبَّ

"यानी मेहशर में हर शख़्स उसके साथ होगा जिससे उसको मुहब्बत है।"

हज़रत अनस रज़ियल्लाहु अन्हु फ़रमाते हैं कि सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अन्हुम को दुनिया में किसी चीज़ से इतनी खुशी नहीं हुई जितनी इस हदीस से, क्योंकि इस हदीस ने उनको यह खुशख़बरी दे दी कि रसूले करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के साथ मुहब्बत करने वाले मेहशर और जन्नत में भी हुज़ूर के साथ होंगे।

रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम का साथ किसी रंग व नस्ल पर मौक़ूफ़ नहीं

तबरानी ने **मोजम कबीर** में हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर रज़ियल्लाहु अन्हु की यह रिवायत नक़ल की है कि एक हब्शी शख़्स आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की ख़िदमत में हाज़िर हुआ और अर्ज़ किया या रसूलल्लाह! आप हम से सूरत के हुस्न और हसीन रंग में भी अलग और ख़ास हैं और नुबुव्वत व रिसालत में भी, अब अगर मैं भी उस चीज़ पर ईमान ले आऊँ जिस पर आप ईमान रखते हैं और वही अमल करूँ जो आप करते हैं तो क्या मैं भी जन्नत में आपके साथ हो सकता हूँ?

आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया हाँ ज़रूर! (तुम अपने हब्शी होने की बदसूरती से न घबराओ) क़सम है उस ज़ात की जिसके क़ब्ज़े में मेरी जान है, जन्नत में काले रंग के हब्शी सफ़ेद और हसीन हो जायेंगे और एक हज़ार साल की दूरी से चमकेंगे। और जो शख़्स **ला इला-ह इल्लल्लाहु** का क़ायल हो उसकी कामयाबी व निजात अल्लाह तआ़ला के ज़िम्मे हो जाती है और जो शख़्स **सुब्हानल्लाहि व बि-हम्दिही** पढ़ता है उसके नामा-ए-आमाल में एक लाख चौबीस हज़ार नेकियाँ लिखी जाती हैं।

यह सुनकर मज्लिस में से एक शख़्स ने अर्ज़ किया या रसूलल्लाह! जब अल्लाह तआ़ला के दरबार में नेकियों की इतनी बरसात है तो फिर हम कैसे हलाक हो सकते हैं, या अज़ाब में कैसे गिरफ़्तार हो सकते हैं? आपने फ़रमाया (यह बात नहीं) हक़ीक़त यह है कि क़ियामत में कुछ आदमी इतना अमल और नेकियाँ लेकर आयेंगे कि अगर उनको पहाड़ पर रख दिया जाये तो पहाड़ भी उनके बोझ को बरदाश्त न कर सके, लेकिन उसके मुक़ाबले में जब अल्लाह तआ़ला की नेमतें आती हैं और उनसे तुलना की जाती है तो इनसान का अमल उनके मुक़ाबले में ख़त्म हो जाता है मगर यह कि अल्लाह तआ़ला ही उसको अपनी रहमत से नवाज़ें।

उस हब्शी के सवाल के जवाब ही पर सूरः दह्र की यह आयत नाज़िल हुई:

هَلْ اَتٰى عَلَى الْاِنْسَانِ حِيْنٌ مِّنَ الدَّهْرِ لَمْ يَكُنْ شَيْئًا مَّذْكُوْرًا.

हब्शी ने हैरत से सवाल किया या रसूलल्लाह! मेरी आँखें भी उन नेमतों को देखेंगी जिनको

आपकी मुबारक आँखें देखेंगी? आपने फ़रमाया "हाँ! ज़रूर"। यह सुनकर हब्शी नौमुस्लिम ने रोना शुरू किया यहाँ तक कि रोते-रोते वहीं जान दे दी, और आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने अपने हाथ मुबारक से उसका कफ़न-दफ़न फ़रमाया।

दर्जों की तफ़सील

आयत की तफ़सीर मय शाने नुज़ूल और सम्बन्धित तफ़सीलात बयान हो चुकीं, अब एक बात क़ाबिले ग़ौर बाक़ी रह गई है कि अल्लाह तआ़ला का जिन लोगों पर इनाम है उनके चार दर्जे बयान फ़रमाये गये हैं, ये दर्जे किस एतिबार से हैं? और इन चार दर्जों में आपस में जोड़ और फ़र्क़ क्या है? और क्या ये चारों दर्जे किसी एक शख़्स में जमा भी हो सकते हैं या नहीं?

हज़राते मुफ़स्सिरीन ने इस बारे में मुख़्तलिफ़ अक़वाल और लम्बी तफ़सील लिखी है। बाज़ ने फ़रमाया कि ये चार दर्जे एक शख़्स में भी जमा हो सकते हैं और ये सब अन्दरूनी सिफ़ात की तरह हैं, क्योंकि क़ुरआने करीम में जिसको नबी फ़रमाया गया है उसको सिद्दीक़ वग़ैरह के अलक़ाब भी दिये गये हैं। हज़रत इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम के बारे में इरशाद है:

إِنَّهُ كَانَ صِدِّيقًا نَّبِيًّا

और हज़रत यहया अ़लैहिस्सलाम के बारे में आया है:

وَنَبِيًّا مِّنَ الصَّلِحِينَ

इसी तरह हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम के बारे में:

وَكَهْلًا وَّمِنَ الصَّلِحِينَ

आया है।

इसका हासिल यह है कि अगरचे मफ़्हूम व मायने के एतिबार से ये चार सिफ़ात और दर्जे अलग-अलग हैं लेकिन ये सब सिफ़ात एक शख़्स में भी जमा हो सकती हैं। इसकी मिसाल ऐसी है जैसे मुफ़स्सिर, मुहद्दिस, फ़क़ीह, मुअर्रिख़ और मुतकल्लिम उलेमा की मुख़्तलिफ़ सिफ़ात हैं लेकिन कुछ उलेमा ऐसे भी हो सकते हैं जो मुफ़स्सिर भी हों मुहद्दिस भी, फ़क़ीह भी और मुअर्रिख़ व मुतकल्लिम भी। या जिस तरह डॉक्टर, इन्जीनियर, पायलेट अलग-अलग सिफ़ात हैं मगर ये सब किसी एक शख़्स में भी जमा हो सकती हैं।

अलबत्ता आ़म बोल-चाल में क़ायदा है कि जिस शख़्स पर जिस सिफ़त का ग़लबा होता है उसी के नाम से वह मशहूर और परिचित हो जाता है। तबक़ात (दरजात) पर किताबें लिखने वाले उसको उसी तब्क़े में शुमार करते हैं। इसी वजह से आ़म मुफ़स्सिरीन ने फ़रमाया कि "सिद्दीक़ीन" से मुराद बड़े रुतबे वाले सहाबा और "शहीदों" से उहुद के शहीद हज़रात और "सालिहीन" से आ़म नेक मुसलमान मुराद हैं।

और इमाम राग़िब अस्फ़हानी रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने इन चारों दर्जों को अलग-अलग दर्जे क़रार दिया है। तफ़सीर बहरे मुहीत, रूहुल-मआ़नी और मज़हरी में भी यही मज़्कूर है यानी

यह कि इस आयत में अल्लाह तआ़ला ने मोमिनों को चार क़िस्मों में तक़सीम करके हर एक के लिये आला व अदना दर्जे मुक़र्रर फ़रमाये हैं, और आ़म मुसलमानों को इसकी तरग़ीब दी है कि वे उनमें से किसी के दर्जे से पीछे न रहें। इल्मी और अ़मली जिद्दोजहद के ज़रिये उन दर्जों तक पहुँचने की कोशिश करें। उनमें नुबुव्वत एक ऐसा मक़ाम है जो जिद्दोजहद से किसी को हासिल नहीं हो सकता, लेकिन अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम का साथ फिर भी हासिल हो जाता है। इमाम राग़िब रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने फ़रमाया कि उन दर्जों में सबसे पहला दर्जा अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम का है, जिनको अल्लाह की क़ुव्वत की इमदाद हासिल है और उनकी मिसाल ऐसी है जैसे कोई शख़्स किसी चीज़ को क़रीब से देख रहा हो, इसी लिये हक़ तआ़ला ने उनके मुताल्लिक़ इरशाद फ़रमायाः

اَفَتُمٰرُوْنَهٗ عَلٰی مَا یَرٰی.

सिद्दीक़ीन की परिभाषा

दूसरा दर्जा सिद्दीक़ीन का है और वह वे लोग हैं जो मारिफ़त (अल्लाह को पहचानने) में अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम के क़रीब हैं और उनकी मिसाल ऐसी है जैसे कोई शख़्स किसी चीज़ को दूर से देख रहा हो। हज़रत अ़ली रज़ियल्लाहु अ़न्हु से किसी ने पूछा कि क्या आपने अल्लाह तआ़ला को देखा है? आपने फ़रमाया मैं किसी ऐसी चीज़ की इबादत नहीं कर सकता जिसको न देखा हो। फिर फ़रमाया कि अल्लाह तआ़ला को लोगों ने आँखों से तो नहीं देखा लेकिन उनके दिलों ने ईमान की हक़ीक़तों के ज़रिये देख लिया है। इस देखने से हज़रत अ़ली रज़ियल्लाहु अ़न्हु की मुराद इसी क़िस्म का देखना है कि उनकी इल्मी मारिफ़त देखने ही की तरह है।

शहीदों की परिभाषा

तीसरा दर्जा शहीदों (देखने और हाज़िर होने वालों) का है। ये वे लोग हैं जो मक़सूद (उद्देश्य) को दलीलों व निशानियों के ज़रिये जानते हैं, देखा नहीं है। इनकी मिसाल ऐसी है जैसे कोई शख़्स किसी चीज़ को आईने में क़रीब से देख रहा हो, जैसे हज़रत हारिसा रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने फ़रमाया कि मुझे यह महसूस होता है कि मैं अपने रब्बे करीम के अ़र्श को देख रहा हूँ। और हदीसः

اَنْ تَعْبُدَ اللّٰهَ کَاَنَّکَ تَرَاهُ

(कि तू इबादत करे ऐसे जैसे तू अल्लाह को देख रहा है) में भी इसी क़िस्म का देखना मुराद हो सकता है।

सालिहीन (नेक लोगों) की परिभाषा

चौथा दर्जा सालिहीन (नेक लोगों) का है। ये वे लोग हैं जो मक़सूद को पैरवी व इत्तिबा के ज़रिये पहचानते हैं। इनकी मिसाल ऐसी है जैसे कोई किसी चीज़ को आईने में दूर से देखे, और हदीस में:

فَإِنْ لَمْ تَكُنْ تَرَاهُ فَإِنَّهُ يَرَاكَ

आया है, इसमें भी देखने का यही दर्जा मुराद हो सकता है। इमाम राग़िब अस्फ़हानी रहमतुल्लाहि अलैहि की इस तहक़ीक़ का हासिल यह है कि ये दर्जे अल्लाह की मारिफ़त (पहचान) के दर्जे हैं, और मारिफ़त के विभिन्न दर्जों की बिना पर मुख़्तलिफ़ मक़ाम हैं। बहरहाल आयत का मज़मून साफ़ है कि इसमें मुसलमानों को यह ख़ुशख़बरी दी गई कि अल्लाह तआ़ला और उसके रसूल सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की मुकम्मल इताअ़त करने वाले ऊँचे दर्जों में रहने वालों के साथ होंगे। अल्लाह तआ़ला यह मुहब्बत हम सब को नसीब करे। आमीन

يَا أَيُّهَا الَّذِينَ آمَنُوا خُذُوا حِذْرَكُمْ فَانْفِرُوا ثُبَاتٍ أَوِ انْفِرُوا جَمِيعًا ۝ وَإِنَّ مِنْكُمْ لَمَنْ لَيُبَطِّئَنَّ فَإِنْ أَصَابَتْكُمْ مُصِيبَةٌ قَالَ قَدْ أَنْعَمَ اللَّهُ عَلَيَّ إِذْ لَمْ أَكُنْ مَعَهُمْ شَهِيدًا ۝ وَلَئِنْ أَصَابَكُمْ فَضْلٌ مِنَ اللَّهِ لَيَقُولَنَّ كَأَنْ لَمْ تَكُنْ بَيْنَكُمْ وَبَيْنَهُ مَوَدَّةٌ يَا لَيْتَنِي كُنْتُ مَعَهُمْ فَأَفُوزَ فَوْزًا عَظِيمًا ۝ فَلْيُقَاتِلْ فِي سَبِيلِ اللَّهِ الَّذِينَ يَشْرُونَ الْحَيَاةَ الدُّنْيَا بِالْآخِرَةِ ۚ وَمَنْ يُقَاتِلْ فِي سَبِيلِ اللَّهِ فَيُقْتَلْ أَوْ يَغْلِبْ فَسَوْفَ نُؤْتِيهِ أَجْرًا عَظِيمًا ۝

या अय्युहल्लज़ी-न आमनू ख़ुज़ू हिज़्रकुम् फ़न्फ़िरू सुबातिन् अविन्फ़िरू जमीआ़ (71) व इन्-न मिन्कुम् ल-मल्लयुबत्तिअन्-न फ़-इन् असाबत्कुम् मुसीबतुन् का-ल क़द् अन्अ़मल्लाहु अलय्-य इज़् लम् अकुम् म-अ़हुम् शहीदा (72) व ल-इन् असाबकुम् फ़ज़्लुम् मिनल्लाहि ल-यक़ूलन्-न क-अल्लम् तकुम् बैनकुम् व बैनहू मवद्दतुंय्-या लैतनी कुन्तु म-अ़हुम् फ़-अफ़ू-ज़ फ़ौज़न् अज़ीमा (73) फ़ल्युक़ातिल् फ़ी सबीलिल्लाहिल्लज़ी-न यशरूनल्-

ऐ ईमान वालो! ले लो अपने हथियार फिर निकलो अलग-अलग फ़ौज होकर या सब इकट्ठे। (71) और तुम में बाज़ ऐसा है कि अलबत्ता देर लगा देगा, फिर अगर तुमको कोई मुसीबत पहुँचे तो कहे- अल्लाह ने मुझ पर फ़ज़्ल किया कि मैं न हुआ उनके साथ। (72) और तुमको पहुँचा फ़ज़्ल अल्लाह की तरफ़ से तो इस तरह कहने लगेगा कि गोया न थी तुम में और उसमें कुछ दोस्ती ऐ काश कि मैं होता उनके साथ तो पाता बड़ी मुराद। (73) सो चाहिए कि लड़ें अल्लाह की राह में वे लोग जो बेचते हैं दुनिया की ज़िन्दगी आख़िरत के बदले, और जो कोई

हयातद्दुन्या बिल्आख़ि-रति, व मंय्युक़ातिल् फ़ी सबीलिल्लाहि फ़-युक़्तल् औ यग़्लिब् फ़सौ-फ़ नुअ्तीहि अज्रन् अ़ज़ीमा (74)	लड़े अल्लाह की राह में फिर मारा जाये या ग़ालिब हो जाये तो हम देंगे उसको बड़ा सवाब। (74)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

ऐ ईमान वालो! (काफ़िरों के मुक़ाबले में) अपनी तो एहतियात रखो (यानी उनके दाव-घात से भी होशियार रहो और जंग के वक़्त सामान, हथियार, ढाल और तलवार से भी दुरुस्त रहो) फिर (उनसे जंग के लिये) अलग-अलग तौर पर या इकट्ठे तौर पर (जैसा मौक़ा हो) निकलो। और तुम्हारे मजमे में (जिसमें बाज़े मुनाफ़िक़ भी शामिल हो रहे हैं) बाज़ा-बाज़ा शख़्स ऐसा है (मुराद इससे मुनाफ़िक़ है) जो (जिहाद से) हटता है (यानी जिहाद में शरीक नहीं होता) फिर अगर तुमको कोई हादसा पहुँच गया (जैसे शिकस्त वग़ैरह) तो (अपने न जाने पर ख़ुश होकर) कहता है- बेशक अल्लाह तआ़ला ने मुझ पर बड़ा फ़ज़्ल किया कि मैं उन लोगों के साथ (लड़ाई में) हाज़िर नहीं हुआ (नहीं तो मुझ पर भी मुसीबत आती)। और अगर तुम पर अल्लाह तआ़ला का फ़ज़्ल हो जाता है (यानी फ़तह व ग़नीमत) तो ऐसे तौर पर (ख़ुदग़र्ज़ी के साथ) कि गोया तुम में और उसमें कुछ ताल्लुक़ ही नहीं (माल के हाथ से निकल जाने पर अफ़सोस करके) कहता है- हाय क्या ख़ूब होता कि मैं भी उन लोगों के साथ होता (यानी जिहाद में जाता) तो मुझको भी बड़ी कामयाबी होती (कि माल व दौलत लाता, और ख़ुदग़र्ज़ी और बेताल्लुक़ी इस कहने से ज़ाहिर है, वरना जिससे ताल्लुक़ होता है उसकी कामयाबी पर भी तो ख़ुश होते हैं, यह नहीं कि अपना अफ़सोस करने बैठ जाये और उसकी ख़ुशी का नाम भी न ले, अल्लाह तआ़ला उस शख़्स के हक़ में फ़रमाते हैं कि बड़ी कामयाबी मुफ़्त में नहीं मिलती अगर उसका तालिब है) तो हाँ उस शख़्स को चाहिए कि अल्लाह की राह में (यानी अल्लाह का कलिमा बुलन्द करने की नीयत से जो कि मौक़ूफ़ है ईमान व अख़्लाक़ पर यानी मुसलमान व मुख़्लिस बनकर) उन (काफ़िर) लोगों से लड़े जो आख़िरत (छोड़कर उस) के बदले दुनियावी ज़िन्दगी इख़्तियार किए हुए हैं (यानी उस शख़्स को अगर बड़ी कामयाबी का शौक़ है तो दिल दुरुस्त करे, हाथ-पाँव हिलाये, मशक़्क़त झेले, तेग़ व तलवार के सामने सीना-सिपर बने, देखो बड़ी कामयाबी हाथ आती है या नहीं, और यूँ क्या कोई दिल्लगी है। फिर जो शख़्स इतनी मुसीबत झेले सच्ची कामयाबी उसकी है, क्योंकि दुनिया की कामयाबी अव्वल तो हक़ीर, फिर कभी है कभी नहीं, क्योंकि अगर ग़ालिब आ गये तो है वरना नहीं) और (आख़िरत की कामयाबी जो कि ऐसे शख़्स के लिये वायदा की हुई है ऐसी है कि अ़ज़ीम भी है और फिर हर हालत में है, क्योंकि इसका क़ानून यह है कि) जो शख़्स अल्लाह की राह में लड़ेगा फिर चाहे (मग़लूब हो जाये यहाँ तक

हयातद्दुन्या बिल्आख़ि-रति, व मंय्युक़ातिल् फ़ी सबीलिल्लाहि फ़-युक़्तल् औ यग़्लिब् फ़सौ-फ़ नुअ्तीहि अज्रन् अ़ज़ीमा (74)	लड़े अल्लाह की राह में फिर मारा जाये या ग़ालिब हो जाये तो हम देंगे उसको बड़ा सवाब। (74)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

ऐ ईमान वालो! (काफ़िरों के मुक़ाबले में) अपनी तो एहतियात रखो (यानी उनके दाव-घात से भी होशियार रहो और जंग के वक़्त सामान, हथियार, ढाल और तलवार से भी दुरुस्त रहो) फिर (उनसे जंग के लिये) अलग-अलग तौर पर या इकट्ठे तौर पर (जैसा मौक़ा हो) निकलो। और तुम्हारे मजमे में (जिसमें बाज़े मुनाफ़िक़ भी शामिल हो रहे हैं) बाज़ा-बाज़ा शख़्स ऐसा है (मुराद इससे मुनाफ़िक़ है) जो (जिहाद से) हटता है (यानी जिहाद में शरीक नहीं होता) फिर अगर तुमको कोई हादसा पहुँच गया (जैसे शिकस्त वग़ैरह) तो (अपने न जाने पर ख़ुश होकर) कहता है- बेशक अल्लाह तआ़ला ने मुझ पर बड़ा फ़ज़्ल किया कि मैं उन लोगों के साथ (लड़ाई में) हाज़िर नहीं हुआ (नहीं तो मुझ पर भी मुसीबत आती)। और अगर तुम पर अल्लाह तआ़ला का फ़ज़्ल हो जाता है (यानी फ़तह व ग़नीमत) तो ऐसे तौर पर (ख़ुदग़र्ज़ी के साथ) कि गोया तुम में और उसमें कुछ ताल्लुक़ ही नहीं (माल के हाथ से निकल जाने पर अफ़सोस करके) कहता है- हाय क्या ख़ूब होता कि मैं भी उन लोगों के साथ होता (यानी जिहाद में जाता) तो मुझको भी बड़ी कामयाबी होती (कि माल व दौलत लाता, और ख़ुदग़र्ज़ी और बेताल्लुक़ी इस कहने से ज़ाहिर है, वरना जिससे ताल्लुक़ होता है उसकी कामयाबी पर भी तो ख़ुश होते हैं, यह नहीं कि अपना अफ़सोस करने बैठ जाये और उसकी ख़ुशी का नाम भी न ले, अल्लाह तआ़ला उस शख़्स के हक़ में फ़रमाते हैं कि बड़ी कामयाबी मुफ़्त में नहीं मिलती अगर उसका तालिब है) तो हाँ उस शख़्स को चाहिए कि अल्लाह की राह में (यानी अल्लाह का कलिमा बुलन्द करने की नीयत से जो कि मौक़ूफ़ है ईमान व अख़्लाक़ पर यानी मुसलमान व मुख़्लिस बनकर) उन (काफ़िर) लोगों से लड़े जो आख़िरत (छोड़कर उस) के बदले दुनियावी ज़िन्दगी इख़्तियार किए हुए हैं (यानी उस शख़्स को अगर बड़ी कामयाबी का शौक़ है तो दिल दुरुस्त करे, हाथ-पाँव हिलाये, मशक़्क़त झेले, तेग़ व तलवार के सामने सीना-सिपर बने, देखो बड़ी कामयाबी हाथ आती है या नहीं, और यूँ क्या कोई दिल्लगी है। फिर जो शख़्स इतनी मुसीबत झेले सच्ची कामयाबी उसकी है, क्योंकि दुनिया की कामयाबी अव्वल तो हक़ीर, फिर कभी है कभी नहीं, क्योंकि अगर ग़ालिब आ गये तो है वरना नहीं) और (आख़िरत की कामयाबी जो कि ऐसे शख़्स के लिये वायदा की हुई है ऐसी है कि अ़ज़ीम भी है और फिर हर हालत में है, क्योंकि इसका क़ानून यह है कि) जो शख़्स अल्लाह की राह में लड़ेगा फिर चाहे (मग़लूब हो जाये यहाँ तक

शरीअ़त की यही तालीम है कि अकेले सफ़र न किया जाये। चुनाँचे एक हदीस में तन्हा मुसाफ़िर को एक शैतान कहा गया और दो मुसाफ़िरों को दो शैतान और तीन को जमाअ़त फ़रमाया गया।

इसी तरह एक दूसरी हदीस में इरशाद है:

خَيْرُ الصَّحَابَةِ اَرْبَعَةٌ وَخَيْرُ السَّرَايَا اَرْبَعُ مِائَةٍ وَخَيْرُ الْجُيُوْشِ اَرْبَعَةُ اٰلَافٍ. (رواه الطبراني بحواله مشكوة)

"यानी बेहतरीन साथी चार हैं और बेहतरीन फ़ौजी दस्ता चार सौ का है, और बेहतरीन लश्कर चार हज़ार का है।"

2. 'व इन्-न मिन्कुम.........' इस आयत से बज़ाहिर यह मालूम होता है कि यह ख़िताब भी मोमिनों से है, हालाँकि आगे जो सिफ़ात बयान की गई हैं वो मोमिनों की नहीं हो सकतीं। इसलिये अ़ल्लामा क़ुर्तुबी रहमतुल्लाहि अ़लैहि फ़रमाते हैं कि इससे मुराद मुनाफ़िक़ लोग हैं, वे चूँकि ज़ाहिर में मुसलमान होने का दावा करते थे इसलिये ख़िताब में उनको मोमिनों की एक जमाअ़त कहा गया है।

وَمَا لَكُمْ لَا تُقَاتِلُوْنَ فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ وَالْمُسْتَضْعَفِيْنَ مِنَ الرِّجَالِ وَالنِّسَآءِ وَالْوِلْدَانِ الَّذِيْنَ يَقُوْلُوْنَ رَبَّنَآ اَخْرِجْنَا مِنْ هٰذِهِ الْقَرْيَةِ الظَّالِمِ اَهْلُهَا ۚ وَاجْعَلْ لَّنَا مِنْ لَّدُنْكَ وَلِيًّا ۚ وَّاجْعَلْ لَّنَا مِنْ لَّدُنْكَ نَصِيْرًا ۞ اَلَّذِيْنَ اٰمَنُوْا يُقَاتِلُوْنَ فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ ۚ وَالَّذِيْنَ كَفَرُوْا يُقَاتِلُوْنَ فِيْ سَبِيْلِ الطَّاغُوْتِ فَقَاتِلُوْٓا اَوْلِيَآءَ الشَّيْطٰنِ ۚ اِنَّ كَيْدَ الشَّيْطٰنِ كَانَ ضَعِيْفًا ۞

व मा लकुम् ला तुक़ातिलू-न फ़ी सबीलिल्लाहि वल्-मुस्तज़्अफ़ी-न मिनर्रिजालि वन्निसा-इ वल्-विल्दानिल्-ल्लज़ी-न यक़ूलू-न रब्बना अख़्रिज्ना मिन् हाज़िहिल् क़र्यतिज़्ज़ालिमि अह़्लुहा वज्अ़ल्लना मिल्लदुन्-क वलिय्यंव्-वज्अ़ल्लना मिल्लदुन्-क नसीरा (75) अल्लज़ी-न आमनू युक़ातिलू-न फ़ी सबीलिल्लाहि वल्लज़ी-न क-फ़रू युक़ातिलू-न फ़ी	और तुमको क्या हुआ कि नहीं लड़ते अल्लाह की राह में और उनके वास्ते जो मग़लूब हैं मर्द और औरतें और बच्चे, जो कहते हैं ऐ हमारे रब! निकाल हमको इस बस्ती से कि ज़ालिम हैं यहाँ के लोग और कर दे हमारे लिये अपने पास से कोई हिमायती और कर दे हमारे वास्ते अपने पास से मददगार। (75) जो लोग ईमान वाले हैं सो लड़ते हैं अल्लाह की राह में और जो काफ़िर हैं सो लड़ते हैं शैतान की राह में, सो लड़ो तुम शैतान के

सबीलित्ताग़ूति फ़क़ातिलू औलिया-अश्शैतानि इन्-न कैदश्शैतानि का-न ज़ईफ़ा (76) ✿	हिमायतियों से, बेशक शैतान का फ़रेब सुस्त है। (76) ✿

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

और तुम्हारे पास क्या उज़्र है कि तुम अल्लाह की राह में जिहाद न करो (इसके बावजूद कि इसका प्रबल मौक़ा मौजूद है, क्योंकि यह जिहाद) अल्लाह की राह में (होता है, यानी अल्लाह का कलिमा बुलन्द करने के लिये है जिसका एहतिमाम ज़रूरी है) और (इस दीन की तरक़्क़ी के आसार में से एक ख़ास असर की ज़रूरत भी दरपेश है, वह यह कि) कमज़ोर (ईमान वालों) की ख़ातिर से (भी लड़ना ज़रूरी है ताकि काफ़िरों के ज़ुल्म के पंजे से छुटकारा पायें) जिन (बेचारों) में कुछ मर्द हैं और कुछ औरतें हैं और कुछ बच्चे हैं जो (काफ़िरों से तंग व परेशान हो-होकर) दुआ कर रहे हैं कि ऐ हमारे परवर्दिगार! हमको (किसी तरह) इस बस्ती से (यानी मक्का से जो हमारे लिये जेलख़ाना बना हुआ है) बाहर निकाल, जिसके रहने वाले सख़्त ज़ालिम हैं (कि हम पर आफ़त ढा रखी है) और हमारे लिए ग़ैब से किसी दोस्त को खड़ा कीजिए, और हमारे लिए ग़ैब से किसी हिमायती को भेजिए (कि हमारी हिमायत करके इन ज़ालिमों के पंजे से छुड़ा दे)।

जो लोग पक्के ईमान वाले हैं (वे तो इन अहकाम को सुनकर) अल्लाह की राह में (यानी इस्लाम के ग़लबे के इरादे से) जिहाद करते हैं, और जो लोग (उनके मुक़ाबले में) काफ़िर हैं वे शैतान की राह में (यानी कुफ़्र के ग़लबे के इरादे से) लड़ते हैं (और ज़ाहिर है कि इन दोनों में मदद अल्लाह की तरफ़ से ईमान वालों को होगी। जब ईमान वालों के साथ अल्लाह की मदद है) तो (ऐ ईमान वालो!) तुम शैतान के साथियों से (यानी काफ़िरों से जो कि अल्लाह की मदद से मेहरूम हैं) जिहाद करो, (और अगरचे वे भी ग़लबे की मुख़्तलिफ़ तदबीरें करते हैं लेकिन) हक़ीक़त में (वे शैतानी तदबीरें हैं कि शैतान उन कुफ़्र की तदबीरों का हुक्म करता है) शैतानी तदबीर (ख़ुद) लचर होती है (क्योंकि उसमें ग़ैबी इमदाद नहीं होती, और कभी चन्द दिन के लिये ग़लबा हो जाना तो उनको चन्द दिन की मोहलत और ढील देना है, तो ग़ैबी इमदाद जो मोमिनों के साथ है वह तदबीर उसका क्या मुक़ाबला करेगी)।

ख़ुलासा यह कि दावत देने वाला (यानी मौक़ा) भी है और मदद का वायदा भी है, फिर क्या उज़्र है? इसलिये एक बार फिर ताकीद की गई है।

मआरिफ़ व मसाईल

मज़लूम की फ़रियाद को पहुँचना इस्लाम का एक अहम फ़रीज़ा है

मक्का में ऐसे कमज़ोर मुसलमान रह गये थे जो जिस्मानी कमज़ोरी और सामान कम होने

की वजह से हिजरत न कर सके थे, और बाद में काफ़िरों ने भी उनको जाने से रोक दिया और तरह-तरह की तकलीफ़ें देनी शुरू कर दीं, ताकि ये लोग इस्लाम से फिर जायें। उन हज़रात में से बाज़ों के नाम भी तफ़सीरों में ज़िक्र हुए हैं जैसे हज़रत इब्ने अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु और उनकी वालिदा, हज़रत सलमा बिन हिशाम, हज़रत वलीद बिन वलीद और अबू जन्दल बिन सहल रज़ियल्लाहु अ़न्हुम। (तफ़सीरे क़ुर्तुबी)

ये हज़रात अपने ईमान की पुख़्तगी की वजह से उनके ज़ुल्म व सितम को झेलते और सहते रहे और इस्लाम पर बड़ी मज़बूती से जमे रहे, अलबत्ता अल्लाह तआ़ला से उन मुसीबतों से निजात की दुआ़यें इन्होंने बराबर जारी रखीं, आख़िर अल्लाह तआ़ला ने इनकी दुआ़ क़ुबूल फ़रमाई और मुसलमानों को हुक्म दिया कि वे जिहाद करके इनको काफ़िरों के ज़ुल्म व ज़्यादती से छुटकारा दिलवायें।

इस आयत में मोमिनों ने अल्लाह तआ़ला से दो चीज़ों की दरख़्वास्त की थी- एक यह कि हमको इस बस्ती से निकालें (यहाँ बस्ती से मुराद मक्का है) दूसरी यह कि हमारे लिये कोई नासिर और मददगार भेज दें। चुनाँचे अल्लाह तआ़ला ने उनकी ये दोनों बातें क़ुबूल फ़रमाई हैं। इस तरह कि कुछ को वहाँ से निकलने के मौक़े मयस्सर किये जिससे उनकी पहली बात पूरी हुई और कुछ उसी जगह रहे यहाँ तक कि मक्का फ़तह हुआ तो रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने अ़त्ताब बिन असीद रज़ियल्लाहु अ़न्हु को उनका मुतवल्ली (ज़िम्मेदार) मुक़र्रर किया जिन्होंने मज़लूमों को उनके ज़ालिमों से निजात दिलाई। इस तरह से उनकी दूसरी बात भी पूरी हो गई। इस आयत में साफ़ लफ़्ज़ों में जंग व क़िताल का हुक्म देने के बजाय क़ुरआन ने ये अलफ़ाज़ इख़्तियार किये:

مَالَكُمْ لَا تُقَاتِلُوْنَ

जिनमें इस तरफ़ इशारा है कि इन हालात में क़िताल व जिहाद एक तबई और फ़ितरी फ़रीज़ा है, जिसका न करना किसी भले आदमी से बहुत बईद है।

अल्लाह तआ़ला से दुआ़ तमाम मुसीबतों का बेहतरीन इलाज है

आयत 'यक़ूलू-न रब्बना अख़्रिजना.........' से यह बतलाया गया कि जिहाद व जंग के हुक्म का एक कारण उन कमज़ोर मुसलमान मर्द और औरतों की दुआ़ थी जिसकी क़ुबूलियत मुसलमानों को जिहाद का हुक्म देकर की गई, और उनकी मुसीबतों का फ़ौरी ख़ात्मा हो गया।

जंग तो सब करते हैं मगर उससे मोमिन व काफ़िर के उद्देश्य अलग-अलग हैं

اَلَّذِيْنَ اٰمَنُوْا يُقَاتِلُوْنَ فِىْ سَبِيْلِ اللّٰهِ......... الخ

इस आयत में बतलाया गया कि मोमिन लोग अल्लाह की राह में लड़ते हैं और काफ़िर शैतान की राह में। इससे साफ़ ज़ाहिर है कि मोमिन की जिद्दोजहद का यही मक़सद होता है कि दुनिया में ख़ुदा का क़ानून लागू हो, फैले और अल्लाह तआ़ला का हुक्म बुलन्द हो, क्योंकि अल्लाह तआ़ला तमाम मख़्लूक़ का मालिक है और उसका क़ानून पूरी तरह इन्साफ़ पर आधारित है, और जब इन्साफ़ की हुकूमत क़ायम होगी तो अमन क़ायम रहेगा, दुनिया के अमन के लिये यह ज़रूरी है कि दुनिया में वह क़ानून राईज हो जो अल्लाह का क़ानून है, लिहाज़ा कामिल मोमिन जब जंग करता है तो उसके सामने यही मक़सद होता है।

लेकिन इसके विपरीत काफ़िरों की यह इच्छा होती है कि कुफ़्र की तरक़्क़ी व रिवाज हो, कुफ़्र का ग़लबा हो और शैतानी ताक़तें सत्ता व ताक़त में आयें ताकि दुनिया में कुफ़्र व शिर्क ख़ूब चमके, और चूँकि कुफ़्र व शिर्क शैतान की राहें हैं इसलिये काफ़िर शैतान के काम में उसकी मदद करते हैं।

शैतान की तदबीर कमज़ोर है

اِنَّ كَيْدَ الشَّيْطٰنِ كَانَ ضَعِيْفًا۝

इस आयत में बतलाया गया है कि शैतानी तदबीरें लचर और कमज़ोर होती हैं, जिसकी वजह से वह मोमिनों का कुछ नहीं बिगाड़ सकता। लिहाज़ा मुसलमानों को शैतान के दोस्तों यानी काफ़िरों से लड़ने में कोई संकोच न होना चाहिये इसलिये कि उनका मददगार अल्लाह तआ़ला है, और काफ़िरों को शैतान की तदबीर कोई फ़ायदा न देगी।

चुनाँचे जंगे बदर में ऐसा ही हुआ कि पहले शैतान काफ़िरों के सामने लम्बी डींगें मारता रहा और उसने काफ़िरों को मुकम्मल यक़ीन दिलाया किः

لَا غَالِبَ لَكُمُ الْيَوْمَ

"आजके दिन तुम लोगों को कोई मग़लूब नहीं कर सकता" इसलिये किः

اِنِّىْ جَارٌ لَّكُمْ

"मैं तुम्हारा मददगार हूँ।" मैं अपने तमाम लाव-लश्कर के साथ तुम्हारी मदद को आऊँगा। जब जंग शुरू हुई तो वह अपने लश्कर के साथ अगरचे आगे बढ़ा लेकिन जब उसने देखा कि मुसलमानों की हिमायत में फ़रिश्ते आ पहुँचे तो उसने अपनी तदबीर को नाकाम पाकर उल्टे पाँव भागना शुरू कर दिया और अपने दोस्तों यानी काफ़िरों से कहाः

اِنِّىْ بَرِىْٓءٌ مِّنْكُمْ، اِنِّىْٓ اَرٰى مَا لَا تَرَوْنَ اِنِّىْٓ اَخَافُ اللّٰهَ. وَاللّٰهُ شَدِيْدُ الْعِقَابِ۝

"मैं तुम लोगों से बरी हूँ इसलिये कि मैं वह चीज़ देख रहा हूँ जिसकी तुमको ख़बर नहीं (यानी फ़रिश्तों का लश्कर) मैं अल्लाह से डरता हूँ क्योंकि वह सख़्त अ़ज़ाब देने वाला है।"

(तफ़सीरे मज़हरी)

इस आयत में शैतान की तदबीर को जो कमज़ोर कहा गया है उसके लिये इसी आयत से

दो शर्तें भी मालूम होती हैं- एक यह कि वह आदमी जिसके मुक़ाबले में शैतान तदबीर कर रहा है मुसलमान हो, और दूसरी यह कि उसका काम महज़ अल्लाह ही के लिये हो, कोई दुनियावी नफ़्सानी ग़र्ज़ न हो। पहली शर्त 'अल्लज़ी-न आमनू.....' से और दूसरी 'युक़ातिलू-न फ़ी सबीलिल्लाहि.......' से मालूम होती है। अगर इन दोनों शर्तों में से कोई छूट जाये तो फिर ज़रूरी नहीं कि शैतान की तदबीर उसके मुक़ाबले में कमज़ोर हो।

हज़रत इब्ने अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने फ़रमाया कि "जब तुम शैतान को देखो तो बग़ैर किसी ख़ौफ़ व आशंका के उस पर हमला कर दो।" उसके बाद आपने यही आयत तिलावत फ़रमाई "इन्-न कैदश्शैतानि का-न ज़ईफ़ा"। (अहकामुल-क़ुरआन, सुयूती)

أَلَمْ تَرَ إِلَى الَّذِينَ قِيلَ لَهُمْ كُفُّوا أَيْدِيَكُمْ وَأَقِيمُوا الصَّلَوٰةَ وَآتُوا الزَّكَوٰةَ ۚ فَلَمَّا كُتِبَ عَلَيْهِمُ الْقِتَالُ إِذَا فَرِيقٌ مِّنْهُمْ يَخْشَوْنَ النَّاسَ كَخَشْيَةِ اللَّهِ أَوْ أَشَدَّ خَشْيَةً ۚ وَقَالُوا رَبَّنَا لِمَ كَتَبْتَ عَلَيْنَا الْقِتَالَ لَوْلَا أَخَّرْتَنَا إِلَىٰ أَجَلٍ قَرِيبٍ ۗ قُلْ مَتَاعُ الدُّنْيَا قَلِيلٌ وَالْآخِرَةُ خَيْرٌ لِّمَنِ اتَّقَىٰ وَلَا تُظْلَمُونَ فَتِيلًا ۝ أَيْنَمَا تَكُونُوا يُدْرِككُّمُ الْمَوْتُ وَلَوْ كُنتُمْ فِي بُرُوجٍ مُّشَيَّدَةٍ ۗ وَإِن تُصِبْهُمْ حَسَنَةٌ يَقُولُوا هَٰذِهِ مِنْ عِندِ اللَّهِ ۖ وَإِن تُصِبْهُمْ سَيِّئَةٌ يَقُولُوا هَٰذِهِ مِنْ عِندِكَ ۚ قُلْ كُلٌّ مِّنْ عِندِ اللَّهِ ۖ فَمَالِ هَٰؤُلَاءِ الْقَوْمِ لَا يَكَادُونَ يَفْقَهُونَ حَدِيثًا ۝ مَّا أَصَابَكَ مِنْ حَسَنَةٍ فَمِنَ اللَّهِ ۖ وَمَا أَصَابَكَ مِن سَيِّئَةٍ فَمِن نَّفْسِكَ ۚ وَأَرْسَلْنَاكَ لِلنَّاسِ رَسُولًا ۚ وَكَفَىٰ بِاللَّهِ شَهِيدًا ۝

अलम् त-र इलल्लज़ी-न क़ी-ल लहुम् कुफ़्फ़ू ऐदी-यकुम् व अक़ीमुस्सला-त व आतुज़्ज़का-त फ़-लम्मा कुति-ब अ़लैहिमुल्-क़ितालु इज़ा फ़रीक़ुम् मिन्हुम् यख़्शौनन्ना-स क-ख़श्यतिल्लाहि औ अशद्-द ख़श्य-तन् व क़ालू रब्बना लि-म कतब्-त अ़लैनल्-क़िता-ल लौ ला अख़्ख़र्तना इला अ-जलिन् क़रीबिन्,	क्या तूने न देखा उन लोगों को जिनको हुक्म हुआ था कि अपने हाथ थामे रखो और क़ायम रखो नमाज़ और देते रहो ज़कात, फिर जब हुक्म हुआ उन पर लड़ाई का उसी वक़्त उनमें एक जमाअ़त डरने लगी लोगों से जैसा डर हो अल्लाह का या उससे भी ज़्यादा डर, और कहने लगे ऐ हमारे रब! क्यों फ़र्ज़ की हम पर लड़ाई, क्यों न छोड़े रखा हमको थोड़ी मुद्दत तक। कह दे कि फ़ायदा दुनिया का

क़ुल् मताअुद्दुन्या क़लीलुन् वल्-आख़ि-रतु ख़ैरुल्-लि-मनित्तक़ा, व ला तुज़्लमू-न फ़तीला (77) ऐ-न मा तकूनू युद्रिक्कुमुल्-मौतु व लौ कुन्तुम् फ़ी बुरूजिम् मुशय्य-दतिन्, व इन् तुसिब्हुम् ह-स-नतुंय्यक़ूलू हाज़िही मिन् अिन्दिल्लाहि व इन् तुसिब्हुम् सय्यि-अतुंय्यक़ूलू हाज़िही मिन् अिन्दि-क, क़ुल् कुल्लुम् मिन् अिन्दिल्लाहि, फ़मा-लि हा-उला-इल्-क़ौमि ला यकादू-न यफ़्क़हू-न हदीसा (78) मा असाब-क मिन् ह-स-नतिन् फ़मिनल्लाहि व मा असाब-क मिन् सय्यि-अतिन् फ़-मिन्नफ़्सि-क, व अर्सल्ना-क लिन्नासि रसूलन्, व कफ़ा बिल्लाहि शहीदा (79)	थोड़ा है और आख़िरत बेहतर है परहेज़गार को, और तुम्हारा हक़ न रहेगा एक धागे बराबर। (77) जहाँ कहीं तुम होगे मौत तुमको आ पकड़ेगी अगरचे तुम हो मज़बूत क़िलों में, और अगर पहुँचे लोगों को कुछ भलाई तो कहें यह अल्लाह की तरफ़ से है, और अगर पहुँचे लोगों को कुछ बुराई तो कहें यह तेरी तरफ़ से है। कह दे कि यह सब अल्लाह की तरफ़ से है, सो क्या हाल है उन लोगों का, हरगिज़ नहीं लगते कि समझें कोई बात। (78) जो पहुँचे तुझको कोई भलाई सो अल्लाह की तरफ़ से है, और जो तुझको बुराई पहुँचे सो तेरे नफ़्स की तरफ़ से है, और हमने तुझको भेजा पैग़ाम पहुँचाने वाला लोगों को और अल्लाह काफ़ी है सामने देखने वाला। (79)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

(ऐ मुख़ातब!) क्या तूने उन लोगों को नहीं देखा (जिहाद का हुक्म नाज़िल होने से पहले तो जंग करने का ऐसा तक़ाज़ा था) कि उनको (मना करने के लिये) यह कहा गया था कि (अभी) अपने हाथों को (लड़ने से) थामे रहो और (जो-जो हुक्म तुमको हो चुके हैं उसमें लगे रहो जैसे) नमाज़ों की पाबन्दी रखो और ज़कात देते रहो। (या तो यह हालत थी और या) फिर जब उन पर जिहाद करना फ़र्ज़ कर दिया गया तो क़िस्सा क्या हुआ कि उनमें से बाज़े-बाज़े आदमी (मुख़ालिफ़) लोगों से (तबई तौर पर) ऐसा डरने लगे (कि हमको क़त्ल कर देंगे) जैसा (कोई) अल्लाह तआ़ला से डरता हो बल्कि उससे भी ज़्यादा डरना। (ज़्यादा डरने के दो मायने हो सकते हैं- एक यह कि अक्सर अल्लाह तआ़ला से डरना अ़क़्ली तौर पर होता है और दुश्मन का डर तबई है, और क़ायदा है कि तबई हालत अ़क़्ली हालत से सख़्त होती है। दूसरे यह कि ख़ुदा

तआ़ला से जैसा ख़ौफ़ है वैसी रहमत की उम्मीद भी तो होती है और काफ़िर दुश्मन से तो नुक़सान का ख़ौफ़ ही ख़ौफ़ है, और चूँकि यह ख़ौफ़ तबई था इसलिये गुनाह नहीं हुआ) और (या जंग व जिहाद के हुक्म को मुल्तवी करने की तमन्ना में) यूँ कहने लगे (चाहे ज़बान से या दिल से और ख़ुदा तआ़ला के इल्म में दिल की बात ज़बान के क़ौल के बराबर है) कि ऐ हमारे परवर्दिगार! आपने (अभी से) हम पर जिहाद क्यों फ़र्ज़ फ़रमा दिया, हमको (अपनी इनायत से) और थोड़ी मोहलत की मुद्दत दे दी होती (ज़रा बेफ़िक्री से अपनी ज़रूरतें पूरी कर लेते। और चूँकि यह अ़र्ज़ करना बतौर एतिराज़ या इनकार के न था इसलिये गुनाह नहीं हुआ।

आगे जवाब इरशाद है कि ऐ मुहम्मद सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम!) आप फ़रमा दीजिए कि दुनिया से फ़ायदा उठाना (जिसके लिये तुम मोहलत की तमन्ना करते हो) महज़ चन्द दिन का है और आख़िरत (जिसके हासिल करने का आला ज़रिया जिहाद है) हर तरह से बेहतर है (मगर वह) उस शख़्स के लिए (है) जो अल्लाह तआ़ला की मुख़ालफ़त से बचे (क्योंकि अगर कुफ़्र के तौर पर मुख़ालफ़त की तब तो उसके लिये आख़िरत का सामान कुछ भी नहीं और अगर नाफ़रमानी की तो आला दर्जे से मेहरूम रहेगा) और तुम पर धागे के बराबर भी ज़ुल्म नहीं किया जाएगा (यानी जितने आमाल होंगे उनका पूरा-पूरा सवाब मिलेगा, फिर जिहाद जैसे अ़मल के सवाब से क्यों ख़ाली रहते हो, और अगर जिहाद भी न किया तो क्या तयशुदा वक़्त पर मौत से बच जाओगे? हरगिज़ नहीं! क्योंकि मौत की तो यह हालत है कि) तुम चाहे कहीं भी हो उसी जगह तुमको मौत आ दबाएगी अगरचे तुम क़लई-चूने के क़िलों में ही (क्यों न) हो। (ग़र्ज़ कि जब मौत अपने वक़्त पर ज़रूर आयेगी और मरकर दुनिया को छोड़ना ही पड़ेगा तो आख़िरत में ख़ाली हाथ क्यों जाओ, बल्कि अ़क़्ल की बात यह है कि "चन्द दिन की मेहनत करके हमेशा का आराम हासिल करो")।

और अगर उन (मुनाफ़िक़ों) को कोई अच्छी हालत पेश आती है (जैसे फ़तह व कामयाबी) तो कहते हैं कि यह अल्लाह की तरफ़ से (इत्तिफ़ाक़न) हो गई (वरना मुसलमानों की बे-तदबीरी में तो कोई कसर थी ही नहीं) और अगर उनको कोई बुरी हालत पेश आती है (जैसे जिहाद में मौत व क़त्ल) तो (ऐ मुहम्मद सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम! नऊज़ु बिल्लाह आपके बारे में) कहते हैं कि यह आप (की और मुसलमानों की बे-तदबीरी) के सबब से है (वरना चैन से घरों में बैठे रहते तो क्यों इस मुसीबत में पड़ते)। आप फ़रमा दीजिए कि (मेरा तो इसमें ज़रा भी दख़ल नहीं बल्कि) सब कुछ (नेमत व मुसीबत) अल्लाह ही की तरफ़ से है (अगरचे एक डायरेक्ट हो और एक प्रत्यक्ष रूप से जैसा कि आगे इसकी तफ़सील आती है जिसका हासिल यह है कि नेमत तो महज़ अल्लाह के फ़ज़्ल से आमाल के वास्ते से है और मुसीबत अल्लाह के अ़दल से बन्दों के बुरे आमाल के सबब है, पस तुम जो मुसीबत में मेरा दख़ल समझते हो वास्तव में उसमें बुरे आमाल का दख़ल है, जैसा कि उहुद की जंग में शिकस्त के असबाब गुज़र चुके हैं। और यह बात पूरी तरह ज़ाहिर है, अगर आदमी ज़रा सा भी ग़ौर करे तो ख़ुशहाली से पहले अपना कोई नेक अ़मल उस दर्जे का न पायेगा महज़ फ़ज़्ल ही साबित होगा, और बदहाली से पहले ज़रूर

कोई बुरा अ़मल पायेगा, जिसकी सज़ा उससे ज़्यादा होती। जब यह ऐसी ज़ाहिर बात है) तो उन (अहमक़) लोगों को क्या हुआ कि बात समझने के पास को भी नहीं निकलते (और समझेंगे तो क्या। और वह तफ़सील इस संक्षिप्त जवाब की यह है कि) ऐ इनसान! तुझको जो कोई ख़ुशहाली पेश आती है वह महज़ अल्लाह की तरफ़ से (फ़ज़्ल) है, और जो कोई बदहाली पेश आए वह तेरे ही (बुरे आमाल के) सबब से है (पस उस बदहाली को शरीअ़त के अहकाम पर अ़मल करने का नतीजा कहना या नबी-ए-पाक की तरफ़ उसकी निस्बत करना पूरी जहालत है जैसा कि मुनाफ़िक़ लोग जिहाद और इमामे जिहाद की तरफ़ इसकी निस्बत करते थे)। और हमने आपको तमाम लोगों की तरफ़ पैग़म्बर बनाकर भेजा है, और (अगर कोई मुनाफ़िक़, काफ़िर इनकार करे तो उसके इनकार से नुबुव्वत की नफ़ी कब हो सकती है, क्योंकि) अल्लाह तआ़ला (आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की रिसालत के) गवाह काफ़ी हैं (जिन्होंने क़ौली और फ़ेली गवाही दी है, क़ौली तो जैसे यही कलिमा 'व अरसल्ना-क लिन्नासि रसूला' और फ़ेली यह कि मोजिज़े जो नुबुव्वत के साबित करने की दलील के तौर पर आपको अ़ता फ़रमाये)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

शाने नुज़ूल

اَلَمْ تَرَ اِلَى الَّذِيْنَ قِيْلَ لَهُمْ كُفُّوْٓا اَيْدِيَكُمْ........الخ

(क्या तूने न देखा उन लोगों को........) हिजरत करने से पहले मक्का में काफ़िर मुसलमानों को बहुत सताया करते थे। मुसलमान आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की ख़िदमत में हाज़िर होकर शिकायत करते और रुख़्सत माँगते कि हम काफ़िरों से मुक़ातला (जंग और मुक़ाबला) करें और उनसे ज़ुल्म का बदला लें। आप मुसलमानों को लड़ाई से रोकते थे कि मुझको मुक़ातले का हुक्म नहीं बल्कि सब्र और दरगुज़र करने का हुक्म है, और फ़रमाते कि नमाज़ और ज़कात का जो हुक्म तुमको हो चुका है उसको बराबर किये जाओ क्योंकि जब तक आदमी अल्लाह की इताअ़त में अपने नफ़्स पर जिहाद करने का और जिस्मानी तकलीफ़ें उठाने का आ़दी न हो और अपने माल ख़र्च करने का आ़दी न हो तो उसको जिहाद करना और अपनी जान देना बहुत दुश्वार होता है। इस बात को मुसलमानों ने क़ुबूल कर लिया था। फिर हिजरत के बाद जब मुसलमानों को जिहाद का हुक्म हुआ तो उनको ख़ुश होना चाहिये था कि हमारी दरख़्वास्त क़ुबूल हुई मगर बाज़ कच्चे मुसलमान काफ़िरों के मुक़ातले से ऐसे डरने लगे जैसा कि अल्लाह तआ़ला के अ़ज़ाब से डरना चाहिये या उससे भी ज़्यादा, और आरज़ू करने लगे कि थोड़ी सी मुद्दत और क़िताल का हुक्म न आता और हम ज़िन्दा रहते तो ख़ूब (अच्छा) होता। इस पर ये आयतें नाज़िल हुईं। (तफ़सीर रूहुल-मआ़नी)

जिहाद का हुक्म नाज़िल होने पर मुसलमानों की तरफ़ से हुक्म के स्थगित होने की तमन्ना किस वजह से हुई

जिहाद के हुक्म पर मुसलमानों की तरफ़ से मोहलत की तमन्ना दर हक़ीक़त कोई एतिराज़ न था बल्कि एक लुत्फ़ भरी शिकायत थी, जिसकी वजह यह थी कि आदतन होता यह है कि जब आदमी को हद से ज़्यादा तंगी व तकलीफ़ पहुँचती है तो उसके जज़्बात भड़क उठते हैं, इसलिये ऐसे वक़्त में इन्तिक़ाम (बदला) लेना ज़्यादा आसान होता है। लेकिन आराम व राहत के वक़्त उसकी तबीयत लड़ाई की तरफ़ आमादा नहीं होती, यह एक इनसानी तक़ाज़ा है। चुनाँचे ये मुसलमान जब मक्का में थे तो उस वक़्त काफ़िरों की तकलीफ़ों से तंग आकर जिहाद के हुक्म की तमन्ना कर रहे थे, लेकिन मदीने में आकर जब इनको सुकून व राहत नसीब हुआ तो ऐसी सूरत में जब क़िताल (जंग व जिहाद) का हुक्म हुआ तो उस वक़्त इनका पुराना जज़्बा कम हो चुका था और इनके दिलों में वह जोश व ख़रोश बाक़ी नहीं रहा था, इसलिये उन्होंने महज़ एक तमन्ना की कि अगर इस वक़्त जिहाद का हुक्म न होता तो बेहतर था। इस तमन्ना को एतिराज़ पर महमूल करके उन मुसलमानों की तरफ़ नाफ़रमानी की निस्बत करना सही नहीं है। यह तक़रीर उस सूरत में है जबकि उन्होंने शिकायत का इज़हार ज़बान से भी किया हो, लेकिन अगर ज़बान से नहीं किया महज़ उनके दिल में यह वस्वसा (ख़्याल) पैदा हुआ हो तो दिली वस्वसों को शरीअ़त ने मासियत (नाफ़रमानी) शुमार ही नहीं किया, यहाँ ये दोनों संभावनायें हैं और आयत के लफ़्ज़ 'क़ालू' से यह शुब्हा न किया जाये कि उन्होंने ज़बान से इज़हार कर दिया था, क्योंकि इसके यह मायने हो सकते हैं कि उन्होंने अपने दिल में कहा हो। (बयानुल-क़ुरआन)

कुछ मुफ़स्सिरीन के नज़दीक आयतों का ताल्लुक़ मोमिनों से नहीं है बल्कि मुनाफ़िक़ों से है, इस सूरत में किसी क़िस्म का इश्काल (शुब्हा) नहीं। (तफ़सीरे कबीर)

मुल्क के सुधार से अपना सुधार पहले है

اَقِيْمُوا الصَّلٰوةَ وَاٰتُوا الزَّكٰوةَ

अल्लाह तआ़ला ने पहले नमाज़ और ज़कात के अहकाम को बयान फ़रमाया, जो अपने आपको सुधारने का सबब हैं, और उसके बाद जिहाद का हुक्म दिया जो मुल्क के सुधार का सबब है। यानी इसके ज़रिये से ज़ुल्म व सितम का ख़ात्मा किया जाता है और मुल्क में अमन व अमान क़ायम होता है। इससे मालूम होता है कि आदमी को दूसरों की इस्लाह (सुधार) से पहले अपनी इस्लाह (यानी अपने नफ़्स का सुधार) करनी चाहिये। चुनाँचे दर्जे के एतिबार से भी पहली क़िस्म (यानी अपनी इस्लाह) का हुक्म फ़र्ज़े ऐन है और दूसरे का फ़र्ज़े किफ़ाया है, जिससे नफ़्स की इस्लाह की अहमियत और उसका मुक़द्दम होना ज़ाहिर है। (तफ़सीरे मज़हरी)

दुनिया और आख़िरत की नेमतों में फ़र्क़

आयत में दुनिया की नेमतों के मुक़ाबले में आख़िरत की नेमतों को अफ़ज़ल और बेहतर कहा गया है, इसके निम्नलिखित असबाब हैं:

1. दुनिया की नेमतें थोड़ी और कम हैं और आख़िरत की नेमतें बहुत और ज़्यादा हैं।

2. दुनिया की नेमतें ख़त्म होने वाली हैं और आख़िरत की बाक़ी रहने वाली हैं।

3. दुनिया की नेमतों के साथ तरह-तरह की परेशानियाँ भी हैं और आख़िरत की नेमतें इन ख़राबियों और दिक़्क़तों से पाक हैं।

4. दुनिया की नेमतों का हासिल हो जाना यक़ीनी नहीं है और आख़िरत की नेमतें हर मुत्तक़ी को यक़ीनन मिलेंगी। (तफ़सीरे कबीर)

وَلَا خَيْرَ فِي الدُّنْيَا لِمَنْ لَمْ يَكُنْ لَهُ ☆ مِنَ اللّٰهِ فِي دَارِ الْمَقَامِ نَصِيْبُ

فَإِنْ تُعْجِبُ الدُّنْيَا رِجَالًا فَإِنَّهَا ☆ مَتَاعٌ قَلِيْلٌ وَالزَّوَالُ قَرِيْبُ

"यानी इस नापायदार दुनिया में ऐसे शख़्स के लिये कुछ भलाई नहीं है जिसके लिये अल्लाह तआला की तरफ़ से पायदार घर यानी आख़िरत में कोई जगह न हो। फिर अगर दुनिया कुछ लोगों को पसन्द आये तो आगाह रहें कि यह दुनिया तो मामूली सा फ़ायदा है और इसका ज़वाल व नापैद होना बहुत क़रीब है, यानी इधर आँख बन्द हुई और उधर आख़िरत सामने आई।"

एक सबक़ लेने वाला वाक़िआ

اَيْنَ مَا تَكُوْنُوْا يُدْرِكْكُّمُ الْمَوْتُ...... الخ

अल्लाह तआला ने इस आयते जिहाद से रुकने वालों के इस शुब्हे को दूर कर दिया कि शायद जिहाद से जान बचाकर मौत से भी बच सकते हैं। इसलिये फ़रमाया कि मौत एक दिन आकर रहेगी, चाहे तुम जहाँ कहीं भी हो वहीं मौत आयेगी। जब यह बात है तो तुम्हारा जिहाद से मुँह फेरना बेकार है।

हाफ़िज़ इब्ने कसीर रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने इस आयत के तहत में एक सबक़ लेने वाला वाक़िआ इमाम इब्ने जरीर, इमाम इब्ने अबी हातिम और इमाम मुजाहिद रहमतुल्लाहि अ़लैहिम की रिवायत से लिखा है कि पहली उम्मतों में एक औ़रत थी उसको जब बच्चे की पैदाईश का वक़्त शुरू हुआ और थोड़ी देर के बाद बच्चा पैदा हुआ तो उसने अपने मुलाज़िम (नौकर) को आग लेने के लिये भेजा। वह दरवाज़े से निकल ही रहा था कि अचानक एक आदमी ज़ाहिर हुआ और उसने पूछा कि इस औ़रत ने किसे जन्म दिया है? मुलाज़िम ने जवाब दिया कि लड़की हुई है, तो उस आदमी ने कहा कि आप याद रखिये! यह लड़की सौ मर्दों से ज़िना करेगी, और आख़िर एक मकड़ी से मरेगी।

मुलाज़िम यह सुनकर वापस हुआ और फ़ौरन एक छुरी लेकर उस लड़की का पेट चाक कर

दिया और सोचा कि अब यह मर गई है तो भाग गया। मगर लड़की की माँ ने टाँके लगाकर उसका पेट जोड़ दिया यहाँ तक कि वह लड़की जवान हो गई और ख़ूबसूरत इतनी थी कि शहर में वह बेमिसाल थी। उस मुलाज़िम ने भागकर समन्दर की राह ली और काफ़ी अ़रसे तक माल व दौलत कमाता रहा, और फिर शादी करने के लिये वापस शहर आया, और यहाँ उसको एक बुढ़िया मिली तो उससे ज़िक्र किया कि मैं ऐसी लड़की से शादी करना चाहता हूँ जिससे ज़्यादा ख़ूबसूरत इस शहर में और कोई न हो। उस औ़रत ने कहा कि फ़ुलाँ लड़की से ज़्यादा ख़ूबसूरत कोई नहीं है, आप उसी से शादी कर लें।

आख़िरकार कोशिश की और उससे शादी कर ली, तो उस लड़की ने मर्द से मालूम किया कि तुम कौन हो? और कहाँ रहते हो? उसने कहा कि मैं इसी शहर का रहने वाला हूँ लेकिन एक लड़की का मैं पेट चाक करके भाग गया था, फिर उसने पूरा वाक़िआ सुनाया। यह सुनकर वह बोली कि वह लड़की मैं ही हूँ। यह कहकर उसने अपना पेट दिखाया जिस पर निशान मौजूद था। यह देखकर उस मर्द ने कहा कि अगर तू वही औ़रत है तो तेरे मुताल्लिक़ दो बातें बतलाता हूँ एक यह कि तू सौ मर्दों से ज़िना करेगी। इस पर औ़रत ने इक़रार किया कि हाँ मुझसे ऐसा हुआ है लेकिन तादाद याद नहीं। मर्द ने कहा तादाद सौ है। दूसरी बात यह कि तू मकड़ी से मरेगी।

मर्द ने उसके लिये एक आ़लीशान महल तैयार कराया जिसमें मकड़ी के जाले का नाम तक न था। एक दिन उसी में लेटे हुए थे कि दीवार पर एक मकड़ी नज़र आई औ़रत ने कहा क्या मकड़ी यही है जिससे तू मुझे डराता है? मर्द ने कहा हाँ! इस पर वह फ़ौरन उठी और कहा कि इसको तो मैं फ़ौरन मार दूँगी। यह कहकर उसको नीचे गिराया और पाँव से मसल कर मार डाला।

मकड़ी तो मर गई लेकिन उसके ज़हर की छींटें उसके पाँव और नाख़ुनों पर पड़ गईं जो उसकी मौत का पैग़ाम बन गईं। (इब्ने कसीर)

यह औ़रत साफ़-सुथरे शानदार महल में अचानक एक मकड़ी के ज़रिये हलाक हो गई। इसके मुक़ाबले में कितने आदमी ऐसे हैं कि उम्र भर जंगों और लड़ाईयों में गुज़ार दी, वहाँ मौत न आई। हज़रत ख़ालिद बिन वलीद रज़ियल्लाहु अ़न्हु जो इस्लाम के सिपाही और जरनल मारूफ़ व मशहूर हैं और सैफ़ुल्लाह (अल्लाह की तलवार) उनका लक़ब है। पूरी उम्र शहादत की तमन्ना में जिहाद में मसरूफ़ रहे और हज़ारों काफ़िरों को अपनी तलवार से हलाक किया, हर ख़तरे की वादी को बेख़ौफ़ व ख़तर पार किया और हमेशा यही दुआ़ करते थे कि मेरी मौत औ़रतों की तरह चारपाई पर न हो, बल्कि एक निडर सिपाही की तरह मैदाने जिहाद में हो, लेकिन आख़िरकार उनकी मौत बिस्तर पर ही हुई। इससे मालूम हुआ कि ज़िन्दगी और मौत का निज़ाम क़ादिरे मुतलक़ ने अपने हाथ ही में रखा है, जब वह चाहे तो आराम के बिस्तर पर एक मकड़ी के ज़रिये मार दे और बचाना चाहे तो तलवारों की छाँव में बचा ले।

पुख़्ता मज़बूत घर तामीर करना तवक्कुल के ख़िलाफ़ नहीं

وَلَوْ كُنْتُمْ فِيْ بُرُوْجٍ مُّشَيَّدَةٍ

इस आयत में कहा गया कि मौत तुमको हर हाल में पहुँचकर रहेगी, अगरचे तुम मज़बूत महलों में ही क्यों न हो। इससे मालूम हुआ कि रहने सहने और माल व असबाब की हिफ़ाज़त के लिये मज़बूत व उम्दा घर तामीर करना न ख़िलाफ़े तवक्कुल है और न ख़िलाफ़े शरीअ़त है। (तफ़सीरे क़ुर्तुबी)

इनसान को नेमत महज़ अल्लाह के फ़ज़्ल से मिलती है

مَآ اَصَابَكَ مِنْ حَسَنَةٍ فَمِنَ اللّٰهِ

यहाँ ह-सना से मुराद नेमत है। (तफ़सीरे मज़हरी)

इस आयत से इशारा इस बात की तरफ़ कर दिया कि इनसान को जो नेमत मिलती है वह कोई उसका हक़ नहीं होता बल्कि महज़ अल्लाह का फ़ज़्ल होता है। इनसान चाहे कितनी ही इबादत करे इससे वह नेमत का मुस्तहिक़ नहीं हो सकता, इसलिये कि इबादत की तौफ़ीक़ भी तो अल्लाह ही की जानिब से होती है, फिर अल्लाह की नेमतें तो बेहिसाब हैं उनको सीमित इबादतें और नेकियों से कैसे हासिल किया जा सकता है? ख़ुसूसन जबकि हमारी इबादत भी रब्बुल-आ़लमीन की बादशाहत के शायाने शान न हो।

चुनाँचे एक हदीस में रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम फ़रमाते हैं:

مَآ اَحَدٌ يَّدْخُلُ الْجَنَّةَ اِلَّا بِرَحْمَةِ اللّٰهِ قِيْلَ وَلَا اَنْتَ. قَالَ وَلَا اَنَا. (متفق عليه. بحواله مظهرى)

"यानी सिवाय अल्लाह तआ़ला की रहमत के कोई शख़्स जन्नत में नहीं जायेगा। रावी ने अ़र्ज़ किया आप भी नहीं जायेंगे? फ़रमाया हाँ मैं भी नहीं।"

मुसीबत इनसान के बुरे आमाल का नतीजा है

وَمَآ اَصَابَكَ مِنْ سَيِّئَةٍ فَمِنْ نَّفْسِكَ

यहाँ "सय्यि-अतुन" से मुराद मुसीबत है। (तफ़सीरे मज़हरी)

मुसीबत की तख़्लीक़ (पैदाईश और वजूद में लाना) अगरचे अल्लाह तआ़ला ही करता है लेकिन उसका सबब ख़ुद इनसान के बुरे आमाल होते हैं। अब अगर यह इनसान काफ़िर है तो इसके लिये दुनिया में जो मुसीबत पेश आती है यह इसके लिये उस अ़ज़ाब का एक मामूली सा नमूना होता है और आख़िरत का अ़ज़ाब इससे कहीं ज़्यादा है। और अगर वह मोमिन है तो उसके लिये मुसीबतें व तकलीफ़ें उसके गुनाहों का कफ़्फ़ारा होकर आख़िरत की निजात का सबब हो जाती हैं। चुनाँचे एक हदीस में आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने इरशाद फ़रमायाः

مَا مِنْ مُّصِيْبَةٍ تُصِيْبُ الْمُسْلِمَ اِلَّا كَفَّرَ اللّٰهُ بِهَا عَنْهُ حَتّٰى الشَّوْكَةَ يُشَاكُهَا. (ترمذى بحواله مظهرى)

"यानी कोई मुसीबत ऐसी नहीं है जो किसी मुसलमान को पहुँचे मगर वह उसके गुनाहों का कफ़्फ़ारा हो जाती है, यहाँ तक कि काँटा जो उसके पाँव में चुभता है।"

एक दूसरी हदीस में इरशाद फ़रमायाः

عَنْ اَبِیْ مُوْسٰی اَنَّ رَسُوْلَ اللّٰہِ صَلَّی اللّٰہُ عَلَیْہِ وَسَلَّمَ قَالَ لَا تُصِیْبُ عَبْدًا نَکْبَۃٌ فَمَا فَوْقَھَا وَمَا دُوْنَھَا اِلَّا بِذَنْبٍ وَمَا یَعْفُوْا اَکْثَرُ. (ترمذی بحوالہ مظہری)

"हज़रत अबू मूसा रज़ियल्लाहु अन्हु फ़रमाते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि बन्दे को जो कोई हल्की या सख़्त मुसीबत पेश आती है तो वह उसके गुनाह का नतीजा होती है, और बहुत से गुनाहों को माफ़ फ़रमा देते हैं।"

आपकी रिसालत तमाम आलम के लिये आम है

وَاَرْسَلْنٰکَ لِلنَّاسِ رَسُوْلًا

इससे साबित हुआ कि आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम को तमाम लोगों के लिये रसूल बनाकर भेजा गया है। आप सिर्फ़ अरब वालों के लिये ही रसूल नहीं थे बल्कि आपकी रिसालत पूरे आलम के इनसानों के लिये आम है, चाहे उस वक़्त मौजूद हों या आईन्दा क़ियामत तक पैदा हों। (तफ़सीरे मज़हरी)

مَنْ یُّطِعِ الرَّسُوْلَ فَقَدْ اَطَاعَ اللّٰہَ ۚ وَمَنْ تَوَلّٰی فَمَآ اَرْسَلْنٰکَ عَلَیْھِمْ حَفِیْظًا ۝

मंय्युतिअिर्-रसू-ल फ़-क़द् अताअ़ल्ला-ह व मन् तवल्ला फ़मा अर्सल्ना-क अ़लैहिम् हफ़ीज़ा (80)	जिसने हुक्म माना रसूल का उसने हुक्म माना अल्लाह का, और जो उल्टा फिरा तो हमने तुझको नहीं भेजा उन पर निगहबान। (80)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

जिस शख़्स ने रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) की इताअ़त की उसने अल्लाह तआ़ला की इताअ़त की (और जिसने आपकी नाफ़रमानी की उसने ख़ुदा तआ़ला की नाफ़रमानी की और अल्लाह तआ़ला की इताअ़त अ़क़्ली एतिबार से भी वाजिब है, पस आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की इताअ़त भी वाजिब हुई), और जो शख़्स (आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की इताअ़त से) मुँह फेरे "यानी अल्लाह और उसके रसूल की फ़रमाँबरदारी से मुँह मोड़े" सो (आप कुछ ग़म न कीजिये क्योंकि) हमने आपको (बतौर ज़िम्मेदारी के) उनका निगराँ करके नहीं भेजा (कि आप उनको कुफ़्र न करने दें, बल्कि आपका फ़र्ज़ पैग़ाम पहुँचा देने से पूरा हो जाता है, अगर उसके बाद भी वे कुफ़्र करें तो आप पर किसी पूछगछ का अन्देशा नहीं। आप बेफ़िक्र रहें)।

وَيَقُولُونَ طَاعَةٌ ۖ فَإِذَا بَرَزُوا مِنْ عِنْدِكَ بَيَّتَ طَائِفَةٌ مِنْهُمْ غَيْرَ الَّذِي تَقُولُ ۖ وَاللَّهُ يَكْتُبُ مَا يُبَيِّتُونَ ۖ فَأَعْرِضْ عَنْهُمْ وَتَوَكَّلْ عَلَى اللَّهِ ۚ وَكَفَىٰ بِاللَّهِ وَكِيلًا ۝ أَفَلَا يَتَدَبَّرُونَ الْقُرْآنَ ۚ وَلَوْ كَانَ مِنْ عِنْدِ غَيْرِ اللَّهِ لَوَجَدُوا فِيهِ اخْتِلَافًا كَثِيرًا ۝

व यक़ूलू-न ताअ़तुन् फ़-इज़ा ब-रज़ू मिन् अ़िन्दि-क बय्य-त ता-इ-फ़तुम् मिन्हुम् ग़ैरल्लज़ी तक़ूलु, वल्लाहु यक्तुबु मा युबय्यितू-न फ़-अअ़्रिज़् अ़न्हुम् व तवक्कल् अ़लल्लाहि व कफ़ा बिल्लाहि वकीला (81) अ-फ़ला य-तदब्बरूनल्-क़ुर्आ-न, व लौ का-न मिन् अ़िन्दि ग़ैरिल्लाहि ल-व-जदू फ़ीहिख़्तिलाफ़न् कसीरा (82)	और कहते हैं क़ुबूल है, फिर जब बाहर गये तेरे पास से तो मश्विरा करते हैं बाज़े बाज़े उनमें से रात को उसके ख़िलाफ़ जो तुझसे कह चुके थे, और अल्लाह लिखता है जो वे मश्विरा करते हैं, सो तू बेतवज्जोही बरत उनसे और भरोसा कर अल्लाह पर और अल्लाह काफ़ी है कारसाज़। (81) क्या ग़ौर नहीं करते क़ुरआन में? और अगर यह होता किसी और का सिवाय अल्लाह के तो ज़रूर पाते इसमें बहुत फ़र्क़। (82)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

और ये (मुनाफ़िक़) लोग (आपके अहकाम सुनकर आपके सामने ज़बान से तो) कहते हैं कि हमारा काम (आपकी) इताअ़त करना है, फिर जब आपके पास से (उठकर) बाहर जाते हैं तो रात के वक़्त (छुपे तौर पर) मश्विरे करते हैं इन्हीं की एक जमाअ़त (यानी इनके सरदारों की जमाअ़त) उसके ख़िलाफ़ जो कुछ कि ज़बान से कह चुके थे। (और चूँकि वे सरदार हैं असल मश्विरा वे करते हैं बाक़ी उनके ताबे रहते हैं, तो इस मुख़ालफ़त में सब की एक हालत है) और अल्लाह तआ़ला (सरकारी रोज़नामचे में) लिखते जाते हैं जो कुछ वे रातों को मश्विरे किया करते हैं (मौक़े पर सज़ा देंगे) सो आप उनकी (बेहूदगी की) तरफ़ ध्यान (और ख़्याल) न कीजिए और (न कुछ फ़िक्र कीजिये, बल्कि सारा क़िस्सा) अल्लाह तआ़ला के हवाले कीजिए और अल्लाह तआ़ला काफ़ी कारसाज़ हैं (वह ख़ुद मुनासिब तरीक़े से इसको दूर फ़रमा देंगे, चुनाँचे कभी उनकी शरारत से कोई नुक़सान नहीं पहुँचा)।

क्या ये लोग (क़ुरआन के अपने बयान व मानी में बेमिसाल होने और ग़ैब की सही सही ख़बरें देने को देख रहे हैं और फिर) क़ुरआन में ग़ौर नहीं करते (ताकि उसका कलामे इलाही होना वाज़ेह हो जाये)। और अगर यह अल्लाह के सिवा किसी और की तरफ़ से होता तो इस

(के मज़ामीन) में (उनके ज़्यादा होने के सबब वास्तविकता और अनोखा होने में) बहुत अधिक फ़र्क़ और इख़्तिलाफ़ पाते (क्योंकि हर-हर मज़मून में एक-एक इख़्तिलाफ़ व फ़र्क़ होता तो ज़्यादा मज़ामीन में बहुत ज़्यादा विरोधाभास होते, हालाँकि एक मज़मून में भी इख़्तिलाफ़ (आपस में टकराव) नहीं, पस निश्चित बात है कि यह ग़ैरुल्लाह का कलाम नहीं हो सकता)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

وَيَقُولُونَ طَاعَةٌ فَإِذَا بَرَزُوا مِنْ عِنْدِكَ بَيَّتَ طَائِفَةٌ مِّنْهُمْ غَيْرَ الَّذِي تَقُولُ

इस आयत में उन लोगों की बुराई बयान की गई है जो दो-रुख़ी पॉलिसी रखते हैं, ज़बान से कुछ कहते हैं दिल में कुछ होता है। उसके बाद ऐसे लोगों के बारे में रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के तर्ज़े-अ़मल (व्यवहार) के मुताल्लिक़ एक ख़ास हिदायत है।

पेशवा के लिये एक अहम हिदायत

فَأَعْرِضْ عَنْهُمْ وَتَوَكَّلْ عَلَى اللّٰهِ، وَكَفَىٰ بِاللّٰهِ وَكِيلًا ۝

जब मुनाफ़िक़ लोग आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के सामने आते तो कहते कि हमने आपका हुक्म क़ुबूल किया, और जब वापस जाते तो आपकी नाफ़रमानी करने के लिये मश्विरे करते। इससे रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को सख़्त तकलीफ़ व कुढ़न होती। इस पर अल्लाह तआ़ला ने आपको हिदायत दी कि उनकी परवाह न कीजिये आप अपना काम अल्लाह के भरोसे पर करते रहें क्योंकि वह आपके लिये काफ़ी है।

इससे मालूम हुआ कि जो शख़्स लोगों का पेशवा और रहनुमा हो उसे तरह-तरह की दुश्वारियों से गुज़रना पड़ता है, लोग तरह-तरह के उल्टे-सीधे इल्ज़ामात उसके सर डालेंगे, दोस्ती के रूप में दुश्मन भी होंगे, इन सब चीज़ों के बावजूद उस रहनुमा को हिम्मत व सब्र के साथ अल्लाह के भरोसे पर अपने काम से लगन होनी चाहिये, अगर उसका रुख़ और मक़सद सही होगा तो इन्शा-अल्लाह तआ़ला ज़रूर कामयाब होगा।

क़ुरआन में ग़ौर व फ़िक्र

أَفَلَا يَتَدَبَّرُونَ الْقُرْآنَ

इस आयत से अल्लाह तआ़ला क़ुरआन में ग़ौर व फ़िक्र करने की दावत देते हैं। इसमें चन्द चीज़ें क़ाबिले ग़ौर हैं- एक यह कि अल्लाह तआ़ला ने 'अ-फ़ला य-तदब्बरूनल् क़ुरआ-न' फ़रमाया 'अ-फ़ला यक़्रऊ-न' नहीं फ़रमाया। इससे बज़ाहिर एक बारीक इशारा इस बात की तरफ़ मालूम होता है कि इस आयत से यह बात समझाई जा रही है कि वे अगर गहरी नज़र से क़ुरआन को देखें तो उनको उसके मायनों व मज़ामीन में कोई इख़्तिलाफ़ (विरोधाभास और टकराव) नज़र नहीं आयेगा। और यह मफ़्हूम तदब्बुर (ग़ौर व फ़िक्र करने) के उनवान से ही अदा हो सकता है, सिर्फ़ तिलावत और क़िराअत (पढ़ना) जिसमें तदब्बुर और ग़ौर व फ़िक्र न हो उससे बहुत से

इख़्तिलाफ़ात नज़र आने लगते हैं, जो हक़ीक़त के ख़िलाफ़ है।

दूसरी बात इस आयत से यह मालूम हुई कि क़ुरआन का मुतालबा है कि हर इनसान उसके मायनों और मतलब में ग़ौर करे, लिहाज़ा यह समझना कि क़ुरआन में तदब्बुर करना सिर्फ़ इमामों और मुज्तहिदों ही के लिये है सही नहीं है, अलबत्ता तदब्बुर और तफ़क्कुर (ग़ौर व फ़िक्र करने) के दर्जे इल्म व समझ के दर्जों की तरह मुख़्तलिफ़ (अलग-अलग) होंगे। मुज्तहिद इमामों का तफ़क्कुर एक-एक आयत से हज़ारों मसाईल निकालेगा, आम उलेमा का तफ़क्कुर (मायनों में ग़ौर करना) उन मसाईल के समझने तक पहुँचेगा, अ़वाम अगर क़ुरआन का तर्जुमा और तफ़सीर अपनी ज़बान में पढ़कर तदब्बुर करें तो इससे अल्लाह तआ़ला की बड़ाई व मुहब्बत और आख़िरत की फ़िक्र पैदा होगी जो कामयाबी की कुंजी है। अलबत्ता अ़वाम के लिये ग़लत-फ़हमी और मुग़ालतों से बचने के लिये बेहतर यह है कि किसी आ़लिम से क़ुरआन को सबक़न-सबक़न पढ़ें, यह न हो सके तो किसी विश्वसनीय व मोतबर तफ़सीर का मुताला (अध्ययन) करें, और जहाँ कोई शुब्हा पेश आये अपनी राय से फ़ैसला न करें बल्कि माहिर उलेमा से रुजू करें।

क़ुरआन व सुन्नत की तफ़सीर व व्याख्या पर किसी जमाअ़त या व्यक्ति की इजारादारी नहीं है, लेकिन इसके लिये कुछ शर्तें हैं

ज़िक्र हुई आयत से मालूम हुआ कि हर शख़्स को यह हक़ है कि वह क़ुरआन में तदब्बुर व तफ़क्कुर (सोच-विचार और ग़ौर व फ़िक्र) करे, लेकिन जैसा कि हमने कहा है कि तदब्बुर के दर्जे अलग-अलग हैं और हर एक का हुक्म अलग है। मुज्तहिद वाला तदब्बुर जिसके ज़रिये क़ुरआने हकीम से दूसरे मसाईल को निकाला जाता है उसके लिये ज़रूरी है कि वह उसकी बुनियादी और ज़रूरी चीज़ों (उलूम) को हासिल करे ताकि वह नतीजों को सही तरीक़े से समझे और हासिल कर सके। और अगर उसने क़ुरआन के मायनों में ग़ौर व फ़िक्र करने के लिये अनिवार्य उलूम को बिल्कुल हासिल न किया या नाक़िस हासिल किया, जिन सिफ़तों और शर्तों की एक मुज्तहिद को ज़रूरत होती है वो उसके पास नहीं हैं तो ज़ाहिर है कि नतीजे ग़लत निकालेगा, अब अगर उलेमा उस पर नकीर (उसकी बताई बातों को नकारें) तो हक़ और दुरुस्त है।

अगर एक शख़्स जिसने कभी किसी मेडिकल कॉलेज की शक्ल न देखी हो यह एतिराज़ करने लगे कि मुल्क में इलाज व मुआ़लजे पर सनद याफ़्ता डॉक्टरों की इजारादारी क्यों क़ायम कर दी गई है? मुझे भी बहैसियत एक इनसान के यह हक़ मिलना चाहिये। या कोई अ़क़्ल से कोरा इनसान यह कहने लगे कि मुल्क में नहरें पुल और बन्द तामीर करने का ठेका सिर्फ़ इन्जीनियरों ही को क्यों दिया जाता है? मैं भी बहैसियत एक नागरिक के यह ख़िदमत अन्जाम देने का हक़दार हूँ। या कोई अ़क़्ल से माज़ूर आदमी यह एतिराज़ उठाने लगे कि मुल्की क़ानून

की तशरीह व ताबीर पर सिर्फ़ क़ानून के विशेषज्ञों ही की इजारादारी क्यों क़ायम कर दी गई? मैं भी आक़िल व बालिग़ होने की हैसियत यह काम कर सकता हूँ। उस आदमी से यही कहा जाता है कि बिला शुब्हा बहैसियत एक नागरिक के तुम्हें इन तमाम कामों का हक़ हासिल है लेकिन इन कामों की अहलियत (योग्यता और क़ाबलियत) पैदा करने के लिये सालों साल मेहनत करनी पड़ती है, माहिर उस्तादों से उन उलूम व फ़ुनून को सीखना पड़ता है, इसके लिये डिग्रियाँ हासिल करनी पड़ती हैं, पहले यह ज़हमत तो उठाओ फिर बेशक तुम भी ये तमाम ख़िदमतें अन्जाम दे सकते हो।

लेकिन यही बात अगर क़ुरआन व सुन्नत की व्याख्या के गहरे और नाज़ुक काम के लिये कही जाये तो इस पर उलेमा की इजारादारी के आवाज़े कसे जाते हैं? क्या क़ुरआन व सुन्नत की तशरीह व ताबीर (व्याख्या और मतलब बयान) करने के लिये कोई अहलियत और कोई क़ाबलियत दरकार नहीं? क्या पूरी दुनिया में एक क़ुरआन व सुन्नत ही का इल्म ऐसा लावारिस रह गया है कि इसके मामले में हर शख़्स को अपनी तशरीह व ताबीर करने का हक़ हासिल है चाहे उसने क़ुरआन व सुन्नत का इल्म हासिल करने के लिये चन्द महीने भी ख़र्च न किये हों।

क़ियास का सुबूत

इस आयत से एक बात यह मालूम हुई कि अगर किसी मसले का स्पष्ट हुक्म क़ुरआन व सुन्नत में न मिले तो इन्हीं में ग़ौर व फ़िक्र करके उसका हल निकालने की कोशिश की जाये और इसी अ़मल को इस्तिलाह में **क़ियास** कहते हैं। (तफ़सीरे क़ुर्तुबी)

'बहुत ज़्यादा' इख़्तिलाफ़ की वज़ाहत

لَوْكَانَ مِنْ عِنْدِ غَيْرِ اللّٰهِ لَوَجَدُوْا فِيْهِ اخْتِلَافًا كَثِيْرًا

'इख़्तिलाफ़े कसीरा' का मतलब यह है कि अगर एक मज़मून में इख़्तिलाफ़ होता तो ज़्यादा मज़ामीन का इख़्तिलाफ़ भी ज़्यादा हो जाता। (बयानुल-क़ुरआन) लेकिन यहाँ किसी एक मज़मून में भी इख़्तिलाफ़ (ठकराव) नहीं, लिहाज़ा यह अल्लाह तआ़ला का कलाम है, इनसान के कलाम में यह यक्सानियत कहाँ, न किसी जगह कलाम की ख़ूबी और उम्दगी में कमी, न तौहीद व कुफ़्र और हलाल व हराम के बयान में टकराव और फ़र्क़। फिर ग़ैब की सूचनाओं में भी न कोई ख़बर ऐसी है जो असलियत के मुताबिक़ न हो, न नज़्मे क़ुरआन में कहीं यह फ़र्क़ कि कुछ हिस्सा फ़सीह (उम्दा और बेहतरीन) हो और कुछ हिस्सा कम दर्जे का, हर इनसान की तक़रीर व तहरीर पर माहौल का असर होता है, इत्मीनान के वक़्त कलाम और तरह का होता है परेशानी के वक़्त दूसरी तरह का, ख़ुशी के वक़्त और रंग होता है और रंज के वक़्त दूसरा, लेकिन क़ुरआन हर क़िस्म के फ़र्क़ और विरोधाभास से पाक और बालातर है, और यही इसके कलामे इलाही होने की स्पष्ट दलील है।

وَإِذَا جَآءَهُمْ أَمْرٌ مِّنَ الْأَمْنِ أَوِ الْخَوْفِ أَذَاعُوا بِهِۦ ۖ وَلَوْ رَدُّوهُ إِلَى الرَّسُولِ وَإِلَىٰٓ أُولِى الْأَمْرِ مِنْهُمْ لَعَلِمَهُ الَّذِينَ يَسْتَنۢبِطُونَهُۥ مِنْهُمْ ۗ وَلَوْلَا فَضْلُ اللَّهِ عَلَيْكُمْ وَرَحْمَتُهُۥ لَاتَّبَعْتُمُ الشَّيْطَٰنَ إِلَّا قَلِيلًا ۝

व इज़ा जा-अहुम् अम्रुम् मिनल्-अम्नि अविल्ख़ौफ़ि अज़ाअ़ू बिही, व लौ रद्दूहु इलर्रसूलि व इला उलिल्-अम्रि मिन्हुम् ल-अ़लि-महुल्लज़ी-न यस्तम्बितूनहू मिन्हुम्, व लौ ला फ़ज़्लुल्लाहि अ़लैकुम् व रह्मतुहू लत्त-बअ़्तुमुश्शैता-न इल्ला क़लीला (83)	और जब उनके पास पहुँचती है कोई ख़बर अमन की या डर की तो उसको मशहूर कर देते हैं, और अगर उसको पहुँचा देते रसूल तक और अपने हाकिमों तक तो तहक़ीक़ करते उसको जो उनमें तहक़ीक़ करने वाले हैं उसकी। और अगर न होता फ़ज़्ल अल्लाह का तुम पर और उसकी मेहरबानी तो अलबत्ता तुम पीछे हो लेते शैतान के मगर थोड़े (यानी कुछ ही लोग बचते बाक़ी शैतान के पैरोकार बन जाते)। (83)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

और जब उन लोगों को किसी (नये) मामले और बात की ख़बर पहुँचनी है चाहे (वह मामला) अमन (को लाने वाला) हो या ख़ौफ़ (का सबब हो, जैसे कोई लश्कर मुसलमानों का किसी जगह जिहाद के लिये गया और उनके ग़ालिब होने की ख़बर आई, यह अमन की ख़बर हुई या उनके मग़लूब होने की ख़बर आई, यह ख़ौफ़ की ख़बर है) तो उस (ख़बर) को (फ़ौरन) मशहूर कर देते हैं (हालाँकि कई बार वह ग़लत निकलती है, और अगर सही भी हुई तब भी कई बार उसका मशहूर करना इन्तिज़ामी मस्लेहत के ख़िलाफ़ होता है)। और अगर (बजाय मशहूर करने के) ये लोग उस (ख़बर) को रसूल (सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम) के और जो (हज़रात बड़े सहाबा) उनमें ऐसे मामलों को समझते हैं उन (की राय) के ऊपर हवाले रखते (और ख़ुद कुछ दख़ल न देते) तो उस (ख़बर के सही व ग़लत और क़ाबिले प्रचार होने न होने) को वे हज़रात तो पहचान ही लेते जो उनमें उसकी तहक़ीक़ कर लिया करते हैं (जैसा कि हमेशा पहचान ही लेते हैं। फिर जैसा कि ये हज़रात अ़मल दरामद करते वैसा ही उन ख़बर उड़ाने वालों को करना चाहिये था, उनको दख़ल देने की क्या ज़रूरत हुई। और न दख़ल देते तो कौनसा काम अटक रहा था? आगे उक्त अहकाम सुनाने के बाद जो पूरी तरह दुनियावी व उख़रवी मस्लेहतें हैं बतौर एहसान ज़ाहिर करने के मुसलमानों को इरशाद है) और अगर तुम लोगों पर ख़ुदा तआ़ला का

(यह ख़ास) फ़ज़्ल और रहमत (कि तुमको क़ुरआन दिया अपना पैग़म्बर भेजा यह अगर) न होता तो तुम सब के सब (दुनियावी व उख़्रवी नुक़सान इख़्तियार करके) शैतान की पैरवी करने वाले हो जाते सिवाय थोड़े-से आदमियों के (जो कि ख़ुदा तआ़ला की दी हुई अ़क़्ले सलीम की बदौलत जो कि अल्लाह का एक ख़ास फ़ज़्ल व रहमत है उससे महफ़ूज़ रहते, वरना ज़्यादातर तबाही में पड़ते। पस तुमको ऐसे पैग़म्बर और ऐसे क़ुरआन को जिनके ज़रिये ऐसे बेहतर और फ़ायदे के अहकाम आते हैं, उक्त मुनाफ़िक़ों के विपरीत बहुत ग़नीमत समझना चाहिये और पूरी इताअ़त करनी चाहिये)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

शाने नुज़ूल

وَاِذَا جَآءَهُمْ اَمْرٌ مِّنَ الْاَمْنِ اَوِالْخَوْفِ اَذَاعُوْا بِهٖ

हज़रत इब्ने अ़ब्बास, इमाम ज़ह्हाक और अबू मुआ़ज़ रज़ियल्लाहु अ़न्हुम के नज़दीक यह आयत मुनाफ़िक़ों के बारे में नाज़िल हुई और हज़रत हसन रहमतुल्लाहि अ़लैहि और दूसरे अक्सर हज़रात के नज़दीक यह आयत ज़ईफ़ और कमज़ोर मुसलमानों के बारे में नाज़िल हुई है।

(तफ़सीर रूहुल-मआ़नी)

अ़ल्लामा इब्ने कसीर रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने इस आयत से मुताल्लिक़ वाक़िआ़त नक़ल करने के बाद फ़रमाया कि इस आयत के शाने नुज़ूल (उतरने के मौक़े और सबब) में हज़रत उमर बिन ख़त्ताब रज़ियल्लाहु अ़न्हु की हदीस को ज़िक्र करना चाहिये, वह यह कि हज़रत उमर रज़ियल्लाहु अ़न्हु को यह ख़बर पहुँची कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने अपनी बीवियों को तलाक़ दे दी है तो वह अपने घर से मस्जिद की तरफ़ आये, जब दरवाज़े पर पहुँचे तो आपने सुना कि मस्जिद के अन्दर लोगों में भी यही ज़िक्र हो रहा है। यह देखकर आपने कहा कि इस ख़बर की तहक़ीक़ करनी चाहिये। चुनाँचे आप रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के पास पहुँचे और पूछा कि क्या आपने अपनी बीवियों को तलाक़ दे दी है? आपने फ़रमाया कि नहीं! हज़रत उमर रज़ियल्लाहु अ़न्हु फ़रमाते हैं कि यह तहक़ीक़ करने के बाद मैं मस्जिद की तरफ़ वापस आया और दरवाज़े पर खड़े होकर यह ऐलान किया कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने अपनी बीवियों को तलाक़ नहीं दी, जो आप लोग कह रहे हैं ग़लत है, तो इस पर यह आयत नाज़िल हुई- 'व इज़ा जा-अहुम् अम्रुम् मिनल् अम्नि..........'। (तफ़सीर इब्ने कसीर)

बिना तहक़ीक़ के बातों को उड़ाना गुनाह और बड़ा फ़ितना है

इस आयत से मालूम हुआ कि हर सुनी सुनाई बात को बग़ैर तहक़ीक़ के बयान नहीं करना चाहिये। रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने एक हदीस में फ़रमायाः

كَفٰى بِالْمَرْءِ كَذِبًا اَنْ يُّحَدِّثَ بِكُلِّ مَا سَمِعَ

यानी "किसी इनसान के झूठा होने के लिये इतनी ही बात काफ़ी है कि वह हर सुनी सुनाई बात बग़ैर तहक़ीक़ के बयान कर दे।"

एक दूसरी हदीस में आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमायाः

مَنْ حَدَّثَ بِحَدِيْثٍ وَهُوَ يَرٰى اَنَّهٗ كَذِبٌ فَهُوَ اَحَدُ الْكَاذِبِيْنَ.

"यानी जो आदमी कोई ऐसी बात बयान करे जिसके बारे में वह जानता है कि यह झूठी है तो दो झूठों में से एक झूठा वह भी है।" (तफ़सीर इब्ने कसीर)

'उलुल-अम्र' कौन लोग हैं?

وَلَوْ رَدُّوْهُ اِلَى الرَّسُوْلِ وَاِلٰٓى اُولِى الْاَمْرِ مِنْهُمْ لَعَلِمَهُ الَّذِيْنَ يَسْتَنْبِطُوْنَهٗ مِنْهُمْ...... الخ

इस्तिंबात असल में कुएँ की तह से पानी निकालने को कहते हैं, कुआँ खोदने में जो पानी पहली मर्तबा निकलता है उसको **मा-ए-मुस्तंबत** कहते हैं। मगर यहाँ मुराद यह है कि किसी बात की तह तक पहुँचकर उसकी सही हक़ीक़त मालूम करना। (क़ुर्तुबी)

उलुल-अम्र कौन हैं इसके बारे में कई क़ौल हैं। हज़रत हसन, हज़रत क़तादा और इब्ने अबी लैला रहमतुल्लाहि अ़लैहिम के नज़दीक उलेमा और फ़ुक़हा मुराद हैं। हज़रत सुद्दी रहमतुल्लाहि अ़लैहि फ़रमाते हैं कि अमीर और हाकिम लोग मुराद हैं। इमाम अबू बक्र जस्सास रहमतुल्लाहि अ़लैहि इन दोनों क़ौलों को नक़ल करने के बाद फ़रमाते हैं कि सही यह है कि दोनों मुराद हैं, इसलिये कि उलुल-अम्र का हुक्म इन सब पर होता है, अलबत्ता इस पर कुछ लोग यह शुब्हा करते हैं कि उलुल-अम्र से मुराद फ़ुक़हा (दीनी मसाईल के माहिर उलेमा) नहीं हो सकते, क्योंकि उलुल-अम्र अपने लफ़्ज़ी मायने के एतिबार से वे लोग हैं जिनका हुक्म चलता हो, और ज़ाहिर है कि फ़ुक़हा का यह काम नहीं। हक़ीक़त यह है कि हुक्म चलने की दो सूरतें हैं- एक ज़बरदस्ती व सख़्ती से, वह तो सिर्फ़ हुकूमत वाले ही हर सकते हैं, दूसरी सूरत एतिक़ाद व एतिमाद की वजह से हुक्म मानने की है वह हज़राते फ़ुक़हा ही को हासिल है जिसको आ़म मुसलमानों के हालात से हर दौर में साफ़ देखा जा सकता है कि दीन के मामलात में आ़म मुसलमान अपने इख़्तियार से उलेमा ही के हुक्म को वाजिबुल-अ़मल (अ़मल करने के लिये ज़रूरी) क़रार देते हैं, और शरीअ़त की रू से उन पर उनके अहकाम की इताअ़त वाजिब भी है, लिहाज़ा इस वजह से उन पर भी उलुल-अम्र का हुक्म लगाना सही है।

(अहकामुल-क़ुरआन, इमाम जस्सास)

इस बहस की और अधिक तफ़सील इसी सूरत की आयत नम्बर 59 के तहत भी गुज़र चुकी है।

नये मसाईल में क़ियास व इज्तिहाद अवाम के लिये इमामों की तक़लीद का सुबूत है

इस आयत से मालूम हुआ कि जिन मसाईल में कोई नस्स (स्पष्ट शरई हुक्म) न हो उनके अहकाम इज्तिहाद व क़ियास के उसूल पर क़ुरआनी हैसियत से निकाले जायें। क्योंकि इस आयत में इस बात का हुक्म दिया गया कि नये मसाईल के हल करने में अगर रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम मौजूद हैं तो उनकी जानिब रुजू करो और अगर वह मौजूद न हों तो उलेमा और फ़ुक़हा की तरफ़ रुजू करो, क्योंकि ये अहकाम को क़ुरआन व हदीस से निकालने की भरपूर सलाहियत रखते हैं।

इस बयान से चन्द बातें समझी जा सकती हैं:

एक यह कि फ़ुक़हा और उलेमा की जानिब नस्स (स्पष्ट शरई हुक्म और इशारा) न होने की सूरत में रुजू किया जायेगा।

दूसरे यह कि अल्लाह के अहकाम की दो क़िस्में हैं- कुछ वो हैं जो मन्सूस और स्पष्ट हैं और कुछ वो हैं जो ग़ैर-वाज़ेह और अस्पष्ट हैं, जिनको आयतों की गहराईयों में अल्लाह तआ़ला ने रखा है।

तीसरे यह कि उलेमा का यह फ़रीज़ा है कि वे ऐसे मायनों को इज्तिहाद और क़ियास (कोशिश व मेहनत और अन्दाज़े) के ज़रिये निकाल कर वाज़ेह करें।

चौथे यह कि अ़वाम के लिये ज़रूरी है कि वे उन मसाईल में उलेमा की तक़लीद (पैरवी) करें। (अहकामुल-क़ुरआन, इमाम जस्सास)

रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम भी अहकाम निकालने और दलील लेने के मुकल्लफ़ थे

لَعَلِمَهُ الَّذِيْنَ يَسْتَنْبِطُوْنَهٗ مِنْهُمْ

इस आयत से मालूम होता है कि रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम भी दलाईल के ज़रिये अहकाम के इस्तिम्बात के मुकल्लफ़ थे, इसलिये कि पहले आयत में दो आदमियों की तरफ़ रुजू करने का हुक्म दिया गया- एक रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम और दूसरे उलुल-अम्र की तरफ़। उसके बाद फ़रमायाः

لَعَلِمَهُ الَّذِيْنَ يَسْتَنْبِطُوْنَهٗ

और यह हुक्म आ़म है जिसमें उक्त दोनों फ़रीक़ों में से किसी की तख़्सीस (विशेषता) नहीं है, लिहाज़ा इससे साबित हुआ कि आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की ज़ात भी अहकाम के

इस्तिम्बात की मुकल्लफ़ थी। (अहकामुल क़ुरआन, इमाम जस्सास)

अहम और ख़ास फ़ायदे

1. अगर किसी को यह शुब्हा हो कि इस आयत से सिर्फ़ इतना मालूम होता है कि दुश्मन से अमन और ख़ौफ़ के बारे में तुम ख़ुद-ब-ख़ुद ख़बरें न उड़ाओ, बल्कि जो जानने वाले और बुद्धिमान लोग हैं उनकी तरफ़ रुजू करो फिर वे ग़ौर व फ़िक्र करके जो बात बतलायें उस पर अ़मल करो, ज़ाहिर है कि नये पेश आने वाले मसाईल से इसका कोई ताल्लुक़ नहीं है।

तो जवाब यह है कि आयतः

وَاِذَا جَآءَهُمْ اَمْرٌ مِّنَ الْاَمْنِ اَوِ الْخَوْفِ

में दुश्मन का कोई ज़िक्र नहीं है, लिहाज़ा अमन और ख़ौफ़ आ़म है जिस तरह इनका ताल्लुक़ दुश्मन से है इसी तरह नये पेश आने वाले मसाईल से भी है। क्योंकि जब कोई नया मसला एक आ़म आदमी के सामने आता है जिसके हलाल व हराम होने के बारे में कोई नस्स (शरई इशारा और स्पष्ट हुक्म) नहीं है तो वह फ़िक्र में पड़ जाता है कि कौनसा पहलू इख़्तियार करे, दोनों सूरतों में नफ़े नुक़सान का गुमान व अन्देशा रहता है, तो इसका बेहतरीन हल शरीअ़त ने यह निकाला कि तुम गहरे इल्म वाले उलेमा व फ़ुक़हा की तरफ़ रुजू करो वे जो बतलायें उस पर अ़मल करो। (अहकामुल-क़ुरआन, इमाम जस्सास)

इज्तिहाद व इस्तिम्बात ग़ालिब गुमान का फ़ायदा देता है, यक़ीनी इल्म का नहीं

2. इस्तिम्बात से जो हुक्म फ़ुक़हा निकालेंगे उसके बारे में क़तई तौर पर यह नहीं कहा जा सकता कि अल्लाह के नज़दीक निश्चित तौर पर यही हक़ है, बल्कि उस हुक्म के ख़ता होने का भी एहतिमाल (संभावना) बाक़ी रहता है, हाँ उसके सही होने का ग़ालिब गुमान हासिल हो जाता है जो अ़मल के लिये काफ़ी है। (अहकामुल-क़ुरआन जस्सास, व तफ़सीरे कबीर)

فَقَاتِلْ فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ ۚ لَا تُكَلَّفُ اِلَّا نَفْسَكَ وَحَرِّضِ الْمُؤْمِنِيْنَ ۚ عَسَى اللّٰهُ
اَنْ يَّكُفَّ بَاْسَ الَّذِيْنَ كَفَرُوْا ۚ وَاللّٰهُ اَشَدُّ بَاْسًا وَّ اَشَدُّ تَنْكِيْلًا

फ़क़ातिल् फ़ी सबीलिल्लाहि ला तुकल्लफ़ु इल्ला नफ़्स-क व हर्रिज़िल्-मुअ्मिनी-न अ़सल्लाहु अंय्यकुफ़्-फ़ बअ्सल्लज़ी-न क-फ़रू, वल्लाहु अशद्दु बअ्संव्-व अशद्दु तन्कीला (84)	**सो तू लड़ अल्लाह की राह में, तू ज़िम्मेदार नहीं मगर अपनी जान का, और ताकीद कर मुसलमानों को क़रीब है कि अल्लाह बन्द कर दे लड़ाई काफ़िरों की, और अल्लाह बहुत सख़्त है लड़ाई में और बहुत सख़्त है सज़ा देने वाला। (84)**

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

(जब जिहाद की ज़रूरत मालूम हुई) पस आप (ऐ मुहम्मद सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम!) अल्लाह की राह में (काफ़िरों से) किताल कीजिए (और अगर फ़र्ज़ करो कोई आपके साथ न हो तो कुछ फ़िक्र न कीजिये क्योंकि) आपको सिवाय आपके ज़ाती फ़ेल के (दूसरे शख़्स के फ़ेल का) कोई हुक्म नहीं। और (इसके साथ) मुसलमानों को (सिर्फ़) तरग़ीब दे दीजिए (फिर अगर कोई साथ न दे तो आप अपनी ज़िम्मेदारी से बरी हैं, न तो पूछगछ की फ़िक्र कीजिये जिसकी वजह बयान हो चुकी और न अकेले रह जाने का ग़म कीजिये जिसकी वजह यह है कि) अल्लाह तआ़ला से उम्मीद है (और यह उम्मीद दिलाना वायदा है) कि काफ़िरों के जंग के ज़ोर को रोक देंगे (और उनको मग़लूब व पस्त कर देंगे)। और (अगरचे ये बड़े ज़ोरदार नज़र आते हैं लेकिन) अल्लाह तआ़ला जंग के ज़ोर में (उनसे बहुत) ज़्यादा शदीद (और क़वी) हैं और (मुख़ालिफ़ को) सख़्त सज़ा देते हैं।

मआ़रिफ़ व मसाईल

शाने नुज़ूल

जब जंगे-उहुद शव्वाल के महीने में हो चुकी तो रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने ज़ीक़ादा के महीने में काफ़िरों के वायदे के अनुसार बदर में मुक़ाबले के लिये जाना चाहा (जिसको इतिहासकार बदरे-सुग़रा के नाम से ताबीर करते हैं) उस वक़्त कुछ लोगों ने ताज़ा ज़ख़्मी होने की वजह से और कुछ ने अफ़वाही ख़बरों की वजह से जाने में कुछ संकोच किया तो इस पर अल्लाह तआ़ला ने यह आयत नाज़िल फ़रमाई, जिसमें रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को यह हिदायत दी कि अगर ये कच्चे मुसलमान लड़ाई से डरते हैं तो ऐ रसूल! तुम तन्हा अपनी ज़ात से जिहाद करने में संकोच मत करो अल्लाह तआ़ला तुम्हारा मददगार है। इस हिदायत को पाते ही आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम सत्तर साथियों के साथ बदरे सुग़रा को तशरीफ़ ले गये, जिसका वायदा अबू सुफ़ियान के साथ ग़ज़वा-ए-उहुद के बाद हुआ था। हक़ तआ़ला ने अबू सुफ़ियान और क़ुरैश के काफ़िरों के दिल में रौब और ख़ौफ़ डाल दिया, कोई मुक़ाबले में न आया और वे अपने वायदे से झूठे हुए। अल्लाह तआ़ला ने अपने इरशाद के मुताबिक़ काफ़िरों की लड़ाई को बन्द कर दिया और रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम अपने साथियों समेत सलामती के साथ वापस तशरीफ़ ले आये। (क़ुर्तुबी, मज़हरी)

क़ुरआनी अहकाम का बेहतरीन अन्दाज़

فَقَاتِلْ فِىْ سَبِيْلِ اللّٰهِ............ الخ

इस आयत के पहले जुमले में तो रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को यह हुक्म दिया

गया है कि आप बिल्कुल अकेले जिहाद व क़िताल के लिये तैयार हो जाईये, कोई दूसरा आपके साथ जाने के लिये तैयार हो या न हो। मगर साथ ही दूसरे जुमले में यह भी इरशाद फ़रमा दिया कि दूसरे मुसलमानों को जिहाद की तरग़ीब देने का काम भी छोड़ें नहीं, तरग़ीब के बाद भी वे तैयार न हों तो आप अपना फ़र्ज़ अदा कर चुके, उनके फ़ेल की आप से पूछ न होगी।

इसी के साथ ख़ुद अकेले जंग करने में जो ख़तरा हो सकता था उसको दूर करने के लिये फ़रमाया कि इसकी उम्मीद है कि अल्लाह तआ़ला काफ़िरों की जंग को रोक दे, और उनको मरऊब व मग़लूब कर दे, और आपको तन्हा ही कामयाब कर दे। फिर उसके बाद इस कामयाब होने पर दलील बयान फ़रमाई कि जब अल्लाह तआ़ला की मदद आपके साथ है जिसकी क़ुव्वते जंग और ज़ोरे जंग उन काफ़िरों से बेशुमार दर्जे ज़्यादा है तो फिर कामयाबी भी यक़ीनन आप ही की है। फिर इसी लड़ाई की शिद्दत के साथ अपनी सज़ा की शिद्दत (सख़्त होना) भी बयान फ़रमा दी। यह सज़ा चाहे क़ियामत में हो जैसा कि ज़ाहिर है, या दुनिया में हो जैसा कि कुछ हज़रात ने कहा है। बहरहाल जिस तरह जंग करने में हमारी क़ुव्वत व ताक़त बढ़ी हुई है इसी तरह सज़ा देने में भी हमारी सज़ा बहुत सख़्त है।

مَنْ يَّشْفَعْ شَفَاعَةً حَسَنَةً يَّكُنْ لَّهٗ

نَصِيْبٌ مِّنْهَا، وَمَنْ يَّشْفَعْ شَفَاعَةً سَيِّئَةً يَّكُنْ لَّهٗ كِفْلٌ مِّنْهَا، وَكَانَ اللّٰهُ عَلٰى كُلِّ شَيْءٍ مُّقِيْتًا ۝ وَاِذَا حُيِّيْتُمْ بِتَحِيَّةٍ فَحَيُّوْا بِاَحْسَنَ مِنْهَآ اَوْ رُدُّوْهَا، اِنَّ اللّٰهَ كَانَ عَلٰى كُلِّ شَيْءٍ حَسِيْبًا ۝ اَللّٰهُ لَآ اِلٰهَ اِلَّا هُوَ، لَيَجْمَعَنَّكُمْ اِلٰى يَوْمِ الْقِيٰمَةِ لَا رَيْبَ فِيْهِ، وَمَنْ اَصْدَقُ مِنَ اللّٰهِ حَدِيْثًا ۝

النصف ‖ ع ٨

मंय्यश्फ़अ् शफ़ा-अ़तन् ह-स-नतंय्-यकुल्लहू नसीबुम् मिन्हा व मंय्यश्फ़अ् शफ़ा-अ़तन् सय्यि-अतंय्-यकुल्लहू किफ़्लुम् मिन्हा, व कानल्लाहु अ़ला कुल्लि शैइम्-मुक़ीता (85) व इज़ा हुय्यीतुम् बि-तहिय्यतिन् फ़हय्यू बि-अह़्स-न मिन्हा औ रुद्दूहा, इन्नल्ला-ह का-न अ़ला कुल्लि शैइन् हसीबा (86) ● अल्लाहु ला इला-ह इल्ला हु-व,	जो कोई सिफ़ारिश करे नेक बात में उसको भी मिलेगा उसमें से एक हिस्सा, और जो कोई सिफ़ारिश करे बुरी बात में उस पर भी है एक बोझ उसमें से, और अल्लाह है हर चीज़ पर क़ुदरत रखने वाला। (85) और जब तुमको दुआ़ दे कोई तो तुम भी दुआ़ दो उससे बेहतर या वही कहो उलट कर, बेशक अल्लाह है हर चीज़ का हिसाब करने वाला। (86) ● अल्लाह के सिवा किसी की बन्दगी नहीं, बेशक तुमको जमा करेगा

ल-यज्मअ़न्नकुम् इला यौमिल्-क़ियामति ला रै-ब फ़ीहि, व मन् अस्दक़ु मिनल्लाहि हदीसा (87) ✿	क़ियामत के दिन इसमें कुछ शुब्हा नहीं, और अल्लाह से (ज़्यादा) सच्ची बात किसकी बात? (87) ✿

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

जो शख़्स अच्छी सिफ़ारिश करे (यानी जिसका तरीक़ा व मक़सद दोनों शरअ़न् सही हों) उसको उस (सिफ़ारिश) की वजह से (सवाब का) हिस्सा मिलेगा। और जो शख़्स बुरी सिफ़ारिश करे (यानी जिसका तरीक़ा व ग़र्ज़ शरअ़न् नाजायज़ हो) उसको उस (सिफ़ारिश) की वजह से (गुनाह का) हिस्सा मिलेगा, और अल्लाह तआ़ला हर चीज़ पर क़ुदरत रखने वाले हैं (वह अपनी क़ुदरत से नेकी पर सवाब और बदी पर अ़ज़ाब दे सकते हैं)। और जब तुमको कोई (शरीअ़त के मुताबिक़) सलाम करे तो तुम उस (सलाम) से अच्छे अलफ़ाज़ में सलाम करो (यानी जवाब दो) या (जवाब में) वैसे ही अलफ़ाज़ कह दो (तुमको दोनों इख़्तियार दिये जाते हैं) बिला शुब्हा अल्लाह तआ़ला हर चीज़ पर (यानी हर अ़मल पर) हिसाब लेंगे (यानी उनका क़ानून यही है और अगर अपने फ़ज़्ल से माफ़ कर दें तो वह दूसरी बात है)। अल्लाह ऐसे हैं कि उनके सिवा कोई माबूद होने के क़ाबिल नहीं, वह ज़रूर तुम सब को जमा करेंगे क़ियामत के दिन, इसमें कोई शुब्हा नहीं, और ख़ुदा तआ़ला से ज़्यादा किसकी बात सच्ची होगी (जब वह ख़बर दे रहे हैं तो बिल्कुल ठीक ही है)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

सिफ़ारिश की हक़ीक़त और उसके अहकाम और क़िस्में

مَنْ يَّشْفَعْ شَفَاعَةً حَسَنَةً............الخ

इस आयत में शफ़ाअ़त यानी सिफ़ारिश को अच्छी और बुरी दो क़िस्मों में तक़सीम फ़रमाकर उसकी हक़ीक़त को भी वाज़ेह कर दिया और यह भी बतला दिया कि न हर सिफ़ारिश बुरी है और न हर सिफ़ारिश अच्छी। साथ ही यह भी बतला दिया कि अच्छी सिफ़ारिश करने वाले को सवाब का हिस्सा मिलेगा और बुरी सिफ़ारिश करने वाले को अ़ज़ाब का। आयत में अच्छी सिफ़ारिश के साथ 'नसीबुन' का लफ़्ज़ आया है और बुरी सिफ़ारिश के साथ 'किफ़्लुन' का, और लुग़त में दोनों के मायने एक ही हैं, यानी किसी चीज़ का एक हिस्सा, लेकिन आ़म बोलचाल में लफ़्ज़ नसीब अच्छे हिस्से के लिये बोला जाता है और लफ़्ज़ किफ़्ल अक्सर बुरे हिस्से के लिये इस्तेमाल करते हैं, अगरचे कहीं-कहीं अच्छे हिस्से के लिये भी लफ़्ज़ किफ़्ल इस्तेमाल हुआ है, जैसे क़ुरआने करीम में एक जगह इरशाद है:

كِفْلَيْنِ مِنْ رَّحْمَتِهٖ

शफ़ाअ़त के लफ़्ज़ी मायने मिलने या मिलाने के हैं, इसी वजह से लफ़्ज़ शुफ़आ अ़रबी भाषा में जोड़े के मायने में आता है और इसके मुक़ाबिल लफ़्ज़ वित्र बेजोड़ के लिये इस्तेमाल किया जाता है। इसलिये शफ़ाअ़त के लफ़्ज़ी मायने यह हुए कि किसी कमज़ोर तालिबे हक़ के साथ अपनी ताक़त मिलाकर उसको ताक़तवर कर दिया जाये या बेसहारा अकेले शख़्स के साथ ख़ुद मिलकर उसको जोड़ा बना दिया जाये।

इससे मालूम हुआ कि जायज़ शफ़ाअ़त व सिफ़ारिश के लिये एक तो यह शर्त है कि जिसकी सिफ़ारिश की जाये उसका मुतालबा हक़ और जायज़ हो। दूसरे यह कि वह अपने मुतालबे को अपनी कमज़ोरी की वजह से ख़ुद बड़े लोगों तक पहुँचा न सके, आप पहुँचा दें। इससे मालूम हुआ कि ख़िलाफ़े हक़ सिफ़ारिश करना या दूसरों को उसके क़ुबूल करने पर मजबूर करना बुरी सिफ़ारिश है। इससे यह भी मालूम हो गया कि सिफ़ारिश में अपने ताल्लुक़ या हैसियत व मक़ाम से दबाव और ज़ोर डालने का तरीक़ा इस्तेमाल किया जाये तो वह भी ज़ुल्म होने की वजह से जायज़ नहीं, इसी लिये वह भी बुरी शफ़ाअ़त में दाख़िल है।

अब बयान हुई आयत के मज़मून का ख़ुलासा यह हो गया कि जो शख़्स किसी शख़्स के जायज़ हक़ और जायज़ काम के लिये जायज़ तरीक़े पर सिफ़ारिश करे तो उसको सवाब का हिस्सा मिलेगा और इसी तरह जो किसी नाजायज़ काम के लिये या नाजायज़ तरीक़े पर सिफ़ारिश करेगा उसको अ़ज़ाब का हिस्सा मिलेगा।

हिस्सा मिलने का मतलब यह है कि जिस शख़्स से सिफ़ारिश की गई है वह जब उस मज़लूम या मेहरूम का कोई काम कर दे तो जिस तरह उस काम करने वाले अफ़सर को सवाब मिलेगा उसी तरह सिफ़ारिश करने वाले को भी सवाब मिलेगा।

इसी तरह किसी नाजायज़ काम की सिफ़ारिश करने वाला भी गुनाहगार होगा, और यह पहले मालूम हो चुका है कि सिफ़ारिश करने वाले का सवाब या अ़ज़ाब इस पर मौक़ूफ़ नहीं कि उसकी सिफ़ारिश असरदार और कामयाब भी हो, बल्कि उसको बहरहाल अपना हिस्सा मिलेगा।

रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का इरशाद है:

اَلدَّالُّ عَلَى الْخَيْرِ كَفَاعِلِهٖ. (رواہ البزار عن ابن مسعودؓ و الطبرانی عنہ و عن سہل بن سعدؓ، بحوالہ مظہری)

"यानी जो शख़्स किसी नेकी पर किसी को आमादा करे उसको भी ऐसा ही सवाब मिलता है जैसा उस नेक अ़मल करने वाले को।"

इसी तरह इब्ने माजा की एक हदीस में हज़रत अबू हुरैरह रज़ियल्लाहु अ़न्हु से मन्क़ूल है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमायाः

مَنْ اَعَانَ عَلٰى قَتْلِ مُؤْمِنٍ بِشَطْرِ كَلِمَةٍ لَقِيَ اللّٰهَ مَكْتُوْبٌ بَيْنَ عَيْنَيْهِ اٰيِسٌ مِّنْ رَّحْمَةِ اللّٰهِ. (مظہری)

"यानी जिस शख़्स ने किसी मुसलमान के क़त्ल में एक कलिमे से भी मदद की तो वह क़ियामत में हक़ तआ़ला की पेशी में इस तरह लाया जायेगा कि उसकी पेशानी पर यह लिखा होगा कि यह शख़्स अल्लाह तआ़ला की रहमत से मेहरूम व मायूस है।"

इससे मालूम हुआ कि जिस तरह नेकी पर किसी को आमादा (तैयार) करना नेक अ़मल और बराबर का सवाब रखता है इसी तरह बदी और गुनाह पर किसी को आमादा (उभारना और तैयार) करना या सहारा देना भी बराबर का गुनाह है।

आयत के आख़िर में इरशाद फ़रमायाः

وَكَانَ اللّٰهُ عَلٰى كُلِّ شَىْءٍ مُّقِيْتًا

लफ़्ज़ "मुक़ीत" के मायने लुग़त के एतिबार से क़ादिर व मुख़्तार के भी हैं और हाज़िर व निगराँ के भी, और रोज़ी तक़सीम करने वाले के भी। और इस जुमले में तीनों मायने मुराद हो सकते हैं। पहले मायने के एतिबार से तो मतलब यह होगा कि अल्लाह तआ़ला हर चीज़ पर क़ादिर है, अ़मल करने वाले और सिफ़ारिश करने वाले की जज़ा या सज़ा उसके लिये दुश्वार नहीं।

और दूसरे मायने के एतिबार से मतलब यह होगा कि अल्लाह तआ़ला हर चीज़ पर निगराँ व हाज़िर है, उसको सब मालूम है कि कौन किस नीयत से सिफ़ारिश कर रहा है, ख़ालिस अल्लाह के लिये किसी भाई की इमदाद करना मक़सूद है या कोई अपनी ग़र्ज़ बतौर रिश्वत के उससे हासिल करना है।

और तीसरे मायने के एतिबार से मतलब यह होगा कि रिज़्क़ व रोज़ी की तक़सीम का तो अल्लाह तआ़ला ख़ुद कफ़ील है, जितना किसी के लिये लिख दिया है वह उसको मिलकर रहेगा किसी की सिफ़ारिश करने से वह मजबूर नहीं हो जायेगा बल्कि जिसको जितनी चाहे रोज़ी अ़ता फ़रमायेगा, अलबत्ता सिफ़ारिश करने वाले को मुफ़्त में सवाब मिल जाता है कि वह एक कमज़ोर की मदद है।

हदीस में आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का इरशाद हैः

كَانَ اللّٰهُ فِىْ عَوْنِ عَبْدِهٖ مَا دَامَ فِىْ عَوْنِ اَخِيْهِ

"यानी अल्लाह तआ़ला उस वक़्त तक अपने बन्दे की इमदाद में लगा रहता है जब तक वह अपने किसी मुसलमान भाई की इमदाद में लगा रहे।"

इसी बिना पर सही बुख़ारी की एक हदीस में रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का इरशाद हैः

اِشْفَعُوْا فَلْتُوْجَرُوْا وَيَقْضِىَ اللّٰهُ عَلٰى لِسَانِ نَبِيِّهٖ مَاشَآءَ.

"यानी तुम सिफ़ारिश किया करो तुम्हें सवाब मिलेगा, फिर अल्लाह तआ़ला अपने नबी के ज़रिये जो फ़ैसला फ़रमायें उस पर राज़ी रहो।"

इस हदीस में जहाँ सिफ़ारिश का सवाब का ज़रिया होना बयान फ़रमाया है वहीं यह भी बतलाया कि सिफ़ारिश की हद यही है कि कमज़ोर आदमी जो ख़ुद अपनी बात किसी बड़े तक पहुँचाने और अपनी हाजत सही तौर पर बयान करने पर क़ादिर न हो तुम उसकी बात वहाँ तक पहुँचा दो, आगे वह सिफ़ारिश मानी जाये या न मानी जाये और उस शख़्स का मतलूबा काम

पूरा हो या न हो इसमें आपका कोई दख़ल न होना चाहिये, और उसके ख़िलाफ़ होने की सूरत में आप पर कोई नागवारी न होनी चाहिये। हदीस के आख़िरी जुमले में:

ويقضى الله على لسان نبيه ماشاءَ

का यही मतलब है, और यही वजह है कि क़ुरआने करीम के अलफ़ाज़ में इस तरफ़ इशारा मौजूद है कि सिफ़ारिश का सवाब या अ़ज़ाब इस पर मौक़ूफ़ नहीं कि वह सिफ़ारिश कामयाब हो बल्कि उस सवाब व अ़ज़ाब का ताल्लुक़ बस सिफ़ारिश कर देने से है, आपने अच्छी शफ़ाअ़त कर दी तो सवाब के मुस्तहिक़ हो गये, और बुरी शफ़ाअ़त कर दी तो अ़ज़ाब के हिस्सेदार बन गये, चाहे आपकी सिफ़ारिश पर अ़मल हो या न हो।

तफ़सीर **बहरे मुहीत** और **बयानुल-क़ुरआन** वग़ैरह में 'मंय्यश्फ़अ़्' में लफ़्ज़ 'मिन्हा' को सबब के लिये क़रार देकर इसकी तरफ़ इशारा बतलाया है और तफ़सीरे मज़हरी में इमामे तफ़सीर मुजाहिद रहमतुल्लाहि अ़लैहि का क़ौल नक़ल किया है कि सिफ़ारिश करने वाले को सिफ़ारिश का सवाब मिलेगा, चाहे उसकी सिफ़ारिश क़ुबूल न की गई हो। और यह बात सिर्फ़ रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के साथ मख़्सूस नहीं, किसी दूसरे इनसान के पास जो सिफ़ारिश की जाये उसका भी यही उसूल होना चाहिये कि सिफ़ारिश करके आदमी फ़ारिग़ हो जाये, उसके क़ुबूल करने पर मजबूर न करे, जैसा कि ख़ुद रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने हज़रत आयशा रज़ियल्लाहु अ़न्हा की आज़ाद की हुई बाँदी से यह सिफ़ारिश फ़रमाई कि उसने जो अपने शौहर हज़रत मुग़ीस से तलाक़ हासिल कर ली है और वह उसकी मुहब्बत में परेशान फिरते हैं, दोबारा उन्हीं से निकाह कर ले। बरीरा रज़ियल्लाहु अ़न्हा ने अ़र्ज़ किया या रसूलल्लाह! अगर यह आपका हुक्म है तो सर आँखों पर, और अगर सिफ़ारिश है तो मेरी तबीयत इस पर बिल्कुल आमादा नहीं। आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि हुक्म नहीं, सिफ़ारिश ही है। बरीरा रज़ियल्लाहु अ़न्हा जानती थीं कि नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को ख़िलाफ़े उसूल कोई नागवारी न होगी इसलिये साफ़ अ़र्ज़ कर दिया कि तो फिर मैं यह सिफ़ारिश क़ुबूल नहीं करती। आपने ख़ुशदिली के साथ उनको उनके हाल पर रहने दिया।

यह थी हक़ीक़त सिफ़ारिश की जो शरई तौर पर अज्र व सवाब का सबब थी, आजकल लोगों ने जो इसका हुलिया बिगाड़ा है वह दर हक़ीक़त सिफ़ारिश नहीं होती बल्कि ताल्लुक़ात या शख़्सियत का असर और दबाव डालना होता है और यही वजह है कि अगर उनकी सिफ़ारिश न मानी जाये तो नाराज़ होते हैं, बल्कि दुश्मनी पर आमादा हो जाते हैं, हालाँकि किसी ऐसे शख़्स पर ऐसा दबाव डालना कि वह ज़मीर और मर्ज़ी के ख़िलाफ़ करने पर मजबूर हो जाये ज़बरदस्ती करने और मजबूर करने में दाख़िल और सख़्त गुनाह है। और ऐसा ही है जैसे कोई किसी के माल या किसी के हक़ पर ज़बरदस्ती क़ब्ज़ा कर ले, वह शख़्स शरई और क़ानूनी तौर पर आज़ाद ख़ुदमुख़्तार था, आपने उसको मजबूर करके उसकी आज़ादी छीन ली। इसकी मिसाल तो ऐसी होगी कि किसी मोहताज की हाजत पूरी करने के लिये किसी दूसरे का माल चुराकर उसको दे दिया जाये।

सिफ़ारिश पर कुछ मुआवज़ा लेना रिश्वत और हराम है

जिस सिफ़ारिश पर कोई मुआवज़ा लिया जाये वह रिश्वत है, हदीस में उसको नाजायज़ व हराम फ़रमाया है। इसमें हर तरह की रिश्वत दाख़िल है चाहे वह माली हो या यह कि उसका काम करने के बदले में अपना कोई काम उससे लिया जाये।

तफ़सीरे कश्शाफ़ वग़ैरह में है कि अच्छी शफ़ाअ़त वह है जिसका मंशा किसी मुसलमान के हक़ को पूरा करना होता है या उसको कोई जायज़ नफ़ा पहुँचाना या नुक़सान और तकलीफ़ से बचाना हो, और यह सिफ़ारिश का काम भी किसी दुनियावी जोड़-तोड़ के लिये न हो, बल्कि महज़ अल्लाह के लिये कमज़ोर की रियायत मक़सूद हो और उस सिफ़ारिश पर कोई रिश्वत माली या जानी न ली जाये, और यह सिफ़ारिश किसी नाजायज़ काम में भी न हो तथा यह सिफ़ारिश किसी ऐसे साबित हुए जुर्म की माफ़ी के लिये न हो जिसकी सज़ा क़ुरआन में तय और निर्धारित है।

तफ़सीर **बहरे मुहीत** और तफ़सीरे **मज़हरी** वग़ैरह में है कि किसी मुसलमान की ज़रूरत पूरी होने के लिये अल्लाह तआ़ला से दुआ़ माँगना भी अच्छी और नेक शफ़ाअ़त में दाख़िल है और दुआ़ करने वाले को भी अज्र मिलता है। एक हदीस में है कि जब कोई शख़्स अपने मुसलमान भाई के लिये कोई दुआ़-ए-ख़ैर करता है तो फ़रिश्ता कहता है 'व लन्क बिमिस्लिन्' यानी अल्लाह तआ़ला तेरी भी हाजत पूरी फ़रमायें।

सलाम और इस्लाम

وَاِذَا حُيِّيْتُمْ بِتَحِيَّةٍ فَحَيُّوْا بِاَحْسَنَ مِنْهَا............ الخ

इस आयत में अल्लाह तआ़ला ने सलाम और उसके जवाब के आदाब बतलाये हैं।

लफ़्ज़ 'तहिय्या' की वज़ाहत और इसका तारीख़ी पहलू

तहिय्या के लफ़्ज़ी मायने हैं किसी को 'हय्याकल्लाहु' कहना, यानी "अल्लाह तआ़ला तुमको ज़िन्दा रखे।" इस्लाम से पहले अ़रब वालों की आ़दत थी कि जब आपस में मिलते तो एक दूसरे को "हय्याकल्लाहु" या "अन्अ़मल्लाहु बिन्क ऐनन्" या "अन्इ़म् सबाहन्" वग़ैरह अलफ़ाज़ से सलाम किया करते थे। इस्लाम ने सलाम के इस तर्ज़ को बदलकर "अस्सलामु अ़लैकुम" कहने का तरीक़ा जारी किया, जिसके मायने हैं "तुम हर तकलीफ़ और रंज व मुसीबत से सलामत रहो।"

इब्ने अ़रबी रह. ने अहकामुल-क़ुरआन में फ़रमाया कि लफ़्ज़ **सलाम** अल्लाह तआ़ला के पाक नामों में से है, और "अस्सलामु अ़लैकुम" के मायने यह हैं कि "अल्लाहु रक़ीबुन अ़लैकुम" यानी "अल्लाह तआ़ला तुम्हारा मुहाफ़िज़ है।"

इस्लामी सलाम दूसरी तमाम क़ौमों के सलाम से बेहतर है

दुनिया की हर मुहज़्ज़ब (सभ्य) क़ौम में इसका रिवाज है कि जब आपस में मुलाक़ात करें तो कोई कलिमा आपस के ताल्लुक़ और इज़हारे मुहब्बत के लिये कहें, लेकिन तुलना की जाये तो मालूम होगा कि इस्लामी सलाम जितना जामे (मुकम्मल) है कोई दूसरा ऐसा जामे नहीं क्योंकि इसमें सिर्फ़ इज़हारे मुहब्बत नहीं बल्कि साथ-साथ मुहब्बत के हक़ की अदायेगी भी है कि अल्लाह तआ़ला से यह दुआ़ करते हैं कि आपको तमाम आफ़तों और परेशानियों से सलामत रखें। फिर दुआ़ भी अ़रब के तर्ज़ पर सिर्फ़ ज़िन्दा रहने की नहीं, बल्कि अच्छी ज़िन्दगी की दुआ़ है। यानी तमाम आफ़तों और मुसीबतों से महफ़ूज़ रहने की, इसी के साथ इसका भी इज़हार है कि हम और तुम सब अल्लाह तआ़ला के मोहताज हैं, एक दूसरे को कोई नफ़ा बग़ैर उसकी मर्ज़ी व इजाज़त के नहीं पहुँचा सकता। इस मायने के एतिबार से यह कलिमा एक इबादत भी है और अपने भाई मुसलमान को ख़ुदा तआ़ला की याद दिलाने का ज़रिया भी।

इसी के साथ अगर यह देखा जाये कि जो शख़्स अल्लाह तआ़ला से यह दुआ़ माँग रहा है कि हमारे साथी को तमाम आफ़तों और तकलीफ़ों से महफ़ूज़ फ़रमा दे तो इसके ज़िमन में वह गोया यह वायदा भी कर रहा है कि तुम मेरे हाथ और ज़बान से सुरक्षित हो, तुम्हारी जान, माल, आबरू का मैं मुहाफ़िज़ (रक्षक) हूँ।

इब्ने अ़रबी रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने **अहकामुल-क़ुरआन** में इमाम इब्ने उयैना का यह क़ौल नक़ल किया है:

اَتَدْرِیْ مَا السَّلَامُ؟ یَقُوْلُ اَنْتَ اٰمِنٌ مِّنِّیْ.

"यानी तुम जानते हो कि सलाम क्या चीज़ है? सलाम करने वाला यह कहता है कि तुम मुझसे मामून (सुरक्षित व महफ़ूज़) रहो।"

ख़ुलासा यह है कि इस्लामी सलाम में विश्व स्तर की कई बातें जमा हैं:

1. इसमें अल्लाह तआ़ला का भी ज़िक्र है।
2. दूसरे को याद दिलाना भी।
3. अपने मुसलमान भाई से ताल्लुक़ व मुहब्बत का इज़हार भी।
4. उसके लिये बेहतरीन दुआ़ भी।
5. और उससे यह मुआ़हदा भी कि मेरे हाथ और ज़बान से आपको कोई तकलीफ़ न पहुँचेगी।

जैसा कि सही हदीस में रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का यह इरशाद आया है:

اَلْمُسْلِمُ مَنْ سَلِمَ الْمُسْلِمُوْنَ مِنْ لِّسَانِهٖ وَيَدِهٖ. (الحديث)

"यानी मुसलमान तो वही है जिसके हाथ और ज़बान से सब मुसलमान महफ़ूज़ रहें, किसी को तकलीफ़ न पहुँचे।"

काश! मुसलमान इस कलिमे को आ़म लोगों की रस्म की तरह अदा न करें बल्कि इसकी हक़ीक़त को समझकर इख़्तियार करें तो शायद पूरी क़ौम की इस्लाह के लिये यही काफ़ी हो जाये। यही वजह है कि रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने मुसलमानों को आपस में सलाम को रिवाज देने की बड़ी ताकीद फ़रमाई और इसको बेहतरीन अ़मल क़रार दिया, और इसके फ़ज़ाईल व बरकतें और अज्र व सवाब बयान फ़रमाये। सही मुस्लिम में हज़रत अबू हुरैरह रज़ियल्लाहु अ़न्हु की एक हदीस है कि रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमायाः

"तुम जन्नत में उस वक़्त तक दाख़िल नहीं हो सकते जब तक मोमिन न हो, और तुम्हारा ईमान मुकम्मल नहीं हो सकता जब तक आपस में एक दूसरे से मुहब्बत न करो, मैं तुमको ऐसी चीज़ बताता हूँ कि अगर तुम उस पर अ़मल कर लो तो तुम में आपस में मुहब्बत क़ायम हो जायेगी, वह यह कि आपस में सलाम को आ़म करो, यानी हर मुसलमान के लिये चाहे उससे जान-पहचान हो या न हो।"

हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन उमर रज़ियल्लाहु अ़न्हु फ़रमाते हैं कि एक शख़्स ने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से मालूम किया कि इस्लाम के आमाल में सबसे अफ़ज़ल क्या है? आपने फ़रमाया कि तुम लोगों को खाना खिला दो और सलाम को आ़म करो चाहे तुम उसको पहचानते हो या न पहचानते हो। (बुख़ारी व मुस्लिम)

मुस्नद अहमद, तिर्मिज़ी, अबू दाऊद ने हज़रत अबू उमामा रज़ियल्लाहु अ़न्हु से नक़ल किया है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया- अल्लाह तआ़ला के नज़दीक सबसे ज़्यादा क़रीब वह शख़्स है जो सलाम करने में पहल करे।

मुस्नद बज़्ज़ार और मोजम कबीर तबरानी में हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन मसऊद रज़ियल्लाहु अ़न्हु की हदीस है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया- सलाम अल्लाह तआ़ला के नामों में से है, जिसको अल्लाह तआ़ला ने ज़मीन पर उतारा है, इसलिये तुम आपस में सलाम को आ़म करो, क्योंकि मुसलमान आदमी जब किसी मज्लिस में जाता है और उनको सलाम करता है तो उस शख़्स को अल्लाह तआ़ला के नज़दीक फ़ज़ीलत का एक बुलन्द मक़ाम हासिल होता है क्योंकि उसने सब को सलाम, यानी अल्लाह तआ़ला की याद दिलाई। अगर मज्लिस वालों ने उसके सलाम का जवाब न दिया तो ऐसे लोग उसको जवाब देंगे जो उस मज्लिस वालों से बेहतर हैं यानी अल्लाह तआ़ला के फ़रिश्ते।

और एक हदीस में रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का इरशाद है कि बड़ा बख़ील (कन्जूस) वह आदमी है जो सलाम में बुख़्ल करे। (तबरानी, मोजम अ़न अबी हुरैरह रज़ि.)

रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के इन इरशादात का सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम पर जो असर हुआ उसका अन्दाज़ा इस रिवायत से होता है कि हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन उमर रज़ियल्लाहु अ़न्हु अक्सर बाज़ार में सिर्फ़ इसलिये जाया करते थे कि जो मुसलमान मिले उसको सलाम करके इबादत का सवाब हासिल करें। कुछ ख़रीदना या फ़रोख़्त करना मक़सूद न होता था। यह रिवायत मुवत्ता इमाम मालिक में तुफ़ैल बिन उबई बिन कअ़ब रज़ि. से नक़ल है।

क़ुरआन मजीद की जो आयत ऊपर ज़िक्र की गई है उसमें इरशाद यह है कि जब तुम्हें सलाम किया जाये तो उसका जवाब उससे बेहतर अलफ़ाज़ में दो, या कम से कम वैसे ही अलफ़ाज़ कह दो। इसकी तशरीह (वज़ाहत) रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने अपने अ़मल से इस तरह फ़रमाई कि एक मर्तबा आपके पास एक साहिब आये और कहा "अस्सलामु अ़लैकुम या रसूलल्लाह!" आपने जवाब में एक कलिमा बढ़ाकर फ़रमायाः "व अ़लैकुमुस्सलाम व रहमतुल्लाहि" फिर एक साहिब आये और उन्होंने सलाम में ये अलफ़ाज़ कहेः "अस्सलामु अ़लैकुम या रसूलल्लाह व रहमतुल्लाहि" आपने जवाब में एक और कलिमा बढ़ाकर फ़रमायाः "व अ़लैकुमुस्सलाम व रहमतुल्लाहि व बरकातुहू।" फिर एक साहिब आये उन्होंने अपने सलाम ही में तीनों कलिमे बढ़ाकर कहाः "अस्सलामु अ़लैकुम या रसूलल्लाहि व रहमतुल्लाहि व बरकातुहू।" आपने जवाब में सिर्फ़ एक कलिमा "व अ़लै-क" इरशाद फ़रमाया। उसके दिल में शिकायत पैदा हुई और अ़र्ज़ किया या रसूलल्लाह! मेरे माँ-बाप आप पर क़ुरबान! पहले जो हज़रात आये आपने उनके जवाब में कई कलिमात दुआ़ के इरशाद फ़रमाये और मैंने उन सब अलफ़ाज़ से सलाम किया तो आपने "व अ़लै-क" पर इक्तिफ़ा (बस) फ़रमाया। आपने फ़रमाया कि तुमने हमारे लिये कोई कलिमा छोड़ा ही नहीं कि हम जवाब में इज़ाफ़ा करते, तुमने सारे कलिमात अपने ही सलाम में जमा कर दिये इसलिये हमने क़ुरआनी तालीम के मुताबिक़ तुम्हारे सलाम का जवाब उसी के जैसा देने पर इक्तिफ़ा (बस) कर लिया। इस रिवायत को इमाम इब्ने जरीर और इमाम इब्ने अबी हातिम रह. ने अनेक सनदों के साथ नक़ल किया है।

उक्त हदीस से एक बात तो यह मालूम हुई कि सलाम का जवाब उससे अच्छे अलफ़ाज़ में देने का जो हुक्म आयते मज़कूरा में आया है उसकी सूरत यह है कि सलाम करने वाले के अलफ़ाज़ से बढ़ाकर जवाब दिया जाये, जैसे उसने कहा "अस्सलामु अ़लैकुम" तो आप जवाब दें "व अ़लैकुमुस्सलाम व रहमतुल्लाह।" और उसने कहा "अस्सलामु अ़लैकुम व रहमतुल्लाह" तो आप जवाब में कहें "व अ़लैकुमुस्सलाम व रहमतुल्लाहि व बरकातुहू।"

दूसरी बात यह मालूम हुई कि ये कलिमात की ज़्यादती सिर्फ़ तीन कलिमात तक मस्नून है इससे ज़्यादा करना मस्नून नहीं, और हिक्मत इसकी ज़ाहिर है कि सलाम का मौक़ा मुख़्तसर कलाम करने को चाहता है, उसमें इतनी ज़्यादती मुनासिब नहीं है जो किसी काम में ख़लल डालने वाली और सुनने वाले पर भारी हो जाये। इसी लिये जब एक साहिब ने अपने शुरूआ़ती सलाम ही में तीनों कलिमे जमा कर दिये तो रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम आगे और ज़्यादती करने से रुक गये। इसकी और ज़्यादा तफ़सील हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने इस तरह फ़रमाई कि ज़िक्र हुए तीनों अलफ़ाज़ से ज़्यादा करने वाले को यह कहकर रोक दिया किः

اِنَّ السَّلَامَ قَدِ انْتَهٰى اِلَى الْبَرَكَةِ. (مظهری عن البغوی)

यानी "सलाम लफ़्ज़ बरकत पर ख़त्म हो जाता है।" इससे ज़्यादा करना मस्नून नहीं है। (इब्ने कसीर ने भी इसी तरह बयान किया है)

तीसरी बात इस हदीस से यह मालूम हुई कि सलाम में तीन कलिमे कहने वाले के जवाब में अगर सिर्फ़ एक कलिमा ही कह दिया जाये तो वह भी उसी के जैसे जवाब देने के हुक्म में क़ुरआनी हिदायत 'औ रुद्दूहा' की तामील के लिये काफ़ी है, जैसा कि इस हदीस में आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने सिर्फ़ एक कलिमे पर इक्तिफ़ा फ़रमाया है। (तफ़सीरे मज़हरी)

आयत के मज़मून का ख़ुलासा यह हुआ कि जब किसी मुसलमान को सलाम किया जाये तो उसके ज़िम्मे जवाब देना तो वाजिब है, अगर बग़ैर किसी शरई मजबूरी और उज़्र के जवाब न दिया तो गुनाहगार होगा, अलबत्ता जवाब देने में दो बातों का इख़्तियार है- एक यह कि जिन अलफ़ाज़ से सलाम किया गया है उनसे बेहतर अलफ़ाज़ में जवाब दिया जाये, दूसरे यह कि बिल्कुल उन्हीं अलफ़ाज़ से जवाब दे दिया जाये।

इस आयत में सलाम का जवाब देने को तो स्पष्ट तौर पर लाज़िम व वाजिब बतला दिया गया है लेकिन पहले सलाम करने का क्या दर्जा है इसका बयान स्पष्ट तौर पर नहीं है, मगर 'व इज़ा हुय्यीतुम......' में इसके हुक्म की तरफ़ भी इशारा मौजूद है, क्योंकि इस लफ़्ज़ को बिना किसी सलाम करने वाले के ज़िक्र के बयान करने में इशारा हो सकता है कि सलाम ऐसी चीज़ है जो आ़दतन सब ही मुसलमान करते हैं।

मुस्नद अहमद, तिर्मिज़ी और अबू दाऊद में रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का इरशाद मन्क़ूल है कि अल्लाह के नज़दीक सबसे ज़्यादा मुक़र्रब (क़रीबी दर्जे वाला) वह शख़्स है जो सलाम की इब्तिदा (पहल) करे।

सलाम की ताकीद और फ़ज़ाईल आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के इरशादात से अभी आप सुन चुके हैं, उनसे इतना ज़रूर मालूम होता है कि पहले सलाम करना भी सुन्नते मुअक्कदा से कम नहीं। तफ़सीर बहरे-मुहीत में है कि शुरूआती सलाम तो अक्सर उलेमा के नज़दीक सुन्नते मुअक्कदा है, और हज़रत हसन बसरी रह. ने फ़रमायाः

اَلسَّلَامُ تَطَوُّعٌ وَالرَّدُّ فَرِيْضَةٌ

यानी "पहले सलाम करने में तो इख़्तियार है, लेकिन सलाम का जवाब देना फ़र्ज़ है।"

रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने इस क़ुरआनी हुक्म की अधिक तशरीह के तौर पर सलाम और सलाम के जवाब के बारे में और भी कुछ तफ़सीलात बयान फ़रमाई हैं, वह भी मुख़्तसर तौर पर मुलाहिज़ा कर लीजिये। बुख़ारी व मुस्लिम की हदीस में है कि जो शख़्स सवारी पर हो उसको चाहिये कि पैदल चलने वाले को ख़ुद सलाम करे और जो चल रहा हो वह बैठे हुए को सलाम करे और जो लोग तायदाद में कम हों वे किसी बड़ी जमाअ़त पर गुज़रें तो उनको चाहिये कि सलाम की पहल करें।

तिर्मिज़ी की एक हदीस में है कि जब आदमी अपने घर में जाये तो अपने घर वालों को सलाम करना चाहिये कि इससे उसके लिये भी बरकत होगी और उसके घर वालों के लिये भी।

अबू दाऊद की एक हदीस में है कि एक मुसलमान से बार-बार मुलाक़ात हो तो हर मर्तबा सलाम करना चाहिये और जिस तरह पहली मुलाक़ात के वक़्त सलाम करना मस्नून है इसी तरह

रुख़्सत के वक़्त भी सलाम करना मस्नून और सवाब है। तिर्मिज़ी, अबू दाऊद में यह हुक्म हज़रत क़तादा और हज़रत अबू हुरैरह रज़ियल्लाहु अन्हु की रिवायत से नक़ल किया है।

और यह हुक्म जो अभी बयान किया गया है कि सलाम का जवाब देना वाजिब है इससे चन्द हालात अलग और बाहर हैं। जो शख़्स नमाज़ पढ़ रहा है अगर कोई उसको सलाम करे तो जवाब देना वाजिब नहीं बल्कि नमाज़ को फ़ासिद करने वाला है। इसी तरह जो शख़्स ख़ुतबा दे रहा है या क़ुरआन मजीद की तिलावत में मशग़ूल है या अज़ान या तकबीर कह रहा है या दीनी किताबों का दर्स दे रहा है या इनसानी ज़रूरत इस्तिन्जा वग़ैरह में मशग़ूल है उसको उस हालत में सलाम करना भी जायज़ नहीं और उसके ज़िम्मे जवाब देना भी वाजिब नहीं।

मज़मून के समापन पर फ़रमायाः

اِنَّ اللّٰهَ كَانَ عَلٰى كُلِّ شَىْءٍ حَسِيْبًاo

"यानी अल्लाह तआ़ला हर चीज़ का हिसाब लेने वाले हैं।" जिनमें इनसानी और इस्लामी हुक़ूक़ जैसे सलाम और सलाम के जवाब वग़ैरह तमाम बातें दाख़िल हैं, इनका भी अल्लाह तआ़ला हिसाब लेंगे।

फिर फ़रमायाः

اَللّٰهُ لَآ اِلٰهَ اِلَّا هُوَ لَيَجْمَعَنَّكُمْ اِلٰى يَوْمِ الْقِيٰمَةِ لَا رَيْبَ فِيْهِ

यानी "अल्लाह के सिवा कोई माबूद नहीं उसी को माबूद जानो और जो काम करो उसकी इबादत की नीयत से करो, वह तुमको क़ियामत के दिन जमा फ़रमायेंगे, जिसमें कोई शक नहीं है उस रोज़ सब के बदले इनायत फ़रमायेंगे, क़ियामत का वायदा और जज़ा व सज़ा की ख़बर सब हक़ है।"

وَمَنْ اَصْدَقُ مِنَ اللّٰهِ حَدِيْثًاo

क्योंकि अल्लाह की दी हुई ख़बर है और अल्लाह से बढ़कर किसकी बात सच्ची हो सकती है?

فَمَا لَكُمْ فِى الْمُنٰفِقِيْنَ فِئَتَيْنِ وَاللّٰهُ اَرْكَسَهُمْ بِمَا كَسَبُوْا ۚ اَتُرِيْدُوْنَ اَنْ تَهْدُوْا مَنْ اَضَلَّ اللّٰهُ ۚ وَمَنْ يُّضْلِلِ اللّٰهُ فَلَنْ تَجِدَ لَهٗ سَبِيْلًا ۝ وَدُّوْا لَوْ تَكْفُرُوْنَ كَمَا كَفَرُوْا فَتَكُوْنُوْنَ سَوَآءً فَلَا تَتَّخِذُوْا مِنْهُمْ اَوْلِيَآءَ حَتّٰى يُهَاجِرُوْا فِىْ سَبِيْلِ اللّٰهِ ۚ فَاِنْ تَوَلَّوْا فَخُذُوْهُمْ وَاقْتُلُوْهُمْ حَيْثُ وَجَدْتُّمُوْهُمْ ۖ وَلَا تَتَّخِذُوْا مِنْهُمْ وَلِيًّا وَّلَا نَصِيْرًا ۝ اِلَّا الَّذِيْنَ يَصِلُوْنَ اِلٰى قَوْمٍۢ بَيْنَكُمْ وَبَيْنَهُمْ مِّيْثَاقٌ اَوْ جَآءُوْكُمْ حَصِرَتْ صُدُوْرُهُمْ اَنْ يُّقَاتِلُوْكُمْ اَوْ يُقَاتِلُوْا قَوْمَهُمْ ۚ وَلَوْ شَآءَ اللّٰهُ لَسَلَّطَهُمْ عَلَيْكُمْ فَلَقٰتَلُوْكُمْ ۚ فَاِنِ اعْتَزَلُوْكُمْ فَلَمْ يُقَاتِلُوْكُمْ وَاَلْقَوْا اِلَيْكُمُ السَّلَمَ ۙ فَمَا جَعَلَ اللّٰهُ لَكُمْ عَلَيْهِمْ سَبِيْلًا ۝ سَتَجِدُوْنَ اٰخَرِيْنَ يُرِيْدُوْنَ اَنْ يَّاْمَنُوْكُمْ وَ

يَأْمَنُوا قَوْمَهُمْ ۚ كُلَّمَا رُدُّوا إِلَى الْفِتْنَةِ أُرْكِسُوا فِيهَا ۚ فَإِن لَّمْ يَعْتَزِلُوكُمْ وَيُلْقُوا إِلَيْكُمُ السَّلَمَ وَيَكُفُّوا أَيْدِيَهُمْ فَخُذُوهُمْ وَاقْتُلُوهُمْ حَيْثُ ثَقِفْتُمُوهُمْ ۚ وَأُولَٰئِكُمْ جَعَلْنَا لَكُمْ عَلَيْهِمْ سُلْطَانًا مُّبِينًا ۝

फ़मा लकुम् फ़िल्मुनाफ़िक़ी-न फ़ि-अतैनि वल्लाहु अर्क-सहुम् बिमा क-सबू, अतुरीदू-न अन् तस्दू मन् अज़ल्लल्लाहु, व मंय्युज़्लिलिल्लाहु फ़-लन् तजि-द लहू सबीला (88) वद्दू लौ तक्फ़ुरू-न कमा क-फ़रू फ़-तकूनू-न सवाअन् फ़ला तत्तख़िज़ू मिन्हुम् औलिया-अ हत्ता युहाजिरू फ़ी सबीलिल्लाहि, फ़-इन् तवल्लौ फ़ख़ुज़ूहुम् वक़्तुलूहुम् हैसु वजत्तुमूहुम् व ला तत्तख़िज़ू मिन्हुम् वलिय्यंव्-व ला नसीरा (89) इल्लल्लज़ी-न यसिलू-न इला क़ौमिम् बैनकुम् व बैनहुम् मीसाक़ुन् औ जाऊकुम् हसिरत् सुदूरुहुम् अंय्युक़ातिलूकुम् औ युक़ातिलू क़ौमहुम्, व लौ शा-अल्लाहु ल-सल्ल-तहुम् अ़लैकुम् फ़-लक़ातलूकुम् फ़-इनिअ्त-ज़लूकुम् फ़-लम् युक़ातिलूकुम् व अल्क़ौ इलैकुमुस्स-ल-म फ़मा ज-अ़लल्लाहु लकुम् अ़लैहिम् सबीला (90)

फिर तुमको क्या हुआ कि मुनाफ़िक़ों के मामले में दो फ़रीक़ हो रहे हो और अल्लाह ने उनको उलट दिया उनके आमाल के सबब, क्या तुम चाहते हो कि राह पर लाओ जिसको गुमराह किया अल्लाह ने? और जिसको गुमराह करे अल्लाह हरगिज़ न पायेगा तू उसके लिये कोई राह। (88) चाहते हैं कि तुम भी काफ़िर हो जाओ जैसे वे काफ़िर हुए तो फिर तुम सब बराबर हो जाओ, सो तुम उनमें से किसी को दोस्त मत बनाओ यहाँ तक कि वतन छोड़ आयें अल्लाह की राह में, फिर अगर इसको क़ुबूल न करें तो उनको पकड़ो और मार डालो जहाँ पाओ, और न बनाओ उनमें से किसी को दोस्त और न मददगार। (89) मगर वे लोग जो मिलाप रखते हैं एक क़ौम से कि तुम में और उनमें अ़हद (समझौता) है या आये हैं तुम्हारे पास कि तंग हो गये हैं दिल उनके तुम्हारी लड़ाई से और अपनी क़ौम की लड़ाई से भी, और अगर अल्लाह चाहता तो उनको तुम पर ज़ोर (ताक़त) दे देता तो ज़रूर लड़ते तुमसे, सो अगर यक्सू (एक तरफ़) रहें वे तुम से फिर तुम से न लड़ें और पेश करें तुम पर सुलह तो अल्लाह ने नहीं दी तुमको उन पर राह। (90) अब तुम देखोगे एक और

स-तजिदू-न आ-ख़री-न युरीदू-न अंय्यअ्मनूकुम् व यअ्मनू कौमहुम्, कुल्लमा रुद्दू इलल्-फ़ित्नति उर्किसू फ़ीहा, फ-इल्लम् यअ्-तज़िलूकुम् व युल्क़ू इलैकुमुस्स-ल-म व यकुफ्फ़ू ऐदि-यहुम् फ़ख़ुज़ूहुम् वक़्तुलूहुम् हैसु सक़िफ़्तुमूहुम्, व उला-इकुम् जअ़ल्ना लकुम् अ़लैहिम् सुल्तानम् मुबीना (91) ✿	कौम को जो चाहते हैं कि अमन में रहें तुम से भी और अपनी कौम से भी, जब कभी लौटाये जाते हैं वे फ़साद की तरफ़ तो उसकी तरफ़ लौट जाते हैं, फिर अगर वे तुम से यक्सू न रहें और न पेश करें तुम पर सुलह और अपने हाथ न रोकें, तो उनको पकड़ो और मार डालो जहाँ पाओ, और उन पर हमने तुमको दी है खुली सनद। (91) ✿

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

तीन अलग-अलग गिरोहों का बयान और उनके अहकाम

पहले फ़िर्के का बयान

(जब तुम इन मुर्तद लोगों की हालत देख चुके) फिर तुमको क्या हुआ कि इन मुनाफ़िक़ों के बारे में तुम (मतभेद करके) दो गिरोह हो गये (कि एक गिरोह इनको अब भी मुसलमान कहता है) हालाँकि अल्लाह तआ़ला ने इनको (इनके ऐलानिया कुफ़्र की तरफ़) उल्टा फेर दिया। उनके (बुरे) अ़मल के सबब। (वह बुरा अ़मल इरादी तौर पर दारुल-इस्लाम को बावजूद क़ुदरत के छोड़ देना है जो कि उस वक़्त इस्लाम के इक़रार को छोड़ देने के जैसा और कुफ़्र की निशानी थी, और वास्तव में तो वे पहले भी मुसलमान न हुए थे और इसी वजह से उनको मुनाफ़िक़ कहा) क्या तुम लोग (ऐ वह गिरोह! जिनको इस दारुल-इस्लाम के छोड़ने का कुफ़्र की निशानी होना मालूम नहीं) इसका इरादा रखते हो कि ऐसे लोगों को हिदायत करो जिनको अल्लाह तआ़ला ने (जबकि उन लोगों ने गुमराही इख़्तियार की) गुमराही में डाल रखा है (जैसा कि अल्लाह तआ़ला की आ़दत है कि किसी काम के इरादे के वक़्त उस काम को पैदा कर देते हैं, मतलब यह है कि ग़ैर-मोमिन गुमराह को जो हिदायत पाने वाला मोमिन कहते हो यह तुम्हारे लिये जायज़ नहीं) और जिसको अल्लाह तआ़ला गुमराही में डाल दें उसके (मोमिन होने के) लिए कोई सबील न पाओगे (पस उन लोगों को मोमिन न कहना चाहिये और भला वे ख़ुद क्या मोमिन होंगे उनके कुफ़्र में आगे बढ़ने की तो यह हालत है कि) वे इस तमन्ना में हैं कि जैसे वे काफ़िर हैं तुम भी (ख़ुदा न करे) काफ़िर बन जाओ, जिसमें तुम और वे सब एक तरह के हो जाओ। सो (उनकी

जब यह हालत है तो) उनमें से किसी को दोस्त मत बनाना (यानी किसी के साथ मुसलमानों जैसा बर्ताव मत करना, क्योंकि दोस्ती के जवाज़ के लिये इस्लाम शर्त है) जब तक कि वे अल्लाह की राह में (यानी इस्लाम को मुकम्मल करने के लिये) हिजरत न करें (क्योंकि उस वक़्त हिजरत का वह हुक्म था जो अब अल्लाह और रसूल के इक़रार और गवाही का है और इस्लाम के मुकम्मल होने की क़ैद इसलिये है कि ख़ाली दारुल-इस्लाम में आना काफ़ी नहीं, यूँ तो व्यापारी काफ़िर भी आ जाते हैं, बल्कि इस्लामी हैसियत से आयें, यानी इस्लाम भी ज़ाहिर करें ताकि इक़रार व हिजरत दोनों को जमा करने वाले हो जायें। और रही दिली तस्दीक़ तो उसका इल्म सिर्फ़ अल्लाह तआ़ला ही को हो सकता है, मुसलमानों को उसकी तफ़तीश ज़रूरी नहीं) और अगर वे (इस्लाम से) मुँह फेरें (और काफ़िर ही रहें) तो उनको पकड़ो और क़त्ल करो जिस जगह उनको पाओ (यह पकड़ना या तो क़त्ल के लिये है या गुलाम बनाने के लिये) और न उनमें से किसी को दोस्त बनाओ और न मददगार बनाओ (मतलब यह है कि किसी हालत में उनसे कोई ताल्लुक़ न रखो न अमन में दोस्ती, न ख़ौफ़ में मदद तलब करने का, बल्कि अलग थलग रहो)।

दूसरे फ़िर्क़े का बयान

मगर (उन काफ़िरों में) जो लोग ऐसे हैं जो कि (तुम्हारे साथ समझौते से रहना चाहते हैं, जिसके दो तरीक़े हैं एक तो यह कि सुलह के ज़रिये हो, यानी) ऐसे लोगों से जा मिलते हैं (यानी अ़हद कर लेते हैं) कि तुम्हारे और उनके बीच (समझौते का) अ़हद है (जैसे बनू मुदलिज कि उनसे सुलह हुई तो उनके साथ समझौता किये हुए भी इस हुक्म से बाहर होने में आ गये। तो बनू मुदलिज और भी ज़्यादा हुक्म से अलग हुए) या (दूसरा तरीक़ा यह है कि अप्रत्यक्ष रूप से सुलह हो इस तरह से कि) ख़ुद तुम्हारे पास इस हालत से आएँ कि उनका दिल तुम्हारे साथ और तथा अपनी क़ौम के साथ लड़ने से नाख़ुश और दूर हो (इसलिये न तो अपनी क़ौम के साथ होकर तुम से लड़ें और न तुम्हारे साथ होकर अपनी क़ौम से लड़ें बल्कि उनसे भी सुलह रखें और तुम से भी, पस दोनों तरीक़ों में जिस तरीक़े से कोई मुसालहत रखे वे ज़िक्र हुए हुक्म यानी पकड़े और क़त्ल किये जाने से अलग हैं), और (तुम उन लोगों की सुलह की दरख़्वास्त में अल्लाह तआ़ला का एहसान मानो कि उनके दिल में तुम्हारी हैबत डाल दी वरना) अगर अल्लाह तआ़ला चाहता तो उनको तुम पर मुसल्लत (और दिलेर) कर देता फिर वे तुमसे लड़ने लगते (मगर ख़ुदा तआ़ला ने तुमको इस परेशानी से बचा लिया) फिर अगर (सुलह करके) वे तुमसे अलग रहें यानी तुमसे न लड़ें और तुमसे मामला सीधे और सही तरह रहने का रखें (इन सब अलफ़ाज़ का मतलब यह है कि सुलह से रहें, कई लफ़्ज़ ताकीद के लिये फ़रमा दिये) तो (उस सुलह की हालत में) अल्लाह तआ़ला ने तुमको उन पर (क़त्ल या क़ैद वग़ैरह की) कोई राह नहीं दी (यानी इजाज़त नहीं दी)।

तीसरे फ़िर्क़े का बयान

बाज़े ऐसे भी तुमको ज़रूर मिलेंगे (यानी उनकी यह हालत होगी) कि (धोखा देने के लिये)

वे यह (भी) चाहते हैं कि तुमसे भी बेख़ौफ़ होकर रहें और अपनी क़ौम से भी बेख़ौफ़ होकर रहें (और साथ ही इसके) जब कभी उनको (खुले मुख़ालिफ़ों की तरफ़ से) शरारत (व फ़साद) की तरफ़ मुतवज्जह किया जाता है (यानी उनसे मुसलमानों से लड़ने के लिये कहा जाता है) तो वे (फ़ौरन) उस (शरारत) में जा गिरते हैं (यानी मुसलमानों से लड़ने को तैयार हो जाते हैं और वह धोखे से सुलह तोड़ देते हैं) सो ये लोग अगर (सुलह तोड़ दें और) तुमसे (यानी तुम्हारी लड़ाई से) किनारा करने वाले न हों और न तुमसे सलामत-रवी रखें और न अपने हाथों को (तुम्हारे मुक़ाबले से) रोकें (सब का मतलब पहले गुज़रे के मुताबिक़ एक ही है कि सुलह तोड़ दें) तो तुम (भी) उनको पकड़ो और क़त्ल करो जहाँ कहीं उनको पाओ। और हमने तुमको उन पर साफ़ हुज्जत दी है (जिससे उनका क़त्ल करना ज़ाहिर है और वह हुज्जत उनका अ़हद और समझौता तोड़ना है)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

उक्त आयतों में तीन फ़िर्क़ों का बयान है, जिनके मुताल्लिक़ दो हुक्म मज़कूर हैं, वाकिआ़त उन फ़िर्क़ों के निम्नलिखित रिवायतों से वाज़ेह होंगे।

पहली रिवायत

अ़ब्द बिन हुमैद रह. ने मुजाहिद रह. से रिवायत किया कि मक्का के कुछ मुश्रिक मदीना आये और ज़ाहिर किया कि हम मुसलमान और मुहाजिर होकर आये हैं, फिर मुर्तद हो गये (यानी इस्लाम से फिर गये) और हज़रत रसूले मक़बूल सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से तिजारत का सामान लाने का बहाना करके फिर मक्का चल दिये और फिर न आये। उनके बारे में मुसलमानों की राय भिन्न और अलग-अलग हुई, कुछ ने कहा कि ये काफ़िर हैं, कुछ ने कहा ये मोमिन हैं, अल्लाह तआ़ला ने उनका काफ़िर होना आयतः

فَمَالَكُمْ فِى الْمُنٰفِقِيْنَ فِئَتَيْنِ

(यानी आयत 88) में बयान कर दिया और उनके क़त्ल करने का हुक्म दिया।

हज़रत हकीमुल-उम्मत मौलाना अशरफ़ अ़ली थानवी रह. ने फ़रमाया कि उनका मुनाफ़िक़ कहना इस मायने में है कि जब इस्लाम का दावा किया था तब भी मुनाफ़िक़ थे, दिल से ईमान न लाये थे, और मुनाफ़िक़ लोग अगरचे क़त्ल न किये जाते थे लेकिन तभी तक कि अपना कुफ़्र छुपाते थे, और उन लोगों का इस्लाम से फिर जाना ज़ाहिर हो गया था। और जिन्होंने मुसलमान कहा शायद अच्छे गुमान की वजह से कहा हो, और उनके इस्लाम से फिर जाने की दलीलों में कुछ तावील कर ली होगी, और उस तावील (मतलब बयान करने) की बुनियाद सिर्फ़ अपनी राय पर होगी, जिसकी ताईद शरई दलील से न होगी, इसलिये मोतबर नहीं रखी गई।

दूसरी रिवायत

इब्ने अबी शैबा रह. ने हसन रहमतुल्लाहि अ़लैहि से रिवायत किया कि सुराक़ा बिन मालिक

मुदलिजी ने बदर और उहुद के वाक़िए के बाद रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की ख़िदमत में हाज़िर होकर दरख़्वास्त की कि हमारी क़ौम बनी मुदलिज से सुलह कर लीजिये। आपने हज़रत ख़ालिद रज़ियल्लाहु अ़न्हु को सुलह की कार्रवाई पूरी करने के लिये वहाँ भेज दिया। सुलह (समझौते) का मज़मून यह थाः

"हम रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के ख़िलाफ़ किसी की मदद न करेंगे और क़ुरैश मुसलमान हो जायेंगे तो हम भी मुसलमान हो जायेंगे और जो क़ौमें हम से जुड़ेंगी वो भी इस समझौते में हमारी शरीक हैं।"

इस पर यह आयतः

وَدُّوْالَوْ تَكْفُرُوْنَ.......... الى قوله ....اِلَّا الَّذِيْنَ يَصِلُوْنَ...... الخ

(यानी आयत 89, 90) नाज़िल हुई।

तीसरी रिवायत

हज़रत इब्ने अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु से रिवायत किया गया कि आयतः

سَتَجِدُوْنَ اٰخَرِيْنَ........ الخ

(यानी आयत नम्बर 91) में जिनका ज़िक्र है मुराद उनसे असद और ग़तफ़ान क़बीले हैं कि मदीना में आये और ज़ाहिर में इस्लाम का दावा करते और अपनी क़ौम से कहते कि हम तो बन्दर और अ़क़रब (बिच्छू) पर ईमान लाये हैं, और मुसलमानों से कहते कि हम तुम्हारे दीन पर हैं। और इमाम ज़ह्हाक रह. ने हज़रत इब्ने अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु से यही हालत बनी अ़ब्दुद्दार की नक़ल की है, पहली और दूसरी रिवायत **रूहुल-मआ़नी** और तीसरी **मआ़लिम** में है।

हज़रत थानवी रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने फ़रमाया कि तीसरी रिवायत वालों की हालत पहली रिवायत वालों के जैसी हुई कि दलील से उनका पहले ही से मुसलमान न होना साबित हो गया, इसी लिये उनका हुक्म दूसरे आ़म काफ़िरों की तरह है, यानी समझौते की हालत में उनसे क़िताल (जंग) न किया जाये और समझौता न होने की सूरत में क़िताल किया जाये। चुनाँचे पहली रिवायत वालों के बारे में दूसरी आयत यानीः

فَاِنْ تَوَلَّوْا فَخُذُوْهُمْ وَاقْتُلُوْهُمْ

(आयत 89) में गिरफ़्तार करने और क़त्ल का हुक्म और तीसरी आयतः

اِلَّا الَّذِيْنَ يَصِلُوْنَ...... الخ

(आयत 90) में समझौते में उनका हुक्म से अलग होना मौजूद है, जिनकी सुलह और समझौते का ज़िक्र दूसरी रिवायत में है और उनको इस हुक्म से बाहर रखने की ताकीद के लिये फिर 'फ़-इनिअ़त-ज़लूकुम....' की वज़ाहत कर दी।

और तीसरी रिवायत वालों के बारे में चौथी आयत यानीः

سَتَجِدُوْنَ اٰخَرِيْنَ...... الخ

(आयत 91) में बयान फ़रमा दिया कि अगर ये लोग तुमसे किनारा नहीं करते बल्कि मुक़ातला (जंग) करते हैं तो तुम इनसे जिहाद करो। इससे यह मालूम होता है कि अगर वे सुलह करें तो उनसे क़िताल (जंग और मुक़ाबला) न किया जाये। (बयानुल-क़ुरआन)

ख़ुलासा यह कि यहाँ तीन फ़िर्क़ों (जमाअ़तों) का ज़िक्र फ़रमाया गयाः

1. जो बावजूद क़ुदरत व ताक़त के हिजरत न करें (जबकि उस ज़माने में इस्लाम की शर्त हिजरत करना था) या हिजरत करने के बाद दारुल-इस्लाम (मुसलमानों के इलाक़े) से निकल कर दारुल-हरब (काफ़िरों के इलाक़े) में चले जायें।

2. मुसलमानों से जंग न करने का समझौता ख़ुद कर लें या ऐसा समझौता करने वालों से समझौता कर लें।

3. जो वक़्ती हालात को टालने की ग़र्ज़ से सुलह कर लें और जब मुसलमानों के ख़िलाफ़ जंग की दावत दी जाये तो उसमें शरीक हो जायें और अपने अ़हद पर क़ायम न रहें।

पहले फ़रीक़ का हुक्म आ़म काफ़िरों की तरह है। दूसरा फ़रीक़ क़त्ल और पकड़-धकड़ से बाहर है। तीसरा फ़रीक़ उसी सज़ा का हक़दार है जिसका पहला फ़रीक़ था। इन आयतों के कुल दो हुक्म मज़कूर हैं, यानी सुलह न होने की सूरत में जंग और सुलह होने की हालत में जंग न करना।

हिजरत की विभिन्न सूरतें और अहकाम

अल्लाह तआ़ला का क़ौल हैः

حَتّٰى يُهَاجِرُوْا فِىْ سَبِيْلِ اللّٰهِ...... الخ

इस्लाम के शुरू ज़माने में दारुल-कुफ़्र (काफ़िरों के मुल्क) से हिजरत करना तमाम मुसलमानों पर फ़र्ज़ थी इसलिये अल्लाह तआ़ला ने ऐसे लोगों के साथ मुसलमानों जैसा बर्ताव करने से मना किया है जो इस फ़र्ज़ को छोड़ने वाले हों। फिर जब मक्का फ़तह हुआ तो सरवरे आ़लम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमायाः

لَا هِجْرَةَ بَعْدَ الْفَتْحِ. (رواه البخاری)

"यानी जब मक्का फ़तह होकर दारुल-इस्लाम बन गया तो अब वहाँ से हिजरत फ़र्ज़ न रही।" (हिजरत से सम्बन्धित बहस के लिये सूरः निसा की आयत नम्बर 100 की तफ़सीर देखिये)

यह उस ज़माने का हुक्म है जबकि हिजरत ईमान की शर्त थी, उस आदमी को मुसलमान नहीं समझा जाता था जो बावजूद ताक़त के हिजरत न करे, लेकिन बाद में यह हुक्म मन्सूख़ (रद्द और ख़त्म) हो गया, अब यह सूरत बाक़ी न रही।

हिजरत की दूसरी सूरत यह है जो क़ियामत तक बाक़ी रहेगी, जिसके बारे में हदीस में आता हैः

لَا تَنْقَطِعُ الْهِجْرَةُ حَتّٰى تَنْقَطِعَ التَّوْبَةُ.

"यानी हिजरत उस वक़्त तक बाक़ी रहेगी जब तक तौबा की क़ुबूलियत का वक़्त बाक़ी है।" (सही बुख़ारी)

अ़ल्लामा ऐनी शारेह बुख़ारी ने इस हिजरत के मुताल्लिक़ लिखा है:

اِنَّ الْمُرَادَ بِالْهِجْرَةِ الْبَاقِيَةِ هَجْرُ السَّيِّئَاتِ.

"यानी इस हिजरत से मुराद गुनाहों का छोड़ देना है।" जैसा कि एक हदीस में रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम इरशाद फ़रमाते हैं:

اَلْمُهَاجِرُ مَنْ هَجَرَ مَا نَهَى اللّٰهُ عَنْهُ.

"यानी मुजाहिर वह है जो उन तमाम चीज़ों से परहेज़ करे जिनको अल्लाह तआ़ला ने हराम किया है।" (मिरक़ात जिल्द 1 के हवाले से)

मज़कूरा बहस से मालूम हुआ कि इस्तिलाह में हिजरत का हुक्म दो मायनों पर होता है:

1. दीन के लिये वतन छोड़ना जैसा कि सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम अपना वतन मक्का छोड़कर मदीना और हब्शा तशरीफ़ ले गये।

2. गुनाहों का छोड़ना।

وَلَا تَتَّخِذُوْا مِنْهُمْ وَلِيًّا وَّلَا نَصِيْرًا

इस आयत से मालूम हुआ कि काफ़िरों से मदद चाहना हराम है। चुनाँचे एक रिवायत में आता है कि काफ़िरों के ख़िलाफ़ अन्सार ने जब यहूद से मदद तलब करने की इजाज़त आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से चाही तो आपने फ़रमायाः

اَلْخَبِيْثُ لَا حَاجَةَ لَنَا بِهِمْ.

"यानी यह ख़बीस क़ौम है इसकी हमें कोई ज़रूरत नहीं।" (तफ़सीरे मज़हरी जिल्द 2)

وَمَا كَانَ لِمُؤْمِنٍ اَنْ يَّقْتُلَ مُؤْمِنًا اِلَّا

خَطَـًٔا ۚ وَمَنْ قَتَلَ مُؤْمِنًا خَطَـًٔا فَتَحْرِيْرُ رَقَبَةٍ مُّؤْمِنَةٍ وَّدِيَةٌ مُّسَلَّمَةٌ اِلٰٓى اَهْلِهٖٓ اِلَّآ اَنْ يَّصَّدَّقُوْا ۚ فَاِنْ كَانَ مِنْ قَوْمٍ عَدُوٍّ لَّكُمْ وَهُوَ مُؤْمِنٌ فَتَحْرِيْرُ رَقَبَةٍ مُّؤْمِنَةٍ ۚ وَاِنْ كَانَ مِنْ قَوْمٍۢ بَيْنَكُمْ وَبَيْنَهُمْ مِّيْثَاقٌ فَدِيَةٌ مُّسَلَّمَةٌ اِلٰٓى اَهْلِهٖ وَتَحْرِيْرُ رَقَبَةٍ مُّؤْمِنَةٍ ۚ فَمَنْ لَّمْ يَجِدْ فَصِيَامُ شَهْرَيْنِ مُتَتَابِعَيْنِ ۡ تَوْبَةً مِّنَ اللّٰهِ ۚ وَكَانَ اللّٰهُ عَلِيْمًا حَكِيْمًا ۝ وَمَنْ يَّقْتُلْ مُؤْمِنًا مُّتَعَمِّدًا فَجَزَآؤُهٗ جَهَنَّمُ خٰلِدًا فِيْهَا وَغَضِبَ اللّٰهُ عَلَيْهِ وَلَعَنَهٗ وَاَعَدَّ لَهٗ عَذَابًا عَظِيْمًا ۝

व मा का-न लिमुअ्मिनिन् अंय्यक़्तु-ल मुअ्मिनन् इल्ला	और मुसलमान का काम नहीं कि क़त्ल करे मुसलमान को मगर ग़लती से, और

ख़-तअन् व मन् क़-त-ल मुअ्मिनन् ख़ा-तअन् फ़-तह्रीरु र-क़-बतिम् मुअ्मिनतिंव्-व दि-यतुम् मुसल्ल-मतुन् इला अह्लिही इल्ला अंय्यस्सद्दक़ू, फ़-इन् का-न मिन् क़ौमिन् अ़दुव्विल् -लकुम् व हु-व मुअ्मिनुन् फ़-तह्रीरु र-क़-बतिम् मुअ्मि-नतिन्, व इन् का-न मिन् क़ौमिम् बैनकुम् व बैनहुम् मिसाक़ुन् फ़-दि-यतुम् मुसल्ल-मतुन् इला अह्लिही व तह्रीरु र-क़-बतिम् मुअ्मि-नतिन् फ़-मल्लम् यजिद् फ़सियामु शह्रैनि मु-तताबिअ़ैनि तौबतम् मिनल्लाहि, व कानल्लाहु अ़लीमन् हकीमा (92) व मंय्यक़्तुल् मुअ्मिनम् मु-तअ़म्मिदन् फ़-जज़ा-उहू जहन्नमु ख़ालिदन् फ़ीहा व ग़ज़िबल्लाहु अ़लैहि व ल-अ़-नहू व अ-अ़द्-द लहू अ़ज़ाबन् अ़ज़ीमा (93)	जो क़त्ल करे मुसलमान को ग़लती से तो आज़ाद करे गर्दन एक मुसलमान की और ख़ून-बहा पहुँचाये उसके घर वालों को मगर यह कि वे माफ़ कर दें। फिर अगर मक़्तूल (क़त्ल होने वाला) था ऐसी क़ौम में से कि वे तुम्हारे दुश्मन हैं और ख़ुद वह मुसलमान था तो आज़ाद करे गर्दन एक मुसलमान की, और अगर वह था ऐसी क़ौम में से कि तुम में और उनमें अ़हद (समझौता) है, तो ख़ून-बहा पहुँचाये उसके घर वालों को और आज़ाद करे गर्दन एक मुसलमान की, फिर जिसको मयस्सर न हो तो रोज़े रखे दो महीने के बराबर, गुनाह बख़्शवाने को अल्लाह से, और अल्लाह जानने वाला हिक्मत वाला है। (92) और जो कोई क़त्ल करे मुसलमान को जानकर तो उसकी सज़ा दोज़ख़ है, पड़ा रहेगा उसी में और अल्लाह का उस पर ग़ज़ब हुआ और उसको लानत की, और उसके वास्ते तैयार किया बड़ा अ़ज़ाब। (93)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

और किसी मोमिन की शान नहीं कि वह किसी मोमिन को (पहल करते हुए) क़त्ल करे लेकिन ग़लती से (हो जाये तो और बात है), और जो शख़्स किसी मोमिन को ग़लती से क़त्ल कर दे तो उस पर (शरई तौर से) एक मुसलमान गुलाम या बाँदी का आज़ाद करना (वाजिब) है, और ख़ून-बहा (भी वाजिब) है जो उस (मक़्तूल) के ख़ानदान वालों के (यानी उनमें जो वारिस हैं मीरास के हिस्से के बराबर) हवाले कर दी जाए (और जिसके कोई वारिस न हो तो बैतुल-माल वारिसों के क़ायम-मक़ाम है) मगर यह कि वे लोग (उस ख़ून-बहा को) माफ़ कर दें (चाहे पूरा का पूरा या कुछ, उतना ही माफ़ हो जायेगा)।

और अगर वह (ग़लती से मरने वाला) ऐसी क़ौम से हो जो तुम्हारे मुख़ालिफ़ हैं (यानी जिनसे तुम्हारी लड़ाई रहती है और उन्हीं में किसी वजह से रहता था) और वह शख़्स ख़ुद मोमिन है तो (सिर्फ़) एक मुसलमान गुलाम या बाँदी को आज़ाद करना (पड़ेगा, और दियत इसलिये नहीं कि अगर उस मक़्तूल के वारिस मुसलमान हैं तब तो वह इस्लामी हुकूमत के मातहत न होने के सबब मुस्तहिक़ नहीं, और अगर काफ़िर हैं तो उस सूरत में दियत बैतुल-माल का हक़ होती, और दारुल-हरब से दारुल-इस्लाम के बैतुल-माल में तर्का लाया नहीं जाता) और अगर वह (ग़लती से क़त्ल होने वाला) ऐसी क़ौम से हो कि तुममें और उनमें मुआहदा (सुलह या ज़िम्मा का) हो (यानी ज़िम्मी या सुलह वाले या अमन पाये हुए हो) तो ख़ून-बहा (भी वाजिब) है जो उस (मक़्तूल) के ख़ानदान वालों के (यानी उनमें जो वारिस हैं उनके) हवाले कर दी जाए (क्योंकि काफ़िर काफ़िर का वारिस होता है) और एक मुसलमान गुलाम या बाँदी को आज़ाद करना (पड़ेगा), फिर (जिन सूरतों में गुलाम बाँदी का आज़ाद करना वाजिब है) जिस शख़्स को (गुलाम बाँदी) न मिले (और न इतने दाम हों कि ख़रीद सके) तो (उसके ज़िम्मे बजाय इस आज़ाद करने के) लगातार दो महीने के रोज़े हैं (यह आज़ाद करना और वह न हो सके तो रोज़े रखना) तौबा के तौर पर (है), जो अल्लाह की तरफ़ से मुक़र्रर हुई है (यानी इसका यह तरीक़ा शरीअ़त ने मुक़र्रर किया है), और अल्लाह तआ़ला बड़े इल्म वाले, बड़ी हिक्मत वाले हैं (अपने इल्म व हिक्मत से मस्लेहत के मुनासिब अहकाम मुक़र्रर फ़रमाये हैं, यह अलग बात है कि हर जगह हिक्मत बन्दे को मालूम न हो)।

और जो शख़्स किसी मुसलमान को जान-बूझकर क़त्ल कर डाले तो उसकी (असली) सज़ा (तो) जहन्नम (में इस तरह रहना) है कि हमेशा-हमेशा को उसमें रहता (लेकिन अल्लाह तआ़ला का फ़ज़्ल है कि यह असली सज़ा जारी न होगी बल्कि ईमान की बरकत से आख़िरकार निजात हो जायेगी) और उस पर (एक निर्धारित मियाद तक के वास्ते) अल्लाह तआ़ला ग़ज़बनाक होंगे और उसको अपनी (ख़ास) रहमत से दूर कर देंगे, और उसके लिए बड़ी सज़ा (यानी दोज़ख़ की सज़ा) का सामान करेंगे।

मआ़रिफ़ व मसाईल

इन आयतों के मज़मून का पीछे से संबन्ध

ऊपर से क़त्ल व क़िताल (जंग व जिहाद) का ज़िक्र चला आ रहा है, और क़त्ल की शुरू में कुल आठ सूरतें हैं, क्योंकि मक़्तूल चार हाल से ख़ाली नहीं है- या मोमिन है, या ज़िम्मी, या सुलह वाला व अमन लिया हुआ है या हर्बी है। और क़त्ल दो तरह का है- या तो जान-बूझकर या ग़लती से। पस इस एतिबार से क़त्ल की कुल आठ सूरतें हुईं- अव्वल मोमिन का जान-बूझकर क़त्ल, दूसरे मोमिन का ग़लती से क़त्ल, तीसरे ज़िम्मी का जान-बूझकर क़त्ल, चौथे ज़िम्मी का ग़लती से क़त्ल, पाँचवे सुलह किये हुए शख़्स का जान-बूझकर क़त्ल, छठे सुलह वाले

का ग़लती से क़त्ल, सातवें हर्बी का जान-बूझकर क़त्ल, आठवें हर्बी का ग़लती से क़त्ल।

इन सूरतों में से कुछ का हुक्म तो ऊपर मालूम हो चुका कुछ का आगे मज़कूर है, और कुछ का हदीस में मौजूद है। चुनाँचे पहली सूरत का दुनियावी हुक्म यानी क़िसास (ख़ून के बदले ख़ून का हुक्म) सूरः ब-क़रह में मज़कूर है और आख़िरत का हुक्म आगे आयत नम्बर 93 में आता है। और दूसरी सूरत का बयान अल्लाह तआ़ला के क़ौलः

وَمَا كَانَ لِمُؤْمِنٍ ...... اِلٰى قوله........ وَهُوَ مُؤْمِنٌ فَتَحْرِيْرُ رَقَبَةٍ

(यानी आयत नम्बर 92) में आता है। और तीसरी सूरत का हुक्म दारे क़ुतनी की हदीस में है कि ज़िम्मी के बदले रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने मुसलमान से क़िसास लिया। (इसको इमाम ज़ैलई ने हिदाया की तख़रीज में बयान किया है)। चौथी सूरत का ज़िक्र अल्लाह तआ़ला के क़ौलः

وَاِنْ كَانَ مِنْ قَوْمٍ ۢ بَيْنَكُمْ وَبَيْنَهُمْ مِّيْثَاقٌ

में आता है। पाँचवीं सूरत का ज़िक्र ऊपर के रुकूअ़ अल्लाह तआ़ला के क़ौलः

فَمَا جَعَلَ اللّٰهُ لَكُمْ عَلَيْهِمْ سَبِيْلًا

में आ चुका है। छठी सूरत का हुक्म चौथी सूरत के साथ ही मज़कूर है क्योंकि मीसाक़ (अ़हद व समझौता) आ़म है जो वक़्ती और हमेशा के लिये दोनों को शामिल है। पस ज़िम्मी और अमन लेने वाला दोनों आ गये। दुर्रे मुख़्तार की किताबुद्दियात के शुरू में अमन लिये हुए शख़्स की दियत के वाजिब होने को सही कहा है। सातवीं और आठवीं सूरत का हुक्म ख़ुद जिहाद का हुक्म शरीअ़त की तरफ़ से होने से ऊपर मालूम हो चुका, क्योंकि जिहाद में अहले-हरब जान-बूझकर मक़्तूल होते हैं और ग़लती से होने का जवाज़ बदर्जा-ए-औला साबित होगा।

(बयानुल-क़ुरआन)

क़त्ल की तीन क़िस्में और उनका शरई हुक्म

पहली क़िस्म- जान-बूझकर

जो ज़ाहिर में इरादे से ऐसे आले (हथियार या सामान) के ज़रिये वाक़े हो जो लोहे का या अंगों को काटने में लोहे की तरह हो, जैसे धार वाला बाँस या धार वाला पत्थर वग़ैरह।

दूसरी क़िस्म- जान-बूझकर जैसा

जो जान-बूझकर तो हो मगर ऐसे आले (सामान या चीज़) से न हो जिससे अजज़ा (बदन के अंगों) में अलग-अलग करना हो सकता हो।

तीसरी क़िस्म- ग़लती और चूक से

या तो इरादे व गुमान में कि दूर से आदमी को शिकारी जानवर या लड़ने वाला काफ़िर

समझकर निशाना लगा दिया, या फ़ेल में कि निशाना तो जानवर ही पर लगाया लेकिन आदमी को जा लगा। इसमें ख़ता (ग़लती) से मुराद बिना इरादे और बिना जाने है। पस दूसरी तीसरी दोनों क़िस्में इसी में आ गईं, दोनों में दियत भी है और गुनाह भी है, मगर इन दोनों मामलों में दोनों क़िस्मों में फ़र्क़ है। दूसरी क़िस्म की दियत सौ ऊँट हैं चार क़िस्म के, यानी एक-एक क़िस्म के पच्चीस-पच्चीस। और तीसरी क़िस्म की दियत सौ ऊँट हैं पाँच क़िस्म के। यानी एक-एक क़िस्म के बीस-बीस। अलबत्ता अगर दियत में नक़द दिया जाये तो दोनों क़िस्मों में दस हज़ार दिरहम शरई या एक हज़ार दीनार शरई हैं, और गुनाह दूसरी क़िस्म में ज़्यादा है इरादे की वजह से, और तीसरी क़िस्म में कम सिर्फ़ बेएहतियाती का। (जैसा कि हिदाया में है)

चुनाँचे गर्दन आज़ाद करने का वाजिब होना तथा लफ़्ज़ **तौबा** भी इस पर इशारा कर रहा है और यह हक़ीक़त इन तीनों की दुनिया में जारी होने वाले अहकामे शरीअ़त के एतिबार से है और गुनाह के एतिबार से जान-बूझकर या बिना जाने हुए होना, इसका मदार दिली क़स्द व इरादे पर है जिस पर आईन्दा की वईद (सज़ा के वायदे) का मदार है, वह ख़ुदा को मालूम है मुम्किन है कि इस एतिबार से पहली क़िस्म बिना जाने-बूझे हो जाये और दूसरी क़िस्म जान-बूझकर हो जाये।

मसलाः ज़िक्र हुई दियत (ख़ून के मुआवज़े) की तब है जबकि मक़्तूल मर्द हो, और अगर औरत हो तो इसकी आधी है। (जैसा कि हिदाया में है)

मसलाः मुस्लिम और ज़िम्मी की दियत बराबर है, रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का क़ौल है किः

دِيَةُ كُلِّ ذِیْ عَهْدٍ فِیْ عَهْدِهٖ اَلْفُ دِيْنَارٍ. (كذا فى الهداية اخرجه ابو داود فى مراسيله)

मसलाः कफ़्फ़ारा यानी गर्दन का आज़ाद करना या रोज़े रखना ख़ुद क़ातिल को अदा करना पड़ता है और दियत क़ातिल के मदद करने वालों पर है जिनको शरीअ़त की इस्तिलाह में **आ़क़िला** कहते हैं। (बयानुल-क़ुरआन)

यहाँ यह शुब्हा न किया जाये कि क़ातिल के जुर्म का बोझ उसके सरपरस्तों और मददगारों पर क्यों डाला जाता है, क्योंकि वे तो बेक़सूर हैं? वजह दर असल यह है कि इसमें क़ातिल के सरपरस्त भी क़सूरवार होते हैं कि उन्होंने उसको इस क़िस्म की बेएहतियाती करने से रोका नहीं और दियत के ख़ौफ़ से आईन्दा वे लोग उसकी हिफ़ाज़त में कोताही न करेंगे।

मसलाः कफ़्फ़ारे में बाँदी ग़ुलाम बराबर हैं, लफ़्ज़ **रक़बा** आ़म है अलबत्ता उनके बदनी हिस्से सही सालिम होने चाहियें।

मसलाः मक़्तूल की दियत शरई वारिसों में तक़सीम होगी और जो अपना हिस्सा माफ़ कर देगा उस क़द्र माफ़ हो जायेगी और अगर सब ने माफ़ कर दिया तो सब माफ़ हो जायेगी।

मसलाः जिस मक़्तूल का कोई शरई वारिस न हो उसकी दियत बैतुल-माल (इस्लामी सरकारी ख़ज़ाने) में दाख़िल होगी, क्योंकि दियत तर्का (छोड़ा हुआ माल) है और तर्के का यही हुक्म है। (बयानुल-क़ुरआन)

मसलाः अहद व समझौते वाले (ज़िम्मी या अमन पाये हुए) के बारे में जो दियत वाजिब है ज़ाहिर यह है कि उस वक़्त है जब उस ज़िम्मी या अमन लेने वाले के घर वाले मौजूद हों, और अगर उसके घर वाले न हों या वे मुसलमान हों और मुसलमान काफ़िर का वारिस हो नहीं सकता इसलिये वह एक तरह से न होना है, तो अगर वह ज़िम्मी है तो उसकी दियत बैतुल-माल में दाख़िल की जायेगी क्योंकि ज़िम्मी लावारिस का तर्का जिसमें दियत दाख़िल है बैतुल-माल में आता है (जैसा कि दुर्रे मुख़्तार में है), वरना वाजिब न होगी। (बयानुल-क़ुरआन)

मसलाः रोज़े में अगर मर्ज़ (बीमारी) वग़ैरह की वजह से सिलसिला (निरन्तरता) बाक़ी न रहा हो तो नये सिरे से रखने पड़ेंगे, अलबत्ता औरत के हैज़ (माहवारी) की वजह से सिलसिला ख़त्म नहीं होगा।

मसलाः अगर किसी उज़्र से रोज़े पर क़ुदरत (ताक़त) न हो तो क़ुदरत तक तौबा किया करे।

मसलाः जान-बूझकर क़त्ल करने में यह कफ़्फ़ारा नहीं, तौबा करना चाहिये। (बयानुल-क़ुरआन)

يَاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْٓا اِذَا ضَرَبْتُمْ فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ فَتَبَيَّنُوْا وَلَا تَقُوْلُوْا لِمَنْ اَلْقٰٓى اِلَيْكُمُ السَّلٰمَ لَسْتَ مُؤْمِنًا ۚ تَبْتَغُوْنَ عَرَضَ الْحَيٰوةِ الدُّنْيَا ۡ فَعِنْدَ اللّٰهِ مَغَانِمُ كَثِيْرَةٌ ۚ كَذٰلِكَ كُنْتُمْ مِّنْ قَبْلُ فَمَنَّ اللّٰهُ عَلَيْكُمْ فَتَبَيَّنُوْا ۚ اِنَّ اللّٰهَ كَانَ بِمَا تَعْمَلُوْنَ خَبِيْرًا ۝ لَا يَسْتَوِي الْقٰعِدُوْنَ مِنَ الْمُؤْمِنِيْنَ غَيْرُ اُولِي الضَّرَرِ وَالْمُجٰهِدُوْنَ فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ بِاَمْوَالِهِمْ وَاَنْفُسِهِمْ ۚ فَضَّلَ اللّٰهُ الْمُجٰهِدِيْنَ بِاَمْوَالِهِمْ وَاَنْفُسِهِمْ عَلَى الْقٰعِدِيْنَ دَرَجَةً ۚ وَكُلًّا وَّعَدَ اللّٰهُ الْحُسْنٰى ۚ وَفَضَّلَ اللّٰهُ الْمُجٰهِدِيْنَ عَلَى الْقٰعِدِيْنَ اَجْرًا عَظِيْمًا ۝ دَرَجٰتٍ مِّنْهُ وَمَغْفِرَةً وَّرَحْمَةً ۚ وَكَانَ اللّٰهُ غَفُوْرًا رَّحِيْمًا ۝

या अय्युहल्लज़ी-न आमनू इज़ा ज़रब्तुम् फ़ी सबीलिल्लाहि फ़-तबय्यनू व ला तक़ूलू लिमन् अल्क़ा इलैकुमुस्सला-म लस्-त मुअ्मिनन् तब्तग़ू-न अ-रज़ल् हयातिद्दुन्या फ़-अिन्दल्लाहि मग़ानिमु कसीरतुन्, कज़ालि-क कुन्तुम् मिन् क़ब्लु	ऐ ईमान वालो! जब सफ़र करो अल्लाह की राह में तो तहक़ीक़ कर लिया करो और मत कहो उस शख़्स को कि जो तुम से सलामु अ़लैक करे कि तू मुसलमान नहीं, तुम चाहते हो असबाब दुनिया की ज़िन्दगी का, सो अल्लाह के यहाँ बहुत ग़नीमतें (माल व इनामात) हैं, तुम भी तो ऐसे ही थे इससे पहले, फिर अल्लाह ने तुम पर फ़ज़्ल किया, सो अब तहक़ीक़

फ़-मन्नल्लाहु अ़लैकुम् फ़-तबय्यनू, इन्नल्ला-ह का-न बिमा तअ़्मलू-न ख़बीरा (94) ला यस्तविल् क़ाअ़िदू-न मिनल् मुअ्मिनी-न ग़ैरु उलिज़्ज़-ररि वल्मुजाहिदू-न फ़ी सबीलिल्लाहि बि-अम्वालिहिम् व अन्फ़ुसिहिम्, फ़ज़्ज़लल्लाहुल्-मुजाहिदी-न बि-अम्वालिहिम् व अन्फ़ुसिहिम् अ़लल्-क़ाअ़िदी-न द-र-जतन्, व कुल्लंव्-व-अ़दल्लाहुल्-हुस्ना, व फ़ज़्ज़-लल्लाहुल् मुजाहिदी-न अ़लल्-क़ाअ़िदी-न अज्रन् अ़ज़ीमा (95) द-रजातिम् मिन्हु व मग़्फ़ि-रतंव्-व रह्म-तन्, व कानल्लाहु ग़फ़ूर्रहीमा (96) ✿	कर लो बेशक अल्लाह तुम्हारे कामों से ख़बरदार है। (94) बराबर नहीं बैठ रहने वाले मुसलमान जिनको कोई उज़्र (बहाना और मजबूरी) नहीं, और वे मुसलमान जो लड़ने वाले हैं अल्लाह की राह में अपने माल से और जान से, अल्लाह ने बढ़ा दिया लड़ने वालों का दर्जा अपने माल और जान से बैठ रहने वालों पर, और हर एक से वायदा किया अल्लाह ने भलाई का और ज़्यादा किया अल्लाह ने लड़ने वालों को बैठ रहने वालों से अज्रे अ़ज़ीम में। (95) जो कि दर्जे हैं अल्लाह की तरफ़ से और बख़्शिश है और मेहरबानी है, और अल्लाह है बख़्शने वाला मेहरबान। (96) ✿

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

ऐ ईमान वालो! जब तुम अल्लाह की राह में (यानी जिहाद के लिये) सफ़र किया करो तो हर काम को (क़त्ल या और कुछ हो) तहक़ीक़ करके किया करो, और ऐसे शख़्स को जो कि तुम्हारे सामने फ़रमाँबरदारी (की निशानियाँ) ज़ाहिर करे (जैसे कलिमा पढ़ना या मुसलमानों के तरीक़े पर सलाम करना) यूँ मत कह दिया करो कि तू (दिल से) मुसलमान नहीं (सिर्फ़ अपनी जान बचाने को झूठ-मूट इस्लाम का इज़हार करता है), इस तौर पर कि तुम दुनियावी ज़िन्दगी के सामान की इच्छा करते हो, क्योंकि ख़ुदा के पास (यानी उनके इल्म व क़ुदरत में तुम्हारे लिये) बहुत ग़नीमत के माल हैं (जो तुमको जायज़ तरीक़ों से मिलेंगे, और याद तो करो कि) पहले (एक ज़माने में) तुम भी ऐसे ही थे (कि तुम्हारे इस्लाम के क़ुबूल होने का मदार सिर्फ़ तुम्हारा दावा व इज़हार था) फिर अल्लाह तआ़ला ने तुम पर एहसान किया (कि उस ज़ाहिरी इस्लाम पर इक्तिफ़ा किया गया और बातिनी तहक़ीक़ व जुस्तजू पर मौक़ूफ़ न रखा) सो (ज़रा) ग़ौर (तो) करो, बेशक अल्लाह तआ़ला तुम्हारे अ़मल की पूरी ख़बर रखते हैं (कि बाद इस हुक्म के कौन

इस पर अमल करता है कौन नहीं करता। सवाब में) बराबर नहीं वे मुसलमान जो बिना किसी उज़्र के घर में बैठे रहें (यानी जिहाद में न जायें) और वे लोग जो अल्लाह की राह में अपने मालों और अपनी जानों से (यानी मालों को ख़र्च करके और जानों को हाज़िर करके) जिहाद करें, (बल्कि) अल्लाह तआ़ला ने उन लोगों का दर्जा बहुत ज़्यादा बनाया है जो अपने मालों और जानों से जिहाद करते हैं घर में बैठने वालों के मुक़ाबले में, और (यूँ फ़र्ज़े ऐन न होने की वजह से गुनाह उन बैठने वालों पर भी नहीं बल्कि ईमान और दूसरे ज़रूरी फ़राईज़ पूरे करने की वजह से) अल्लाह तआ़ला ने सबसे (यानी मुजाहिदों से भी और घर बैठ रहने वालों से भी) अच्छे घर का (यानी जन्नत का आख़िरत में) वायदा कर रखा है। और (ऊपर जो संक्षिप्त रूप से कहा गया है कि मुजाहिदीन का बड़ा दर्जा है उसका मतलब यह है कि) अल्लाह तआ़ला ने (उक्त) मुजाहिदीन को घर में बैठने वालों के मुक़ाबले में बड़ा अज्रे अज़ीम दिया है (वह दर्जा यही अज्रे अज़ीम है। इस संक्षिप्तता की तफ़सील बयान फ़रमाते हैं) यानी (ज़्यादा आमाल की वजह से जो मुजाहिद से सादिर होते हैं सवाब के) बहुत-से दर्जे जो अल्लाह तआ़ला की तरफ़ से मिलेंगे और (गुनाहों की) मग़फ़िरत और रहमत (यह सब अज्रे अज़ीम की तफ़सील हुई), और अल्लाह तआ़ला बड़े मग़फ़िरत वाले, बड़े रहमत वाले हैं।

मआ़रिफ़ व मसाईल

इन आयतों के मज़मून का पीछे से संबन्ध

पिछली आयतों में मोमिन के क़त्ल करने पर सख़्त वईद (सज़ा की धमकी) बयान फ़रमाई है, आगे यह फ़रमाते हैं कि अहकामे शरीअ़त के जारी होने में मोमिन होने के लिये सिर्फ़ ज़ाहिरी इस्लाम काफ़ी है, जो शख़्स इस्लाम का इज़हार करे उसके क़त्ल से हाथ रोकना वाजिब है और सिर्फ़ शक व शुब्हे की वजह से बातिन की खोज-बीन करना और इस्लामी अहकाम के जारी करने में उसके यक़ीनी ईमान के सुबूत का मुन्तज़िर रहना जायज़ नहीं, जैसा कि कुछ सहाबा किराम से बाज़ ग़ज़वात (इस्लामी जंगों) में इस क़िस्म की चूक वाक़े हुई कि कुछ लोगों ने अपने आपको मुसलमान ज़ाहिर किया लेकिन कुछ सहाबा हज़रात ने उनकी इस्लामी शनाख़्तों को झूठ पर महमूल करके क़त्ल कर डाला और मक़्तूल का माल ग़नीमत में ले लिया। अल्लाह तआ़ला ने इस पर बन्दिश लगायी और चूँकि उस वक़्त तक सहाबा किराम को यह मसला स्पष्ट तौर पर मालूम न था इसलिये सिर्फ़ तंबीह व चेतावनी पर बस किया और इस फ़ेल पर उनके लिये कोई वईद (सज़ा का ऐलान) नाज़िल नहीं फ़रमाई। (बयानुल-क़ुरआन)

मुसलमान समझने के लिये इस्लामी निशानियाँ काफ़ी हैं, अन्दरूनी तफ़्तीश करना जायज़ नहीं

ज़िक्र की गयी तीन आयतों में से पहली आयत में यह हिदायत की गई है कि जो शख़्स

अपना मुसलमान होना ज़ाहिर करे तो किसी मुसलमान के लिये जायज़ नहीं कि बग़ैर तहक़ीक़ के उसके क़ौल को निफ़ाक़ पर महमूल करे। इस आयत के नाज़िल होने का सबब कुछ ऐसे वाक़िआत हैं जिनमें बाज़ सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अन्हुम से इस बारे में चूक हो गई थी।

चुनाँचे तिर्मिज़ी और मुस्नद अहमद में हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु से मन्क़ूल है कि क़बीला बनू सुलैम का एक आदमी सहाबा किराम की एक जमाअ़त से मिला, जबकि ये हज़रात जिहाद के लिये जा रहे थे। यह आदमी अपनी बकरियाँ चरा रहा था, उसने हज़राते सहाबा को सलाम किया जो अ़मली तौर पर इस चीज़ का इज़हार था कि मैं मुसलमान हूँ। सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम ने समझा कि इस वक़्त इसने सिर्फ़ अपनी जान व माल बचाने के लिये यह फ़रेब किया है कि मुसलमानों की तरह सलाम करके हम से बच निकले। चुनाँचे उन्होंने उसको क़त्ल कर दिया और उसकी बकरियों को माले ग़नीमत क़रार देकर रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की ख़िदमत में पेश किया। इस पर यह आयत नाज़िल हुई कि जो शख़्स आपको इस्लामी तरीक़े पर सलाम करे तो बग़ैर तहक़ीक़ के यह न समझो कि उसने फ़रेब की वजह से अपने आपको मुसलमान ज़ाहिर किया है और उसके माल को माले ग़नीमत समझकर हासिल न करो। (इब्ने कसीर)

और हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु से एक दूसरी रिवायत है जिसको इमाम बुख़ारी ने मुख़्तसर तौर पर और बज़्ज़ार ने विस्तृत तौर पर नक़ल किया है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने मुजाहिदीन का एक दस्ता भेजा, जिनमें हज़रत मिक़्दाद बिन अस्वद रज़ियल्लाहु अ़न्हु भी थे, जब वह मौक़े पर पहुँचे तो सब लोग भाग गये सिर्फ़ एक शख़्स रह गया जिसके पास बहुत माल था, उसने सहाबा किराम के सामने कहा 'अश्हदु अल्ला इला-ह इल्लल्लाह' मगर हज़रत मिक़्दाद रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने यह समझकर कि दिल से नहीं कहा बल्कि सिर्फ़ जान व माल बचाने के लिये इस्लाम का कलिमा पढ़ रहा है उसको क़त्ल कर दिया। साथ में मौजूद हज़रात में से एक सहाबी ने कहा कि आपने बुरा किया कि एक ऐसे शख़्स को क़त्ल कर दिया जिसने 'ला इला-ह इल्लल्लाह' की गवाही दी थी, मैं अगर आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की ख़िदमत में हाज़िर हो गया तो इस वाक़िए का ज़रूर ज़िक्र करूँगा। जब ये लोग मदीना वापस आये तो रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को यह वाक़िआ सुनाया। आपने हज़रत मिक़्दाद को बुलाकर सख़्त तंबीह फ़रमाई और फ़रमाया कि क़ियामत के दिन तुम्हारा क्या जवाब होगा जब कलिमा ला इला-ह इल्लल्लाह तुम्हारे मुक़ाबले में दावेदार होगा। इस वाक़िए पर यह आयत नज़िल हुईः

لَا تَقُولُوْا لِمَنْ اَلْقٰى اِلَيْكُمُ السَّلٰمَ لَسْتَ مُؤْمِنًا.

मज़्कूरा आयत के बारे में इन दो वाक़िआत के अ़लावा दूसरे वाक़िआत भी मन्क़ूल हैं लेकिन मुहक़्क़िक़ उलेमा-ए-तफ़सीर ने फ़रमाया कि इन रिवायतों में कोई टकराव नहीं हो सकता कि ये चन्द वाक़िआत मजमूई हैसियत से आयत के उतरने का सबब हुए हों।

आयत के अलफ़ाज़ में 'अल्क़ा इलैकुमुस्सला-म' इरशाद है। इसमें लफ़्ज़ "सलाम" से अगर

इस्तिलाही (रिवाजी) सलाम मुराद लिया जाये तब तो पहला वाक़िआ़ इसके साथ ज़्यादा फ़िट बैठता है, और अगर सलाम के लफ़्ज़ी मायने सलामत और इताअ़त (ताबेदारी) के लिये जायें तो ये सब वाक़िआ़त इसमें बराबर हैं। इसी लिये अक्सर हज़रात ने "सलाम" का तर्जुमा इस जगह इताअ़त (फ़रमाँबरदारी) का किया है।

वाक़िए की तहक़ीक़ के बग़ैर फ़ैसला करना जायज़ नहीं

इस आयत के पहले जुमले में एक आ़म हिदायत है कि मुसलमान कोई काम बिना तहक़ीक़ के सिर्फ़ गुमान पर न करें। इरशाद है:

إِذَا ضَرَبْتُمْ فِي سَبِيلِ اللَّهِ فَتَبَيَّنُوا

यानी "तुम अल्लाह की राह में सफ़र किया करो तो हर काम तहक़ीक़ के साथ किया करो।" महज़ ख़्याल और गुमान पर काम करने से कई बार ग़लती हो जाती है। इसमें सफ़र की क़ैद भी इस वजह से ज़िक्र की गई कि ये वाक़िआ़त सफ़र ही में पेश आये या इस वजह से कि शुब्हात उमूमन सफ़र में पेश आते हैं, अपने शहर में एक दूसरे के हालात से आ़म तौर पर जानकारी होती है, वरना असल हुक्म आ़म है, सफ़र में हो या वतन में रहने की हालत में, बग़ैर तहक़ीक़ के किसी अ़मल पर क़दम बढ़ाना जायज़ नहीं। एक हदीस में रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का इरशाद है- "सोच समझकर काम करना अल्लाह तआ़ला की तरफ़ से है, और जल्दबाज़ी शैतान की तरफ़ से।" (बहरे मुहीत)

दूसरे जुमले यानी:

تَبْتَغُونَ عَرَضَ الْحَيٰوةِ الدُّنْيَا

में इसी रोग की इस्लाह है जो इस ग़लती को करने का कारण हुआ। यानी दुनिया की दौलत यानी माले ग़नीमत हासिल होने का ख़्याल।

आगे यह भी बतला दिया कि तुम्हारे लिये अल्लाह तआ़ला ने ग़नीमत के माल बहुत से मुक़र्रर और मुक़द्दर कर रखे हैं तुम मालों की फ़िक्र में न पड़ो। इसके बाद एक और तंबीह फ़रमाई कि ज़रा इस पर भी तो नज़र डालो कि पहले तुम में भी तो बहुत से हज़रात ऐसे ही थे कि मक्का मुकर्रमा में अपने इस्लाम व ईमान का ऐलान नहीं कर सकते थे, फिर अल्लाह तआ़ला ने तुम पर एहसान किया कि काफ़िरों के घेरे से निजात दे दी, फिर तुमने इस्लाम का इज़हार किया। तो क्या यह मुम्किन नहीं कि वह शख़्स जो इस्लामी लश्कर को देखकर कलिमा पढ़ रहा है वह हक़ीक़त में पहले से इस्लाम का मोतक़िद हो मगर काफ़िरों के ख़ौफ़ से इस्लाम का इज़हार नहीं करने पाया था, उस वक़्त इस्लामी लश्कर को देखकर इज़हार किया, या कि शुरू में जब तुमने इस्लाम के कलिमा को पढ़कर अपने आपको मुसलमान कहा तो उस वक़्त तुम्हें मुसलमान क़रार देने के लिये शरीअ़त ने यह क़ैद नहीं लगाई थी कि तुम्हारे दिलों को टटोलें, और दिल में इस्लाम का सुबूत मिले तब तुम्हें मुसलमान क़रार दें, बल्कि सिर्फ़ इस्लाम का

कलिमा पढ़ लेने को तुम्हारे मुसलमान क़रार देने के लिये काफ़ी समझा गया था, इसी तरह अब जो तुम्हारे सामने कलिमा पढ़ता है उसको भी मुसलमान समझो।

अहले क़िब्ला को काफ़िर न कहने का मतलब

इस आयते करीमा से यह अहम मसला मालूम हुआ कि जो शख़्स अपने आपको मुसलमान बतलाता हो चाहे कलिमा पढ़कर या किसी और इस्लामी शिआ़र (निशानी) का इज़हार करके जैसे अज़ान, नमाज़ वग़ैरह में शिर्कत करे तो मुसलमानों पर लाज़िम है कि उसको मुसलमान समझें और उसके साथ मुसलमानों जैसा मामला करें। इसका इन्तिज़ार न करें कि वह दिल से मुसलमान हुआ है या किसी मस्लेहत से इस्लाम का इज़हार किया है।

और इस मामले में उसके आमाल पर भी मदार न होगा। फ़र्ज़ कर लो कि वह नमाज़ नहीं पढ़ता, रोज़ा नहीं रखता और हर क़िस्म के गुनाहों में मुलव्वस है, फिर भी उसको इस्लाम से ख़ारिज कहने का या उसके साथ काफ़िरों का मामला करने का किसी को हक़ नहीं। इसी लिये इमामे आज़म रह. ने फ़रमायाः

لَا نُكَفِّرُ اَهْلَ الْقِبْلَةِ بِذَنْبٍ

"यानी हम अहले क़िब्ले को किसी गुनाह की वजह से काफ़िर नहीं कहते।"

हदीस की कुछ रिवायतों में भी इस क़िस्म के अलफ़ाज़ बयान हुए हैं कि अहले क़िब्ला को काफ़िर न कहो, चाहे वह कितना ही गुनाहगार व बुरे अ़मल वाला हो।

मगर यहाँ एक बात ख़ास तौर पर समझने और याद रखने की है कि क़ुरआन व हदीस से यह साबित है कि जो शख़्स अपने आपको मुसलमान कहे उसको काफ़िर कहना या समझना जायज़ नहीं। इसका वाज़ेह मतलब यह है कि जब तक उससे किसी ऐसे क़ौल व फ़ेल का सदूर न हो जो कुफ़ की यक़ीनी अ़लामात (पहचान) है उस वक़्त तक उसके इक़रारे इस्लाम को सही क़रार देकर उसको मुसलमान कहा जायेगा, और उसके साथ मुसलमानों जैसा मामला किया जायेगा, उसकी दिली कैफ़ियतों इख़्लास या निफ़ाक़ से बहस करने का किसी को हक़ न होगा।

लेकिन जो शख़्स इज़हारे इस्लाम और इक़रारे ईमान के साथ-साथ कुछ कुफ़िया बातें भी बकता है या किसी बुत को सज्दा करता है या इस्लाम के किसी ऐसे हुक्म का इनकार करता है जिसका इस्लामी हुक्म होना क़तई और बिल्कुल स्पष्ट है, या काफ़िरों के किसी मज़हबी शिआ़र (निशानी व पहचान) को इख़्तियार करता है जैसे गले में जुन्नार वग़ैरह डालना वग़ैरह, वह बिला शुब्हा अपने कुफ़िया आमाल के सबब काफ़िर क़रार दिया जायेगा। उक्त आयत में लफ़्ज़ 'तबय्यनू' से इसकी तरफ़ इशारा मौजूद है, वरना यहूद व ईसाई तो सब ही अपने आपको मोमिन मुसलमान कहते थे, और मुसैलमा कज़्ज़ाब जिसको तमाम सहाबा की सर्वसम्मति से काफ़िर क़रार देकर क़त्ल किया गया वह तो सिर्फ़ इस्लाम के कलिमे का इक़रार ही नहीं बल्कि इस्लामी निशानियों नमाज़ अज़ान वग़ैरह का भी पाबन्द था, अपनी अज़ान में 'अश्हदु अल्ला इला-ह इल्लल्लाहु' के अ़लावा 'अश्हदु अन्-न मुहम्मदर्रसूलुल्लाह' भी कहलवाता था, मगर इसके साथ वह

अपने आपको भी नबी और रसूल वही वाला कहता था, जो क़ुरआन व सुन्नत की तालीमात का खुला हुआ इनकार था, इसी की बिना पर उसको मुर्तद (इस्लाम से ख़ारिज) क़रार दिया गया और उसके ख़िलाफ़ तमाम सहाबा की सहमति से जिहाद किया गया।

ख़ुलासा मसले का यह हो गया कि हर कलिमा पढ़ने वाले अहले क़िब्ला को मुसलमान समझो, उसके बातिन (अन्दंर की हालत) और दिल में क्या है, इसकी तफ़्तीश इनसान का काम नहीं, इसको अल्लाह तआ़ला के हवाले करो, अलबत्ता इज़हारे इस्लाम के साथ ख़िलाफ़े ईमान कोई बात उससे हो तो उसको मुर्तद (दीन से फिर जाने वाला) समझो, बशर्तेकि उसका ख़िलाफ़े ईमान होना क़तई और यक़ीनी हो, और उसमें कोई दूसरे गुमान या मतलब की गुंजाईश न हो।

इससे यह भी मालूम हो गया कि लफ़्ज़ "कलिमा पढ़ने वाले" या "अहले क़िब्ला" ये इस्तिलाही अलफ़ाज़ हैं जिनका मिस्दाक़ सिर्फ़ वह शख़्स है जो इस्लाम का दावेदार होने के बाद किसी काफ़िराना क़ौल व फ़ेल का करने वाला न हो।

जिहाद से सम्बन्धित चन्द अहकाम

दूसरी आयत यानीः

لَا يَسْتَوِی الْقٰعِدُوْنَ مِنَ الْمُؤْمِنِيْنَ

(आयत नम्बर 95) में जिहाद के चन्द अहकाम को बयान किया गया है कि जो लोग बग़ैर किसी माज़ूरी के शरीके जिहाद नहीं होते वे उन लोगों के बराबर नहीं हो सकते जो अल्लाह की राह में अपने जान व माल से जिहाद करते हैं, बल्कि अल्लाह तआ़ला ने मुजाहिदीन को ग़ैर-मुजाहिदीन पर दर्जे में फ़ज़ीलत और बरतरी दी है। साथ ही यह भी फ़रमा दिया कि अल्लाह तआ़ला ने दोनों फ़रीक़ यानी मुजाहिदीन और ग़ैर-मुजाहिदीन से अच्छी जज़ा का वायदा किया हुआ है, जन्नत व मग़फ़िरत दोनों को हासिल होंगी, फ़र्क़ दर्जों का रहेगा।

तफ़सीर के उलेमा ने फ़रमाया कि इस आयत से मालूम हुआ कि आ़म हालात में जिहाद **फ़र्ज़े किफ़ाया** है कि कुछ लोग उसको अदा कर लें तो बाक़ी मुसलमान ज़िम्मेदारी से मुक्त हो जाते हैं बशर्तेकि जो लोग जिहाद में मशग़ूल हैं वह उस जिहाद के लिये काफ़ी हों, और अगर वे काफ़ी नहीं तो उनके आस-पास के मुसलमानों पर **फ़र्ज़े ऐन** (लाज़िमी फ़र्ज़) हो जायेगा कि मुजाहिदीन की मदद करें।

फ़र्ज़े किफ़ाया का मतलब

फ़र्ज़े किफ़ाया शरीअ़त में ऐसे ही फ़राईज़ को कहा जाता है जिनकी अदायेगी हर मुस्लिम फ़र्द पर ज़रूरी नहीं, बल्कि कुछ का कर लेना काफ़ी है, और उमूमन क़ौमी और सामूहिक काम इसी दर्जे में हैं। दीनी उलूम की तालीम व तब्लीग़ भी ऐसा ही फ़र्ज़ है। कुछ लोग इसमें मशग़ूल हों और वे काफ़ी भी हों तो दूसरे मुसलमान इस फ़रीज़े की ज़िम्मेदारी से बरी हो जाते हैं, लेकिन जहाँ कोई भी मशग़ूल न हो तो सब गुनाहगार होते हैं।

नमाज़े जनाज़ा और जनाज़े का कफ़न-दफ़न भी एक क़ौमी चीज़ है कि एक भाई अपने दूसरे मुसलमान भाई का हक़ अदा करता है और उसका हुक्म भी यही है। मस्जिदें और मदरसे बनाना और दूसरे अ़वामी फ़ायदे के काम अन्जाम देना इसी हुक्म में दाख़िल हैं, यानी कुछ मुसलमान कर लें तो बाक़ी सब ज़िम्मेदारी से बरी हो जाते हैं।

आ़म तौर पर वे अहकाम जो सामूहिक और क़ौमी ज़रूरतों से संबन्धित हैं उनको शरीअ़ते इस्लाम ने फ़र्ज़े किफ़ाया ही क़रार दिया है ताकि कामों की तक़सीम के उसूल पर तमाम फ़राईज़ की अदायेगी हो सके, कुछ लोग जिहाद का काम अन्जाम दें कुछ तालीम व तब्लीग़ का, कुछ दूसरी इस्लामी या इनसानी ज़रूरतें मुहैया करने का।

इस आयत मेंः

وَكُلًّا وَّعَدَ اللّٰهُ الْحُسْنٰى

(और हर एक से वायदा किया अल्लाह ने भलाई का) फ़रमाकर उन लोगों को भी मुत्मईन फ़रमा दिया है जो जिहाद के अ़लावा दूसरी दीनी ज़रूरतों में मश्ग़ूल हैं। लेकिन यह हुक्म आ़म हालात में है, जबकि कुछ लोगों का जिहाद इस्लाम के दुश्मनों से रक्षा के लिये काफ़ी हो, और अगर उनका जिहाद काफ़ी न रहे उनको अतिरिक्त मदद की ज़रूरत हो तो सबसे पहले आस-पास के मुसलमानों पर जिहाद **फ़र्ज़े ऐन** हो जाता है, वे भी काफ़ी न हों तो उनके आस पास के लोगों पर फ़र्ज़े ऐन हो जाता है, और वे भी काफ़ी न रहें तो दूसरे मुसलमानों पर, यहाँ तक कि पूरब व पश्चिम के हर मुसलमान का यह फ़र्ज़ हो जाता है कि उसमें शरीक हो।

तीसरी आयत में भी उन्हीं फ़ज़ीलत के दर्जों का बयान है जो मुजाहिदीन को दूसरों पर हासिल हैं।

मसलाः लंगड़े, लुंजे, अंधे, बीमार और दूसरे शरई माज़ूर लोगों पर जिहाद फ़र्ज़ नहीं है।

إِنَّ الَّذِيْنَ تَوَفّٰىهُمُ الْمَلٰٓئِكَةُ ظَالِمِيْٓ أَنْفُسِهِمْ قَالُوْا فِيْمَ كُنْتُمْ ۖ
قَالُوْا كُنَّا مُسْتَضْعَفِيْنَ فِي الْأَرْضِ ۚ قَالُوْٓا أَلَمْ تَكُنْ أَرْضُ اللّٰهِ وَاسِعَةً فَتُهَاجِرُوْا فِيْهَا ۚ
فَأُولٰٓئِكَ مَأْوٰىهُمْ جَهَنَّمُ ۖ وَسَآءَتْ مَصِيْرًا ۝ إِلَّا الْمُسْتَضْعَفِيْنَ مِنَ الرِّجَالِ وَالنِّسَآءِ وَ
الْوِلْدَانِ لَا يَسْتَطِيْعُوْنَ حِيْلَةً وَّلَا يَهْتَدُوْنَ سَبِيْلًا ۝ فَأُولٰٓئِكَ عَسَى اللّٰهُ أَنْ يَّعْفُوَ عَنْهُمْ ۚ
وَكَانَ اللّٰهُ عَفُوًّا غَفُوْرًا ۝ وَمَنْ يُّهَاجِرْ فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ يَجِدْ فِي الْأَرْضِ مُرٰغَمًا كَثِيْرًا
وَّسَعَةً ۚ وَمَنْ يَّخْرُجْ مِنْۢ بَيْتِهٖ مُهَاجِرًا إِلَى اللّٰهِ وَرَسُوْلِهٖ ثُمَّ يُدْرِكْهُ الْمَوْتُ فَقَدْ وَقَعَ
أَجْرُهٗ عَلَى اللّٰهِ ۗ وَكَانَ اللّٰهُ غَفُوْرًا رَّحِيْمًا ۝

ع ١٤

इन्नल्लज़ी-न तवफ़्फ़ाहुमुल् मलाइ-कतु ज़ालिमी अन्फ़ुसिहिम् क़ालू फ़ी-म कुन्तुम्, क़ालू कुन्ना मुस्तज़्अफ़ी-न फ़िल्अर्जि, क़ालू अलम् तकुन् अर्ज़ुल्लाहि वासि-अतन् फ़तुहाजिरू फ़ीहा, फ़-उलाइ-क मअ्वाहुम् जहन्नमु, व साअत् मसीरा (97) इल्लल्-मुस्तज़्अफ़ी-न मिनर्-रिजालि वन्निसा-इ वल्विल्दानि ला यस्ततीअू-न ही-लतंव्-व ला यह्तदू-न सबीला (98) फ़-उलाइ-क असल्लाहु अंय्यअ्फ़ु-व अन्हुम्, व कानल्लाहु अफ़ुव्वन् ग़फ़ूरा (99) व मंय्युहाजिर् फ़ी सबीलिल्लाहि यजिद् फ़िल्अर्जि मुरा-गमन् कसीरंव्-व स-अतन्, व मंय्यख़्रुज् मिम्-बैतिही मुहाजिरन् इलल्लाहि व रसूलिही सुम्-म युद्रिक्हुल्-मौतु फ़-क़द् व-क़-अ अज्रुहू अलल्लाहि, व कानल्लाहु ग़फ़ूर्रहीमा (100) ✿

वे लोग कि जिनकी जान निकालते हैं फ़रिश्ते इस हालत में कि वे बुरा कर रहे हैं अपना, कहते हैं उनसे फ़रिश्ते- तुम किस हाल में थे? वे कहते हैं हम थे बेबस उस मुल्क में। कहते हैं फ़रिश्ते क्या न थी ज़मीन अल्लाह की कुशादा (खुली और फैली हुई) जो चले जाते वतन छोड़कर वहाँ, सो ऐसों का ठिकाना है दोज़ख़, और वह बहुत बुरी जगह पहुँचे। (97) मगर जो हैं बेबस मर्दों और औरतों और बच्चों में से, जो नहीं कर सकते कोई तदबीर और न जानते हैं कहीं का रास्ता। (98) सो ऐसों को उम्मीद है कि अल्लाह माफ़ करे और अल्लाह है माफ़ करने वाला बख़्शने वाला। (99) और जो कोई वतन छोड़े अल्लाह की राह में पायेगा उसके मुक़ाबले में जगह बहुत और कशाईश (यानी बेहतर ज़िन्दगी और ख़ूब रोज़ी) और जो कोई निकले अपने घर से हिजरत करके अल्लाह और रसूल की तरफ़ फिर आ पकड़े उसको मौत तो मुक़र्रर हो चुका उसका सवाब अल्लाह के यहाँ, और है अल्लाह बख़्शने वाला मेहरबान। (100) ✿

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

बेशक जब ऐसे लोगों की जान फ़रिश्ते निकालते हैं जिन्होंने (बावजूद हिजरत की ताक़त के फिर हिजरत न करके) अपने आपको गुनाहगार कर रखा था तो (उस वक़्त) वे (फ़रिश्ते) उनसे कहते हैं कि तुम (दीन के) किस (किस) काम में थे? (यानी दीन के क्या-क्या ज़रूरी काम किया करते थे?) वे (जवाब में) कहते हैं कि हम (अपने रहने की) सरज़मीन "यानी अपने मुल्क और

ख़ित्ते" में बिल्कुल मग़लूब थे (इसलिये बहुत सी दीनी ज़रूरतों पर अ़मल न कर सकते थे, यानी उन फ़राईज़ के छोड़ने में माज़ूर थे)। वे (फ़रिश्ते) कहते हैं- (अगर उस जगह न कर सकते थे तो) क्या अल्लाह तआ़ला की ज़मीन कुशादा और फैली हुई न थी, तुमको वतन छोड़ करके उस (से किसी दूसरे हिस्से) में चला जाना चाहिए था (और वहाँ जाकर फ़राईज़ को अदा कर सकते थे। इससे वे ला-जवाब हो जायेंगे और जुर्म उनका साबित हो जायेगा), सो उन लोगों का ठिकाना जहन्नम है, और जाने के लिए वह बुरी जगह है। लेकिन जो मर्द और औरतें और बच्चे (वास्तव में हिजरत पर भी) क़ादिर न हों कि न कोई तदबीर कर सकते हैं और न रास्ते से वाक़िफ़ हैं, सो उनके लिए उम्मीद है कि अल्लाह तआ़ला माफ़ कर दें, और अल्लाह तआ़ला बड़े माफ़ करने वाले, बड़े मग़फ़िरत करने वाले हैं।

और (जिन लोगों के लिये हिजरत का शरई हुक्म है उनमें से) जो शख़्स अल्लाह की राह में (यानी दीन के लिये) हिजरत करेगा तो उसको रू-ए-ज़मीन पर जाने की बहुत जगह मिलेगी और (दीन के इज़हार की) बहुत गुंजाईश (मिलेगी, पस अगर ऐसी जगह पहुँच गया तो दुनिया में भी इस सफ़र और इज़हार से कामयाबी ज़ाहिर है) और (अगर इत्तिफ़ाक़ से यह ज़िक्र हुई कामयाबी न हुई तब भी आख़िरत की कामयाबी में तो कोई संदेह नहीं, क्योंकि हमारा क़ानून है कि) जो शख़्स अपने घर से इस नीयत से निकल खड़ा हो कि अल्लाह और रसूल (के दीन के ज़ाहिर कर सकने के स्थान) की तरफ़ हिजरत करूँगा फिर (मक़सद के हासिल करने से पहले) उसको मौत आ पकड़े तब भी उसका सवाब (जिसका वायदा हिजरत करने पर है) साबित हो गया (जो वायदे की वजह से ऐसा है जैसे) अल्लाह तआ़ला के ज़िम्मे (अगरचे अभी उस सफ़र को हिजरत नहीं कह सकते लेकिन सिर्फ़ अच्छी नीयत से उसके शुरू कर देने पर पूरा सिला अ़ता हो गया), और अल्लाह तआ़ला बड़े मग़फ़िरत करने वाले हैं (इस हिजरत की बरकत से अगरचे वह नामुकम्मल रहे बहुत से गुनाह माफ़ फ़रमा देंगे जैसा कि हदीस में हिजरत की फ़ज़ीलत आई है कि हिजरत से पिछले गुनाह माफ़ हो जाते हैं, और) बड़े रहमत वाले हैं (कि अ़मल को अच्छी नीयत से शुरू करने ही से अ़मल के पूरा होने के बराबर सवाब इनायत फ़रमाते हैं)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

हिजरत की परिभाषा

इन चार आयतों में हिजरत के फ़ज़ाईल, बरकतें और अहकाम का बयान है। लुग़त में हिजरत, हिजरान और हिज्र के मायने हैं किसी चीज़ से बेज़ार होकर उसको छोड़ देना और आ़म मुहावरों में हिजरत का लफ़्ज़ वतन छोड़ देने के लिये बोला जाता है। शरीअ़त की इस्तिलाह में दारुल-कुफ़्र को छोड़कर दारुल-इस्लाम में चले जाने को हिजरत कहते हैं। (रूहुल-मआ़नी)

और मुल्ला अ़ली क़ारी रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने शरह मिश्कात में फ़रमाया कि किसी वतन को दीनी वजहों की बिना पर छोड़ देना भी हिजरत में दाख़िल है। (मिरक़ात, पेज 39 जिल्द 1)

सूरः हश्र की आयत नम्बर आठः

الَّذِيْنَ اُخْرِجُوْا مِنْ دِيَارِهِمْ وَاَمْوَالِهِمْ

जो मुहाजिरीन सहाबा के बारे में नाज़िल हुई है उससे मालूम हुआ कि अगर किसी मुल्क के काफ़िर लोग मुसलमानों को उनके मुसलमान होने की वजह से ज़बरदस्ती निकाल दें तो यह भी हिजरत में दाख़िल है।

इस परिभाषा से मालूम हुआ कि हिन्दुस्तान से पाकिस्तान की तरफ़ मुन्तक़िल होने वाले मुसलमान जो दारुल-कुफ़्र से बेज़ारी के सबब अपने इख़्तियार से इस तरफ़ आये हैं या जिनको ग़ैर-मुस्लिमों ने महज़ उनके मुसलमान होने की वजह से ज़बरदस्ती निकाल दिया है ये सब लोग शरई मायने के एतिबार से मुहाजिर हैं, अलबत्ता जो तिजारती तरक़्क़ी या मुलाज़मत की सहूलतों की नीयत से मुन्तक़िल हुए वे शरई एतिबार से मुहाजिर कहलाने के मुस्तहिक़ नहीं।

और सही बुख़ारी व सही मुस्लिम की एक हदीस में नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का इरशाद हैः

اَلْمُهَاجِرُ مَنْ هَجَرَمَا نَهَى اللّٰهُ عَنْهُ وَرَسُوْلُهٗ

"यानी मुजाहिर वह है जो उन तमाम चीज़ों को छोड़ दे जिनसे अल्लाह तआ़ला और उसके रसूल सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने मना फ़रमाया है।"

सो इसका मतलब इसी हदीस के पहले जुमले से ज़ाहिर हो जाता है जिसमें यह इरशाद हैः

اَلْمُسْلِمُ مَنْ سَلِمَ الْمُسْلِمُوْنَ مِنْ لِّسَانِهٖ وَيَدِهٖ

"यानी मुसलमान वह है जिसकी ज़बान और हाथ की तकलीफ़ से सब मुसलमान महफ़ूज़ और सलामत रहते हों।"

मुराद इसकी ज़ाहिर है कि सच्चा और पक्का मुसलमान वही है जो दूसरों को तकलीफ़ न पहुँचाये, इसी तरह सच्चा और कामयाब मुहाजिर वही है जो सिर्फ़ वतन छोड़ देने से फ़ारिग़ न हो जाये बल्कि जितनी चीज़ें शरीअ़त ने हराम व नाजायज़ क़रार दी हैं उन सब को भी छोड़ देः

अपने दिल को भी बदल जामा-ए-एहराम के साथ

हिजरत के फ़ज़ाईल

क़ुरआने करीम में जिस तरह जिहाद के मुताल्लिक़ पूरे क़ुरआन में आयतें फैली हुई हैं उसी तरह हिजरत का ज़िक्र भी क़ुरआने करीम की अक्सर सूरतों में अनेक बार आया है। सब आयतों को जमा करने से मालूम होता है कि हिजरत की आयतों में तीन क़िस्म के मज़ामीन हैं- अव्वल हिजरत के फ़ज़ाईल, दूसरे इसकी दुनियावी और उख़्रवी बरकतें, तीसरे बावजूद ताक़त व गुंजाईश के दारुल-कुफ़्र से हिजरत न करने पर वईदें (अल्लाह की नाराज़गी और सज़ा का वायदा)।

पहले मज़मून यानी हिजरत के फ़ज़ाईल की एक आयत सूरः ब-क़रह में हैः

اِنَّ الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا وَالَّذِيْنَ هَاجَرُوْا وَجٰهَدُوْا فِىْ سَبِيْلِ اللّٰهِ اُولٰٓئِكَ يَرْجُوْنَ رَحْمَتَ اللّٰهِ وَاللّٰهُ غَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ ○

(سورة البقرة آيت:۲۱۸)

"यानी वे जो ईमान लाये और जिन्होंने अल्लाह की राह में हिजरत और जिहाद किया वे अल्लाह तआ़ला की रहमत के उम्मीदवार हैं और अल्लाह तआ़ला बड़ा ग़फ़ूर व रहीम है।"

दूसरी आयत सूरः तौबा में है:

اَلَّذِيْنَ اٰمَنُوْا وَهَاجَرُوْا وَجٰهَدُوْا فِىْ سَبِيْلِ اللّٰهِ بِاَمْوَالِهِمْ وَاَنْفُسِهِمْ اَعْظَمُ دَرَجَةً عِنْدَ اللّٰهِ وَاُولٰٓئِكَ هُمُ الْفَآئِزُوْنَ○

"यानी जो लोग ईमान लाये और जिन्होंने अल्लाह की राह में हिजरत और जिहाद इख़्तियार किया वे अल्लाह तआ़ला के पास बड़े दर्जे में हैं और यही लोग कामयाब और बा-मुराद हैं।"

और तीसरी आयत यही सूरः निसा की आयत है:

وَمَنْ يَّخْرُجْ مِنْۢ بَيْتِهٖ مُهَاجِرًا اِلَى اللّٰهِ وَرَسُوْلِهٖ ثُمَّ يُدْرِكْهُ الْمَوْتُ فَقَدْ وَقَعَ اَجْرُهٗ عَلَى اللّٰهِ.

"यानी जो शख़्स अल्लाह और रसूल के लिये अपने घर से हिजरत की नीयत से निकल खड़ा हुआ फिर उसको रास्ते ही में मौत आ गई तो उसका सवाब अल्लाह के ज़िम्मे हो गया।"

यह आयत बाज़ रिवायतों के मुताबिक़ हज़रत ख़ालिद बिन हिज़ाम रज़ियल्लाहु अ़न्हु के बारे में हब्शा की हिजरत के ज़माने में नाज़िल हुई। यह मक्का से हब्शा की तरफ़ हिजरत की नीयत पर निकले थे, रास्ते में इनको साँप ने काट लिया जिससे इनकी मौत हो गई। बहरहाल! इन तीनों आयतों में दारुल-कुफ़्र से हिजरत की तरग़ीब और उसके बड़े फ़ज़ाईल का बयान वाज़ेह तौर पर आ गया।

एक हदीस में नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का इरशाद है:

اَلْهِجْرَةُ تَهْدِمُ مَا كَانَ قَبْلَهَا

"यानी हिजरत उन सब गुनाहों को ख़त्म कर देती है जो हिजरत से पहले किये हों।"

हिजरत की बरकतें

बरकतों के मुताल्लिक़ सूरः नहल की एक आयत में इरशाद है:

وَالَّذِيْنَ هَاجَرُوْا فِى اللّٰهِ مِنْۢ بَعْدِ مَا ظُلِمُوْا لَنُبَوِّئَنَّهُمْ فِى الدُّنْيَا حَسَنَةً وَّلَاَجْرُ الْاٰخِرَةِ اَكْبَرُ لَوْ كَانُوْا يَعْلَمُوْنَ.

"यानी जिन लोगों ने अल्लाह के लिये हिजरत की, बाद इसके कि उन पर ज़ुल्म किया गया, हम उनको दुनिया में अच्छा ठिकाना देंगे, और आख़िरत का सवाब तो बहुत बड़ा है। काश! ये लोग समझ लेते।"

सूरः निसा की चार आयतें जो ऊपर लिखी गई हैं उनमें से चौथी आयत का भी तक़रीबन यही मज़मून है जिसमें इरशाद है:

وَمَنْ يُّهَاجِرْ فِىْ سَبِيْلِ اللّٰهِ يَجِدْ فِى الْاَرْضِ مُرٰغَمًا كَثِيْرًا وَّسَعَةً

"यानी जो शख़्स अल्लाह की राह में हिजरत करेगा वह पायेगा ज़मीन में जगह बहुत और कशाइश (गुंजाईश व आसानी रोज़ी वग़ैरह में)।"

आयत का लफ़्ज़ 'मुराग़म' मस्दर है जिसके मायने हैं एक ज़मीन से दूसरी ज़मीन की तरफ़ मुन्तक़िल होना और मुन्तक़िल होने की जगह को भी मुराग़म कह दिया जाता है।

इन दोनों आयतों में हिजरत की ज़ाहिरी व बातिनी बरकतों का बयान है जिसमें अल्लाह तआ़ला का यह वायदा है कि जो शख़्स अल्लाह और रसूल के लिये हिजरत करता है, अल्लाह तआ़ला उसके लिये दुनिया में राहें खोल देते हैं और उसको दुनिया में भी अच्छा ठिकाना देते हैं और आख़िरत के सवाब व दर्जे तो वहम व गुमान से भी ऊँचे हैं।

अच्छे ठिकाने की तफ़सीर इमाम मुजाहिद रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने हलाल रिज़्क़ से और हसन बसरी रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने उम्दा मकान से और कुछ दूसरे मुफ़स्सिरीन ने मुख़ालिफ़ों पर ग़लबे और इज़्ज़त व मान से की है, और हक़ीक़त यह है कि आयत के मफ़्हूम में ये सब चीज़ें दाख़िल हैं। चुनाँचे दुनिया का इतिहास गवाह है कि जब किसी ने अल्लाह के लिये वतन छोड़ा है तो अल्लाह तआ़ला ने उसको वतन के मकान से बेहतर मकान, वतन की इज़्ज़त व शर्फ़ से ज़्यादा इज़्ज़त, वतन के आराम से ज़्यादा आराम अ़ता किया है। हज़रत इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम ने अपने इराक़ी वतन को छोड़कर शाम की तरफ़ हिजरत फ़रमाई तो अल्लाह तआ़ला ने ये सब चीज़ें उनको नसीब फ़रमाईं। हज़रत मूसा अ़लैहिस्सलाम और उनके साथ बनी इस्राईल ने अल्लाह के लिये अपने वतन मिस्र को छोड़ा तो अल्लाह तआ़ला ने उनको उससे बेहतर वतन मुल्के शाम अ़ता फ़रमाया और फिर मिस्र भी उनको मिल गया। हमारे आक़ा हज़रत ख़ातिमुल-अम्बिया सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम और आपके सहाबा रज़ियल्लाहु अ़न्हुम ने अल्लाह व रसूल के लिये मक्का को छोड़ा तो मुहाजिरीन को मक्का से बेहतर ठिकाना मदीना में नसीब हुआ, हर तरह की इज़्ज़त व ग़लबा और राहत व दौलत अ़ता हुई। हिजरत के शुरूआ़ती दौर में चन्द दिन की तकलीफ़ व मशक़्क़त का एतिबार नहीं, उस वक़्ती दौर के बाद जो नेमतें हक़ तआ़ला की तरफ़ से उन हज़रात को अ़ता हुईं और उनकी कई नस्लों में जारी रहीं उसी का एतिबार होगा।

सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम के फ़क़्र व फ़ाक़े के जो वाक़िआ़त तारीख़ में मशहूर हैं, वे उमूमन हिजरत के शुरूआ़ती दौर के हैं या वे इख़्तियारी फ़क़्र के हैं, कि उन्होंने दुनिया और माल व दौलत को पसन्द ही नहीं किया और जो हासिल हुआ उसको अल्लाह की राह में ख़र्च कर दिया, जैसा कि ख़ुद नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहिव सल्लम का अपना हाल यही था कि आपका फ़क़्र व फ़ाक़ा (ग़ुर्बत की ज़िन्दगी इख़्तियार करना) महज़ इख़्तियारी था, आपने ग़िना व मालदारी को इख़्तियार नहीं फ़रमाया और इसके बावजूद हिजरत के छठे साल में फ़त्हे-ख़ैबर के बाद नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के सब अहल व अ़याल (घर वालों) के गुज़ारे का काफ़ी इन्तिज़ाम हो गया था। इसी तरह ख़ुलफ़ा-ए-राशिदीन रज़ियल्लाहु अ़न्हुम में सब का यही हाल था कि मदीना पहुँचने के बाद अल्लाह तआ़ला ने उनको सब कुछ दिया था, लेकिन इस्लामी ज़रूरत

पेश आने पर हज़रत सिद्दीके अकबर रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने अपने घर का पूरा माल लाकर पेश कर दिया, उम्मुल मोमिनीन हज़रत ज़ैनब रज़ियल्लाहु अ़न्हा को जो कुछ वज़ीफ़ा मिलता वह सब फ़क़ीरों व मिस्कीनों में तक़सीम करके ख़ुद फ़क़ीराना ज़िन्दगी गुज़ारती थीं। इसी वजह से उनका लक़ब उम्मुल-मसाकीन (ग़रीबों-मिस्कीनों की माँ) हो गया था, और इसके बावजूद अमीर सहाबा जिन्होंने बड़ी मिक़्दार में माल व जायदाद छोड़ी उनकी मिक़्दार भी सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम में कम नहीं। बहुत से हज़राते सहाबा ऐसे भी थे जो अपने वतन मक्का मुकर्रमा में ग़रीब व नादार थे, हिजरत के बाद अल्लाह तआ़ला ने उनको माल व दौलत और हर तरह की ख़ुशहाली व फ़राग़त अ़ता फ़रमाई।

हज़रत अबू हुरैरह रज़ियल्लाहु अ़न्हु जब एक राज्य के वाली (हाकिम) बना दिये गये तो बड़े लुत्फ़ से अपनी पिछली ज़िन्दगी का नक़्शा बयान करते थे और अपने नफ़्स को ख़िताब करके फ़रमाया करते थे कि अबू हुरैरह! तू वही है कि फ़ुलाँ क़बीले का नौकर था और तेरी तन्ख़्वाह सिर्फ़ पेट भराई रोटी थी, और तेरी ड्यूटी यह थी कि जब वे लोग सफ़र में जायें तो तू पैदल उनके साथ चले और जब वे किसी मन्ज़िल पर उतरें तो तू उनके लिये जलाने की लकड़ियाँ चुनकर लाये, आज इस्लाम की बदौलत तू कहाँ से कहाँ पहुँचा, तुझको इमाम और अमीरुल मोमिनीन कहा जाता है।

ख़ुलासा यह है कि अल्लाह तआ़ला ने जो वायदा मुहाजिरीन के लिये क़ुरआन में फ़रमाया है उसको दुनिया ने पूरा होते हुए अपनी आँखों से देखा है, अलबत्ता इसी आयत में शर्त यह है कि अल्लाह के लिये हिजरत करने वाले हों, दुनिया के माल व दौलत या हुकूमत व सल्तनत या इज़्ज़त व रुतबे की तलब में हिजरत न की हो, वरना सही बुख़ारी की हदीस में नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का इरशाद यह भी है कि जो शख़्स अल्लाह तआ़ला और उसके रसूल की नीयत से हिजरत करता है तो उनकी हिजरत अल्लाह और रसूल ही के लिये है, यानी यह सही हिजरत है जिसके फ़ज़ाईल व बरकतें क़ुरआन में मज़कूर हैं। और जिस शख़्स ने किसी माल की तलब या किसी औरत के निकाह के ख़्याल से हिजरत की हो तो उसकी हिजरत का मुआ़वज़ा वही चीज़ है जिसकी तरफ़ उसने हिजरत की।

आज जो कुछ मुहाजिरीन परेशान हाल हैं, या तो अभी वे उस वक़्ती और अंतरिम दौर में हैं जिसमें हिजरत की शुरूआत के वक़्त परेशानी पेश आया करती है या फिर वे सही मायने में मुहाजिर नहीं, उनको अपनी नीयत और हाल की इस्लाह की तरफ़ तवज्जोह करनी चाहिये। नीयत और अ़मल की इस्लाह (सुधारने और सही करने) के बाद वे अल्लाह तआ़ला के वायदे की सच्चाई अपनी आँखों से देखेंगे।

وَإِذَا ضَرَبْتُمْ فِي الْأَرْضِ فَلَيْسَ عَلَيْكُمْ جُنَاحٌ
أَنْ تَقْصُرُوا مِنَ الصَّلٰوةِ ۖ إِنْ خِفْتُمْ أَنْ يَفْتِنَكُمُ الَّذِينَ كَفَرُوا ۚ إِنَّ الْكٰفِرِينَ كَانُوا لَكُمْ عَدُوًّا
مُبِينًا ۝ وَإِذَا كُنْتَ فِيهِمْ فَأَقَمْتَ لَهُمُ الصَّلٰوةَ فَلْتَقُمْ طَائِفَةٌ مِنْهُمْ مَعَكَ وَلْيَأْخُذُوا أَسْلِحَتَهُمْ
فَإِذَا سَجَدُوا فَلْيَكُونُوا مِنْ وَرَائِكُمْ ۖ وَلْتَأْتِ طَائِفَةٌ أُخْرٰى لَمْ يُصَلُّوا فَلْيُصَلُّوا مَعَكَ
وَلْيَأْخُذُوا حِذْرَهُمْ وَأَسْلِحَتَهُمْ ۗ وَدَّ الَّذِينَ كَفَرُوا لَوْ تَغْفُلُونَ عَنْ أَسْلِحَتِكُمْ وَأَمْتِعَتِكُمْ
فَيَمِيلُونَ عَلَيْكُمْ مَيْلَةً وَاحِدَةً ۚ وَلَا جُنَاحَ عَلَيْكُمْ إِنْ كَانَ بِكُمْ أَذًى مِنْ مَطَرٍ أَوْ كُنْتُمْ
مَرْضٰى أَنْ تَضَعُوا أَسْلِحَتَكُمْ ۖ وَخُذُوا حِذْرَكُمْ ۗ إِنَّ اللّٰهَ أَعَدَّ لِلْكٰفِرِينَ عَذَابًا مُهِينًا ۝ فَإِذَا
قَضَيْتُمُ الصَّلٰوةَ فَاذْكُرُوا اللّٰهَ قِيٰمًا وَقُعُودًا وَعَلٰى جُنُوبِكُمْ ۚ فَإِذَا اطْمَأْنَنْتُمْ فَأَقِيمُوا الصَّلٰوةَ ۚ
إِنَّ الصَّلٰوةَ كَانَتْ عَلَى الْمُؤْمِنِينَ كِتٰبًا مَوْقُوتًا ۝ وَلَا تَهِنُوا فِي ابْتِغَاءِ الْقَوْمِ ۖ إِنْ تَكُونُوا تَأْلَمُونَ
فَإِنَّهُمْ يَأْلَمُونَ كَمَا تَأْلَمُونَ ۖ وَتَرْجُونَ مِنَ اللّٰهِ مَا لَا يَرْجُونَ ۗ وَكَانَ اللّٰهُ عَلِيمًا حَكِيمًا ۝

ع 15 12

व इज़ा ज़रब्तुम् फ़िल्अर्ज़ि फ़लै-स अलैकुम् जुनाहुन् अन् तक़्सुरू मिनस्सलाति इन् ख़िफ़्तुम् अंय्यफ़्ति-नकुमुल्लज़ी-न क-फ़रू, इन्नल्-काफ़िरी-न कानू लकुम् अदुव्वम्-मुबीना (101) व इज़ा कुन्-त फ़ीहिम् फ़-अक़म्-त लहुमुस्सला-त फ़ल्तक़ुम् ताइ-फ़तुम् मिन्हुम् म-अ-क वल्यअ्ख़ुज़ू अस्लि-ह-तहुम्, फ़-इज़ा स-जदू फ़ल्यकूनू मिंव्वरा-इकुम् वल्तअ्ति ताइ-फ़तुन् उख़्रा लम् युसल्लू फ़ल्युसल्लू म-अ-क वल्यअ्ख़ुज़ू

और जब तुम सफ़र करो मुल्क में तो तुम पर गुनाह नहीं कि कुछ कम करो नमाज़ में से अगर तुमको डर है कि सतायेंगे तुमको काफ़िर, अलबत्ता काफ़िर तुम्हारे खुले दुश्मन हैं। (101) और जब तू उनमें मौजूद हो फिर नमाज़ में खड़ा करे तो चाहिए कि एक जमाअ़त उनकी खड़ी हो तेरे साथ और साथ ले लेवें अपने हथियार, फिर जब ये सज्दा करें तो हट जायें तेरे पास से और आये दूसरी जमाअ़त जिसने नमाज़ नहीं पढ़ी, वे नमाज़ पढ़ें तेरे साथ और साथ लेवें अपना बचाव और हथियार, काफ़िर चाहते हैं कि किसी तरह तुम बेख़बर रहो अपने हथियारों से और असबाब से ताकि तुम पर हमला करें एक ही बार में, और तुम

हिज़्रहुम् व अस्लि-ह-तहुम् वद्दल्लज़ी-न क-फ़रू लौ तग़्फ़ुलू-न अन् अस्लि-हतिकुम् व अम्ति-अतिकुम् फ़-यमीलू-न अलैकुम् मै-लतंव्वाहि-दतन्, व ला जुना-ह अलैकुम् इन् का-न बिकुम् अज़म्-मिम्-म-तरिन् औ कुन्तुम् मरज़ा अन् त-जअू अस्लि-ह-तकुम् व ख़ुज़ू हिज़्रकुम्, इन्नल्ला-ह अ-अद्-द लिल्काफ़िरी-न अज़ाबम् मुहीना (102) फ़-इज़ा क़ज़ैतुमुस्सला-त फ़ज़्कुरुल्ला-ह कियामंव्-व क़ुअूदंव्-व अला जुनूबिकुम् फ़-इज़त्मअ्नन्तुम् फ़-अक़ीमुस्सला-त इन्नस्सला-त कानत् अलल् मुअ्मिनी-न किताबम् मौक़ूता (103) व ला तहिनू फ़िब्तिग़ा-इल्क़ौमि, इन् तकूनू तअ्लमू-न फ़-इन्नहुम् यअ्लमू-न कमा तअ्लमू-न व तर्जू-न मिनल्लाहि मा ला यर्जू-न, व कानल्लाहु अलीमन् हकीमा (104) ✿

पर कुछ गुनाह नहीं अगर तुमको तकलीफ़ हो मींह (बारिश) से या तुम बीमार हो कि उतार रखो अपने हथियार और साथ ले लो अपना बचाव, बेशक अल्लाह ने तैयार कर रखा है काफ़िरों के वास्ते अज़ाब ज़िल्लत का। (102) फिर जब तुम नमाज़ पढ़ चुको तो याद करो अल्लाह को खड़े और बैठे, और लेटे, फिर जब ख़ौफ़ जाता रहे तो दुरुस्त करो नमाज़ को, बेशक नमाज़ मुसलमानों पर फ़र्ज़ है अपने मुक़र्रर वक़्तों में। (103) और हिम्मत न हारो उनका पीछा करने से, अगर तुम बेआराम होते हो तो वे भी बेआराम होते हैं जिस तरह तुम होते हो, और तुमको अल्लाह से उम्मीद है जो उनको नहीं, और अल्लाह सब कुछ जानने वाला हिक्मत वाला है। (104) ✿

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

और जब तुम ज़मीन में सफ़र करो (जिसकी मिक़्दार तीन मन्ज़िल हो) सो तुमको इसमें कोई गुनाह न होगा (बल्कि ज़रूरी है) कि तुम (ज़ोहर और अ़सर और इशा के फ़र्ज़) नमाज़ (की रकअ़तों) को कम कर दो (यानी चार की जगह दो पढ़ा करो) अगर तुमको यह अन्देशा हो कि

तुमको काफ़िर लोग परेशान करेंगे (और इस अन्देशे की वजह से एक जगह ज़्यादा देर तक ठहरना ख़िलाफ़े मस्लेहत समझा जाये, क्योंकि) बिला शुब्हा काफ़िर लोग तुम्हारे खुले दुश्मन हैं। और जब आप उनमें तशरीफ़ रखते हों (और इसी तरह आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के बाद और जो इमाम हो) फिर आप उनको नमाज़ पढ़ाना चाहें (और अन्देशा हो कि अगर सब नमाज़ में लग जायेंगे तो कोई दुश्मन मौक़ा पाकर हमला कर बैठेगा) तो (ऐसी हालत में) यूँ चाहिए कि (जमाअ़त के दो गिरोह हो जायें फिर) उनमें से एक गिरोह तो आपके साथ (नमाज़ में) खड़े हो जाएँ (और दूसरा गिरोह निगहबानी के लिये दुश्मन के मुक़ाबले के लिये खड़ा रहे ताकि दुश्मन को देखता रहे) और वे लोग (जो आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के साथ नमाज़ में शामिल हैं वे भी मुख़्तसर-मुख़्तसर) हथियार ले लें (यानी नमाज़ से पहले लेकर साथ रखें शायद मुक़ाबले की ज़रूरत पड़ जाये तो हथियार लेने में देर न लगे फ़ौरन जंग करने लगें, अगरचे नमाज़ लड़ने और जंग करने से टूट जायेगी लेकिन गुनाह नहीं) फिर जब ये लोग (आपके साथ) सज्दा कर चुकें (यानी एक रक्अ़त पूरी कर लें) तो ये लोग (निगहबानी के लिये) तुम्हारे पीछे हो जाएँ (यानी रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के और दूसरे गिरोह के जो कि अब नमाज़ में शामिल होंगे जिनका बयान आगे आता है, यह पहला गिरोह उन सब के पीछे हो जाये) और दूसरा गिरोह जिन्होंने अभी नमाज़ नहीं पढ़ी (यानी शुरू भी नहीं की वह उस पहले गिरोह की जगह इमाम के क़रीब) आ जाए और आपके साथ नमाज़ (की एक रक्अ़त जो बाक़ी रही है उसको) पढ़ लें, और ये लोग भी अपने बचाव का सामान और अपने हथियार ले लें (और सामान और हथियार साथ लेने का इसलिये सब को हुक्म किया है कि) काफ़िर लोग यूँ चाहते हैं कि अगर तुम अपने हथियारों और सामानों से (ज़रा) ग़ाफ़िल हो जाओ तो तुम पर एक बार में हमला कर बैठें (सो ऐसी हालत में एहतियात ज़रूरी है)। और अगर तुमको बारिश (वग़ैरह) की वजह से (हथियार लेकर चलने में) तकलीफ़ हो या तुम बीमार हो (और इस वजह से हथियार बाँध नहीं सकते) तो तुमको इसमें (भी) कुछ गुनाह नहीं कि हथियार उतार रखो और (फिर भी) अपना बचाव (ज़रूर) ले लो (और यह ख़्याल न करो कि काफ़िरों की दुश्मनी का सिर्फ़ दुनिया ही में इलाज किया गया है बल्कि आख़िरत में इससे बढ़कर उनका इलाज होगा, क्योंकि) बिला शुब्हा अल्लाह ने काफ़िरों के लिए तौहीन भरी सज़ा तैयार कर रखी है।

फिर जब तुम उस (ख़ौफ़ की) नमाज़ को अदा कर चुको तो (बदस्तूर) अल्लाह तआ़ला की याद में लग जाओ खड़े भी और लेटे भी और बैठे भी (यानी हर हालत में, यहाँ तक कि ऐन लड़ाई के वक़्त भी अल्लाह का ज़िक्र जारी रखो, दिल से भी और शरीअ़त के अहकाम की इत्तिबा से भी, कि वह भी ज़िक्र में दाख़िल है। लड़ाई में ख़िलाफ़े शरीअ़त कोई कार्रवाई करने से परहेज़ करो। ग़र्ज़ कि नमाज़ तो ख़त्म हुई ज़िक्र ख़त्म नहीं होता, सफ़र या ख़ौफ़ की वजह से नमाज़ में तो कमी हो गई थी लेकिन ज़िक्र अपनी हालत पर ही है)। फिर जब तुम मुत्मईन हो जाओ (यानी सफ़र ख़त्म करके मुक़ीम हो जाओ, और इसी तरह ख़ौफ़ के ख़त्म होने के बाद बेख़ौफ़ हो जाओ) तो नमाज़ को (असली) क़ायदे के मुवाफ़िक़ पढ़ने लगो (यानी क़सर और नमाज़ में जगह बदलने वग़ैरह छोड़ दो, क्यों कि वह एक मजबूरी की वजह से जायज़ रखा गया

था) यक़ीनन नमाज़ मुसलमानों पर फ़र्ज़ है और वक़्त के साथ महदूद है (पस फ़र्ज़ होने की वजह से अदा करना ज़रूरी और वक़्त के साथ ख़ास होने की वजह से वक़्त ही में अदा करना ज़रूर हुआ। इसलिये कुछ-कुछ उसकी शक्ल व सूरत में तब्दीली कर दी गई वरना नमाज़ की सूरते मक़सूदा वही असली सूरत है। पस सबब के ख़त्म होने के बाद नमाज़ की असली सूरत की हिफ़ाज़त लाज़िम हो गई)।

हिम्मत मत हारो उस मुख़ालिफ़ क़ौम का पीछा करने में (जबकि इसकी ज़रूरत है)। अगर तुम (ज़ख़्मों से) तकलीफ़ में हो तो (क्या हुआ) वे भी तो तकलीफ़ के मारे हैं जैसे तुम तकलीफ़ पाये हुए हो (तो वे तुम से ज़्यादा ताक़त नहीं रखते, फिर काहे को डरते हो) और (तुम में एक ज़्यादती उनसे यह है कि) तुम अल्लाह तआला से ऐसी-ऐसी चीज़ों की उम्मीद रखते हो कि वे लोग (उनकी) उम्मीद नहीं रखते (यानी सवाब, तो दिल की ताक़त में तुम ज़्यादा हुए, और बदन की कमज़ोरी में एक जैसे, तो तुमको ज़्यादा चुस्त होना चाहिये), और अल्लाह तआला बड़े इल्म वाले हैं (उनको काफ़िरों का कमज़ोर दिल और कमज़ोर बदन मालूम है) बड़े हिक्मत वाले हैं (तुम्हारी बरदाश्त की क़ुव्वत से ज़्यादा किसी काम का हुक्म नहीं दिया)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

इन आयतों के मज़मून का पीछे से संबन्ध

ऊपर जिहाद और हिजरत का ज़िक्र था चूँकि ज़्यादातर जिहाद और हिजरत के लिये सफ़र करना पड़ता है, और ऐसे सफ़र में मुख़ालिफ़ की तरफ़ से अन्देशा भी अक्सर होता है इसलिये सफ़र और ख़ौफ़ की रियायत से जो नमाज़ में कुछ ख़ास सहूलतें और आसानियाँ की गई हैं आगे उनका ज़िक्र फ़रमाते हैं।

सफ़र और क़सर के अहकाम

मसलाः जो सफ़र तीन मन्ज़िल से कम हो उस सफ़र में नमाज़ पूरी पढ़ी जाये।

नोटः तीन मन्ज़िल का मतलब हनफ़ी मस्लक के मुताबिक़ 48 मील यानी आजकल के हिसाब से 77 किलो मीटर से कुछ ज़ायद है। **मुहम्मद इमरान क़ासमी बिज्ञानवी।**

मसलाः और जब सफ़र ख़त्म करके मन्ज़िल पर जा पहुँचे तो अगर वहाँ पन्द्रह दिन से कम ठहरने का इरादा हो तब तो वह सफ़र के हुक्म में है, चार रकअ़त वाली फ़र्ज़ नमाज़ आधी पढ़ी जायेगी और इसको **क़सर** कहते हैं। और अगर पन्द्रह दिन या ज़्यादा रहने का एक ही बस्ती में इरादा हो तो वह वतने इक़ामत हो जायेगा वहाँ भी वतने असली की तरह क़सर नहीं होगा, बल्कि नमाज़ पूरी पढ़ी जायेगी।

मसलाः क़सर सिर्फ़ तीन वक़्त के फ़राईज़ में है, और मग़रिब और फ़जर में और सुन्नतों व वित्र में नहीं है।

मसलाः सफ़र में ख़ौफ़ न हो तो भी क़सर नमाज़ पढ़ी जायेगी।

मसलाः कुछ लोगों को पूरी नमाज़ की जगह क़सर पढ़ने में दिल में गुनाह का ख़्याल पैदा होता है, यह सही नहीं है। इसलिये कि क़सर भी शरीअ़त का हुक्म है जिसकी तामील पर गुनाह नहीं होता बल्कि सवाब मिलता है।

मसलाः आयत में है:

وَإِذَا كُنتَ فِيهِمْ فَأَقَمْتَ لَهُمُ الصَّلٰوةَ،

(यानी जब आप उनमें तशरीफ़ रखते हों.........) इससे यह न समझा जाये कि अब नमाज़े ख़ौफ़ का हुक्म बाक़ी नहीं रहा क्योंकि आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की बरकतों वाली ज़ात अब हम में मौजूद नहीं, इसलिये कि यह शर्त उस वक़्त के एतिबार से बयान की गई है, क्योंकि नबी के होते हुए कोई दूसरा आदमी बिना किसी उज़्र व मजबूरी के इमाम नहीं बन सकता। आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के बाद अब जो इमाम हो वही आपके क़ायम-मक़ाम है और वही नमाज़े ख़ौफ़ पढ़ायेगा। तमाम इमामों के नज़दीक नमाज़े ख़ौफ़ का हुक्म आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के बाद भी जारी है, मन्सूख़ (निरस्त और ख़त्म) नहीं हुआ।

मसलाः जैसे आदमी से ख़ौफ़ के वक़्त नमाज़े ख़ौफ़ पढ़ना जायज़ है ऐसे ही अगर किसी शेर या अज़्दहे वग़ैरह का ख़ौफ़ हो और नमाज़ का वक़्त तंग हो उस वक़्त भी जायज़ है।

मसलाः आयत में दोनों गिरोह के एक-एक रक्अ़त पढ़ने का तो ज़िक्र फ़रमाया दूसरी रक्अ़त का तरीक़ा हदीस में आया है कि नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने जब दो रक्अ़त पर सलाम फेर दिया तो दोनों गिरोहों ने अपनी एक-एक रक्अ़त अपने आप पढ़ ली। इसकी अधिक तफ़सील हदीसों में है।

إِنَّا أَنزَلْنَا إِلَيْكَ الْكِتٰبَ بِالْحَقِّ لِتَحْكُمَ بَيْنَ النَّاسِ بِمَا أَرٰىكَ اللّٰهُ، وَلَا تَكُن لِّلْخَائِنِينَ خَصِيمًا ۝
وَاسْتَغْفِرِ اللّٰهَ، إِنَّ اللّٰهَ كَانَ غَفُورًا رَّحِيمًا ۝ وَلَا تُجَادِلْ عَنِ الَّذِينَ يَخْتَانُونَ أَنفُسَهُمْ، إِنَّ
اللّٰهَ لَا يُحِبُّ مَن كَانَ خَوَّانًا أَثِيمًا ۝ يَسْتَخْفُونَ مِنَ النَّاسِ وَلَا يَسْتَخْفُونَ مِنَ اللّٰهِ وَهُوَ مَعَهُمْ
إِذْ يُبَيِّتُونَ مَا لَا يَرْضٰى مِنَ الْقَوْلِ، وَكَانَ اللّٰهُ بِمَا يَعْمَلُونَ مُحِيطًا ۝ هٰأَنتُمْ هٰؤُلَاءِ جٰدَلْتُمْ
عَنْهُمْ فِي الْحَيٰوةِ الدُّنْيَا فَمَن يُجَادِلُ اللّٰهَ عَنْهُمْ يَوْمَ الْقِيٰمَةِ أَم مَّن يَكُونُ عَلَيْهِمْ وَكِيلًا ۝
وَمَن يَعْمَلْ سُوءًا أَوْ يَظْلِمْ نَفْسَهُ ثُمَّ يَسْتَغْفِرِ اللّٰهَ يَجِدِ اللّٰهَ غَفُورًا رَّحِيمًا ۝ وَمَن يَكْسِبْ
إِثْمًا فَإِنَّمَا يَكْسِبُهُ عَلٰى نَفْسِهِ، وَكَانَ اللّٰهُ عَلِيمًا حَكِيمًا ۝ وَمَن يَكْسِبْ خَطِيْئَةً أَوْ إِثْمًا ثُمَّ
يَرْمِ بِهِ بَرِيْئًا فَقَدِ احْتَمَلَ بُهْتَانًا وَإِثْمًا مُّبِينًا ۝ وَلَوْلَا فَضْلُ اللّٰهِ عَلَيْكَ وَرَحْمَتُهُ لَهَمَّتْ
طَّائِفَةٌ مِّنْهُمْ أَن يُضِلُّوكَ، وَمَا يُضِلُّونَ إِلَّا أَنفُسَهُمْ وَمَا يَضُرُّونَكَ مِن شَيْءٍ، وَأَنزَلَ اللّٰهُ
عَلَيْكَ الْكِتٰبَ وَالْحِكْمَةَ وَعَلَّمَكَ مَا لَمْ تَكُن تَعْلَمُ، وَكَانَ فَضْلُ اللّٰهِ عَلَيْكَ عَظِيمًا ۝

इन्ना अन्ज़ल्ना इलैकल्-किता-ब बिल्-हक़्क़ि लि-तस्कु-म बैनन्नासि बिमा अराकल्लाहु, व ला तकुल् लिल्-ख़ाइनी-न ख़सीमा (105) वस्तग़्फ़िरिल्ला-ह, इन्नल्ला-ह का-न ग़फ़ूर्रहीमा (106) व ला तुजादिल् अ़निल्लज़ी-न यख़्तानू-न अन्फ़ु-सहुम, इन्नल्ला-ह ला युहिब्बु मन् का-न ख़व्वानन् असीमा (107) यस्तख़्फ़ू-न मिनन्नासि व ला यस्तख़्फ़ू-न मिनल्लाहि व हु-व म-अ़हुम् इज़् युबय्यितू-न मा ला यर्ज़ा मिनल्क़ौलि, व कानल्लाहु बिमा यअ़्मलू-न मुहीता (108) हा-अन्तुम् हा-उला-इ जादल्तुम् अ़न्हुम् फ़िल्हयातिद्दुन्या, फ़-मंय्युजादिलुल्ला-ह अ़न्हुम् यौमिल्-क़ियामति अम्-मंय्यकूनु अ़लैहिम् वकीला (109) व मंय्यअ़्मल् सूअन् औ यज़्लिम् नफ़्सहू सुम्-म यस्तग़्फ़िरिल्ला-ह यजिदिल्ला-ह ग़फ़ूर्रहीमा (110) व मंय्यक्सिब् इस्मन् फ़-इन्नमा यक्सिबुहू अ़ला नफ़्सिही, व कानल्लाहु अ़लीमन् हकीमा (111) व	बेशक हमने उतारी तेरी तरफ़ किताब सच्ची कि तू इन्साफ़ करे लोगों में जो कुछ समझा दे तुझको अल्लाह, और तू मत हो दग़ाबाज़ों की तरफ़ से झगड़ने वाला। (105) और बख़्शिश माँग अल्लाह से बेशक अल्लाह बख़्शने वाला मेहरबान है। (106) और मत झगड़ उनकी तरफ़ से जो अपने जी में दग़ा रखते हैं, अल्लाह को पसन्द नहीं जो कोई हो दग़ाबाज़ गुनाहगार। (107) शर्माते हैं लोगों से और नहीं शरमाते अल्लाह से और वह उनके साथ है जबकि मश्विरा करते हैं रात को उस बात का जिससे अल्लाह राज़ी नहीं, और जो कुछ वे करते हैं सब अल्लाह के क़ाबू में है। (108) सुनते हो तुम लोग झगड़ा करते हो उनकी तरफ़ से दुनिया की ज़िन्दगी में, फिर कौन झगड़ा करेगा उनके बदले अल्लाह से क़ियामत के दिन, या कौन होगा उनका कारसाज़। (109) और जो कोई करे गुनाह या अपना बुरा करे फिर अल्लाह से बख़्शवाये तो पाये अल्लाह को बख़्शने वाला मेहरबान। (110) और जो कोई करे गुनाह सो करता है अपने ही हक़ में और अल्लाह सब कुछ जानने वाला हिक्मत वाला है। (111) और जो कोई करे ख़ता या गुनाह फिर तोहमत

मंय्यक्सिब् ख़ती-अतन् औ इस्मन् सुम-म् यर्मि बिही बरीअन् फ़-क़दिहत-म-ल बुह्तानंव्-व इस्मम्-मुबीना (112) ❁

लगा दे किसी बेगुनाह पर उसने अपने सर धरा तूफ़ान और खुला गुनाह। (112) ❁

व लौ ला फ़ज़्लुल्लाहि अ़लै-क व रह्मतुहू ल-हम्मत्ता-इ-फ़तुम् मिन्हुम् अंय्युज़िल्लू-क, व मा युज़िल्लू-न इल्ला अन्फ़ु-सहुम् व मा यज़ुर्रून-क मिन् शैइन्, व अन्ज़लल्लाहु अ़लैकल्-किता-ब वल्हिक्म-त व अ़ल्ल-म-क मा लम् तकुन् तअ्लमु, व का-न फ़ज़्लुल्लाहि अ़लै-क अ़ज़ीमा (113) ▲

और अगर न होता तुझ पर अल्लाह का फ़ज़्ल और उसकी रहमत तो इरादा कर ही चुकी थी उनमें एक जमाअ़त कि तुझको बहका दें, और बहका नहीं सकते मगर अपने आपको और तेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकते, और अल्लाह ने उतारी तुझ पर किताब और हिक्मत और तुझको सिखायीं वे बातें जो तू न जानता था, और अल्लाह का फ़ज़्ल तुझ पर बहुत बड़ा है। (113) ▲

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

बेशक हमने आपके पास यह नविश्ता "यानी तहरीर और किताब" भेजा है (जिससे) हक़ीक़त के मुवाफ़िक़ (हाल मालूम होगा) ताकि आप (इस वाक़िए में) इन लोगों के दरमियान उसके मुवाफ़िक़ फ़ैसला करें जो कि अल्लाह तआ़ला ने (वही के ज़रिये) आपको (असल हाल) बतला दिया है (वह वही यह है कि वास्तव में बशीर चोर है और क़बीला बनू उबैरिक़ जो उसके हामी हैं झूठे हैं) और (जब असल हाल मालूम हो गया तो) आप इन ख़ियानत करने वालों की तरफ़दारी की बात न कीजिए (जैसा कि बनू उबैरिक़ की असल इच्छा यही थी चुनाँचे दूसरे रुकूअ़ में आता है:

لَهَمَّتْ طَّآئِفَةٌ مِّنْهُمْ اَنْ يُّضِلُّوْكَ

मगर आपने ऐसा नहीं किया था, ख़ुद इस जुमले से आपका इस पर अ़मल न करना भी मालूम होता है, क्योंकि इसका हासिल यह है कि अल्लाह के फ़ज़्ल ने ग़लती से बचा लिया जिसमें हर ग़लती की नफ़ी हो गई, और मना फ़रमाने से यह लाज़िम नहीं आता कि वह काम भूतकाल में हो चुका हो, बल्कि असल फ़ायदा मना का यह है कि आईन्दा के लिये हक़ीक़ते हाल से आगाह करके उसके करने से रोकते हैं। पस आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की हालत और और मना करने के मजमूए का हासिल यह होगा कि जैसे अब तक तरफ़दारी नहीं की आईन्दा भी न कीजिये, और ये इन्तिज़ामात भी मुकम्मल नबी को मासूम रखने के लिये हैं, और आयत

में सब को ख़ाईन (चोर) कहा हालाँकि ख़ाईन सब न थे इसलिये कि जो लोग ख़ाईन न थे वे भी ख़ाईन की मदद कर रहे थे इसलिये वह ख़ाईन ठहरे)। और (लोगों के कहने से अच्छा गुमान रखने के तौर पर आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने जो बनू उबैरिक़ को दीनदार समझ लिया है अगरचे ऐसा समझना गुनाह तो नहीं लेकिन चूँकि इसमें यह शुब्हा था कि आपके इतना फ़रमा देने से अहले हक़ अपना हक़ छोड़ देंगे, चुनाँचे ऐसा ही हुआ कि हज़रत रिफ़ाआ़ ख़ामोश होकर बैठ रहे, लिहाज़ा यह काम नामुनासिब हुआ इसलिये इससे) आप इस्तिग़फ़ार फ़रमाईये (कि आपकी बुलन्द शान है इतनी बात भी आपके लिये क़ाबिले इस्तिग़फ़ार है) बिला शुब्हा अल्लाह तआ़ला बड़े मग़फ़िरत करने वाले, बड़े रहमत वाले हैं।

और आप उन लोगों की तरफ़ से कोई जवाबदेही की बात न कीजिए (जैसा कि वे लोग आप से चाहते थे) जो कि (लोगों की ख़ियानत और नुक़सान करके वबाल व नुक़सान के एतिबार से दर हक़ीक़त) अपना ही नुक़सान कर रहे हैं, बिला शुब्हा अल्लाह तआ़ला ऐसे शख़्स को नहीं चाहते (बल्कि उसको नापसन्द रखते हैं) जो बड़ा ख़ियानत करने वाला, बड़ा गुनाह करने वाला हो (जैसा कि थोड़े ख़ियानत करने वाले को भी महबूब नहीं रखते, लेकिन चूँकि बशीर का बड़ा ख़ाईन होना बतलाना मक़सूद है इसलिये यह मुबालग़े का लफ़्ज़ लाया गया)। जिन लोगों की यह कैफ़ियत है कि (अपनी ख़ियानत को) आदमियों से तो (शर्माकर) छुपाते हैं और अल्लाह तआ़ला से नहीं शर्माते, हालाँकि वह (हर वक़्त की तरह) उस वक़्त (भी) उनके पास होता है जबकि वे अल्लाह की मर्ज़ी के ख़िलाफ़ गुफ़्तगू के मुताल्लिक़ तदबीरें किया करते हैं, और अल्लाह तआ़ला उनके सब आमाल को अपने (इल्म के) घेरे में लिए हुए हैं (जो बशीर वग़ैरह की हिमायत में कुछ मौहल्ले वाले जमा होकर आये थे वे सुन लें कि) हाँ! तुम ऐसे हो कि तुमने दुनियावी ज़िन्दगी में तो उनकी तरफ़ से जवाबदेही की बातें कर लीं, सो (यह बतलाओ कि) अल्लाह तआ़ला के सामने क़ियामत के दिन उनकी तरफ़ से कौन जवाबदेही करेगा।

या वह कौन शख़्स होगा जो उनका काम बनाने वाला होगा (यानी न कोई ज़बानी जवाबदेही कर सकेगा न कोई अ़मली दुरुस्ती मुक़द्दमे की कर सकेगा)। और (ये ख़ाईन अगर अब भी शरीअ़त के क़ायदे के अनुसार तौबा कर लेते तो माफ़ी हो जाती क्योंकि हमारा क़ानून तो यह है कि) जो शख़्स कोई (दूसरों तक पहुँचने वाली) बुराई करे या (सिर्फ़) अपनी जान को नुक़सान पहुँचाए (यानी ऐसा गुनाह न करे जिसका असर दूसरों तक पहुँचता हो और) फिर अल्लाह तआ़ला से (शरीअ़त के क़ायदे के अनुसार) माफ़ी चाहे (जिसमें बन्दों के हुक़ूक़ को अदा करना या उनसे माफ़ कराना भी दाख़िल है) तो वह अल्लाह तआ़ला को बड़ी मग़फ़िरत वाला और बड़ी रहमत वाला पायेगा। और (ज़रूर गुनाहगारों को इसकी कोशिश करनी चाहिये क्योंकि) जो शख़्स कुछ गुनाह का काम करता है तो वह केवल अपनी ज़ात पर उसका असर पहुँचाता है और अल्लाह तआ़ला बड़े इल्म वाले हैं (सब के गुनाहों की उनको ख़बर है) बड़े हिक्मत वाले हैं (मुनासिब सज़ा तजवीज़ फ़रमाते हैं)।

और (यह तो ख़ुद गुनाह का अन्जाम हुआ और जो कि दूसरों पर तोहमत लगा दे उसका

हाल सुनो कि) जो शख़्स कोई छोटा गुनाह करे या बड़ा गुनाह, फिर (बजाय इसके कि ख़ुद ही तौबा कर लेनी चाहिये थी उसने यह काम किया कि) उस (गुनाह) की तोहमत किसी बेगुनाह पर लगा दे तो उसने बड़ा भारी बोहतान और खुला गुनाह अपने (सर के) ऊपर लाद लिया (जैसा कि बशीर ने किया कि ख़ुद तो चोरी की और एक नेकनीयत बुज़ुर्ग आदमी लबीद के ज़िम्मे चोरी की तोहमत रख दी)।

और अगर (इस मुक़द्दमे में) आप पर (ऐ मुहम्मद सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम!) अल्लाह का फ़ज़्ल व रहमत न हो (जो कि हमेशा आप पर रहता है) तो उन (चालाक) लोगों में से एक गिरोह ने तो आपको ग़लती में डाल देने का इरादा कर लिया था (लेकिन ख़ुदा के फ़ज़्ल से उनकी लच्छेदार बातों का आप पर कोई असर नहीं हुआ और आईन्दा भी न होगा, चुनाँचे फ़रमाते हैं) और वे (कभी आपको) ग़लती में नहीं डाल सकते लेकिन (इस इरादे से) अपनी जानों को (गुनाह में मुब्तला और अ़ज़ाब का हक़दार बना रहे हैं) और आपको ज़र्रा बराबर (इस क़िस्म का) नुक़सान नहीं पहुँचा सकते, और (आपको ग़लती से नुक़सान पहुँचाना कब मुम्किन है जबकि) अल्लाह तआ़ला ने आप पर किताब और इल्म की बातें नाज़िल फ़रमाई (जिसके एक हिस्से में इस क़िस्से की इत्तिला भी दे दी) और आपको वे-वे (मुफ़ीद और आला) बातें बतलाई हैं जो आप (पहले से) न जानते थे, और आप पर अल्लाह का बड़ा फ़ज़्ल है।

मआ़रिफ़ व मसाईल

इन आयतों का पीछे के मज़मून से संबन्ध

ऊपर ज़ाहिरी काफ़िरों के मामलात के तहत में चन्द जगह मुनाफ़िक़ों का ज़िक्र आया है कि कुफ़्र दोनों में बराबर है। आगे भी कुछ मुनाफ़िक़ों के एक ख़ास क़िस्से के मुताल्लिक़ मज़मून बयान होता है। (तफ़सीर बयानुल-क़ुरआन)

आयतों का शाने नुज़ूल

उक्त सात आयतें एक ख़ास वाक़िए से संबन्धित हैं, लेकिन आ़म क़ुरआनी अन्दाज़ के मुताबिक़ जो हिदायतें इस सिलसिले में दी गईं वो मख़्सूस इस वाक़िए के साथ नहीं बल्कि तमाम मौजूदा और आगे आने वाले मुसलमानों के लिये आ़म और बहुत उसूली और फ़ुरूई (निकलने वाले) मसाईल पर मुश्तमिल हैं।

पहले वाक़िआ़ मालूम कीजिये, फिर उससे सम्बन्धित हिदायतें और उनसे निकलने वाले मसाईल पर ग़ौर कीजिये। वाक़िआ़ यह हुआ कि मदीना में एक ख़ानदान बनू उबैरिक़ के नाम से परिचित था। उनमें से एक शख़्स जिसका नाम तिर्मिज़ी और हाकिम की रिवायतों में बशीर ज़िक्र किया गया है और इमाम बग़वी और इब्ने जरीर रहमतुल्लाहि अ़लैहिमा की रिवायत में तोअ़मा नाम बतलाया गया है, उसने हज़रत क़तादा बिन नोमान रज़ियल्लाहु अ़न्हु के चचा रिफ़ाआ़ रज़ियल्लाहु अ़न्हु के घर में सेंध लगाकर चोरी कर ली।

तिर्मिज़ी की रिवायत में यह भी है कि यह शख़्स दर हक़ीक़त मुनाफ़िक़ था, मदीने में रहते हुए भी सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम की तौहीन में अश्आ़र लिखकर दूसरों के नामों से उनको फैलाया करता था।

और चोरी की सूरत यह हुई कि हिजरत के शुरू ज़माने में आ़म मुसलमान गुर्बत व तंगदस्ती के साथ तंगी से गुज़ारा किया करते थे और उनकी आ़म खुराक जौ का आटा था या खजूरें या गेहूँ का आटा, जो बहुत कम मयस्सर था। और मदीना में मिलता भी न था, मुल्के शाम से जब आता तो कुछ लोग मेहमानों के लिये या किसी ख़ास ज़रूरत के लिये ख़रीद लिया करते थे। हज़रत रिफ़ाआ़ रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने इसी तरह कुछ गेहूँ का आटा ख़रीदकर एक बोरी में अपने लिये रख लिया, उसी में कुछ हथियार वग़ैरह भी रखकर एक छोटी कोठरी में महफ़ूज़ कर दिया। इब्ने उबैरिक़, बशीर या तोअ़मा ने उसको भाँप लिया तो नक़ब (सेंध) लगाकर यह बोरी निकाल ली। हज़रत रिफ़ाआ़ रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने जब सुबह को यह माजरा देखा तो अपने भतीजे हज़रत क़तादा के पास आये और चोरी का वाक़िआ़ ज़िक्र किया। सब ने मिलकर मौहल्ले में तफ़्तीश शुरू की, कुछ लोगों ने बताया कि आज रात हमने देखा कि बनू उबैरिक़ के घर में आग रोशन थी, हमारा ख़्याल है कि वही खाना पकाया गया है। बनू उबैरिक़ को जब राज़ खुलने की ख़बर मिली तो ख़ुद आये और कहा कि यह काम लबीद बिन सहल का है। हज़रत लबीद रज़ियल्लाहु अ़न्हु को सब जानते थे कि सच्चे मुसलमान और नेक बुज़ुर्ग हैं, उनको जब यह ख़बर हुई तो वह तलवार खींचकर आये और कहा कि चोरी मेरे सर लगाते हो अब मैं तलवार उस वक़्त तक म्यान में न रखूँगा जब तक चोरी की हक़ीक़त न खुल जाये।

बनू उबैरिक़ ने आहिस्ता से कहा कि आप बेफ़िक्र रहें आपका नाम कोई नहीं लेता, न आपका यह काम हो सकता है। अ़ल्लामा बग़वी और इब्ने जरीर रहमतुल्लाहि अ़लैहिमा की रिवायत में इस जगह यह है कि बनू उबैरिक़ ने चोरी एक यहूदी के नाम लगाई और होशियारी यह की कि आटे की बोरी को थोड़ा सा फाड़ दिया था, जिससे आटा गिरता रहा और रिफ़ाआ़ के मकान से उक्त यहूदी के मकान तक उस आटे के निशानात पाये गये। शोहरत होने के बाद चोरी किया हुआ हथियार और ज़िरहें भी उसी यहूदी के पास रखवा दीं, और तहक़ीक़ के वक़्त उसी के घर से बरामद हुईं। यहूदी ने क़सम खाई कि ज़िरहें मुझे इब्ने उबैरिक़ ने दी हैं।

तिर्मिज़ी की रिवायत और अ़ल्लामा बग़वी की रिवायत में मुवाफ़क़त इस तरह हो सकती है कि बनू उबैरिक़ ने पहले चोरी को लबीद बिन सहल के नाम लगाया हो, फिर जब बात बनती नज़र न आई तो उस यहूदी के सर डाला हो। बहरहाल मामला यहूदी और बनू उबैरिक़ का बन गया।

उधर हज़रत क़तादा और हज़रत रिफ़ाआ़ रज़ियल्लाहु अ़न्हुमा को मुख़्तलिफ़ सूरतों से यह गुमान ग़ालिब हो गया था कि यह कार्रवाई बनू उबैरिक़ ने की है। हज़रत क़तादा रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की ख़िदमत में हाज़िर होकर चोरी का वाक़िआ़ और अपनी तफ़्तीश के मुताबिक़ बनू उबैरिक़ पर गुमान ग़ालिब का ज़िक्र कर दिया। बनू

उबैरिक़ को ख़बर मिली तो नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की ख़िदमत में हाज़िर होकर हज़रत रिफ़ाआ़ और हज़रत क़तादा रज़ियल्लाहु अ़न्हुमा की शिकायत की, कि बिना शरई सुबूत के चोरी हमारे नाम लगा रहे हैं, हालाँकि चोरी का माल यहूदी के घर से बरामद हुआ है, आप उनको रोकिये कि हमारे नाम न लगायें, उस यहूदी पर दावा करें।

ज़ाहिरी हालात व आसार से नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का भी इसी तरफ़ रुझान हो गया कि यह काम यहूदी का है, बनू उबैरिक़ पर इल्ज़ाम सही नहीं। यहाँ तक कि अ़ल्लामा बग़वी रहमतुल्लाहि अ़लैहि की रिवायत में है कि नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का इरादा हो गया कि यहूदी पर चोरी की सज़ा जारी कर दी जाये और उसका हाथ काटा जाये।

इधर जब हज़रत क़तादा रज़ियल्लाहु अ़न्हु नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की ख़िदमत में हाज़िर हुए तो आपने फ़रमाया कि आप बग़ैर दलील और सुबूत के एक मुसलमान घराने पर चोरी का इल्ज़ाम लगा रहे हैं। हज़रत क़तादा रज़ियल्लाहु अ़न्हु इस मामले से बहुत रंजीदा हुए और अफ़सोस किया कि काश! मैं इस मामले में नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के सामने कोई बात न करता अगरचे मेरा माल भी जाता रहता। इसी तरह हज़रत रिफ़ाआ़ रज़ियल्लाहु अ़न्हु को जब यह मालूम हुआ कि नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने ऐसा इरशाद फ़रमाया है तो उन्होंने भी सब्र किया और कहा 'वल्लाहुल्-मुस्तआ़न' (यानी अल्लाह ही मददगार है)। इस मामले पर कुछ वक़्त न गुज़रा था कि क़ुरआने करीम का एक पूरा रुकूअ़ इस बारे में नाज़िल हो गया जिसके ज़रिये रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम पर वाक़िए की हक़ीक़त खोल दी गई और ऐसे मामलात के मुताल्लिक़ आ़म हिदायतें दी गईं।

क़ुरआने करीम ने बनू उबैरिक़ की चोरी खोल दी और यहूदी को बरी कर दिया तो बनू उबैरिक़ मजबूर हुए और चोरी हुआ माल नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की ख़िदमत में पेश कर दिया। आपने हज़रत रिफ़ाआ़ को वापस दिलाया, और उन्होंने अब सब हथियारों को जिहाद के लिये वक़्फ़ कर दिया। उधर जब बनू उबैरिक़ की चोरी खुल गई तो बशीर बिन उबैरिक़ मदीना से भागकर मक्का चला गया और मुश्रिकों के साथ मिल गया, अगर वह पहले से मुनाफ़िक़ था तो अब खुला काफ़िर हो गया और अगर पहले मुसलमान था तो अब मुर्तद (बेदीन) हो गया।

तफ़सीर बहरे मुहीत में है कि अल्लाह और रसूल की मुख़ालफ़त के वबाल ने बशीर बिन उबैरिक़ को मक्का में भी चैन से न रहने दिया। जिस औरत के मकान पर जाकर ठहरा था उसको वाक़िए की ख़बर हुई तो उसने निकाल बाहर किया, इसी तरह फिरते फिरते आख़िर उसने एक और शख़्स के मकान में नक़ब (सेंध) लगाई तो दीवार उसके ऊपर गिर गई और वहीं दब कर मर गया।

यहाँ तक तो वाक़िए की पूरी तफ़सील थी अब उसके मुताल्लिक़ क़ुरआनी इरशादात पर ग़ौर कीजियेः

पहली आयत में नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को चोरी के वाकिए की असल हक़ीक़त बतलाकर इरशाद फ़रमाया कि हमने आप पर क़ुरआन और वही इसी लिये नाज़िल की है कि अल्लाह तआ़ला ने जो इल्म व मारिफ़त आपको अ़ता फ़रमाया है उसके मुताबिक़ फ़ैसला करें, और ख़ाईनों (चोरी और बददियानती करने वालों) की यानी बनू उबैरिक़ की तरफ़दारी न करें, और अगरचे ज़ाहिरी हालात और इशारों व अन्दाज़ों की बिना पर चोरी के मामले में यहूदी की तरफ़ आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का रुझान कोई गुनाह न था मगर था तो वाकिए के ख़िलाफ़, इसलिये दूसरी आयत में आपको इस्तिग़फ़ार का हुक्म दिया गया कि अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम का मक़ाम बहुत बुलन्द है उनसे इतनी बात भी पसन्द नहीं।

तीसरी आयत (यानी आयत नम्बर 107) में फिर इसकी ताकीद फ़रमाई कि ख़ियानत करने वालों की तरफ़ से आप कोई जवाबदेही न करें क्योंकि वह अल्लाह को पसन्द नहीं।

चौथी आयत (यानी आयत नम्बर 108) में उन ख़ियानत करने वालों के बुरे हाल और बेवक़ूफ़ी का बयान है कि ये लोग अपने ही जैसे आदमियों से तो शर्माते और चोरी को छुपाते हैं और अल्लाह तआ़ला से नहीं शर्माते जो हर वक़्त उनके साथ है, और उनके हर काम को देख रहा है। ख़ास कर इस वाकिए को जब उन्होंने आपस में मश्विरा करके यह राय क़ायम की कि इल्ज़ाम यहूदी पर लगाओ और रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से हज़रत रिफ़ाआ़ और हज़रत क़तादा की शिकायत करो कि बिना वजह हम पर इल्ज़ाम लगा रहे हैं और आप से इसकी दरख़्वास्त करो कि आप यहूदी के मुक़ाबले में हमारी हिमायत फ़रमायें।

पाँचवीं आयत (यानी आयत नम्बर 109) में बनू उबैरिक़ की मदद करने वाले हिमायतियों को तंबीह फ़रमाई गई कि दुनिया में तो तुमने उनकी हिमायत कर ली मगर मामला यहीं तो ख़त्म नहीं हो जाता, क़ियामत में जब हक़ सुब्हानहू व तआ़ला की अ़दालत में मामला पेश होगा वहाँ कौन हिमायत करेगा। इस आयत में उनको मलामत भी है और आख़िरत का ख़ौफ़ दिलाकर अपने फ़ेल से तौबा और रुजू करने की तरग़ीब भी।

छठी आयत (यानी आयत नम्बर 110) में क़ुरआने करीम के आ़म हकीमाना अन्दाज़ के मुताबिक़ मुजरिमों और गुनाहगारों को नाउम्मीदी से बचाने के लिये फ़रमाया गया कि छोटा गुनाह हो या बड़ा, जब गुनाहगार अल्लाह तआ़ला से तौबा व इस्तिग़फ़ार करता है तो अल्लाह तआ़ला को ग़फ़ूर व रहीम पाता है। इसमें उन लोगों को जिनसे यह गुनाह हुआ था इसकी तरग़ीब है कि अब भी बाज़ आ जायें और दिल से तौबा कर लें तो कुछ नहीं बिगड़ा, अल्लाह तआ़ला सब माफ़ फ़रमा देंगे।

सातवीं आयत (यानी आयत नम्बर 111) में यह हिदायत फ़रमाई गई कि अगर ये लोग अब भी तौबा करने वाले न हों तो अल्लाह तआ़ला या उसके रसूल या मुसलमानों का कुछ नहीं बिगड़ता, इसका वबाल ख़ुद उसी शख़्स पर है।

आठवीं आयत (यानी नम्बर 112) में एक आ़म क़ानून की शक्ल बयान फ़रमाई कि जो शख़्स ख़ुद कोई जुर्म करे और फिर यह जुर्म किसी बेक़सूर इनसान के ज़िम्मे लगाये (जैसा कि

इस वाकिए में बनू उबैरिक़ ने चोरी ख़ुद की और इल्ज़ाम हज़रत लबीद रज़ियल्लाहु अ़न्हु या यहूद पर लगा दिया) तो उसने बहुत बड़ा बोहतान और खुला गुनाह अपने ऊपर लाद लिया।

नवीं आयत (यानी आयत नम्बर 113) में जो नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को ख़िताब करके फ़रमाया गया कि अगर अल्लाह तआ़ला का फ़ज़्ल व रहमत आपके साथ न होती जिसने वही के ज़रिये आपको वाक़िए की हक़ीक़त बतला दी तो ये लोग आपको ग़लती में मुब्तला कर देते, मगर चूँकि अल्लाह तआ़ला का फ़ज़्ल व रहमत आपके साथ है, इसलिये वे हरगिज़ आपको ग़लती में नहीं डाल सकते, बल्कि ख़ुद ही गुमराही में मुब्तला होते हैं। और आपको ये ज़र्रा बराबर नुक़सान नहीं पहुँचा सकते, क्योंकि अल्लाह तआ़ला ने आप पर किताब और इल्म व समझ की बातें नाज़िल फ़रमाई हैं जिनको आप नहीं जानते थे।

नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को इज्तिहाद करने का हक़ हासिल था

اِنَّآ اَنْزَلْنَآ اِلَيْكَ الْكِتٰبَ بِالْحَقِّ........ الخ

इस आयत से पाँच मसाईल साबित हुए- एक तो यह कि नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को ऐसे मसाईल में जिनमें क़ुरआने करीम का कोई वाज़ेह हुक्म वारिद न हो अपनी राय से इज्तिहाद करने (यानी क़ुरआन व हदीस की रोशनी में हुक्म निकालने) का हक़ हासिल था, और अहम मामलों के फ़ैसलों में आप बहुत से फ़ैसले अपने इज्तिहाद से भी फ़रमाते थे।

दूसरी बात यह मालूम हुई कि अल्लाह तआ़ला के नज़दीक अपनी राय से काम लेकर शरई हुक्म निकालना वही मोतबर है जो क़ुरआनी उसूल और अहकाम व दलीलों से लिया गया हो, ख़ालिस राय और ख़्याल मोतबर नहीं, और न इसको शरीअ़त में इज्तिहाद कहा जा सकता है।

तीसरी बात यह मालूम हुई कि नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का इज्तिहाद दूसरे मुज्तहिद इमामों की तरह न था, जिसमें ग़लती और चूक का अन्देशा और गुमान हमेशा बाक़ी रहता है, बल्कि जब आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम कोई फ़ैसला अपने इज्तिहाद (अ़क़्ल व समझ) से फ़रमाते तो अगर उसमें कोई ग़लती हो जाती तो हक़ तआ़ला उस पर आपको आगाह फ़रमाकर आपके फ़ैसले को सही और हक़ के मुताबिक़ करा देते थे। और जब आपने कोई फ़ैसला अपने इज्तिहाद से किया और अल्लाह तआ़ला की तरफ़ से उसके ख़िलाफ़ कोई चीज़ न आई तो यह इस बात की निशानी थी कि यह फ़ैसला अल्लाह तआ़ला को पसन्द और उसके नज़दीक सही है।

चौथी बात यह मालूम हुई कि नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम जो कुछ क़ुरआन से समझते थे वह अल्लाह तआ़ला ही का समझाया हुआ होता था, उसमें ग़लत-फ़हमी की संभावना न थी, इसके विपरीत दूसरे उलेमा व मुज्तहदीन का समझा हुआ अल्लाह तआ़ला की तरफ़ इस तरह मन्सूब नहीं किया जा सकता कि अल्लाह तआ़ला ने उनको बतलाया है जैसा कि इस

आयत में हुज़ूरे अकरम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के मुताल्लिक़ 'बिमा अराकल्लाहु' (जो कुछ अल्लाह आपको समझा दे) आया है। इसी वजह से जब एक शख़्स ने फ़ारूक़े आज़म रज़ियल्लाहु अ़न्हु से यह कहाः

فَاحْكُمْ بِمَا اَرَاكَ اللّٰهُ

(वह फ़ैसला कीजिये जो कि अल्लाह ने आपको समझाया है) तो आपने उसको डाँटा कि यह ख़ुसूसियत नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की है।

पाँचवाँ मसला यह मालूम हुआ कि झूठे मुक़द्दमे और झूठे दावे की पैरवी या वकालत करना या उसकी ताईद व हिमायत करना सब हराम है।

तौबा की हक़ीक़त

और आयत नम्बर 110 यानीः

وَمَنْ يَّعْمَلْ سُوْٓءًا اَوْيَظْلِمْ نَفْسَهٗ......... الخ

से यह मालूम हो गया कि गुनाह चाहे अपने तक सीमित हो या दूसरों तक असर करने वाला यानी बन्दों के हुक़ूक़ से संबन्धित हो या अल्लाह के हुक़ूक़ से, हर क़िस्म का गुनाह तौबा व इस्तिग़फ़ार से माफ़ हो सकता है, अलबत्ता तौबा व इस्तिग़फ़ार की हक़ीक़त जानना ज़रूरी है, सिर्फ़ ज़बान से 'अस्तग़फ़िरुल्लाह व अतूबु इलैहि' कहने का नाम तौबा व इस्तिग़फ़ार नहीं है। इसी लिये उलेमा का इस पर इत्तिफ़ाक़ है कि जो शख़्स किसी गुनाह में मुब्तला है और उस पर उसको शर्मिन्दगी भी नहीं और उसको छोड़ा भी नहीं या आगे के लिये छोड़ने का इरादा नहीं किया, और इस हालत में ज़बान से अस्तग़फ़िरुल्लाह कहता है तो यह तौबा के साथ मज़ाक़ करता है।

ख़ुलासा यह कि तौबा के लिये तीन चीज़ें होना ज़रूरी हैं- एक पिछले गुनाहों पर शर्मिन्दा होना, दूसरे जिस गुनाह में मुब्तला हो उसको उसी वक़्त छोड़ देना और तीसरे आगे के लिये गुनाह से बचने का पुख़्ता इरादा करना। अलबत्ता जिन गुनाहों का ताल्लुक़ बन्दों के हुक़ूक़ से है उनको उन्हीं से माफ़ कराना, या बन्दों के हुक़ूक़ अदा करना भी तौबा की शर्त है।

अपने गुनाह का इल्ज़ाम दूसरे पर लगाना दोगुने अज़ाब का सबब है

और आयत नम्बर 112 यानीः

وَمَنْ يَّكْسِبْ خَطِيْٓئَةً اَوْ اِثْمًا ثُمَّ يَرْمِ بِهٖ......... الخ

से मालूम हुआ कि जो शख़्स गुनाह ख़ुद करे और उसका इल्ज़ाम दूसरे बेगुनाह आदमी पर लगा दे तो उसने अपने गुनाह को दोगुना और निहायत सख़्त कर दिया और सख़्त अज़ाब का

मुस्तहिक़ हो गया। एक तो ख़ुद असल गुनाह का अ़ज़ाब, दूसरे झूठा इल्ज़ाम और बोहतान का सख़्त अ़ज़ाब।

क़ुरआन व सुन्नत की हक़ीक़त

आयत नम्बर 113 यानीः

وَاَنْزَلَ اللّٰهُ عَلَيْكَ الْكِتٰبَ وَالْحِكْمَةَ وَعَلَّمَكَ مَالَمْ تَكُنْ تَعْلَمُ......... الخ

में किताब के साथ हिक्मत को भी दाख़िल फ़रमाकर इस तरफ़ इशारा कर दिया गया है कि हिक्मत जो नाम है नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की सुन्नत और तालीमात का, यह भी अल्लाह तआ़ला ही की नाज़िल की हुई है। फ़र्क़ सिर्फ़ यह है कि उसके अलफ़ाज़ अल्लाह तआ़ला की तरफ़ से नहीं हैं, इसी लिये क़ुरआन में दाख़िल नहीं, और मायने उसके और क़ुरआन के दोनों अल्लाह ही की जानिब से हैं, इसलिये दोनों पर अ़मल करना वाजिब है।

इससे उस कलाम की हक़ीक़त मालूम हो गई जो कुछ फ़ुक़हा (दीन के उलेमा) ने लिखा है कि वही की दो क़िस्में हैं 'मतलू' (जो तिलावत की जाती है) और ग़ैर-मतलू (जो तिलावत नहीं की जाती)। वही-ए-मतलू क़ुरआन का नाम है जिसके मायने और अलफ़ाज़ दोनों अल्लाह तआ़ला की जानिब से हैं और ग़ैर-मतलू हदीसे रसूल का नाम है, जिनके अलफ़ाज़ नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के हैं और मायने अल्लाह तआ़ला की तरफ़ से हैं।

नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का इल्म सारी मख़्लूक़ात से ज़्यादा है

दूसरा मसलाः

عَلَّمَكَ مَالَمْ تَكُنْ تَعْلَمُ....... الخ

(और सिखाईं आपको वो बातें जो आप न जानते थे) से साबित हुआ कि रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को अल्लाह तआ़ला के बराबर तमाम कायनात का इल्मे मुहीत (हर चीज़ का और बेपनाह इल्म) न था, जैसा कि कुछ जाहिल कहते हैं, बल्कि जितना इल्म हक़ तआ़ला अ़ता फ़रमाते वह मिल जाता था। हाँ! इसमें कलाम नहीं कि नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को जो इल्म अ़ता हुआ वह सारी मख़्लूक़ात के इल्म से ज़्यादा है।

لَا خَيْرَ فِيْ كَثِيْرٍ مِّنْ نَّجْوٰىهُمْ اِلَّا مَنْ اَمَرَ بِصَدَقَةٍ اَوْ
مَعْرُوْفٍ اَوْ اِصْلَاحٍۭ بَيْنَ النَّاسِ ۚ وَمَنْ يَّفْعَلْ ذٰلِكَ ابْتِغَآءَ مَرْضَاتِ اللّٰهِ فَسَوْفَ نُؤْتِيْهِ اَجْرًا
عَظِيْمًا ۞ وَمَنْ يُّشَاقِقِ الرَّسُوْلَ مِنْۢ بَعْدِ مَا تَبَيَّنَ لَهُ الْهُدٰى وَيَتَّبِعْ غَيْرَ سَبِيْلِ الْمُؤْمِنِيْنَ
نُوَلِّهٖ مَا تَوَلّٰى وَنُصْلِهٖ جَهَنَّمَ ۚ وَسَآءَتْ مَصِيْرًا ۞

ला ख़ै-र फ़ी कसीरिम् मिन्नज्वाहुम् इल्ला मन् अ-म-र बि-स-द-क़तिन् औ मअ्रूफ़िन् औ इस्लाहिम् बैनन्नासि, व मंय्यफ़्अल् ज़ालिकब्तिग़ा-अ मर्ज़ातिल्लाहि फ़सौ-फ़ नुअ्तीहि अज्रन् अज़ीमा (114) व मंय्युशाक़िक़िर्रसू-ल मिम्-बअ्दि मा तबय्य-न लहुल्हुदा व यत्तबिअ् ग़ै-र सबीलिल् मुअ्मिनी-न नुवल्लिही मा तवल्ला व नुस्लिही जहन्न-म, व साअत् मसीरा (115) ❁	कुछ अच्छे नहीं उनके अक्सर मश्विरे मगर जो कोई कि कहे सदक़ा करने को या नेक काम को या सुलह कराने को लोगों में, और जो कोई ये काम करे अल्लाह की ख़ुशी के लिये तो हम उसको देंगे बड़ा सवाब। (114) और जो कोई मुख़ालफ़त करे रसूल (सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम) की जबकि खुल चुकी उसपर सीधी राह, और चले सब मुसलमानों के रस्ते के ख़िलाफ़ तो हम हवाले करेंगे उसको वही तरफ़ (यानी वही रास्ता) जो उसने इख़्तियार की, और डालेंगे हम उसको दोज़ख़ में, और वह बहुत बुरी जगह पहुँचा। (115) ❁

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

आ़म लोगों की अक्सर सरगोशियों "यानी कानाफूसी और चुपके-चुपके बातें करने" में ख़ैर (यानी सवाब व बरकत) नहीं होती। हाँ! मगर जो लोग ऐसे हैं कि (ख़ैर-) ख़ैरात की या और किसी नेक काम की या लोगों में आपस में सुधार कर देने की तरग़ीब देते हैं (और इस तालीम व तरग़ीब की तक्मील व इन्तिज़ाम के लिये ख़ुफ़िया तदबीरें और मश्विरे करते हैं या ख़ुद ही सदक़े वग़ैरह की दूसरों को ख़ुफ़िया तरग़ीब देते हैं, क्योंकि कई बार ख़ुफ़िया ही कहना मस्लेहत होती है, उनके मश्विरों में अलबत्ता ख़ैर यानी सवाब और बरकत है) और जो शख़्स यह काम करेगा (यानी इन आमाल की तरग़ीब देगा) अल्लाह तआ़ला को राज़ी करने के वास्ते (न कि इज़्ज़त व शोहरत की ग़र्ज़ से) सो हम उसको जल्द ही बड़ा अज्र अ़ता फ़रमाएँगे। और जो शख़्स रसूले (मक़बूल सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम) की मुख़ालफ़त करेगा इसके बाद कि उसको हक़ बात ज़ाहिर हो चुकी थी और मुसलमानों का (दीनी) रास्ता छोड़कर दूसरे रास्ते पर हो लिया (जैसे बशीर मुर्तद हो गया, हाँलाकि इस्लाम का हक़ होना और इस ख़ास वाक़िए में रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के फ़ैसले का ख़ुद उसकी नज़र में हक़ होना मालूम था, फिर भी उसे बदबख़्ती ने घेरा) तो हम उसको (दुनिया में) जो कुछ वह करता है करने देंगे और (आख़िरत में) उसको जहन्नम में दाख़िल करेंगे, और वह जाने की बुरी जगह है।

मआरिफ़ व मसाईल

आपस के मश्विरों और मज्लिसों के आदाब

इरशाद है:

لَاخَيْرَ فِىْ كَثِيْرٍ مِّنْ نَّجْوٰهُمْ

यानी लोगों के आपस के मश्विरे और तदबीरें जो आख़िरत की फ़िक्र और अन्जाम पर ग़ौर से आज़ाद होकर महज़ चन्द दिन के दुनियावी और वक़्ती फ़ायदों के लिये हुआ करते हैं उनमें कोई ख़ैर नहीं।

आगे इरशाद फ़रमायाः

اِلَّا مَنْ اَمَرَ بِصَدَقَةٍ اَوْ مَعْرُوْفٍ اَوْ اِصْلَاحٍ م بَيْنَ النَّاسِ

यानी उन मश्विरों और सरगोशियों (ख़ुफ़िया बातें करने) में अगर ख़ैर की कोई चीज़ हो सकती है तो यह है कि एक दूसरे को सदक़ा ख़ैरात की तरग़ीब दे, या नेकी का हुक्म करे, या लोगों के बीच आपस में सुलह कराने का मश्विरा दे। एक हदीस में इरशाद है कि इनसान का हर कलाम उसके लिये नुक़सानदेह ही है सिवाय इसके कि कलाम में अल्लाह का ज़िक्र हो या नेक काम का हुक्म हो या बुरे काम से रोकना हो।

मारूफ़ के मायने हैं हर वह काम जो शरीअ़त में अच्छा समझा जाये और जिसको शरीअ़त वाले पहचानते हों। और इसके मुक़ाबिल मुन्कर है, यानी हर वह काम जो शरीअ़त में नापसन्दीदा और शरीअ़त वालों में अपरिचित और अजनबी हो।

अमर बिल-मारूफ़ हर नेकी के हुक्म और तरग़ीब को शामिल है, जिसमें मज़लूम की इमदाद करना, ज़रूरत मन्दों को क़र्ज़ देना, भटके हुए को रास्ता बतला देना वग़ैरह सब नेक काम दाख़िल हैं। और सदक़ा और लोगों के बीच सुलह कराना भी अगरचे इसमें दाख़िल है लेकिन इनको विशेष तौर पर अलग इसलिये बयान किया गया कि इन दोनों चीज़ों का नफ़ा दूसरों तक पहुँचता है और इनसे मिल्लत की सामूहिक ज़िन्दगी सुधरती है।

साथ ही ये दोनों काम मख़्लूक़ की ख़िदमत के अहम अध्यायों पर हावी हैं। एक अल्लाह की मख़्लूक़ को नफ़ा पहुँचाना, दूसरे लोगों को तकलीफ़ और रंज से बचाना। सदक़ा नफ़ा पहुँचाने का अहम उनवान है और लोगों के बीच सुलह कराना अल्लाह की मख़्लूक़ को नुक़सान से बचाने का अहम उनवान है। इसलिये तफ़सीर के जमहूर (अक्सर) उलेमा का क़ौल है कि इस जगह सदक़ा आ़म है जिसमें ज़कात, वाजिब सदक़ात भी दाख़िल हैं और नफ़्ली सदक़ात भी, और हर वह फ़ायदा और नफ़ा जो किसी को पहुँचाया जाये।

सुलह कराने की फ़ज़ीलत

लोगों की आपसी रंजिशें दूर करने और उनके आपस में सुलह व मुवाफ़क़त पैदा करने के

मुताल्लिक़ रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के इरशादात बहुत ही अहम हैं। आपने फ़रमायाः

"क्या मैं तुमको ऐसा काम न बतलाऊँ जिसका दर्जा नमाज़, रोज़े और सदक़े में सबसे अफ़ज़ल है? सहाबा रज़ियल्लाहु अ़न्हुम ने अ़र्ज़ किया ज़रूर बताईये। आपने फ़रमाया कि वह काम इस्लाहे ज़ातुल-बैन है यानी दो शख़्सों के बीच कोई रंजिश पैदा हो जाये तो उसको दूर करके आपस में सुलह कराना और फ़साद को ख़त्म करना।"

और रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया किः

فَسَادُ ذَاتِ الْبَيْنِ هِيَ الْحَالِقَةُ.

"यानी लोगों के बीच आपस में होने वाला झगड़ा-फ़साद मूँड देने वाली चीज़ है।" फिर इसकी वज़ाहत इस तरह फ़रमाई कि "यह झगड़ा सर को नहीं मूँडता बल्कि इनसान के दीन को मूँड डालता है।"

आयत के आख़िर में एक और अहम मज़मून यह इरशाद फ़रमाया कि ये नेकियाँ सदक़ा, नेकियों का हुक्म करना और दो लोगों के बीच सुलह कराना उसी वक़्त मोतबर और मक़बूल हो सकती हैं जबकि इनको इख़्लास के साथ सिर्फ़ अल्लाह तआ़ला की रज़ा तलब करने के लिये किया जाये, इसमें कोई नफ़्सानी ग़र्ज़ शामिल न हो।

उम्मत का इजमा हुज्जत है

وَمَنْ يُّشَاقِقِ الرَّسُوْلَ مِنْ م بَعْدِ مَا تَبَيَّنَ لَهُ الْهُدٰى...... الخ

(आयत नम्बर 115) इस आयत में दो चीज़ों का बहुत बड़ा जुर्म और जहन्नम में दाख़िल होने का सबब होना बयान फ़रमाया है- एक रसूल की मुख़ालफ़त, और यह ज़ाहिर है कि रसूल की मुख़ालफ़त कुफ़्र और ज़बरदस्त वबाल है। दूसरे जिस काम पर सब मुसलमान मुत्तफ़िक़ (एक राय) हों उसको छोड़कर उनके ख़िलाफ़ कोई रास्ता इख़्तियार करना। इससे मालूम हुआ कि उम्मत का इजमा (किसी बात पर सहमत व जमा होना) हुज्जत है। यानी जिस तरह क़ुरआन व सुन्नत के बयान किये हुए अहकाम पर अ़मल करना वाजिब होता है इसी तरह उम्मत का इत्तिफ़ाक़ जिस चीज़ पर हो जाये उस पर भी अ़मल करना वाजिब है, और उसकी मुख़ालफ़त ज़बरदस्त गुनाह है, जैसा कि आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने एक हदीस में इरशाद फ़रमायाः

يَدُاللّٰهِ عَلَى الْجَمَاعَةِ مَنْ شَذَّ شُذَّ فِى النَّارِ.

"यानी जमाअ़त के सर पर अल्लाह का हाथ है, और जो शख़्स मुसलमानों की जमाअ़त से अलग होगा वह अ़लैहदा करके जहन्नम में डाला जायेगा।"

हज़रत इमाम शाफ़ई रहमतुल्लाहि अ़लैहि से किसी ने सवाल किया कि क्या इजमा-ए-उम्मत के हुज्जत होने की दलील क़ुरआन मजीद में है? आपने क़ुरआन से दलील मालूम करने के लिये तीन दिन तक बराबर तिलावते क़ुरआन को मामूल बनाया, हर रोज़ दिन में तीन मर्तबा और रात में तीन मर्तबा पूरा क़ुरआन ख़त्म करते थे, आख़िरकार यही मज़कूरा आयत ज़ेहन में आई और

इसको उलेमा के सामने बयान किया तो सब ने इक़रार किया कि इजमा के हुज्जत होने पर यह दलील काफ़ी है।

إِنَّ اللَّهَ لَا يَغْفِرُ أَنْ يُشْرَكَ بِهِ وَيَغْفِرُ مَا دُونَ ذَٰلِكَ لِمَنْ يَشَاءُ ۚ وَمَنْ يُشْرِكْ بِاللَّهِ فَقَدْ ضَلَّ ضَلَالًا بَعِيدًا ۝ إِنْ يَدْعُونَ مِنْ دُونِهِ إِلَّا إِنَاثًا وَإِنْ يَدْعُونَ إِلَّا شَيْطَانًا مَرِيدًا ۝ لَعَنَهُ اللَّهُ ۘ وَقَالَ لَأَتَّخِذَنَّ مِنْ عِبَادِكَ نَصِيبًا مَفْرُوضًا ۝ وَلَأُضِلَّنَّهُمْ وَلَأُمَنِّيَنَّهُمْ وَلَآمُرَنَّهُمْ فَلَيُبَتِّكُنَّ آذَانَ الْأَنْعَامِ وَلَآمُرَنَّهُمْ فَلَيُغَيِّرُنَّ خَلْقَ اللَّهِ ۚ وَمَنْ يَتَّخِذِ الشَّيْطَانَ وَلِيًّا مِنْ دُونِ اللَّهِ فَقَدْ خَسِرَ خُسْرَانًا مُبِينًا ۝ يَعِدُهُمْ وَيُمَنِّيهِمْ ۖ وَمَا يَعِدُهُمُ الشَّيْطَانُ إِلَّا غُرُورًا ۝ أُولَٰئِكَ مَأْوَاهُمْ جَهَنَّمُ وَلَا يَجِدُونَ عَنْهَا مَحِيصًا ۝

इन्नल्ला-ह ला यग़्फ़िरु अंय्युश्र-क बिही व यग़्फ़िरु मा दू-न ज़ालि-क लि-मंय्यशा-उ, व मंय्युश्रिक् बिल्लाहि फ़-क़द् ज़ल्-ल ज़लालम् बअ़ीदा (116) इंय्यद्अ़ू-न मिन् दूनिही इल्ला इनासन् व इंय्यद्अ़ू-न इल्ला शैतानम् मरीदा (117) ल-अ-नहुल्लाहु। व क़ा-ल ल-अत्तख़िजन्-न मिन् अ़िबादि-क नसीबम् मफ़्रूज़ा (118) व ल-उज़िल्लन्नहुम् व ल-उमन्नियन्नहुम् व ल-आमुरन्नहुम् फ़-लयुबत्तिकुन्-न आज़ानल्-अन्आमि व ल-आमुरन्नहुम् फ़-लयुग़य्यिरुन्-न ख़ल्क़ल्लाहि, व मंय्यत्तख़िज़िश्शैता-न वलिय्यम् मिन् दूनिल्लाहि फ़-क़द् ख़सि-र ख़ुस्रानम् मुबीना (119)

बेशक अल्लाह नहीं बख़्शता उसको जो उसका शरीक करे किसी को, और बख़्शता है उसके सिवा जिसको चाहे, और जिसने शरीक ठहराया अल्लाह का वह बहक कर दूर जा पड़ा। (116) अल्लाह के सिवा नहीं पुकारते मगर औरतों को और नहीं पुकारते मगर शैतान सरकश को। (117) जिस पर लानत की अल्लाह ने, और कहा शैतान ने कि मैं अलबत्ता लूँगा तेरे बन्दों से तयशुदा हिस्सा। (118) और उनको बहकाऊँगा और उनको उम्मीदें दिलाऊँगा और उनको सिखलाऊँगा कि चीरें जानवरों के कान और उनको सिखलाऊँगा कि बदलें सूरतें बनाई हुई अल्लाह की, जो कोई बनाये शैतान को दोस्त अल्लाह को छोड़कर तो वह पड़ा खुले नुकसान में। (119) उनको वादा देता है और उनको उम्मीदें दिलाता है और जो कुछ

यअिदुहुम् व युमन्नीहिम्, व मा यअिदुहुमुश्शैतानु इल्ला ग़ुरूरा (120) उलाइ-क मअ्वाहुम् जहन्नमु व ला यजिदू-न अ़न्हा महीसा (121)	वादा देता है उनको शैतान सो सब फ़रेब है। (120) ऐसों का ठिकाना है दोज़ख़ और न पायेंगे वहाँ से कहीं भागने की जगह। (121)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

बेशक अल्लाह तआ़ला इस बात को (सज़ा देकर भी) न बख़्शेंगे कि उनके साथ किसी को शरीक क़रार दिया जाये (बल्कि हमेशा की सज़ा में मुब्तला रखेंगे) और इसके अ़लावा जितने गुनाह हैं (चाहे छोटे हों या बड़े) जिसके लिए मन्ज़ूर होगा (बिना सज़ा के) वो गुनाह बख़्श देंगे (अलबत्ता अगर वह मुश्रिक मुसलमान हो जाये तो फिर मुश्रिक ही न रहा, अब वह हमेशा की सज़ा भी न रहेगी)। और (वजह उस शिर्क के न बख़्शने की यह है कि) जो शख़्स अल्लाह तआ़ला के साथ (किसी को) शरीक ठहराता है वह (हक़ बात से) बड़ी दूर की गुमराही में जा पड़ा (वह हक़ बात तौहीद है जो अ़क़्ली तौर पर वाजिब है और कारसाज़ की ताज़ीम उसके हुक़ूक़ में से है, पस मुश्रिक ने बारी तआ़ला जो कि कारसाज़ है, की तौहीन की, इसलिये ऐसी सज़ा का मुस्तहिक़ होगा, बख़िलाफ़ दूसरे गुनाहों के कि वह गुमराही तो है मगर तौहीद के ख़िलाफ़ और उससे दूर की चीज़ नहीं, इसलिये मग़फ़िरत व माफ़ी के क़ाबिल क़रार दिया गया और शिर्क की तरह दूसरी किस्म के कुफ़्र भी नाक़ाबिले माफ़ी होने में शरीक हैं, क्योंकि उसमें भी इनकार होता है पैदा करने वाले की किसी बतलाई हुई बात का, पस वह उसकी सच्चाई की सिफ़त का इनकार करता है, और कुछ काफ़िर ख़ुद अल्लाह तआ़ला की ज़ात ही के इनकारी हैं, कुछ किसी सिफ़त के इनकारी हैं और कुछ सिफ़त और ज़ात दोनों के इनकारी हैं, और इनमें से जिसका भी इनकार हो वह तौहीद का इनकार और उससे दूर होना है। पस कुफ़्र व शिर्क दोनों क़ाबिले माफ़ी नहीं हैं। आगे मुश्रिकों की बेवक़ूफ़ी उनके मज़हबी तरीक़े में बयान करते हैं कि) ये (मुश्रिक) लोग ख़ुदा तआ़ला को छोड़कर (एक तो) सिर्फ़ चन्द ज़नानी चीज़ों की इबादत करते हैं और (एक) सिर्फ़ शैतान की इबादत करते हैं जो कि (ख़ुदा तआ़ला के) हुक्म से बाहर है। (और) जिसको (इस नाफ़रमानी की वजह से) ख़ुदा तआ़ला ने अपनी (ख़ास) रहमत से दूर डाल रखा है, और जिसने (जिस वक़्त कि ख़ास रहमत से दूर और मलऊन होने लगा) यूँ कहा था (जिससे उसकी दुश्मनी साफ़ ज़ाहिर मालूम हो रही थी) कि मैं (पूरी कोशिश करने का इरादा रखता हूँ कि) ज़रूर तेरे बन्दों से अपना इताअ़त का मुक़र्ररा हिस्सा लूँगा। और (उस हिस्से की तफ़सील यह है कि) मैं उनको (अ़क़ीदों में) गुमराह करूँगा और मैं उनको (ख़्यालात में) हवसें दिलाऊँगा (जिससे गुनाह की तरफ़ मैलान हो और गुनाहों का नुक़सान नज़र में न रहे) और मैं उनको (बुरे आमाल करने की) तालीम दूँगा जिससे वे (बुतों के नाम पर) चौपायों के कानों को

तराशा (काटा और छेदा) करेंगे (और यह कुफ़्रिया आमाल में से है) और मैं उनको (और भी) तालीम दूँगा जिससे वे अल्लाह तआ़ला की बनाई हुई सूरत को बिगाड़ा करेंगे (और यह बुरे और गुनाहों वाले आमाल में से है जैसे दाढ़ी मुंडवाना, बदन गुदवाना वग़ैरह) और जो शख़्स ख़ुदा तआ़ला को छोड़कर शैतान को अपना साथी बना लेगा (यानी ख़ुदा तआ़ला की फ़रमाँबरदारी न करे और शैतान की फ़रमाँबरदारी करे) वह (शख़्स) खुले नुक़सान (व घाटे) में पड़ जाएगा (वह नुक़सान व घाटा जहन्नम में जाना है)।

शैतान उन लोगों से (अ़क़ीदों के मुताल्लिक़ झूठे) वायदे किया करता है (कि इस गुनाह में ऐसी लज़्ज़त है, इस हराम ज़रिये में ऐसी आमदनी है और शैतानी आमाल का वजूद और बेहूदगी और नुक़सान ख़ुद ज़ाहिर है) और शैतान उनसे सिर्फ़ झूठे (फ़रेब भरे) वायदे करता है (क्योंकि वास्तव में हिसाब व किताब हक़ है और उसकी हवसों का फ़रेब होना तो बहुत जल्दी खुल जाता है) और ऐसे लोगों का (जो कि शैतान की राह पर चलते हैं) ठिकाना जहन्नम है (और वह खुला घाटा यही है) और उस (जहन्नम) से कहीं बचने की जगह न पाएँगे (कि वहाँ जाकर पनाह लें)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

इन आयतों के मज़मून का पीछे से संबन्ध

ऊपर जिहाद के ज़िक्र में अगरचे इस्लाम के तमाम मुख़ालिफ़ दाख़िल हैं लेकिन अहवाल के बयान में अब तक यहूद और मुनाफ़िक़ों के अहवाल का बयान हुआ है, और मुख़ालिफ़ों में एक जमाअ़त बल्कि औरों से बड़ी मुश्रिकों की थी। आगे उनके कुछ अ़क़ीदों की हालत और निंदा का तरीक़ा और उसकी सज़ा बयान हुई है, और इस मक़ाम पर यह इसलिये और ज़्यादा मुनासिब हो गया कि ऊपर जिस चोर का मामला ज़िक्र किया गया है उसमें यह भी ज़िक्र है कि वह चोर मुर्तद (इस्लाम से फिर गया) था, पस इससे उसकी हमेशा की सज़ा का हाल मालूम हो गया।

(तफ़सीर बयानुल-क़ुरआन)

पहली आयत यानीः

اِنَّ اللّٰهَ لَا يَغْفِرُ اَنْ يُّشْرَكَ بِهٖ وَيَغْفِرُ مَا دُوْنَ ذٰلِكَ لِمَنْ يَّشَآءُ

शुरू में सूरः निसा (आयत नम्बर 48) में इन्हीं अलफ़ाज़ के साथ आ चुकी है, फ़र्क़ सिर्फ़ यह है कि वहाँ आयत के ख़ात्मे परः

وَمَنْ يُّشْرِكْ بِاللّٰهِ فَقَدِ افْتَرٰٓى اِثْمًا عَظِيْمًا

आया है और यहाँः

وَمَنْ يُّشْرِكْ بِاللّٰهِ فَقَدْ ضَلَّ ضَلٰلًا ۢ بَعِيْدًا

फ़र्क़ की वजह तफ़सीर के इमामों की वज़ाहत के मुताबिक़ यह है कि पहली आयत के मुख़ातब डायरेक्ट अहले किताब यहूदी थे, जिनको तौरात के द्वारा तौहीद का हक़ होना और शिर्क का बातिल होना और रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का सच्चा नबी होना सब

कुछ मालूम था, इसके बावजूद वे शिर्क में मुब्तला हो गये, तो गोया अपने अमल से उन्होंने यह ज़ाहिर किया कि तौरात की यही तालीम है। ज़ाहिर है कि यह सरासर झूठा इल्ज़ाम और बोहतान है, इसलिये इस आयत के आख़िर में:

فَقَدِ افْتَرٰىٓ اِثْمًا عَظِيْمًا

इरशाद हुआ। और दूसरी आयत के मुख़ातब डायरेक्ट मक्का के मुश्रिक थे जिनके पास इससे पहले न कोई किताब थी न पैग़म्बर, मगर तौहीद की अक़्ली दलीलें और निशानियाँ बिल्कुल स्पष्ट थीं और अपने हाथों के गढ़े हुए पत्थरों को अपना माबूद बना लेना मामूली अक़्ल वाले के लिये भी बेहूदा व बातिल और गुमराही था। इसलिये यहाँ इरशाद हुआ:

فَقَدْ ضَلَّ ضَلٰلًا ۢ بَعِيْدًا

कि जिसने अल्लाह का शरीक ठहराया वह गुमराही में बहुत दूर जा पड़ा।

शिर्क और कुफ़्र की सज़ा का हमेशा के लिये होना

यहाँ कुछ लोग यह शुब्हा करते हैं कि सज़ा अमल के बक़द्र होनी चाहिये। मुश्रिक और काफ़िर ने जो जुर्म कुफ़्र और शिर्क का किया है, वह सीमित मुद्दते उम्र के अन्दर किया है तो उसकी सज़ा असीमित और हमेशा के लिये क्यों हुई? जवाब यह है कि कुफ़्र व शिर्क करने वाला चूँकि इसको जुर्म नहीं समझता बल्कि नेकी समझता है, इसलिये उसका इरादा यही होता है कि हमेशा उसी हाल पर क़ायम रहेगा, और जब मरते दम तक वह उसी पर क़ायम रहा तो अपने इख़्तियार की हद तक उसने हमेशा का जुर्म कर लिया इसलिये सज़ा भी हमेशा की हुई।

ज़ुल्म की तीन क़िस्में

ज़ुल्म की एक क़िस्म वह है जिसको अल्लाह तआ़ला हरगिज़ न बख़्शेंगे, दूसरी क़िस्म वह है जिसकी मग़फ़िरत हो सकेगी और तीसरी क़िस्म वह है कि जिसका बदला अल्लाह तआ़ला लिये बग़ैर न छोड़ेंगे।

पहली क़िस्म का ज़ुल्म शिर्क है, दूसरी क़िस्म का ज़ुल्म अल्लाह के हुक़ूक़ में कोताही है और तीसरी क़िस्म का ज़ुल्म बन्दों के हुक़ूक़ की ख़िलाफ़वर्ज़ी है। (इब्ने कसीर, मुस्नदे बज़्ज़ार के हवाले से)

शिर्क की हक़ीक़त

शिर्क की हक़ीक़त है अल्लाह तआ़ला के सिवा किसी मख़्लूक़ को इबादत या मुहब्बत व ताज़ीम (सम्मान) में अल्लाह तआ़ला के बराबर समझना। क़ुरआने करीम ने मुश्रिकों के उस क़ौल को जो वे जहन्नम में पहुँचकर कहेंगे नक़ल किया है:

تَاللّٰهِ اِنْ كُنَّا لَفِيْ ضَلٰلٍ مُّبِيْنٍ ٥ اِذْ نُسَوِّيْكُمْ بِرَبِّ الْعٰلَمِيْنَ ٥

"यानी क़सम ख़ुदा की हम खुली गुमराही में थे जबकि हमने तुमको अल्लाह रब्बुल-आ़लमीन के बराबर क़रार दे दिया था।"

ज़ाहिर है कि मुश्रिकों का भी यह अक़ीदा तो न था कि हमारे गढ़े हुए पत्थर इस जहान के ख़ालिक़ और मालिक हैं, बल्कि उन्होंने दूसरी ग़लत-फ़हमियों की बिना पर उनको इबादत में या मुहब्बत व ताज़ीम में अल्लाह तआ़ला के बराबर क़रार दे रखा था। यही वह शिर्क था जिसने उनको जहन्नम में पहुँचा दिया। (फ़तहुल-मुल्हिम) मालूम हुआ कि अल्लाह तआ़ला की मख़्सूस सिफ़ात ख़ालिक़ (पैदा करने वाला), राज़िक़ (रोज़ी देने वाला), क़ादिरे मुतलक़ (मुकम्मल इख़्तियारात का मालिक), आ़लिमुल-ग़ैब वश्शहादत (हर ग़ायब व हाज़िर का जानने वाला) वग़ैरह में किसी मख़्लूक़ को अल्लाह के बराबर समझना शिर्क है।

وَالَّذِيْنَ اٰمَنُوْا وَعَمِلُوا الصّٰلِحٰتِ سَنُدْخِلُهُمْ جَنّٰتٍ تَجْرِيْ
مِنْ تَحْتِهَا الْاَنْهٰرُ خٰلِدِيْنَ فِيْهَآ اَبَدًا ؕ وَعْدَ اللّٰهِ حَقًّا ؕ وَمَنْ اَصْدَقُ مِنَ اللّٰهِ قِيْلًا ۝ لَيْسَ
بِاَمَانِيِّكُمْ وَلَآ اَمَانِيِّ اَهْلِ الْكِتٰبِ ؕ مَنْ يَّعْمَلْ سُوْٓءًا يُّجْزَ بِهٖ ۙ وَلَا يَجِدْ لَهٗ مِنْ دُوْنِ اللّٰهِ وَلِيًّا
وَّلَا نَصِيْرًا ۝ وَمَنْ يَّعْمَلْ مِنَ الصّٰلِحٰتِ مِنْ ذَكَرٍ اَوْ اُنْثٰى وَهُوَ مُؤْمِنٌ فَاُولٰٓئِكَ يَدْخُلُوْنَ الْجَنَّةَ
وَلَا يُظْلَمُوْنَ نَقِيْرًا ۝ وَمَنْ اَحْسَنُ دِيْنًا مِّمَّنْ اَسْلَمَ وَجْهَهٗ لِلّٰهِ وَهُوَ مُحْسِنٌ وَّاتَّبَعَ مِلَّةَ
اِبْرٰهِيْمَ حَنِيْفًا ؕ وَاتَّخَذَ اللّٰهُ اِبْرٰهِيْمَ خَلِيْلًا ۝ وَلِلّٰهِ مَا فِي السَّمٰوٰتِ وَمَا فِي الْاَرْضِ ؕ وَكَانَ
اللّٰهُ بِكُلِّ شَيْءٍ مُّحِيْطًا ۝

ع ۱۸ / ۱۱ / ۱۵

वल्लज़ी-न आमनू व अ़मिलुस्-सालिहाति सनुद्ख़िलुहुम् जन्नातिन् तज्री मिन् तह्तिहल्-अन्हारु ख़ालिदी-न फ़ीहा अ-बदन्, वअ़्दल्लाहि हक़्क़न्, व मन् अस्दक़ु मिनल्लाहि क़ीला (122) लै-स बि-अमानिय्यिकुम् व ला अमानिय्यि अह्लिल्-किताबि, मंय्यअ़्मल् सूअंय्-युज्-ज़ बिही व ला यजिद् लहू मिन् दूनिल्लाहि वलिय्यंव्-व ला नसीरा (123) व मंय्यअ़्मल्	और जो लोग ईमान लाये और अ़मल किये अच्छे उनको हम दाख़िल करेंगे बाग़ों में कि जिनके नीचे बहती हैं नहरें, रहा करें उनमें ही हमेशा, वादा है अल्लाह का सच्चा, और अल्लाह से ज़्यादा सच्चा कौन। (122) न तुम्हारी उम्मीदों पर मदार है और न अहले किताब की उम्मीदों पर, जो कोई बुरा काम करेगा उसकी सज़ा पायेगा, और न पायेगा अल्लाह के सिवा अपना कोई हिमायती और न कोई मददगार। (123) और जो कोई काम करे अच्छे मर्द हो या औरत और वह ईमान रखता हो सो वे

मिनस्सालिहाति मिन् ज़-करिन् औ उन्सा व हु-व मुअ्मिनुन् फ़-उलाइ-क यद्ख़ुलूनल्-जन्न-त व ला युज़्लमू-न नक़ीरा (124) व मन् अह्सनु दीनम् मिम्-मन् अस्ल-म वज्हहू लिल्लाहि व हु-व मुह्सिनुंव्-वत्त-ब-अ मिल्ल-त इब्राही-म हनीफ़न्, वत्त-ख़ज़ल्लाहु इब्राही-म ख़लीला (125) व लिल्लाहि मा फ़िस्समावाति व मा फ़िल्अर्ज़ि, व कानल्लाहु बिकुल्लि शैइम् मुहीता (126) ❁	लोग दाख़िल होंगे जन्नत में और उनका हक़ ज़ाया न होगा तिल भर। (124) और उससे बेहतर किसका दीन होगा जिसने पेशानी रखी अल्लाह के हुक्म पर और नेक कामों में लगा हुआ है, और चला दीने इब्राहीम पर जो एक ही तरफ़ का था, और अल्लाह ने बना लिया इब्राहीम को ख़ालिस दोस्त। (125) और अल्लाह ही का है जो कुछ है आसमानों में और ज़मीन में, और सब चीज़ें अल्लाह के क़ाबू में हैं। (126) ❁

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

और जो लोग ईमान ले आए और (उन्होंने) अच्छे काम किए हम उनको जल्द ही ऐसे बाग़ों में दाख़िल करेंगे कि उनके (महलों के) नीचे नहरें बहती होंगी, वे उसमें हमेशा-हमेशा रहेंगे। ख़ुदा तआ़ला ने वायदा फ़रमाया है (और) सच्चा वायदा (फ़रमाया है) और ख़ुदा तआ़ला से ज़्यादा किसका कहना सही होगा। न तुम्हारी तमन्नाओं से काम चलता है और न अहले किताब की तमन्नाओं से (कि ख़ाली-ख़ूली ज़बान से अपने फ़ज़ाईल बयान कियां करें, बल्कि काम का मदार नेकी व फ़रमाँबरदारी पर है, पस) जो शख़्स (इताअ़त में कमी करेगा और) कोई बुरा काम करेगा (चाहे अ़क़ीदों से हो या आमाल से) वह उसके बदले सज़ा दिया जाएगा (अगर वह बुराई कुफ़्र के अ़क़ीदे तक है तो सज़ा हमेशा की और यक़ीनी, और अगर इससे कम है तो सज़ा हमेशा की नहीं) और उस शख़्स को ख़ुदा तआ़ला के सिवा न कोई यार मिलेगा और न मददगार मिलेगा (कि ख़ुदा के अ़ज़ाब से उसे छुड़ा ले)। और जो शख़्स कोई नेक काम करेगा चाहे वह मर्द हो या औरत, शर्त यह है कि मोमिन हो, सो ऐसे लोग जन्नत में दाख़िल होंगे और उनपर ज़रा भी ज़ुल्म न होगा (कि उनकी कोई नेकी ज़ाया कर दी जाये)। और (ऊपर जो मोमिन की क़ैद लगाई गई है उसका मिस्दाक़ हर फ़िर्क़ा नहीं बल्कि सिर्फ़ वह फ़िर्क़ा है जिसका दीन ख़ुदा तआ़ला के नज़दीक मक़बूल होने में सबसे अच्छा हो, और ऐसा फ़िर्क़ा सिर्फ़ मुसलमान ही हैं जिसकी दलील यह है कि उनमें ये सिफ़ात हैं- पूरी फ़रमाँबरदारी, इख़्लास, मिल्लते इब्राहीमी की पैरवी और) ऐसे शख़्स (के दीन) से ज़्यादा अच्छा किसका दीन होगा जो कि अपना रुख़ अल्लाह की तरफ़ झुका

दे (यानी फ़रमाँबरदारी इख़्तियार करे अ़क़ीदों में भी, आमाल में भी) और (इसके साथ) वह मुख़्लिस भी हो (कि दिल से फ़रमाँबरदारी इख़्तियार कर ली हो, केवल मस्लेहत से ज़ाहिरदारी न हो) और वह मिल्लते इब्राहीम (यानी इस्लाम) की पैरवी करे, जिसमें टेढ़ का नाम नहीं, और (मिल्लते इब्राहीमी ज़रूर क़ाबिले पैरवी है क्योंकि) अल्लाह तआ़ला ने इब्राहीम को अपना ख़ालिस दोस्त बनाया था (तो ज़ाहिर है कि दोस्त के तरीक़े पर चलने वाला भी महबूब व मक़बूल होगा। पस इस्लाम का तरीक़ा मक़बूल हुआ। पस इस्लाम को मानने वाले ही मोमिन के लक़ब के मिस्दाक़ ठहरे और दूसरे फ़िर्क़ों ने हज़रत इब्राहीम अ़लैहिस्सलाम की पैरवी को छोड़ दिया कि इस्लाम न लाये, इसलिये सिर्फ़ मुसलमान ही ऐसे साबित हुए कि महज़ ईमानी तमन्नाओं पर उनका सहारा नहीं बल्कि इताअ़त करने वाले हैं, पस काम उन्हीं का चलेगा)। और (अल्लाह तआ़ला की मुकम्मल फ़रमाँबरदारी करना तो ज़रूरी है क्योंकि उनकी सल्तनत व क़ुदरत और उनका हर चीज़ पर हावी इल्म दोनों पूरे और मुकम्मल हैं, और यही चीज़ें इताअ़त व फ़रमाँबरदारी को वाजिब करने का मदार हैं, चुनाँचे) अल्लाह तआ़ला ही की मिल्क है जो कुछ भी आसमानों में है और जो कुछ ज़मीन में है (यह तो पूरी बादशाही हुई) और अल्लाह तआ़ला तमाम चीज़ों को (अपने इल्म के) घेरे में लिए हुए हैं (यह इल्मी कमाल हुआ)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

मुसलमानों और अहले किताब के बीच एक फ़ख़्र व बड़ाई जताने वाली गुफ़्तगू

لَيْسَ بِاَمَانِيِّكُمْ وَلَآ اَمَانِيِّ اَهْلِ الْكِتٰبِ.......... الخ

इन आयतों में पहले एक बातचीत और गुफ़्तगू का ज़िक्र है जो मुसलमानों और अहले किताब के बीच हुई थी, और फिर उस गुफ़्तगू का फ़ैसला सुनाया गया है। दोनों फ़रीक़ों को हिदायत की सही राह बतलाई गई। आख़िर में अल्लाह तआ़ला के नज़दीक मक़बूल और अफ़ज़ल व आला होने का एक मेयार बतला दिया गया जिसको सामने रखा जाये तो कभी इनसान ग़लती और गुमराही का शिकार न हो।

हज़रत क़तादा रज़ियल्लाहु अ़न्हु फ़रमाते हैं कि एक मर्तबा कुछ मुसलमानों और अहले किताब के बीच फ़ख़्र व बड़ाई जताने वाली गुफ़्तगू होने लगी। अहले किताब ने कहा कि हम तुम से बेहतर व मान वाले हैं, क्योंकि हमारे नबी तुम्हारे नबी से पहले और हमारी किताब तुम्हारी किताब से पहले है। मुसलमानों ने कहा कि हम तुम सबसे अफ़ज़ल हैं इसलिये कि हमारे नबी ख़ातिमुन्नबिय्यीन हैं, और हमारी किताब आख़िरी किताब है जिसने पहली सब किताबों को मन्सूख़ (निरस्त व रद्द) कर दिया है। इस पर यह आयत नाज़िल हुईः

لَيْسَ بِاَمَانِيِّكُمْ وَلَآ اَمَانِيِّ اَهْلِ الْكِتٰبِ.......... الخ

यानी यह एक दूसरे पर फ़ख़्र करना और अपने को दूसरे से बेहतर व ऊँचा बताना किसी के लिये शोभा नहीं, और महज़ ख़्यालात, तमन्नाओं और दावों से कोई किसी पर अफ़ज़ल नहीं होता, बल्कि इसका मदार आमाल पर है। किसी का नबी और किताब कितनी ही अफ़ज़ल व सम्मानित हो अगर वह अ़मल ग़लत करेगा तो उसकी ऐसी सज़ा पायेगा कि उससे बचाने वाला उसको कोई न मिलेगा।

यह आयत जब नाज़िल हुई तो सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम पर बहुत भारी हुई। इमाम मुस्लिम, तिर्मिज़ी, नसाई और इमाम अहमद रहमतुल्लाहि अ़लैहिम ने हज़रत अबू हुरैरह रज़ियल्लाहु अ़न्हु से यह रिवायत नक़ल की है कि उन्होंने फ़रमाया- जब यह आयत नाज़िल हुईः

مَنْ يَّعْمَلْ سُوْٓءًا يُّجْزَبِهٖ

"यानी जो कोई कुछ बुराई करेगा उसकी सज़ा दी जायेगी।" तो हम सख़्त रंज व ग़म और फ़िक्र में पड़ गये और रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से अ़र्ज़ किया कि इस आयत ने तो कुछ छोड़ा ही नहीं, ज़रा सी बुराई भी होगी तो उसकी जज़ा मिलेगी। नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि फ़िक्र में न पड़ो अपनी ताक़त व क़ुदरत के मुताबिक़ अ़मल करते रहो क्योंकि (जिस सज़ा का यहाँ ज़िक्र है ज़रूरी नहीं कि वह जहन्नम ही की सज़ा हो बल्कि) तुम्हें दुनिया में जो कोई भी तकलीफ़ या मुसीबत पेश आती है यह तुम्हारे गुनाहों का कफ़्फ़ारा और बुराई की जज़ा होती है, यहाँ तक कि अगर किसी के पाँव में काँटा भी लग जाये तो वह भी गुनाहों का कफ़्फ़ारा (बदला और मिटाने वाला) है।

और एक रिवायत में है कि मुसलमान को दुनिया में जो भी कोई ग़म या तकलीफ़ या बीमारी या फ़िक्र लाहिक़ होती है वह उसके गुनाहों का कफ़्फ़ारा (बदला) हो जाती है।

जामे तिर्मिज़ी और तफ़सीर इब्ने जरीर वग़ैरह ने हज़रत सिद्दीक़े अकबर रज़ियल्लाहु अ़न्हु से रिवायत की है कि नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने जब यह आयतः

مَنْ يَّعْمَلْ سُوْٓءًا يُّجْزَبِهٖ

उनको सुनाई तो उन पर यह असर हुआ जैसे कमर टूट गई हो। रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने यह असर देखकर फ़रमाया- क्या बात है? तो सिद्दीक़े अकबर रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने अ़र्ज़ किया या रसूलल्लाह! हम में से कौन ऐसा है जिसने कोई बुराई नहीं की, और जब हर बुराई की जज़ा मिलनी है तो हम में से कौन बचेगा? आपने फ़रमाया ऐ अबू बक्र! आप और आपके मोमिन भाई कोई फ़िक्र न करें, क्योंकि दुनिया की तकलीफ़ों के ज़रिये आप लोगों के गुनाहों का कफ़्फ़ारा हो जायेगा।

एक रिवायत में है कि आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि क्या आप बीमार नहीं होते? क्या आपको कोई मुसीबत और ग़म नहीं पहुँचता? सिद्दीक़े अकबर रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने अ़र्ज़ किया बेशक सब चीज़ें पहुँचती हैं। आपने फ़रमाया बस यही बदला है तुम्हारी बुराईयों का।

और हज़रत आयशा रज़ियल्लाहु अन्हा की एक हदीस में है जिसको इमाम अबू दाऊद वग़ैरह ने रिवायत किया है कि बन्दे को जो बुख़ार या तकलीफ़ पहुँचती है या काँटा लगता है तो उसके गुनाहों का कफ़्फ़ारा हो जाता है, यहाँ तक कि कोई शख़्स अपनी कोई चीज़ एक जेब में तलाश करे मगर दूसरी जेब में मिले इतनी मशक़्क़त भी उसके गुनाहों का कफ़्फ़ारा हो जाती है।

ख़ुलासा यह है कि इस आयत ने मुसलमानों को भी यह हिदायत दी है कि महज़ दावों और तमन्नाओं में न लगें, बल्कि अ़मल की फ़िक्र करें। क्योंकि कामयाबी सिर्फ़ इससे नहीं कि तुम फ़ुलाँ नबी या फ़ुलाँ किताब के लेने वाले हो, बल्कि असल फ़लाह (कामयाबी) इसमें है कि उस पर सही ईमान और उसके मुताबिक़ नेक आमाल के पाबन्द रहो। इरशाद है:

وَمَنْ يَّعْمَلْ مِنَ الصّٰلِحٰتِ مِنْ ذَكَرٍ اَوْ اُنْثٰى وَهُوَ مُؤْمِنٌ فَاُولٰٓئِكَ يَدْخُلُوْنَ الْجَنَّةَ وَلَا يُظْلَمُوْنَ نَقِيْرًا○

"यानी जो मर्द या औरत नेक अ़मल करे बशर्तेकि उस अ़मल के साथ ईमान भी हो तो ज़रूर जन्नत में जायेगा, और उनके आमाल का बदला पूरा-पूरा मिलेगा जिसमें ज़रा कमी न की जायेगी।" इसमें इशारा फ़रमाया कि अहले किताब या दूसरे ग़ैर-मुस्लिम अगर उनके आमाल नेक भी हों तो चूँकि उनका ईमान सही नहीं, इसलिये वह अ़मल मक़बूल नहीं और मुसलनानों का चूँकि ईमान भी सही है और अ़मल भी नेक है इसलिये वे कामयाब और दूसरों से बेहतर हैं।

अल्लाह तआ़ला के नज़दीक मक़बूलियत का एक मेयार

चौथी आयत में अल्लाह के यहाँ मक़बूल व अफ़ज़ल होने का एक मेयार बतलाया गया है, जिससे इसका सही फ़ैसला हो सकता है कि कौन मक़बूल है और कौन मरदूद? इस मेयार के दो हिस्से (भाग) हैं उनमें से एक में भी ख़लल आये तो सारी कोशिशें बेकार और ज़ाया हो जाती हैं। और अगर ग़ौर किया जाये तो दुनिया में जहाँ कहीं कोई गुमराही या ग़लतकारी है वह इन्हीं दोनों हिस्सों में किसी एक हिस्से के ख़लल से पैदा होती है। मुसलमानों और ग़ैर-मुस्लिमों में तुलना करें या ख़ुद मुसलमानों के फ़िर्क़ों, जमाअ़तों और पार्टियों में मुक़ाबला करें तो मालूम होगा कि यही दो नुक़्ते (बिन्दू) हैं जिनमें से किसी एक से हट जाना इनसान को रुस्वाई और गुमराही के गढ़े में डाल देना है।

इरशाद फ़रमायाः

وَمَنْ اَحْسَنُ دِيْنًا مِّمَّنْ اَسْلَمَ وَجْهَهٗ لِلّٰهِ وَهُوَ مُحْسِنٌ وَّ اتَّبَعَ مِلَّةَ اِبْرٰهِيْمَ حَنِيْفًا

यानी उस शख़्स से बेहतर किसी का तरीक़ा नहीं हो सकता जिसमें दो बातें पाई जायें एकः

اَسْلَمَ وَجْهَهٗ لِلّٰهِ

यानी अपनी ज़ात को अल्लाह के सुपुर्द कर दे, दिखावे या दुनिया बनाने के लिये नहीं बल्कि इख़्लास के साथ अल्लाह तआ़ला को राज़ी करने के लिये अ़मल करे।

दूसरेः

وَهُوَ مُحْسِنٌ

यानी वह अ़मल भी दुरुस्त तरीक़े पर करे।

इमाम इब्ने कसीर रहमतुल्लाहि अ़लैहि अपनी तफ़सीर में फ़रमाते हैं कि दुरुस्त तरीक़े पर अ़मल करने का मतलब यह है कि उसका अ़मल महज़ अपने बनाये हुए तरीक़े पर न हो, बल्कि शरीअ़ते पाक के बतलाये हुए तरीक़े पर हो, अल्लाह तआ़ला और उसके रसूल सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की तालीम के मुताबिक़ हो।

इससे मालूम हुआ कि अल्लाह तआ़ला के नज़दीक किसी अ़मल के मक़बूल होने की दो शर्तें हैं- एक इख़्लास और दूसरे अ़मल का दुरुस्त यानी शरीअ़त व सुन्नत के मुताबिक़ होना। इन दो शर्तों में से पहली शर्त का ताल्लुक़ इनसान के बातिन यानी दिल से है और दूसरी शर्त यानी शरीअ़त के मुवाफ़िक़ हो, का ताल्लुक़ इनसान के ज़ाहिर से है। जब ये दोनों शर्तें किसी शख़्स ने पूरी कर लीं तो उसका ज़ाहिर व बातिन दुरुस्त हो गया और जब इनमें से कोई शर्त न पाई गयी तो अ़मल फ़ासिद (ख़राब) हो गया, इख़्लास न रहा तो अ़मली मुनाफ़िक़ हो गया और शरीअ़त की पैरवी उससे छूट गयी तो गुमराह हो गया।

क़ौमों की गुमराही का सबब

इख़्लास न पाया जाना या अ़मल का सही न होना है

क़ौमों और मज़हबों की तारीख़ पर नज़र डालिये तो मालूम होगा कि जितने बेराह फ़िर्के और क़ौमें दुनिया में हैं किसी में इख़्लास नहीं, और किसी में अ़मल सही नहीं। यही दो गिरोह हैं जिनका ज़िक्र सूरः फ़ातिहा में **सिराते मुस्तक़ीम** (सीधी राह) से हट जाने वालों के सिलसिले में 'मग़ज़ूबि अ़लैहिम्' और 'ज़ॉल्लीन' के लफ़्ज़ों से बयान किया गया है। **मग़ज़ूबि अ़लैहिम** (जिन पर अल्लाह का ग़ज़ब हुआ) वे लोग हैं जिनमें इख़्लास नहीं, और **ज़ॉल्लीन** (गुमराह और रास्ते से भटके हुए) वे जिनका अ़मल दुरुस्त नहीं है। पहला गिरोह इच्छाओं का शिकार है और दूसरा शुब्हों (शुकूक) का।

पहली शर्त यानी इख़्लास की ज़रूरत और उसके न होने की सूरत में अ़मल का बेकार होना तो आ़म तौर पर सब समझते हैं, लेकिन नेक अ़मल यानी शरीअ़त की पैरवी की शर्त पर बहुत से मुसलमान भी नहीं ध्यान देते, यूँ समझते हैं कि नेक अ़मल को जिस तरह चाहो कर लो हालाँकि क़ुरआन व सुन्नत ने पूरी तरह वाज़ेह कर दिया है कि अच्छा अ़मल सिर्फ़ नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की तालीमात और इत्तिबा-ए-सुन्नत पर मौक़ूफ़ है, उससे कम करना भी जुर्म है और उससे बढ़ाना भी जुर्म है। जिस तरह ज़ोहर की चार के बजाय तीन रक्अ़तें पढ़ना हराम है इसी तरह पाँच पढ़ना भी वैसा ही जुर्म व गुनाह है। किसी इबादत में जो शर्त अल्लाह तआ़ला और उसके रसूल ने लगाई हो, उसमें अपनी तरफ़ से शर्तों का इज़ाफ़ा या आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की बतलाई हुई शक्ल से अलग सूरत इख़्तियार करना यह सब नाजायज़ और अच्छे अ़मल के ख़िलाफ़ है, चाहे देखने में वो कितने ही ख़ूबसूरत अ़मल नज़र

आयें। बिदअ़तें और दीन में निकाली हुई नयी चीज़ें जिनको रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने गुमराही क़रार दिया और उनसे बचने की प्रबल हिदायतें फ़रमाई हैं वो सब इसी क़िस्म में से हैं। जाहिल आदमी उसको पूरे इख़्लास के साथ अल्लाह और उसके रसूल की ख़ुशनूदी और इबादत व सवाब जानकर करते हैं मगर शरीअ़ते मुहम्मदी में उसका यह अ़मल ज़ाया बल्कि गुनाह को वाजिब करने वाला होता है। इसी वजह से क़ुरआने करीम ने बार-बार अच्छे अ़मल यानी सुन्नत की पैरवी की ताकीद फ़रमाई है। सूरः मुल्क में है:

لِيَبْلُوَكُمْ اَيُّكُمْ اَحْسَنُ عَمَلًا

यहाँ पर 'अह्सनु अ़-मला' फ़रमाया। 'अक्सरु अ़-मला' नहीं फ़रमाया। यानी ज़्यादा अ़मल करने का ज़िक्र नहीं बल्कि अच्छा अ़मल करने का ज़िक्र है और अच्छा अ़मल वही है जो रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की सुन्नत के मुताबिक़ हो।

क़ुरआने करीम की एक दूसरी आयत में इसी हुस्ने अ़मल (अच्छे अ़मल) और नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की पैरवी को इन अलफ़ाज़ से ताबीर फ़रमाया है:

وَمَنْ اَرَادَ الْاٰخِرَةَ وَسَعٰى لَهَا سَعْيَهَا

यानी कोशिश व अ़मल उन लोगों का मक़बूल है जिन्होंने नीयत भी ख़ालिस आख़िरत की रखी हो और उसके लिये कोशिश भी कर रहे हों। और जो कोशिश कर रहे हैं वह कोशिश मुनासिब भी हो और मुनासिब कोशिश वही है जो रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने अपने क़ौल व अ़मल से उम्मत को बतलाई, उससे हटकर चाहे कोशिश में कमी की जाये या ज़्यादती, दोनों चीज़ें मुनासिब कोशिश नहीं हैं, और मुनासिब कोशिश वही है जिसका दूसरा नाम हुस्ने अ़मल (अच्छा अ़मल) है, जो इस आयत में मज़कूर है।

ख़ुलासा यह है कि अल्लाह तआ़ला के नज़दीक किसी अ़मल के मक़बूल होने की दो शर्तें हैं- इख़्लास और अच्छा अ़मल। और अच्छा अ़मल नाम है सुन्नते रसूलुल्लाह की पैरवी का, इसलिये इख़्लास के साथ अच्छा अ़मल करने वालों का यह भी फ़र्ज़ है कि अ़मल करने से पहले यह मालूम करें कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने इस अ़मल को किस तरह किया है, और इसके मुताल्लिक़ क्या हिदायतें दी हैं। हमारा जो अ़मल सुन्नत के तरीक़े से हटेगा वह नामक़बूल होगा। नमाज़, रोज़ा, हज, ज़कात, सदक़ात व ख़ैरात और ज़िक्रुल्लाह और दुरूद व सलाम सब में इसका लिहाज़ रखना ज़रूरी है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने इस अ़मल को किस तरह अन्जाम दिया और किस तरह करने के लिये इरशाद फ़रमाया है। आख़िर आयत में इख़्लास और अच्छे अ़मल की एक मिसाल हज़रत इब्राहीम ख़लीलुल्लाह अ़लैहिस्सलाम की पेश करके उनके इत्तिबा (अनुसरण) का हुक्म दिया गया और:

وَاتَّخَذَ اللّٰهُ اِبْرٰهِيْمَ خَلِيْلًا۝

फ़रमाकर इसकी तरफ़ इशारा कर दिया कि हज़रत इब्राहीम ख़लीलुल्लाह अ़लैहिस्सलाम के इस ऊँचे मक़ाम का सबब यही है कि वह मुख़्लिस भी आला दर्जे के थे और उनका अ़मल भी

अल्लाह के फ़रमान के मुताबिक़ सही और दुरुस्त था।

وَ يَسْتَفْتُوْنَكَ فِي النِّسَآءِ ۚ قُلِ اللّٰهُ يُفْتِيْكُمْ فِيْهِنَّ ۙ وَمَا يُتْلٰى عَلَيْكُمْ فِي الْكِتٰبِ فِيْ يَتٰمَى النِّسَآءِ الّٰتِيْ لَا تُؤْتُوْنَهُنَّ مَا كُتِبَ لَهُنَّ وَ تَرْغَبُوْنَ اَنْ تَنْكِحُوْهُنَّ وَ الْمُسْتَضْعَفِيْنَ مِنَ الْوِلْدَانِ ۙ وَاَنْ تَقُوْمُوْا لِلْيَتٰمٰى بِالْقِسْطِ ۚ وَمَا تَفْعَلُوْا مِنْ خَيْرٍ فَاِنَّ اللّٰهَ كَانَ بِهٖ عَلِيْمًا ۞ وَاِنِ امْرَاَةٌ خَافَتْ مِنْ بَعْلِهَا نُشُوْزًا اَوْ اِعْرَاضًا فَلَا جُنَاحَ عَلَيْهِمَآ اَنْ يُّصْلِحَا بَيْنَهُمَا صُلْحًا ۚ وَالصُّلْحُ خَيْرٌ ۚ وَاُحْضِرَتِ الْاَنْفُسُ الشُّحَّ ۚ وَاِنْ تُحْسِنُوْا وَتَتَّقُوْا فَاِنَّ اللّٰهَ كَانَ بِمَا تَعْمَلُوْنَ خَبِيْرًا ۞ وَلَنْ تَسْتَطِيْعُوْٓا اَنْ تَعْدِلُوْا بَيْنَ النِّسَآءِ وَلَوْ حَرَصْتُمْ فَلَا تَمِيْلُوْا كُلَّ الْمَيْلِ فَتَذَرُوْهَا كَالْمُعَلَّقَةِ ۚ وَاِنْ تُصْلِحُوْا وَتَتَّقُوْا فَاِنَّ اللّٰهَ كَانَ غَفُوْرًا رَّحِيْمًا ۞ وَاِنْ يَّتَفَرَّقَا يُغْنِ اللّٰهُ كُلًّا مِّنْ سَعَتِهٖ ۚ وَكَانَ اللّٰهُ وَاسِعًا حَكِيْمًا ۞

व यस्तफ़्तून-क फ़िन्निसा-इ, क़ुलिल्लाहु युफ़्तीकुम् फ़ीहिन्-न व मा युत्ला अ़लैकुम् फ़िल्-किताबि फ़ी यतामन्निसाइल्लाती ला तुअ्तूनहुन्-न मा कुति-ब लहुन्-न व तर्ग़बू-न अन् तन्किहूहुन्-न वल्-मुस्तज़्अफ़ी-न मिनल्-विल्दानि व अन् तक़ूमू लिल्यतामा बिल्क़िस्ति, व मा तफ़्अ़लू मिन् ख़ैरिन् फ़-इन्नल्ला-ह का-न बिही अ़लीमा (127) व इनिम्र-अतुन् ख़ाफ़त् मिम्-बअ़्लिहा नुशूज़न् औ इअ़्राज़न् फ़ला जुना-ह अ़लैहिमा अंय्युस्लिहा बैनहुमा सुल्हन्, वस्सुल्हु ख़ैरुन्,व उह्ज़ि-रतिल् अन्फ़ुसुश्शुह्-ह, व इन् तुह्सिनू व तत्तक़ू	और तुझसे रुख़्सत (छूट और इजाज़त) माँगते हैं औरतों के निकाह की, कह दे- तुमको इजाज़त देता है उनकी और वह जो तुमको सुनाया जाता है क़ुरआन में सो हुक्म है उन यतीम औरतों का जिनको तुम नहीं देते जो उनके लिये मुक़र्रर किया है और चाहते हो कि उनको निकाह में ले आओ, और हुक्म है कमज़ोर व बेबस लड़कों का, और यह कि क़ायम रहो यतीमों के हक़ में इन्साफ़ पर, और जो करोगे भलाई सो वह अल्लाह को मालूम है। (127) और अगर कोई औरत डरे अपने ख़ाविन्द के लड़ने से या जी भर जाने से तो कुछ गुनाह नहीं दोनों पर कि कर लें आपस में किसी तरह सुलह, और सुलह अच्छी चीज़ है और दिलों के सामने मौजूद है हिर्स

फ़-इन्नल्ला-ह का-न बिमा तअ्मलू-न ख़बीरा (128) व लन् तस्ततीअू अन् तअ्दिलू बैनन्निसा-इ व लौ हरस्तुम् फ़ला तमीलू कुल्लल्-मैलि फ़-त-ज़रूहा कल्-मुअ़ल्ल-क़ति, व इन् तुस्लिहू व तत्तक़ू फ़-इन्नल्ला-ह का-न ग़फ़ूरर्-रहीमा (129) व इंय्य-तफ़र्रक़ा युग़्निल्लाहु कुल्लम्-मिन् स-अ़तिही, व कानल्लाहु वासिअ़न् हकीमा (130)	(लालच), और अगर तुम नेकी करो और परहेज़गारी करो तो अल्लाह को तुम्हारे सब कामों की ख़बर है। (128) और तुम हरगिज़ बराबर न रख सकोगे औ़रतों को अगरचे इसकी हिर्स (तमन्ना व कोशिश) करो, सो बिल्कुल फिर भी न जाओ कि डाल रखो एक औ़रत को जैसे अधर में लटकती, और अगर इस्लाह (सुधार) करते रहो और परहेज़गारी करते रहो तो अल्लाह बख़्शने वाला मेहरबान है। (129) और अगर दोनों अलग हो जायें तो अल्लाह हर एक को बेपरवाह कर देगा अपनी कशाईश (वुस्अ़त और रोज़ी के फैलाव) से, और अल्लाह कशाईश वाला तदबीर वाला है। (130)

इन आयतों के मज़ामीन का पीछे से संबन्ध

सूरत के शुरू में यतीमों और औ़रतों के ख़ास अहकाम और उनके हुक़ूक़ अदा करने का वाजिब होना मज़कूर था, क्योंकि जाहिलीयत (इस्लाम से पहले ज़माने) में बाज़े उनको मीरास ही न देते थे, बाज़े जो माल मीरास में या और किसी तरह से उनको मिलता उसको नाजायज़ तौर पर खा जाते थे, बाज़े उनसे निकाह करके उनको मेहर पूरा न देते, ऊपर इन सब की मनाही की गई थी, इस पर मुख़्तलिफ़ वाक़िआ़त पेश आये, कुछ को तो यह ख़्याल हुआ कि औ़रतें और बच्चे अपने आप में मीरास के क़ाबिल नहीं, किसी वक़्ती मस्लेहत से यह हुक्म चन्द लोगों के लिये हो गया है, उम्मीद है कि मन्सूख़ (निरस्त और ख़त्म) हो जायेगा, और बाज़े इसके मुन्तज़िर रहे। जब हुक्म रद्द और वापस न हुआ तो यह मश्विरा तय किया कि खुद हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से पूछना चाहिये और हाज़िर होकर पूछा। इमाम इब्ने जरीर और इमाम इब्नुल-मन्ज़िर रहमतुल्लाहि अ़लैहिमा ने आयत के नाज़िल होने का सबब इसी सवाल को नक़ल किया है और इसके बाद की आयतों में औ़रतों से संबन्धित चन्द और मसाईल बयान फ़रमा दिये गये। (तफ़सीर बयानुल-क़ुरआन)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

और लोग आप से औ़रतों (की मीरास और मेहर) के बारे में हुक्म मालूम करते हैं, आप

फ़रमा दीजिए कि अल्लाह तआ़ला उनके बारे में तुमको (वही पहला) हुक्म देते हैं और वे आयतें भी (तुमको हुक्म देती हैं) जो कि (इससे पहले नाज़िल हो चुकी हैं और) क़ुरआन के अन्दर तुमको पढ़कर सुनाई जाया करती हैं (क्योंकि क़ुरआन की तिलावत में उनकी तिलावत भी ज़ाहिर है कि हुआ ही करती है) जो कि उन यतीम औ़रतों के बारे में (नाज़िल हो चुकी) हैं, जिन (के साथ तुम्हारा यह मामला है कि अगर वे माल व ख़ूबसूरती की मालिक हुईं तो उनसे निकाह करते हो मगर उन) को जो (शरीअ़त से) उनका हक़ (मीरास व मेहर का) मुक़र्रर है, नहीं देते हो। और (अगर ख़ूबसूरत न हुईं सिर्फ़ मालदार हुईं तो) उनके साथ (इस वजह से कि वे ख़ूबसूरत नहीं हैं) निकाह करने से नफ़रत करते हो (लेकिन उनके मालदार होने की वजह से इस ख़ौफ़ से कि यह माल कहीं और न चला जाये, और किसी से भी निकाह नहीं करने देते)। और (जो आयतें कि) कमज़ोर बच्चों के बारे में (हैं) और (जो आयतें कि) इस बारे में (हैं) कि यतीमों की (तमाम) कारगुज़ारी (चाहे वह मेहर व मीरास के मुताल्लिक़ हो या और कुछ हो) इन्साफ़ के साथ करो (यह मज़मून है उन पहले की आयतों का। पस वे आयतें अपना मज़मून अब भी तुम्हारे ज़िम्मे वाजिब कर रही हैं और उनका हुक्म जूँ-का-तूँ बाक़ी है, तुम उन्हीं के मुवाफ़िक़ अ़मल रखो) और जो नेक काम करोगे (औ़रतों और यतीमों के बारे में या और मामलों में भी) सो बेशक अल्लाह तआ़ला उसको ख़ूब जानते हैं (तुमको उनका अच्छा बदला देंगे और जानते तो हैं ख़ैर के अ़लावा को भी, लेकिन यहाँ तरग़ीब ख़ैर की मक़सूद है, इसलिये तख़्सीस की गई)।

और अगर किसी औ़रत को (हालात व अन्दाज़े से) अपने शौहर से ज़्यादा आशंका बद-दिमाग़ी (और बुरे व्यवहार) या बेपरवाई (और बेरुख़ी) की हो, सो (ऐसी हालत में) दोनों को इस बात में कोई गुनाह नहीं कि दोनों आपस में एक ख़ास तरीक़े पर सुलह कर लें (यानी औ़रत अगर ऐसे शौहर के पास रहना चाहे जो पूरे हुक़ूक़ अदा करना नहीं चाहता और इसलिये उसको छोड़ना चाहता है तो औ़रत को जायज़ है कि अपने कुछ हुक़ूक़ छोड़ दे, जैसे नान-नफ़क़ा "रोटी-कपड़ा और ज़रूरी ख़र्चा" माफ़ कर दे, या उसकी मात्रा कम कर दे और अपनी बारी माफ़ कर दे ताकि वह छोड़े नहीं। और शौहर को भी जायज़ है कि उस माफ़ करने को क़ुबूल कर ले) और (झगड़े या अलग होने से तो) यह सुलह (ही) बेहतर है, और (ऐसी सुलह हो जाना कुछ बईद नहीं, क्योंकि) नफ़्सों के अन्दर (तबई तौर पर) लालच पाया जाता है (जब उसका लालच पूरा हो जाता है तो वह राज़ी हो जाता है। पस शौहर जब देखेगा कि मेरी माली और जानी आज़ादी में जिसकी तबई हिर्स है कुछ ख़लल नहीं आता और मुफ़्त में औ़रत मिलती है तो वह ग़ालिबन निकाह में रखने पर राज़ी हो जायेगा और औ़रत की हिर्स निकाह में रहने पर चाहे किसी वजह से हो ज़ाहिर है कि असली सबब है सुलह का, पस दोनों तरफ़ की ख़ास-ख़ास हिर्स "लालच व इच्छा" ने उस सुलह की तकमील कर दी) और (ऐ मर्दो!) अगर तुम (ख़ुद औ़रतों के साथ) अच्छा बर्ताव रखो (और उनसे हुक़ूक़ माफ़ कराने के इच्छुक न हो) और उनके साथ (बुरे व्यवहार और बेरुख़ी करने से) एहतियात रखो तो (तुमको बड़ा सवाब मिले, क्योंकि) बेशक हक़ तआ़ला तुम्हारे आमाल की पूरी ख़बर रखते हैं (और नेक आमाल पर सवाब दिया करते हैं)।

और (आदतन) तुमसे यह तो कभी न हो सकेगा कि सब बीवियों में (हर तरह से) बराबरी रखो (यहाँ तक कि दिली चाहत में भी) अगरचे (इस बराबरी को) तुम्हारा कितना ही जी चाहे (और तुम कितनी ही इसमें कोशिश करो, लेकिन चूँकि दिल का मैलान ग़ैर-इख़्तियारी है इसलिये इस पर क़ुदरत नहीं अगरचे इत्तिफ़ाक़न बिना इख़्तियार के कहीं बराबरी हो जाये तो उसकी नफ़ी आयत में मक़सूद नहीं। ग़र्ज़ कि जब इख़्तियार में नहीं तो तुम उसके मुकल्लफ़ (पाबन्द व ज़िम्मेदार) नहीं, लेकिन इसके ग़ैर-इख़्तियारी होने से यह तो लाज़िम नहीं आता कि ज़ाहिरी हुक़ूक़ भी इख़्तियारी न रहें, बल्कि वे तो इख़्तियारी हैं। जब वे इख़्तियारी हैं) तो (तुम पर वाजिब है कि) तुम बिल्कुल एक ही तरफ़ न ढल जाओ (बिल्कुल का मतलब यह कि बातिन से भी जिसमें माज़ूर थे और ज़ाहिर से भी जिसमें मुख़्तार हो, यानी शरीअत के हुक़ूक़ में उनसे झगड़ा और बेरुख़ी न करो) जिससे उस (बेचारी) को ऐसा कर दो जैसे कोई अधर (यानी बीच) में लटकी हो (यानी न तो उसके हुक़ूक़ अदा किये जायें कि शौहर वाली समझी जाये और न उसको तलाक़ दी जाये कि बिना शौहर वाली कही जाये, बल्कि रखो तो अच्छी तरह रखो) और (रखने की सूरत में जो गुज़रे वक़्त में नागवार मामलात उनसे किये गये) अगर (उन मामलात का फ़िलहाल) सुधार कर लो और (आने वाले वक़्त में ऐसे मामलात से) एहतियात रखो तो (वो पीछे गुज़री बातें माफ़ कर दी जायेंगी, क्योंकि) बेशक अल्लाह तआ़ला बड़े मग़फ़िरत वाले, बड़ी रहमत वाले हैं (चूँकि सुधार में यह माफ़ी भी आ गई तो इसके हो जाने के बाद शरई तौर पर तौबा सही हो गई, इसलिये मक़बूल हो गई)।

और अगर दोनों मियाँ-बीवी (में किसी भी तरह मुवाफ़क़त पैदा न हुई और दोनों) अलग हो जाएँ (यानी ख़ुला या तलाक़ हो जाये) तो (कोई उनमें से चाहे मर्द अगर उसकी ज़्यादती है या औरत अगर उसकी कोताही है, यूँ न समझे कि मेरे बग़ैर उस दूसरे का काम न चलेगा, क्योंकि) अल्लाह तआ़ला अपनी वुस्अ़त (क़ुदरत) से (दोनों में से) हर एक को (दूसरे की) ज़रूरत से फ़ारिग़ कर देगा (यानी हर एक का मुक़द्दर और तयशुदा काम बिना दूसरे के चल जायेगा) और अल्लाह तआ़ला बड़े वुस्अ़त वाले, बड़ी हिक्मत वाले हैं (हर एक के लिये मुनासिब रास्ता निकाल देते हैं)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

दाम्पत्य जीवन से संबन्धित चन्द क़ुरआनी हिदायतें

وَاِنِ امْرَاَةٌ خَافَتْ مِنْ بَعْلِهَا.... (الی قوله).... وَاسِعًا حَكِيْمًا○

इन तीनों आयतों (यानी आयत नम्बर 128-130) में हक़ तआ़ला शानुहू ने शादी-शुदा ज़िन्दगी के उस कड़वे और कठिन पहलू के मुताल्लिक़ हिदायतें दी हैं जो इस लम्बी ज़िन्दगी के विभिन्न हिस्सों में हर जोड़े को कभी न कभी पेश आ ही जाता है, वह है आपसी रंजिश और मनमुटाव, और यह ऐसी चीज़ है कि इस पर सही उसूल के मातहत क़ाबू पाने की कोशिश न

की जाये तो न सिर्फ़ मियाँ-बीवी के लिये दुनिया जहन्नम बन जाती है बल्कि कई बार ये घरेलू रंजिशें ख़ानदानों और क़बीलों की आपसी जंग और क़त्ल व क़िताल तक नौबत पहुँचा देती हैं। क़ुरआने पाक मर्द व औरत दोनों के तमाम जज़्बात और एहसासात को सामने रखकर हर फ़रीक़ को एक ऐसा ज़िन्दगी का निज़ाम बतलाने के लिये आया है जिस पर अमल करने का लाज़िमी नतीजा यह है कि इनसान का घर दुनिया ही में जन्नत बन जायेगा, घरेलू कड़वाहटें, मुहब्बत व राहत में तब्दील हो जायेंगी और अगर अनिवार्य हालात में अलग होने की नौबत भी आ जाये तो वह भी ख़ुशगवार तरीक़े, अच्छे ढंग के साथ हो, ताल्लुक़ का तोड़ना भी ऐसा हो कि दुश्मनी, नफ़रत और तकलीफ़ पहुँचाने के जज़्बात पीछे न छोड़ दे।

आयत नम्बर 128 ऐसे हालात से मुताल्लिक़ है जिसमें ग़ैर-इख़्तियारी तौर पर मियाँ-बीवी के ताल्लुक़ात ख़राब हो जायें, हर फ़रीक़ अपनी जगह माज़ूर समझा जाये, और आपसी कड़वाहट की वजह से इसका अन्देशा हो जाये कि आपसी हुक़ूक़ की अदायेगी में कोताही हो जायेगी, जैसे एक बीवी से उसके शौहर का दिल नहीं मिलता और दिल न मिलने के कारणों को दूर करना औरत के इख़्तियार में नहीं, जैसे औरत बदसूरत या ज़्यादा उम्र की है शौहर ख़ूबसूरत है, तो ज़ाहिर है कि इसमें न औरत का क़सूर है और न मर्द ही कुछ मुजरिम कहा जा सकता है।

चुनाँचे इस आयत के शाने नुज़ूल में इसी तरह के चन्द वाक़िआत तफ़सीरे मज़हरी वग़ैरह में नक़ल किये गये हैं। ऐसे हालात में मर्द के लिये तो एक आम क़ानून क़ुरआने करीम ने यह बतलाया है कि:

فَإِمْسَاكٌ ۢ بِمَعْرُوْفٍ اَوْ تَسْرِيْحٌ ۢ بِإِحْسَانٍ

कि उस औरत को रखना हो तो दस्तूर के मुताबिक़ उसके पूरे हुक़ूक़ अदा करके रखो, और अगर इस पर क़ुदरत नहीं तो उसको अच्छे अन्दाज़ से आज़ाद कर दो। अब अगर औरत भी आज़ाद होने के लिये तैयार है तो मामला साफ़ है कि ताल्लुक़ ख़त्म करना भी अच्छे अन्दाज़ में हो जायेगा, लेकिन अगर ऐसे हालात में औरत किसी वजह से आज़ादी नहीं चाहती चाहे अपनी औलाद के हित की वजह से या इस वजह से कि उसका कोई दूसरा सहारा नहीं, तो यहाँ एक ही रास्ता है कि शौहर को किसी चीज़ पर राज़ी किया जाये। जैसे औरत अपने तमाम या कुछ हुक़ूक़ का मुतालबा छोड़ दे, और शौहर यह ख़्याल करे कि बहुत से हुक़ूक़ के भार से तो मुक्ति मिल रही है, बीवी मुफ़्त में मिलती है, इस पर सुलह हो जाये।

क़ुरआने करीम की इस आयत में एक तो इस तरह के समझौते की संभावना की तरफ़ रहनुमाई इस तरह फ़रमाईः

وَاُحْضِرَتِ الْاَنْفُسُ الشُّحَّ

यानी "हिर्स हर एक के अन्दर रहती है।" ऐसे समझौते में औरत को तो हिर्स (लालच) यह है कि मुझे आज़ाद कर दिया तो औलाद बरबाद हो जायेगी, या मेरी ज़िन्दगी दूसरी जगह तल्ख़ होगी। और शौहर को यह लालच है कि जब औरत ने अपना तमाम मेहर या कुछ हिस्सा माफ़

कर दिया और दूसरे हुक़ूक़ का भी मुतालबा छोड़ दिया तो अब उसको रखने में मेरे लिये क्या मुश्किल है, इसलिये यह आपसी समझौता आसान हो जायेगा। इसके साथ इरशाद फ़रमायाः

وَاِنِ امْرَاَةٌ خَافَتْ مِنْۢ بَعْلِهَا نُشُوْزًا اَوْ اِعْرَاضًا فَلَا جُنَاحَ عَلَيْهِمَآ اَنْ يُّصْلِحَا بَيْنَهُمَا صُلْحًا

यानी "अगर कोई औरत अपने शौहर से लड़ाई झगड़े या बेरुख़ी का ख़तरा महसूस करे तो दोनों में से किसी को गुनाह नहीं होगा, अगर आपस में ख़ास शर्तों पर सुलह कर लें।" और गुनाह न होने के उनवान से इसलिये ताबीर फ़रमाया कि इस मामले की सूरत बज़ाहिर रिश्वत की सी है कि शौहर को मेहर वग़ैरह की माफ़ी का लालच देकर दाम्पत्य जीवन का ताल्लुक़ बाक़ी रखा गया है, लेकिन क़ुरआन के इस इरशाद ने स्पष्ट कर दिया कि यह रिश्वत में दाख़िल नहीं, बल्कि मस्लेहत में दाख़िल है, जिसमें दोनों पक्ष अपने कुछ-कुछ का मुतालबा छोड़कर किसी बीच के रास्ते में रज़ामन्द हो जाया करते हैं, और यह जायज़ है।

मियाँ-बीवी के झगड़े में बिना ज़रूरत दूसरों का दख़ल देना मुनासिब नहीं

तफ़सीरे मज़हरी में है कि इस जगह हक़ तआ़ला ने 'अंय्युस्लिहा बैनहुमा सुल्हा' फ़रमाया यानी "मियाँ बीवी दोनों आपस में किसी सूरत पर समझौता कर लें।" इसमें लफ़्ज़ 'बैनहुमा' (आपस में) से इस तरफ़ इशारा निकलता है कि मियाँ-बीवी के मामलात में बेहतर यही है कि कोई तीसरा दख़ल न दे, ये दोनों ख़ुद ही आपस में कोई बात तय कर लें, क्योंकि तीसरे की दख़ल-अन्दाज़ी से कई बार तो समझौता ही नामुम्किन हो जाता है, और हो भी जाये तो दोनों पक्षों के ऐब तीसरे आदमी के सामने बिना वजह आ जाते हैं जिससे बचना दोनों के लिये बेहतर और अच्छा है।

उक्त आयत के आख़िर में फ़रमायाः

وَاِنْ تُحْسِنُوْا وَتَتَّقُوْا فَاِنَّ اللّٰهَ كَانَ بِمَا تَعْمَلُوْنَ خَبِيْرًا

यानी ऐसे हालात में जबकि बीवी से तुम्हारा दिल नहीं मिलता और इस वजह से तुम उसके हुक़ूक़ अदा करना मुश्किल समझकर आज़ाद करना चाहते हो, तो अगरचे ज़ाबते (उसूल और क़ानून) में तुम्हें आज़ाद कर देने का इख़्तियार भी हासिल है और आयत के शुरू के हिस्से की रू से औरत के कुछ मुतालबे छोड़ने पर सुलह कर लेना भी जायज़ है, लेकिन अगर हक़ तआ़ला के ख़ौफ़ को सामने रखकर एहसान से काम लो और दिल न मिलने के बावजूद उसके ताल्लुक़ को भी निभाओ और उसके सब हुक़ूक़ भी पूरे करो, तो तुम्हारा यह अच्छा अ़मल अल्लाह तआ़ला के सामने है, जिसका यह नतीजा ज़ाहिर है कि अल्लाह तआ़ला तुम्हारे इस बरदाश्त करने और अच्छे सुलूक का बदला ऐसी नेमतों और हुक़ूक़ से देगा जिसका तुम कोई तसव्वुर भी नहीं कर सकते, और शायद इसी वजह से यहाँ सिर्फ़ यह बतलाकर छोड़ दिया कि तुम्हारा यह हुस्ने अ़मल

(अच्छा अ़मल) हमारे सामने है, इसका ज़िक्र नहीं किया कि इसका बदला क्या देंगे? इशारा इस तरफ़ है कि वह बदला तुम्हारे गुमान व ख़्याल से भी ज़्यादा होगा।

संबन्धित आयतों के मज़मून का ख़ुलासा यह हो गया कि शौहर जब यह देखे कि किसी वजह से उसका दिल अपनी बीवी से नहीं मिलता और उसके हुक़ूक़ पूरे नहीं होते, तो जहाँ तक बीवी के इख़्तियारी मामलात का ताल्लुक़ है उनकी तो इस्लाह (सही करने और सुधारने) की कोशिश करे। चेतावनी के लिये अस्थायी तौर पर बेरुख़ी, ज़बानी तंबीह और मजबूरी में मामूली मार-पीट भी करना पड़े तो करे, जैसा कि सूरः निसा की शुरू की आयतों में गुज़र चुका है, और अगर सारी कोशिशों के बावजूद इस्लाह (सुधार) से मायूस हो जाये या मामला कोई ऐसा है जिसका दुरुस्त करना औरत के इख़्तियार ही में नहीं, तो अब उसको शरई क़ानून यह हक़ देता है कि अच्छे अन्दाज़ के साथ बग़ैर किसी लड़ाई झगड़े के तलाक़ देकर आज़ाद कर दे, लेकिन अगर वह उसके ताल्लुक़ को उसी हालत में निभाये, अपने हुक़ूक़ को नज़र-अन्दाज़ और उसके हुक़ूक़ पूरे-पूरे अदा करे तो यह उसके लिये अफ़ज़ल व आला और बहुत बड़े सवाब का ज़रिया है। इसके मुक़ाबिल अगर मामला इसके उलट हो कि मर्द ज़रूरी हुक़ूक़ अदा नहीं करता, इसलिये औरत आज़ादी चाहती है तो इस सूरत में अगर शौहर भी आज़ाद करने पर राज़ी है तो मामला साफ़ है, औरत को भी यह हक़ मिलता है कि जब शौहर हुक़ूक़ अदा करने में कोताही की बिना पर उसको आज़ाद करना चाहे तो औरत भी अपनी आज़ादी इख़्तियार कर ले, और अगर शौहर अपने इख़्तियार से आज़ाद करने पर आमादा नहीं तो औरत को हक़ पहुँचता है कि इस्लामी अ़दालत से अपनी आज़ादी का मुतालबा करके आज़ाद हो जाये। लेकिन अगर वह शौहर की बेरुख़ी और ग़लत व्यवहार पर सब्र करके अपने हुक़ूक़ का मुतालबा छोड़कर उसको निभाये और शौहर के हुक़ूक़ को अदा करे तो यह उसके लिये अफ़ज़ल व आला और बहुत बड़े सवाब का ज़रिया है।

ख़ुलासा यह है कि एक तरफ़ अपनी तकलीफ़ को दूर करने और अपना हक़ वसूल करने का दोनों पक्षों को क़ानूनी हक़ क़ुरआने करीम ने दे दिया, दूसरी तरफ़ दोनों को बुलन्द अख़्लाक़ी और अपने हुक़ूक़ के छोड़ने पर सब्र की तालीम फ़रमाकर यह हिदायत फ़रमा दी कि जहाँ तक मुम्किन हो इस ताल्लुक़ को ख़त्म करने से बचना चाहिये, और चाहिये कि दोनों पक्ष अपने कुछ-कुछ हुक़ूक़ छोड़कर किसी ख़ास सूरत पर सुलह कर लें।

इस आयत के शुरू में तो मियाँ-बीवी के आपसी झगड़ों के वक़्त सुलह का सिर्फ़ जायज़ होना बतलाया गया है, और आयत के आख़िर में सुलह न होने की सूरत में भी सब्र व संयम के साथ ताल्लुक़ निभाने की तालीम फ़रमाई गई है। बीच में एक ऐसा जुमला इरशाद फ़रमाया है जिससे सुलह का पसन्दीदा और अफ़ज़ल व बेहतर होना साबित होता है। इरशाद है:

وَالصُّلْحُ خَيْرٌ

यानी "आपसी सुलह व समझौता करना बेहतर है।" और यह जुमला ऐसे आ़म उनवान से बयान फ़रमाया जिसमें बयान हो रहे मियाँ-बीवी के झगड़े भी दाख़िल हैं और दूसरी क़िस्म के

घरेलू झगड़े भी और तमाम दुनिया के मामलात के आपसी झगड़े और विवाद व मुक़द्दमे भी, क्योंकि क़ुरआन के अलफ़ाज़ आ़म हैं कि "सुलह बेहतर है"।

खुलासा मज़मून का यह है कि दोनों तरफ़ से अपने-अपने पूरे मुतालबे पर अड़े रहने के बजाय यह बेहतर है कि दोनों तरफ़ से अपने कुछ मुतालबात को छोड़ दिया जाये और किसी बीच की सूरत पर रज़ामन्दी के साथ सुलह व समझौता कर लें। रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का इरशाद है:

كُلُّ صُلْحٍ جَائِزٌ بَيْنَ الْمُسْلِمِيْنَ اِلَّا صُلْحًا اَحَلَّ حَرَامًا اَوْ حَرَّمَ حَلَالًا وَالْمُسْلِمِيْنَ عَلٰى شُرُوْطِهِمْ اِلَّا شَرْطًا حَرَّمَ حَلَالًا. (رواه الحاكم عن كثير بن عبد الله، تفسير مظهرى)

"यानी मुसलमानों के बीच हर तरह की सुलह व समझौता जायज़ है सिवाय उस सुलह के जिसमें किसी हराम को हलाल या हलाल को हराम ठहराया गया हो। और मुसलमानों को अपनी मानी हुई शर्तों पर क़ायम रहना चाहिये सिवाय उन शर्तों के जिनके ज़रिये किसी हलाल को हराम क़रार दिया गया हो।"

मिसाल के तौर पर किसी औ़रत से इस बात पर सुलह कर लेना जायज़ नहीं कि उसके साथ उसकी बहन को भी निकाह में रखा जाये, क्योंकि दो बहनों को निकाह में जमा करना शरई तौर पर हराम है। या इस पर सुलह करे कि दूसरी बीवी के हुक़ूक़ अदा न करेगा, क्योंकि इसमें एक हलाल को हराम ठहराना है।

और रिवायत में चूँकि उमूम के साथ हर सुलह को जायज़ क़रार दिया है इस उमूम से इमामे आज़म रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने यह मसला निकाला कि सुलह की सब क़िस्में जायज़ हैं, चाहे इक़रार के साथ हो जैसे जिस पर दावा किया गया हो वह यह इक़रार करे कि दावा करने वाले के दावे के मुताबिक़ मेरे ज़िम्मे उसके एक हज़ार रुपये वाजिबुल-अदा हैं, फिर सुलह-समझौता इस पर हो जाये कि दावा करने वाला उसमें से कुछ रक़म छोड़ दे, या उस रक़म के मुआ़वज़े में उससे कोई चीज़ ले ले, या जिस पर दावा किया गया है वह दावे के बारे में इक़रार व इनकार कुछ न करे और कहे कि हक़ीक़त जो कुछ भी हो मैं चाहता हूँ कि तुम इस सूरत पर सुलह कर लो, या जिस पर हक़ का दावा किया जा रहा है वह दावे से क़तई इनकार करे, लेकिन इनकार के बावजूद झगड़ा निपटाने के लिये कुछ देने पर राज़ी हो जाये और उस पर सुलह हो जाये। ये तीनों क़िस्में सुलह की जायज़ हैं, ख़ामोश रहने और इनकार करने की सूरत में कुछ इमामों और फ़ुक़हा का इख़्तिलाफ़ (मतभेद) भी है।

आख़िर में एक मसला क़ाबिले ज़िक्र है जिसका ताल्लुक़ मियाँ-बीवी की आपसी सुलह से है, जिसका ज़िक्र इस आयत में किया गया है, वह यह कि अगर किसी औ़रत ने अपने कुछ हुक़ूक़ का मुतालबा छोड़ देने पर सुलह कर ली तो यह सुलह औ़रत के उस हक़ को तो क़तई तौर पर ख़त्म कर देगी जो सुलह के वक़्त शौहर के ज़िम्मे आ़यद हो चुका है, जैसे मेहर का क़र्ज़, कि वह शौहर पर उस सुलह से पहले वाजिबुल-अदा हो चुका है, लिहाज़ा जब वह पूरा मेहर या उसका

कोई हिस्सा माफ़ कर देने पर सुलह करे तो यह मेहर या उसका हिस्सा ज़िम्मे से उतर जायेगा, उसके बाद उसको मुतालबे का हक़ बाक़ी न रहेगा। लेकिन जो हुक़ूक़ ऐसे हैं कि सुलह के वक़्त उनकी अदायेगी शौहर पर वाजिब ही न थी जैसे आने वाले वक़्त का नान-नफ़क़ा (ज़रूरी ख़र्चा) या रात गुज़ारने का हक़, जिसका वाजिब होना आने वाले ज़माने में होगा, इस वक़्त उसके ज़िम्मे वाजिबुल-अदा नहीं है, उन हुक़ूक़ के छोड़ने पर अगर सुलह कर ली गई तो औरत का मुतालबे का हक़ हमेशा के लिये ख़त्म नहीं हो जाता, बल्कि जब उसका दिल चाहे तो यह कह सकती है कि आईन्दा मैं अपना यह हक़ छोड़ने के लिये तैयार नहीं, इस सूरत में शौहर को इख़्तियार होगा कि उसको आज़ाद कर दे। (तफ़सीरे मज़हरी वग़ैरह)

आख़िरी आयत यानीः

وَاِنْ يَّتَفَرَّقَا يُغْنِ اللّٰهُ كُلًّا مِّنْ سَعَتِهٖ

(यानी आयत 130) में दोनों फ़रीक़ों को तसल्ली दी गई कि अगर सुधार व समझौते की सब कोशिशें नाकाम होकर अलग ही होना पड़े तो इससे भी परेशान होने की ज़रूरत नहीं है, अल्लाह तआ़ला हर एक को दूसरे से बेपरवाह फ़रमा देंगे। औरत के लिये कोई दूसरा ठिकाना और गुज़ारे का ज़रिया और मर्द के लिये दूसरी औरत मिल जायेगी। अल्लाह तआ़ला की क़ुदरत बड़ी वसीअ़ है, उससे मायूस होने की कोई वजह नहीं। उनमें से हर एक निकाह से पहले की अपनी ज़िन्दगी पर नज़र डाले कि एक दूसरे को पहचानता भी न था अल्लाह तआ़ला ने जोड़ा मिला दिया, आज भी फिर ऐसी सूरतें पैदा हो सकती हैं।

आयत के आख़िर मेंः

وَكَانَ اللّٰهُ وَاسِعًا حَكِيْمًا ۝

(और अल्लाह तआ़ला वुस्अ़त वाले और हिक्मत वाले हैं) फ़रमाकर इस बात को और पुख़्ता कर दिया कि अल्लाह तआ़ला के यहाँ बड़ी वुस्अ़त है और उसका हर काम हिक्मत पर आधारित है, मुम्किन है कि इस अलग होने ही में हिक्मत व मस्लेहत हो, अलग होने के बाद दोनों को ऐसे जोड़े मिल जायें कि दोनों की ज़िन्दगी सुधर जाये।

ग़ैर-इख़्तियारी चीज़ों पर पकड़ नहीं

दाम्पत्य जीवन को ख़ुशगवार (अच्छा) और पायदार बनाने के लिये क़ुरआने करीम ने मज़कूरा आयतों में जो हिदायतें दोनों फ़रीक़ों को दी हैं, इन आयतों में एक आयत यह हैः

وَلَنْ تَسْتَطِيْعُوْٓا اَنْ تَعْدِلُوْا بَيْنَ النِّسَآءِ

जिसमें दोनों फ़रीक़ों को एक ख़ास हिदायत फ़रमाई, वह यह कि एक मर्द के निकाह में एक से ज़्यादा औरतें हों तो क़ुरआने करीम ने सूरः निसा के शुरू में उसको यह हिदायत दी कि सब बीवियों में इन्साफ़ व बराबरी क़ायम रखना उसके ज़िम्मे फ़र्ज़ है, और जो यह ख़्याल करे कि इस फ़र्ज़ को मैं अदा न कर सकूँगा तो उसको चाहिये कि एक से ज़्यादा बीवियाँ न करे। इरशाद हैः

فَإِنْ خِفْتُمْ أَلَّا تَعْدِلُوا فَوَاحِدَةً

यानी "अगर तुमको यह ख़तरा हो कि दो बीवियों में बराबरी न कर सकोगे तो फिर एक ही पर इक्तिफ़ा (बस) करो।"

और रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने अपने क़ौल व अ़मल से बीवियों में इन्साफ़ व बराबरी को बहुत ही ताकीदी हुक्म क़रार दिया है, और इसकी ख़िलाफ़वर्ज़ी पर सख़्त धमकी सुनाई है। हज़रत आयशा रज़ियल्लाहु अ़न्हा फ़रमाती हैं कि रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम अपनी बीवियों में बराबरी और इन्साफ़ का पूरा एहतिमाम फ़रमाया करते थे, और साथ ही अल्लाह की बारगाह में अ़र्ज़ किया करते थेः

اَللّٰهُمَّ هٰذَا قَسْمِيْ فِيْمَا اَمْلِكُ فَلَا تَلُمْنِيْ فِيْمَا تَمْلِكُ وَلَا اَمْلِكُ

"यानी ऐ अल्लाह! यह मेरी इन्साफ़ वाली तक़सीम और बराबरी उस चीज़ में है जो मेरे इख़्तियार में है, इसलिये जो चीज़ आपके इख़्तियार में है मेरे इख़्तियार में नहीं यानी दिली मैलान और रुझान उसमें मुझसे पूछगछ न फ़रमाईये।"

रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से ज़्यादा अपने आप पर क़ाबू रखने वाला कौन हो सकता है? मगर दिली मैलान (झुकाव) को आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने भी अपने इख़्तियार से बाहर क़रार दिया और अल्लाह तआ़ला की बारगाह में उज़्र पेश किया।

सूरः निसा की शुरू की आयत के ज़ाहिरी अलफ़ाज़ से बीवियों में बिना किसी शर्त के बराबरी व इन्साफ़ का फ़र्ज़ होना मालूम होता था, जिसमें दिली मैलान में भी बराबरी करना दाख़िल है, और यह मामला इनसान के इख़्तियार में नहीं, इसलिये सूरः निसा की इस आयत में हक़ीक़ते हाल की वज़ाहत फ़रमा दी कि जिन चीज़ों पर तुम्हें क़ुदरत नहीं है उनमें बराबरी फ़र्ज़ नहीं है, अलबत्ता बराबरी इख़्तियारी मामलात में होगी, जैसे रात गुज़ारने, व्यवहार व मामलात और ख़र्चे वग़ैरह में। अल्लाह तआ़ला ने इस हुक्म को इस उनवान से बयान फ़रमाया जिससे एक शरीफ़ इनसान अ़मल करने पर मजबूर हो जाये, फ़रमायाः

وَلَنْ تَسْتَطِيْعُوْآ اَنْ تَعْدِلُوْا بَيْنَ النِّسَآءِ وَلَوْ حَرَصْتُمْ فَلَا تَمِيْلُوْا كُلَّ الْمَيْلِ فَتَذَرُوْهَا كَالْمُعَلَّقَةِ

"यानी तुम्हें मालूम है कि तुम सब बीवियों में अगर कोशिश भी करो तो दिली मैलान के बारे में बराबरी नहीं कर सकते, क्योंकि वह तुम्हारे इख़्तियार में नहीं, तो फिर ऐसा न करो कि पूरे ही एक तरफ़ ढल जाओ, यानी दिली मैलान तो उस तरफ़ था ही और इख़्तियारी मामलात में भी उसी को तरजीह देने लगो, जिसका नतीजा यह हो जाये कि दूसरी औ़रत लटकी ही रह जाये।" यानी शौहर उसके हुक़ूक़ भी न अदा करे और उसको आज़ाद भी न करे।

मालूम हुआ कि इस आयत में इन्साफ़ पर किसी की क़ुदरत न होने का जो ज़िक्र है वह दिली मैलान की बराबरी है जो इनसान के इख़्तियार में नहीं, और इस आयत के अलफ़ाज़ः

فَلَا تَمِيْلُوْا كُلَّ الْمَيْلِ

में ख़ुद इस मफ़्हूम का इशारा मौजूद है। क्योंकि मायने इन अलफ़ाज़ के ये हैं कि अगरचे

दिली मैलान में बराबरी तुम्हारी ताक़त में नहीं, मगर बिल्कुल एक ही तरफ़ के न हो रहो, कि इख़्तियारी मामलात में भी उसको तरजीह (प्राथमिकता व वरीयता) देने लगो।

इस तरह यह आयत सूरः निसा की पहली आयत की तशरीह (व्याख्या) हो गई कि उसके ज़ाहिरी अलफ़ाज़ से दिली मैलान में भी बराबरी का फ़र्ज़ होना मालूम हो रहा था, इस आयत ने स्पष्ट कर दिया कि यह ग़ैर-इख़्तियारी होने के सबब फ़र्ज़ नहीं, बल्कि फ़र्ज़ इख़्तियारी मामलात में बराबरी फ़र्ज़ है।

इस आयत से अनेक बीवियाँ रखने के ख़िलाफ़ दलील पकड़ना क़तई ग़लत है

बयान हुई तफ़सील से उन लोगों की ग़लत-फ़हमी भी स्पष्ट हो गई जो इन दोनों आयतों को मिलाकर यह नतीजा निकालना चाहते हैं कि सूरः निसा की शुरू की आयत ने यह हुक्म दिया कि अगर चन्द बीवियों में बराबरी न कर सको तो फिर एक ही निकाह पर सब्र करो, दूसरा निकाह न करो, और इस दूसरी आयत ने यह बतला दिया कि दो बीवियों में बराबरी मुम्किन ही नहीं, इसलिये नतीजा यह निकल आया कि दो बीवियों को निकाह में रखना जायज़ नहीं। और अजीब बात यह है कि अल्लाह जल्ल शानुहू ने खुद इन दोनों आयतों के अन्दर इस ग़लत-फ़हमी को दूर करने का सामान रख दिया है, दूसरी आयत का इशारा अभी गुज़र चुका है किः

فَلَا تَمِيْلُوْا كُلَّ الْمَيْلِ

के अलफ़ाज़ हैं, और पहली आयत में यह फ़रमायाः

فَاِنْ خِفْتُمْ اَلَّا تَعْدِلُوْا فَوَاحِدَةً

इसमें बतौर शर्त के यह फ़रमाना कि "अगर तुम्हें ख़तरा हो" यह लफ़्ज़ खुला हुआ क़रीना (इशारा) इसका है कि दो बीवियों में इन्साफ़ व बराबरी नामुम्किन या इख़्तियार से बाहर नहीं, वरना इस लम्बी इबारत की और फिर वह भी दो आयतों में, कोई ज़रूरत ही न थी। जैसेः

حُرِّمَتْ عَلَيْكُمْ اُمَّهٰتُكُمْ وَبَنٰتُكُمْ

(यानी सूरः निसा की आयत नम्बर 23) वाली आयत में उन औरतों की तफ़सील दी जिनसे निकाह हराम है, और दो बहनों को निकाह में जमा करने की हुर्मत (हराम होना) बतलाई गई है। इसी तरह यह भी फ़रमा दिया जाता कि एक वक़्त में एक से ज़्यादा बीवियाँ रखना हराम है और फिर जमा करने के साथ "दो बहनों" की क़ैद (शर्त) फ़ुज़ूल हो जाती। इसी एक जुमले में यूँ फ़रमा दिया जाताः

وَاَنْ تَجْمَعُوْا بَيْنَ امْرَاَتَيْنِ

यानी दो औरतों को निकाह में जमा रखना बिल्कुल हराम है, मगर क़ुरआने करीम ने इस मुख़्तसर कलाम को छोड़कर न सिर्फ़ एक लम्बी इबारत इख़्तियार की, बल्कि दो आयतों में

इसकी तफ़सील बयान फ़रमाई। इससे यह भी मालूम हुआ कि आयतः

وَاَنْ تَجْمَعُوْا بَيْنَ الْاُخْتَيْنِ

(और यह कि इकट्ठा करो दो बहनों को) भी एक हैसियत से इसका जवाज़ बतला रही है कि एक से ज़्यादा औरतों को निकाह में जमा रखना तो जायज़ है मगर शर्त यह है कि वे दोनों आपस में बहनें न हों।

وَلِلّٰهِ مَا فِي السَّمٰوٰتِ وَمَا فِي الْاَرْضِ ۭ وَلَقَدْ وَصَّيْنَا الَّذِيْنَ اُوْتُوا الْكِتٰبَ مِنْ قَبْلِكُمْ وَاِيَّاكُمْ اَنِ اتَّقُوا اللّٰهَ ۭ وَاِنْ تَكْفُرُوْا فَاِنَّ لِلّٰهِ مَا فِي السَّمٰوٰتِ وَمَا فِي الْاَرْضِ ۭ وَكَانَ اللّٰهُ غَنِيًّا حَمِيْدًا ۝ وَلِلّٰهِ مَا فِي السَّمٰوٰتِ وَمَا فِي الْاَرْضِ ۭ وَكَفٰى بِاللّٰهِ وَكِيْلًا ۝ اِنْ يَّشَاْ يُذْهِبْكُمْ اَيُّهَا النَّاسُ وَيَاْتِ بِاٰخَرِيْنَ ۭ وَكَانَ اللّٰهُ عَلٰي ذٰلِكَ قَدِيْرًا ۝ مَنْ كَانَ يُرِيْدُ ثَوَابَ الدُّنْيَا فَعِنْدَ اللّٰهِ ثَوَابُ الدُّنْيَا وَالْاٰخِرَةِ ۭ وَكَانَ اللّٰهُ سَمِيْعًۢا بَصِيْرًا ۝

ع १९ १४

व लिल्लाहि मा फ़िस्समावाति व मा फ़िल्अर्ज़ि, व ल-क़द् वस्सैनल्लज़ी-न ऊतुल्-किता-ब मिन् क़ब्लिकुम् व इय्याकुम् अनित्तक़ुल्ला-ह, व इन् तक्फ़ुरू फ़-इन्-न लिल्लाहि मा फ़िस्समावाति व मा फ़िल्अर्ज़ि, व कानल्लाहु ग़निय्यन् हमीदा (131) व लिल्लाहि मा फ़िस्समावाति व मा फ़िल्अर्ज़ि, व कफ़ा बिल्लाहि वकीला (132) इंय्यशअ् युज़्हिब्कुम् अय्युहन्नासु व यअ्ति बिआ-ख़री-न, व कानल्लाहु अ़ला ज़ालि-क क़दीरा (133) मन् का-न युरीदु सवाबद्-दुन्या फ़-अिन्दल्लाहि सवाबुद्दुन्या

और अल्लाह का है जो कुछ आसमानों में है और जो कुछ है ज़मीन में, और हमने हुक्म दिया है पहले किताब वालों को और तुमको कि डरते रहो अल्लाह से, और अगर न मानोगे तो अल्लाह का है जो कुछ है आसमानों में और जो कुछ है ज़मीन में, और अल्लाह है बेपरवाह, सब ख़ूबियों वाला। (131) और अल्लाह का है जो कुछ है आसमनों में और जो कुछ है ज़मीन में, और अल्लाह काफ़ी है कारसाज़। (132) अगर चाहे तो तुमको दूर कर दे ऐ लोगो! और ले आये और लोगों को, और अल्लाह को यह क़ुदरत है। (133) जो कोई चाहता हो सवाब दुनिया का सो अल्लाह के यहाँ है सवाब

वल्आख़ि-रति, व कानल्लाहु समीअ़म्-बसीरा (134) ✿	दुनिया का और आख़िरत का, और अल्लाह सब कुछ सुनता देखता है। (134) ✿

इन आयतों के मज़मून का पीछे से संबन्ध

औरतों और यतीमों के अहकाम बयान करने के बाद क़ुरआनी अन्दाज़ के मुताबिक़ फिर तरग़ीब व तरहीब (यानी अच्छे कामों की तरफ़ शौक़ व तवज्जोह दिलाने और बुरी बातों व कामों से डराने) का मज़मून इरशाद फ़रमाया गया।

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

और अल्लाह तआ़ला की मिल्क हैं जो चीज़ें कि आसमानों में हैं और जो चीज़ें कि ज़मीन में हैं (तो ऐसे मालिक के अहकाम का मानना बहुत ही ज़रूरी है), और (अहकाम पर अ़मल करने का ख़िताब ख़ास तुम ही को नहीं बल्कि) वाक़ई हमने उन लोगों को भी हुक्म दिया था जिनको तुमसे पहले (आसमानी) किताब (यानी तौरात व इन्जील) मिली थी और तुमको भी (हुक्म दिया है) कि अल्लाह तआ़ला से डरो (जिसको तक़वा कहते हैं, जिसमें तमाम अहकाम की मुवाफ़क़त दाख़िल है, इसी लिये इस सूरत को तक़वे से शुरू करके इसकी तफ़सील में विभिन्न अहकाम लाये हैं) और (यह भी उनको और तुमको सुनाया गया कि) अगर तुम नाशुक्री करोगे (यानी अल्लाह के अहकाम की मुख़ालफ़त करोगे) तो (ख़ुदा तआ़ला का कोई नुक़सान नहीं, हाँ! तुम्हारा ही नुक़सान ज़रूर है क्योंकि) अल्लाह तआ़ला की (तो) मिल्क हैं जो चीज़ें कि आसमानों में हैं और जो चीज़ें कि ज़मीन में हैं (ऐसे बड़े सुल्तान का क्या नुक़सान होगा, अलबत्ता ऐसे बड़े सुल्तान की मुख़ालफ़त बेशक नुक़सानदेह है) और अल्लाह तआ़ला किसी (की इताअ़त) के मोहताज नहीं (और) ख़ुद अपनी ज़ात में तारीफ़ के लायक़ (व कामिल सिफ़ात वाले) हैं (पस किसी की मुख़ालफ़त से उनकी सिफ़ात में कोई नुक़्स लाज़िम नहीं आता)। और अल्लाह तआ़ला ही की मिल्क हैं जो चीज़ें कि आसमानों में हैं और जो चीज़ें कि ज़मीन में हैं, और (जब वह ऐसे क़ादिर व मुख़्तार हैं तो अपने इताअ़त-गुज़ार बन्दों के लिये वह) अल्लाह तआ़ला काफ़ी कारसाज़ हैं (पस उनकी कारसाज़ी के होते उनके फ़रमाँबरदारों को कौन नुक़सान पहुँचा सकता है, पस किसी से न डरना चाहिये और अल्लाह तआ़ला जो तुमको दीन के काम बतला रहे हैं तो तुम्हारी ही नेकबख़्ती और भलाई के लिये है वरना वह दूसरों से भी काम ले सकते हैं, क्योंकि उनकी ऐसी क़ुदरत है कि) अगर अल्लाह तआ़ला को मन्ज़ूर होता तो ऐ लोगो! तुम सब को फ़ना कर देता और दूसरों को मौजूद कर देता (और उनसे काम ले लेता जैसा कि एक दूसरी आयत में है:

إِنْ تَتَوَلَّوْا يَسْتَبْدِلْ قَوْمًا غَيْرَكُمْ.........الخ (٤٧:٣٨)

और अल्लाह तआ़ला इस पर पूरी क़ुदरत रखते हैं (फिर ऐसा जो नहीं किया तो यह उनकी इनायत है। हुक्म के पालन को ग़नीमत समझकर सौभाग्य प्राप्त करो और देखो दीन के काम का असली फल आख़िरत में है, दुनिया में न मिलने से मायूस न होना और बुरा न मनाना बल्कि) जो शख़्स (दीन के काम में) दुनिया का मुआ़वज़ा चाहता हो तो (वह बड़ी ग़लती में है क्योंकि) अल्लाह तआ़ला के पास (यानी उनकी क़ुदरत में) तो दुनिया और आख़िरत दोनों का मुआ़वज़ा (मौजूद) है (जब अदना आला दोनों पर उनकी क़ुदरत है तो आला ही चीज़ क्यों न माँगी जाये) और अल्लाह तआ़ला बड़े सुनने वाले, बड़े देखने वाले हैं (सब की बातों और दरख़्वास्तों को दुनिया की हों या दीन की सुनते हैं और सब की नीयतों को देखते हैं, पस आख़िरत के चाहने वालों को सवाब देंगे और दुनिया के चाहने वालों को आख़िरत में मेहरूम रखेंगे। पस आख़िरत ही की नीयत और दरख़्वास्त करनी चाहिये, अलबत्ता दुनिया की हाजत मुस्तक़िल तौर पर अलग से माँगने में कोई हर्ज नहीं, लेकिन इबादत में यह इरादा न करे)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

अहम फ़ायदे

لِلّٰهِ مَا فِی السَّمٰوٰتِ وَمَا فِی الْاَرْضِ

"यानी अल्लाह के लिये है आसमानों और ज़मीन की तमाम मख़्लूक़ात।" इस जगह इन अलफ़ाज़ को तीन मर्तबा दोहराया गया है- पहले से फ़राख़ी और वुस्अ़त मक़सूद है कि उसके यहाँ किसी चीज़ की कमी नहीं। दूसरे से बेनियाज़ी और बेपरवाई का बयान मक़सूद है कि उसको किसी की परवाह नहीं, अगर तुम गुन्किर हो। तीसरी दफ़ा में रहमत और कारसाज़ी का इज़हार है कि अगर परहेज़गारी व नेकी और अल्लाह की फ़रमाँबरदारी इख़्तियार करो तो वह तुम्हारे सब काम बना देगा।

तीसरी आयत में इस बात को वाज़ेह किया गया है कि अल्लाह तआ़ला इस पर क़ादिर है कि तुम सब को फ़ना कर दे और दुनिया से उठा ले, और दूसरे फ़रमाँबरदार व आज्ञाकारी लोगों को पैदा कर दे। इससे भी हक़ तआ़ला की हर एक से बेपरवाई और बेनियाज़ी ख़ूब ज़ाहिर हो गई, और नाफ़रमानों को पूरी तरह धमकी और डरावा भी हो गया।

يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا كُوْنُوْا قَوّٰمِيْنَ بِالْقِسْطِ شُهَدَآءَ لِلّٰهِ وَلَوْ عَلٰٓى اَنْفُسِكُمْ اَوِ الْوَالِدَيْنِ وَالْاَقْرَبِيْنَ ۚ اِنْ يَّكُنْ غَنِيًّا اَوْ فَقِيْرًا فَاللّٰهُ اَوْلٰى بِهِمَا ۖ فَلَا تَتَّبِعُوا الْهَوٰٓى اَنْ تَعْدِلُوْا ۚ وَاِنْ تَلْوٗٓا اَوْ تُعْرِضُوْا فَاِنَّ اللّٰهَ كَانَ بِمَا تَعْمَلُوْنَ خَبِيْرًا ۝

या अय्युहल्लज़ी-न आमनू कूनू क़व्वामी-न बिल्क़िस्ति शु-हदा-अ लिल्लाहि व लौ अला अन्फ़ुसिकुम् अविल्-वालिदैनि वल्-अक़्रबी-न, इंय्यकुन् ग़निय्यन् औ फ़क़ीरन् फ़ल्लाहु औला बिहिमा, फ़ला तत्तबिअुल्- हवा अन् तअ्दिलू व इन् तल्वू औ तुअ्रिज़ू फ-इन्नल्ला-ह का-न बिमा तअ्मलू-न ख़बीरा (135)	ऐ ईमान वालो! क़ायम रहो इन्साफ़ पर, गवाही दो अल्लाह की तरफ़ अगरचे नुक़सान हो तुम्हारा या माँ-बाप का या क़राबत वालों (क़रीबी रिश्तेदारों) का। अगर कोई मालदार है या मोहताज है तो अल्लाह उनका ख़ैरख़्वाह तुमसे ज़्यादा है, सो तुम पैरवी न करो दिल की इच्छा की इन्साफ़ करने में, और अगर तुम ज़बान मलोगे या बचा जाओगे (यानी बात को गोलमोल अदा करोगे) तो अल्लाह तुम्हारे सब कामों से वाक़िफ़ है। (135)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

ऐ ईमान वालो! (तमाम मामलात में हक़ की अदायेगी के वक़्त भी और फ़ैसले के वक़्त भी) इन्साफ़ पर ख़ूब क़ायम रहने वाले (और इक़रार या गवाही की नौबत आये तो) अल्लाह (को ख़ुश करने) के लिए (सच्ची) गवाही (और इज़हार) देने वाले रहो, अगरचे (वह गवाही और इज़हार) अपनी ही ज़ात के ख़िलाफ़ हो (जिसको इक़रार कहते हैं), या कि माँ-बाप और रिश्तेदारों के मुक़ाबले में हो। (और गवाही के वक़्त यह ख़्याल न करो कि जिसके मुक़ाबले में हम गवाही दे रहे हैं वह अमीर है, उसको नफ़ा पहुँचाना चाहिये ताकि उससे बेमुरव्वती न हो, या यह कि वह ग़रीब है उसका कैसे नुक़सान कर दें, तुम गवाही देने में किसी अमीरी ग़रीबी या नफ़े व नुक़सान को न देखो, क्योंकि) वह शख़्स (जिसके ख़िलाफ़ गवाही देनी पड़ेगी) अगर अमीर है तो, और ग़रीब है तो, दोनों के साथ अल्लाह तआ़ला को ज़्यादा ताल्लुक़ है (इतना ताल्लुक़ तुमको नहीं, क्योंकि तुम्हारा ताल्लुक़ जिस क़द्र है वह भी उन्हीं का दिया हुआ है, और अल्लाह तआ़ला का जो ताल्लुक़ है वह तुम्हारा दिया हुआ नहीं, फिर जब बावजूद मज़बूत ताल्लुक़ के अल्लाह तआ़ला ने उनकी मस्लेहत इसी में रखी है कि गवाही में हक़ बात कही जाये चाहे उससे वक़्ती तौर पर कुछ नुक़सान भी हो जाये तो तुम कमज़ोर ताल्लुक़ के बावजूद अपनी गवाही में उनकी एक वक़्ती और अस्थायी मस्लेहत का क्यों ख़्याल करते हो) सो तुम (उस गवाही में) नफ़्स की इच्छा की पैरवी मत करना, कभी तुम हक़ से हट जाओ, और अगर तुम ग़लत और ख़िलाफ़े हक़ीक़त बयान करोगे (यानी ग़लत गवाही दोगे) या किनारा करो और बचोगे (यानी गवाही को टालोगे) तो (याद रखना) बेशक अल्लाह तआ़ला तुम्हारे सब आमाल की पूरी ख़बर रखते हैं।

मआरिफ़ व मसाईल

दुनिया में अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम और आसमानी किताबें भेजने का असल मक़सद अ़दल व इन्साफ़ की स्थापना है, इसी से दुनिया का अमन व अमान क़ायम रह सकता है

सूरः निसा की इस आयत में तमाम मुसलमानों को अ़दल व इन्साफ़ पर क़ायम रहने और सच्ची गवाही देने की हिदायत की गई है, और जो चीज़ें इन्साफ़ या सच्ची गवाही की स्थापना में रुकावट हो सकती हैं उनको बहुत ही दिलनशीं अन्दाज़ में दूर किया गया है। इसी मज़मून की एक आयत सूरः मायदा में भी आने वाली है, दोनों का मज़मून बल्कि अलफ़ाज़ भी तक़रीबन एक जैसे हैं। और सूरः हदीद की आयत 25 से मालूम होता है कि दुनिया में हज़रत आदम अ़लैहिस्सलाम को अल्लाह का ख़लीफ़ा बनाकर भेजने का और फिर उनके बाद दूसरे अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम को एक के बाद दूसरे को अल्लाह के ख़लीफ़ा की हैसियत से भेजते रहने का, और उनके साथ बहुत सी किताबें और सहीफ़े नाज़िल फ़रमाने का अहम मक़सद यही था कि दुनिया में इन्साफ़ और उसके ज़रिये अमन व अमान क़ायम हो, हर इनसानी फ़र्द अपने-अपने दायरा-ए-इख़्तियार में इन्साफ़ को अपना मक़सद व चलन बना ले और जो नाफ़रमान लोग वअ़ज़ व नसीहत और तालीम व तब्लीग़ के ज़रिये अ़दल व इन्साफ़ पर न आयें, अपनी सरकशी पर अड़े रहें, उनको क़ानूनी सियासत और सज़ा व सख़्तियों के ज़रिये इन्साफ़ पर क़ायम रहने के लिये मजबूर किया जाये।

सूरः हदीद की पच्चीसवीं आयत में इस हक़ीक़त को इस तरह वाज़ेह फ़रमाया हैः

لَقَدْ اَرْسَلْنَا رُسُلَنَا بِالْبَيِّنٰتِ وَاَنْزَلْنَا مَعَهُمُ الْكِتٰبَ وَالْمِيْزَانَ لِيَقُوْمَ النَّاسُ بِالْقِسْطِ وَاَنْزَلْنَا الْحَدِيْدَ فِيْهِ بَأْسٌ شَدِيْدٌ وَّمَنَافِعُ لِلنَّاسِ.

"यानी हमने भेजे हैं अपने रसूल निशानियाँ देकर और उतारी उनके साथ किताब और तराज़ू ताकि लोग सीधे रहें इन्साफ़ पर, और हमने उतारा लोहा इसमें बड़ा रौब है और इससे लोगों के काम चलते हैं।"

इससे मालूम हुआ कि नबियों के भेजने और आसमानी किताबों को नाज़िल करने का सारा निज़ाम इन्साफ़ ही के लिये खड़ा किया गया है। रसूलों का भेजना और किताबों का नाज़िल करना इसी मक़सद के लिये अ़मल में आया है, और आख़िर में लोहा उतारने का ज़िक्र करके इस तरफ़ भी इशारा फ़रमा दिया कि सब लोगों को इन्साफ़ पर क़ायम रखने के लिये सिर्फ़ वअ़ज़ व नसीहत (समझाना और कहना-सुनना) ही काफ़ी न होगी, बल्कि कुछ शरीर लोग ऐसे होंगे जिनको लोहे की ज़न्जीरों और दूसरे हथियारों से मरऊब करके इन्साफ़ पर क़ायम किया जायेगा।

अ़दल व इन्साफ़ पर क़ायम रहना सिर्फ़ हुकूमत का फ़रीज़ा नहीं बल्कि हर इनसान इसका पाबन्द है

सूरः हदीद की उक्त आयत और सूरः निसा की इस आयत में, इसी तरह सूरः मायदा की इस आयतः

كُوْنُوْا قَوّٰمِيْنَ لِلّٰهِ شُهَدَآءَ بِالْقِسْطِ وَلَا يَجْرِمَنَّكُمْ شَنَاٰنُ قَوْمٍ عَلٰٓى اَلَّا تَعْدِلُوْا، اِعْدِلُوْا هُوَ اَقْرَبُ لِلتَّقْوٰى وَاتَّقُوا اللّٰهَ. اِنَّ اللّٰهَ خَبِيْرٌ ۢ بِمَا تَعْمَلُوْنَ ۝ (آیت:۸)

से वाज़ेह तौर पर यह हिदायत दी गई है कि इन्साफ़ क़ायम करना और उस पर क़ायम रहना सिर्फ़ हुकूमत और अ़दालत का फ़रीज़ा नहीं बल्कि हर इनसान इसका मुकल्लफ़ व मुख़ातब है कि वह ख़ुद इन्साफ़ पर क़ायम रहे और दूसरों को इन्साफ़ पर क़ायम रखने के लिये कोशिश करे। हाँ! इन्साफ़ का सिर्फ़ एक दर्जा हुकूमत और हाकिमों के साथ मख़्सूस है, वह यह कि शरीर और सरफिरे इनसान जब इन्साफ़ के ख़िलाफ़ अड़ जायें, न ख़ुद इन्साफ़ पर क़ायम रहें न दूसरों को अ़दल व इन्साफ़ करने दें तो हाकिमाना सख़्ती और सज़ा की ज़रूरत है। ये अ़दल व इन्साफ़ के ऑर्डर् ज़ाहिर है कि हुकूमत ही कर सकती है जिसके हाथ में ताक़त व इख़्तियार है।

आज की दुनिया में जाहिल अ़वाम को छोड़िये, लिखे-पढ़े तालीम याफ़्ता हज़रात भी यह समझते हैं कि इन्साफ़ करना सिर्फ़ हुकूमत व अ़दालत का फ़रीज़ा है, अ़वाम इसके ज़िम्मेदार नहीं हैं। और यही वह सब से बड़ी वजह है जिसने हर मुल्क, हर सल्तनत में हुकूमत और अ़वाम को एक दूसरे से टकराने वाले दो पक्ष बना दिया है। हाकिम व रिआ़या के बीच के मुख़ालफ़त व झगड़ों की गहरी खाई बाधक बना दी है। हर मुल्क के अ़वाम अपनी हुकूमत से अ़दल व इन्साफ़ का मुतालबा करते हैं लेकिन ख़ुद किसी इन्साफ़ पर क़ायम रहने के लिये तैयार नहीं होते। इसी का नतीजा है जो दुनिया आँखों से देख रही है कि क़ानून बेकार व बेजान है, अपराधों की दिन प्रति दिन बढ़ोतरी है, आज हर मुल्क में क़ानून बनाने के लिये पार्लियामेंट क़ायम हैं, उन पर करोड़ों रुपया ख़र्च होता है, उनके प्रतिनिधि चुनने के लिये चुनाव में ख़ुदा की पूरी ज़मीन हिल जाती है, और फिर ये पूरे मुल्क का दिल व दिमाग़, मुल्क की ज़रूरतें और लोगों के जज़्बात व एहसासात को सामने रखते हुए बड़ी एहतियात के साथ क़ानून बनाते हैं, और फिर अ़वामी राय के लिये प्रसारित करते हैं। अ़वामी राय मालूम करने के बाद यह क़ानून लागू करने के क़ाबिल समझा जाता है, फिर उसके लागू करने के लिये हुकूमत की बेहिसाब मशीनरी हरकत में आती है जिसके हज़ारों बल्कि लाखों विभाग होते हैं, और हर विभाग में मुल्क के बड़े-बड़े तजुर्बेकार लोगों की मेहनतें काम में लाई जाती हैं, लेकिन चली हुई रस्मों की दुनिया से ज़रा नज़र को ऊँचा करके देखा जाये और जिन लोगों को ख़्वाह-म-ख़्वाह तमीज़ व तहज़ीब और उच्च मूल्यों का ठेकेदार मान लिया गया है थोड़ी देर के लिये उनकी आँख बन्द करके की गयी पैरवी (अनुसरण) से निकलकर हक़ीक़त का जायज़ा लिया जाये तो हर शख़्स यह कहने पर मजबूर होगा कि:

निगाहे ख़ल्क़ में दुनिया की रौनक़ बढ़ती जाती है
मेरी नज़रों में फीका रंगे महफ़िल होता जाता है

अब से सौ साल पहले सन् 1857 ई. से सन् 1957 ई. तक की ही तुलना करें, आंकड़े महफ़ूज़ हैं वो गवाही देंगे कि जैसे-जैसे क़ानून बनाने का काम बढ़ा, क़ानून में अ़वाम की मर्ज़ी का दिखावा बढ़ा और क़ानून लागू और जारी करने के लिये मशीनरी बढ़ी, एक पुलिस के बजाय विभिन्न प्रकार की पुलिस काम में लगानी पड़ी, दिन प्रति दिन अपराध बढ़े और लोग इन्साफ़ से दूर होते चले गये, और उसी रफ़्तार से दुनिया की बद-अमनी (अशांति) बढ़ती चली गई।

विश्व-शांति की गारंटी सिर्फ़ अ़क़ीदा-ए-आख़िरत और अल्लाह का डर दे सकता है

कोई अ़क़्ल व समझ रखने वाला इनसान नहीं जो आँख खोलकर देखे, और चलती हुई रस्मों की जकड़-बन्दी को तोड़कर ज़रा रसूले अ़रबी सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के लाये हुए पैग़ाम को सोचे समझे और इस हक़ीक़त पर ग़ौर करे कि दुनिया का अमन व सुकून सिर्फ़ सज़ाओं और सख़्तियों से न कभी हासिल हुआ न आईन्दा होगा। दुनिया के अमन व अमान की ज़मानत सिर्फ़ अ़क़ीदा-ए-आख़िरत और ख़ौफ़े ख़ुदा दे सकता है जिसके ज़रिये राजा व पब्लिक, हाकिम व रिआ़या और अ़वाम व हुकूमत में सारे फ़राईज़ साझा हो जाते हैं, और हर शख़्स अपनी ज़िम्मेदारी को महसूस करने लगता है, क़ानून के सम्मान व सुरक्षा के लिये अ़वाम यह कहकर आज़ाद नहीं हो जाते कि यह काम हाकिमों का है। क़ुरआने मजीद की मज़कूरा आयतें अ़दल व इन्साफ़ की स्थापना के लिये इसी इन्क़िलाबी अ़क़ीदे की तालीम व हिदायत पर ख़त्म की गई हैं।

सूरः निसा की इस आयत के ख़त्म परः

إِنَّ اللّٰهَ بِمَا تَعْمَلُوْنَ خَبِيْرًا

का इरशाद हुआ, और सूरः मायदा की आयत के आख़िर में पहले तक़्वे की हिदायत फ़रमाई और फिर फ़रमायाः

إِنَّ اللّٰهَ خَبِيْرٌ ۢ بِمَا تَعْمَلُوْنَ

और सूरः हदीद की आयत के आख़िर में इरशाद हुआः

إِنَّ اللّٰهَ قَوِيٌّ عَزِيْزٌ

इन तीनों आयतों में हाकिमों और अ़वाम दोनों को अ़दल व इन्साफ़ पर क़ायम रहने और क़ायम रखने की हिदायत देने के बाद आयतों के ख़त्म पर सब की नज़रें उस हक़ीक़त की तरफ़ फेर दी गई हैं जो इनसान की ज़िन्दगी और उसके ख़्यालात व जज़्बात में ज़बरदस्त तब्दीली पैदा करने वाली है यानी ख़ुदा तआ़ला की क़ुव्वत व सल्तनत, उसके सामने हाज़िरी और हिसाब व किताब और जज़ा व सज़ा का तसव्वुर। यही वह चीज़ थी जिसने अब से सौ साल पहले की

अनपढ़ दुनिया को आज की तुलना में बहुत ज़्यादा अमन व सुकून बख़्शा हुआ था, और यही वह चीज़ है जिसके नज़र-अन्दाज़ कर देने की वजह से आज की तरक़्क़ी याफ़्ता आसमानों से बातें करने वाली, रॉकिट उड़ाने वाली दुनिया अमन व चैन से मेहरूम है।

रोशन-ख़्याल दुनिया सुन ले कि विज्ञान की हैरत-अंगेज़ तरक़्क़ियों से वे आसमान की तरफ़ चढ़ सकते हैं, ग्रहों पर जा सकते हैं, समन्दर में जा सकते हैं, लेकिन अमन व अमान और सुकून व इत्मीनान जो इन सारे सामानों और सारे कारख़ानों का असल मक़सद है, वह न उनको ग्रहों में हाथ आयेगा न किसी नई से नई ईजाद में, वह मिलेगा तो सिर्फ़ पैग़म्बरे अरबी सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के पैग़ाम और उनकी तालीमात में, ख़ुदा तआ़ला को मानने और आख़िरत के हिसाब पर अक़ीदा रखने में। बेशक दिलों का इत्मीनान अल्लाह की याद ही में है।

साईंस की हैरत-अंगेज़ खोजें, दिन-ब-दिन ख़ुदा तआ़ला की कामिल क़ुदरत और उसकी बेमिसाल कारीगरी को और ज़्यादा रोशन करती जाती हैं, जिनके सामने हर इनसानी तरक़्क़ी अपनी आ़जिज़ी व लाचारी को स्वीकार करके रह जाती है, मगरः

चे सूद चूँ दिले दाना व चश्मे बीना नेस्त

मगर क्या फ़ायदा जब समझ व अ़क्ल से काम ही न लिया जाये।

क़ुरआने करीम ने एक तरफ़ तो दुनिया के सारे निज़ाम का मंशा ही अ़दल व इन्साफ़ की स्थापना बतलाया, दूसरी तरफ़ इसका एक बेमिसाल इन्तिज़ाम ऐसा अ़जीब व ग़रीब फ़रमाया कि अगर इसके पूरे निज़ाम को अपनाया जाये और उस पर अ़मल किया जाये तो यही ख़ूँख़ार व बदकार दुनिया एक ऐसे नेक और अच्छे समाज में तब्दील हो जाये जो आख़िरत की जन्नत से पहले नक़द जन्नत हो, और क़ुरआन के फ़रमानः

وَلِمَنْ خَافَ مَقَامَ رَبِّهٖ جَنَّتٰنِ

जिसकी एक तफ़सीर यह भी है कि ख़ुदा से डरने वालों को दो जन्नतें मिलेंगी- एक आख़िरत में दूसरी नक़द दुनिया ही में, इसको खुली आँखों दुनिया ही में देख लिया जाये, और यह कोई सिर्फ़ फ़र्ज़ी ख़्याल या ख़्याली स्कीम नहीं, इस पैग़ाम के लाने वाले मुक़द्दस रसूल ने इसको अ़मली सूरत में लाकर छोड़ा है और उनके बाद ख़ुलफ़ा-ए-राशिदीन रज़ियल्लाहु अ़न्हुम और दूसरे सुन्नत के पैरोकार बादशाहों ने जब भी इस पर अ़मल किया तो शेर और बकरी के एक घाट पर पानी पीने की फ़र्ज़ी मिसाल एक हक़ीक़त बनकर लोगों के देखने में आ गई। ग़रीब व अमीर, मज़दूर व सरमायेदार का फ़र्क़ व फ़ासला पूरी तरह मिट गया। क़ानून का सम्मान हर फ़र्द अपने घरों के बन्द कमरों में, रात की अंधेरियों में करने लगा। यह कोई अफ़साना नहीं ऐतिहासिक तथ्य हैं जिनका एतिराफ़ ग़ैरों ने भी किया और हर साफ़-दिल ग़ैर-मुस्लिम भी इसके मानने पर मजबूर हुआ।

आयत के मज़मून के बाद आयत की तफ़सीर विस्तार से देखियेः

मज़कूरा आयत में 'कूनू क़व्वामी-न बिल्क़िस्ति' फ़रमाया गया। 'क़िस्त' के मायने अ़दल व इन्साफ़ के हैं। और अ़दल व इन्साफ़ की हक़ीक़त यह है कि हर हक़ वाले का हक़ पूरा अदा

किया जाये, इसके आम होने में अल्लाह तआ़ला के हुक़ूक़ भी दाख़िल हैं और सब किस्म के इनसानी हुक़ूक़ भी, इसलिये क़िस्त के क़ायम करने के मफ़्हूम में यह भी दाख़िल है कि कोई किसी पर ज़ुल्म न करे और यह भी दाख़िल है कि ज़ालिम को ज़ुल्म से रोका जाये, मज़लूम की हिमायत की जाये, और यह भी दाख़िल है कि ज़ालिम को ज़ुल्म से रोकने और मज़लूम का पूरा हक़ दिलवाने के लिये गवाही की ज़रूरत पेश आये तो गवाही से गुरेज़ न किया जाये, और यह भी दाख़िल है कि गवाही में हक़ और हक़ीक़त का इज़हार किया जाये, चाहे वह किसी के मुवाफ़िक़ पड़े या मुख़ालिफ़, यह भी दाख़िल है कि जिन लोगों के हाथ में हुकूमत और इन्तिज़ाम है जब दो फ़रीक़ों का कोई मुक़द्दमा उनके सामने पेश हो तो दोनों फ़रीक़ों के साथ बराबरी का मामला करें, किसी एक तरफ़ किसी तरह का मैलान न होने दें। गवाहों के बयानात ग़ौर से सुनें, मामले की तहक़ीक़ में अपनी पूरी कोशिश ख़र्च करें, फिर फ़ैसले में पूरे-पूरे अ़दल व इन्साफ़ का मामला रखें।

अ़दल व इन्साफ़ की स्थापना में रुकावट बनने वाले असबाब

सूरः निसा और सूरः मायदा की ये दोनों आयतें अगरचे अलग-अलग सूरतों की हैं लेकिन मज़मून दोनों का तक़रीबन एक जैसा है। फ़र्क़ इतना है कि अ़दल व इन्साफ़ की राह में रुकावट डालने वाली आ़दतन दो चीज़ें हुआ करती हैं- एक किसी की मुहब्बत व रिश्तेदारी या दोस्ती व ताल्लुक़, जिसका तक़ाज़ा गवाह के दिल में यह होता है कि गवाही उनके मुवाफ़िक़ दी जाये ताकि वे नुक़सान से महफ़ूज़ रहें या उनको नफ़ा पहुँचे और फ़ैसला करने वाले क़ाज़ी या जज के दिल में इस ताल्लुक़ का तक़ाज़ा यह होता है कि फ़ैसला उनके हक़ में दे। दूसरी चीज़ किसी की अ़दावत या दुश्मनी है जो गवाह को उसके ख़िलाफ़ गवाही देने पर आमादा कर सकती है, और क़ाज़ी और जज को उसके ख़िलाफ़ फ़ैसला देने का कारण बन सकती है। ग़र्ज़ कि मुहब्बत व दुश्मनी दो ऐसी चीज़ें हैं जो इनसान को अ़दल व इन्साफ़ की राह से हटाकर ज़ुल्म व ज़्यादती में मुब्तला कर सकती हैं। सूरः निसा और सूरः मायदा की दोनों आयतों में इन्हीं दोनों रुकावटों को दूर किया गया है। सूरः निसा की आयत में रिश्तेदारी व ताल्लुक़ की रुकावट दूर करने की हिदायत फ़रमाई गई है। इरशाद है:

اَوِالْوَالِدَيْنِ وَالْاَقْرَبِيْنَ

यानी अगरचे तुम्हारी गवाही अपने माँ-बाप या क़रीबी रिश्तेदारों ही के ख़िलाफ़ पड़े तो भी हक़ बात कहने और सच्ची गवाही देने में उस ताल्लुक़ का लिहाज़ न करो।

और सूरः मायदा की आयत में अ़दावत व दुश्मनी की रुकावट को दूर किया गया है, चुनाँचे फ़रमायाः

لَا يَجْرِمَنَّكُمْ شَنَاٰنُ قَوْمٍ عَلٰٓى اَلَّا تَعْدِلُوْا اِعْدِلُوْا هُوَ اَقْرَبُ لِلتَّقْوٰى

यानी किसी क़ौम से नफ़रत व दुश्मनी भी तुम्हारे लिये इसका सबब न होना चाहिये कि

इन्साफ़ की राह को छोड़कर उनके ख़िलाफ़ गवाही या फ़ैसला देने लगो।

दोनों आयतों के उनवान व ताबीर में भी थोड़ा फ़र्क़ है। सूरः निसा की आयत में:

قَوّٰمِيْنَ بِالْقِسْطِ شُهَدَآءَ لِلّٰهِ

फ़रमाया गया, और सूरः मायदा की आयत में:

قَوّٰمِيْنَ لِلّٰهِ شُهَدَآءَ بِالْقِسْطِ

इरशाद हुआ। यानी पहली आयत में दो चीज़ों की हिदायत है- एक इन्साफ़ को क़ायम करने और दूसरे अल्लाह के लिये गवाही, और दूसरी आयत में भी दो ही चीज़ों का हुक्म है मगर उनवान बदलकर, अल्लाह के लिये क़ायम करना और इन्साफ़ के साथ गवाही देना।

अक्सर हज़राते मुफ़स्सिरीन ने फ़रमाया कि इस उनवान के बदलने से यह मालूम हुआ कि ये दोनों चीज़ें दर असल एक ही हक़ीक़त की दो ताबीरें हैं। कहीं इन्साफ़ के क़ायम करने और अल्लाह के लिये गवाही देने से ताबीर कर दिया गया कहीं अल्लाह के लिये क़ायम करने और इन्साफ़ के साथ गवाही देने के अलफ़ाज़ से बयान फ़रमाया गया। इन दोनों आयतों के तर्ज़े बयान में यह बात ख़ास तौर पर क़ाबिले नज़र है कि 'कूनू क़व्वामी-न बिल्क़िस्ति' या 'क़व्वामी-न लिल्लाहि' का लम्बा जुमला इख़्तियार फ़रमाया गया, हालाँकि अ़दल व इन्साफ़ का हुक्म सिर्फ़ एक लफ़्ज़ 'अक़्सितू' (इन्साफ़ करो) के ज़रिये भी दिया जा सकता था। इस लम्बे जुमले के इख़्तियार करने में इस तरफ़ इशारा करना मन्ज़ूर है कि इत्तिफ़ाक़ी तौर पर किसी मामले में अ़दल व इन्साफ़ कर देने से ज़िम्मेदारी पूरी नहीं हो जाती, क्योंकि किसी न किसी मामले में इन्साफ़ हो जाना तो एक ऐसी तबई चीज़ है कि हर बुरे से बुरे और ज़ालिम से ज़ालिम हाकिम पर भी सादिक़ है, कि उससे भी किसी मामले में तो इन्साफ़ हो ही जाता है। इस जुमले में लफ़्ज़ क़व्वामी-न इस्तेमाल फ़रमाकर यह बतलाया कि अ़दल व इन्साफ़ पर हमेशा हर वक़्त हर हाल और हर दोस्त दुश्मन के लिये क़ायम रहना ज़रूरी है।

फिर इन दोनों आयतों में पूरी दुनिया को अ़दल व इन्साफ़ पर क़ायम रहने और क़ायम कराने के लिये जो सुनहरे और क़ीमती उसूल इख़्तियार किये गये हैं वे भी क़ुरआने अ़ज़ीम ही की ख़ुसूसियात में से हैं।

इनमें से एक अहम चीज़ तो यह है कि हाकिम और अ़वाम सब को ख़ुदा तआ़ला की ज़बरदस्त क़ुदरत और बदले के दिन के हिसाब से डराकर इसके लिये तैयार किया गया है कि अ़वाम ख़ुद भी क़ानून का सम्मान करें और हाकिम जो क़ानून लागू और जारी करने के ज़िम्मेदार हैं वे भी क़ानून के लागू करने में ख़ुदा तआ़ला व आख़िरत को सामने रखकर अल्लाह की मख़्लूक़ के ख़ादिम (सेवक) बनें। क़ानून को मख़्लूक़ की ख़िदमत और दुनिया के सुधार व बेहतरी का ज़रिया बनायें, लोगों की परेशानियों में इज़ाफ़ा और मज़लूम को दफ़्तरों के चक्कर काटने में फंसाकर अधिक ज़ुल्म पर ज़ुल्म का सबब न बनायें। क़ानून को अपनी ज़लील इच्छाओं या चन्द टकों में फ़रोख़्त न करें। 'क़व्वामी-न लिल्लाहि' या 'शु-हदा-अ लिल्लाहि' फ़रमाकर

हाकिमों व अ़वाम दोनों को लिल्लाहियत और अ़मल के इख़्लास की दावत दी गई है।

दूसरी बुनियादी चीज़ यह है कि अ़दल व इन्साफ़ की स्थापना की ज़िम्मेदारी तमाम इनसानी अफ़राद पर डाल दी गई है। सूरः निसा और सूरः मायदा में तो इसका मुख़ातबः

يٰاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا

(ऐ ईमान वालो!) फ़रमाकर पूरी उम्मते मुस्लिमा को बना दिया गया है। और सूरः हदीद में:

لِيَقُوْمَ النَّاسُ بِالْقِسْطِ

(ताकि लोग अ़दल व इन्साफ़ पर क़ायम रहें) फ़रमाकर इस फ़रीज़े को तमाम इनसानी अफ़राद पर आ़यद कर दिया गया है। सूरः निसा की आयत में:

وَلَوْ عَلٰى اَنْفُسِكُمْ

(चाहे वह तुम्हारे अपने ऊपर ही पड़े) फ़रमाकर इस तरफ़ हिदायत फ़रमा दी कि इन्साफ़ का मुतालबा सिर्फ़ दूसरों ही से न हो, बल्कि अपने नफ़्स से भी होना चाहिये। अपने नफ़्स के ख़िलाफ़ कोई बयान या इज़हार करना पड़े तो भी हक़ व इन्साफ़ के ख़िलाफ़ कुछ न बोले, अगरचे इसका नुक़सान उसकी ज़ात ही पर पड़ता हो। क्योंकि यह नुक़सान मामूली व हक़ीर और वक़्ती है, और झूठ बोलकर उसकी जान बचा ली गई तो क़ियामत का सख़्त अ़ज़ाब अपनी जान के लिये ख़रीद लिया।

يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْٓا اٰمِنُوْا بِاللّٰهِ وَرَسُوْلِهٖ وَالْكِتٰبِ الَّذِيْ نَزَّلَ عَلٰى رَسُوْلِهٖ وَالْكِتٰبِ الَّذِيْٓ اَنْزَلَ مِنْ قَبْلُ ۭ وَمَنْ يَّكْفُرْ بِاللّٰهِ وَمَلٰۗىِٕكَتِهٖ وَكُتُبِهٖ وَرُسُلِهٖ وَالْيَوْمِ الْاٰخِرِ فَقَدْ ضَلَّ ضَلٰلًۢا بَعِيْدًا ۝ اِنَّ الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا ثُمَّ كَفَرُوْا ثُمَّ اٰمَنُوْا ثُمَّ كَفَرُوْا ثُمَّ ازْدَادُوْا كُفْرًا لَّمْ يَكُنِ اللّٰهُ لِيَغْفِرَ لَهُمْ وَلَا لِيَهْدِيَهُمْ سَبِيْلًا ۝

या अय्युहल्लज़ी-न आमनू आमिनू बिल्लाहि व रसूलिही वल्-किताबिल्लज़ी नज़्ज़-ल अ़ला रसूलिही वल्-किताबिल्लज़ी अन्ज़-ल मिन् क़ब्लु, व मंय्यक्फ़ुर् बिल्लाहि व मलाइ-कतिही व कुतुबिही व रुसुलिही वल्यौमिल्-आख़िरि फ़-क़द् ज़ल्-ल ज़लालम्-बअ़ीदा (136)	ऐ ईमान वालो! यक़ीन लाओ अल्लाह पर और उसके रसूल पर और इस किताब पर जो नाज़िल की है अपने रसूल पर और उस किताब पर जो नाज़िल की थी पहले, और जो कोई यक़ीन न करे अल्लाह पर और उसके फ़रिश्तों पर और किताबों पर और रसूलों पर और क़ियामत के दिन पर वह बहक कर दूर जा पड़ा। (136) जो लोग मुसलमान हुए फिर काफ़िर हुए, फिर

इन्नल्लज़ी-न आमनू सुम्-म क-फ़रू सुम्-म आमनू सुम्-म क-फ़रू सुम्मज़्दादू कुफ़्रल्-लम् यकुनिल्लाहु लि-यग़्फ़ि-र लहुम् व ला लि-यह्दि--यहुम् सबीला (137)	मुसलमान हुए फिर काफ़िर हो गये, फिर बढ़ते रहे कुफ़्र में तो अल्लाह उनको हरगिज़ बख़्शने वाला नहीं और न दिखलायेगा उनको राह। (137)

इन आयतों के मज़मून का पीछे से ताल्लुक़

ऊपर ज़्यादा हिस्सा फ़ुरूई अहकाम (यानी आमाल से संबन्धित बातों) का बयान हुआ और ईमान व कुफ़्र के मबाहिस मुख़ालिफ़ों के मामलात के साथ कहीं-कहीं ज़िमन में आ गये हैं। आगे ये मबाहिस किसी क़द्र तफ़सील के साथ मज़कूर होते हैं, और सूरत के समापन के बिल्कुल क़रीब तक चले गये हैं। बयान की तरतीब में पहले इसका बयान है कि शरीअ़त में मोतबर ईमान क्या है, फिर काफ़िरों के विभिन्न फ़िर्क़ों की मज़म्मत (बुराई) अ़क़ीदों में भी और कुछ आमाल में भी।

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

ऐ ईमान वालो! (यानी जो संक्षिप्त रूप से ईमान लाकर मोमिनों की जमाअ़त में दाख़िल हो चुके हैं) तुम (ज़रूरी अ़क़ीदों की तफ़सील सुन लो कि) एतिक़ाद रखो अल्लाह की (ज़ात व सिफ़ात के) साथ और उसके रसूल (मुहम्मद सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की रिसालत) के साथ, और उस किताब (के हक़ होने) के साथ जो उसने (यानी अल्लाह तआ़ला ने) अपने रसूल (यानी मुहम्मद सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम) पर नाज़िल फ़रमाई, और उन किताबों (के हक़ होने) के साथ (भी) जो कि (रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से) पहले (दूसरे नबियों पर) नाज़िल हो चुकी हैं (और रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम और पहली किताबों पर ईमान लाने में फ़रिश्तों और बाक़ी नबियों और क़ियामत के दिन पर ईमान रखना भी दाख़िल हो गया) और जो शख़्स अल्लाह तआ़ला (की ज़ात या सिफ़ात) का इनकार करे और (इसी तरह जो) उसके फ़रिश्तों का (इनकार करे) और (इसी तरह जो) उसकी किताबों का (जिसमें क़ुरआन भी आ गया, इनकार करे) और (इसी तरह जो) उसके रसूलों का (जिनमें रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम भी दाख़िल हैं, इनकार करे) और (इसी तरह जो) क़ियामत के दिन का (इनकार करे) तो वह शख़्स गुमराही में बड़ी दूर जा पड़ा।

बेशक जो लोग (पहले तो) मुसलमान हुए फिर काफ़िर हो गए, फिर मुसलमान हुए (और इस बार भी इस्लाम पर क़ायम न रहे, वरना पहला इर्तिदाद यानी दीन से फिर जाना माफ़ हो जाता, बल्कि) फिर काफ़िर हो गए, फिर (मुसलमान ही न हुए वरना फिर भी ईमान मक़बूल हो

जाता, बल्कि) कुफ़्र में बढ़ते चले गए (यानी कुफ़्र पर मरते दम तक जमे रहे), अल्लाह तआ़ला ऐसे लोगों को हरगिज़ न बख़्शेंगे और न उनको (मन्ज़िले मक़सूद यानी जन्नत का) रास्ता दिखलाएँगे (क्योंकि मग़फ़िरत और जन्नत के लिये मौत तक मोमिन रहना शर्त है)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

अहम फ़ायदे

अल्लाह तआ़ला के क़ौलः

اِنَّ الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا ثُمَّ كَفَرُوْا........ الخ

इससे मुराद मुनाफ़िक़ लोग हैं, और कुछ हज़रात फ़रमाते हैं कि यह आयत यहूदियों के बारे में है कि पहले ईमान लाये फिर गौसाला (गाय के बछड़े) की पूजा करके काफ़िर हो गये। फिर तौबा करके मोमिन हुए, फिर ईसा अ़लैहिस्सलाम का इनकार करके काफ़िर हुए, उसके बाद रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की रिसालत का इनकार करके कुफ़्र में तरक़्क़ी कर गये। (तफ़सीर रूहुल-मआ़नी)

अल्लाह तआ़ला के क़ौलः

لَمْ يَكُنِ اللّٰهُ لِيَغْفِرَ لَهُمْ وَلَا لِيَهْدِيَهُمْ سَبِيْلًا

मतलब इस आयत का यह है कि उनके बार-बार कुफ़्र की तरफ़ लौटने से उनकी हक़ की तौफ़ीक़ ही छीन ली (ख़त्म) हो जायेगी, और आईन्दा तौबा करने और ईमान लाने का मौक़ा ही नसीब न होगा, वरना जो क़ायदा क़ुरआन व सुन्नत के स्पष्ट अहकाम और दलीलों से साबित है वह यह है कि कैसा ही काफ़िर या मुर्तद हो अगर सच्ची तौबा कर ले तो पिछला गुनाह माफ़ हो जाता है, ये लोग भी तौबा कर लें तो माफ़ी का क़ानून खुला हुआ है।

بَشِّرِ الْمُنٰفِقِيْنَ بِاَنَّ لَهُمْ عَذَابًا اَلِيْمَا ۙ الَّذِيْنَ يَتَّخِذُوْنَ الْكٰفِرِيْنَ اَوْلِيَآءَ مِنْ دُوْنِ الْمُؤْمِنِيْنَ ۭ اَيَبْتَغُوْنَ عِنْدَهُمُ الْعِزَّةَ فَاِنَّ الْعِزَّةَ لِلّٰهِ جَمِيْعًا ۞ وَقَدْ نَزَّلَ عَلَيْكُمْ فِي الْكِتٰبِ اَنْ اِذَا سَمِعْتُمْ اٰيٰتِ اللّٰهِ يُكْفَرُ بِهَا وَيُسْتَهْزَاُ بِهَا فَلَا تَقْعُدُوْا مَعَهُمْ حَتّٰى يَخُوْضُوْا فِيْ حَدِيْثٍ غَيْرِهٖٓ ڮ اِنَّكُمْ اِذًا مِّثْلُهُمْ ۭ اِنَّ اللّٰهَ جَامِعُ الْمُنٰفِقِيْنَ وَالْكٰفِرِيْنَ فِيْ جَهَنَّمَ جَمِيْعَا ۙ الَّذِيْنَ يَتَرَبَّصُوْنَ بِكُمْ ۚ فَاِنْ كَانَ لَكُمْ فَتْحٌ مِّنَ اللّٰهِ قَالُوْٓا اَلَمْ نَكُنْ مَّعَكُمْ ڮ وَاِنْ كَانَ لِلْكٰفِرِيْنَ نَصِيْبٌ ۙ قَالُوْٓا اَلَمْ نَسْتَحْوِذْ عَلَيْكُمْ وَنَمْنَعْكُمْ مِّنَ الْمُؤْمِنِيْنَ ۭ فَاللّٰهُ يَحْكُمُ بَيْنَكُمْ يَوْمَ الْقِيٰمَةِ ۭ وَلَنْ يَّجْعَلَ اللّٰهُ لِلْكٰفِرِيْنَ عَلَى الْمُؤْمِنِيْنَ سَبِيْلًا ۞

बश्शिरिल्-मुनाफ़िक़ी-न बिअन्-न लहुम् अ़ज़ाबन् अलीमा (138) अल्लज़ी-न यत्तख़िज़ूनल्-काफ़िरी-न औलिया-अ मिन् दूनिल्-मुअ्मिनी-न, अ-यब्तग़ू-न अ़िन्दहुमुल्-अ़िज़्ज़-त फ़-इन्नल्-अ़िज़्ज़-त लिल्लाहि जमीआ़ (139) व क़द् नज़्ज़-ल अ़लैकुम् फ़िल्-किताबि अन् इज़ा समिअ़्तुम् आयातिल्लाहि युक्फ़रु बिहा व युस्तह्ज़उ बिहा फ़ला तक़्अ़ुदू म-अ़हुम् हत्ता यख़ूज़ू फ़ी हदीसिन् ग़ैरिही इन्नकुम् इज़म्-मिस्लुहुम्, इन्नल्ला-ह जामिअ़ुल्-मुनाफ़िक़ी-न वल्काफ़िरी-न फ़ी जहन्न-म जमीआ़ (140) अल्लज़ी-न य-तरब्बसू-न बिकुम् फ़-इन् का-न लकुम् फ़त्हुम् मिनल्लाहि क़ालू अलम् नकुम् म-अ़कुम् व इन् का-न लिल्काफ़िरी-न नसीबुन् क़ालू अलम् नस्तह्विज़् अ़लैकुम् व नम्नअ़्कुम् मिनल्-मुअ्मिनी-न, फ़ल्लाहु यह्कुमु बैनकुम् यौमल्-क़ियामति, व लंय्यज्-अ़लल्लाहु लिल्काफ़िरी-न अ़लल्-मुअ्मिनी-न सबीला (141) ✿	ख़ुशख़बरी सुना दे मुनाफ़िक़ों को कि उनके वास्ते है दर्दनाक अ़ज़ाब। (138) वे जो बनाते हैं काफ़िरों को अपना रफ़ीक़ (साथी और दोस्त) मुसलमानों को छोड़कर, क्या ढूँढते रहते हैं उनके पास इ़ज़्ज़त? सो इ़ज़्ज़त तो अल्लाह ही के वास्ते है सारी। (139) और हुक्म उतार चुका तुम पर क़ुरआन में कि जब सुनो अल्लाह की आयतों पर इनकार होते और हंसी होते तो न बैठो उनके साथ यहाँ तक कि वे मशग़ूल हों किसी दूसरी बात में, नहीं तो तुम भी उन्हीं जैसे हो गये, अल्लाह इकट्ठा करेगा मुनाफ़िक़ों को और काफ़िरों को दोज़ख़ में एक जगह। (140) वे मुनाफ़िक़ जो तुम्हारी ताक में हैं, फिर अगर तुमको फ़तह मिले अल्लाह की तरफ़ से तो कहें- क्या हम न थे तुम्हारे साथ? और अगर नसीब हो काफ़िरों को तो कहें- क्या हमने घेर न लिया था तुमको और बचा दिया तुमको मुसलमानों से? सो अल्लाह फ़ैसला करेगा तुम में क़ियामत के दिन और हरगिज़ न देगा अल्लाह काफ़िरों को मुसलमानों पर ग़लबा। (141) ✿

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

मुनाफ़िक़ों को ख़ुशख़बरी सुना दीजिए इस बात की कि उनके वास्ते (आख़िरत में) बड़ी दर्दनाक सज़ा (तजवीज़ की गई) है। जिनकी यह हालत है कि (अक़ीदे तो ईमान वालों जैसे न रखते थे मगर हालत व शक्ल भी ईमान वालों की न रख सके, चुनाँचे) काफ़िरों को दोस्त बनाते हैं मुसलमानों को छोड़कर। क्या उनके पास (जाकर) इज़्ज़त वाले रहना चाहते हैं? सो (ख़ूब समझ लो कि) ऐज़ाज़ "यानी इज़्ज़त और सम्मान" तो सारा ख़ुदा तआ़ला के क़ब्ज़े में है (वह जिसको चाहें दें पस अगर ख़ुदा तआ़ला उनको या जिनसे जा-जाकर दोस्ती करते हैं उनको इज़्ज़त न दें तो कहाँ से इज़्ज़त वाले बन जायेंगे)। और (ऐ मुसलमानो! देखो तुम मुनाफ़िक़ों की तरह काफ़िरों के साथ ख़ुसूसी ताल्लुक़ मत रखना, ख़ासकर जिस वक़्त वे कुफ़्र की बात का तज़किरा करते हों, चुनाँचे इस मदनी सूरत से पहले भी) अल्लाह तआ़ला तुम्हारे पास यह फ़रमान (सूरः अन्आ़म आयत 68 में) भेज चुका है (जिसका हासिल यह है) कि जब (किसी मजमे में) अल्लाह के अहकाम के साथ मज़ाक़-ठट्ठा और कुफ़्र होता हुआ सुनो तो उन लोगों के पास मत बैठो जब तक कि वे कोई और बात शुरू न कर दें (और यह मज़मून इस आयत का हासिल है 'व इज़ा रऐतल्लज़ी-न यख़ूज़ू-न.........' सो यह मज़ाक़ बनाने वाले मक्का में मुश्रिक थे, और मदीना में यहूद तो खुल्लम-खुल्ला और मुनाफ़िक़ लोग सिर्फ़ ग़रीब व कमज़ोर मुसलमानों के सामने, पस जिस तरह वहाँ मुश्रिकों की मज्लिसें ऐसे वक़्त में मना "निषेध" थीं यहाँ यहूद और मुनाफ़िक़ों की मज्लिसों से मनाही है, और यह मनाही हम इसलिये करते हैं) कि उस हालत में तुम भी (गुनाह में) उन्हीं जैसे हो जाओगे (अगरचे दोनों के अन्दाज़ में फ़र्क़ हो कि एक कुफ़्र का गुनाह है दूसरा बुराई का, और इस मज्लिसों से मनाही में काफ़िर और मुनाफ़िक़ लोग सब बराबर हैं, क्योंकि सबब इसका कुफ़्र की बातों का तज़किरा और इस मशग़ूल होने का मंशा कुफ़्र है, और इसमें दोनों बराबर हैं, चुनाँचे कुफ़्र की सज़ा यानी दोज़ख़ का ईंधन होने में भी दोनों बराबर होंगे, क्योंकि) यक़ीनन अल्लाह तआ़ला मुनाफ़िक़ों और काफ़िरों सब को दोज़ख़ में जमा कर देंगे। (और) वे (मुनाफ़िक़ लोग) ऐसे हैं कि तुम पर मुसीबत पड़ने के मुन्तज़िर (और इच्छुक) रहते हैं, फिर (उनके इस इन्तिज़ार के बाद) अगर तुम्हारी फ़तह अल्लाह की तरफ़ से हो गई तो (तुम से आकर) बातें बनाते हैं कि क्या हम तुम्हारे साथ (जिहाद में शरीक) न थे (क्योंकि नाम व नमूद को तो मुसलमानों में घुसे रहते थे, मतलब यह कि हमको भी ग़नीमत के माल में से हिस्सा दो) और अगर काफ़िरों को (ग़लबे का) कुछ हिस्सा मिल गया (यानी वे इत्तिफ़ाक़ से ग़ालिब आये) तो (उनसे जाकर) बातें बनाते हैं कि क्या हम तुम पर ग़ालिब न आने लगे थे (मगर हमने जान-बूझकर तुम्हारे ग़ालिब करने के लिये मुसलमानों की मदद न की और ऐसी तदबीर की कि लड़ाई बिगड़ गई) और क्या हमने (जब तुम मग़लूब होने लगे थे) तुमको मुसलमानों से बचा नहीं लिया (इस तरह कि उनकी मदद न की और तदबीर से लड़ाई बिगाड़

दी। मतलब यह कि हमारा एहसान मानो और जो कुछ तुम्हारे हाथ आया है हमको भी कुछ हिस्सा दिलवाओ। ग़र्ज़ कि दोनों तरफ़ से हाथ मारते हैं)। सो (दुनिया में अगरचे इस्लाम ज़ाहिर करने की बरकत से मुसलमानों की तरह ज़िन्दगी बसर कर रहे हैं लेकिन) अल्लाह तआ़ला तुम्हारा और उनका क़ियामत में (अ़मली) फ़ैसला फ़रमा देंगे, और (उस फ़ैसले में) अल्लाह तआ़ला काफ़िरों को हरगिज़ मुसलमानों के मुक़ाबले में ग़ालिब न फ़रमाएँगे (बल्कि कुफ़्फ़ार मुजरिम क़रार पाकर दोज़ख़ में जायेंगे, और मुसलमान अहले हक़ साबित होकर जन्नत में जायेंगे और अ़मली फ़ैसला यही है)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

पहली आयत में मुनाफ़िक़ों के लिये दर्दनाक अ़ज़ाब की ख़बर दी गई है और इस रंज देने वाली ख़बर को लफ़्ज़ **बशारत** (ख़ुशख़बरी) से ताबीर करके इस तरफ़ इशारा फ़रमा दिया गया कि हर इनसान अपने भविष्य के लिये ख़ुशख़बरी सुनने का मुन्तज़िर रहा करता है, मगर मुनाफ़िक़ों के लिये इसके सिवा कोई ख़बर नहीं, उनके लिये बशारत के बदले में यही ख़बर है।

इ़ज़्ज़त अल्लाह ही से तलब करनी चाहिये

दूसरी आयत में काफ़िरों व मुश्रिकों के साथ दोस्ताना ताल्लुक़ात रखने और घुल-मिलकर रहने की मनाही और ऐसा करने वालों के लिये वईद (सज़ा की धमकी) मज़कूर है। और इसके साथ ही इस मर्ज़ में मुब्तला होने की असल मंशा और सबब को बयान करके इसका बेकार और बेहूदा होना बतला दिया है। इरशाद फ़रमायाः

اَيَبْتَغُوْنَ عِنْدَهُمُ الْعِزَّةَ فَاِنَّ الْعِزَّةَ لِلّٰهِ جَمِيْعًا

यानी काफ़िरों व मुश्रिकों के साथ दोस्ताना ताल्लुक़ात रखने और उनके साथ मिलने की ग़र्ज़ उमूमन यह होती है कि उनकी ज़ाहिरी इ़ज़्ज़त व क़ुव्वत और जत्थे से मुतास्सिर होकर यूँ ख़्याल किया जाता है कि उनसे दोस्ती रखी जाये तो हमें भी उनसे इ़ज़्ज़त व ताक़त हासिल हो जायेगी, हक़ तआ़ला ने इस बेकार ख़्याल की हक़ीक़त इस तरह वाज़ेह फ़रमाई कि तुम उनके ज़रिये इ़ज़्ज़त हासिल करना चाहते हो जिनके पास ख़ुद इ़ज़्ज़त नहीं, इ़ज़्ज़त के मायने हैं क़ुव्वत व ग़लबा, वह सिर्फ़ अल्लाह तआ़ला के लिये मख़्सूस है, और मख़्लूक़ में से जिस किसी को कभी कोई ताक़त व ग़लबा मिलता है वह सब अल्लाह तआ़ला का दिया हुआ है। तो किस क़द्र बेअ़क़्ली होगी कि इ़ज़्ज़त हासिल करने के लिये असल इ़ज़्ज़त के मालिक और इ़ज़्ज़त देने वाले को तो नाराज़ किया जाये और उसके दुश्मनों के ज़रिये इ़ज़्ज़त हासिल करने की कोशिश की जाये।

क़ुरआन मजीद की सूरः मुनाफ़िक़ून में भी यही मज़मून एक इज़ाफ़े के साथ इस तरह बयान किया गया हैः

وَلِلّٰهِ الْعِزَّةُ وَلِرَسُوْلِهٖ وَ لِلْمُؤْمِنِيْنَ وَلٰكِنَّ الْمُنٰفِقِيْنَ لَا يَعْلَمُوْنَ۝

"यानी इज़्ज़त तो सिर्फ़ अल्लाह के लिये है और उसके रसूल के लिये और मुसलमानों के लिये, लेकिन मुनाफ़िक़ लोग इस गुर को नहीं जानते।"

इसमें अल्लाह तआ़ला के साथ रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम और मोमिनों का इज़ाफ़ा करके यह भी बतला दिया कि असल इज़्ज़त का मालिक सिर्फ़ अल्लाह तआ़ला है, वह जिसको चाहता है इज़्ज़त का कुछ हिस्सा अ़ता फ़रमा देता है, और अल्लाह तआ़ला के रसूल सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम और उन पर ईमान लाने वाले चूँकि उसके नज़दीक महबूब और मक़बूल हैं, इसलिये उनको इज़्ज़त व ग़लबा दिया जाता है, काफ़िरों व मुश्रिकों को ख़ुद ही इज़्ज़त नसीब नहीं, उनके ताल्लुक़ से किसी दूसरे को क्या इज़्ज़त मिल सकती है। इसलिये हज़रत फ़ारूक़े आज़म रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने फ़रमायाः

مَنِ اعْتَزَّ بِالْعَبِيْدِ اَذَلَّهُ اللّٰهُ. (جصاص)

"यानी जो शख़्स मख़्लूक़ात और बन्दों के ज़रिये इज़्ज़त हासिल करना चाहे तो अल्लाह तआ़ला उसको ज़लील कर देते हैं।"

मुस्तद्रक हाकिम में है कि हज़रत फ़ारूक़े आज़म रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने मुल्के शाम के आ़मिल (गवर्नर) से फ़रमायाः

كُنْتُمْ اَقَلَّ النَّاسِ وَاَذَلَّ النَّاسِ فَاَعَزَّكُمُ اللّٰهُ بِالْاِسْلَامِ مَهْمَا تَطْلُبُوا الْعِزَّةَ بِغَيْرِهٖ يُذِلُّكُمُ اللّٰهُ. (مستدرک ص۸۲ ج۳)

"यानी (ऐ अबू उबैदा!) तुम तादाद में सबसे कम और सबसे ज़्यादा कमज़ोर थे, तुमको महज़ इस्लाम की वजह से इज़्ज़त व शौकत मिली है, तो ख़ूब समझ लो अगर तुम इस्लाम के सिवा किसी दूसरे ज़रिये से इज़्ज़त हासिल करना चाहोगे तो ख़ुदा तआ़ला तुमको ज़लील कर देगा।"

इमाम अबू बक्र जस्सास रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने अहकामुल-क़ुरआन में फ़रमाया कि आयते मज़्कूरा से मुराद यह है कि काफ़िरों व बुरे लोगों से दोस्ती करके इज़्ज़त तलब न करो, हाँ मुसलमानों के ज़रिये इज़्ज़त व क़ुव्वत तलब की जाये तो इसकी मनाही नहीं, क्योंकि सूरः मुनाफ़िक़ून की आयत ने इसको वाज़ेह कर दिया है कि अल्लाह तआ़ला ने अपने रसूल सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम और मोमिनों को इज़्ज़त बख़्शी है। (जस्सास, पेज 352 जिल्द 2)

यहाँ इज़्ज़त से मुराद अगर हमेशा क़ायम और बाक़ी रहने वाली आख़िरत की इज़्ज़त है तब तो दुनिया में इसका मख़्सूस होना अल्लाह तआ़ला के रसूल और मोमिनों के साथ स्पष्ट है, क्योंकि आख़िरत की इज़्ज़त किसी काफ़िर व मुश्रिक को क़तई हासिल नहीं हो सकती। और अगर मुराद दुनिया की इज़्ज़त ली जाये तो वक़्ती तौर पर और इत्तिफ़ाक़ी घटनाओं को छोड़कर अन्जाम के एतिबार से यह इज़्ज़त व ग़लबा आख़िरकार इस्लाम और मुसलमानों ही का हक़ है, जब तक मुसलमान सही मायने में मुसलमान रहे दुनिया ने इसको अपनी आँखों से देख लिया, और फिर आख़िरी ज़माने में जब हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम की इमामत व नेतृत्व में मुसलमान सही इस्लाम पर क़ायम हो जायेंगे, तो फिर ग़लबा इन्हीं का होगा, बीच के और वक़्ती दौर में

मुसलमानों की ईमानी कमज़ोरी और गुनाहों में लिप्त होने की वजह से इनका कमज़ोर नज़र आना इसके मनाफ़ी (ख़िलाफ़) नहीं।

आयतः

قَدْ نَزَّلَ عَلَيْكُمْ فِي الْكِتٰبِ............ الخ

(यानी आयत नम्बर 140) में क़ुरआन मजीद की एक और आयत का जो सूरः अन्आम में हिजरत से पहले मक्का मुकर्रमा में नाज़िल हो चुकी थी, उसका हवाला देकर यह बतलाया गया है कि हमने तो इनसानों के सुधार के लिये पहले ही यह हुक्म भेज दिया था कि काफ़िरों व बदकारों और गुनाहगारों की मज्लिस में भी मत बैठो, और ताज्जुब है कि ये ग़ाफ़िल लोग इससे भी आगे बढ़ गये, कि उनसे दोस्ती करने लगे और उनको इज़्ज़त व क़ुव्वत का मालिक समझने लगे।

सूरः निसा की ऊपर ज़िक्र होने वाली आयत और सूरः अन्आम की वह आयत जिसका हवाला सूरः निसा में दिया गया है, दोनों का संयुक्त मफ़्हूम यह है कि अगर किसी मज्लिस में कुछ लोग अल्लाह तआ़ला की आयतों का इनकार या उन पर मज़ाक़ ठट्ठा कर रहे हों तो जब तक वे इस बेहूदा काम में लगे रहें, उनकी मज्लिस में बैठना और शिर्कत करना भी हराम है। फिर सूरः अन्आम की आयत के अलफ़ाज़ में कुछ उमूमियत और अधिक तफ़सील है, क्योंकि उसके अलफ़ाज़ ये हैं:

وَاِذَا رَاَيْتَ الَّذِيْنَ يَخُوْضُوْنَ فِيْٓ اٰيٰتِنَا فَاَعْرِضْ عَنْهُمْ حَتّٰى يَخُوْضُوْا فِيْ حَدِيْثٍ غَيْرِهٖ وَاِمَّا يُنْسِيَنَّكَ الشَّيْطٰنُ فَلَا تَقْعُدْ بَعْدَ الذِّكْرٰى مَعَ الْقَوْمِ الظّٰلِمِيْنَ٥

"यानी जब तुम देखो उन लोगों को जो झगड़ते हैं हमारी आयतों में तो उनसे किनारा ही करो यहाँ तक कि वे मशग़ूल हो जायें किसी और बात में, और अगर भुला दे तुमको शैतान तो मत बैठो याद आ जाने के बाद ज़ालिमों के साथ।"

इसमें अल्लाह की आयतों में झगड़ा करना मज़कूर है जिसमें कुफ़्र व मज़ाक़ उड़ाना भी दाख़िल है और आयत की **तहरीफ़े मानवी** यानी क़ुरआनी आयत के ऐसे मायने निकालना जो रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम और सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम की तफ़सीर के ख़िलाफ़ या उम्मत के इजमा के ख़िलाफ़ हों, यह भी इसी में दाख़िल हैं। इसी लिये हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु से इमाम ज़ह्हाक की रिवायत से मन्क़ूल है कि इस आयत के मफ़्हूम में वे लोग भी दाख़िल हैं जो क़ुरआन की तफ़सीर ग़लत या उसमें तहरीफ़ (रद्दोबदल) करने वाले या बिदअ़तें (नयी बातें) निकालने वाले हैं। उनके अलफ़ाज़ ये हैं:

دَخَلَ فِيْ هٰذِهِ الْاٰيَةِ كُلُّ مُحْدِثٍ فِي الدِّيْنِ وَكُلُّ مُبْتَدِعٍ اِلٰى يَوْمِ الْقِيٰمَةِ. (مظهری، ص ۲۶۳ ج ۲)

तफ़सीर बिर्राय करने वाले की मज्लिस में शिर्कत जायज़ नहीं

इससे मालूम हुआ कि जो शख़्स क़ुरआने करीम के दर्स या तफ़सीर में पहले बुज़ुर्गों की तफ़सीर का पाबन्द नहीं, बल्कि उनके ख़िलाफ़ मायने बयान करता है उसके दर्स व तफ़सीर में शिर्कत क़ुरआनी दलील के मुताबिक़ नाजायज़ और बजाय सवाब के गुनाह है। तफ़सीर बहरे मुहीत में अबू हय्यान रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने फ़रमाया कि इन आयतों से मालूम हुआ कि जिस बात का ज़बान से कहना गुनाह है उसका कानों से अपने इख़्तियार से सुनना भी गुनाह है। और इस पर यह शे'र नक़ल किया हैः

وَسَمْعَكَ صُنْ عَنْ سِمَاعِ الْقَبِيْحِ
كَصَوْنِ اللِّسَانِ عَنِ النُّطْقِ بِهٖ

"यानी अपने कानों को बुरी बात सुनने से बचाओ, जिस तरह ज़बान को बुरी बात कहने से बचाते हो।"

दूसरी बात सूरः अन्आ़म की आयत में यह ज़्यादा है कि अगर किसी वक़्त भूले या बेख़बरी से कोई आदमी ऐसी मज्लिस में शरीक हो गया फिर ख़्याल आया तो उसी वक़्त उस मज्लिस से अलग हो जाना चाहिये, ख़्याल हो जाने के बाद ज़ालिम लोगों के साथ न बैठे।

सूरः निसा और सूरः अन्आ़म की दोनों आयतों में यह फ़रमाया गया है कि जब तक वे लोग उस बेहूदा गुफ़्तगू में मशग़ूल रहें, उस वक़्त तक उनकी मज्लिस में बैठना हराम है।

इस मसले का दूसरा पहलू यह है कि जब वे उस गुफ़्तगू को ख़त्म करके कोई और बात शुरू कर दें तो उस वक़्त उनके साथ बैठना और उनकी मज्लिस में शिर्कत जायज़ है या नहीं? क़ुरआने करीम ने इसको स्पष्ट तौर पर बयान नहीं फ़रमाया, इसी लिये उलेमा का इसमें इख़्तिलाफ़ (मतभेद) है। कुछ हज़रात ने फ़रमाया कि मना करने का कारण अल्लाह की आयतों की तौहीन और उनके मायनों में तब्दीली थी, जब वह ख़त्म हो गई तो मनाही भी ख़त्म हो गई, इसी लिये दूसरी बातें शुरू हो जाने के बाद उनकी मज्लिस में बैठना गुनाह नहीं। और कुछ हज़रात ने फ़रमाया कि ऐसे काफ़िरों व फ़ाजिरों और ज़ालिम लोगों की सोहबत तथा पास बैठना बाद में भी दुरुस्त नहीं। हज़रत हसन बसरी रहमतुल्लाहि अ़लैहि का यही इरशाद है, उन्होंने सूरः अन्आ़म के इस जुमले से दलील पकड़ी हैः

فَلَا تَقْعُدْ بَعْدَ الذِّكْرٰى مَعَ الْقَوْمِ الظّٰلِمِيْنَ○

यानी याद आ जाने के बाद ज़ालिमों के साथ न बैठें और ज़ाहिर है कि ज़ालिम उस गुफ़्तगू को ख़त्म कर देने के बाद भी ज़ालिम ही है, इसलिये उसकी सोहबत और उसके पास बैठने से बाद में भी बचना लाज़िम है। (तफ़सीरे जस्सास)

और तफ़सीरे मज़हरी में क़ाज़ी साहिब रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने दोनों में मुवाफ़क़त इस तरह फ़रमाई है कि जब कुफ़्र, मज़ाक़ उड़ाने और क़ुरआन में उसकी असल मुराद से हटकर मायने बयान करने की गुफ़्तगू बन्द होकर कोई दूसरी बात शुरू हो जाये तो उस वक़्त भी ऐसे लोगों की मज्लिस में शिर्कत बिना ज़रूरत तो हराम है और अगर कोई शरई ज़रूरत या तबई तक़ाज़ा हो तो जायज़ है।

बुरों की सोहबत से तन्हाई बेहतर है

इमाम अबू बक्र जस्सास रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने अहकामुल-क़ुरआन में फ़रमाया कि इस आयत से साबित हुआ कि जिस मज्लिस में कोई गुनाह हो रहा हो तो मुसलमान पर नही अ़निल्-मुन्कर (बुराई से रोकने) के क़ायदे और उसूल से यह लाज़िम है कि अगर उसको रोकने की क़ुदरत है तो ताक़त के साथ रोक दे, और यह क़ुदरत नहीं है तो कम से कम उस गुनाह से अपनी नाराज़गी का इज़हार कर दे, जिसका मामूली दर्जा यह है कि उस मज्लिस से उठ जाये। यही वजह है कि हज़रत उमर बिन अ़ब्दुल-अ़ज़ीज़ रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने एक मर्तबा चन्द लोगों को इस जुर्म में गिरफ़्तार किया कि वे शराब पी रहे थे, उनमें से एक शख़्स के बारे में साबित हुआ कि वह रोज़ा रखे हुए है, उसने शराब नहीं पी, लेकिन उनकी मज्लिस में शरीक था। हज़रत उमर बिन अ़ब्दुल-अ़ज़ीज़ रह. ने उसको भी सज़ा दी कि वह उनकी मज्लिस में बैठा हुआ क्यों था। (तफ़सीर बहरे-मुहीत, पेज 375 जिल्द 3)

तफ़सीर इब्ने कसीर में इस जगह यह हदीस नक़ल फ़रमाई है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमायाः

مَنْ كَانَ يُؤْمِنُ بِاللّٰهِ وَالْيَوْمِ الْاٰخِرِ فَلَا يَجْلِسْ عَلٰى مَآئِدَةٍ يُدَارُ عَلَيْهَا الْخَمْرُ. (ابن کثیر، صفحہ ۵۲۷ ج۱)

"यानी जो शख़्स अल्लाह पर और आख़िरत के दिन पर ईमान रखता है उसको चाहिये कि ऐसे दस्तरख़्वान या खाने की मेज़ पर भी न बैठे जहाँ शराब का दौर चलता हो।"

उक्त बहस में मज्लिस से उठ जाने के मुताल्लिक़ जो कहा गया है उसके लिये यह शर्त है कि शरई हैसियत से उस मज्लिस को छोड़ देने में कोई गुनाह लाज़िम नहीं आता हो, जैसे मस्जिद में जमाअ़त की शिर्कत ज़रूरी चीज़ है, अगर वहाँ कोई ख़िलाफ़े शरीअ़त काम होने लगे तो उसकी वजह से जमाअ़त न छोड़े बल्कि सिर्फ़ दिली नाराज़गी पर बस करे। इसी तरह कोई और ज़रूरी मज्लिस जिसकी ज़रूरत शरीअ़त से साबित है अगर वहाँ कुछ लोग कोई ख़िलाफ़े शरीअ़त काम करने लगें तो दूसरों के गुनाह की वजह से उस मज्लिस को छोड़कर ख़ुद गुनाह का काम करना माक़ूल और दुरुस्त नहीं। इसी लिये हज़रत हसन बसरी रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने फ़रमाया कि अगर हम लोगों के गुनाह की वजह से अपने ज़रूरी काम छोड़ दिया करें तो हम फ़ासिक़ों व फ़ाजिरों (गुनाहगारों व बदकारों) के लिये सुन्नत व शरीअ़त के मिटाने का रास्ता तैयार कर देंगे।

ख़ुलासा यह हुआ कि अहले बातिल के साथ उठने-बैठने की चन्द सूरतें हैं:

पहली उनके कुफ़्रिया आमाल और बातों पर रज़ामन्दी के साथ, यह कुफ़्र है। दूसरे कुफ़्रिया

आमाल और बातों के इज़हार के वक़्त दिली नाराज़गी के साथ, यह बिना उज़्र गुनाह है। तीसरे किसी दुनियावी ज़रूरत के वास्ते, यह मुबाह है। चौथे अहकाम की तब्लीग़ के लिये, यह इबादत है। पाँचवे मजबूरी और बेइख़्तियारी के साथ, इसमें माज़ूर है।

कुफ़्र पर राज़ी होना कुफ़्र है

आयत के आख़िर में इरशाद फ़रमाया:

اِنَّكُمْ اِذًا مِّثْلُهُمْ

यानी अगर तुम ऐसी मज्लिस में दिल की ख़ुशी से शरीक रहे जिसमें अल्लाह की आयतों का इनकार या मज़ाक़ बनाया जाये, या तहरीफ़ (मानवी रद्दोबदल) हो रही हो, तो तुम भी उनके गुनाह के शरीक होकर उन्हीं जैसे हो गये। मुराद यह है कि ख़ुदा न करे तुम्हारे जज़्बात व ख़्यालात भी ऐसे हैं कि तुम उनके कुफ़्रिया आमाल और बातों को पसन्द करते और उस पर राज़ी होते हो, तो हक़ीक़त में तुम भी काफ़िर हो। क्योंकि कुफ़्र को पसन्द करना भी कुफ़्र है। और अगर यह बात नहीं तो उनके जैसा होने के यह मायने हैं कि जिस तरह वे इस्लाम और मुसलमानों को नुक़सान पहुँचाने और दीन को झुठलाने में लगे हुए हैं तुम अपनी उस शिर्कत के ज़रिये उनकी इमदाद करके उनके जैसे हो गये (अल्लाह की पनाह)।

اِنَّ الْمُنٰفِقِيْنَ يُخٰدِعُوْنَ اللّٰهَ وَهُوَ خَادِعُهُمْ ۚ وَاِذَا قَامُوْٓا اِلَى الصَّلٰوةِ قَامُوْا كُسَالٰى ۙ يُرَآءُوْنَ النَّاسَ وَلَا يَذْكُرُوْنَ اللّٰهَ اِلَّا قَلِيْلًا ۞ مُّذَبْذَبِيْنَ بَيْنَ ذٰلِكَ ۖ لَآ اِلٰى هٰٓؤُلَآءِ وَلَآ اِلٰى هٰٓؤُلَآءِ ۚ وَمَنْ يُّضْلِلِ اللّٰهُ فَلَنْ تَجِدَ لَهٗ سَبِيْلًا ۞ يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا لَا تَتَّخِذُوا الْكٰفِرِيْنَ اَوْلِيَآءَ مِنْ دُوْنِ الْمُؤْمِنِيْنَ ۚ اَتُرِيْدُوْنَ اَنْ تَجْعَلُوْا لِلّٰهِ عَلَيْكُمْ سُلْطٰنًا مُّبِيْنًا ۞

इन्नल्-मुनाफ़िक़ी-न युख़ादिअ़ूनल्ला-ह व हु-व ख़ादिअ़ुहुम् व इज़ा क़ामू इलस्सलाति क़ामू कुसाला युराऊनन्ना-स व ला यज़्कुरूनल्ला-ह इल्ला क़लीला (142) मुज़ब्ज़बी-न बै-न ज़ालि-क ला इला हा-उला-इ व ला इला हा-उला-इ, व मंय्युज़्लिलिल्लाहु फ़-लन् तजि-द लहू	अलबत्ता मुनाफ़िक़ दग़ाबाज़ी करते हैं अल्लाह से और वही उनको दग़ा देगा, और जब खड़े हों नमाज़ को तो खड़े हों हारे जी से, लोगों के दिखाने को, और याद न करें अल्लाह को मगर थोड़ा सा। (142) अधर में लटकते हैं दोनों के बीच, न इनकी तरफ़ और न उनकी तरफ़, और जिसको गुमराह करे अल्लाह तो हरगिज़ न पायेगा तू उनके वास्ते कहीं राह। (143)

सबीला (143) या अय्युहल्लज़ी-न आमनू ला तत्तख़िज़ुल्-काफ़िरी-न औलिया-अ मिन् दूनिल्-मुअ्मिनी-न, अ-तुरीदू-न अन् तज्अ़लू लिल्लाहि अ़लैकुम् सुल्तानम् मुबीना (144)	ऐ ईमान वालो! न बनाओ काफ़िरों को अपना रफ़ीक़ (साथी) मुसलमानों को छोड़कर, क्या लेना चाहते हो अपने ऊपर अल्लाह का खुला इल्ज़ाम? (144)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

बिला शुब्हा मुनाफ़िक़ लोग (ईमान के इज़हार में) चालबाज़ी करते हैं अल्लाह तआ़ला से (अगरचे उनकी चाल अल्लाह तआ़ला से छुपी नहीं रह सकती। और अगरचे उनका एतिक़ाद अल्लाह के साथ चालबाज़ी करने का न हो, मगर उनकी यह कार्रवाई इसी के जैसी है कि जैसे यही एतिक़ाद हो) हालाँकि अल्लाह तआ़ला उस चाल की सज़ा उनको देने वाले हैं। और (चूँकि दिल में ईमान तो है नहीं, और इसलिये नमाज़ को फ़र्ज़ न समझें, न उसमें सवाब का एतिक़ाद रखें, इसलिये) जब नमाज़ को खड़े होते हैं तो बहुत ही सुस्ती के साथ खड़े होते हैं (क्योंकि चुस्ती और तबीयत में ताज़गी एतिक़ाद और उम्मीद से पैदा होती है) सिर्फ़ आदमियों को (अपना नमाज़ी होना) दिखलाते हैं (ताकि मुसलमान समझें) और (चूँकि महज़ नमाज़ का नाम ही करना है इसलिये उस नमाज़ में) अल्लाह तआ़ला का ज़िक्र (ज़बानी) भी नहीं करते मगर बहुत ही मुख़्तसर (यानी सिर्फ़ नमाज़ की शक्ल बना लेते हैं जिसमें नमाज़ का नाम हो जाये और अ़जब नहीं कि उठना बैठना ही होता हो, क्योंकि आवाज़ से पढ़ने की ज़रूरत तो कुछ नमाज़ों में इमाम को होती है, इमामत तो उनको कहाँ नसीब होती, मुक़्तदी होने की हालत में अगर कोई बिल्कुल न पढ़े सिर्फ़ होंठ हिलाता रहे तो किसी को क्या ख़बर हो, तो ऐसे बुरे एतिक़ाद वालों से क्या बईद है कि ज़बान भी न हिलती हो)। लटक रहे हैं दोनों के (यानी काफ़िरों व मोमिनों के) बीच में, न (पूरे) इधर, न (पूरे) उधर (क्योंकि ज़ाहिर में मोमिन तो काफ़िरों से अलग और बातिन में काफ़िर तो मोमिनों से अलग), और जिसको अल्लाह तआ़ला गुमराही में डाल दें (जैसा कि उनकी आ़दत है कि जब किसी अ़मल का इरादा किया जाये तो वह उस अ़मल को पैदा कर देते हैं) ऐसे शख़्स के (मोमिन होने के) लिए कोई सबील (यानी राह) न पाओगे। (मतलब यह कि उन मुनाफ़िक़ों के राह पर आने की उम्मीद मत रखो। इसमें मुनाफ़िक़ों की बुराई है और मोमिनों की तसल्ली, कि उनकी शरारतों से रंज न करें)। ऐ ईमान वालो! तुम मोमिनों को छोड़कर काफ़िरों को (चाहे वे छुपे काफ़िर हों जैसे मुनाफ़िक़, या खुले काफ़िर हों) दोस्त मत बनाओ (जैसे कि मुनाफ़िक़ों का तरीक़ा है, क्योंकि तुमको उनकी कुफ़्र व दुश्मनी की हालत मालूम हो चुकी है) क्या तुम (उनसे दोस्ती करके) यूँ चाहते हो कि अपने ऊपर (यानी अपने मुजरिम और अ़ज़ाब का हक़दार होने पर) अल्लाह तआ़ला की साफ़ हुज्जत क़ायम कर लो (साफ़ और खुली हुज्जत

यही है कि हमने जब मना कर दिया था फिर क्यों किया)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

मसलाः अल्लाह तआ़ला के कौल 'क़ामू कुसाला' (खड़े हों हारे जी से) में जिस सुस्ती की यहाँ मज़म्मत (बुराई) है वह एतिक़ाद व यक़ीन की सुस्ती है, और बावजूद सही अ़क़ीदा होने के जो सुस्ती हो वह इससे अलग है। फिर अगर किसी उज़्र से हो जैसे बीमारी व थकन या नींद के ग़लबे से तो वह क़ाबिले मलामत भी नहीं, और अगर बिना उज़्र के हो तो क़ाबिले मलामत है। (बयानुल-क़ुरआन)

إِنَّ الْمُنٰفِقِيْنَ فِي الدَّرْكِ الْأَسْفَلِ مِنَ النَّارِ ۚ وَلَنْ تَجِدَ لَهُمْ نَصِيْرًا ۙ﴿١٤٥﴾ إِلَّا الَّذِيْنَ تَابُوْا وَأَصْلَحُوْا وَاعْتَصَمُوْا بِاللّٰهِ وَأَخْلَصُوْا دِيْنَهُمْ لِلّٰهِ فَأُولٰٓئِكَ مَعَ الْمُؤْمِنِيْنَ ۖ وَسَوْفَ يُؤْتِ اللّٰهُ الْمُؤْمِنِيْنَ أَجْرًا عَظِيْمًا ﴿١٤٦﴾ مَا يَفْعَلُ اللّٰهُ بِعَذَابِكُمْ إِنْ شَكَرْتُمْ وَاٰمَنْتُمْ ۚ وَكَانَ اللّٰهُ شَاكِرًا عَلِيْمًا ﴿١٤٧﴾

इन्नल्-मुनाफ़िक़ी-न फ़िद्दर्किल्-अस्फ़लि मिनन्नारि व लन् तजि-द लहुम् नसीरा (145) इल्लल्लज़ी-न ताबू व अस्लहू वअ्त-समू बिल्लाहि व अख़्लसू दीनहुम् लिल्लाहि फ़-उलाइ-क मअ़ल्-मुअ्मिनी-न, व सौ-फ़ युअ्तिल्लाहुल् मुअ्मिनी-न अज्रन् अ़ज़ीमा (146) मा यफ़्अ़लुल्लाहु बि-अ़ज़ाबिकुम् इन् शकर्तुम् व आमन्तुम्, व कानल्लाहु शाकिरन् अ़लीमा (147)	बेशक मुनाफ़िक़ हैं सबसे नीचे दर्जे में दोज़ख़ के, और हरगिज़ न पायेगा तू उनके पास कोई मददगार। (145) मगर जिन्होंने तौबा की और अपनी इस्लाह की और मज़बूत पकड़ा अल्लाह को और ख़ालिस हुक्म मानने वाले हुए अल्लाह के सो वे हैं ईमान वालों के साथ। और जल्द देगा अल्लाह ईमान वालों को बड़ा सवाब। (146) क्या करेगा अल्लाह तुमको अ़ज़ाब करके अगर तुम हक़ को मानो और यक़ीन रखो, और अल्लाह क़द्रदान है सब कुछ जानने वाला। (147)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

बेशक मुनाफ़िक़ लोग दोज़ख़ के सबसे नीचे के दर्जे में जाएँगे। और (ऐ मुख़ातब!) तू

हरगिज़ उनका कोई मददगार न पायेगा (जो उनको उस सज़ा से बचा सके)। लेकिन (उनमें से) जो लोग (निफ़ाक़ से) तौबा कर लें और (मुसलमानों के साथ जो उनके तकलीफ़ पहुँचाने के मामलात थे उनका) सुधार कर लें (यानी फिर ऐसी बातें न करें) और (काफ़िरों से जो उनकी पनाह में रहने के सबब दोस्ती करते हैं उसको छोड़कर) अल्लाह तआ़ला पर भरोसा (और तवक्कुल) रखें और (दिखावे को छोड़कर) अपने दीन (के आमाल) को ख़ालिस अल्लाह ही (की रज़ा) के लिए किया करें (ग़र्ज़ कि अपने अ़क़ीदों की, मामलात की, अन्दरूनी अख़्लाक़ की, आमाल की, सब की दुरुस्ती कर लें) तो ये (तौबा करने वाले) लोग (उन) मोमिनों के साथ (जन्नत के दर्जों में) होंगे (जो कि पहले से कामिल ईमान रखते हैं) और (उन) मोमिनों को अल्लाह तआ़ला (आख़िरत में) बड़ा अज्र अ़ता फ़रमाएँगे। (पस जब ये मोमिनों के साथ होंगे तो इनको भी बड़ा अज्र मिलेगा। और ऐ मुनाफ़िक़ो!) अल्लाह तआ़ला तुमको सज़ा देकर क्या करेंगे अगर तुम (उनकी नेमतों की जो तुम पर हैं) शुक्रगुज़ारी करो, और (उस शुक्रगुज़ारी का हमारा पसन्दीदा तरीक़ा यह है कि तुम) ईमान ले आओ (यानी ख़ुदा तआ़ला का कोई काम अटका नहीं पड़ा जो तुमको सज़ा देने से चल जाये, सिर्फ़ तुम्हारा कुफ़्र जो नेमतों की सख़्त दर्जे की नाशुक्री है, सबब है तुम्हारी सज़ा का, अगर उसको छोड़ दो तो फिर रहमत ही रहमत है) और अल्लाह तआ़ला (तो ख़िदमत की) बड़ी क़द्र करने वाले (और ख़ुदा ख़िदमतगुज़ारी के ख़ुलूस वग़ैरह को) ख़ूब जानने वाले हैं (पस जो शख़्स फ़रमाँबरदारी व इख़्लास से रहे उसको बहुत कुछ देते हैं)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

अल्लाह तआ़ला के क़ौल 'व अख़्लसू दीनहुम...' इस आयत (यानी आयत नम्बर 146) से मालूम हुआ कि अल्लाह तआ़ला के यहाँ वही अ़मल मक़बूल है जो रियाकारी और दिखावे से पाक हो और सिर्फ़ उसी की ज़ात के लिये हो, क्योंकि **मुख़्लिस** के मायने फ़ुक़हा ने यह बयान किये हैं:

اَلَّذِیْ یَعْمَلُ لِلّٰہِ لَا یُحِبُّ اَنْ یَّحْمَدَہُ النَّاسُ عَلَیْہِ. (بحوالہ مظہری)

"यानी मुख़्लिस (इख़्लास वाला) वह आदमी है जो अ़मल महज़ अल्लाह ही के लिये करे, और इस बात को वह पसन्द न करता हो कि लोग उसके अ़मल की तारीफ़ करें।"

छठा पारः ला युहिब्बुल्लाहु

لَا يُحِبُّ اللّٰهُ الْجَهْرَ بِالسُّوْٓءِ مِنَ الْقَوْلِ اِلَّا مَنْ ظُلِمَ ۚ وَكَانَ اللّٰهُ سَمِيْعًا عَلِيْمًا ۝ اِنْ تُبْدُوْا خَيْرًا اَوْ تُخْفُوْهُ اَوْ تَعْفُوْا عَنْ سُوْٓءٍ فَاِنَّ اللّٰهَ كَانَ عَفُوًّا قَدِيْرًا ۝ اِنَّ الَّذِيْنَ يَكْفُرُوْنَ بِاللّٰهِ وَ رُسُلِهٖ وَ يُرِيْدُوْنَ اَنْ يُّفَرِّقُوْا بَيْنَ اللّٰهِ وَرُسُلِهٖ وَ يَقُوْلُوْنَ نُؤْمِنُ بِبَعْضٍ وَّنَكْفُرُ بِبَعْضٍ ۙ وَّيُرِيْدُوْنَ اَنْ يَّتَّخِذُوْا بَيْنَ ذٰلِكَ سَبِيْلًا ۝ اُولٰٓئِكَ هُمُ الْكٰفِرُوْنَ حَقًّا ۚ وَاَعْتَدْنَا لِلْكٰفِرِيْنَ عَذَابًا مُّهِيْنًا ۝ وَالَّذِيْنَ اٰمَنُوْا بِاللّٰهِ وَرُسُلِهٖ وَلَمْ يُفَرِّقُوْا بَيْنَ اَحَدٍ مِّنْهُمْ اُولٰٓئِكَ سَوْفَ يُؤْتِيْهِمْ اُجُوْرَهُمْ ۚ وَكَانَ اللّٰهُ غَفُوْرًا رَّحِيْمًا ۝

ला युहिब्बुल्लाहुल्-जह्-र बिस्सू-इ मिनल्-क़ौलि इल्ला मन् ज़ुलि-म, व कानल्लाहु समीअ़न् अ़लीमा (148) इन् तुब्दू ख़ैरन् औ तुख़्फ़ूहु औ तअ़्फ़ू अ़न् सूइन् फ़-इन्नल्ला-ह का-न अ़फ़ुव्वन् क़दीरा (149) इन्नल्लज़ी-न यक्फ़ुरू-न बिल्लाहि व रुसुलिही व युरीदू-न अंय्युफ़र्रिक़ू बैनल्लाहि व रुसुलिही व यक़ूलू-न नुअ्मिनु बि-बअ़्ज़िंव्-व नक्फ़ुरु बि-बअ़्ज़िंव्-व युरीदू-न अंय्यत्तख़िज़ू बै-न ज़ालि-क सबीला (150) उलाइ-क हुमुल् काफ़िरू-न हक़्क़न् व अअ़्तद्ना लिल्-काफ़िरी-न अ़ज़ाबम् मुहीना (151) वल्लज़ी-न आमनू	अल्लाह को पसन्द नहीं किसी बुरी बात का ज़ाहिर करना, मगर जिस पर ज़ुल्म हुआ है, और अल्लाह है सुनने वाला जानने वाला। (148) अगर तुम खोलकर करो कोई भलाई या उसको छुपाओ या माफ़ करो बुराई को तो अल्लाह भी माफ़ करने वाला बड़ी क़ुदरत वाला है। (149) जो लोग मुन्किर (इनकारी) हैं अल्लाह से और उसके रसूलों से और चाहते हैं कि फ़र्क़ निकालें अल्लाह में और उसके रसूलों में, और कहते हैं कि हम मानते हैं बाज़ों (कुछ) को और नहीं मानते बाज़ों (कुछ) को, और चाहते हैं कि निकालें इसके बीच में एक राह। (150) ऐसे लोग वही हैं असल काफ़िर, और हमने तैयार कर रखा है काफ़िरों के वास्ते ज़िल्लत का अ़ज़ाब। (151) और जो लोग ईमान लाये अल्लाह पर और उसके रसूलों पर और जुदा (फ़र्क़ और अलग) न किया उनमें से

बिल्लाहि व रुसुलिही व लम् युफ़र्रिक़ू बै-न अ-हदिम् मिन्हुम् उलाइ-क सौ-फ़ युअ्तीहिम् उजूरहुम्, व कानल्लाहु ग़फ़ूर्रहीमा (152) ✿	किसी को, उनको जल्द देगा उनके सवाब, और अल्लाह है बख़्शने वाला मेहरबान। (152) ✿

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

अल्लाह तआ़ला बुरी बात ज़बान पर लाने को (किसी के लिये) पसन्द नहीं करते सिवाय मज़लूम के (कि अपने पर हुए ज़ुल्म और अत्याचारों के बारे में कुछ शिकायत करने लगे तो वह गुनाह नहीं), और अल्लाह तआ़ला (मज़लूम की बात) ख़ूब सुनते हैं (और ज़ालिम के ज़ुल्म की हालत) ख़ूब जानते हैं। (इसमें इशारा है कि मज़लूम को भी हक़ीक़त के ख़िलाफ़ कहने की इजाज़त नहीं, और हर चन्द कि ऐसी शिकायत जायज़ तो है लेकिन) अगर नेक काम खुले तौर पर कर दिया या उसको छुपाकर करो (जिसमें माफ़ करना भी आ गया) या (ख़ास तौर से) किसी (की) बुराई को माफ़ कर दो तो (ज़्यादा बेहतर है, क्योंकि) अल्लाह तआ़ला (भी) बड़े माफ़ करने वाले हैं (इसके बावजूद कि) पूरी क़ुदरत वाले हैं (कि अपने मुजरिमों से हर तरह बदला ले सकते हैं, मगर फिर भी अक्सर माफ़ ही कर देते हैं। पस अगर तुम ऐसा करो तो अव्वल तो अल्लाह तआ़ला के अख़्लाक़ को अपनाना है, फिर अल्लाह तआ़ला की तरफ़ से तुम्हारे साथ भी ऐसा ही मामला करने की उम्मीद होगी)।

जो लोग कुफ़्र करते हैं अल्लाह तआ़ला के साथ (जैसा कि उनके अ़क़ीदे और क़ौल से जो आगे आ रहा है साफ़ तौर पर लाज़िम आता है) और (कुफ़्र करते हैं) उसके रसूलों के साथ (यानी कुछ के साथ तो खुलकर, क्योंकि हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम और हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की नुबुव्वत के इनकारी थे और तमाम के साथ उनकी तालीमात के एतिबार से जैसा कि आगे आता है) और यूँ चाहते हैं कि अल्लाह के और उसके रसूलों के बीच में (ईमान लाने के एतिबार से) फ़र्क़ रखें, और (अपने इस अ़क़ीदे को ज़बान से भी) कहते हैं कि हम (पैग़म्बरों में से) कुछ पर तो ईमान लाते हैं और कुछ के इनकारी हैं (इस क़ौल और इस अ़क़ीदे से अल्लाह तआ़ला के साथ भी कुफ़्र लाज़िम आ गया और सब रसूलों के साथ भी, क्योंकि अल्लाह तआ़ला और हर रसूल ने सब रसूलों को रसूल कहा है, जब कुछ का इनकार हुआ तो अल्लाह तआ़ला की और बाक़ी रसूलों को झुठलाना हो गया, जो कि तस्दीक़ और ईमान के विपरीत और उलट है) और यूँ चाहते हैं कि बीच की एक राह तजवीज़ करें (कि न सब पर ईमान रहे जैसे मुसलमान सब पर ईमान रखते हैं, और न सब का इनकार रहे जैसा कि मुश्रिक लोग करते थे, सो) ऐसे लोग यक़ीनन काफ़िर हैं (क्योंकि कुछ बातों का कुफ़्र भी कुफ़्र है और ईमान और कुफ़्र के बीच कोई वास्ता नहीं। जब तमाम पर और पूरी तरह ईमान न हुआ तो कुफ़्र ही हुआ) और

काफ़िरों के लिए हमने तौहीन वाली सज़ा तैयार कर रखी है (वही इनके लिये भी होगी)।

और जो लोग अल्लाह तआ़ला पर ईमान रखते हैं और उसके सब रसूलों पर भी, और उनमें से किसी में (ईमान लाने के एतिबार से) फ़र्क़ नहीं करते, उन लोगों को अल्लाह तआ़ला ज़रूर उनके सवाब देंगे, और (चूँकि) अल्लाह तआ़ला बड़े मग़फ़िरत वाले हैं (इसलिये ईमान लाने से पहले जितने गुनाह हो चुके हैं, सब बख़्श देंगे, और चूँकि वह) बड़े रहमत वाले हैं (इसलिये ईमान की बरकत से उनकी अच्छाईयों और नेक आमाल को बढ़ाकर ख़ूब सवाब देंगे)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

इन आयतों में से पहली और दूसरी आयत दुनिया से ज़ुल्म व ज़्यादती के मिटाने का एक क़ानून है मगर दुनिया के आ़म क़ानूनों की तरह नहीं जिसकी हैसियत सिर्फ़ हाकिमाना होती है, बल्कि तरग़ीब व तरहीब के अन्दाज़ का एक क़ानून है जिसमें एक तरफ़ तो इसकी इजाज़त दे दी गई है कि जिस शख़्स पर कोई ज़ुल्म करे तो मज़लूम उसके ज़ुल्म की शिकायत या किसी अ़दालत में क़ानूनी कार्रवाई कर सकता है जो कि पूरी तरह अ़दल व इन्साफ़ का तक़ाज़ा और अपराधों की रोक-थाम का एक ज़रिया है, लेकिन इसके साथ एक क़ैद भी सूरः नहल की आयत नम्बर 26 में बयान हुई है:

وَإِنْ عَاقَبْتُمْ فَعَاقِبُوا بِمِثْلِ مَا عُوقِبْتُمْ بِهِ، وَلَئِنْ صَبَرْتُمْ لَهُوَ خَيْرٌ لِّلصَّابِرِينَ (آيت:٢٦)

यानी अगर कोई शख़्स तुम पर ज़ुल्म करे तो तुम भी उससे ज़ुल्म का बदला ले सकते हो मगर शर्त यह है कि जितना ज़ुल्म व ज़्यादती उसने किया है बदले में उससे ज़्यादती न होने पाये, वरना तुम ज़ालिम हो जाओगे। जिसका हासिल यह है कि ज़ुल्म के जवाब में ज़ुल्म की इजाज़त नहीं बल्कि ज़ुल्म का बदला इन्साफ़ से ही लिया जा सकता है। इसी के साथ यह भी हिदायत है कि बदला लेना अगरचे जायज़ है मगर सब्र करना और माफ़ कर देना बेहतर है।

और ज़िक्र हुई आयत से यह भी मालूम हो गया कि जिस पर किसी ने ज़ुल्म किया हो अगर वह ज़ुल्म की शिकायत और ज़िक्र लोगों से करे तो यह ग़ीबत हराम में दाख़िल नहीं, क्योंकि उसने ख़ुद इसको शिकायत करने का मौक़ा दिया है। ग़र्ज़ कि क़ुरआने करीम ने एक तरफ़ तो मज़लूम को ज़ुल्म का बराबर तौर पर बदला लेने की इजाज़त दे दी और दूसरी तरफ़ ऊँचे अख़्लाक़ की तालीम, माफ़ी व दरगुज़र करने और इसके मुक़ाबले में आख़िरत का बड़ा फ़ायदा सामने करके मज़लूम को इस पर आमादा किया कि वह अपने उस जायज़ हक़ में दरिया दिली से काम लेकर ज़ुल्म का इन्तिक़ाम न ले, इरशाद फ़रमायाः

إِنْ تُبْدُوا خَيْرًا أَوْ تُخْفُوهُ أَوْ تَعْفُوا عَنْ سُوٓءٍ فَإِنَّ اللّٰهَ كَانَ عَفُوًّا قَدِيرًا

यानी "अगर तुम कोई नेकी ज़ाहिर करके करो या ख़ुफ़िया तौर पर करो, या किसी के ज़ुल्म और बुराई को माफ़ कर दो तो यह बेहतर है क्योंकि अल्लाह तआ़ला बहुत माफ़ करने वाले और बड़ी क़ुदरत वाले हैं।"

इस आयत में असल मक़सद तो ज़ुल्म के माफ़ करने से मुताल्लिक़ है, मगर उसके साथ ऐलानिया और ख़ुफ़िया नेकी का भी ज़िक्र फ़रमा कर इस तरफ़ इशारा कर दिया कि यह माफ़ व दरगुज़र करना एक बड़ी नेकी है जो इसको इख़्तियार करेगा अल्लाह तआ़ला की रहमत और माफ़ी का मुस्तहिक़ हो जायेगा।

आयत के आख़िर में 'फ़-इन्नल्ला-ह का-न अ़फ़ुव्वन् क़दीरा' फ़रमाकर यह बतला दिया कि अल्लाह तआ़ला क़ादिरे मुतलक़ हैं जिसको जो चाहें सज़ा दे सकते हैं, इसके बावजूद बहुत माफ़ करने वाले हैं। तो इनसान, जिसको क़ुदरत व इख़्तियार भी कुछ नहीं वह अगर इन्तिक़ाम (बदला) लेना भी चाहे तो बहुत मुम्किन है कि उस पर क़ुदरत न हो, इसलिये उसको तो माफ़ी व दरगुज़र और भी ज़्यादा मुनासिब है।

यह है ज़ुल्म के ख़ात्मे और समाज के सुधार का क़ुरआनी उसूल और तरबियत वाला अन्दाज़, कि एक तरफ़ बराबर के बदला लेने का हक़ देकर अ़दल व इन्साफ़ का बेहतरीन क़ानून बना दिया, दूसरी तरफ़ मज़लूम को बुलन्द अख़्लाक़ की तालीम देकर माफ़ व दरगुज़र करने पर आमादा किया, जिसका लाज़िमी नतीजा वह है जिसको क़ुरआने करीम ने दूसरी जगह इरशाद फ़रमाया है:

فَإِذَا الَّذِىْ بَيْنَكَ وَبَيْنَهٗ عَدَاوَةٌ كَاَنَّهٗ وَلِىٌّ حَمِيْمٌ٥ (٤١:٣٤)

"यानी जिस शख़्स के और तुम्हारे दरमियान दुश्मनी थी इस व्यवहार से वह तुम्हारा मुख़्लिस दोस्त बन जायेगा।"

अ़दालती फ़ैसला और ज़ुल्म का इन्तिक़ाम ले लेने से ज़ुल्म की रोक-थाम ज़रूर हो जाती है, लेकिन दोनों पक्षों के दिलों में वो एक देरपा (देर तक रहने वाला) असर छोड़ जाते हैं, जो आगे चलकर फिर आपसी झगड़ों का सबब बन सकते हैं, और यह अख़्लाक़ी सबक़ जो क़ुरआने करीम ने दिया इसके नतीजे में गहरी और पुरानी दुश्मनियाँ दोस्तियों में तब्दील हो जाती हैं।

तीसरी, चौथी और पाँचवीं आयतों में क़ुरआने हकीम ने यह खुला हुआ फ़ैसला दिया है कि जो शख़्स अल्लाह तआ़ला को माने मगर उसके रसूलों पर ईमान न लाये, या कुछ रसूलों को माने और कुछ को न माने वह अल्लाह तआ़ला के नज़दीक मोमिन नहीं, बल्कि खुला काफ़िर है, आख़िरत में जिसकी निजात की कोई राह नहीं।

इस्लाम निजात का मदार है, किसी मुख़ालिफ़ मज़हब में निजात नहीं हो सकती

क़ुरआने करीम के इस स्पष्ट फ़ैसले ने उन लोगों की बेराही और ग़लत चाल को पूरी तरह खोल दिया है जो दूसरे मज़हब वालों के साथ रवादारी में मज़हब और मज़हबी अ़क़ीदों को बतौर न्यौता और हिबा के पेश करना चाहते हैं, और क़ुरआन व सुन्नत के खुले हुए फ़ैसलों के ख़िलाफ़ दूसरे मज़हब वालों को यह बताना चाहते हैं कि मुसलमानों के नज़दीक निजात सिर्फ़

इस्लाम में सीमित नहीं, यहूदी अपने मज़हब पर और ईसाई अपने मज़हब पर रहते हुए भी निजात पा सकता है। हालाँकि ये लोग सब रसूलों के या कम से कम कुछ रसूलों के मुन्किर हैं जिनके काफ़िर व जहन्नमी होने का इस आयत ने ऐलान कर दिया है।

इसमें शुब्हा नहीं कि इस्लाम ग़ैर-मुस्लिमों के साथ अ़दल व इन्साफ़, हमदर्दी व ख़ैरख़्वाही और एहसान व रवादारी के मामले में अपनी मिसाल नहीं रखता, लेकिन एहसान व सुलूक अपने हुक़ूक़ और अपनी मिल्कियत में हुआ करते हैं, मज़हबी उसूल व अ़क़ीदे हमारी मिल्कियत नहीं जो हम किसी को तोहफ़े में पेश कर सकें। इस्लाम जिस तरह ग़ैर-मुस्लिमों के साथ रवादारी और अच्छे सुलूक की तालीम में निहायत सख़ी और दरियादिल है इसी तरह वह अपनी सरहदों की हिफ़ाज़त में बहुत मोहतात (सावधान) और सख़्त भी है, वह ग़ैर-मुस्लिमों के साथ हमदर्दी व ख़ैरख़्वाही और इन्तिहाई रवादारी के साथ कुफ़्र और कुफ़्र की रस्मों से पूरी तरह बरी होने का ऐलान भी करता है। मुसलमानों को ग़ैर-मुस्लिमों से अलग एक क़ौम भी क़रार देता है, और उनके क़ौमी पहचानों और निशानियों की पूरी तरह हिफ़ाज़त भी करता है। वह इबादत की तरह मुसलमानों की मुआ़शरत (सामाजिक ज़िन्दगी) को भी दूसरों से अलग रखना चाहता है जिसकी बेशुमार मिसालें क़ुरआन व सुन्नत में मौजूद हैं।

अगर इस्लाम और क़ुरआन का यह अ़क़ीदा होता कि हर मज़हब व मिल्लत में निजात हो सकती है तो उसको मज़हबे इस्लाम की तब्लीग़ पर इतना ज़ोर देने का कोई हक़ न था, और इसके लिये सर-धड़ की बाज़ी लगा देना उसूली तौर पर ग़लत और ख़िलाफ़े अ़क्ल होता, बल्कि इस सूरत में ख़ुद रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की बेसत (नबी बनाकर भेजा जाना) और क़ुरआने हकीम का नाज़िल होना मआ़ज़ल्लाह बेकार और फ़ुज़ूल हो जाता है और रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम और ख़ुलफ़ा-ए-राशिदीन का सारा जिहाद बेमानी बल्कि दूसरों के मुल्क कब्ज़ाने की हवस रह जाती है।

इस मामले में कुछ लोगों को सूरः ब-क़रह की आयत नम्बर 62 से शुब्हा हुआ है जिसमें इरशाद है:

اِنَّ الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا وَالَّذِيْنَ هَادُوْا وَالنَّصٰرٰى وَالصَّابِئِيْنَ مَنْ اٰمَنَ بِاللّٰهِ وَالْيَوْمِ الْاٰخِرِ وَعَمِلَ صَالِحًا فَلَهُمْ اَجْرُهُمْ عِنْدَ رَبِّهِمْ وَلَا خَوْفٌ عَلَيْهِمْ وَلَا هُمْ يَحْزَنُوْنَ.

"यानी वे लोग जो ईमान लाये और वे लोग जो यहूदी हुए और ईसाई और साबिईन, उनमें से जो भी अल्लाह पर और आख़िरत के दिन पर ईमान लाये और नेक अ़मल करे तो उनका अज्र उनके रब के पास महफ़ूज़ है, उन पर न कोई ख़ौफ़ है न वे ग़मगीन होंगे।"

इस आयत में चूँकि ईमानी बातों की पूरी तफ़सील देने के बजाय सिर्फ़ अल्लाह पर और आख़िरत के दिन पर ईमान लाने के ज़िक्र पर इक्तिफ़ा किया गया है, तो जो लोग क़ुरआन को सिर्फ़ अधूरे मुताले (अध्ययन) से समझना चाहते हैं इससे वे यह समझ बैठे कि सिर्फ़ अल्लाह तआ़ला और क़ियामत पर ईमान रखना निजात के लिये काफ़ी है, रसूल पर ईमान लाना निजात

के लिये शर्त नहीं, और यह न समझ सके कि क़ुरआन की इस्तिलाह में अल्लाह पर ईमान लाना वही मोतबर है जो रसूल पर ईमान लाने के साथ हो, वरना महज़ ख़ुदा के इक़रार और तौहीद का तो शैतान भी क़ायल है, क़ुरआने करीम ने ख़ुद इस हक़ीक़त को इन अलफ़ाज़ में वाज़ेह फ़रमा दिया है:

فَاِنْ اٰمَنُوْا بِمِثْلِ مَآ اٰمَنْتُمْ بِهٖ فَقَدِ اهْتَدَوْا وَاِنْ تَوَلَّوْا فَاِنَّمَا هُمْ فِيْ شِقَاقٍ فَسَيَكْفِيْكَهُمُ اللّٰهُ وَهُوَ السَّمِيْعُ الْعَلِيْمُ۝

(سورۃ۲:آیت۱۳۷)

यानी "उनका ईमान उस वक़्त मोतबर होगा जबकि वे आम मुसलमानों की तरह ईमान इख़्तियार करें, जिसमें अल्लाह पर ईमान के साथ रसूल पर ईमान लाना लाज़िम है, वरना फिर समझ लो कि वही लोग फूट और इख़्तिलाफ़ पैदा करना चाहते हैं, सो अल्लाह तआ़ला आपकी तरफ़ से उनके लिये काफ़ी है और वह बहुत सुनने वाला जानने वाला है।"

और बयान हो रही इन आयतों में तो इससे भी ज़्यादा वज़ाहत के साथ बतला दिया गया है कि जो शख़्स अल्लाह के किसी एक रसूल का भी मुन्किर हो वह खुला काफ़िर है, और उसके लिये जहन्नम का अ़ज़ाब है। अल्लाह पर ईमान लाना वही मोतबर है जो रसूल पर ईमान लाने के साथ हो, इसके बग़ैर उसको अल्लाह पर ईमान लाना कहना भी सही नहीं है।

आख़िरी आयत में फिर बयान फ़रमा दिया गया है कि आख़िरत की निजात उन्हीं लोगों का हिस्सा है जो अल्लाह तआ़ला के साथ उसके सब रसूलों पर भी ईमान रखें, इसी लिये रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया है:

اِنَّ الْقُرْاٰنَ يُفَسِّرُ بَعْضُهٗ بَعْضًا.

"यानी क़ुरआन का एक हिस्सा दूसरे हिस्से की तफ़सीर व मतलब बयान करता है।"

ख़ुद क़ुरआनी तफ़सीर के ख़िलाफ़ कोई तफ़सीर करना किसी के लिये जायज़ नहीं।

يَسْـَٔلُكَ اَهْلُ الْكِتٰبِ اَنْ تُنَزِّلَ عَلَيْهِمْ كِتٰبًا مِّنَ السَّمَآءِ فَقَدْ سَاَلُوْا مُوْسٰٓى اَكْبَرَ مِنْ ذٰلِكَ فَقَالُوْٓا اَرِنَا اللّٰهَ جَهْرَةً فَاَخَذَتْهُمُ الصّٰعِقَةُ بِظُلْمِهِمْ ۚ ثُمَّ اتَّخَذُوا الْعِجْلَ مِنْۢ بَعْدِ مَا جَآءَتْهُمُ الْبَيِّنٰتُ فَعَفَوْنَا عَنْ ذٰلِكَ ۚ وَاٰتَيْنَا مُوْسٰى سُلْطٰنًا مُّبِيْنًا ۝ وَرَفَعْنَا فَوْقَهُمُ الطُّوْرَ بِمِيْثَاقِهِمْ وَقُلْنَا لَهُمُ ادْخُلُوا الْبَابَ سُجَّدًا وَّقُلْنَا لَهُمْ لَا تَعْدُوْا فِي السَّبْتِ وَاَخَذْنَا مِنْهُمْ مِّيْثَاقًا غَلِيْظًا ۝

यस्अलु-क अह्लुल्-किताबि अन् तुनज़्ज़ि-ल अ़लैहिम् किताबम् मिनस्समा-इ फ़-क़द् स-अलू मूसा	तुझसे दरख़्वास्त करते हैं अहले किताब कि तू उन पर उतार लाये लिखी हुई किताब आसमान से, सो माँग चुके हैं मूसा से इससे भी बड़ी चीज़ और कहा-

अक्ब-र मिन् ज़ालि-क फ़क़ालू अरिनल्ला-ह जह्रतन् फ़-अ-ख़ज़त्हुमुस्-साअि-क़तु बिज़ुल्मिहिम् सुम्मत्त-ख़ज़ुल्-अिज्-ल मिम्-बअ़्दि मा जाअत्हुमुल् बय्यिनातु फ़-अफ़ौना अन् ज़ालि-क व आतैना मूसा सुल्तानम् मुबीना (153) व रफ़अ़्ना फ़ौक़हुमुत्तू-र बिमीसाक़िहिम् व क़ुल्ना लहुमुद्ख़ुलुल्बा-ब सुज्जदंव्-व क़ुल्ना लहुम् ला तअ़्दू फ़िस्सब्ति व अख़ज़्ना मिन्हुम् मीसाक़न् ग़लीज़ा (154)	हमको दिखला दे अल्लाह को बिल्कुल सामने, सो आ पड़ी उन पर बिजली उनके गुनाह के कारण, फिर बना लिया बछड़े को बहुत कुछ निशानियाँ पहुँच चुकने के बाद, फिर हमने वह भी माफ़ किया और दिया हमने मूसा (अ़लैहिस्सलाम) को खुला ग़लबा। (153) और हमने उठाया उन पर पहाड़ क़रार (अ़हद) लेने के वास्ते और हमने कहा दाख़िल होओ दरवाज़े में सज्दा करते हुए, और हमने कहा कि ज़्यादती मत करो हफ़्ते (यानी शनिवार) के दिन में, और हमने उनसे लिया मज़बूत (पक्का) क़ौल। (154)

इन आयतों का पीछे के मज़मून से संबन्ध

पहले की आयतों में यहूदियों के बुरे एतिक़ादों का ज़िक्र करके उनकी मज़म्मत (बुराई) बयान हुई थी, इन आयतों में भी उनकी कुछ दूसरी ख़राब हरकतों की एक लम्बी फ़ेहरिस्त और उन बुराईयों की बिना पर उनके अ़ज़ाब व सज़ा का ज़िक्र है, और यह सिलसिला दूर तक चला गया है।

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

(ऐ मुहम्मद सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम!) आप से अहले किताब (यानी यहूदी) यह दरख़्वास्त करते हैं कि आप उनके पास एक ख़ास तहरीर आसमान से मंगवा दें, सो (आप उन लोगों से इसको अ़जीब न समझिये, क्योंकि यह फ़िर्क़ा ऐसा दुश्मन व विरोधी है कि) इन्होंने (यानी इस फ़िर्क़े के जो लोग मूसा अ़लैहिस्सलाम के वक़्त मौजूद थे उन्होंने) मूसा से इससे भी बड़ी बात की दरख़्वास्त की थी और यूँ कहा था कि हमको अल्लाह तआ़ला को खुल्लम-खुल्ला (बिना पर्दे के) दिखला दो। उनकी इस गुस्ताख़ी के सबब उन पर कड़क बिजली आ पड़ी। फिर (इससे बढ़कर उनकी यह हरकत हो चुकी है कि) उन्होंने गौसाला को (पूजा और इबादत के लिये) तजवीज़ किया था, इसके बाद कि बहुत-सी दलीलें (हक़ व बातिल को स्पष्ट करने की) उनको पहुँच चुकी थीं (इन दलीलों से मुराद मूसा अ़लैहिस्सलाम के मोजिज़े हैं जिनमें से फ़िरऔ़न के ग़र्क़ होने तक बहुतों को देखा जा चुका था)। फिर हमने उनसे दरगुज़र कर दिया था, और

मूसा अ़लैहिस्सलाम को हमने बहुत बड़ा रौब दिया था (उस रौब पर और हमारी दरगुज़र और इनायत पर उन लोगों की यह कैफ़ियत थी कि न इनायत से मुतास्सिर होते थे न रौब से), और हमने उन लोगों से (तौरात पर अ़मल करने के) क़ौल व क़रार लेने के वास्ते तूर पहाड़ को उठाकर उनके ऊपर (सीध में) लटका दिया था, और हमने उनको यह हुक्म दिया था कि दरवाज़े में आजिज़ी से दाख़िल होना, और हमने उनको यह हुक्म दिया था कि हफ़्ते "यानी शनिवार" के दिन के बारे में (जो हुक्म तुमको मिला है कि उसमें शिकार न करें उसमें शरीअ़त की) हद से मत बढ़ना, और (इसके अ़लावा और भी) हमने उनसे क़ौल व क़रार बहुत सख़्त लिए (जिसका बयान 'व इज़् अख़ज़्ना मीसा-क़ बनी इस्राई-ल......' (यानी सूरः ब-क़रह की आयत 83) में मज़कूर है, लेकिन उन लोगों ने बावजूद इस क़द्र एहतिमाम के फिर अपने अ़हदों "क़ौल व क़रार" को तोड़ डाला)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

यहूदियों के कुछ सरदार नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की ख़िदमत में आये और आप से मुतालबा किया कि जिस तरह मूसा अ़लैहिस्सलाम पर लिखी हुई किताब आसमान से नाज़िल हुई थी इसी तरह की एक किताब आप भी आसमान से लायें तो हम ईमान ले आयेंगे। उनका मुतालबा इसलिये नहीं था कि वे दिल से ईमान लाना चाहते थे और यह उनकी एक शर्त थी, बल्कि वे हठधर्मी और ज़िद की वजह से कोई न कोई उज़्र (बहाना) करते ही रहते थे, अल्लाह तआ़ला ने यह आयत नाज़िल फ़रमाकर नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को असल हक़ीक़त से आगाह फ़रमाया और आपकी तसल्ली कर दी कि दर हक़ीक़त यह क़ौम ही ऐसी है कि अल्लाह तआ़ला के रसूलों को सताती ही रहती है, और अल्लाह तआ़ला के ख़िलाफ़ बग़ावत करने के लिये बड़ी से बड़ी हरकत भी कर गुज़रती है, इनके बाप-दादा ने मूसा अ़लैहिस्सलाम से इससे भी ज़्यादा बड़ी बात का मुतालबा किया था कि हमें अल्लाह तआ़ला खुल्लम-खुल्ला दिखलाया जाये, उनकी इस गुस्ताख़ी पर आसमान से बिजली आई और उनको हलाक कर दिया, फिर तौहीद और ख़ुदा वह्दहू ला शरी-क लहू की निशानियों और हुज्जतों को अच्छी तरह समझने बूझने के बाद भी ख़ालिक़े हक़ीक़ी के बजाय बछड़े को माबूद बना बैठे थे, लेकिन इस सब कुछ के बावजूद हमने माफ़ी व दरगुज़र से काम लिया वरना तो मौक़ा इसका था कि उनको तहस-नहस किया जाता, और अपने पैग़म्बर हज़रत मूसा अ़लैहिस्सलाम को हमने ग़लबा अ़ता किया। एक मौक़ा ऐसा भी आया था कि इन लोगों ने तौरात की शरीअ़त को मानने से साफ़ इनकार कर दिया था तो हमने तूर पहाड़ को उठाकर इन पर लटका दिया कि शरीअ़त को मानना ही होगा वरना पहाड़ के नीचे कुचल दिये जाओगे। हमने इनसे यह भी कहा कि जब शहर ईलिया के दरवाज़े में दाख़िल हो तो निहायत आ़जिज़ी से अल्लाह की इताअ़त के जज़्बे में डूबे हुए सर झुकाये हुए दाख़िल हो। यह भी हमने उनसे कह दिया था कि हफ़्ते (शनिवार) के रोज़ मछलियों का शिकार न खेलो, यह हमारा हुक्म है इससे मुँह न फेरो और इस

तरह हमने उनसे मज़बूत अ़हद लिया था लेकिन हुआ यूँ कि उन्होंने एक-एक करके अहकाम की ख़िलाफ़वर्ज़ी की, और हमारे अ़हद को तोड़ डाला तो हमने दुनिया में भी उनको ज़लील कर दिया और आख़िरत में भी उनको बदतरीन सज़ा भुगतनी होगी।

فَبِمَا نَقْضِهِمْ مِّيْثَاقَهُمْ وَكُفْرِهِمْ بِاٰيٰتِ اللّٰهِ وَقَتْلِهِمُ الْاَنْۢبِيَآءَ بِغَيْرِ حَقٍّ وَّقَوْلِهِمْ قُلُوْبُنَا غُلْفٌ ۭ بَلْ طَبَعَ اللّٰهُ عَلَيْهَا بِكُفْرِهِمْ فَلَا يُؤْمِنُوْنَ اِلَّا قَلِيْلًا ۝ وَّبِكُفْرِهِمْ وَقَوْلِهِمْ عَلٰي مَرْيَمَ بُهْتَانًا عَظِيْمًا ۝ وَّقَوْلِهِمْ اِنَّا قَتَلْنَا الْمَسِيْحَ عِيْسَى ابْنَ مَرْيَمَ رَسُوْلَ اللّٰهِ ۚ وَمَا قَتَلُوْهُ وَمَا صَلَبُوْهُ وَلٰكِنْ شُبِّهَ لَهُمْ ۭ وَاِنَّ الَّذِيْنَ اخْتَلَفُوْا فِيْهِ لَفِيْ شَكٍّ مِّنْهُ ۭ مَا لَهُمْ بِهٖ مِنْ عِلْمٍ اِلَّا اتِّبَاعَ الظَّنِّ ۚ وَمَا قَتَلُوْهُ يَقِيْنًا ۝ بَلْ رَّفَعَهُ اللّٰهُ اِلَيْهِ ۭ وَكَانَ اللّٰهُ عَزِيْزًا حَكِيْمًا ۝ وَاِنْ مِّنْ اَهْلِ الْكِتٰبِ اِلَّا لَيُؤْمِنَنَّ بِهٖ قَبْلَ مَوْتِهٖ ۚ وَيَوْمَ الْقِيٰمَةِ يَكُوْنُ عَلَيْهِمْ شَهِيْدًا ۝

फ़बिमा नक़्ज़िहिम् मीसाक़हुम् व कुफ़्रिहिम् बिआयातिल्लाहि व क़त्लिहिमुल् अम्बिया-अ बिग़ैरि हक़्क़िंव्-व क़ौलिहिम् क़ुलूबुना ग़ुल्फ़ुन्, बल् त-बअ़ल्लाहु अ़लैहा बिकुफ़्रिहिम् फ़ला युअ्मिनू-न इल्ला क़लीला (155) व बिकुफ़्रिहिम् व क़ौलिहिम् अ़ला मर्य-म बुह्तानन् अ़ज़ीमा (156) व क़ौलिहिम् इन्ना क़तल्नल्-मसी-ह अ़ीसब्-न मर्य-म रसूलल्लाहि व मा क़-तलूहु व मा स-लबूहु व लाकिन् शुब्बि-ह लहुम्, व इन्नल्लज़ीनख़्त-लफ़ू फ़ीहि लफ़ी शक्किम् मिन्हु, मा लहुम् बिही मिन् अ़िल्मिन् इल्लत्तिबाअ़ज़्ज़न्नि व मा	उनको जो सज़ा मिली सो उनके अ़हद तोड़ने पर और इनकारी होने पर अल्लाह की आयतों से, और ख़ून करने पर पैग़म्बरों का नाहक़, और इस कहने पर कि हमारे दिल पर ग़िलाफ़ (पर्दा) है, सो यह नहीं बल्कि अल्लाह ने मोहर कर दी उनके दिल पर उनके कुफ़्र के सबब, सो ईमान नहीं लाते मगर कम। (155) और उनके कुफ़्र पर और मरियम पर बड़ा तूफ़ान बाँधने पर। (156) और उनके इस कहने पर कि हमने क़त्ल किया मसीह ईसा मरियम के बेटे को जो रसूल था अल्लाह का, और उन्होंने न उसको मारा और न सूली पर चढ़ाया लेकिन वही सूरत बन गई उनके आगे, और जो लोग इसमें मुख़्तलिफ़ (विभिन्न और अनेक) बातें करते हैं तो वे लोग इस जगह शुब्हे (ग़लती और धोखे) में पड़े हुए हैं। कुछ

क़-तलूहु यक़ीना (157) बर्र-फ़-अ़हुल्लाहु इलैहि, व कानल्लाहु अ़ज़ीज़न् हकीमा (158) व इम्-मिन् अह्लिल्-किताबि इल्ला ल-युअ्मिनन्-न बिही क़ब्-ल मौतिही व यौमल्-क़ियामति यकूनु अ़लैहिम् शहीदा (159)	नहीं उनको इसकी ख़बर, सिर्फ़ अन्दाज़े और अटकल पर चल रहे हैं, और उसको क़त्ल नहीं किया बेशक (157) बल्कि उसको उठा लिया अल्लाह ने अपनी तरफ़, और अल्लाह है ज़बरदस्त हिक्मत वाला। (158) और जितने फ़िर्के हैं अहले किताब के सो ईसा (अ़लैहिस्सलाम) पर यक़ीन लायेंगे उसकी मौत से पहले, और क़ियामत के दिन होगा उनपर गवाह। (159)

इन आयतों के मज़मून का पीछे से ताल्लुक़

पिछली आयतों में भी यहूद की शरारतों का ज़िक्र था और उन शरारतों की वजह से उन पर लान-तान और सज़ा का बयान हुआ था। इन आयतों में भी यहूदियों के बाज़ जुर्मों की तफ़सील मज़कूर है। इसके तहत में हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम के मुताल्लिक़ उनके बातिल ख़्याल की तरदीद की गई है, और यह वाज़ेह कर दिया गया है कि हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम को अल्लाह तआ़ला ने इनके ज़ुल्म व सितम से बचाकर ज़िन्दा आसमान पर उठा लिया है। ये लोग जो दावा करते हैं कि हमने ईसा अ़लैहिस्सलाम को क़त्ल कर दिया है और उनको सूली दी है, यह सरासर झूठा दावा है, जिस शख़्स को इन्होंने क़त्ल किया था वह ईसा अ़लैहिस्सलाम नहीं थे बल्कि उनका हमशक्ल एक दूसरा आदमी था जिसको क़त्ल करके ये लोग यूँ समझने लगे कि हमने ईसा (अ़लैहिस्सलाम) को क़त्ल कर दिया।

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

सो हमने (उनकी हरकतों की वजह से) लानत व ग़ज़ब, ज़िल्लत और शक्लें बिगाड़ देने वग़ैरह की सज़ा में मुब्तला किया (यानी) उनके अ़हद तोड़ने की वजह से और अल्लाह के अहकाम के साथ उनके कुफ़्र (व इनकार) की वजह से, और उनके नबियों (अ़लैहिमुस्सलाम) को क़त्ल करने की वजह से (जो उनके नज़दीक भी) नाहक़ (था), और उनके इस कहने की वजह से कि हमारे दिल (ऐसे) महफ़ूज़ हैं (कि उनमें मुख़ालिफ़ मज़हब यानी इस्लाम का असर नहीं होता तो अपने मज़हब पर हम ख़ूब पुख़्ता हैं। हक़ तआ़ला इस पर रद्द फ़रमाते हैं कि यह मज़बूती और पुख़्तगी नहीं है) बल्कि उनके कुफ़्र के सबब उनके दिलों पर अल्लाह तआ़ला ने बन्द लगा दिया है (कि हक़ बात का उनपर असर ही नहीं होता) सो उनमें ईमान नहीं मगर बहुत मामूली (और बहुत मामूली ईमान मक़बूल नहीं, पस काफ़िर ही ठहरे)।

और (हमने उनको लानत वग़ैरह की सज़ा में इन वजहों से भी मुब्तला किया यानी) उनके

(एक ख़ास) कुफ़्र की वजह से, और (तफ़सील इसकी यह है कि) हज़रत मरियम अ़लैहस्सलाम पर उनके बड़ा भारी बोहतान धरने की वजह से (जिससे ईसा अ़लैहिस्सलाम को झुठलाना भी लाज़िम आता है, क्योंकि ईसा अ़लैहिस्सलाम अपने मोजिज़े से अपनी वालिदा की बराअत ज़ाहिर फ़रमा चुके हैं)। और (साथ ही घमंड के तौर पर) उनके इस कहने की वजह से कि हमने मसीह ईसा इब्ने मरियम को जो कि अल्लाह तआ़ला के रसूल हैं, क़त्ल कर दिया (यह कहना ख़ुद दलील है दुश्मनी की, और दुश्मनी अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम के साथ कुफ़्र है, तथा इसमें दावा है क़त्ल का, और नबी का क़त्ल करना भी कुफ़्र है, और दावा कुफ़्र का भी कुफ़्र है), हालाँकि (कुफ़्र होने के अ़लावा ख़ुद उनका यह दावा भी ग़लत है क्योंकि) उन्होंने (यानी यहूदियों ने) न उनको (यानी ईसा अ़लैहिस्सलाम को) क़त्ल किया न उनको सूली पर चढ़ाया, लेकिन उनको (यानी यहूद को) धोखा और शुब्हा हो गया। और जो लोग (अहले किताब में से) उनके (यानी हज़रत ईसा के) बारे में इख़्तिलाफ़ करते हैं वे ग़लत ख़्याल में (मुब्तला) हैं, उनके पास इस पर कोई (सही) दलील (मौजूद) नहीं, सिवाय अटकली बातों पर अ़मल करने के, और यक़ीनी बात है कि उन्होंने (यानी यहूद ने) उनको (यानी ईसा अ़लैहिस्सलाम को) क़त्ल नहीं किया (जिसका वे दावा करते हैं)। बल्कि उनको ख़ुदा तआ़ला ने अपनी तरफ़ (यानी आसमान पर) उठा लिया (और एक और शख़्स को उनका हमशक्ल बना दिया और वह सूली दिया गया व मक़्तूल हुआ, और यही सबब हुआ यहूद के धोखे और शुब्हे का, और इस शुब्हे ने अहले किताब में इख़्तिलाफ़ पैदा कर दिया) और अल्लाह तआ़ला बड़े ज़बरदस्त (यानी क़ुदरत वाले), हिक्मत वाले हैं (कि अपनी क़ुदरत व हिक्मत से हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम को बचा लिया और उठा लिया, और यहूद को शुब्हा व धोखा लगने की वजह से पता भी न लगा)। और (यहूद को हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम की नुबुव्वत का इनकार करने में झूठा और ग़लत रास्ते पर होना बहुत जल्द दुनिया ही में ज़ाहिर हो जायेगा, क्योंकि इस आयत के नाज़िल होने के वक़्त से लेकर किसी ज़माने में) कोई शख़्स अहले किताब (यानी यहूद में) से (बाक़ी) नहीं रहता मगर वह ईसा अ़लैहिस्सलाम (की नुबुव्वत) की अपने मरने से (ज़रा) पहले (जबकि आ़लमे बर्ज़ख़ नज़र आने लगता है) ज़रूर तस्दीक़ कर लेता है (अगरचे उस वक़्त की तस्दीक़ लाभदायक नहीं, मगर ख़ुद के ग़लत रास्ते पर होने के इज़हार के लिये तो काफ़ी है, तो उससे अगर अब ही ईमान ले आयें तो फ़ायदेमन्द हो जाये) और (जब आ़लमे दुनिया और आ़लमे बर्ज़ख़ दोनों ख़त्म हो चुकेंगे यानी) क़ियामत के दिन वह (यानी ईसा अ़लैहिस्सलाम) उन (मुन्किरों के इनकार) पर गवाही देंगे।

मआ़रिफ़ व मसाईल

सूरः आले इमरान की आयतः

يٰعِيْسٰى اِنِّىْ مُتَوَفِّيْكَ وَرَافِعُكَ اِلَىَّ........ الاية. (٣:٥٥)

(यानी सूरः आले इमरान की आयत 55) में हक़ तआ़ला ने हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम के दुश्मन यहूदियों के इरादों को नाकाम बनाने और हज़रत ईसा को उनके इख़्तियार चलाने से

बचाने के सिलसिले में पाँच वायदे फ़रमाये थे, जिनकी तफ़सील और मुकम्मल तशरीह व तफ़सीर सूरः आले इमरान की तफ़सीर में बयान हो चुकी है। उन वायदों में एक वायदा यह भी था कि यहूद को आपके क़त्ल पर क़ुदरत नहीं दी जायेगी, बल्कि आपको अल्लाह तआ़ला अपनी तरफ़ उठा लेंगे। इस आयत में यहूदियों की शरारतों और झूठे दावों के बयान में अल्लाह के उस वायदे को पूरा करने और यहूद के मुग़ालते का मुफ़स्सल बयान और यहूद के इस क़ौल की मुकम्मल तरदीद है कि उन्होंने ईसा अ़लैहिस्सलाम को क़त्ल कर दिया है।

इन आयतों में वाज़ेह किया गया किः

وَمَا قَتَلُوْهُ وَمَا صَلَبُوْهُ

यानी उन लोगों ने हज़रत ईसा इब्ने मरियम को न क़त्ल किया और न सूली पर चढ़ाया, बल्कि सूरतेहाल यह पेश आई कि मामला उनके लिये संदिग्ध कर दिया गया।

यहूद को शुब्हा व धोखा किस तरह पेश आया?

'व लाकिन् शुब्बि-ह लहुम' की तफ़सीर में इमामे तफ़सीर हज़रत ज़स्हाक रहमतुल्लाहि अ़लैहि फ़रमाते हैं कि क़िस्सा यूँ पेश आया कि जब यहूदियों ने हज़रत मसीह अ़लैहिस्सलाम के क़त्ल का इरादा किया तो आपके हवारी (मानने वाले) एक जगह जमा हो गये। हज़रत मसीह अ़लैहिस्सलाम भी उनके पास तशरीफ़ ले आये। शैतान ने यहूद के उस दस्ते को जो हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम के क़त्ल के लिये तैयार खड़ा था हज़रत ईसा का पता दिया और चार हज़ार आदमियों ने मकान का घेराव कर लिया। हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम ने अपने हवारियों से फ़रमाया कि तुम में से कोई शख़्स इसके लिये तैयार है कि बाहर निकले और उसको क़त्ल कर दिया जाये और फिर जन्नत में मेरे साथ हो? उनमें से एक आदमी ने इस ग़र्ज़ के लिये अपने आपको पेश कर दिया। आपने उसको अपना कुर्ता, पगड़ी अ़ता किया, फिर उस पर आपकी मुशाबहत डाल दी गई (यानी उसको अल्लाह ने आपके जैसे हुलिये वाला बना दिया) और जब वह बाहर निकल आया तो यहूद उसे पकड़कर ले गये और सूली पर चढ़ा दिया, और हज़रत ईसा को आसमान पर उठा लिया गया। (तफ़सीरे क़ुर्तुबी)

कुछ रिवायतों में है कि यहूदियों ने एक शख़्स तेतलानूस को हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम के क़त्ल के वास्ते भेजा था, हज़रत ईसा तो मकान में न मिले इसलिये कि उनको अल्लाह तआ़ला ने उठा लिया था, और यह शख़्स जब घर से बाहर निकला तो हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम का हमशक्ल बना दिया गया था, यहूदी यह समझे कि यही ईसा है और उस अपने ही आदमी को लेजाकर क़त्ल कर दिया। (तफ़सीरे मज़हरी)

इनमें से जो भी सूरतेहाल पेश आई हो सब की गुंजाईश है। क़ुरआने करीम ने किसी ख़ास सूरत को मुतैयन नहीं फ़रमाया, इसलिये हक़ीक़ते हाल का सही इल्म तो अल्लाह ही को है, अलबत्ता क़ुरआने करीम ने इस जुमले और दूसरी तफ़सीरी रिवायतों का संयुक्त खुलासा यह ज़रूर निकलता है कि यहूदियों व ईसाईयों को ज़बरदस्त मुग़ालता (धोखा) हो गया था, असल

हक़ीक़त उनसे पोशीदा रही और अपने-अपने गुमान व अन्दाज़े के मुताबिक़ उन्होंने तरह-तरह के दावे किये और उनके आपस ही में मतभेद व विवाद पैदा हो गये। इसी हक़ीक़त की तरफ़ क़ुरआने करीम के इन अलफ़ाज़ में इशारा किया गया है:

وَاِنَّ الَّذِیْنَ اخْتَلَفُوْا فِیْهِ لَفِیْ شَكٍّ مِّنْهُ مَا لَهُمْ بِهٖ مِنْ عِلْمٍ اِلَّا اتِّبَاعَ الظَّنِّ وَمَا قَتَلُوْهُ یَقِیْنًا،

कि उनके पास सही इल्म की बुनियाद पर कोई यक़ीनी बात नहीं है जिन-जिन लोगों ने हज़रत मसीह अ़लैहिस्सलाम के बारे में इख़्तिलाफ़ (झगड़ा) करके तरह-तरह के दावे किये हैं ये सब शक और अटकल की बातें हैं, सही स्थिति यह है कि उन्होंने हज़रत मसीह अ़लैहिस्सलाम को यक़ीनन क़त्ल नहीं किया, बल्कि अल्लाह तआ़ला ने उनको अपनी तरफ़ उठा लिया।

कुछ रिवायतों में यह भी है कि कुछ लोगों को इसका पता चला तो उन्होंने कहा कि हमने तो अपने ही आदमी को क़त्ल कर दिया है, इसलिये कि यह मक़्तूल चेहरे में तो हज़रत मसीह अ़लैहिस्सलाम के जैसा है लेकिन बाक़ी जिस्म में उनकी तरह नहीं, और यह कि अगर यह मक़्तूल मसीह (अ़लैहिस्सलाम) हैं तो हमारा आदमी कहाँ है, और अगर यह हमारा आदमी है तो मसीह (अ़लैहिस्सलाम) कहाँ हैं?

وَكَانَ اللّٰهُ عَزِیْزًا حَكِیْمًا

अल्लाह जल्ल शानुहू ज़बरदस्त क़ुदरत व ग़लबे वाला है। यहूद लाख दफ़ा क़त्ल के मन्सूबे बनाते लेकिन जब अल्लाह ने हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम की हिफ़ाज़त का ज़िम्मा लिया तो उसकी क़ुदरत व ग़लबे के सामने उनके मन्सूबों की हैसियत क्या है, वह क़ुदरत वाला है सिर्फ़ माद्दे के पुजारी इनसान अगर ईसा अ़लैहिस्सलाम को आसमान पर उठाये जाने की हक़ीक़त को नहीं समझ सके तो यह उनकी अपनी कमज़ोरी है, वह हिक्मत वाला है उसका हर काम हिक्मत व मस्लेहत पर आधारित होता है।

आख़िर में इसी मज़मून के आख़िरी हिस्से (यानी पूरक) के तौर पर फ़रमाया कि:

وَاِنْ مِّنْ اَهْلِ الْكِتٰبِ اِلَّا لَیُؤْمِنَنَّ بِهٖ قَبْلَ مَوْتِهٖ.

ये लोग इस वक़्त अगरचे बुग़्ज़ व हसद की वजह से हक़ीक़त की आँखों से देखने की कोशिश नहीं करते और हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम के बारे में बातिल (ग़लत और वास्तविकता के ख़िलाफ़) ख़्यालात रखते हैं, तथा हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की नुबुव्वत का भी इनकार कर रहे हैं, लेकिन एक वक़्त ऐसा आने वाला है जबकि इनकी आँखें खुल जायेंगी और उस वक़्त इन्हें यक़ीन हो जायेगा कि हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम और मुहम्मद सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के मुताल्लिक़ जो कुछ हमारा ख़्याल था वह सब बातिल (झूठ और ग़लत) था।

इस आयत की एक तफ़सीर तो वह है जो ख़ुलासा-ए-तफ़सीर में गुज़री है कि 'मौतिही' (उसकी मौत) के उस से मुराद अहले किताब हों और आयत का मतलब इस सूरत में यह है कि ये यहूदी अपनी मौत से चन्द लम्हे पहले जब आ़लमे बर्ज़ख़ को देखेंगे तो ईसा अ़लैहिस्सलाम की

नुबुव्वत पर ईमान ले आयेंगे अगरचे उस वक़्त का ईमान इनके हक़ में फ़ायदेमन्द नहीं होगा, जिस तरह कि फ़िरऔन को उसके उस ईमान ने फ़ायदा नहीं दिया था जो वह ग़र्क़ होने के वक़्त लाया था।

दूसरी तफ़सीर जिसको सहाबा रज़ियल्लाहु अ़न्हुम व ताबिईन हज़रात की बड़ी जमाअ़त ने इख़्तियार किया है और सही हदीस से भी उसकी ताईद होती है, यह है कि 'मौतिही' (उसकी मौत) के उस से मुराद हज़रत मसीह अ़लैहिस्सलाम हैं और आयत का मतलब यह है कि ये अहले किताब अगरचे इस वक़्त ईसा अ़लैहिस्सलाम पर ईमान नहीं लाते, यहूद तो उन्हें नबी ही नहीं मानते, बल्कि उन्हें अल्लाह की पनाह झूठा और बोहतान लगाने वाला क़रार देते हैं, और ईसाई अगरचे उन पर ईमान लाने का दावा करते हैं मगर कुछ तो उनमें से अपनी जहालत में यहाँ तक पहुँच गये कि यहूद ही की तरह हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम के क़त्ल किये जाने और सूली दिये जाने के क़ायल हो गये और कुछ एतिक़ाद के हद से बढ़ाने में इस हद तक आगे निकल गये कि उन्हें ख़ुदा और ख़ुदा का बेटा समझ लिया। क़ुरआने करीम की इस आयत में बतलाया गया है कि ये लोग अगरचे इस वक़्त हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम की नुबुव्वत पर सही ईमान नहीं रखते लेकिन जब वह क़ियामत के क़रीब इस ज़मीन पर फिर नाज़िल होंगे तो ये सब अहले किताब उन पर सही ईमान ले आयेंगे। ईसाई तो सब के सब सही एतिक़ाद के साथ मुसलमान हो जायेंगे, यहूद में जो मुख़ालफ़त करेंगे क़त्ल कर दिये जायेंगे, बाक़ी मुसलमान हो जायेंगे। उस वक़्त कुफ़्र अपनी तमाम क़िस्मों के साथ दुनिया से फ़ना कर दिया जायेगा और इस ज़मीन पर सिर्फ़ इस्लाम ही की हुक्मरानी होगी।

हज़रत अबू हुरैरह रज़ियल्लाहु अ़न्हु से एक रिवायत मन्क़ूल है:

عَنْ اَبِیْ هُرَیْرَةَ عَنِ النَّبِیِّ صَلَّی اللّٰهُ عَلَیْهِ وَسَلَّمَ اَنَّهٗ قَالَ: لَیَنْزِلَنَّ ابْنُ مَرْیَمَ حَکَمًا عَدْلًا فَلْیَقْتُلَنَّ الدَّجَّالَ وَلْیَقْتُلَنَّ الْخِنْزِیْرَ وَلْیَکْسِرَنَّ الصَّلِیْبَ وَتَکُوْنُ السَّجْدَةُ وَاحِدَةً لِلّٰهِ رَبِّ الْعٰلَمِیْنَ.

ثُمَّ قَالَ اَبُوْهُرَیْرَةَ وَاقْرَءُوْا اِنْ شِئْتُمْ: وَاِنْ مِّنْ اَهْلِ الْکِتٰبِ اِلَّا لَیُؤْمِنَنَّ بِهٖ قَبْلَ مَوْتِهٖ. قَالَ اَبُوْهُرَیْرَةَ قَبْلَ مَوْتِ عِیْسٰی، یُعِیْدُهَا ثَلٰثَ مَرَّاتٍ. (قرطبی)

"नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि ईसा बिन मरियम एक आ़दिल (इन्साफ़ करने वाले) शासक बनकर ज़रूर नाज़िल होंगे, वह दज्जाल और ख़िन्ज़ीर को क़त्ल कर देंगे, सलीब को तोड़ डालेंगे और उस वक़्त इबादत सिर्फ़ परवर्दिगारे आ़लम की होगी।

इसके बाद हज़रत अबू हुरैरह रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने फ़रमाया अगर तुम चाहो तो क़ुरआने करीम की यह आयत भी पढ़ लो जिसमें इसी हक़ीक़त का ज़िक्र किया गया है कि अहले किताब में से कोई भी बाक़ी न रहेगा मगर यह कि वह उन पर उनकी मौत से पहले ईमान ले आयेगा। आपने फ़रमाया ईसा (अ़लैहिस्सलाम) की मौत से पहले, और तीन बार इन अलफ़ाज़ को दोहराया।"

उक्त आयत की यह तफ़सीर एक बड़े रुतबे वाले सहाबी हज़रत अबू हुरैरह रज़ियल्लाहु

अन्हु से सही रिवायत से साबित है, जिसमें 'क़ब्-ल मौतिही' से मुराद ईसा अलैहिस्सलाम की मौत से पहले क़रार दिया है, जिसने आयत का मफ़्हूम वाज़ेह तौर पर मुतैयन कर दिया कि यह आयत क़ियामत के नज़दीक हज़रत ईसा अलैहिस्सलाम के नाज़िल होने के बारे में है।

इस तफ़सीर की बिना पर यह आयत बता रही है कि हज़रत ईसा अलैहिस्सलाम की वफ़ात अभी नहीं हुई बल्कि क़ियामत के क़रीब जब वह आसमान से नाज़िल होंगे और उनके उतरने से अल्लाह तआला की जो हिक्मतें जुड़ी हैं वे हिक्मतें पूरी हो जायेंगी, तब इस ज़मीन पर ही उनकी वफ़ात होगी।

इसकी ताईद सूरः ज़ुख़रुफ़ की इस आयत से भी होती है:

وَاِنَّهٗ لَعِلْمٌ لِّلسَّاعَةِ فَلَا تَمْتَرُنَّ بِهَا وَاتَّبِعُوْنِ. (٦١:٤٣)

"यानी ईसा अलैहिस्सलाम क़ियामत की एक निशानी हैं, पस तुम क़ियामत के आने में शक मत करो और मेरा कहा मानो।"

मुफ़स्सिरीन (क़ुरआन के व्याख्यापकों) की एक बड़ी जमाअत ने यहाँ पर लिखा है कि 'इन्नहू' (बेशक वह) में वह से मुराद हज़रत ईसा अलैहिस्सलाम हैं और मायने यह हैं कि ईसा अलैहिस्सलाम क़ियामत की एक निशानी हैं। इससे मालूम हुआ कि इस आयत में हज़रत मसीह अलैहिस्सलाम के आसमान से उतरने की ख़बर दी गई है, कि वह क़ियामत के क़रीब नाज़िल होंगे और उनका आना क़ियामत की निशानियों में से होगा।

इस आयत में एक दूसरी क़िराअत 'ल-अ़-लमुन' भी मन्क़ूल है, इससे यह मायने ज़्यादा स्पष्ट हो जाते हैं, क्योंकि 'अ़लम्' के मायने अ़लामत (निशानी) के हैं। हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु की तफ़सीर भी इसी की ताईद करती है:

عَنِ ابْنِ عَبَّاسٍ رَضِيَ اللّٰهُ عَنْهُ فِيْ قَوْلِهٖ تَعَالٰى: وَاِنَّهٗ لَعِلْمٌ لِّلسَّاعَةِ، قَالَ خُرُوْجُ عِيْسٰى عَلَيْهِ السَّلَامُ قَبْلَ يَوْمِ الْقِيٰمَةِ.

हज़रत इब्ने अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु से 'व इन्नहू ल-इल्मुल् लिस्साअ़ति' के बारे में मन्क़ूल है कि इससे हज़रत ईसा अलैहिस्सलाम मुराद हैं जो क़ियामत से पहले तशरीफ़ लायेंगे।

(तफ़सीर इब्ने कसीर)

ख़ुलासा यह है कि ज़िक्र हुई आयत 'क़ब्-ल मौतिही' के साथ जब हज़रत अबू हुरैरह रज़ियल्लाहु अ़न्हु की सही हदीस के साथ तफ़सीर को शामिल किया जाये तो इससे वाज़ेह तौर से हज़रत ईसा अलैहिस्सलाम का ज़िन्दा होना और फिर क़ियामत के निकट नाज़िल होकर यहूद पर मुकम्मल ग़लबा पाना साबित हो जाता है। इसी तरह आयत 'व इन्नहू ल-इल्मुल् लिस्साअ़ति' से भी हज़रत इब्ने अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु की तफ़सीर के मुताबिक़ यह मज़मून यक़ीनी हो जाता है। इमामे तफ़सीर अ़ल्लामा इब्ने कसीर ने आयत 'व इन्नहू ल-इल्मुल् लिस्साअ़ति' की तफ़सीर में लिखा है:

وَقَدْ تَوَاتَرَتِ الْاَحَادِيْثُ عَنْ رَسُوْلِ اللّٰهِ صَلَّى اللّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ اَنَّهٗ اَخْبَرَ بِنُزُوْلِ عِيْسٰى عَلَيْهِ السَّلَامُ قَبْلَ يَوْمِ

الْقِيٰمَةِ اِمَامًا عَادِلًا. (ابن کثیر)

"रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की हदीसें इस मामले में मुतवातिर (यानी एक बड़ी जमाअ़त के ज़रिये लगातार बयान होती चली आ रही) हैं कि आपने क़ियामत से पहले ईसा अ़लैहिस्सलाम के दुनिया में नाज़िल होने की ख़बर दी है।"

उन निरन्तर रिवायतों को हमारे उस्ताज़ हुज्जतुल-इस्लाम हज़रत मौलाना मुहम्मद अनवर शाह कशमीरी रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने जमा फ़रमाया जिनकी संख्या सौ से ज़्यादा है। हज़रत उस्ताज़ के हुक्म पर नाचीज़ ने उस रिसाले को अ़रबी भाषा में मुरत्तब किया। हज़रत अ़ल्लामा कशमीरी रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने उसका नाम अत्तसरीह **बिमा तवातुरु फ़ी नुज़ूलिल्-मसीह** तजवीज़ फ़रमाया जो उसी ज़माने में प्रकाशित हो चुका थ। हाल में हलब (मुल्क सीरिया) के एक बड़े आ़लिम अ़ल्लामा अ़ब्दुल-फ़त्ताह अबू ग़ुद्दा ने अतिरिक्त शरह और हाशियों का इज़ाफ़ा करके बैरूत में उम्दा टाईपिंग के साथ प्रकाशित कराया है।

आख़िरी ज़माने में हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम के नाज़िल होने का अ़क़ीदा क़तई और इजमाई है जिसका इनकारी काफ़िर है

यह मज़मून मज़कूरा आयत से भी स्पष्ट हो चुका है और इसकी पूरी तफ़सील सूरः आले इमरान में गुज़र चुकी है, वहाँ देख ली जाये। उसमें उन शुब्हों का भी जवाब बयान हुआ है जो इस ज़माने के कुछ बद्दीन लोगों की तरफ़ से इस अ़क़ीदे को संदिग्ध बनाने के लिये पेश किये गये हैं। और बेशक हिदायत तो अल्लाह ही के हाथ में है।

فَبِظُلْمٍ مِّنَ الَّذِيْنَ هَادُوْا حَرَّمْنَا عَلَيْهِمْ طَيِّبٰتٍ اُحِلَّتْ لَهُمْ وَبِصَدِّهِمْ عَنْ
سَبِيْلِ اللّٰهِ كَثِيْرًا ۝ وَّاَخْذِهِمُ الرِّبٰوا وَقَدْ نُهُوْا عَنْهُ وَاَكْلِهِمْ اَمْوَالَ النَّاسِ بِالْبَاطِلِ ۚ وَاَعْتَدْنَا
لِلْكٰفِرِيْنَ مِنْهُمْ عَذَابًا اَلِيْمًا ۝

फ़-बिज़ुल्मिम्-मिनल्लज़ी-न हादू हर्रम्ना अ़लैहिम् तय्यिबातिन् उहिल्लत् लहुम् व बि-सद्दिहिम् अ़न् सबीलिल्लाहि कसीरा (160) व अख़्ज़िहिमुर्रिबा व क़द् नुहू अ़न्हु व अक्लिहिम् अम्वालन्नासि बिल्बातिलि, व अअ़्तद्ना लिल्काफ़िरी-न मिन्हुम् अ़ज़ाबन् अलीमा (161)	सो यहूद के गुनाहों की वजह से हमने हराम कीं उन पर बहुत सी पाक चीज़ें जो उन पर हलाल थीं, और इस वजह से कि रोकते थे अल्लाह की राह से बहुत। (160) और इस वजह से कि सूद लेते थे और उनको उसकी मनाही हो चुकी थी, और इस वजह से कि लोगों का माल खाते थे नाहक़, और तैयार कर रखा है हमने काफ़िरों के वास्ते जो उनमें हैं दर्दनाक अ़ज़ाब। (161)

इन आयतों के मज़मून का पीछे से संबन्ध

पीछे गुज़री आयतों में यहूदियों की शरारतों का और उन शरारतों की वजह से उनकी सज़ा का ज़िक्र था, इन आयतों में भी उनकी कुछ और बुराईयों का बयान है, और सज़ा की एक और किस्म और अन्दाज़ का भी ज़िक्र है, वह यह कि क़ियामत में तो उन्हें अज़ाब होगा ही, इस दुनिया में भी उनकी गुमराही का यह नतीजा हुआ कि बहुत सी पाकीज़ा चीज़ें जो पहले से हलाल थीं बतौर सज़ा के उन पर हराम कर दी गईं।

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

सो यहूद के इन्हीं बड़े-बड़े जुर्मों के सबब (जिनमें से बहुत सी चीज़ें सूरः ब-क़रह में ज़िक्र की गयी हैं) हमने बहुत-सी पाकीज़ा (यानी हलाल व फ़ायदे की और मज़ेदार) चीज़ें जो (पहले से) उनके लिए (भी) हलाल थीं (जैसा कि सूरः आले इमरान की आयत 93 में है) उन पर (हज़रत मूसा की शरीअ़त में) हराम कर दीं (जिनका बयान सूरः अन्आ़म की आयत 146 में है और वहाँ भी यह बतलाया गया है कि इन हलाल पाक चीज़ों को उन पर हराम करना उनके गुनाहों और नाफ़रमानियों की बिना पर हुआ था) और (हज़रत मूसा की शरीअ़त में भी वे सब हराम ही रहीं, कोई हलाल न हुई) इस सबब से कि (वे आईन्दा भी ऐसी हरकतों से बाज़ न आये जैसे यही कि) वे (अहकाम में रद्दोबदल करके या अल्लाह के हुक्म को छुपाकर) बहुत आदमियों के लिए अल्लाह तआ़ला की राह (यानी दीने हक़ के क़ुबूल करने) से रुकावट बन जाते थे (क्योंकि उनकी इस कार्रवाई से अ़वाम को ख़्वाह-म-ख़्वाह धोखा हो जाता था अगरचे सच्ची तलब से वह शक व धोखा दूर हो जाना मुम्किन था)। और इस सबब से कि वे सूद लिया करते थे हालाँकि उनको (तौरात में) इससे मना किया गया था, और इस सबब से कि वे लोगों के माल नाहक़ तरीक़े (यानी नाजायज़ ज़रिये) से खा जाते थे (पस इस हक़ के रास्ते में रुकावट बनने, सूद लेने और नाजायज़ तरीक़ों से दूसरों का माल खा जाने की वजह से उस शरीअ़त के बाक़ी रहने तक आसानी न हुई, अलबत्ता नई शरीअ़त यानी हज़रत ईसा की शरीअ़त में कुछ अहकाम बदले थे जैसा कि सूरः आले इमरान की आयत 50 से मालूम होता है और शरीअ़ते मुहम्मदिया में बहुत आसानी और कमी हो गई जैसा कि सूरः आराफ़ की आयत 157 से साबित है। तो यह दुनियावी सज़ा थी) और (आख़िरत में) हमने उन लोगों के लिए जो उनमें से काफ़िर हैं दर्दनाक सज़ा का सामान कर रखा है (अलबत्ता जो शरीअ़त के क़ायदे के मुवाफ़िक़ ईमान ले आये उसकी पिछली ख़तायें सब माफ़ हो जायेंगी)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की शरीअ़त में भी कुछ चीज़ें हराम हैं लेकिन वो किसी जिस्मानी या रूहानी नुक़सान की वजह से हराम कर दी गईं, जबकि इसके उलट

यहूदियों पर जो पाक और हलाल चीज़ें हराम कर दी गईं थी उनमें कोई जिस्मानी या रूहानी नुक़सान नहीं था, बल्कि उनकी नाफ़रमानियों की सज़ा के तौर पर हराम कर दी गई थीं।

لٰكِنِ الرّٰسِخُوْنَ فِي الْعِلْمِ مِنْهُمْ وَالْمُؤْمِنُوْنَ يُؤْمِنُوْنَ بِمَآ اُنْزِلَ اِلَيْكَ وَمَآ اُنْزِلَ مِنْ قَبْلِكَ وَالْمُقِيْمِيْنَ الصَّلٰوةَ وَالْمُؤْتُوْنَ الزَّكٰوةَ وَالْمُؤْمِنُوْنَ بِاللّٰهِ وَالْيَوْمِ الْاٰخِرِ ۭ اُولٰۗىِٕكَ سَنُؤْتِيْهِمْ اَجْرًا عَظِيْمًا ۝

ع ۲۲ ۲

लाकिनिर्रासिख़ू-न फ़िल्अिल्मि मिन्हुम् वल्मुअ्मिनू-न युअ्मिनू-न बिमा उन्ज़ि-ल इलै-क व मा उन्ज़ि-ल मिन् क़ब्लि-क वल्मुक़ीमीनस्सला-त वल्मुअ्तूनज़्ज़का-त वल्मुअ्मिनू-न बिल्लाहि वल्यौमिल्-आख़िरि, उलाइ-क सनुअ्तीहिम् अज्रन् अज़ीमा (162) ❁	लेकिन जो पुख़्ता हैं इल्म में उनमें और ईमान वाले सो मानते हैं जो नाज़िल हुआ तुझ पर और जो नाज़िल हुआ तुझसे पहले, और आफ़रीं (शाबाश) है नमाज़ पर क़ायम रहने वालों को और जो देने वाले हैं ज़कात के, और यक़ीन रखने वाले हैं अल्लाह पर और क़ियामत के दिन पर, सो ऐसों को हम देंगे बड़ा सवाब। (162) ❁

इस आयत के मज़मून का पीछे से ताल्लुक़

ऊपर की आयतों में उन यहूद का ज़िक्र था जो अपने कुफ़्र पर क़ायम थे, और उपर्युक्त बुराईयों और बदकारियों में मुब्तला थे। आगे उन हज़रात का बयान है जो अहले किताब थे, और जब नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम तशरीफ़ लाये और वे सिफ़ात (निशानियाँ और ख़ूबियाँ) जो उनकी किताबों में आख़िरी नबी के बारे में मौजूद थीं, आप में पूरी-पूरी देखीं तो ईमान ले आये, जैसे हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन सलाम, हज़रत उसैद और हज़रत सालबा रज़ियल्लाहु अ़न्हुम, इन आयतों में इन्हीं हज़रात की तारीफ़ व प्रशंसा बयान हुई है।

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

लेकिन उन (यहूद) में जो लोग (दीन के) इल्म में पुख़्ता (यानी उसके मुवाफ़िक़ अ़मल करने पर मज़बूत) हैं (और इस आमादगी ने उन पर हक़ वाज़ेह और हक़ के क़ुबूल करने को आसान कर दिया जो आगे उसूली और फ़ुरूअ़ी तौर पर मज़कूर है) और जो (उनमें) ईमान ले आने वाले हैं, कि इस किताब पर भी ईमान लाते हैं जो आपके पास भेजी गई और उस किताब पर भी (ईमान रखते हैं) जो आप से पहले (नबियों के पास) भेजी गई (जैसे तौरात व इन्जील) और जो

(उनमें) नमाज़ की पाबन्दी करने वाले हैं और जो (उनमें) ज़कात देने वाले हैं और जो (उनमें) अल्लाह तआला पर और क़ियामत के दिन पर यक़ीन रखने वाले हैं, (सो) ऐसे लोगों को हम (आख़िरत में) ज़रूर बहुत बड़ा सवाब अता फ़रमाएँगे।

मआरिफ़ व मसाईल

आयत में जिन हज़रात के लिये पूरे अज्र का वायदा है वह उनके ईमान और नेक आमाल वाला होने की वजह से है, और जहाँ तक ख़ाली निजात का ताल्लुक़ है वह ज़रूरी अक़ीदों के दुरुस्त होने पर मौक़ूफ़ है बशर्तेकि ख़ात्मे पर ईमान का सौभाग्य नसीब हो।

إِنَّآ أَوْحَيْنَآ إِلَيْكَ كَمَآ أَوْحَيْنَآ إِلَىٰ نُوحٍ وَٱلنَّبِيِّـۧنَ مِنۢ بَعْدِهِۦ ۚ

وَأَوْحَيْنَآ إِلَىٰٓ إِبْرَٰهِيمَ وَإِسْمَٰعِيلَ وَإِسْحَٰقَ وَيَعْقُوبَ وَٱلْأَسْبَاطِ وَعِيسَىٰ وَأَيُّوبَ وَيُونُسَ وَهَٰرُونَ وَسُلَيْمَٰنَ ۚ وَءَاتَيْنَا دَاوُۥدَ زَبُورًا ﴿١٦٣﴾ وَرُسُلًا قَدْ قَصَصْنَٰهُمْ عَلَيْكَ مِن قَبْلُ وَرُسُلًا لَّمْ نَقْصُصْهُمْ عَلَيْكَ ۚ وَكَلَّمَ ٱللَّهُ مُوسَىٰ تَكْلِيمًا ﴿١٦٤﴾ رُّسُلًا مُّبَشِّرِينَ وَمُنذِرِينَ لِئَلَّا يَكُونَ لِلنَّاسِ عَلَى ٱللَّهِ حُجَّةٌۢ بَعْدَ ٱلرُّسُلِ ۚ وَكَانَ ٱللَّهُ عَزِيزًا حَكِيمًا ﴿١٦٥﴾ لَّٰكِنِ ٱللَّهُ يَشْهَدُ بِمَآ أَنزَلَ إِلَيْكَ ۖ أَنزَلَهُۥ بِعِلْمِهِۦ ۖ وَٱلْمَلَٰٓئِكَةُ يَشْهَدُونَ ۚ وَكَفَىٰ بِٱللَّهِ شَهِيدًا ﴿١٦٦﴾ إِنَّ ٱلَّذِينَ كَفَرُوا۟ وَصَدُّوا۟ عَن سَبِيلِ ٱللَّهِ قَدْ ضَلُّوا۟ ضَلَٰلًۢا بَعِيدًا ﴿١٦٧﴾ إِنَّ ٱلَّذِينَ كَفَرُوا۟ وَظَلَمُوا۟ لَمْ يَكُنِ ٱللَّهُ لِيَغْفِرَ لَهُمْ وَلَا لِيَهْدِيَهُمْ طَرِيقًا ﴿١٦٨﴾ إِلَّا طَرِيقَ جَهَنَّمَ خَٰلِدِينَ فِيهَآ أَبَدًا ۚ وَكَانَ ذَٰلِكَ عَلَى ٱللَّهِ يَسِيرًا ﴿١٦٩﴾

इन्ना औहैना इलै-क कमा औहैना इला नूहिंव्वन्नबिय्यी-न मिम्-बअ्दिही व औहैना इला इब्राही-म व इस्माअ़ी-ल व इस्हा-क़ व यअ़्क़ू-ब वल्अस्बाति व अ़ीसा व अय्यू-ब व यूनु-स व हारू-न व सुलैमा-न व आतैना दावू-द ज़बूरा (163) व रुसुलन् क़द् क़सस्नाहुम् अ़लै-क मिन् क़ब्लु व रुसुलल्लम् नक़्सुस्हुम्	हमने वही भेजी तेरी तरफ़ जैसे वही भेजी नूह (अ़लैहिस्सलाम) पर और उन नबियों पर जो उनके बाद हुए, और वही भेजी इब्राहीम (अ़लैहिस्सलाम) पर और इस्माईल पर और इस्हाक़ पर और याक़ूब पर और उस की औलाद पर, और ईसा (अ़लैहिस्सलाम) पर और अय्यूब पर और यूसुफ़ पर और हारून पर और सुलैमान पर, और हमने दी दाऊद (अ़लैहिस्सलाम) को ज़बूर। (163) और भेजे ऐसे रसूल कि जिनका अहवाल हमने सुनाया तुझको

अलै-क, व कल्लमल्लाहु मूसा तक्लीमा (164) रुसुलम् मुबश्शिरी-न व मुन्ज़िरी-न लिअल्ला यकू-न लिन्नासि अलल्लाहि हुज्जतुम्-बअ्दर्रुसुलि, व कानल्लाहु अज़ीज़न् हकीमा (165) लाकिनिल्लाहु यश्हदु बिमा अन्ज़-ल इलै-क अन्ज़-लहू बिअिल्मिही वल्मलाइ-कतु यश्हदू-न व कफ़ा बिल्लाहि शहीदा (166) इन्नल्लज़ी-न क-फ़रू व सद्दू अन् सबीलिल्लाहि क़द् ज़ल्लू ज़लालम् बअीदा (167) इन्नल्लज़ी-न क-फ़रू व ज़-लमू लम् यकुनिल्लाहु लियग़्फ़ि-र लहुम् व ला लियह्दि-यहुम् तरीक़ा (168) इल्ला तरी-क़ जहन्न-म ख़ालिदी-न फ़ीहा अ-बदन्, व का-न ज़ालि-क अलल्लाहि यसीरा (169)	इससे पहले और ऐसे रसूल जिनका अहवाल नहीं सुनाया तुझको, और बातें कीं अल्लाह ने मूसा (अलैहिस्सलाम) से बोल कर। (164) भेजे पैग़म्बर ख़ुशख़बरी और डर सुनाने वाले ताकि बाक़ी न रहे लोगों को अल्लाह पर इल्ज़ाम का मौक़ा रसूलों के बाद, और अल्लाह ज़बरदस्त है हिक्मत वाला। (165) लेकिन अल्लाह शाहिद (देखने वाला और गवाह) है उस पर जो तुझ पर नाज़िल किया, कि यह नाज़िल किया है अपने इल्म के साथ, और फ़रिश्ते भी गवाह हैं और अल्लाह काफ़ी है हक़ ज़ाहिर करने वाला। (166) जो लोग काफ़िर हुए और रोका अल्लाह की राह से वे बहक कर दूर जा पड़े। (167) जो लोग काफ़िर हुए और हक़ दबा रखा हरगिज़ अल्लाह बख़्शने वाला नहीं उनको और न दिखलायेगा उनको सीधी राह। (168) मगर राह दोज़ख़ की, रहा करें उसमें हमेशा, और यह अल्लाह पर आसान है। (169)

इन आयतों के मज़मून का पीछे की आयतों से संबन्ध

'यस्अलु-क अहलुल-किताबि.....' (यानी अभी पीछे गुज़री आयत नम्बर 153) से यहूदियों का एक अहमक़ाना सवाल नक़ल करके तफ़सील से उसका इल्ज़ामी जवाब दिया गया, यहाँ एक दूसरे उनवान से इसी सवाल को बातिल किया जा रहा है कि तुम जो रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम पर ईमान लाने के लिये यह शर्त लगाते हो कि आप आसमान से लिखी हुई किताब लाकर दिखलायें, तो बतलाओ कि यह बड़े रुतबे वाले अम्बिया जिनका ज़िक्र इन आयतों में है उनको तुम भी तस्लीम करते हो, और उनके हक़ में तुम इस तरह के मुतालबे नहीं करते, तो जिस दलील से तुमने उन हज़रात को नबी तस्लीम किया है यानी मोजिज़ों से तो मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के पास भी मोजिज़े हैं लिहाज़ा इन पर भी ईमान ले आओ, लेकिन

बात यह है कि तुम्हारा यह मुतालबा हक़ की तलब के लिये नहीं बल्कि दुश्मनी पर आधारित है।

आगे नबियों के भेजे जाने की हिक्मत (मक़सद व ज़रूरत) भी बयान कर दी गई, और नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को ख़िताब करके बतला दिया गया कि ये लोग अगर आपकी नुबुव्वत पर ईमान नहीं लाते तो अपना अन्जाम ख़राब करते हैं, आपकी नुबुव्वत पर तो ख़ुदा भी गवाह है, और ख़ुदा के फ़रिश्ते भी इसकी गवाही देते हैं।

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

हमने (कुछ आपको अनोखा रसूल नहीं बनाया जो ऐसी उल्टी-सीधी फ़रमाईश करते हैं बल्कि) आपके पास (भी ऐसी ही) वही भेजी है जैसे (हज़रत) नूह (अ़लैहिस्सलाम) के पास भेजी थी, और उनके बाद और पैग़म्बरों के पास (भेजी थी), और (उनमें से कुछ के नाम भी बतला दिये हैं कि) हमने (हज़रत) इब्राहीम और (हज़रत) इस्माईल और इस्हाक़ और याक़ूब और याक़ूब की औलाद (में जो नबी गुज़रे हैं) और ईसा और अय्यूब और यूनुस और हारून और सुलैमान (अ़लैहिमुस्सलाम) के पास वही भेजी थी, और (इसी तरह) हमने दाऊद (अ़लैहिस्सलाम के पास वही भेजी थी चुनाँचे उन) को ज़बूर (किताब) दी थी। और (उनके अ़लावा) और (बाज़े) ऐसे पैग़म्बरों को (भी) वही वाला बनाया जिनका हाल हम इससे पहले (सूरः अन्आ़म वग़ैरह मक्की सूरतों में) आपसे बयान कर चुके हैं और (कुछ) ऐसे पैग़म्बरों को (वही वाला बनाया) जिनका हाल (अभी तक) हमने आपसे बयान नहीं किया, और (हज़रत) मूसा (अ़लैहिस्सलाम को भी वही वाला बनाया, चुनाँचे उन) से अल्लाह तआ़ला ने ख़ास तौर पर कलाम फ़रमाया।

(और) इन सब को (ईमान पर) ख़ुशख़बरी (निजात की) देने वाले और (कुफ़्र व अ़ज़ाब का) ख़ौफ़ सुनाने वाले पैग़म्बर बनाकर इसलिए भेजा ताकि लोगों के पास अल्लाह तआ़ला के सामने इन पैग़म्बरों के (आने के) बाद कोई उज़्र (ज़ाहिर में भी) बाक़ी न रहे (वरना क़ियामत में यूँ कहते कि बहुत सी चीज़ों का अच्छा या बुरा होना अ़क़्ल से मालूम न हो सकता था फिर हमारी क्या ख़ता) और (वैसे) अल्लाह तआ़ला पूरे ज़ोर (और इख़्तियार) वाले हैं (कि रसूलों के भेजे बिना भी सज़ा देते तो इस वजह से कि वह मालिके हक़ीक़ी होने में तन्हा व अकेले हैं, ज़ुल्म न होता, और दर हक़ीक़त उज़्र का हक़ किसी को न था लेकिन चूँकि) बड़ी हिक्मत वाले (भी) हैं (इसलिये हिक्मत ही रसूलों को भेजने का सबब हुई ताकि ज़ाहिरी उज़्र भी न रहे। यह हिक्मत का बयान करना बीच में संबन्धित मज़मून के तौर पर आ गया था, आगे हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की नुबुव्वत को साबित करके जवाब को पूरा फ़रमाते हैं कि अगरचे वे अपने इस शुब्हे के दूर होने पर भी नुबुव्वत को तस्लीम न करें) लेकिन (वास्तव में तो साबित है और इसके साबित होने पर सही दलील क़ायम है, चुनाँचे) अल्लाह तआ़ला इस किताब के ज़रिये से जिसको आपके पास भेजा है, और भेजा भी (किस तरह) अपने इल्मी कमाल के साथ (जिससे वह किताब एक ज़बरदस्त मोजिज़ा हो गई जो कि नुबुव्वत की ऐसी दलील है जो हर शक व शुब्हे को ख़त्म करने वाली है, ऐसी मोजिज़े वाली किताब के ज़रिये से आपकी नुबुव्वत

की) गवाही दे रहे हैं (यानी दलील क़ायम कर रहे हैं जैसा कि अभी मालूम हुआ कि मोजिज़े वाली किताब नाज़िल हुई और दूसरों को आ़जिज़ कर देना नुबुव्वत की दलील है, पस दलील से तो वास्तव में नुबुव्वत साबित है, रहा किसी का मानना न मानना सो अव्वल तो इसका ख़्याल ही क्या) और (अगर तबई तौर पर इसको जी ही चाहता हो तो इनसे अफ़ज़ल मख़्लूक़ यानी) फ़रिश्ते (आपकी नुबुव्वत की) तस्दीक़ कर रहे हैं (और मोमिनों की तस्दीक़ तो सामने थी ही, पस अगर चन्द अहमक़ों ने न माना न सही), और (असल बात तो वही है कि) अल्लाह ही की गवाही (यानी दलील क़ायम करना वास्तव में) काफ़ी है (किसी के तस्दीक़ करने और मानने की आपको ज़रूरत ही नहीं)।

जो लोग (इन क़तई हुज्जतों के बाद भी) इनकारी हैं और (ऊपर से यह कि औरों के लिये भी) ख़ुदाई दीन से रुकावट होते हैं (वे हक़ से) बड़ी दूर की गुमराही में जा पड़े हैं (यह तो दुनिया में उनके मज़हब का हासिल है और इसका फल आख़िरत में आगे सुनो कि) बेशक जो लोग (हक़ के) इनकारी हैं और (हक़ में रुकावट बनकर) दूसरों का भी नुक़सान कर रहे हैं अल्लाह तआ़ला उनको कभी न बख़्शेंगे और न उनको सिवाय जहन्नम की राह के और कोई राह (यानी जन्नत की राह) दिखाएँगे, इस तरह पर कि उस (जहन्नम) में हमेशा-हमेशा रहा करेंगे, और अल्लाह तआ़ला के नज़दीक यह सज़ा देना मामूली बात है (कुछ सामान नहीं करना पड़ता)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

إِنَّآ أَوْحَيْنَآ إِلَيْكَ كَمَآ أَوْحَيْنَآ إِلَىٰ نُوحٍ وَّالنَّبِيِّنَ مِنْۢ بَعْدِهٖ.....

'हमने वही भेजी तेरी तरफ़........' इससे मालूम हो गया कि वही ख़ास अल्लाह का हुक्म और उसका प्याम है जो पैग़म्बरों पर भेजा जाता है, और पहले अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम पर जैसे अल्लाह की वही नाज़िल हुई वैसे ही हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम पर अल्लाह तआ़ला ने अपनी वही भेजी। तो जिसने उनको माना इसको भी ज़रूर मानना चाहिये, और जिसने इसका इनकार किया गोया वह उन सब का मुन्किर हो गया। और हज़रत नूह अ़लैहिस्सलाम और उनसे पिछलों के साथ मुशाबहत (मिलता-जुलता होने) की वजह शायद यह है कि हज़रत आदम अ़लैहिस्सलाम के वक़्त से जो वही शुरू हुई तो उस वक़्त बिल्कुल शुरू की हालत थी, हज़रत नूह अ़लैहिस्सलाम पर वह पूरी हो गई, गोया पहली हालत सिर्फ़ शुरू की तालीम की हालत थी, हज़रत नूह अ़लैहिस्सलाम के ज़माने में वह हालत पूरी होकर इस क़ाबिल हो गई कि उनका इम्तिहान लिया जाये, और फ़रमाँबरदारों को इनाम और नाफ़रमानों को सज़ा दी जाये। चुनाँचे अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम का सिलसिला भी हज़रत नूह अ़लैहिस्सलाम ही से शुरू हुआ और अल्लाह की वही से मुँह मोड़ने और नाफ़रमानी करने वालों पर भी पहला अ़ज़ाब हज़रत नूह अ़लैहिस्सलाम के वक़्त से शुरू हुआ।

ख़ुलासा यह कि नूह अ़लैहिस्सलाम से पहले अल्लाह के हुक्म और नबियों की मुख़ालफ़त पर अ़ज़ाब नाज़िल नहीं होता था बल्कि उनको माज़ूर समझकर ढील दी जाती थी, और समझाने ही की कोशिश की जाती थी। हज़रत नूह अ़लैहिस्सलाम के ज़माने में जब मज़हबी तालीम ख़ूब ज़ाहिर हो चुकी और लोगों को अल्लाह के हुक्म का पालन करने में कोई ख़िफ़ा (नावाक़फ़ियत और अज्ञानता) बाक़ी न रहा तो अब नाफ़रमानों पर अ़ज़ाब नाज़िल हुआ। पहले हज़रत नूह अ़लैहिस्सलाम के ज़माने में तूफ़ान आया, उसके बाद हज़रत हूद, हज़रत सालेह, हज़रत शुऐब अ़लैहिमुस्सलाम वग़ैरह नबियों के ज़माने में काफ़िरों पर तरह-तरह के अ़ज़ाब आये, तो आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की वही को हज़रत नूह और उनसे पिछलों की वही के जैसा बताने में अहले किताब और मक्का के मुश्रिकों को पूरी तंबीह कर दी गई कि जो आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की वही यानी क़ुरआन को न मानेगा वह बड़े अ़ज़ाब का मुस्तहिक़ होगा।

(फ़वाईद द्वारा अ़ल्लामा उस्मानी रह.)

हज़रत नूह अ़लैहिस्सलाम की ज़ात ख़ुद एक मोजिज़ा (करिश्मा और चमत्कार) थी, साढ़े नौ सौ साल की उम्र आपको अ़ता की गई थी, आपका कोई दाँत नहीं गिरा था, न आपका कोई बाल सफ़ेद हुआ, आपकी जिस्मानी ताक़त में भी कोई कमी न आई, और पूरी उम्र क़ौम के तकलीफ़ें देने को सब्र के साथ सहते रहे। (तफ़सीरे मज़हरी)

وَرُسُلًا قَدْ قَصَصْنٰهُمْ عَلَيْكَ.....

'और भेजे ऐसे रसूल कि जिनके हालात हमने सुनाये........' हज़रत नूह अ़लैहिस्सलाम के बाद जो अम्बिया हुए हैं उन्हें संक्षिप्त रूप से ज़िक्र करके उनमें से जो बड़े रुतबे वाले अम्बिया हैं उनका ख़ास तौर पर भी ज़िक्र कर दिया गया, जिससे यह बतलाना मक़सूद है कि ये सब नबी हैं और नबियों के पास विभिन्न और अनेक तरीक़ों से वही आती है, कभी फ़रिश्ता पैग़ाम लेकर आता है, कभी लिखी हुई किताब मिल जाती है, कभी अल्लाह तआ़ला डायरेक्ट अपने रसूल से बात करते हैं, ग़र्ज़ कि जिस तरीक़े से भी वही आ जाये उस पर अ़मल करना वाजिब होता है। लिहाज़ा यहूदियों का यह कहना कि तौरात की तरह लिखी हुई किताब नाज़िल हो तब मानेंगे वरना नहीं, ख़ालिस बेवक़ूफ़ी और कुफ़्र है।

हज़रत अबूज़र ग़िफ़ारी रज़ियल्लाहु अ़न्हु से रिवायत है कि नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया- अल्लाह तआ़ला ने एक लाख चौबीस हज़ार नबी भेजे हैं जिनमें से तीन सौ तेरह शरीअ़त वाले रसूल थे। (तफ़सीरे क़ुर्तुबी)

رُسُلًا مُّبَشِّرِيْنَ وَمُنْذِرِيْنَ

'भेजे पैग़म्बर ख़ुशख़बरी सुनाने और डर सुनाने वाले....' अल्लाह तआ़ला ने पैग़म्बरों को बराबर भेजा कि मोमिनों को ख़ुशख़बरी सुनायें और काफ़िरों को डरायें ताकि लोगों को क़ियामत के दिन इस उज़्र (बहाने) की जगह न रहे कि हमको तेरी मर्ज़ी और ग़ैर की मर्ज़ी मालूम न थी, मालूम होती तो हम ज़रूर उस पर चलते। सो जब अल्लाह तआ़ला ने पैग़म्बरों को

मोजिज़े (अपनी निशानियाँ) देकर भेजा और पैग़म्बरों ने हक़ रास्ता बतलाया तो अब दीने हक़ के क़ुबूल न करने में किसी का कोई उज़्र (बहाना) नहीं सुना जा सकता। अल्लाह की वही ऐसी क़तई हुज्जत है कि उसके रू-ब-रू कोई हुज्जत नहीं चल सकती, बल्कि सब हुज्जतें (दलीलें) कट जाती हैं, और यह अल्लाह की हिक्मत और तदबीर है।

हज़रत इब्ने अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु से रिवायत है कि यहूदियों की एक जमाअ़त आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के पास आ गई। आपने उनसे फ़रमाया खुदा की क़सम! तुम यक़ीनन जानते हो कि मैं खुदा का बरहक़ रसूल हूँ। उन्होंने इसका इनकार कर दिया तो इस पर यह आयत नाज़िल हो गईः

لٰكِنِ اللّٰهُ يَشْهَدُ بِمَآ اَنْزَلَ اِلَيْكَ......

(यानी आयत नम्बर 166) जिसमें बतलाया गया कि अल्लाह तआ़ला इस मोजिज़े वाली किताब के ज़रिये से जो इसके इल्मी कमाल का प्रतीक है, आपकी नुबुव्वत पर गवाह है, उसने यह जानकर किताब नाज़िल कर दी है कि आप इसके अहल हैं, और फ़रिश्ते भी इस पर गवाह हैं, और अ़लीम व ख़बीर ज़ात (यानी अल्लाह तआ़ला) की गवाही के बाद फिर किस दलील की हाजत (आवश्यकता) बाक़ी रह जाती है।

क़ुरआन मजीद और नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की तस्दीक़ के बाद फ़रमाते हैं कि अब जो लोग मुन्किर (इनकार करने वाले और न मानने वाले) हैं, और तौरात में जो आपकी सिफ़तें, निशानियाँ और हालात मौजूद थे उनको छुपाते हैं, और लोगों पर कुछ का कुछ ज़ाहिर करके उनको भी सच्चे दीन से रोकते हैं, सो ऐसों को न मग़फ़िरत नसीब होगी न हिदायत, जिससे ख़ूब मालूम हो गया कि हिदायत आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की इत्तिबा (पैरवी) करने पर मुन्हसिर (सीमित व निर्भर) है, और गुमराही आपकी मुख़ालफ़त का नाम है। इससे यहूदियों के तमाम ख़्यालात का ग़लत और ग़ैर-हक़ होना साबित कर दिया गया।

يٰۤاَيُّهَا النَّاسُ قَدْ جَآءَكُمُ الرَّسُوْلُ بِالْحَقِّ مِنْ رَّبِّكُمْ فَاٰمِنُوْا خَيْرًا لَّكُمْ ؕ وَاِنْ تَكْفُرُوْا فَاِنَّ لِلّٰهِ مَا فِى السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضِ ؕ وَكَانَ اللّٰهُ عَلِيْمًا حَكِيْمًا ۝

या अय्युहन्नासु क़द् जा-अकुमुर्रसूलु बिल्हक़्कि मिर्रब्बिकुम् फ़आमिनू ख़ैरल्लकुम्, व इन् तक्फ़ुरू फ-इन्-न लिल्लाहि मा फ़िस्समावाति वल्अर्ज़ि, व कानल्लाहु अ़लीमन् हकीमा (170)	ऐ लोगो! तुम्हारे पास रसूल आ चुका ठीक बात लेकर तुम्हारे रब की, तो मान लो ताकि भला हो तुम्हारा, और अगर न मानोगे तो अल्लाह तआ़ला का है जो कुछ है आसमानों में और ज़मीन में, और है अल्लाह सब कुछ जानने वाला हिक्मत वाला। (170)

इस आयत के मज़मून का पीछे से ताल्लुक़

यहूदियों के एतिराज़ों का जवाब देने और नुबुव्वते मुहम्मदिया को साबित करने के बाद अब तमाम जहान के इनसानों को ख़िताब फ़रमाते हैं, कि तुम्हारी निजात इसी में है कि मुहम्मद सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की नुबुव्वत पर ईमान ले आओ।

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

ऐ तमाम (जहान के) लोगो! तुम्हारे पास यह रसूल (सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम) सच्ची बात (यानी सच्चा दावा, सच्ची दलील) लेकर तुम्हारे परवर्दिगार (जल्ल शानुहू) की तरफ़ से तशरीफ़ लाए हैं, सो (सही दलील के साथ दावे के साबित हो जाने का तक़ाज़ा यह है कि) तुम (इन पर और जो-जो यह फ़रमायें सब पर) यक़ीन रखो (जो पहले से यक़ीन लाये हुए हैं वे उस पर क़ायम रहें, और जो नहीं लाये अब अपना लें) यह तुम्हारे लिए बेहतर होगा (क्योंकि निजात होगी)। और अगर तुम मुन्किर "यानी इनकार करने वाले" रहे तो (तुम्हारा ही नुक़सान है, ख़ुदा तआ़ला का कोई नुक़सान नहीं, क्योंकि) ख़ुदा तआ़ला की (तो) मिल्क है यह सब जो कुछ (भी) आसमानों में और ज़मीन में (मौजूद) है, (तो ऐसे बड़े अ़ज़ीमुश्शान मालिक, क़ादिर को क्या नुक़सान पहुँचा सकते हो, मगर अपनी ख़ैर मना लो) और अल्लाह तआ़ला (सब के ईमान व कुफ़्र की) पूरी इत्तिला रखते हैं (और दुनिया में जो पूरी सज़ा नहीं देते तो इसलिये कि) कामिल हिक्मत वाले (भी) हैं (वह हिक्मत इसी को चाहती है)।

يٰٓاَهْلَ الْكِتٰبِ لَا تَغْلُوْا فِيْ دِيْنِكُمْ وَلَا تَقُوْلُوْا عَلَى اللّٰهِ اِلَّا الْحَقَّ ۭ اِنَّمَا الْمَسِيْحُ عِيْسَى ابْنُ مَرْيَمَ رَسُوْلُ اللّٰهِ وَكَلِمَتُهٗ ۚ اَلْقٰىهَآ اِلٰى مَرْيَمَ وَرُوْحٌ مِّنْهُ ۡ فَاٰمِنُوْا بِاللّٰهِ وَرُسُلِهٖ ڟ وَلَا تَقُوْلُوْا ثَلٰثَةٌ ۭ اِنْتَهُوْا خَيْرًا لَّكُمْ ۭ اِنَّمَا اللّٰهُ اِلٰهٌ وَّاحِدٌ ۭ سُبْحٰنَهٗٓ اَنْ يَّكُوْنَ لَهٗ وَلَدٌ ۘ لَهٗ مَا فِي السَّمٰوٰتِ وَمَا فِي الْاَرْضِ ۭ وَكَفٰى بِاللّٰهِ وَكِيْلًا ۝

या अह्लल्-किताबि ला तग़्लू फ़ी दीनिकुम् व ला तक़ूलू अलल्लाहि इल्लल्-हक़्-क़, इन्नमल्-मसीहु अ़ीसब्नु मर्य-म रसूलुल्लाहि व कलि-मतुहू अल्क़ाहा इला मर्य-म व रूहुम्-मिन्हु फ़आमिनू बिल्लाहि व	ऐ किताब वालो! मत मुबालग़ा (बढ़ा-चढ़ाकर बयान) करो अपने दीन की बात में, और मत कहो अल्लाह तआ़ला की शान में मगर पक्की बात, बेशक मसीह जो है ईसा मरियम का बेटा वह रसूल है अल्लाह का और उसका कलाम है जिसको डाला मरियम की तरफ़, और रूह है उसके यहाँ की, सो मानो अल्लाह को

रुसुलिही, व ला तक़ूलू सलासतुन्, इन्तहू ख़ैरल्लकुम्, इन्नमल्लाहु इलाहुंव्वाहिदुन्, सुब्हानहू अंय्यकू-न लहू व-लदुन्। लहू मा फ़िस्समावाति व मा फ़िल्अर्ज़ि व कफ़ा बिल्लाहि वकीला (171) ✿	और उसके रसूलों को और न कहो कि ख़ुदा तीन हैं, इस बात को छोड़ो बेहतर होगा तुम्हारे वास्ते, बेशक अल्लाह माबूद है अकेला, उसके लायक़ नहीं है कि उसके औलाद हो, उसी का है जो कुछ आसमानों में है और जो कुछ ज़मीन में है, और काफ़ी है अल्लाह कारसाज़ (काम बनाने वाला)। (171) ✿

इन आयतों के मज़मून का पीछे से ताल्लुक़

पहले बयान हुई आयतों में यहूद को ख़िताब था और उन्हीं की गुमराहियों की तफ़सील ज़िक्र की गई, इस आयत में ईसाईयों को ख़िताब है और उनके बुरे एतिक़ादों और ख़ुदा और हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम के बारे में उनके बातिल (ग़लत) ख़्यालात की तरदीद की गई है।

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

ऐ अहले किताब! (यानी इन्जील वालो!) तुम अपने दीन (के बारे) में (हक़ अ़क़ीदे की) हद से मत निकलो और ख़ुदा तआ़ला की शान में ग़लत बात मत कहो (कि नऊज़ु बिल्लाह वह औलाद रखता है, जैसा कि कुछ लोग कहते थे कि मसीह अल्लाह के बेटे हैं, या वह ख़ुदाओं के मजमूए में का एक हिस्सा हैं जैसा कि कुछ लोग कहते थे कि अल्लाह तीन में का तीसरा है और बाक़ी के दो हिस्से एक हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम को कहते थे और एक हज़रत जिब्रील अ़लैहिस्सलाम को, जैसा कि आगे आने वाली आयत में 'व लल्मलाइकतुल-मुक़र्रबू-न' के बढ़ाने से मालूम होता है, और कुछ लोग हज़रत मरियम अ़लैहस्सलाम को जैसा कि 'इत्तख़िज़ूनी व उम्मि-य' से मालूम होता है, या वह बिल्कुल मसीह ही है जैसा कि कुछ लोग कहते थे 'इन्नल्ला-ह हुवल् मसीहुब्नु मर्य-म' "कि ख़ुदा बस वह मसीह इब्ने मरियम ही हैं" ग़र्ज़ कि ये सब अ़क़ीदे बातिल हैं)। मसीह ईसा इब्ने मरियम तो और कुछ भी नहीं बस अल्लाह के रसूल हैं और अल्लाह तआ़ला का (पैदाईश का) एक कलिमा हैं, जिसको अल्लाह तआ़ला ने (हज़रत) मरियम तक (हज़रत जिब्रील अ़लैहिस्सलाम के ज़रिये से) पहुँचाया था और उसकी तरफ़ से एक जान (रखने वाली चीज़) हैं (कि उस जान को हज़रत मरियम के जिस्म में हज़रत जिब्रील अ़लैहिस्सलाम के फूँक मारने के पहुँचा दिया था, बाक़ी न वह अल्लाह के बेटे हैं न तीन में के एक हैं, जैसा कि उक्त अ़क़ीदों में लाज़िम आता है)।

सो (जब ये सब बातें ग़लत हैं तो सबसे तौबा करो और) अल्लाह पर और उसके सब रसूलों पर (उनकी तालीम के मुताबिक़) ईमान लाओ (और वह मौक़ूफ़ है तौहीद पर, पस तौहीद

का अक़ीदा रखो), और यूँ मत कहो कि (ख़ुदा) तीन हैं (मक़सद मना करना है शिर्क से और वह ज़िक्र हुए सब अक़वाल में मुश्तरक है, इस शिर्क से) बाज़ आ जाओ तुम्हारे लिए बेहतर होगा (और तौहीद के क़ायल हो जाओ क्योंकि) माबूदे हक़ीक़ी तो एक ही माबूद है (और) वह औलाद वाला होने से पाक है, जो कुछ आसमानों और ज़मीन में मौजूद चीज़ें हैं सब उसकी मिल्क हैं (और उनका पाक और हर तरह से पूरे इख़्तियार का तन्हा मालिक होना दलील है तौहीद की) और (एक दलील यह है कि) अल्लाह तआ़ला कारसाज़ होने में काफ़ी हैं (और उनके सिवा सब कारसाज़ी में नाकाफ़ी और दूसरे की तरफ़ मोहताज हैं और एक हद पर जाकर आ़जिज़ हो जाते हैं, और यह काफ़ी होना कामिल होने की सिफ़ात में से है, और सिफ़ात में कामिल होना यही माबूद और ख़ुदा होने की शान है, जब वह ग़ैरुल्लाह में मौजूद नहीं है तो किसी और के ख़ुदा होने को भी नकारती है, लिहाज़ा इसी से साबित हो गया कि अल्लाह एक है और वही तन्हा माबूद बनने के लायक़ है)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

'व कलि-मतुहू' इस लफ़्ज़ में यह बतलाया गया है कि हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम अल्लाह का कलिमा हैं। मुफ़स्सिरीन (क़ुरआने करीम के व्याख्यापकों) ने इसके विभिन्न मायने बयान किये हैं।

1. इमाम ग़ज़ाली रहमतुल्लाहि अ़लैहि फ़रमाते हैं कि किसी बच्चे की पैदाईश में दो आ़मिल (काम करने वाले) काम करते हैं- एक आ़मिल नुत्फ़ा (वीर्य का क़तरा) है और दूसरा अल्लाह तआ़ला का कलिमा "कुन" फ़रमाना, जिसके बाद वह बच्चा वजूद में आ जाता है। हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम के हक़ में चूँकि पहला आ़मिल नहीं है, इसलिये दूसरे आ़मिल की तरफ़ निस्बत करके आपको कलिमतुल्लाह कहा गया, जिसका मतलब यह है कि आप माद्दी असबाब के वास्ते के बग़ैर सिर्फ़ कलिमा "कुन" से पैदा हुए हैं। इस सूरत में 'अल्क़ाहा इला मर्य-म' के मायने यह होंगे कि अल्लाह तआ़ला ने यह कलिमा हज़रत मरियम अ़लैहस्सलाम तक पहुँचा दिया जिसके नतीजे में हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम की पैदाईश अ़मल में आ गई।

2. कुछ हज़रात ने फ़रमाया कि 'कलिमतुल्लाहि' (अल्लाह का कलिमा) अल्लाह की तरफ़ से ख़ुशख़बरी के मायने में है, और मुराद इससे हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम हैं, अल्लाह जल्ल शानुहू ने फ़रिश्तों के ज़रिये हज़रत मरियम अ़लैहस्सलाम को हज़रत ईसा की जो बशारत (ख़ुशख़बरी) दी थी उसमें "कलिमे" का लफ़्ज़ इस्तेमाल किया गया है:

إِذْ قَالَتِ الْمَلٰٓئِكَةُ يٰمَرْيَمُ إِنَّ اللّٰهَ يُبَشِّرُكِ بِكَلِمَةٍ.

3. कुछ हज़रात ने फ़रमाया कि 'कलिमा' आयत और निशानी के मायने में है, जैसा कि दूसरी जगह यह लफ़्ज़ आयत (निशानी) के मायने में इस्तेमाल किया गया है। फ़रमायाः

وَصَدَّقَتْ بِكَلِمٰتِ رَبِّهَا.

'व रूहुम् मिन्हु' इस लफ़्ज़ में दो बातें क़ाबिले ग़ौर हैं- एक यह कि हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम को रूह कहने के क्या मायने हैं? और दूसरे यह कि अल्लाह जल्ल शानुहू की तरफ़ जो इसकी निस्बत की गई है उस निस्बत का क्या मतलब है? इस सिलसिले में मुफ़स्सिरीन के अनेक अक़्वाल मन्क़ूल हैं:

1. कुछ हज़रात ने फ़रमाया कि उर्फ़ (आ़म बोलचाल) का क़ायदा यह है कि जब किसी चीज़ की पवित्रता और पाकीज़गी को बयान करना होता है तो बात में ज़रा ज़्यादती करके उस पर रूह का इतलाक़ कर दिया जाता है। हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम की पैदाईश में चूँकि किसी बाप के नुत्फ़े (वीर्य के क़तरे) का दख़ल नहीं था, और वह सिर्फ़ अल्लाह जल्ल शानुहू के इरादे और कलिमा 'कुन' का नतीजा था, इसलिये अपनी तहारत व पाकीज़गी में कमाल के दर्जे को पहुँचे हुए थे, इसी वजह से उर्फ़ के मुहावरे के मुताबिक़ उनको रूह कहा गया, और अल्लाह की तरफ़ निस्बत उनके सम्मान व एहतिराम के लिये है, जिस तरह मस्जिदों के सम्मान के लिये उनकी निस्बत अल्लाह की तरफ़ कर दी जाती है "मसाजिदुल्लाह" या काबे की निस्बत अल्लाह की तरफ़ करके "बैतुल्लाह" कहा जाता है, या किसी नेक बन्दे की निस्बत अल्लाह की तरफ़ करके "अ़ब्दुल्लाह" कहा जाता है, चुनाँचे सूरः बनी इस्राईल में नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के लिये यह सीग़ा (लफ़्ज़) इस्तेमाल किया गया है "अस्रा बि-अ़ब्दिही"।

2. कुछ हज़रात ने फ़रमाया कि ईसा अ़लैहिस्सलाम की बेसत (नबी बनाकर भेजने) का मक़सद यह था कि लोगों के मुर्दा दिलों में रूहानी ज़िन्दगी डालकर फिर ज़िन्दा कर दें, चूँकि वह रूहानी ज़िन्दगी का सबब थे जिस तरह रूह जिस्मानी ज़िन्दगी का सबब हुआ करती है, इसलिये इस एतिबार से उनको रूह कहा गया जैसा कि ख़ुद क़ुरआने करीम के लिये भी यह लफ़्ज़ इस्तेमाल किया गया है:

وَكَذٰلِكَ اَوْحَيْنَآ اِلَيْكَ رُوْحًا مِّنْ اَمْرِنَا

क्योंकि क़ुरआने करीम भी रूहानी ज़िन्दगी बख़्शता है।

3. कुछ हज़रात ने फ़रमाया कि रूह का इस्तेमाल राज़ के मायने में होता है। हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम अपनी अ़जीब व ग़रीब पैदाईश की वजह से चूँकि अल्लाह जल्ल शानुहू की एक निशानी और राज़ थे, इसलिये उन्हें रूहुल्लाह कहा गया।

4. कुछ हज़रात ने कहा कि यहाँ असल इबारत यूँ थी "ज़ू रूहुम् मिन्हु" और चूँकि रूह वाला होने में सब हैवान (जान रखने वाले) बराबर हैं इसलिये ईसा अ़लैहिस्सलाम का इम्तियाज़ (विशेषता) इस तरह ज़ाहिर किया गया कि उनकी निस्बत अल्लाह जल्ल शानुहू ने अपनी तरफ़ कर दी।

5. एक क़ौल यह भी है कि रूह नफ़्ख़ (फूँक) के मायने में है, हज़रत जिब्रील अ़लैहिस्सलाम ने हज़रत मरियम अ़लैहस्सलाम के गिरेबान में अल्लाह के हुक्म से फूँक दिया था और उसी से हमल (गर्भ) क़रार पा गया। चूँकि हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम एक मोजिज़े के तौर पर सिर्फ़ नफ़्ख़ (फूँक) से पैदा हो गये थे इसलिये आपको रूहुल्लाह कहा गया। क़ुरआने करीम की एक

दूसरी आयत "फ़-नफ़ख़्ना फ़ीहा रूहम् मिन् रूहिना" से इसी तरफ़ इशारा किया गया है।

इसके अलावा भी कई मायने बयान किये गये हैं, बहरहाल इसका मतलब यह हरगिज़ नहीं कि हज़रत ईसा अलैहिस्सलाम अल्लाह का एक हिस्सा (भाग) हैं, और यही रूह हज़रत ईसा अलैहिस्सलाम की इनसानी शक्ल में ज़ाहिर हो गई है।

लतीफ़ा

अल्लामा आलूसी रहमतुल्लाहि अलैहि ने एक वाक़िआ लिखा है कि बादशाह हारून रशीद के दरबार में एक ईसाई तबीब ने हज़रत अली बिन हुसैन वाक़िदी से मुनाज़रा (बहस-मुबाहसा) किया और उनसे कहा कि तुम्हारी किताब में ऐसा लफ़्ज़ मौजूद है जिससे मालूम होता है कि हज़रत ईसा अलैहिस्सलाम अल्लाह का जुज़ (भाग और हिस्सा) हैं, और दलील में यह आयत पढ़ दी जिसमें "रूहुम् मिन्हु" के अलफ़ाज़ हैं।

अल्लामा वाक़िदी ने उनके जवाब में एक दूसरी आयत पढ़ दीः

وَسَخَّرَ لَكُمْ مَّا فِي السَّمٰوٰتِ وَمَا فِي الْاَرْضِ جَمِيْعًا مِّنْهُ

(इस आयत में कहा गया है कि आसमानों और ज़मीन में जो कुछ है वह सब उसी अल्लाह का है, और 'मिन्हु' के ज़रिये से सब चीज़ों की निस्बत अल्लाह की तरफ़ कर दी गई है) और फ़रमाया कि "रूहुम् मिन्हु" का अगर मतलब यह है कि हज़रत ईसा अलैहिस्सलाम अल्लाह का जुज़ (पार्ट) हैं तो इस आयत का मतलब फिर यह होगा कि आसमान व ज़मीन में जो कुछ है वह भी अल्लाह का जुज़ है। यह जवाब सुनकर ईसाई लाजवाब हुआ और मुसलमान हो गया।

"व ला तक़ूलू सलासतुन" (और मत कहो कि ख़ुदा तीन हैं) क़ुरआन के नाज़िल होने के वक़्त ईसाई जिन बड़े-बड़े फ़िर्क़ों में बंटे हुए थे, तस्लीस (तीन ख़ुदा होने) के मुताल्लिक़ उनका अक़ीदा तीन अलग-अलग उसूलों पर मब्नी था। एक फ़िर्क़े का कहना था कि मसीह ही ख़ुदा हैं और ख़ुदा ही मसीह की शक्ल में दुनिया में उतर आया है। दूसरे फ़िर्क़े का कहना था कि मसीह अल्लाह के बेटे हैं और तीसरा फ़िर्क़ा यह दावा करता था कि वह्दत (एक होने) का राज़ तीन में पोशीदा है- **बाप, बेटा** और **मरियम**। इस जमाअत में भी दो गिरोह थे दूसरा गिरोह हज़रत मरियम की जगह रूहुल-क़ुदुस को अक़्नूमे सालिस कहता था। ग़र्ज़ कि ये लोग हज़रत मसीह अलैहिस्सलाम को **सालिसु सलासा** (तीन में का तीसरा) तस्लीम करते थे, इसलिये क़ुरआने करीम में तीनों को अलग-अलग भी मुख़ातब किया है और एक साथ भी, और ईसाईयों पर यह वाज़ेह कर दिया गया है कि हक़ एक ही है, और वह यह कि हज़रत मसीह हज़रत मरियम के पेट से पैदा शुदा इनसान और ख़ुदा के सच्चे रसूल हैं, इससे ज़्यादा जो कुछ कहा जाता है सब बातिल और ग़लत है, चाहे उसमें कमी की जाये जैसे कि यहूदियों का अक़ीदा है कि अल्लाह की पनाह वह (यानी हज़रत ईसा अलैहिस्सलाम) पाखंडी, शोबदेबाज़ और झूठ कहने वाले थे, या हद से बढ़ना हो जैसा कि ईसाईयों का अक़ीदा है कि वह ख़ुदा हैं, या ख़ुदा के बेटे हैं, या तीन में के तीसरे हैं।

क़ुरआने करीम ने बेशुमार आयतों में एक तरफ़ तो ईसाईयों और यहूदियों की गुमराही को स्पष्ट किया और दूसरी तरफ़ हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम की बुलन्द शान और अल्लाह के नज़दीक उनके ऊँचे मक़ाम को वाज़ेह फ़रमाया है, ताकि असल हक़ीक़त में कमी और ज़्यादती करके ग़लत रास्तों में से हक़ का मोतदिल (सही) रास्ता नुमायाँ हो जाये।

ईसाई अ़क़ीदों और उनके विभिन्न पहलुओं पर और उसके मुक़ाबिल इस्लाम की हक़्क़ानियत (सच्चा होने) पर अगर तफ़सीली मालूमात हासिल करनी हों तो हज़रत मौलाना रहमतुल्लाह साहिब कैरानवी की विश्व विख्यात किताब "इज़हारुल-हक़" का अध्ययन करें जिसका अ़रबी से उर्दू में अनुवाद मय व्याख्या के होकर प्रकाशन हो चुका है।

لَهٗ مَا فِی السَّمٰوٰتِ وَمَا فِی الْاَرْضِ وَکَفٰی بِاللّٰہِ وَکِیْلًا

यानी आसमान और ज़मीन में ऊपर से नीचे तक जो कुछ है सब उसकी मख़्लूक़, और उसकी मिल्क में और उसके बन्दे हैं। फिर कहिये उसका शरीक या उसका बेटा कौन और कैसे हो सकता है, और अल्लाह तआ़ला सब काम बनाने वाला है और सब की कारसाज़ी के लिये वही काफ़ी और बस है, किसी दूसरे की हाजत नहीं, फिर बतलाईये उसको शरीक या बेटे की आवश्यकता कैसे हो सकती है?

ख़ुलासा यह हुआ कि न किसी मख़्लूक़ में उसके शरीक बनने की क़ाबलियत है और न उसकी पाक ज़ात में इसकी गुन्जाईश और न इसकी हाजत, जिससे मालूम हो गया कि मख़्लूक़ात में किसी को ख़ुदा का शरीक या बेटा कहना उसका काम है जो ईमान और अ़क़्ल दोनों से मेहरूम हो।

दीन में ग़ुलू और हद से बढ़ना हराम है

अल्लाह तआ़ला का क़ौल है:

لَا تَغْلُوْا فِیْ دِیْنِکُمْ

इस आयत में अहले किताब को दीन में ग़ुलू करने से मना फ़रमाया गया है। ग़ुलू के लफ़्ज़ी मायने हद से निकल जाने के हैं और इमाम जस्सास ने अहकामुल-क़ुरआन में फ़रमायाः

اَلْغُلُوُّ فِی الدِّیْنِ ھُوَ مُجَاوَزَۃُ حَدِّ الْحَقِّ فِیْہِ.

"यानी दीन के बारे में ग़ुलू यह है कि दीन में जिस चीज़ की जो हद मुक़र्रर की गई है उससे आगे निकल जाये।"

अहले किताब यानी यहूदी व ईसाई दोनों को इस हुक्म का मुख़ातब इसलिये बनाया गया कि दीन में ग़ुलू करना इन दोनों में साझा है, और ये दोनों फ़िर्क़े दीन में ग़ुलू करने (हद से आगे बढ़ने) के शिकार हैं, क्योंकि ईसाईयों ने तो ईसा अ़लैहिस्सलाम को मानने और उनकी ताज़ीम में ग़ुलू किया, उनको ख़ुदा या ख़ुदा का बेटा या तीसरा ख़ुदा बना दिया। और यहूदियों ने उनके न मानने और रद्द करने में ग़ुलू किया कि उनको रसूल भी न माना, बल्कि अल्लाह की पनाह उनकी वालिदा-ए-मोहतरमा हज़रत बीबी मरियम पर तोहमत लगाई और उनके नसब पर ऐब लगाया।

चूँकि दीन में ग़ुलू करने के सबब यहूदी व ईसाईयों की गुमराही और तबाही सामने आ चुकी थी इसलिये रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने अपनी उम्मत को इस मामले में पूरी एहतियात की ताकीद फ़रमाई। मुस्नद अहमद में हज़रत फ़ारूक़े आज़म रज़ियल्लाहु अ़न्हु की रिवायत है कि रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमायाः

لَا تَطْرُوْنِیْ كَمَا اَطْرَتِ النَّصَارٰی عِیْسَی بْنَ مَرْيَمَ فَاِنَّمَا اَنَا عَبْدٌ فَقُوْلُوْا عَبْدُ اللّٰهِ وَرَسُوْلُهٗ.

"मेरी तारीफ़ व प्रशंसा में ऐसा मुबालग़ा (हद से बढ़ाना) न करो जैसा कि ईसाईयों ने ईसा बिन मरियम के मामले में किया है। ख़ूब समझ लो कि मैं अल्लाह का बन्दा हूँ इसलिये तुम मुझे अल्लाह का बन्दा और रसूल कहा करो।"

(इस रिवायत को बुख़ारी और इब्ने मदीनी ने भी रिवायत किया है और सही सनद से होना क़रार दिया है।)

ख़ुलासा यह है कि मैं अल्लाह का बन्दा और बशर (इनसान) होने में सब के साथ शरीक हूँ, मेरा सबसे बड़ा दर्जा यह है कि मैं अल्लाह तआ़ला का रसूल हूँ, इससे आगे बढ़ाना कि ख़ुदा तआ़ला की सिफ़ात में मुझे शरीक क़रार दे दो यह ग़ुलू है, तुम ईसाईयों की तरह कहीं इस ग़ुलू में मुब्तला न हो जाओ। और यहूदियों व ईसाईयों का यह दीन में ग़ुलू सिर्फ़ नबियों ही की हद तक नहीं रहा बल्कि उन्होंने जब यह आ़दत ही डाल ली तो नबियों के सहाबा (साथियों) और ताबिईन (पैरोकारों) और उनके उत्तराधिकारों के बारे में भी यही बर्ताव इख़्तियार कर लिया। रसूल को तो ख़ुदा बना दिया था, रसूल के ताबे लोगों को मासूम (गुनाहों से पाक होने) का दर्जा दे दिया, फिर यह भी जाँच-पड़ताल और तहक़ीक़ न की कि ये लोग हक़ीक़त में नबियों के ताबेदार व पैरोकार और उनकी तालीम पर सही तौर से क़ायम भी हैं या महज़ विरासत के तौर पर आ़लिम या शैख़ समझे जाते हैं। नतीजा यह हुआ कि बाद में उनका नेतृत्व ऐसे लोगों के हाथ में आ गया जो ख़ुद भी गुमराह थे और उनकी गुमराही को और बढ़ाते थे, दीन और दीनदारी ही की राह से उनका दीन बरबाद हो गया। क़ुरआने हकीम ने उन लोगों की इस हालत का बयान इस आयत में फ़रमाया हैः

اِتَّخَذُوْٓا اَحْبَارَهُمْ وَرُهْبَانَهُمْ اَرْبَابًا مِّنْ دُوْنِ اللّٰهِ

यानी उन लोगों ने अपने मज़हबी पेशवाओं (धर्मगुरुओं) को भी माबूद (पूज्य) का दर्जा दे दिया। इस तरह रसूल को तो ख़ुदा बनाया ही था रसूल की पैरवी के नाम पर पिछले मज़हबी पेशवाओं की भी पूजा और इबादत शुरू कर दी।

इससे मालूम हुआ कि दीन में ग़ुलू वह तबाहकुन चीज़ है जिसने पिछली उम्मतों के दीन को दीन ही के नाम पर बरबाद कर दिया है, इसी लिये हमारे आक़ा व मौला हज़रत नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने अपनी उम्मत को इस ज़बरदस्त वबा और बड़ी तबाही से बचाने के लिये मुकम्मल तदबीरें फ़रमाईं।

हदीस में है कि हज के मौक़े पर रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने रमी-ए-जमरात

(शैतानों को कंकरियाँ मारने) के लिये हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु को फ़रमाया कि आपके वास्ते कंकरियाँ जमा कर लायें, उन्होंने दरमियानी क़िस्म की कंकरियाँ पेश कर दीं। आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने उनको बहुत पसन्द फ़रमाकर दो मर्तबा फ़रमायाः

بِمِثْلِهِنَّ بِمِثْلِهِنَّ

यानी ऐसी ही दरमियानी क़िस्म की कंकरियों से जमरात पर रमी करना चाहिये। फिर फ़रमायाः

اِيَّاكُمْ وَالْغُلُوَّ فِى الدِّيْنِ فَاِنَّمَا هَلَكَ مَنْ قَبْلَكُمْ بِالْغُلُوِّ فِىْ دِيْنِهِمْ

''यानी दीन में ग़ुलू (हद से बढ़ने) से बचते रहो, क्योंकि तुम से पहली उम्मतें दीन में ग़ुलू ही की वजह से हलाक व बरबाद हुईं।''

फ़ायदे

इस हदीस से चन्द अहम मसाईल मालूम हुए। अव्वल यह कि हज में जो कंकरियाँ जमरात पर फेंकी जाती हैं उनकी मस्नून हद यह है कि वे दरमियानी दर्जे की हों, न बहुत छोटी हों न बहुत बड़ी, बड़े-बड़े पत्थर उठाकर फेंकना दीन में ग़ुलू (हद से बढ़ने) में दाख़िल है।

दूसरे यह मालूम हुआ कि हर चीज़ की शरई हद वह है जो रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने अपने क़ौल व अ़मल से मुतैयन फ़रमा दी, उससे आगे बढ़ना ग़ुलू है।

तीसरे यह वाज़ेह हो गया कि दीन में ग़ुलू का मतलब यह है कि किसी काम में उसकी मस्नून हद से आगे निकला जाये।

दुनिया की मुहब्बत की सीमायें

ज़रूरत से ज़्यादा दुनिया के माल व दौलत और ऐश व आराम की इच्छा व हिर्स इस्लाम में नापसन्दीदा और बुरी है और उसके छोड़ देने की हिदायतें भी क़ुरआन में बहुत ज़्यादा आई हैं, लेकिन रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने जहाँ दुनिया के लालच और उसकी मुहब्बत से मना फ़रमाया वहीं अपने क़ौल व अ़मल से उसकी हदें (सीमायें) भी मुतैयन फ़रमा दी हैं कि निकाह करने को अपनी सुन्नत क़रार दिया और उसकी तरग़ीब दी, औलाद पैदा करने के फ़ायदे और दर्जे बतलाये, घर वालों और बाल-बच्चों के साथ अच्छे बर्ताव और उनके हक़ों की अदायेगी को फ़र्ज़ क़रार दिया, अपनी और उनकी ज़रूरतों के लिये माल कमाने को फ़राईज़ के बाद फ़रीज़ा (ज़रूरी काम) फ़रमाया। तिजारत, खेती-बाड़ी, कारीगरी व हुनरमन्दी और मज़दूरी की लोगों को ताकीद फ़रमाई। इस्लामी हुकूमत की स्थापना और इस्लामी निज़ाम को जारी करने को फ़रीज़ा-ए-नुबुव्वत क़रार देकर अपने अ़मल से पूरे अ़रब ख़ित्ते में एक निज़ामे हुकूमत क़ायम फ़रमाया और ख़ुलफ़ा-ए-राशिदीन रज़ियल्लाहु अ़न्हुम ने इसको दुनिया के पूरब व पश्चिम में फैला दिया जिससे मालूम हुआ कि ज़रूरत के मुताबिक़ इन चीज़ों में मशग़ूल होना न दुनिया की मुहब्बत में शुमार है न हिर्स व लालच में।

यहूदियों व ईसाईयों ने इस हक़ीक़त को न समझा और **रहबानियत** (दुनिया और सामाजिक ज़िन्दगी से बिल्कुल अलग होने) में मुब्तला हो गये। क़ुरआने हकीम ने उनकी इस ग़लत चाल को इन अलफ़ाज़ में रद्द फ़रमायाः

وَرَهْبَانِيَّةَ نِابْتَدَعُوْهَا مَا كَتَبْنَاهَا عَلَيْهِمْ اِلَّا ابْتِغَاءَ رِضْوَانِ اللّٰهِ فَمَا رَعَوْهَا حَقَّ رِعَايَتِهَا.

"यानी उन लोगों ने अपनी तरफ़ से रहबानियत के यानी दुनिया को छोड़ देने के तरीक़े इख़्तियार कर लिये जो हमने उनके ज़िम्मे न लगाये थे, फिर जो चीज़ें ख़ुद अपने ऊपर लागू कर ली थीं उनको पूरा भी न कर सके।"

सुन्नत और बिद्अ़त की हदें

रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने इबादतों, मामलात और रहन-सहन व सामाजिक ज़िन्दगी सब ही चीज़ों में अपने क़ौल व अ़मल से एतिदाल (दरमियानी चलन) की हदें मुक़र्रर फ़रमा दी हैं और उनसे पीछे रहना कोताही और आगे बढ़ना गुमराही है, इसी लिये आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने बिद्अ़तों और दीन में नई-नई चीज़ों के निकालने को बड़ी शिद्दत के साथ रोका है। इरशाद फ़रमायाः

كُلُّ بِدْعَةٍ ضَلَالَةٌ وَكُلُّ ضَلَالَةٍ فِى النَّارِ.

"यानी हर बिद्अ़त गुमराही है और हर गुमराही का अन्जाम जहन्नम है।"

बिद्अ़त उसी चीज़ को कहा जाता है जो नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के क़ौल व अ़मल में स्पष्ट रूप से या इशारतन् मौजूद न हो।

हज़रत शाह वलीयुल्लाह ने लिखा है कि इस्लाम में बिद्अ़त को इसलिये सख़्त जुर्म क़रार दिया है कि वह दीन में तहरीफ़ (कमी-बेशी करने) का रास्ता है, पिछली उम्मतों में यही हुआ कि उन्होंने अपनी किताब और अपने रसूल की तालीमात पर अपनी तरफ़ से इज़ाफ़े कर लिये और हर आने वाली नस्ल उनमें इज़ाफ़े करती रही, यहाँ तक कि यह पता न रहा कि असल दीन क्या था और लोगों के इज़ाफ़े क्या हैं।

शाह साहिब रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने अपनी किताब **हुज्जतुल्लाहिल-बालिग़ा** के अन्दर यह बयान फ़रमाया है कि दीन में तहरीफ़ (रद्दोबदल) के दुनिया में क्या-क्या असबाब पेश आये हैं, और इस्लामी शरीअ़त ने उन सब के दरवाज़ों पर किस तरह पहरा बैठाया है कि किसी सुराख़ से यह वबा इस उम्मत में न फैले।

उलेमा व बुज़ुर्गों के सम्मान व पैरवी में दरमियानी राह

उन असबाब (कारणों) में से दीन के बारे में बाल की खाल निकालने और दीन में ग़ुलू (हद से बढ़ने) को बड़ा सबब क़रार दिया, मगर अफ़सोस है कि रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के इस क़द्र एहतिमाम और शरीअ़त की इतनी पाबन्दियों के बावजूद आज उम्मते

मुस्लिमा इसी ग़ुलू की बुरी तरह शिकार है। दीन के सारे ही शोबों में इसके आसार नुमायाँ हैं। उनमें से ख़ास तौर से जो चीज़ मिल्लत के लिये घातक और इन्तिहाई नुक़सानदेह साबित हो रही है वह धर्मगुरुओं और पेशवाओं का मामला है। मुसलमानों की एक जमाअ़त तो इस पर गई है कि मुक़्तदा व रहबर, उलेमा व बुज़ुर्ग कोई चीज़ नहीं, अल्लाह की किताब हमारे लिये काफ़ी है, जैसे वे अल्लाह की किताब समझते हैं हम भी समझ सकते हैं:

هُمْ رِجَالٌ وَنَحْنُ رِجَالٌ

यानी वे भी आदमी हैं हम भी आदमी हैं। इसका नतीजा यह हुआ कि हर तबीयत का लालची जो न अ़रबी भाषा से वाक़िफ़ है न क़ुरआन के उलूम व मआ़रिफ़ से, न रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के बयान व तफ़सीर से, सिर्फ़ क़ुरआन का तर्जुमा देखकर अपने को क़ुरआन का आ़लिम कहने लगा। क़ुरआने करीम की जो तफ़सीर व तशरीह ख़ुद रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम या आपके डायरेक्ट शागिर्दों यानी सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम से मन्क़ूल है उस सबसे हटकर जो बात ज़ेहन में आ गई उसको क़ुरआन के सर थोप दिया, हालाँकि अगर सिर्फ़ किताब बग़ैर मुअ़ल्लिम (बिना उस्ताज़ और शिक्षक) के काफ़ी होती तो अल्लाह तआ़ला को यह क़ुदरत थी कि किताब के नुस्ख़े (प्रतियाँ) लिखे लिखाये लोगों को पहुँचा देते, रसूल को मुअ़ल्लिम (सिखाने वाला) बनाकर भेजने की ज़रूरत न थी। और अगर ग़ौर किया जाये तो मालूम होगा कि यह बात सिर्फ़ किताबुल्लाह के साथ मख़्सूस नहीं, किसी भी इल्म व फ़न की किताब का ख़ाली तर्जुमा देखकर कभी कोई शख़्स उस फ़न का आ़लिम नहीं बन सकता। डॉक्टरी या तिब्बे यूनानी की किताबों का तर्जुमा देखकर आज तक कोई हकीम या डॉक्टर नहीं बना, इन्जीनियरी की किताबें देखकर कोई इन्जीनियर नहीं बना, कपड़ा सीने या खाना पकाने की किताबें देखकर कोई दर्ज़ी या बावर्ची नहीं बना, बल्कि इन सब चीज़ों में सीखने-सिखाने और सिखाने वाले की ज़रूरत सब के नज़दीक मुसल्लम है, मगर अफ़सोस है कि क़ुरआन व सुन्नत ही को ऐसा सरसरी (आसान और मामूली) समझ लिया गया है कि इसके लिये किसी मुअ़ल्लिम (उस्ताज़ व शिक्षक) की ज़रूरत नहीं समझी जाती। चुनाँचे तालीम याफ़्ता लोगों की एक बहुत बड़ी जमाअ़त तो इस तरफ़ ग़ुलू (हद से बढ़ने) में बह गई कि सिर्फ़ क़ुरआन के मुताले (अध्ययन) को काफ़ी समझ बैठे, पहले उलेमा और बुज़ुर्गों की तफ़सीरों और ताबीरों को और उनकी पैरवी व अनुसरण को बिल्कुल ही नज़र-अन्दाज़ कर दिया।

दूसरी तरफ़ मुसलमानों की एक भारी जमाअ़त इस ग़ुलू में मुब्तला हो गई कि अंधाधुंध जिसको चाहा अपना मुक़्तदा और पेशवा (दीनी रहबर) बना लिया। फिर उनकी अंधी तक़्लीद (पैरवी) शुरू कर दी। न यह मालूम कि जिसको हम मुक़्तदा और पेशवा बना रहे हैं वह इल्म व अ़मल और नेकी व तक़वे के मेयार पर सही उतरता भी है या नहीं? और न फिर इस तरफ़ कोई ध्यान किया कि जो तालीम वह दे रहा है वह क़ुरआन व सुन्नत के मुख़ालिफ़ तो नहीं? शरीअ़ते इस्लाम ने ग़ुलू से बचाकर इन दोनों के बीच का तरीक़ा यह बतलाया कि अल्लाह की किताब

को अल्लाह वालों से सीखो, और अल्लाह वालों को अल्लाह की किताब से पहचानो। यानी क़ुरआन व सुन्नत की मशहूर तालीमात के ज़रिये पहले उन लोगों को पहचानो जो किताब व सुन्नत के उलूम में मशग़ूल हैं, और उनकी ज़िन्दगी किताब व सुन्नत के रंग में रंगी हुई होती है, फिर किताब व सुन्नत के हर उलझे हुए मसले में उनकी तफ़सीर व तशरीह को अपनी राय से मुक़द्दम (ऊपर) समझो और उनकी बात मानो।

لَنْ يَّسْتَنْكِفَ الْمَسِيْحُ اَنْ يَّكُوْنَ عَبْدًا لِّلّٰهِ وَلَا الْمَلٰٓئِكَةُ الْمُقَرَّبُوْنَ ۭ وَمَنْ يَّسْتَنْكِفْ عَنْ عِبَادَتِهٖ وَيَسْتَكْبِرْ فَسَيَحْشُرُهُمْ اِلَيْهِ جَمِيْعًا ۝ فَاَمَّا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا وَعَمِلُوا الصّٰلِحٰتِ فَيُوَفِّيْهِمْ اُجُوْرَهُمْ وَيَزِيْدُهُمْ مِّنْ فَضْلِهٖ ۚ وَاَمَّا الَّذِيْنَ اسْتَنْكَفُوْا وَاسْتَكْبَرُوْا فَيُعَذِّبُهُمْ عَذَابًا اَلِيْمًا ۙ وَّلَا يَجِدُوْنَ لَهُمْ مِّنْ دُوْنِ اللّٰهِ وَلِيًّا وَّلَا نَصِيْرًا ۝

लंय्यस्तन्किफ़ल्-मसीहु अंय्यकू-न अ़ब्दल्-लिल्लाहि व लल्मला-इ-कतुल् मुक़र्रबू-न, व मंय्यस्तन्किफ़् अ़न् अिबादतिही व यस्तक्बिर् फ़-सयह्शुरुहुम् इलैहि जमीआ़ (172) फ़-अम्मल्लज़ी-न आमनू व अ़मिलुस्-सालिहाति फ़-युवफ़्फ़ीहिम् उजूरहुम् व यज़ीदुहुम् मिन् फ़ज़्लिही व अम्मल्लज़ीनस्-तन्कफ़ू वस्तक्बरू फ़-युअ़ज़्ज़िबुहुम् अ़ज़ाबन् अलीमंव्-व ला यजिदू-न लहुम् मिन् दूनिल्लाहि वलिय्यंव्-व ला नसीरा (173)	मसीह को इससे हरगिज़ आर (शर्म) नहीं कि वह बन्दा हो अल्लाह का, और न फ़रिश्तों को जो मुक़र्रब (ख़ास और क़रीबी) हैं, और जिसको आर आये अल्लाह की बन्दगी से और तकब्बुर करे सो वह जमा करेगा उन सब को अपने पास इकट्ठा। (172) फिर जो लोग ईमान लाये और उन्होंने अच्छे अ़मल किये तो उनको पूरा देगा उनका सवाब और ज़्यादा देगा अपने फ़ज़्ल से, और जिन्होंने आर (शर्म) की और तकब्बुर किया सो उनको अ़ज़ाब देगा दर्दनाक अ़ज़ाब। और न पायेंगे अपने वास्ते अल्लाह के सिवा कोई हिमायती और न मददगार। (173)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

(ईसाई ख़्वाह-म-ख़्वाह हज़रत मसीह अ़लैहिस्सलाम को ख़ुदा या ख़ुदा का हिस्सा यानी ख़ुदाई में हिस्सेदार बना रहे हैं, ख़ुद हज़रत) मसीह (की यह कैफ़ियत है कि इस ज़मीन पर रहने की हालत में तो उनका अपने बन्दा होने का इक़रार जो कि उनके ख़ुदा होने को नकारता है, मशहूर

और सब को मालूम ही है, लेकिन अब भी आसमान में रहने की हालत में जो कि ज़मीन पर रहने से बुलन्द और उनके ऊँचे मक़ाम को ज़ाहिर करता है, या क़ियामत तक वह जिस हालत में हों उनसे कोई पूछकर देखे उस हालत में भी) हरगिज़ ख़ुदा के बन्दे बनने से शर्म (और इनकार) नहीं करेंगे, और न क़रीबी फ़रिश्ते (कभी शर्म करेंगे जिनमें हज़रत जिब्रील अ़लैहिस्सलाम भी हैं जिनको ये ख़ुदाई का एक हिस्सा मानते हैं, ख़ुद उनसे कोई पूछकर देखे) और (वे शर्म करें कैसे उस शर्म करने का ऐसा बुरा अन्जाम है कि) जो शख़्स ख़ुदा तआ़ला की बन्दगी से शर्म करेगा "या बुरा समझेगा" और तकब्बुर करेगा तो (उसका अन्जाम सुन लो) ख़ुदा तआ़ला ज़रूर सब लोगों को अपने पास (यानी हिसाब के मौक़े पर) जमा करेंगे। फिर जो लोग (दुनिया में) ईमान लाए होंगे और उन्होंने अच्छे काम किए होंगे (यानी बन्दे बने रहे होंगे, क्योंकि बन्दगी का हासिल यही ईमान और आमाल हैं) तो उनको उनका पूरा सवाब (भी) देंगे (जो कि ईमान और आमाल पर बयान हुआ है) और (उसके अ़लावा) उनको अपने फ़ज़्ल से और ज़्यादा (भी) देंगे (जिसकी तफ़सील बयान नहीं हुई)। और जिन लोगों ने (बन्दा बनने से) शर्म की होगी और तकब्बुर किया होगा तो उनको सख़्त दर्दनाक सज़ा देंगे। और वे लोग अल्लाह के अ़लावा किसी और को अपना मददगार व हिमायती न पाएँगे।

मआ़रिफ़ व मसाईल

अल्लाह का बन्दा होना आला दर्जे का सम्मान और इज़्ज़त है

لَنْ يَّسْتَنْكِفَ الْمَسِيْحُ اَنْ يَّكُوْنَ عَبْدًا لِّلّٰهِ...... الخ

यानी मसीह अ़लैहिस्सलाम को अल्लाह का बन्दा होने में कोई आ़र (शर्म) नहीं, और न ही अल्लाह के मुक़र्रब (क़रीबी और बड़े दर्जे के) फ़रिश्तों को शर्म है। इसलिये कि अल्लाह का बन्दा होना और उसकी इबादत करना और उसके हुक्मों का पालन करना तो आला दर्जे की शराफ़त (सम्मान) और इज़्ज़त है। हज़रत मसीह अ़लैहिस्सलाम और मुक़र्रब फ़रिश्तों में से इस नेमत की क़द्र व क़ीमत पूछिये तो उनको इससे कैसे शर्म व आ़र आ सकती है, अलबत्ता ज़िल्लत और ग़ैरत तो अल्लाह के सिवा किसी दूसरे की बन्दगी में है, जैसे ईसाईयों ने हज़रत मसीह अ़लैहिस्सलाम को अल्लाह का बेटा और माबूद बना लिया, और मुश्रिक लोग फ़रिश्तों को अल्लाह की बेटियाँ मानकर उनकी और बुतों की इबादत करने लगे, सो उनके लिये हमेशा का अ़ज़ाब और ज़िल्लत है। (फ़वाइदे उस्मानी)

يٰۤاَيُّهَا النَّاسُ قَدْ جَآءَكُمْ بُرْهَانٌ مِّنْ رَّبِّكُمْ وَاَنْزَلْنَآ اِلَيْكُمْ نُوْرًا مُّبِيْنًا ۝ فَاَمَّا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا بِاللّٰهِ وَاعْتَصَمُوْا بِهٖ فَسَيُدْخِلُهُمْ فِيْ رَحْمَةٍ مِّنْهُ وَفَضْلٍ وَّيَهْدِيْهِمْ اِلَيْهِ صِرَاطًا مُّسْتَقِيْمًا ۝

या अय्युहन्नासु क़द् जा-अकुम् बुर्हानुम् मिर्रब्बिकुम् व अन्ज़ल्ना इलैकुम् नूरम् मुबीना (174) फ़अम्मल्लज़ी-न आमनू बिल्लाहि वअ्त-समू बिही फ़-सयुद्ख़िलुहुम् फ़ी रह्मतिम् मिन्हु व फ़ज़्लिंव्-व यह्दीहिम् इलैहि सिरातम् मुस्तक़ीमा (175)	ऐ लोगो! तुम्हारे पास पहुँच चुकी तुम्हारे रब की तरफ़ से सनद, और उतारी हमने तुम पर स्पष्ट रोशनी। (174) सो जो लोग ईमान लाये अल्लाह पर और उसको मज़बूत पकड़ा तो उनको दाख़िल करेगा अपनी रहमत में और फ़ज़्ल में, और पहुँचा देगा उनको अपनी तरफ़ सीधे रास्ते पर। (175)

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

ऐ (तमाम) लोगो! यक़ीनन तुम्हारे पास तुम्हारे परवर्दिगार की तरफ़ से एक (काफ़ी) दलील आ चुकी है (वह मुबारक हस्ती है रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की), और हमने तुम्हारे पास एक साफ़ नूर भेजा है (वह क़ुरआन मजीद है, पस रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम और क़ुरआन के ज़रिये से जो कुछ तुमको बतलाया जाये वह सब हक़ है जिनमें ज़िक्र हुए मज़ामीन भी दाख़िल हैं)। सो जो लोग अल्लाह पर ईमान लाए (जिसके लिये अल्लाह के एक और हर ऐब की बात से पाक होने का एतिक़ाद लाज़िम है) और उन्होंने अल्लाह (के दीन) को (यानी इस्लाम को) मज़बूत पकड़ा (जिसके लिये रसूल सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम और क़ुरआन की तस्दीक़ लाज़िम है) तो ऐसों को अल्लाह तआ़ला अपनी रहमत (यानी जन्नत) में दाख़िल करेंगे और अपने फ़ज़्ल में (ले लेंगे यानी जन्नत में दाख़िल करने के अ़लावा और भी बड़ी नेमतें देंगे जिनमें अल्लाह का दीदार भी दाख़िल है) और अपने तक (पहुँचने का) उनको सीधा रास्ता बता देंगे (यानी दुनिया में उनको अपनी रज़ा के तरीक़े पर क़ायम व साबित रखेंगे, और इसी से ईमान और नेक आमाल को छोड़ने की हालत मालूम हो गई कि उनको ये नेमतें और फल न मिलेंगे)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

'बुरहान' से क्या मुराद है?

अल्लाह तआ़ला का क़ौल है:

قَدْ جَآءَكُمْ بُرْهَانٌ مِّنْ رَّبِّكُمْ

इसमें **बुरहान** के लफ़्ज़ी मायने दलील के हैं, इससे मुराद नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व

सल्लम की पवित्र ज़ात है। (रूहुल-मआनी)

हज़रत इब्ने अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु फ़रमाते हैं कि रसूले करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की पवित्र ज़ात को लफ़्ज़ बुरहान से इसलिये ताबीर फ़रमाया कि आपकी ज़ाते मुबारक और आपके बुलन्द अख़्लाक़, आपके मोजिज़े और आप पर किताब का उतरना, ये सब चीज़ें आपकी नुबुव्वत और आपकी रिसालत की खुली-खुली दलीलें हैं, जिनको देखने के बाद किसी और दलील की आवश्यकता बाक़ी नहीं रहती। तो यूँ समझना चाहिये कि आपकी ज़ात ख़ुद ही एक मुजस्सम (पूरी की पूरी और स्पष्ट) दलील है।

और अगर नूर से मुराद क़ुरआन मजीद है (रूहुल-मआनी) जैसा कि सूरः मायदा की इस आयत से भी मालूम होता है:

قَدْ جَآءَكُمْ مِّنَ اللّٰهِ نُوْرٌ وَّكِتٰبٌ مُّبِيْنٌ ٥ (١٥:٥)

"यानी तुम्हारे पास अल्लाह की तरफ़ से एक रोशन चीज़ आई है और वह एक स्पष्ट किताब यानी क़ुरआन है।" (बयानुल-क़ुरआन) इस आयत में जिसको नूर कहा गया है आगे उसी को किताबे मुबीन कहा गया।

और अगर नूर से मुराद नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की पाक ज़ात हो और किताब से मुराद क़ुरआन मजीद हो तो यह भी सही है। (रूहुल-मआनी) लेकिन इससे नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का ऐसा नूरे महज़ होना साबित नहीं होता जो बशर और जिस्म वाला होने के मनाफ़ी हो।

يَسْتَفْتُوْنَكَ ۭ قُلِ اللّٰهُ يُفْتِيْكُمْ فِي الْكَلٰلَةِ ۭ اِنِ امْرُؤٌا هَلَكَ لَيْسَ لَهٗ وَلَدٌ وَّلَهٗٓ اُخْتٌ فَلَهَا نِصْفُ مَا تَرَكَ ۚ وَهُوَ يَرِثُهَآ اِنْ لَّمْ يَكُنْ لَّهَا وَلَدٌ ۭ فَاِنْ كَانَتَا اثْنَتَيْنِ فَلَهُمَا الثُّلُثٰنِ مِمَّا تَرَكَ ۭ وَاِنْ كَانُوْٓا اِخْوَةً رِّجَالًا وَّنِسَاۗءً فَلِلذَّكَرِ مِثْلُ حَظِّ الْاُنْثَيَيْنِ ۭ يُبَيِّنُ اللّٰهُ لَكُمْ اَنْ تَضِلُّوْا ۭ وَاللّٰهُ بِكُلِّ شَيْءٍ عَلِيْمٌ

यस्तफ़्तून-क, क़ुलिल्लाहु युफ़्तीकुम् फ़िल्-कलालति, इनिम्रुउन् ह-ल-क लै-स लहू व-लदुंव्-व लहू उख़्तुन् फ़-लहा निस्फ़ु मा त-र-क व हु-व यरिसुहा इल्लम् यकुल्लहा व-लदुन्, फ़-इन् का-नतस्नतैनि फ़-लहुमस्--सुलुसानि मिम्मा त-र-क, व इन्	हुक्म पूछते हैं तुझसे सो कह दे- अल्लाह हुक्म बताता है तुमको कलाला का, अगर कोई मर्द मर गया और उसके बेटा नहीं और उसके एक बहन है तो उसको पहुँचे आधा उसका जो छोड़ मरा, और वह भाई वारिस है उस बहन का अगर न हो उसके बेटा। फिर अगर दो बहनें हों तो उनको पहुँचे दो तिहाई उस माल का जो

कानू इख़्वतर्रिजालंव्-व निसाअन् फ़-लिज़्ज़-करि मिस्लु हज़्ज़िल्-उन्सयैनि, युबय्यिनुल्लाहु लकुम् अन् तज़िल्लू, वल्लाहु बिकुल्लि शैइन् अ़लीम (176) ✿	छोड़ मरा, और अगर कई शख़्स हों इसी रिश्ते के कुछ मर्द कुछ औरतें तो एक मर्द का हिस्सा है बराबर दो औरतों के। बयान करता है अल्लाह तुम्हारे वास्ते ताकि तुम गुमराह न होओ, और अल्लाह हर चीज़ से वाकिफ़ है। (176) ✿

इस आयत के मज़मून का पीछे के मज़मून से संबन्ध

सूरत के शुरू से ज़रा आगे मीरास के अहकाम मज़्कूर थे, फिर वहाँ से तक़रीबन एक पारे के बाद दूसरे अहकाम के साथ मीरास के हुक्म की तरफ़ फिर बयान लौटा था, अब सूरत के ख़त्म पर फिर इसी मीरास के मज़मून का बयान है। शायद तीन जगह इसके अलग-अलग बयान करने में यह हिक्मत हो कि इस्लाम से पहले मीरास के बारे में बहुत ज़ुल्म था, पस सूरत के शुरू में, बीच में, आख़िर में इसके ज़िक्र फ़रमाने से मुख़ातब लोगों को बहुत ज़्यादा एहतिमाम व ध्यान मालूम हो, जिससे वे भी इसको ज़्यादा पाबन्दी व एहतिमाम से अपनायें।

ख़ुलासा-ए-तफ़सीर

लोग आप से (कलाला की मीरास के बारे में यानी जिसके न औलाद हो न माँ बाप हों) हुक्म मालूम करते हैं, आप (जवाब में) फ़रमा दीजिए कि अल्लाह तआ़ला तुमको कलाला के बारे में हुक्म देता है (वह यह है कि) अगर कोई शख़्स मर जाये जिसके औलाद न हो (यानी न मुज़क्कर न मुअन्नस और न माँ-बाप हों) (1) और उसके एक (सगी या माँ-शरीक सौतेली) बहन हो तो उस (बहन) को पूरे तर्के का आधा मिलेगा (यानी तक़सीमे मीरास से मुक़द्दम हुक़ूक़ की अदायेगी के बाद, और बाक़ी आधा अगर कोई अ़सबा हुआ उसको दिया जायेगा वरना फिर उसी पर वापस लौट आयेगा) और वह शख़्स उस (अपनी बहन) का वारिस (कुल तर्के का) होगा, अगर (वह बहन मर जाये और) उसके औलाद न हो (और माँ-बाप भी न हों)। और अगर (ऐसी) बहनें दो हों (या ज़्यादा) तो उनको उसके कुल तर्के में से दो तिहाई मिलेंगे

(1) यह ख़ुलासा तफ़सीर बयानुल-क़ुरआन से लिया गया है और वहाँ यह इबारत इसी तरह है, मगर राजेह (वरीयता प्राप्त) क़ौल की बिना पर कलाला होने के लिये यह ज़रूरी नहीं है कि मय्यित की माँ उसकी वफ़ात के वक़्त ज़िन्दा न हो, बल्कि अगर माँ ज़िन्दा हो तो भी मय्यित का कलाला हो सकता है। चुनाँचे सूरः निसा की आयत नम्बर 12 की तफ़सीर में जो इसी जिल्द में गुज़री है, माँ का लफ़्ज़ मौजूद नहीं है, लिहाज़ा राजेह क़ौल की बिना पर यह लफ़्ज़ यहाँ भी न होना चाहिये, यहाँ यह लफ़्ज़ लिखने में बज़ाहिर बयानुल-क़ुरआन में चूक हुई है, लिहाज़ा एतिमाद उस तफ़सीर पर किया जाये जो सूरः निसा की आयत नम्बर 12 के तहत में ज़िक्र की गई है।

मुहम्मद तक़ी उस्मानी उफ़ि-य अ़न्हु 29/3/1424 हिजरी

(और एक तिहाई असबा को, वरना बतौर रद्द के उन्हीं को मिल जायेगा)। और अगर (ऐसी मय्यित के जिसके न औलाद है न माँ-बाप, चाहे वह मय्यित पुरुष हो या स्त्री) कई वारिस (यानी एक से ज़्यादा ऐसे ही) भाई बहन हों मर्द और औरत तो (तर्का इस तरह तक़सीम होगा कि) एक मर्द को दो औरतों के हिस्से के बराबर (यानी भाई को दोहरा बहन को इकेहरा, लेकिन सगे भाई से अ़ल्लाती यानी बाप-शरीक भाई-बहन सब साक़ित हो जाते हैं और सगी बहन से कभी वे साक़ित हो जाते हैं कभी हिस्सा घट जाता है जिसकी तफ़सील मीरास की किताबों में है) अल्लाह तआ़ला तुमसे (दीन की बातें) इसलिए बयान करते हैं कि तुम (नावाक़िफ़ी से) गुमराही में न पड़ो (यह तो याद दिलाना और एहसान है) और अल्लाह हर चीज़ को ख़ूब जानते हैं (पस अहकाम की मस्लेहतों से भी बाख़बर हैं और अहकाम में उनकी रियायत की जाती है यह हिक्मत का बयान है)।

मआ़रिफ़ व मसाईल

अहम फ़ायदे

1. अल्लाह तआ़ला का क़ौल है:

يَسْتَفْتُوْنَكَ قُلِ اللّٰهُ يُفْتِيْكُمْ فِى الْكَلٰلَةِ

इस जगह **कलाला** का हुक्म और उसके नाज़िल होने का सबब बयान फ़रमाने से चन्द बातें मालूम हुईं- अव्वल यह कि जैसे पहले:

وَاِنْ تَكْفُرُوْا فَاِنَّ لِلّٰهِ مَا فِى السَّمٰوٰتِ وَمَا فِى الْاَرْضِ

(और अगर न मानोगे तो अल्लाह तआ़ला का है जो कुछ है आसमानों में और ज़मीन में.........आयत 170) फ़रमाकर उसके बाद मिसाल देने के तौर पर अहले किताब का हाल ज़िक्र फ़रमाया था, ऐसे ही इरशादः

فَاَمَّا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا بِاللّٰهِ وَاعْتَصَمُوْا بِهٖ....... الخ

(सो जो लोग ईमान लाये अल्लाह पर और इसको मज़बूत पकड़ा....... आयत 175) के बाद रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के सहाबा किराम का ज़िक्र मिसाल के तौर पर फ़रमाया ताकि वही (अल्लाह के हुक्म व पैग़ाम) से मुँह मोड़ने वालों (जिनका ज़िक्र आयत 170 में है) की गुमराही और बुराई और वही की पैरवी और हुक्म मानने वालों (जिनका ज़िक्र आयत 175 में है) की हक़्क़ानियत और भलाई ख़ूब समझ में आ जाये।

2. इसी के तहत में दूसरी बात यह भी ज़ाहिर हो गई कि अहले किताब (यहूदियों व ईसाईयों) ने तो यह ग़ज़ब किया कि अल्लाह की पाक ज़ात के लिये शरीक और औलाद जैसे बुरे अ़क़ीदों को अपना ईमान बना लिया और अल्लाह की वही की जमकर मुख़ालफ़त की। और रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के सहाबा की यह हालत है कि ईमानी उसूल और

इबादात तो क्या छोटे-छोटे मामलात और मामूली मसाईल जो मीरास व निकाह वग़ैरह से संबन्धित हों, में भी वही (अल्लाह के हुक्म) के मुन्तज़िर रहते हैं, और हर मामले में रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की तरफ़ देखते हैं अपनी अ़क्ल और इच्छा को हाकिम नहीं समझते, अगर एक दफ़ा में तसल्ली न हुई तो दोबारा ख़िदमत में हाज़िर होकर मालूम करते हैं। अब देख लो उन पहले (यानी नाफ़रमानों) और दूसरे (यानी फ़रमाँबरदारों) में कितना फ़र्क़ है।

और यह भी मालूम हो गया कि हज़रत सय्यिदुल-मुर्सलीन सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम भी वही के हुक्म के बिना अपनी तरफ़ से हुक्म न फ़रमाते थे, अगर किसी मामले में वही (यानी अल्लाह की तरफ़ से) हुक्म मौजूद न होता तो हुक्म फ़रमाने में वही के उतरने का इन्तिज़ार फ़रमाते, जब वही आती तब हुक्म फ़रमाते। तथा इशारा है इस तरफ़ कि एक दफ़ा तमाम किताब के नाज़िल होने में जैसा कि अहले किताब दरख़्वास्त करते हैं, वह ख़ूबी नहीं थी जो ज़रूरत के वक़्त और मौक़े के मुताबिक़ मुतफ़र्रिक़ तौर पर नाज़िल होने में है, क्योंकि इस हालत में हर कोई अपनी ज़रूरत के मुवाफ़िक़ सवाल कर सकता है और **वही-ए-मतलू** के द्वारा उसको जवाब मिल सकता है, जैसा कि इस जगह में और क़ुरआन मजीद की बहुत सी जगहों पर मौजूद है, और यह सूरत ज़्यादा मुफ़ीद होने के अ़लावा अल्लाह के ज़िक्र और ख़िताब करने के सम्मान हासिल होने के ऐसे ज़बरदस्त फ़ख़्र (गौरव व सम्मान) पर मुश्तमिल है जो किसी उम्मत को नसीब नहीं हुआ। वाक़ई अल्लाह तआ़ला बड़े फ़ज़्ल वाला है।

नोटः मतलब यह कि एक इनसान किसी मामले में सवाल करता है और अल्लाह की तरफ़ से उसका जवाब आता है, तो एक तरह से अल्लाह ने उस शख़्स का ज़िक्र किया और उसको ख़िताब किया, ज़ाहिर है कि यह किस क़द्र इज़्ज़त व सम्मान की बात है कि किसी शख़्स को मालिके कायनात की तरफ़ से मुख़ातब किया जाये और उसके सवाल का जवाब देकर उसको इज़्ज़त बख़्शी जाये। अगर पूरी किताब एक ही बार में नाज़िल हो जाये जैसा कि पिछली उम्मतों में हुआ तो अब यह ख़िताब व ज़िक्र का मौक़ा ही कहाँ रहा। **मुहम्मद इमरान क़ासमी बिज्ञानवी)**

जिस सहाबी की भलाई में या उसके सवाल के जवाब में कोई आयत नाज़िल हुई वह उसके कमालात और ख़ूबियों में शुमार होती है, और इख़्तिलाफ़ (मतभेद) के मौक़े में जिसकी राय या जिसके क़ौल के मुवाफ़िक़ वही नाज़िल हो गई क़ियामत तक उनकी ख़ूबी और नेक नाम बाक़ी रहेगा। सो **कलाला** के मुताल्लिक़ सवाल व जवाब का ज़िक्र फ़रमाकर इस तरह के उमूमी सवालात और जवाबात की तरफ़ इशारा फ़रमा दिया। (फ़वाइदे-उस्मानी)

अल्लाह तआ़ला शानुहू का बेहद करम व एहसान है कि उसकी तौफ़ीक़ व इनायत से मआ़रिफ़ुल-क़ुरआन की दूसरी जिल्द मुकम्मल हुई।

कुछ अलफ़ाज़ और उनके मायने

इस्लामी महीनों के नामः- मुहर्रम, सफ़र, रबीउल-अव्वल, रबीउस्सानी, जमादियुल-अव्वल, जमादियुस्सानी, रजब, शाबान, रमज़ान, शव्वाल, ज़ीक़ादा, ज़िलहिज्जा।

चार मशहूर आसमानी किताबें

तौरातः- वह आसमानी किताब जो हज़रत मूसा अ़लैहिस्सलाम पर उतरी।

ज़बूरः- वह आसमानी किताब जो हज़रत दाऊद अ़लैहिस्सलाम पर उतरी।

इन्जीलः- वह आसमानी किताब जो हज़रत ईसा अ़लैहिस्सलाम पर उतरी।

क़ुरआन मजीदः- वह आसामानी किताब जो हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम पर नाज़िल हुई। यह आख़िरी आसमानी किताब है।

चार बड़े फ़रिश्ते

हज़रत जिब्राईलः- अल्लाह तआ़ला का एक ख़ास फ़रिश्ता जो अल्लाह का पैग़ाम (वही) उसके रसूलों के पास लाता था।

हज़रत इस्राफ़ीलः- अल्लाह का एक ख़ास फ़रिश्ता जो इस दुनिया को तबाह करने के लिये सूर फूँकेगा।

हज़रत मीकाईलः- अल्लाह का एक ख़ास फ़रिश्ता जो बारिश का इन्तिज़ाम करने और मख़्लूक़ को रोज़ी पहुँचाने पर मुक़र्रर है।

हज़रत इज़्राईलः- अल्लाह का एक ख़ास फ़रिश्ता जो जानदारों की जान निकालने पर लगाया गया है।

रिश्ते और निस्बतें

अबूः- बाप (जैसे अबू हुज़ैफ़ा)।

इब्नः- बेटा, पुत्र (जैसे इब्ने उमर)।

उम्मः- माँ (जैसे उम्मे कुलसूम)।

बिन्तः- बेटी, पुत्री (जैसे बिन्ते उमर)।

वज़न व पैमाईश

ओक़ियाः- चालीस दिरहम का वज़न, अंग्रेज़ी औंस के बराबर।

क़िन्तारः- एक वज़न (40 ओक़िया, क़रीब सवा सैर)।

क़ीरातः- दिरहम के बारहवें हिस्से के बराबर एक वज़न।

दिरहमः- चाँदी का एक सिक्का जो क़रीब साढ़े पाँच माशे का होता है।

दीनारः- अरब में सोने का एक सिक्का जिसका वज़न डेढ़ दिरहम के बराबर होता है।

फ़र्सख़ः- क़रीब आठ किलो मीटर, तीन मील हाशमी।

मुदः- एक सैर का वज़न।

मिस्क़ालः- सोने का एक सिक्का जिसका वज़न साढ़े चार माशे होता है।

साअ़ः- 234 तौले का एक वज़न।

अज़लः- शुरू, मख़्लूक़ की पैदाईश का दिन। वह समय जिसकी कोई शुरूआ़त न हो।

अजायबातः- अनोखी या हैरत-अंगेज़ चीज़ें।

अ़ज़ाबः- गुनाह की सज़ा, तकलीफ़, दुख, मुसीबत।

अज्रः- नेक काम का बदला, सवाब, फल।

अ़क़ीदाः- दिल में जमाया हुआ यक़ीन, ईमान, एतिबार, आस्था आदि। इसका बहुवचन **अ़क़ीदे** और **अ़क़ायद** आता है।

अ़दमः- नापैदी, न होना।

अबदः हमेशगी। वह ज़माना जिसकी कोई इन्तिहा न हो।

अय्यामे-तशरीक़ः- बक़र-ईद के बाद के तीन दिन।

अमानतः- सुपुर्द की हुई चीज़।

अमीनः- अमानतदार।

अ़लीमः- जानने वाला, अल्लाह तआ़ला का एक सिफ़ाती नाम।

अहकामः- हुक्म का बहुवचन, मायने हैं फ़रमान, इरशाद, शरई फ़ैसला आदि।

आयतः- निशान, क़ुरआनी आयत का एक टुकड़ा, एक रुकने की जगह का नाम जो गोल दायरे की शक्ल में होती है।

आबख़ोराः- पानी पीने का छोटा सा मिट्टी का बरतन।

आख़िरतः- परलोक, दुनिया के बाद की ज़िन्दगी।

इस्मे आज़मः- अल्लाह तआ़ला के नामों में से एक बड़ाई वाला नाम, इसके ज़रिये दुआ़ की क़बूलियत का अवसर बढ़ जाता है।

इबरानीः- यहूदियों की भाषा, किनआ़न वालों की ज़बान, इब्र की औलाद यानी इस्राईली।

इल्लिय्यूनः- बड़े और ऊँचे दर्जे के लोग, जन्नती।

इजमाः- जमा होना, एकमत होना, मुसलमान उलेमा का किसी शरई मामले पर एकमत होना।

ईलाः- शौहर का बीवी के पास चार महीने या इससे ज़्यादा समय के लिये न जाने की क़सम ले लेना।

इस्तिग़फ़ारः- तौबा करना, बख़्शिश चाहना।

उज़्रः- बहाना, हीला, सबब, हुज्जत, एतिराज़, पकड़, माफ़ी, माफ़ी चाहना, इनकार।

एहरामः- बिना सिली एक चादर और तहबन्द। मुराद वह कपड़ा और लिबास है जिसको पहनकर हज और उमरे के अरकान अदा किये जाते हैं।

कहानतः- ग़ैब की बात बताना, फ़ाल कहना, भविष्यवाणी करना।

कफ़्फ़ाराः- गुनाह को धो देने वाला, गुनाह या ख़ता का बदला, क़ुसूर का दंड जो ख़ुदा तआ़ला की तरफ़ से मुक़र्रर है। प्रायशचित।

क़ियासः- अन्दाज़ा, अटकल, जाँच।

क़िसासः- बदला, इन्तिक़ाम, ख़ून का बदला ख़ून।

ख़ल्कः- मख़्लूक़, सृष्टि।

ख़ालिक़ः- पैदा करने वाला। अल्लाह तआ़ला का एक सिफ़ाती नाम।

ख़ियानतः- दग़ा, धोखा, बेईमानी, बद्-दियानती, अमानत में चोरी।

ख़ुशूअ़ व ख़ुज़ूअ़ः- आ़जिज़ी करना, गिड़गिड़ाना, सर झुकाना, विनम्रता इख़्तियार करना।

ख़ुतबाः- तक़रीर, नसीहत, संबोधन।

ख़ुलाः- बीवी का कुछ माल वग़ैरह देकर अपने पति से तलाक़ लेना।

ग़ज़्वाः- वह जिहाद जिसमें ख़ुद रसूले ख़ुदा सल्ल. शरीक हुए हों। दीनी जंग।

ग़ैबः- ग़ैर-मौजूदगी, पोशीदगी की हालत, जो आँखों से ओझल हो। जो अभी भविष्य में हो।

ज़माना-ए-जाहिलीयतः- अ़रब में इस्लाम से पहले का ज़माना और दौर।

ज़िरहः- लोहे का जाली दार कुर्ता जो लड़ाई में पहनते हैं। आजकल बुलेट-प्रूफ़ जाकेट।

जिहादः- कोशिश, जिद्दोजहद, दीन की हिमायत के लिये हथियार उठाना, जान व माल की क़ुरबानी देना।

ज़िनाः- बदकारी, हराम कारी।

जिज़्याः- वह टैक्स जो इस्लामी हुकूमत में ग़ैर-मुस्लिमों से लिया जाता है। बच्चे, बूढ़े, औ़रतें और धर्मगुरु इससे बाहर रहते हैं। इस टैक्स के बदले हुकूमत उनके जान माल आबरू की सुरक्षा करती है।

ज़िहारः- एक क़िस्म की तलाक़, फ़िक़ा की इस्तिलाह में मर्द का अपनी बीवी को माँ बहन या उन औ़रतों से तशबीह देना जो शरीअ़त के हिसाब से उस पर हराम हैं।

टट्टीः- बाँस का छप्पर, पर्दा खड़ा करना, क़नात।

तक़दीरः- वह अन्दाज़ा जो अल्लाह तआ़ला ने पहले दिन से हर चीज़ के लिये मुक़र्रर कर दिया है। नसीब, क़िस्मत, भाग्य।

तर्काः- मीरास, मरने वाले की जायदाद व माल।

तौहीदः- एक मानना, ख़ुदा तआ़ला के एक होने पर यक़ीन करना।

दारुल-हरबः- वह मुल्क जहाँ ग़ैर-मुस्लिमों की हुकूमत हो और मुसलमानों को मज़हबी फ़राईज़ के अदा करने से रोका जाये।

दारुल-इस्लामः- वह मुल्क जिसमें इस्लामी हुकूमत हो।

(मुहम्मद इमरान क़ासमी बिज्ञानवी)

❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖